श्रीमद्रामदीनदैवज्ञकृतम्

बृहद्दैवज्ञरञ्जनम्

'श्रीधरी' हिन्दी व्याख्या सहितम्

द्वितीय भागः



डॉ॰ मुरलीधर चतुर्वेदी

3-3

श्रीमद्रामदीनदैवज्ञकृतम्

बृहद्दैवज्ञरञ्जनम्

'श्रीधरी' हिन्दी व्याख्या सहितम्

(द्वितीयो भागः)

व्याख्याकारः

डॉ० मुरलीधर चतुर्वेदी

ज्योतिषाचार्य (सि०, फ०)

अध्यापक, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली वाराणसी पटना मद्रास

मुख्य कार्यालय : बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली ११० ००७
शाखाएँ : चौक, वाराणसी २२१ ००१
अशोक राजपथ, पटना ८०० ००४
६, अपर स्वामी कोइल स्ट्रीट, मैलापुर, मद्रास ६०० ००४

प्रथम संस्करण : १९८५

मूल्य : रु० १५० (सजिल्द)
१२० (अजिल्द)

नरेन्द्र प्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली ७
द्वारा प्रकाशित तथा केशव मुद्रणालय, खजुरी,
वाराणसी २ द्वारा मुद्रित।

समर्पण

श्रद्धेय परमपूज्य

स्व० पिता जी की स्मृति में

सादर समर्पित ।



श्री० भा० न० शु० पं० केशवदेव जी शास्त्री



विषय-सूची

निर्माण में त्याज्य, आदि शुद्धि, सफल पुरुषाकृति ग्रामवास चक्र ६०५, ग्रामवासार्थ शिवा बलि ६०६, राशिभेद से ग्रामवास विचार ६०७, स्वराशि से ग्राम राशि फल, ग्राम अनुकूलता का ज्ञान, दिग्दशा ज्ञान ६०८, दिग्दशा विचार, वर्ग स्वामी ज्ञान ६१०, विप्रादि वर्ण भूमि लक्षण, शुभ भूमि, भूमि के रस ६११, भूमि में उपगन्ध, भूमिप्लव फल ६१२, दूषित भूमि लक्षण व फल, गजपृष्ठ भूमि लक्षण ६१३, गज पृष्ठ में निवास का फल, कूर्म दैत्य पृष्ठभूमि लक्षण व उसमें निवास का फल ६१४, नाग पृष्ठभूमि लक्षण एवं निवास का फल, भूमि के अन्य लक्षण ६१५, निवास योग्य भूमि, गाँव जीवितादि ज्ञान, जीवितादि भूमि, शेषवश फल, प्रश्न से जीवितादि भूमि ६१६, शेषवश फल, शकुन से शुभ भूमि, राजघर प्रमाण, सेनापति के घर का माप ६१७, राजमहिषी व मन्त्री के घर का प्रमाण ६१८, युवराज आदि के घर का प्रमाग ६१९, विप्रादि ४वर्णों के घर का प्रमाण ६२०, कोष व राजपुरुष एवं पारशव आदि के घर का प्रमाण ६२१, पशु व संन्यासी के घर का प्रमाण घर, की ऊँचाई व एकशाल मकान का दैर्घ्य, पिण्डसाधन ६२२, आयों का साधन, आयों के नाम, आयवश फल ६२३, गजादि गृह निर्माण में आय, जातिवश आय ६२५, भिन्न रीति से आय, आयादि विचार का अभाव ६२६, पिण्ड से आयादि आनयन ६२७, वार का आनयन, अंश स्वामी ज्ञान ६२८, द्वादश द्रव्य आनयन, ऋण व नक्षत्र का आनयन ६२९, तारा फल, एक नक्षत्र में फल, गृह मेलापक में राशि ज्ञान ६३०, एक नाडी की विशेषता, तिथि का आनयन, भिन्न प्रकार से ६३१, योग का आनयन, अशुभ योग ज्ञान आयु आनयन, मकान की आयु व विनाश का कारण ६३२, शेषवश विकार ज्ञान, दानादि ९ मण्डल ज्ञान, शेषवश मंडल, गृहभूमि प्रमाण ६३३, अंशज्ञान, पिशाच, राक्षस घर ज्ञान भिन्न रीति से अंश ज्ञान ६३४, ध्रुवादि घर ज्ञान, इन्द्रादि स्वामी, मित्रादि ज्ञान, ६३५, गृहारम्भ में मासों का फल, भिन्न फल ६३६, घर निर्माण में १२ मासों के फल, घर बनाने में अच्छे मास ६३७, १२ संक्रान्ति में घर बनाने का फल, स्थितिवश विशेष मास ६३८, तडागादि में शुभ मास, मास दोष का अभाव, पशु आदि घर निर्माण मास, पक्षशुद्धि ६३९, घर बनाने में अशुभ तिथि व शुभ नक्षत्र ६४०, गृहारम्भ व सूतिका घर निर्माण मुहूर्त, गृहारम्भ का भिन्न मुहूर्त ६४१, त्याज्य योग, घर बनाने में शुभ मुहूर्त, गृहारम्भ में लग्न शुद्धि ६४२, मकान निर्माण का मुहूर्त, घर बनाने का विशेष शुभ मुहूर्त ६४३, भूमि शयन लक्षण, तिथियों में शयन, मासवश शयन, वास्तु चक्र ज्ञान ६४४, बैल आकृति वास्तु चक्र व उसका फल, गृहारम्भ के शुभाशुभ नक्षत्र ६४५, वास्तु पुरुष स्थिति निर्णय, स्थिति वश फल, शुभ खात ६४६, कूर्म चक्र ज्ञान, स्थितिवश फल, ब्राह्मणादि को शंकु अंगुल मान ६४७, भूमि शोधनार्थ गर्त के लिये सफल राहु विचार ५४८, दिशा साधन प्रयोजन ६४९, दिशा का साधन, ग्रहलाघवीय दिशा साधन ६५०, नक्षत्र वेध से दिशा ज्ञान, ध्रुवमत्स्य ताराद्वय दर्शन से

॥ श्री हनुमते नमः ॥

बृहद्दैवज्ञरंजनम्

(द्वितीयो भागः)

अथ द्विपञ्चाशत्तमं सूतिकागृहप्रवेशप्रकरणं प्रारभ्यते

तत्सूतिकागृहं पारिजाते—

अब आगे बावनवें प्रकरण में प्रसूतिका के घर में कब, किस स्थिति में प्रवेश और किस दिशा में निर्माण करना चाहिए, इसे बताते हैं।

वसिष्ठः—

ऐन्द्रे तु विक्रमस्थानं आग्नेय्यां पचनालयम्।
वारुण्यां भोजनगृहं नैर्ऋत्यां सूतिकागृहम् ॥ १ ॥

पारिजात में बताया है कि पूर्व में विक्रम स्थान, अग्नि कोण में रसोई घर, पश्चिम में भोजनालय और नैर्ऋत्य में सूतिका घर बनाना चाहिए ॥ १ ॥

वाराहीये—

नैर्ऋतीवारुणोमध्ये प्रमदासूतितस्कराः ॥ २ ॥

वाराहीय में बताया है कि नैर्ऋत्य और पश्चिम के बीच में स्त्री का प्रसव चोरभय करता है ॥ २ ॥

वास्तुराजवल्लभे—

हस्तादित्यशशाङ्कपुष्यपवनप्राजेशमित्रोत्तरा-
चित्राश्विश्रवणेषु वृश्चिकघटीं त्यक्त्वा विरिक्ते तिथौ।
शुक्राचार्यशनैश्चरज्ञशशिनां वारेऽनुकूले विधौ
सद्भिर्वेश्मनि सूतिकाग्रहविधिः क्षेमङ्करः कीर्तितः ॥ ३ ॥

वास्तुराज वल्लभ में कहा है कि हस्त, पुनर्वसु, मृगशिरा, पुष्य, स्वाती, रोहिणी, अनुराधा, तीनों उत्तरा, चित्रा अश्विनी या श्रवण में वृश्चिक घटी का त्याग करके, रिक्ता तिथियों को छोड़कर, शुक्र, गुरु, शनि, बुध, सोमवार में अनुकूल चन्द्रमा के होने पर सूतिका घर बनाना या स्थिर करना शुभ फल दायक होता है ॥ ३ ॥

प्रवेश समय ज्ञान

तत्प्रवेशकालं गर्गः—

रोहिण्यैन्दवपौष्ण्येषु स्वातीवारुणयोरपि ।
पुनर्वसुपुष्यहस्तधनिष्ठात्र्युत्तरासु च ॥ ४ ॥

मैत्रे त्वाष्ट्रे तथाश्विन्यां सूतिकागारवेशनम् ।
प्रसूतिसम्भवे काले सद्य एव प्रवेशयेत् ॥ ५ ॥

श्री गर्गजी ने बताया है कि रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, स्वाती शतभिषा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, धनिष्ठा. तीनों उत्तरा, अनुराधा, चित्रा और अश्विनी में सूतिका घर में प्रवेश करना चाहिए । यदि प्रसव होने वाला हो तो शीघ्र ही प्रवेश करना चाहिए ॥४-५॥

प्रवेश की विधि

तद्विधिः पाद्मे —

प्रविशेत्सूतिकासद्मं कृतरक्षां समन्ततः ।
सुभूमौ निर्मितं रम्यं वास्तुविद्याविशारदैः ॥ ६ ॥

प्राग्द्वारमुत्तरद्वारमथवा सुदृढं शुभम् ।
देवानां ब्राह्मणानां च गवां कृत्वा च पूजनम् ॥ ७ ॥

विप्रपुण्याहशब्देन शङ्खवाद्यरवेन च ।
प्रसूता बहवस्तत्र तथा क्लेशक्षमादयः ॥ ८ ॥
हृद्या विश्वसनीयाश्च प्रविशेयुः स्त्रियश्च तत् ॥ ९ ॥

पद्मपुराण में कहा है कि वास्तु विद्या में चतुर विद्वानों द्वारा अच्छी भूमि में सुन्दर बने हुए व सूतिका की चारों तरफ से रक्षा करने वाले पूर्व द्वार या उत्तर दरवाजे में शुभ सुपुष्ट मकान में देवता और ब्राह्मणों का पूजन करके ब्राह्मणों के शुभाशीर्वाद एवं शंखादि ध्वनि के साथ प्रवेश करना चाहिए । तथा अधिक सन्तान वाली पीड़ा को दूर करने के उपाय जानने वाली, मन को सुख देने वाली विश्वस्त स्त्रियों का प्रवेश करना चाहिए ॥ ६-९ ॥

सुख से प्रसव का उपाय

अथ सुखप्रसवोपायः—

एरण्डमूलचूर्णेन सघृतेन तथैव ताम् ।
सुखप्रसवनार्थाय पश्चात्कार्ये तु तत्क्षिपेत् ॥ १० ॥

अण्डी की जड़ को पीस कर उस में घी मिलाकर स्त्री के गुह्याङ्ग में लेप करे पीछे उसके भी लेप को छोड़ने से सुख से प्रसूति होती है ॥ १० ॥

प्रकारान्तर से उपाय

प्रसवनिबंधे तन्निवर्तकं मृगविधाने—

[1]प्रमंदिने ऋचं त्वेकां जपेद्गर्भप्रमोचनीम् ।
इन्द्रं च मनसा ध्यायेन्नारी गर्भं प्रमुञ्चति ॥ ११ ॥

[2]विजिहीष्व वनस्पते तदिदं च्यावनं स्मृतम् ।
पञ्च वा पितुः कामाः स्याच्च्यावयेत इदं जपन् ॥ १२ ॥
स्त्रियं गर्भप्रसूतां वा पाययेदनुमन्त्रितम् ।
उदकं च्यावनेनैव गर्भोऽधः च्यवते सुखम् ॥ १३ ॥

प्रसव निर्बन्ध की निवृत्ति के लिये मृगविधान में कहा है कि इन्द्र का मन से ध्यान करते हुए 'प्रमन्दिने' इत्यादि गर्भ विमोचनी एक ऋचा अर्थात् मन्त्र का जप करने से नारी सुख से गर्भ का त्याग करती है । अथवा 'विजहीष्व' इत्यादि से गर्भ च्युति होती है । वा 'पंच वा पितुः कामा'[3] इत्यादि मन्त्र से जल को अभिमन्त्रित करके गर्भिणी को पिलाने से सुख से गर्भ बाहर आता है ॥ ११-१३ ॥

पुनः प्रकारान्तर से

सुखप्रसवे प्रकारान्तरमाह मदनरत्ने नारायणीघटिकायाम्—

करङ्कीभूतगोमूर्ध्ना सूतिकाभवनोपरि ।
तत्कालनिहितो नार्याः सुखप्रसवकारकः ॥ १४ ॥
अस्थिमात्रावशिष्टो गोप्रसव इत्यर्थः ।

मदन रत्न में बताया है कि अस्थिमात्र गाय के मस्तक को सूतिकागृह के ऊपर स्थापित करने से स्त्री सुख से प्रसव करती है ॥ १४ ॥

उपोदक्यास्तु मूलानि तैलयुक्तानि कारयेत् ।
योनिप्रलेपो दातव्यः सुखं नारी प्रसूयते ॥ १५ ॥

उपोदकी अर्थात् पोई की जड़ को पीस कर तेल मिलाने से जो वस्तु बनती है उसका योनि पर लेप करने से सुख पूर्वक प्रसव होता है ॥ १५ ॥

वंशनिम्बयोस्त्वक्तुलसीमूलं कपित्थपत्रं च ।
करवीरमेतत्पिष्ट्वा क्षीरेण माहिषेणैव ॥ १६ ॥
समतोलितं सतैलं योनिं लिप्त्वा च तेनापि ।
मृतगर्भं निःसारयति किमत्र चित्रं सुखप्रसवे ॥ १७ ॥

---

१. प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना । अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे । ऋ. वे. सं. १ मं. १०१ सू. १ मं. ।

२. विजिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव ।

३. श्रुतं मे आश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् । ऋ. वे. सं. ४ मं. ७८ सू. ५ मं. ।

बाँस व नीम की छाल, तुलसी की जड़, कैथ का पत्ता और कनहर की छाल को पीस कर भैंस का दूध मिला कर उसके तुल्य ही तेल मिला कर योनि पर लेप करने से मृत गर्भ को भी वाहर निकाल देता है तो सुख से प्रसव होंने में क्या आश्चर्य है ॥१६-१७॥

अब आगे आधान के समय चन्द्र राशि स्थिति से प्रसव के दिनों को बताते हैं।

गर्भाधान कालीन चन्द्रमा से प्रसव काल का ज्ञान

अथाधानकाले चन्द्रवशात्प्रसवकालज्ञानमाह –

आधानं यदि दृश्यते स्थिरगते चण्डीशचूडामणौ
नारीणां प्रसवस्तदा खलु भवेद्युग्मांकपक्षैः २९२ दिनैः।
सप्ताशीत्यधिकैश्च पक्षसहिते २८७ स्तस्मिश्चरक्षेत्रगे
चन्द्राष्टाश्वि २८१ दिने रसातलभुजे २७६र्वा द्विस्वभावे विधौ ॥ १८ ॥

जब कि गर्भाधान के समय में चन्द्रमा स्थिर राशि में होता है तो स्त्री २९२ दिन में, चर राशि में होने पर २८७ दिन में और द्विस्वभाव राशिस्थ चन्द्रमा होने से २८१ या २७६ दिन में सन्तान वाली होती है ॥ १८ ॥

अथ कैश्चित्पृच्छ्यते ममगृहे प्रसवसमयोऽद्यैवास्ति कस्मिंल्लग्ने भविष्यतीति चेत् दिवा निकटवर्ती तदा यस्मिन्नृक्षे रविः तस्याधः स्थाने यल्लग्नम् तन्मध्ये जन्म वदेत्। अधोधस्त्रीण्यपि लग्नस्थानानि अश्विन्यामर्के मेषे मिथुने कन्यायां वा जन्म। रात्रौ वृश्चिकमकरमीने वा जन्म वाच्यम्।

दिने सूर्यर्क्षादिषु लग्नेषु जन्म वाच्यम्।

अ.	भ.	कृ.	रो.	मृ.	आ.	पु.	पु	श्ले.	म.	पू.	उ.	ह.	चि.
१	१	२	२	३	३	३	४	४	५	५	६	६	७
३	४	४	५	५	६	६	७	७	७	८	८	९	९
६	७	७	७	८	८	९	९	१०	११	११	११	११	१२

दिने सूर्यर्क्षादिषु लग्नषु जन्म वाच्यम्।

स्वा.	वि.	अ.	ज्ये.	मू.	पू.	उ.	श्र.	ध.	श.	पू.	उ.	रे.
७	७	८	८	९	९	१०	१०	११	११	११	१२	१२
१०	१०	११	११	११	१२	१२	१	१	२	२	३	३
१२	१	१	२	२	३	३	३	४	४	५	५	६

रात्रौ सूर्यर्क्षादषु लग्नेषु जन्म वाच्यम्।

अ.	भ.	कृ.	रो.	मृ.	आ.	पु.	पु.	श्ले.	म.	पू.	उ.	ह.	चि.
८	८	८	१०	१०	११	११	११	१२	१२	१	१	२	२
१०	१०	११	१२	१२	१२	१	१	२	२	३	३	४	४
१२	१२	१३	२	३	२	३	३	४	४	५	५	६	६

रात्रौ सूर्यर्क्षादिषु लग्नेषु जन्म वाच्यम् ।

स्वा.	वि.	अ.	ज्ये.	मू.	पू.	उ.	श्र.	ध.	श.	पू.	उ.	रे.
३	३	४	४	५	५	६	६	७	७	८	८	९
५	५	६	६	७	७	८	८	९	९	१०	१०	११
७	७	८	८	९	९	१०	१०	११	११	१२	१२	१

चन्द्रलग्नाधिपो यत्र तत्त्रिकोणमथोपि वा ।
तत्सप्तमे त्रिकोणे वा संशये लग्ननिर्णयः ॥ १९ ॥

यदि कोई पूछता है कि मेरे घर में आज ही प्रसव की संभावना है तो किस लग्न में होगा । इसके उत्तर में यह है कि सूर्य उस दिन जिस नक्षत्र में हो उसके नीचे के कोष्ठक में जो तीन अंक हैं उन्हीं में प्रसव समझना चाहिए । आगे सत्ताईस नक्षत्रों में दिन रात के आधार पर सारणी दी गई है । जैसे दिन में अश्विनी में सूर्य होने पर मेष या मिथुन या कन्या में और रात्रि समीप उस नक्षत्र में हो तो वृश्चिक या मकर या मीन लग्न में जन्म होता है। उक्त में संशय होने पर प्रश्नाङ्ग में राशीश्वर से त्रिकोणस्थ या सप्तमस्थ लग्न में निर्णय करना चाहिए ॥ १९ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते संग्रहे
वृहद्दैवज्ञरंजने संस्कारोक्तं द्विपञ्चाशत्तमं
सूतिकागृहप्रवेशप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित वृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक ग्रन्थ का सूतिका-घर में प्रवेश करने वाला बावनवाँ प्रकरण समाप्त हुआ है ॥ ५२ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेव चतुर्वेदात्मजमुरलीधर-चतुर्वेद कृता वृहद्दैवज्ञरञ्जनसङ्ग्रहग्रन्थस्य द्विपञ्चाशत्प्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्तिमगात् ॥ ५२ ॥

अथ त्रिपञ्चाशत्तमं जातकर्मप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अथ जातकर्म—

अब आगे त्रेपनवें प्रकरण में जातकर्म संस्कार कब और क्यों करना चाहिये, इसे विविध ग्रन्थों के वाक्य से बताते हैं ।

जातकर्म का प्रयोजन

तत्प्रयोजनं चाह बृहस्पतिः—

अथातः संप्रवक्ष्यामि जातकर्मक्रियां शुभाम् ।
जातस्यारिष्टनाशाय नीरोगित्वाय सर्वदा ।। १ ।।

ऋषि बृहस्पतिजी ने बताया है कि मैं उत्पन्न हुए बालक के अरिष्ट नाश के लिये और सदा रोग रहित रहने के लिये शुभ जातकर्म संस्कार को बताता हूँ ।। १ ।।

दीर्घायुष्यमवाप्त्यै च सर्वसम्पद्विवृद्धये ।
जन्मन्यशुभदोषाणां विनाशाय विशेषतः ।। २ ।।

विशेष कर जातक की दीर्घायु प्राप्ति के लिये तथा समस्त सम्पदाओं की बढ़ती के लिये व जन्म कालीन अशुभता के नाशार्थ जातकर्म का वर्णन करता हूँ ।। २ ।।

जातकर्म का काल

जातमात्रे पिता कुर्यात्पुत्रस्य मुखदर्शनम् ।
स्तनाशनात्पुरो वापि नाभिच्छेदात्पुरोऽथवा ।। ३ ।।

जब पुत्र का जन्म हो जाय तो पिता को बालक के मुख का अवलोकन स्तन पान वा नालच्छेदन से भी पहिले करना चाहिए ।। ३ ।।

जातके दान (ऽतिक्रम ?) विषयवाक्यम्—

एष्वतीतेषु कालेषु शुभयोगे शुभोदये ।
जातकर्मक्रियां कुर्यात्पुत्रायुःश्रीविवृद्धये ।। ४ ।।

जब कि उक्त काल का अतिक्रमण हो जाय तो शुभ योग, शुभ लग्न में पुत्र की आयु व लक्ष्मी वृद्धि के लिये जातकर्म संस्कार करना चाहिए ।। ४ ।।

ग्रहदोषविनाशाय सूतिकाशुभविच्छिदे ।
कुमारग्रहनाशाय पुंसां सत्त्वविवृद्धये ।। ५ ।।

तस्मात्पुत्रस्य रक्षायै कर्तव्यं जातकर्म च ।
देवानां मानुषाणां च चातुर्वर्ण्येषु कीर्तितम् ।। ६ ।।

ग्रहों के दोष शान्त्यर्थ, सूतिका के अशुभ विनाशार्थ, बालारिष्ट शान्त्यर्थ, बलवृद्धि के लिये, पुत्र की रक्षा हेतु जातकर्म करना चाहिए। यह देवताओं और चारों वर्णों के मनुष्यों में होता है ॥ ५-६ ॥

अन्य:—

[1]यस्मिन्मुहूर्ते जनितः कुमारः तस्मिन्विधेयं खलु जातकर्म।
विनिर्गतेवाप्यथ सूतकेपि यस्मिन्दिने तस्य च नामधेयम् ॥ ७ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि जिस मुहूर्त में बालक का जन्म होता है उसी मुहूर्त में जातकर्म करना चाहिये अथवा सूतक की निवृत्ति होने पर नाम करण के साथ करना चाहिये ॥ ७ ॥

[2]संतर्प्य देवान्सपितॄन् द्विजांश्च सुवर्णगोभूतिलकांस्यवस्त्रैः।
गुडाज्यरौप्यैर्लवणैः सहोमै रक्षोघ्नमन्त्रैः सह जातकर्म ॥ ८ ॥

देव व पितरों का तर्पण करके ब्राह्मणों को सोना, गाय, भूमि, तिल, कांसा, वस्त्र, गुड़, घी, चांदी, नमक का दान करना और रक्षोघ्न मन्त्रों से होम के साथ जातकर्म करना चाहिए ॥ ८ ॥

जातके शौचशुद्धिः—

अब आगे बालक उत्पन्न होने पर आशौच की शुद्धि को बताते हैं।

जातमात्रस्य पुत्रस्य मुखमस्यावलोकयेत्।
नान्दीमुखं ततः कुर्यात्पितृणां तुष्टिहेतवे ॥ ९ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि पुत्र के उत्पन्न होने पर पुत्र का मुख उसी समय पिता को देखना चाहिए और पितरों की प्रसन्नता हेतु नान्दी श्राद्ध करना चाहिए ॥ ९ ॥

[3]वसिष्ठः—

जातमात्रकुमारस्य मुखमस्यावलोकयेत्।
पिता ऋणाद् विमुच्येत पुत्रस्य मुखदर्शनात् ॥ १० ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि पुत्र का जन्म जानकर पिता को कुमार का मुख देखता चाहिए। पुत्र का मुख देने से मनुष्य पितरों के ऋण से छुटकारा पा जाता है ॥ १० ॥

नान्दीश्राद्ध की अवश्यकर्तव्यता

कन्यापुत्रविवाहेषु प्रवेशं नववेश्मनः।
नामकर्मणि बालानां चूडाकर्मादिके तथा ॥ ११ ॥
सीमन्तोन्नयने चैव पुत्रादिमुखदर्शने।
नान्दीगणान् पितृगणान् पूजयेत्प्रयतो ग्रहैः ॥ १२ ॥

---

१. व. सं. २६ प्र. १ श्लो.। २. व. सं. २६ प्र. २ श्लो.।
३. ज्यो. नि. १११ पृ. १० श्लो,।

कन्या व पुत्र के विवाह में, नवीन घर के प्रवेश में, बालकों के नामकरण-चूडाकरण सीमन्तोन्नयन और पुत्र के मुख देखने में ग्रहों के साथ नान्दी गण व पितर-समुदाय की प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिए ॥ ११–१२ ॥

पितॄणां रूपमास्थाय देवो ह्यन्नं समश्नुते ।
तस्मात्सव्येन दातव्यं वृद्धिश्राद्धेषु दातृभिः ॥ १३ ॥

क्योंकि पितरों के स्वरूपों का ग्रहण करके देवता अन्नों का ग्रहण करते हैं या यों समझिये कि स्वयं भोजन करते हैं । इसलिये वृद्धिश्राद्धों में सव्य (दायां जनेऊ) करके ही पितरों को दान करना चाहिए ॥ १३ ॥

नान्दीश्राद्ध विधि

दूर्वाबदरैर्मिश्रानपि दधिपिण्डान्मुदायुतः ।
नान्दीमुखेभ्यः पितृभ्यः दद्याद्वै श्रद्धया युतः ॥ १४ ॥

दूर्वा बेर फल के साथ दही के पिण्डों को प्रसन्नता और श्रद्धा के साथ नान्दीमुख पितरों को देना चाहिए ॥ १४ ॥

मातॄणां प्रथमं श्राद्धं पितॄणां तदनन्तरम् ।
ततो मातामहानां च वृद्धिश्राद्धे प्रकीर्तितम् ॥ १५ ॥

पहिले मातृपक्ष को पीछे पितृपक्ष को फिर मातामहादि को वृद्धि श्राद्ध में पिण्डदान करना चाहिए ॥ १५ ॥

सचैल स्नान

[1]जाते पुत्रे पिता स्नानं सचैलं कर्तुमर्हति ।
[2]कुर्यान्नैमित्तिके स्नानं शीताद्भिः काम्य एव च ॥ १६ ॥

पिता को पुत्र के उत्पन्न होने पर सुनने के साथ ही वस्त्रों के सहित स्नान करना चाहिए । नैमित्तिक और काम्य कर्मों में शीतल जल से स्नान करना चाहिए ॥ १६ ॥

वसिष्ठः—

[3]श्रुत्वा जातं पिता पुत्रं सचैलं स्नानमाचरेत् ।
उत्तराभिमुखो भूत्वा नद्यां वा देवखातके ॥ १७ ॥
जातकर्म च कर्तव्यं तस्मिञ्जाते मुहूर्तके ।
दानं देयं च विप्रेभ्यो यदीच्छेदात्मनः शिवम् ॥ १८ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि पुत्रोत्पत्ति को सुनकर पिता को वस्त्रों के साथ उत्तर की तरफ मुख करके नदी में या तालाब में स्नान करके उसी मुहूर्त में जातकर्म करना चाहिए और अपने कल्याण के लिये ब्राह्मणों को दान देना चाहिए ॥ १७–१८ ॥

---

१. ज्यो. नि. २१२ पृ. ६२ श्लो. ।
२. ज्यो. नि. २११ पृ. ७२ श्लो. ।
३. ज्यो. नि. २११ पृ. १० श्लो. ।

रात्रौ यद्दीयते दानं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ।
स्मृत्यंन्तरेऽपि लिखितं व्यासाचार्यमतेन च ।। १९ ।।

व्यासजी के मत और स्मृत्यन्तरों में भी लिखा है कि रात्रि में जो भी दान किया जाता है, वह निष्फल होता है ।। १९ ।।

दाने विधिनिषेधः ।

अब आगे दान कब करना और किस काल में नहीं करना इसे बताते हैं ।

दान का विधान व निषेध

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं दानं त्रिविधसंज्ञकम् ।
ग्रहणोद्वाहसंक्रांतौ यात्रादौ प्रसवेषु च ।। २० ।।
दानं नैमित्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि न दुष्यति ।। २१ ।।

ग्रन्थान्तर में बताया है कि नित्य, नैमित्तिक और काम्य ये दान तीन प्रकार के होते हैं । ग्रहण, विवाह, संक्रान्ति, यात्रा और प्रसव के समय जो दान किया जाता है वह नैमित्तिक (कारण जन्य) होता है । यह नैमित्तिक दान रात में भी करने पर दोष युक्त नहीं होता है ।। २०–२१ ।।

रात्रावुदकादिगमनाशक्तौ विशेषमाह शंखायनः[1]—

दिवा यदाहृतं तोयं कृत्वा स्वर्णयुतं तु तत् ।
रात्रिस्नाने तु संप्राप्ते स्नायादनलसन्निधौ ।। २२ ।।

यदि रात में नदी आदि में स्नान करने की सामर्थ्य न हो तो दिन में लाये हुए जल में सोना गेर कर अग्नि के समीप स्नान करना चाहिए ।। २२ ।।

विशेष नियम बताते हैं ।

वसिष्ठः—

[2]पुत्रजन्मनि यज्ञे च तथा संक्रमणे रवेः ।
राहोश्च दर्शने स्नानं प्रशस्तं नान्यथा निशि ।। २३ ।।

ऋषि वसिष्ठ ने कहा है कि पुत्र जन्म, यज्ञ, सूर्य संक्रान्ति और ग्रहण में रात्रि में भी स्नान करना शुभ होता है । अन्य काल में अशुभ होता है ।। २३ ।।

आशौच सम्बन्धी विचार

प्रजापतिः—

[3]सूतके तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत् ।
कर्तुंस्तात्कालिकी शुद्धिः पूर्वाशौचेन शुद्धयति ।। २४ ।।

---

१. ज्यो. नि. १११ पृ. २१ श्लो. ।
२. ज्यो. नि. १११ पृ. ८२ श्लो. ।
३. ज्यो. नि. १२१ पृ. ९ श्लो. ।

प्रजापति जी ने बताया है कि यदि सूतक में पुत्र जन्म हो तो कर्ता की शुद्धि तत्काल समझना और पहिले सूतकान्त में पूर्ण शुद्धि होती है ॥ २४ ॥

आचतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः ।
अत ऊर्द्ध्वं प्रसूतिः स्याद्दशाहं सूतकं भवेत् ॥ २५ ॥

पहिले मास से चौथे मास तक गर्भस्राव और पाचवें या छठे में गर्भपात कहलाता है। एवं सातवें मास से प्रसूति कहलाती है। इसलिए सात से दस तक प्रसूति होने पर दस दिन का सूतक होता है ॥ २५ ॥

[1]यावन्न छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम् ।
छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते ॥ २६ ॥

जब तक जातक का नालच्छेदन नहीं होता तब तक सूतक की प्राप्ति नहीं होती और नालच्छेदन होने के बाद आशौच की लब्धि होती है ॥ २६ ॥

प्रसूतिशुद्धिदिवसाः—

अब प्रसूति में शुद्धि कितने दिन में होती हैं, इसे ग्रन्थान्तर के वाक्यों से बताते हैं।

अन्यच्च—

अजा गावो महिष्यश्च ब्राह्मणी च प्रसूतिका ।
दशरात्रेण शुद्धयन्ति भूमिस्थं च नवोदकम् ॥ २७ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि बकरी, गाय, भैंस और ब्राह्मण की स्त्री यदि प्रसववती होती है तो वह और भूमिस्थ नवीन जल दस दिन के पश्चात् शुद्ध होता है ॥ २७ ॥

अन्योऽपि—

गावश्च महिषी चैव अजाश्च ब्राह्मणीस्तथा ।
दशाहेनैव शुद्धयन्ति प्रसूतिःस्याद्यदा तदा ॥

और भी ग्रन्थान्तर में बताया है कि जब गाय, भैंस, बकरी और ब्राह्मणी बच्चा पैदा करती हैं तो दस दिन के अनन्तर ही शुद्ध होती है ॥ २८ ॥

जाबालिः—

दशरात्रेण शुद्धयन्ति प्रसूतिः स्याच्च ब्राह्मणी ।
अजागोमहिषोश्चैव तथैव मुनिरब्रवीत् ॥ २९ ॥

ऋषि जाबालि ने कहा है ब्राह्मणी, बकरी, गाय, भैंस प्रसूतिका होने पर दस दिन के बाद शुद्ध होती है ॥ २९ ॥

अब आगे पुत्रोत्पत्ति के पश्चात् क्या करना चाहिए, इसे वसिष्ठ के वाक्य से बताते हैं।

---

१. मु. चि. ५ पृ. २१ श्लो. पी. टी. ।

पुत्रोत्पत्ति के बाद के कार्य

अथजातकानन्तरं कर्तव्यमाह वसिष्ठः—

दत्वा गोभूहिरण्यादि ततो लग्नं निरीक्षयेत् ।
लग्नमेव प्रशंसंति ज्योतिःशास्त्रविदो जनाः ॥ ३० ॥
अरिक्तपाणिर्दैवज्ञाच्छृणुयात्पुत्रजन्मनि ॥ ३१ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि पुत्रोत्पत्ति के बाद गाय, भूमि, सुवर्ण का दान

श्रीकाश्यां लग्नसारणीयम् ।

०	श्री	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	१६	२७	२८	२९
०		२	२	३	३	३	३	३	३	३	३	४	४	४	४	४	४	४	५	५	५	५	५	५	५	६	६	६	६	६	६
७	०	४८	५५	२	१०	१७	२५	३२	३९	४८	५६	४	१३	२१	३०	३८	४७	५५	३	१२	२०	२९	३७	४६	५४	२	११	१९	२८	३६	४५
२२		१२	३४	५६	१८	४०	२	२४	४६	१	२७	५३	१९	४५	११	३७	३	२९	५५	२१	४७	१३	३९	५	३१	५७	२३	४९	१५	४१	७
०		६	७	७	७	७	७	७	७	८	८	८	८	८	८	९	९	९	९	९	९	१०	१०	१०	१०	१०	१०	११	११	११	११
८	१	५३	१	१०	१८	२०	३५	४४	५१	२	१२	२२	३२	४२	५३	३	१३	२३	३३	४३	५३	४	१४	२४	३४	४४	५४	४	१५	२५	३५
२६		३३	५९	२५	५१	१७	४३	९	३५	२६	३४	४२	५०	५८	६	१४	२२	३०	३८	४६	५४	२	१०	१८	२६	३४	४२	५०	५८	६	१४
०		११	११	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१३	१३	१३	१३	१३	१४	१४	१४	१४	१४	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१६	१६	१६	१६	१६	१७
१०	२	४५	५५	५	१५	२५	३६	४६	५६	७	१८	३०	४१	५३	४	१५	२७	३८	५०	१	१२	२४	३५	४७	५८	९	२१	३२	४४	५५	६
८		२२	३०	३८	४६	५४	२	१०	१८	२२	५३	१७	४१	५	२९	५३	१७	४१	५	२९	५३	१७	४१	५	२९	५३	१७	४१	५	२९	५३
०		१७	१७	१७	१७	१८	१८	१८	१८	१८	१९	१९	१९	१९	१९	१९	२०	२०	२०	२०	२०	२१	२१	२१	२१	२१	२२	२२	२२	२२	२२
११	३	१८	२९	४१	५२	३	१५	२६	३८	४२	१	१२	२४	३५	४७	५८	१०	२१	३३	४४	५६	७	१९	३०	४२	५३	५	१६	२८	३९	५१
२४		१७	४१	५	२९	५३	१७	४१	५	३४	४	३४	४	३४	४	३४	४	३४	४	३४	४	३४	४	३४	४	३४	४	३४	४	३४	४
०		२३	२३	२३	२३	२३	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२५	२५	२५	२५	२५	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२७	२७	२७	२७	२७	२८	२८	२८
११	४	२	१४	२५	३७	४८	०	११	२३	३४	४५	५६	७	१८	३०	४१	५२	३	१४	२५	३७	४८	५९	१०	२१	३२	४४	५५	६	१७	२८
३०		३४	४	३४	४	३४	४	३४	४	१७	२७	३७	४७	५७	७	१७	२७	३७	४७	५७	७	१७	२७	३७	४७	५७	७	१७	२७	३७	४७
०		२८	२८	२९	२९	२९	२९	२९	२९	३०	३०	३०	३०	३०	३१	३१	३१	३१	३१	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३३	३३	३३	३३	३३	३४
११	५	३९	५१	२	१३	२४	३५	४६	५८	९	२०	३१	४२	५३	५	१६	२७	३८	४९	०	१२	२३	३४	४५	५६	७	१९	३०	३१	५२	३
१०		४७	७	१७	२७	३७	४७	५७	७	१७	२७	३७	४७	५७	७	१७	२७	३७	४७	५७	७	१७	२७	३७	४७	५७	७	१७	२७	३७	४७
०		३४	३४	३४	३४	३४	३५	३५	३५	३५	३५	३६	३६	३६	३६	३६	३७	३७	३७	३७	३७	३८	३८	३८	३८	३८	३९	३९	३९	३९	३९
११	६	१४	२६	३७	४८	५९	१०	२१	३३	४४	५६	७	१९	३०	४२	५३	५	१६	२८	३९	५१	२	१४	२५	३७	४८	०	११	२३	३४	४६
१८		५७	७	१७	२७	३७	४७	५७	७	३५	५	३५	५	३४	४	३४	४	३५	५	३४	४	३४	५	३५	५	३५	५	३५	५	३४	५

श्रीकाश्यां लग्नसारणीयम् ।

०		३९	४०	४०	४०	४०	४०	४१	४१	४१	४१	४१	४२	४२	४२	४२	४२	४३	४३	४३	४३	४३	४३	४४	४४	४४	४४	४४	४५	४५	४५
११	७	५७	९	२०	१२	४३	५५	६	१८	२९	४०	५२	३	१५	२६	३७	४९	०	१२	२३	३४	४६	५७	९	२०	३१	४३	५४	६	१७	२८
३०		३९	४	३४	४	३४	४	३९	४	२९	५३	१७	४१	५	२९	५३	१७	४१	५	२९	५३	१७	४१	५	२९	५३	१७	४१	५	२२	५३
०		४५	४५	४६	४६	४६	४६	४६	४७	४७	४७	४७	४७	४७	४८	४८	४८	४८	४८	४८	४९	४९	४९	४९	४९	४९	५०	५०	५०	५०	५०
११	८	४०	५१	३	१४	२५	३७	४८	०	१०	२०	३०	४०	५०	१	११	२१	३१	४१	५१	१	१२	२२	३२	४२	५२	२	१२	२२	३३	४३
२४		१७	४१	५	२९	५३	१७	४१	५	२६	३४	४२	५०	५८	६	१४	२२	३०	३८	४६	५४	२	१०	१८	२६	३४	४२	५०	५८	६	१४
०		५०	५१	५१	११	५१	५१	५१	५२	५२	१२	५२	५२	५२	५३	५३	५३	५३	५३	५३	५३	५३	५४	५४	५४	५४	५४	५४	५४	५५	५५
१०	९	५३	३	१३	२३	३३	४४	५४	४	१३	२१	२२	३८	४६	५५	३	१२	२०	२८	३७	४५	५४	२	११	१२	२७	३६	४४	५३	१	१०
८		२२	३०	३८	४६	५४	२	१०	१८	१	२७	५३	१९	४५	११	३७	३	२९	५५	२१	४७	१३	३९	५	३१	५७	२३	४९	१५	४१	७
०		५५	५५	५५	५५	५५	५६	५६	५६	५६	५६	५६	५६	५६	५७	५७	५७	५७	५७	५७	५७	५७	५८	५८	५८	५८	५८	५८	५८	५८	५८
८	१०	१८	२६	३५	४३	५२	०	९	१७	२५	३२	३२	४७	५४	१	९	१६	२४	३१	३८	४६	५३	०	८	१५	२३	३०	३७	४५	५२	५२
२६		३३	२९	२५	५१	१७	४३	९	३५	८	३०	५२	१४	३६	५८	२०	४२	४	२६	४८	१०	३२	५४	१६	३८	०	२२	४४	६	२८	५०
०		५९	५९	५९	५९	५९	५९	५९	५९	०	०	०	०	०	०	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१	२	२	२	२	२	२
७	११	७	१४	२१	२९	३६	४४	५१	५८	५	१३	२०	२८	३५	४२	५०	५७	५	१२	१२	२७	३४	४१	४९	५६	४	११	१८	२६	३३	४०
२२		१२	३४	५३	१८	४०	२	२४	४६	८	३०	५२	१४	३६	५८	२०	४२	४	२६	४८	१०	३२	५४	१६	३८	०	२२	४४	६	२८	५०

करके लग्न को देखना चाहिये । क्योंकि ज्योतिष शास्त्र जानने वाले लग्न की ही प्रशंसा करते हैं ॥ ३० ॥

पुत्र के जन्म में हाथ में फल, पुष्प, दक्षिणा लेकर ज्योतिषी को भेंट करके उसके ग्रहों का फल सुनना चाहिये ॥ ३१ ॥

ऊपर लिखी हुई सारणी से लग्न का ज्ञान

यत्सूर्यराश्यंशसमानकोष्ठे घटयादिकं स्वेष्टघटीयुतं तत् ।
तत्तुल्यघटयादि भवेद्धि यत्र तत्तिर्यगूर्ध्वांकमितं हि लग्नम् ॥ ३२ ॥

अपने जन्मकालीन सूर्य के राशि अंश तुल्य कोष्टक में लिखे हुए घट्यादि फल में अपने इष्ट को जोड़ कर सारणी में इस योग तुल्य अंक को देख कर लग्न के राशि अंश समझना चाहिये ॥ ३२ ॥

[1]लग्नवीर्यं विना यत्र यत्कर्म्म क्रियते बुधैः।
तत्फलं विलयं याति ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥ ३३ ॥

लग्न बल के विना जो कार्य किया जाता है उसके फल का नाश होता है जैसे गर्मी के समय क्षुद्र नदियों में पानी का अभाव होता है ॥ ३३ ॥

[2]न तिथिर्न च नक्षत्रं न योगं नैन्दवं बलम्।
लग्नमेकं प्रशंसन्ति गर्गनारदकश्यपाः ॥ ३४ ॥

तिथि, नक्षत्र, योग और चन्द्रमा के बल की प्रशंसा गर्ग-नारद-कश्यप ऋषि नहीं करते हैं, किन्तु केवल बली लग्न की ही प्रशंसा करते हैं ॥ ३४ ॥

बली लग्न का ज्ञान

स्वामिना बलिना दृष्टः सबलैश्च शुभग्रहैः।
न दृष्टो न युतः पापैः सलग्नः सबलः स्मृतः ॥ ३५ ॥

अपने बली स्वामी से दृष्ट और सबल शुभ ग्रह के होने पर तथा पाप ग्रह से अदृष्ट व अयुक्त होने पर लग्न बलवान् होता है ॥ ३५ ॥

अथ षष्ठे दिवसे षष्ठीपूजनम्।

अब आगे छठे दिन षष्ठी देवी की पूजा करनी चाहिये, इसे बताते हैं।

[3]मुहूर्तगणपतौ—
जन्मतः पंचमे घस्रे जीवन्त्याः पूजनं निशि।
षष्ठेऽह्नि षष्ठिका पूज्या गीतैर्जागरणादिभिः ॥ ३६ ॥
रात्रौ जागरणं कुर्याज्जन्मदानां तथा बलिः।
पुरुषाः शस्त्रहस्ताश्च नृत्यगीतैश्च योषितः ॥ ३७ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है कि जन्म से पाँचवें दिन जीवन्ती देवी का और छठे दिन षष्ठिका देवी का पूजन करके गीतों के साथ रात में जागरण करना और बलि देना चाहिए। उस जागरण में पुरुषों को हाथों में शस्त्र धारण और स्त्रियों को नाच गाना करना चाहिए ॥ ३६–३७ ॥

गौरीपुत्रो यथा स्कन्दः शिशुत्वे रक्षितः पुरा।
तथा ममाप्ययं बालः षष्ठिके रक्ष ते नमः ॥ ३८ ॥

---

१. ज्यो. नि. ६१ पृ० १७ श्लो०। २. ज्यो. नि. ६१ पृ० १६ श्लो०।
३. प्र. १४ श्लो. ४२ श्लो.।

हे षष्ठिका देवी, पूजा के अनन्तर जैसे आपने पार्वती के पुत्र कार्तिकेय की बाल-काल में रक्षा की थी, उसी प्रकार मेरे भी बालक की रक्षा करना। तुम्हें प्रणाम है, ऐसा कहना चाहिए ॥ ३८ ॥

प्राणपद साधन

लग्ननिश्चयार्थं प्राणपदम् —

अब आगे लग्न निर्णय के लिए प्राणपद साधन को बताते हैं।

स्वस्ति संवत् १९५४ शके १८१९ ज्येष्ठशुक्लपौर्णिमायां चन्द्रवासरे ५३।२४ ज्येष्ठानक्षत्रे ४६।५९ साध्ययोगे १४।५० बालवकरणे सूर्योदयादिष्टं ५४।४१ मेषलग्नोदये रुद्रप्रसादस्य जन्मासीत्। तत्र सूर्यः २।१।३४।५५ लग्नं १।२८ अथात्र प्राणपदे चन्द्रचन्द्रेशानामन्यतमस्य स्थानात्। जन्मांगस्य शुद्धिज्ञानमाह।

अब आगे लग्न निर्णय के लिये या यों समझिये कि यह लग्न शुद्ध है, इसी में जन्म हुआ है, इस निश्चय के लिये प्राणपद साधन को बताते हैं।

संवत् १९५४ शक १८१९ जेठ सुदी पूनम सोमवार ५३ घ० २४ प० ज्येष्ठा नक्षत्र ४६।५९ साध्य योग १४।५० बालवकरण में सूर्योदय से ५४ घ० ४१ पल पर मेष लग्न में रुद्रप्रसाद का जन्म हुआ था। उस समय स्पष्ट सूर्य २ रा० १ अं० ३४ क० ५५ वि० और लग्न १ रा० २८ अंश थी।

अब आगे प्राण पद साधन में चन्द्र या चन्द्रस्वामी के स्थान से जन्म लग्न की शुद्धि के विषय में बताते हैं।

प्राणपद साधनार्थं उदाहरण

लग्नं क्रमात् सार्द्धघटीद्वयं स्यान्मेषादिनेशस्थितकोणभानाम्।
राशीश्वरात्प्राणपदं क्रमेण घटीचतुर्थांशमुशन्ति तज्ज्ञाः ॥ ३९ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि ढाई घटी के क्रम से मेषादि से सूर्य की संस्थिति से अर्थात् चर, स्थिर, द्विस्वभाव स्थिति से या यों समझिये चर में उसी से, स्थिर में नवीं और द्विस्वभाव में होने पर पाँचवीं राशि से समझना चाहिये। राशीश्वर से १५, १५ पल का १ प्राणपद होता है ॥ ३९ ॥

प्राणपद का साधन

[1]घटी चतुर्गुणा कार्या तिथ्याप्तैश्च पलैर्युता।
दिवाकरेणापहृतं शेषं प्राणपदं स्मृतम् ॥ ४० ॥

जिसका लग्न निर्णय करना हो तो इष्ट घटी को चार से गुणा करके गुणनफल में, पन्द्रह से विभाजित पलों की लब्धि को जोड़ देने पर यदि १२ बारह से अधिक हो तो बारह का भाग देकर शेष को प्राणपद समझना चाहिये ॥ ४० ॥

१. बृ. पा. हृ. शा. अ. १७

शेषां पलां तद्द्विगुणी विधाय राश्यंशसूर्यर्क्षनियोजिताय ।
तत्रापि तद्राशिचराक्रमेण लग्नांशप्राणांशपदैक्यता स्यात् ।४१ ।।

पलों में पन्द्रह का भाग देने से जो शेष अवशिष्ट है, उसे दुगुना करके अंश समझना चाहिये । उक्त राशि व अंशों को सूर्य की चरादि स्थिति वश सूर्य में जोड़ने से जो अंश प्राप्त होते हैं वही राश्यादि स्पष्ट प्राणपद होता है ।। ४१ ।।

[1]अन्यच्च—

प्रकारान्तर से प्राणपद का साधन

स्वेष्टकालं पलीकृत्य तिथ्याप्तं भादिकं च यत् ।
चरागद्विभगे भानौ योज्यं स्वे नवमे सुते ।। ४२ ।।
स्फुटं प्राणपदं तस्मात्पूर्ववच्छोधयेत्तनुः ।। ४३ ।।

ग्रन्थान्तर में बताया है कि इष्टकाल की घटियों के पल बनाकर पलों में जोड़ने से जो संख्या हो उसमें १५ का भाग देने से राश्यादिक लब्धि को चर, स्थिर, द्विस्वभाव राशिस्थ सूर्यवंश, सूर्य में, नवम या पाँचवीं राशि में जोड़ने से स्पष्ट प्राणपद होता है ।। ४२ ।।

इस स्पष्ट प्राणपद को पहिले की तरह शोधन करना चाहिये ।। ४३ ।।

उदाहरणम्—

इष्टघटी ५४ चतुर्गुणितं २१६ पलेषु ४१ पंचदशभक्ते लब्धं २ युतं २१८।११ द्वादशभक्ते शेषं २।११ अत्र द्विस्वभावस्थिते भानौ तेन सूर्यात्सुते चरराशौ तुला तद्युते जातं ९।११ तस्माद्धनुराशौ प्राणपदं स्यादतः जन्मकाले मेषलग्नं सिद्धम्।

२ बु. | १२
सू. ३ | १ शु. | ११
के. ४ मं. | १० रा.
५ बृ. | ७ | ९ प्रा. चं.
६ | ८ श.

उक्त उदाहरण में—इष्ट घटी ५४।४१ पल है ∴ ५४×४=११६ । पल ४१÷१५=ल० २ शेष ११ । ∴ २१६+२=२१८÷१२=शेष २।११ ।

अथवा—इष्टकाल के पल=५४×६०=३२४०+४१=३२८१÷१५=२१८।११÷१२ २।११ पूर्ववत् लब्धि प्राप्त हुई ।

१. वृ. पा. गृ. सा. २० श्लो० ।

उदाहरण की कुण्डली में सूर्य द्विस्वभाव राशि में है। इसलिये सूर्य से पञ्चम राशि तुला जोड़ने से ९।११ हुआ। इससे ज्ञात हुआ कि धनु राशि में प्राणपद होने से मेष लग्न में जन्म शुद्ध है ॥

प्राणत्रिकोणे प्रवदन्ति लग्नं तदेवमाद्यान्वितराशिकोणे।
शशाङ्कसंयुक्तभकोणराशौ तदंशकात्तन्मदकोणभे वा ॥ ४४ ॥

प्राणपद से पाँचवें या नवें स्थान में लग्न होता है ऐसा उस शास्त्र के जानने वाले कहते हैं। और लग्न से प्राणपद भी त्रिकोण में होना चाहिये ॥

अथवा चन्द्र से त्रिकोण में या चन्द्र नवांश से सातवें या पञ्चम या नवम में प्राणपद होता है ॥ ४४ ॥

लग्ने बले मान्दिवशाद्विलग्नं चन्द्रे बले चन्द्रवशाद्विलग्नम्।
प्रश्नेपि तज्जन्मसमानकाले लग्नस्य निश्चायकमत्र तज्ज्ञाः ॥ ४५ ॥

लग्न बली हो तो मान्दि से और चन्द्र बलवान् हो तो चन्द्रमा से और प्रश्न में भी उक्त प्रकार से ही विद्वान् लोग लग्न का विचार करते हैं ॥ ४५ ॥

द्वयोर्हीनबलेप्येवं गुलिकात्परिचिन्तयेत्।
विना प्राणपदाच्छुद्धो गुलिकाद्वा निशाकरात् ॥ ११ ।
तदशुद्धं विजानीयात्स्थावराणां तदैव हि ॥ ४६ ॥

और लग्न व चन्द्रमा दोनों बल से हीन हों तो गुलिक से चिन्तन करना चाहिए। क्योंकि लग्न प्राणपद, गुलिक या चन्द्रमा से विना शुद्धि प्राप्ति किये शुद्ध नहीं होता है। अर्थात् इनकी शुद्धि के विना अशुद्ध लग्न होता है। वही स्थावरों के विषय में समझना चाहिए ॥ ४६ ॥

अन्य प्रकार से

अन्यच्च—
चन्द्रलग्नाधिपो यत्र तत्त्रिकोणमथापि वा।
तत्सप्तमे त्रिकोणे वा संशये लग्ननिर्णयः ॥ ४७ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि चन्द्रमा की राशि का स्वामी जहाँ जिस राशि में हो उसमें वा उससे त्रिकोण (५।९) में जन्म लग्न होता है। अथवा जन्म राशीश से सप्तम या सप्तम से त्रिकोण में जन्म लग्न होता है ॥ ४७ ॥

गुलिक साधन

अथ गुलिकसाधनम्—

चन्द्र २६ रुद्र २२ जय १८ वैद्य १४ नया १० तो ६ नाखु २ नाडिनिहताद्दिनमानात्।
नाग ३० लब्धिमितमान्दिघटी स्याल्लग्नवत्स्फुटगुलिक हायने ॥ ४८ ॥

सूर्यादि वार क्रम से २६।२२।१८।१४।१०।६।२ ये गुलिक साधन के लिये गुणक होते हैं। जैसे सूर्य वार में २६, सोम में २२ आदि। अभीष्ट दिन में उस दिन के दिन-

मान को अभीष्ट गुणक से गुणा कर ३० तीस का भाग देने से लब्धि गुलिक की घटी होती हैं। इस इष्टमान से लग्न की रीति से लग्न स्पष्ट करने पर गुलिक लग्न होता है ॥ ४८ ॥

स्फुटगुलिकनाडिकाभिस्तत्कालार्केण सायनेनापि ।
लग्नवदानेतव्यो राश्यंशकादिरूपको गुलिकः ॥ ४९ ॥

स्पष्ट गुलिक की घड़ियों से तात्कालिक सायन सूर्य बनाकर लग्न की तरह क्रिया करके राशि अंश कलादि का आनयन करना चाहिये ॥ ४९ ॥

चन्द्ररुद्रेत्यादि एतन्नाडिकादिनमानात्ताडितां त्रिंशल्लब्धेन मान्दिवटिका आयाति । तद्घटिस्थलग्नानीतं तद्गुलिकः स्यात् ।

इसका अर्थ श्लोक ४८ देखें ।

उदाहरणम् —

संवत् १९५४ ज्येष्ठ शुक्ल १५ सोमे इष्टं ५४।४१ तत्कालार्कः २।१।३४।५५। अयनांशाः सोमवार ध्रुवा २२ दिनमानं ३४।३ अनेन गुणिते जातं ७४९।६ त्रिंशद्भक्ते लब्धं २४।५८।१२ जातं मान्दघटी अत्र स्पष्टः सूर्यः । अनेनानीतमान्द-घट्यां लग्नम् । स एव गुलिकः ।

उदाहरण संवत् १९५४ ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा सोमवार इष्ट ५४।४१ तात्कालिक सूर्य सायन २।१।३४।५५ ।

सोमवार की ध्रुवा २२ से दिन मान को गुणने पर ३४।३ × २२ ७४९।६ ÷ ३०= २४।५८।१२ गुलिक घट्यादि । इससे तात्कालिक सूर्य बनाकर लग्नवत् लग्न का आनयन करने से वही गुलिक लग्न होता है ।

प्रसव काल में सहायक स्त्रियों का ज्ञान

अथोपसूतिकादिज्ञानम् —

मीनाजलग्ने खलु पक्षसंख्या वृषे घटे वेदकुलीरलग्ने ।
चापैणगे बाणमिताश्च शेषे शिवाक्षसंख्या उपसूतिकायाः ॥ ५० ॥

यदि मीन या मेष लग्न हो तो दो-दो स्त्री, वृष, कुम्भ, कर्क में चार ४, धनु, मकर में पाँच ५ और शेष राशियों में तीन ३ सहायक स्त्री समझना चाहिये ॥ ५० ॥

[1]शशिलग्नान्तरसंस्था ग्रहतुल्याः सूतिकाश्च वक्तव्याः ।
उदगर्द्धेऽभ्यंतरगा बाह्या चक्रस्य दृश्यार्द्धे ॥ ५१ ॥

चन्द्रमा व लग्न के बीच में जितने ग्रह हों उतनी स्त्री समझनी चाहिए । उनमें जितने ग्रह दृश्य चक्रार्ध में हों उतनी स्त्री बाहर और अदृश्य चक्रस्थ ग्रह तुल्य स्त्री भीतर सहायक समझना चाहिए ॥ ५१ ॥

---

१. ल. ज. ६ अ. १२ श्लो० ।

पापग्रहास्तु विधवा सधवा सौम्यखेचराः ।
बुधचन्द्रौ कुमारी स्याद्गुरुसूर्यौ प्रसूतिका ॥ ५२ ॥

उन ग्रहों में जितने पापग्रह हों उतनी विधवा और शुभग्रह के तुल्य सधवा तथा बुध चन्द्र से कुमारी व गुरु सूर्य से बच्चे वाली समझना चाहिए ॥ ५२ ॥

अन्यग्रहेषु वृद्धा स्याल्लग्नं सम्यग्विचारयेत् ।
वर्गोत्तमे स्वराशौ स्वद्रेष्काणनवांशके द्विगुणम् ॥ ५३ ॥

अन्य ग्रहों से बूढी स्त्री हों अतः लग्न का अच्छी तरह से विचार करना चाहिए । वर्गोत्तम, अपनी राशि, अपने द्रेष्काण और अपने नवांश में द्विगुणित जानना चाहिए ॥ ५३ ॥

पुनः प्रकारान्तर से

मीने मेषे तथाप्येकां चत्वारि वृषकुंभयोः ।
अन्यलग्ने भवेत्त्रीणि बाणं च धनुकर्कयोः ॥ ५४ ॥

यदि मीन या मेष लग्न हो तो १ एक, वृष या कुम्भ में चार ४, धनु कर्क में पाँच ५ और शेष लग्नों में तीन उपसूतिका होती हैं ॥ ५४ ॥

पूर्वादिशिर जन्म ज्ञान

मेषे चापमृगेन्द्रयोर्यदि शिशुः प्राचीशिरो जायते
गोकन्यामकरेषु दक्षिणशिरा जातो भवेन्निश्चितम् ।
मीने वृश्चिककर्किणोर्यदि तदा कौवेरमूर्द्धा भवेत्
कुंभाख्ये घटयुग्मके यदि ततः पश्चान्मुखः शोभनः ॥ ५५ ॥

जबकि मेष या धनु या सिंह लग्न में शिशु का जन्म होता है तो पूर्वशिर किये हुए, वृष, कन्या, मकर में दक्षिण शिर, मीन, वृश्चिक, कर्क में उत्तर और मिथुन, तुला, कुम्भ में पश्चिम शिर किये हुए जन्म होता है ॥ ५५ ॥

बालक के रुदन का ज्ञान

मेषत्रिपंचाननचापलग्ने विस्मृत्य सर्वं बहु रोदति स्म ।
अल्पं घटे स्त्रीवणिजे परेषु रुदंति नो ज्ञानबलस्य सत्वात् ॥ ५६ ॥

मेष, वृष, मिथुन, सिंह, धनु लग्न में बालक सबका स्मरण त्याग कर खूब रोता है और कन्या, तुला, कुम्भ में अल्प एवं अन्य लग्नों में ज्ञान होने से नहीं रोता है ॥ ५६ ॥

सूतिका के घर में दीपक का ज्ञान

मेषे वृषे यदा भानुः प्राच्यां दीपः प्रवर्तते ।
मिथुने च यदा सूर्यः अग्निकोणे प्रदीपकः ॥ ५७ ॥
कर्के सिंहे यदा सूर्यो दक्षिणस्यां प्रदीपकः ।
कन्यायां च यदा सूर्यो दीपो नैर्ऋतकोणगः ॥ ५८ ॥

तुले च वृश्चिके सूर्ये पश्चिमायां तु दीपकः।
धने वायव्यकोणे च मृगे कुंभे तथोत्तरे ॥ ५९ ॥
मीने चैव यदा सूर्यः पृथिव्यां दीपमेव च ॥ ६० ॥

यदि जन्म में सूर्य मेष या वृष में हो तो पूर्व में दीपक, मिथुन में अग्निकोण में, कर्क या सिंह में होने पर दक्षिण में, कन्या में नैर्ऋत्य कोण में, तुला, वृश्चिक में पश्चिम में, धनु में वायव्य में; मकर, कुम्भ में उत्तर में और मीन में सूर्य होने पर दीपक भूमि में होता है ॥ ५७–६० ॥

दीपक के तेल व बाती का ज्ञान

पूर्णं तैलं दीपके पूर्वदृक्के मध्येऽर्धं स्यात्तत्त्रिभागं तृतीये।
वर्तिर्लग्नात्तद्वदेवं प्रकल्प्यं वाच्यं सम्यग्बुद्धिमद्भिः स्वबुद्धया ॥ ६१ ॥

यदि लग्न में पहिला द्रेष्काण हो तो तेल पूर्ण, दूसरा हो तो आधा और तीसरा हो तो तीसरा हिस्सा तेल का होता है। इसी प्रकार लग्न से बाती का ज्ञान भी बुद्धिमानों को करना चाहिए ॥ ६१ ॥

खट्वांगे स्याद्भास्करो यत्र तत्र वाच्यो दीपश्चालितं चंचलर्क्षे।
वारं वारं द्वयंगभे चैकवारं तत्रस्थो वै स्यात्स्थिरर्क्षे प्रदीपः ॥ ६२ ॥

शय्या में जहाँ जिस दिशा में सूर्य हो वहाँ दीपक समझना और चर में चञ्चल, स्थिर में स्थिर और द्विस्वभाव में वार २ इधर से उधर दीपक को समझना चाहिए ॥ ६२ ॥

चरलग्नेषु हस्ते च स्थिरे स्थानस्थिते स्मृता।
द्विस्वभावे प्रचलिता नात्र कार्या विचारणा ॥ ६३ ॥

चर लग्नों में हाथ में, स्थिर में किसी स्थान में स्थित और द्विस्वभाव लग्नों में इधर से उधर होता है, इसमें संदेह नहीं करना चाहिए ॥ ६३ ॥

सूतिका के वस्त्र का वर्ण

अरुणधवलप्राचोपाटलो तोयदाभं रजनिधवलयुक्तो चित्रवर्णोऽथ कृष्णः।
कनकग्जनिवर्णं कर्बुरो बभ्रु स्वच्छः क्रियत इह सुवाच्यं चांबरं सूतिकायाः ॥६४॥

मेष में लाल, वृष में सफेद, मिथुन में शुभ्र, कर्क में जल सदृश, सिंह में काला, कन्या में सफेद, तुला में विचित्र, वृश्चिक में काला, धनु में सुवर्ण के तुल्य, मकर में काला, कुम्भ में चित्रित और मीन में सफेद वस्त्र सूतिका का कहना चाहिए ॥ ६४ ॥

प्रकारान्तर से वस्त्र ज्ञान

मातृवस्त्रं वदेत्तत्र वा विलग्ननवांशपात्।
तुर्येशवशतो वाच्यं सूतेः प्राङ्मातृभोजनम् ॥ ६५ ॥

जातक की लग्न के नवांश पति से माता के वस्त्र का ज्ञान करना तथा चतुर्थेश से सूति से पहिले किये हुए भोजन का ज्ञान करना चाहिए ॥ ६५ ॥

आहार ज्ञान

कठिनं मधुरं रूक्षं लेह्यपेयादिकं मृदुः ।
शोषणाम्लगुडं दुग्धं विचित्रं स्वल्पभोजनम् ।। ६६ ।।
वटकाद्यं बहुरसं पेयादिमधुरं हिमम् ।
क्रोधादिना कदन्नं स्यात् सूर्यादिः श्लोकपादतः ।। ६७ ।।

सूर्य नवांश पति हो तो कठिन, मधुर, रूक्ष, चन्द्र हो तो लेह्य, पेय, सरल, भौम हो तो शोषण, खट्टा, गुड, बुध हो तो दुग्ध (रस) विचित्र, अल्प, गुरु हो तो वटकादि, बहुरस, शुक्र हो तो पेय आदि मीठा, ठंडा और शनि हो तो क्रोध से बुरा अन्न भोजन किया है, यह जानना चाहिए ।। ६६–६७ ।।

प्रकारान्तर से

यावत्संख्या ग्रहाणां च चतुर्थदशमे गृहे ।
दृष्टिः स्यात्तावता ज्ञेया चूडिकावर्णमादिशेत् ।। ६८ ।।

जितने ग्रहों की दृष्टि चौथे, दशवें स्थान में हो उतनी संख्या तुल्य उण्सूतिका होती है या चूड़ियों में रंग होते हैं ।। ६८ ।।

सुख या कष्ट प्रसव ज्ञान

शुभग्रहैः खबन्धुगैः सुखेन संयुतः समः ।
सुताङ्कसप्तमस्थितैरमद्ग्रहैस्तु कष्टतः ।। ६९ ।।

जबकि लग्न चक्र में दशम व चौथे में शुभग्रह होता है तो सुख से सन्तान उत्पन्न होती है और पाँचवें, नवें, सातवें पाप ग्रह हो तो कष्ट से प्रसव होता है ।। ६९ ।।

यथा राहुस्तथा शय्या भौमे खट्वाङ्गभङ्गता ।
रविस्थाने भवेद्दीपः शनिस्थाने तु नालकम् ।। ७० ।।

जिस स्थिति में राहु हो वैसी खाट और जहाँ मंगल हो वहाँ भग्नता व सूर्य स्थान में दीपक तथा शनि स्थान में नाल समझना चाहिये ।। ७० ।।

अथ जातकप्रसङ्गेन गण्डान्तादिविचारः[1]—

अब आगे जातक के प्रसङ्गवश गण्डान्त के लक्षण को बताते हैं ।

त्रिविध गण्डान्त

गण्डान्तस्त्रिविधस्त्याज्यो नक्षत्रतिथिलग्नतः ।
नवपञ्च चतुर्थ्यान्ते द्व्येकार्द्धघटिका मताः ।। ७१ ।।

नक्षत्र, तिथि व लग्न इन तीनों गण्डान्त का त्याग करना । नक्षत्रों में नौ २ के अन्त में २ घटी, तिथि में पाँचवीं २ के बाद १ घटी और लग्न गण्डान्त में चौथी २ के अन्तिम वाली आधी घटी का त्याग करना चाहिये ।। ७१ ।।

---

१. मु० चि० ५ प्र० ५ श्लो० पी० टी० ।

[1]अश्विनीमघमूलादौ त्रिवेदनवनाडिका।
रेवतीसर्पशक्रान्ते मासरुद्ररसस्तथा ॥ ७२ ॥

अश्विनी, मघा, मूल नक्षत्र की तीसरी, चौथी व नवीं आदि की घटी का, रेवती, आश्लेषा ज्येष्ठा नक्षत्र की अन्तिम १।११।६ घटियों का त्याग करना चाहिये ॥ ७२ ॥

वसिष्ठः—

भुजङ्गपित्र्योरथ चेन्द्रमूलयोः पौष्णाश्वयोश्चापि यदन्तरालम्।
नाडीचतुष्कं खलु गण्डसंज्ञं तत्रोद्भवं पुत्रमपि त्यजेच्च ॥७३॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि श्लेषा-मघा, ज्येष्ठा-मूल और रेवती अश्विनी के मध्यभाग की चार घटी तक गण्डान्त होता है। इस समय में पुत्र भी यदि पैदा हो तो उसका त्याग करना चाहिये ॥ ७३ ॥

अन्यः—

गण्डान्त्याहिपुरन्दरे द्विघटिकाः प्रान्त्ये मघामूलयो-
र्दस्राद्येपि च कर्कटे अलिभवे मीनेर्द्धदण्डोन्त्यके।
पञ्चम्यां दशमीदिने शशितिथौष्वन्ते च दण्डात्मको
यात्रायां जनने तथा परिणये त्याज्यः सदा सूरिभिः ॥ ७४ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि श्लेषा, ज्येष्ठा की अन्तिम दो घटी, मघा, मूल, अश्विनी की आदि की दो घटी, कर्क, वृश्चिक, मीन राशि की अन्तिमवाली आधी घटी में, पंचमी, दशमी, चौदस तिथि के अन्त में एक घटी गण्डान्त होता है। इसका जन्म, यात्रा और विवाह में सर्वदा त्याग करना चाहिए ॥ ७४ ॥

गण्डान्त में जन्म का फल

गर्गः—

[2]नाक्षत्रं मातरं हन्ति तिथिजं पितरं तथा।
लग्नोत्थं जातकं हन्ति तस्माद्गण्डान्तमुत्सृजेत् ॥ ७५ ॥

ऋषि गर्ग ने बताया है कि नक्षत्र गण्डान्त माता का, तिथि गण्डान्त पिता का और लग्न गण्डान्त जातक का विनाश करता है। इसलिये इन तीनों का त्याग करना चाहिए ॥ ७५ ॥

बादरायणः—

[3]दिवाजं पितरं हन्ति रात्रिजं मातरं तथा।
सन्ध्ययोर्जातमात्मानं गण्डजं नो निरामयम् ॥ ७६ ॥

---

१. ज्यो० नि० ७० पृ० ३१ श्लो०।
२. ज्यो० नि० २३९ पृ० ८ श्लो०। ३. ज्यो० नि० २३९ पृ० ९ श्लो०।

ऋषि बादरायण ने बताया है कि गण्डान्त में दिन में उत्पन्न होने पर पिता का, रात में माता का और सन्ध्या के गण्डान्त में होने पर स्वयं का ही विनाश कर्ता होता है। गण्डान्त में उत्पन्न नीरोग नहीं होता है ॥ ७६ ॥

[1]सन्ध्यारात्रिदिवा भागे धिष्ण्यगण्डोद्भवः शिशुः।
आत्मानं मातरं तातं ध्रुवं हन्ति यथाक्रमम् ॥ ७७ ॥

नक्षत्र गण्डान्त में जायमान बालक संध्या में यदि पैदा होता है तो अपना, रात में माता का व दिन में पिता का विनाशी होता है ॥ ७७ ॥

[2]मातरं तातमात्मानं तिथिगण्डान्तजस्तथा।
लग्नगण्डान्तजस्तद्वत्तातमात्मानमातरम् ॥ ७८ ॥

तिथि गन्डान्त में उत्पन्न माता पिता व स्वयं का और लग्न गण्डान्त में पिता, स्वयं और माता का नाश करने वाला होता है ॥ ७८ ॥

लल्लः—
पितृहा तु दिवागण्डो रात्रौ गण्डस्तु मातृहा।
आत्महा सन्ध्ययोर्जातो नास्ति गण्डो निरामयम् ॥ ७९ ॥

आचार्य लल्ल ने बताया है कि दिन का गण्डान्त पिता का, रात्रि का गण्डान्त माता का और संध्याओं का गण्डान्त अपना ही विनाश करता है। गण्डान्त में उत्पन्न जातक नीरोग नहीं होता है ॥ ७९ ॥

गण्डान्तेषु च ये जाता नरनारीतुरङ्गमाः।
स्वगृहे नैव तिष्ठन्ति चेत्तिष्ठन्ति शुभावहाः ॥ ८० ॥

समस्त गण्डान्तों में जो पुरुष, स्त्री, घोड़ा आदि पैदा होते हैं वे प्रायः अपने घरों में नहीं रह पाते हैं। यदि रह जायँ तो सुख से रहते हैं ॥ ८० ॥

गण्डान्तोत्पन्न का त्याग

[3]सर्वेषां गण्डजातानां परित्यागो विधीयते।
अथवा दर्शनं तस्य मासषट्कं न कारयेत् ॥ ८१ ॥

समस्त गण्डान्त में पैदा हुए का त्याग करना चाहिए। यदि त्याग करने में समर्थ न हो तो ६ मास तक उसका दर्शन नहीं करना चाहिए ॥ ८१ ॥

राजमार्तण्डे—
[4]गण्डप्रसूतं पुरुषं शुभमाहुरपश्यताम्।
अन्ये तु होमपूर्वेण दानेन दर्शनं शुभम् ॥ ८२ ॥

---

१. ज्यो० नि० २३९ पृ० १० श्लो०। २. ज्यो० नि० २३९ पृ० ११ श्लो०।
३. ज्यो० नि० २४९ पृ० १२ श्लो०। ४. ज्यो० नि० २४० पृ० १३ श्लो०।

राजमार्तण्ड में बताया है कि गण्ड में पैदा हुए को न देखने पर शुभ होता है। अन्य आचार्यों का कहना है कि होम पूर्वक दान देकर गण्डान्तोत्पन्न का दर्शन शुभ होता है ॥ ८२ ॥

फलप्रदीपे—

[1]विवाहादौ भवेन्मृत्युर्जातके कुलनाशनम्।
यात्रायां सर्वनाशश्च कार्यनाशोऽन्यकर्मणि ॥ ८३ ॥

फल प्रदीप में बताया है कि यदि गण्डान्त में विवाह हो तो मृत्यु, उत्पन्न होने पर कुल का नाश, यात्रा में सर्वनाश और अन्य किसी कार्य का आरम्भ होने से उसका नाश होता है ॥ ८३ ॥

व्यवहारचण्डेश्वरः—

[2]जातो न जीवति नरो मातुरपत्यो भवेत्स्वकुलहन्ता।
यदि जीवति गण्डान्तं बहुगजतुरगो भवेद्भूपः ॥ ८४ ॥

व्यवहार चण्डेश्वर में बताया है कि गण्डान्त में उत्पन्न जातक जीवित नहीं रहता और माता का अशुभी व कुल हन्ता होता है। यदि गण्डान्त में उत्पन्न जातक जीवित रहता है तो बहुत हाथी, घोड़ा से युक्त राजा होता है ॥ ८४ ॥

अथ [3]गण्डान्तशान्तिः—

तत्र राजमार्तण्डे ब्रह्मपुराणोक्तम्।

अब आगे गण्डान्त शान्ति की राजमार्तण्ड में वर्णित ब्रह्मपुराणोक्त विधि को बताते हैं।

यथा सर्पविषश्चैव मन्त्रश्रवणाद्विलीयते।
तथैव गण्डदोषोपि विधानेन विलीयते ॥ ८५ ॥

जैसे मन्त्र के श्रवण से सर्प का जहर विलीन होता है, उसी प्रकार शान्ति कर्म से गण्ड दोष का भी लोप हो जाता है ॥ ८५ ॥

कांस्यपात्रं प्रकुर्वीत पलैः षोडशभिर्बुधः।
अष्टाभिर्वा चतुर्भिर्वा द्वाभ्यां वा शोभनं समम् ॥ ८६ ॥
तन्मध्ये स्थापयेद्देवं नवनीतप्रपूरिते।
राजतं चन्द्रमभ्यर्च्य सितपुष्पसहस्रकैः ॥ ८७ ॥
दैवज्ञः सोपवासश्च शुक्लाम्बरधरः शुचिः।
सोमोहमिति सञ्चिन्त्य कुर्यादेवमतन्द्रितः ॥ ८८ ॥

---

१. ज्यो० नि० २४० पृ० १४ श्लो०।
२. ज्यो० नि० २३९ पृ० ७ श्लो० माण्डव्य के नाम से उद्धृत है।
३. ज्यो० नि० २४० पृ०।

जपेत्साहस्त्रिकं मन्त्रं श्रद्धधानः समाहितः।
दद्याद्वै दक्षिणामिष्टां गण्डदोषोपशान्तये ॥ ८९ ॥

शुद्धं चामीकरं दद्यात्ताम्रपात्रं तिलान्वितम्।
गण्डदोषोपशान्त्यर्थं ज्योतिर्वेदविदे शुचिः ॥ ९० ॥

विद्वान् को १६ या ८ या ४ या २ पल का काँसे का सुन्दर समतल पात्र बनवाकर उसके बीच में मक्खन रखकर उस पर चाँदी का चन्द्र विराजमान करके सफेद एक हजार फूलों से पूँजा करके ज्योतिषी पवित्र होकर सफेद वस्त्र धारण करके उपवास के साथ एकाग्र चित्त होकर मैं सोम हूँ ऐसा सोचकर श्रद्धा के साथ अनिद्रालु होकर सोम के मन्त्र का जप करके गण्डदोष शान्ति के लिये अभीष्ट द्रव्य रूप दक्षिणा के साथ शुद्ध छत्र, तिल पूरित तामें का पात्र पवित्र ज्योतिर्वेत्ता को देना चाहिए ॥ ८६–९० ॥

ॐ अमृतात्मने नमः अयं मन्त्रः —

कुङ्कुमं चन्दनं कुष्ठं गोरोचनमथापि वा।
घृतपूर्णेषु पात्रेषु चतुर्षु प्रक्षिपेत्क्रमात् ॥ ९१ ॥

'ॐ अमृतात्मने नमः' यह मन्त्र है। इससे चारों घी से भरे हुए पात्रों में कुंकुम, चन्दन, कूठ औषधी या गोरोचन क्रम से गेरना चाहिये ॥ ९१ ॥

सहस्राक्षेण मन्त्रेण बालकं स्थापयेत्ततः।
पितृयुक्तं दिवा जातं मातृयुक्तं च रात्रिजम् ॥ ९२ ॥

पुनः मन्त्र से यदि दिन में पैदा हुआ हो तो पिता के साथ, रात्रि में पैदा होने पर माता के साथ स्थापित करना चाहिए ॥ ९२ ॥

स्थापयेत्पितृमातृभ्यां सन्ध्ययोरुभयोरपि।
कांस्यपात्रं घृतैः पूर्णं गण्डदोषोपशान्तये ॥ ९३ ॥

सक्षीरमौक्तिकं शङ्खं श्वेतवस्त्रयुगं शुभम्।
यजुर्वेदविदे दद्याद्गण्डदोषापनुत्तये ॥ ९४ ॥

दद्याद्धेनुं हिरण्यं च ग्रहांश्चापि प्रपूजयेत्।
आयुर्वेदकरं जप्त्वा कुर्याद्ब्राह्मणतर्पणम् ॥ ९५ ॥
सहस्राक्षेण शतशारदेनेत्यादि ऋचानां।

यदि सन्ध्या के गण्डान्त में जन्म हुआ हो तो माता पिता दोनों के साथ स्थापित करना और घी से भरे हुए कांसे के पात्र को गण्ड दोष शमनार्थ दूध, मोती, शंख, दो सफेद वस्त्र यजुर्वेद के ज्ञाता को देने से शुभ होता है। तथा सुवर्ण और गाय का दान करना व ग्रहों की भी पूजा करनी चाहिए। और आयुर्वेदकर का जाप करके सहस्राक्षेण इस मन्त्र से या शतशारदेन इत्यादि मंत्र से ब्राह्मण तर्पण करना चाहिये ॥ ९३–९५ ॥

शौनकीयसूत्रे—

पुत्रो यदि पितुर्गण्डे दिवा चैव प्रजायते।
कन्यकाजननं रात्रौ मातृगण्डे तथैव च॥ ९६॥

सन्ध्ययोर्द्धनगण्डे च प्रसूतिर्यदि जायते।
विनाशो जायते शीघ्रं मध्यमं तद्विपर्यये॥ ९७॥

शौनकीय सूत्र में बताया है कि पिता के गण्ड में दिन में यदि पुत्रोत्पत्ति होती है तथा माता के गण्ड में रात में कन्या का जन्म होता है और धन गण्ड में यदि सन्ध्या के समय में जन्म होता है तो जल्दी ही विनाश होता है। इसके विपरीत में उत्पत्ति मध्यम फलदाता होती है॥ ९६–९७॥

यवनः—

यत्र गण्डे क्रूरयुक्ते महादोषकरं भवेत्।
शुभग्रहसमायोगे ईषच्छुभकरं भवेत्॥ ९८॥

आचार्य यवन ने बताया है कि जिस गण्ड में पाप की युति होती है वह महान् अनिष्टकारी होता है तथा शुभग्रह का योग होने पर अल्प शुभकर गण्ड होता है॥९८॥

दिनक्षये व्यतीपाते व्याघाते विष्टिवैधृतौ।
शूले गण्डातिगण्डे च परिघे यमघण्टके॥ ९९॥
ब्रह्मदण्डे मृत्युयोगे प्राप्ते गण्डदिने शिशुः।
जातो हन्ति कुलं सर्वं तस्मात्कुर्वीत शान्तिकम्॥ १००॥

दिनक्षय, व्यतीपात, व्याघात, विष्टि, वैधृति, शूल, गण्ड, अतिगण्ड, परिघ, यमघंट ब्रह्मदण्ड और मृत्यु योग के दिन में यदि गण्डान्त योग हो तो जातक समस्त कुल का विनाश कर्ता होता है। इस लिये शान्ति करनी चाहिये॥ ९९–१००॥

धनगण्डे दरिद्रोऽपि शान्तिं कुर्यात्स्वशक्तितः।
अन्यथा नाशमाप्नोति चाभुक्तर्क्षे विशेषतः॥ १०१॥

धनगण्ड में तो निर्धन को भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार शान्ति करनी चाहिए। यदि शान्ति नहीं होती है तो विनाश विशेषकर अभुक्त नक्षत्र में होता है॥ १०१॥

अब आगे अभुक्त मूल किसे कहते हैं, इसका क्या फल होता है, इसके होने पर क्या करना चाहिए, इत्यादि बातों को विविध ग्रन्थों के आधार पर बताते हैं।

अथाभुक्तमूलविचारः—

तत्र च्यवनः—

[1]अभुक्तमूलसम्भवं परित्यजेच्च बालकम्।
समाष्टकं पिताथवा न तन्मुखं विलोकयेत्॥ १०२॥

---

१. मु० चि० २ प्र० ५३ श्लो० पी० टी० 'अभुक्तमूलभेभव' पाठ है। तथा ज्यो० नि० २४० पर भी है।

च्यवन ऋषि ने वताया है कि अभुक्त मूल में उत्पन्न हुए बालक का त्याग करना अथवा आठ वर्ष तक पिता को बालक का मुख नहीं देखना चाहिये ॥ १०२ ॥

वसिष्ठः—

[1]ज्येष्ठान्त्ये घटिका चैका मूलादौ घटिकाद्वयम् ।
अभुक्तमूलमित्याहुस्तत्र जातं त्यजेच्छिशुम् ॥ १०३ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने वताया है कि ज्येष्ठा नक्षत्र के अन्त में एक घटी, मूल की आदि में दो घटी तक अभुक्त मूल होता है। इसमें पैदा हुए बालक का त्याग करना चाहिए ॥ १०३ ॥

वृहस्पतिः—

[2]ज्येष्ठान्त्ये घटिकार्द्धं च मूलादौ घटिका तथा ।
तयोरन्तर्गता नाडी अभुक्तमूलमुच्यते ॥ १०४ ॥

ऋषि वृहस्पति जी ने वताया है कि ज्येष्ठा नक्षत्र के अन्तिम आधी घटी और मूल नक्षत्र की आदि वाली आधी घटी के वीच के समय को अभुक्त मूल कहते हैं ॥ १०४ ॥

लल्लः—

ऐन्द्रान्त्यघटिका चैका मूलादौ घटिका तथा ।
तयोरन्तरनाडी द्वे अभुक्तमूलमुच्यते ॥ १०५ ॥

आचार्य लल्ल ने वताया है कि ज्येष्ठा के अन्त की एक घटी और मूल के प्रारम्भ की एक घटी ये दो घड़ियों का समय अभुक्त मूल होता है ॥ १०५ ॥

वृहन्नारदः—

[3]अभुक्तमूलगण्डान्तं नाडिकानां चतुष्टयम् ।
तच्चैन्द्रान्त्यघटी द्वन्द्वं मूलाद्यं द्वन्द्वमेव च ॥ १०६ ॥

वृहन्नारद में वताया है कि अभुक्त मूल गण्डान्त ४ चार घटी का होता है। दो घटी ज्येष्ठा के अन्त की और दो घटी मूल के आदि की गण्डान्त संज्ञा होती है ॥ १०६ ॥

वृ० ज्यो० सार में कहा है 'ज्येष्ठान्ते घटिका युग्मं मूलादौ घटिकाद्वयम् । अभुक्त-मूलमेतत्स्यादित्येवं नारदोऽब्रवीत् । वसिष्ठस्तु तयोरन्त्याद्ययोरेकद्विनाडिकम् । अङ्गिरा-घटिकामेकामन्त्ये षट्चाष्ट तत्र तु । जातं शिशुं त्यजेत्तातो न पश्येद्वाष्टहायनम्' (११७ पृ०) ॥ १०६ ॥

नारद जी ने कहा है 'यो ज्येष्ठामूलयोरन्तरालप्रहरजः शिशुः । अभुक्त मूलजः सार्पमघानक्षत्रयोरपि' (मु० चि० २ प्र० ५३ श्लो० पी० टी०) (हो० र० २ अ० १ श्लो०) ॥ १०६ ॥

---

१. ज्यो० नि० २४० पृ० २ श्लो० ।

२. मु० चिं० २ प्र० ५३ श्लो० पी० टी० तथा ज्यो० नि० २४० पृ० ।

३. ज्यो० नि० २४१ पृ० ४ श्लो० ।

विशेष—कन्या के जन्म में 'मूलस्य प्रथमे पादे पशुपीडा प्रजायते। द्वितीयचरणे जाता सर्वसौख्यप्रदा भवेत् ॥ तृतीयाङ्घ्रौ च मूलस्य। पितृपक्षविनाशिनी। चतुर्थाङ्घ्रि प्रजाता स्त्री मातुः पक्षक्षयङ्करी' (हो० र० २ अ० १०–११ श्लो०) ॥ १०६ ॥

अथ मूलजातस्य फलम्—

अब आगे मूल में उत्पन्न होने वाले के फल को चरण के क्रम से बताते हैं।

श्रीपतिः—

[1]तदाद्यपादके पिता विपद्यते जनन्यथ।
धनक्षयस्तृतीयके चतुर्थकः शुभावहः ॥ १०७ ॥

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि मूल के प्रथम चरण में पुत्र उत्पन्न होने पर पिता का, दूसरे में माता का, तीसरे में धन का नाश और चौथे पाद में जन्म शुभ होता है ॥ १०७ ॥

वसिष्ठः—

[2]जातापत्यं पितरमथवात्मानमाद्ये च पादे
युग्मे धात्रीं हरति च धनं भ्रातरं वा तृतीये।
पादे तुर्ये शुभमतितरां राज्यसाम्राज्यलक्ष्मीं
मूले जातं वितरति तथा काद्रवेये प्रतीपम् ॥ १०८ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि मूल के पहिले चरण में पिता या स्वयं का विनाश, दूसरे में माता का, तीसरे में धन या भाई का विनाश होता है। और चौथे चरण में जन्म होने पर अधिक शुभ एवं राज्य, साम्राज्य व लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। आश्लेषा में इसके विपरीत अर्थात् प्रथम शुभ, दूसरे में धन, तीसरे में माता व चौथे में पिता का नाश होता है ॥ १०८ ॥

कात्यायनसूत्रे—

[3]मूलस्य प्रथमंशे जातपितुरनिष्टो द्वितीये मातुः तृतीये
धनस्य चतुर्थे कुलशोकावह आत्मनः पुण्यभागी स्यादिति ॥ १०९ ॥

कात्यायन सूत्र में बताया है कि मूल के प्रथम चरण में उत्पन्न जातक पिता का, दूसरे में माता का, तीसरे में धन का अनिष्टकारी और मूल के चौथे चरण में वंश में शोक व्याप्त करने वाला और स्वयं पुण्यात्मा होता है ॥ १०९ ॥

और मुहूर्तचिन्तामणि में भी 'आद्ये पिता नाशमुपैति मूलं पादे द्वितीये जननी तृतीये। धनं चतुर्थोऽस्य शुभो....' (२ प्र० ५५ श्लो०) ॥ १०९ ॥

१. ज्यो० नि० २४१ पृ० ३ श्लो०।
२. ज्यो० नि० २४१ पृ० १ श्लो०।
३. ज्यो० नि० २४१ पृ०।

काल क्रम से पितादि के अनिष्ट का ज्ञान मूल में

अन्यः—

दिवा सायं निशि प्रातः तातस्य मातुलस्य च ।
पशूनां मित्रवर्गस्य क्रमान्मूलमनिष्टदम् ॥ ११० ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि दिन, सन्ध्या, रात और प्रातःकाल में बालक के उत्पन्न होने पर क्रम से पिता, मामा, पशु व मित्र वर्ग का नाश होता है ॥ ११० ॥

विशेष—वसिष्ठ संहिता में इसके कुछ विपरीत बताया है 'मूलाद्यपादो दिवसे यदि स्यात्तज्जः पितुर्नाशनकारणं स्यात् । द्वितीयपादो यदि रात्रिभागे तदुद्भवो मातृविनाशकः स्यात् ॥ मूलाद्यपादो यदि रात्रिभागे तदात्मनो नास्ति पुनर्विनाशः । द्वितीयपादो दिनगो यदि स्यान्न मातुरल्पोऽपि तदास्ति दोषः' ॥ (४२ अ. १२९-१३० श्लो.) ॥ ११० ॥

तथा नारद संहिता में भी 'दिवाजातस्तु पितरं रात्रौ तु जननीं तथा । आत्मानं सन्ध्ययोर्हन्ति ततो गण्डं विवर्जयेत्' (मु. चि. २ प्र. ५५ श्लो. पी. टी.) ॥ ११० ॥

गर्गः—

मूलाद्यांशे पितुर्नाशः मातुश्च द्वितीयांशके ।
तृतीये धनधान्यस्य नाशस्तुर्ये धनागमः ॥ १११ ॥

आचार्यगर्ग ने बताया है कि मूल के प्रथम चरण में जन्म होने पर पिता का, दूसरे में माता का और तीसरे में धनधान्य का नाश एवं मूल के चौथे चरण में धन की प्राप्ति होती है ॥ १११ ॥

जातक पारिजात में बताया है 'मूलाद्यपादे पितरं निहन्याद् द्वितीयके मातरमाशु हन्ति । तृतीयजो वित्तविनाशकः स्याच्चतुर्थपादे समुपैति सौख्यम्' (९अ. ५१श्लो.)॥१११॥

धन संज्ञा का ज्ञान

[1]गृहं क्षेत्रं धनं धान्यं गृहोपकरणादिकम् ।
पशुवस्त्रादिकं चेति धनमित्युच्यते बुधैः ॥ ११२ ॥

घर, खेत, धन (द्रव्य), धान्य, घर के उपकरणादि, पशु और वस्त्रादि को पंडितों ने धन बताया है ॥ ११२ ॥

[2]चित्राद्यर्द्धे पुष्यमध्ये द्विपादे पूर्वाषाढा धिष्ण्यपादे तृतीये ।
जातः पुत्रश्चोत्तराद्ये विधत्ते मातापित्रोर्भ्रातरं बालनाशम् ॥११३॥

चित्रा के प्रथमार्ध में माता का, पुष्य के दूसरे चरण में पिता का, पूर्वाषाढा के तीसरे चरण में भाई का और उत्तराषाढ़ा के प्रथम पाद में स्वयं बालक का नाश होता है ॥ ११३ ॥

---

१. ज्यो० नि० २४१ पृ० । २. बृ. ज्यो० सा० ४१२ पृ० ।

श्रीपतिः—

प्रतीपमन्त्यपादतः फलं तदेव सर्पभे।
तदुत्थदोषशान्तये विधेयमत्र शान्तिकम् ॥ ११४ ॥

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि आश्लेषा में जन्म होने पर मूल के चौथे चरण से विपरीत अर्थात् चौथे में पिता का, तीसरे में माता, दूसरे में धन और प्रथम चरण में दोष नहीं होता है। उक्त दोष का ह्रास करने के लिये शान्ति करनी चाहिए ॥ ११४ ॥

विशेष—जातक पारिजात में मूल की संपूर्ण घटियों में १५ का भाग देने पर जो भाग प्राप्त हो उसके क्रम से फल का वर्णन मिलता है। यथा 'मूलर्क्षनिखिलानाड्यस्तिथिसंख्याविभाजिताः। आद्ये पिता पितृभ्राता तृतीये भगिनीपतिः। पितामहश्चतुर्थे तु माता नश्यति पञ्चमे। षष्ठे तु मातृभगिनी सप्तमे मातुलस्तथा। अष्टमांशे पितृव्यस्त्री निखिलं तु नवांशके। दशमे पशुसंघातोभृत्यस्त्वेकादशांशके। द्वादशे तु स्वयं जातस्तज्ज्येष्ठस्तु त्रयोदशे। चतुर्दशे तद्भगिनी त्वन्ते मातामहस्तथा' (९अ. ५२-५५श्लो.) ॥ ११४ ॥

मूल वृक्ष के भाग

जयार्णव में कहा है कि मूल नक्षत्र रूपी वृक्ष के १ मूल = वृक्ष की जड़, २ स्तम्भ = वृक्ष की मोटाई लम्बाई, ३ त्वचा = छाल = वल्कल, ४ शाखा = डाल, ५ पत्र = पत्ता, ६ पुष्प = फूल, ७ फल और ८ वाँ भाग शिखा = चूडा ये ८ हिस्से होते हैं।

आठ भागों में घटियों की स्थापना

अथ [1]मूलवृक्षविचारः—

अब आगे जयार्णव ग्रन्थ के आधार पर मूल नक्षत्र को वृक्ष रूपी मान कर उसके आठ विभाग करके जातक के शुभाशुभ फल को बताते हैं।

जयार्णवे—

मूलं स्तम्भं तथा (त्वचा ?)
शाखा पत्रं पुष्पं फलं शिखा।
तत्रागा ७ ष्ट ८ दशे १० शा ११ र्क १२
पञ्चा ५ ब्धय ४ ग्नि ३ घटीफलम् ॥ ११५ ॥

जयार्णव में बताया है कि १. जड़ में ७, २. स्तम्भ में ८, (१५), ३. छाल में १० (२५), ४. शाखा में ११ (३६), ५. पत्र में १२ (४८), ६. पुष्प में ५ (५३) ७. फल में ४ (५७) और ८. शिखा में ३ (६०)। इस प्रकार ६० घटी मूल का भोग होने पर भाग करना और अधिक अल्प भोग हो तो अनुपात द्वारा घटियों का न्यास करके फल समझना चाहिये ॥ ११५ ॥

---

१. मु. चि. २ प्र. ५४श्लो. पी. टी.।

अन्य मत में घटिका न्यास

केचित्तु—

वेदाश्च ४ मुनयश्चैव ७ दिशश्च १० वसव ८ स्तथा ।
नन्दा ९ बाणा ५ रसा ६ रुद्रा ११ मूलभेदं प्रकीर्तितम् ।। ११६ ।।

अन्य आचार्यों का कहना है कि १. जड में ४, २. स्तम्भ में ७ (११), ३ छाल में १० (२१), ४ शाखा में ८ (२९), ५ पत्र में ९ (३८), ६ पुष्प में ५ (४३), ७. फल में ६ (४९), और ८. शिखा में ११ (६०) घटियों का न्यास करना चाहिए ।। ११६ ।।

आठ भागों का फल

मूले स्वामिविनाशोय स्तम्भे हानिस्त्वचे सहजनाशः ।
जननीनाशः स्कन्धे दले कलावान् नृपप्रियः पुष्पे ।। ११७ ।।
राज्यावाप्तिः फले चैव शिखायां स्वल्पजीवनम् ।
अष्टाङ्गमेतन्मूलस्य विन्यसेत्तत्र नाडिकाः ।। ११८ ।।

जबकि १. जड में इष्ट की स्थिति होती है तो स्वामी का नाश, २. स्तम्भ में हानि, ३. छाल में भाई का नाश, ४. शाखा में माता का नाश, ५. पत्र में जातक कलाओं से युत, ६. पुष्प में राजकीय प्रियता, ७. फल में राज्य की प्राप्ति और ८. शिखा में होने पर अल्प जीवन होता है ।। ११७–११८ ।।

अन्य मत से

अन्यस्तु —

पितुर्मृतिर्वेदघटीषु मूले धनक्षतिस्तत्परतस्तु पञ्चके ।
बन्धोर्विनाशः परतोर्थं संख्येमातुर्मृतिश्चेद्दश तत्परस्था ।। ११९ ।।
आत्मक्षयं तत्परतो नवाख्ये ततोपि षट्के नृपमन्त्रिता स्यात् ।
राज्यं ततः पञ्च समुद्रसंख्ये स्वल्पायुरन्यस्य च सेवकः स्यात् ।। १२० ।।

मूल की प्रथम ४ घड़ी में जन्म होने पर पिता का नाश उसके बाद की पांच घड़ी में धनक्षय, उसके आगे की ४ घड़ी में बन्धुनाश तथा आगे की दश घड़ी में माता का नाश होता है। उससे आगे ९ घटी आत्मनाश, फिर ५ घड़ी तक राजमन्त्रित्व, फिर ५ घड़ी तक राज्य प्राप्ति, फिर चार घड़ी में स्वल्पायु होता है ।। १९–२० ।।

अब आगे ५९ घटी भभोग के आधार पर मूल रूपी वृक्ष के आठ हिस्सों में घटियों को स्थापित करके उसके फल को जयार्णव के वाक्यों से बताते हैं।

घटियों का न्यास

जयार्णवे—

वसु ८ तर्कां ६ क ९ रुद्रा ११ श्व ७ सप्त ७ पञ्चां ५ ग ६ संख्यकाः ।
यस्मिन्भागे भवेज्जन्म फलं तत्र विनिर्दिशेत् ।। १२१ ।।

जयार्णव में बताया है कि जड में ८, स्तम्भ में ६, छाल में ९, डाल में ११, पत्ता में ७, पुष्प में ७, फल में ५ और शिखा में ६ घटियों का न्यास करना चाहिए। तथा जिस भाग में जन्म हो उसके आधार पर फल का आदेश करना चाहिये ॥१२१॥

भागानुसार फल

मूले मूलविनाशः स्यात्स्तम्भे हानिर्धनक्षयम् ।
त्वचायां बन्धुनाशश्च शाखायां मातृपीडनम् ॥ १२२ ॥
पत्रे कुटुम्बहानिः स्यात्पुष्पे नृपतिसम्मतः ।
फले च कुरुते राज्यं शिखायां स्वल्पजीवनम् ॥ १२३ ॥

जबकि जड के भाग में जन्म होता है तो पिता का नाश, स्तम्भ में धन की क्षति व हानि, त्वचा में बान्धवों का नाश, शाखा में माता को पीडा पत्ते में कुटुम्ब की हानि, पुष्प में राजा से संमत, फल में राज सुख और शिखा में अल्प जीवन होता है ॥ १२२–१२३ ॥

स्पष्टार्थ वृक्षाकार मूल चक्र

वृक्ष	भाग	घटी	फल
मूल	१	७	स्वामीनाश
स्तम्भ	२	८	हानि
त्वचा	३	१०	भ्रातृनाश
शाखा	४	११	माता का नाश
पत्र	५	१२	कलावान्
पुष्प	६	५	राजप्रिय
फल	७	४	राज्य प्राप्ति
शिखा	८	३	अल्प जीवन

अन्य मत से

वृक्ष	भाग	घटी
मूल	१	४
स्तम्भ	२	७
त्वचा	३	१०
शाखा	४	८
पत्र	५	९
पुष्प	६	५
फल	७	६
शिखा	८	११

५९ घटी भभोग वश

वृक्ष	भाग	घटी	फल
मूल	१	८	पिता का विनाश
स्तम्भ	२	६	धनक्षय
त्वचा	३	९	वन्धु नाश
शाखा	४	११	मातृपीडा
पत्र	५	७	कुटुम्ब हानि
पुष्प	६	७	राजसंमत
फल	७	५	राज्य
शिखा	८	६	अल्पायु

ज्योतिर्निवन्ध में कहा है 'मूले सप्त घटीषु मूलहननं स्तम्भेऽष्टसौख्यक्षयस्त्वाग् दिग् वन्धु विनाशनं च विटपे रुद्रैर्हतो मातुलः। पत्रेऽर्कैः सुकृतीतु वाणकुसमे मन्त्री फले सागरैः। राजावह्नि शिखाल्पमायुरितिसन्मूलाऽङ्घ्रये स्यान्फलम्' (२४१ पृ०)

तथा फल में 'दले मङ्गलकृत्' 'सचिवः फले शिखायां मृत्युमवाप्ते ति भूपो वा। ह्रासर्धिन्यूनाधिक षष्ट्या स्यादत्र नाडिका मानम्। यह पाठान्तर है॥

अथ [1]मूलपुरुषविचारः—

अव आगे मूल नक्षत्र को पुरुष मानकर उसके शरीर के अवयवों में घटियों के न्यास से फल को वताते हैं।

भूपालवल्लभे—

मूलस्य घटिकान्यासो मूर्ध्नि पञ्च नृपो भवेत्॥
मुखे सप्त मृतिः पित्रोः स्कन्धे वेदो महावलः॥ १२४॥

बाह्वोरष्टौ बली पाण्योस्तिस्रो हत्यान्वितो भवेत्।
हृदि खेटा भूपमन्त्री नाभौ द्वे ब्रह्मविद्भवेत्॥ १२५॥

गुह्ये दशेतिकामी स्याज्जानुनोष्षण्महामतिः।
पादयोः षण्मृतिस्तस्येत्युक्तवान्कमलासनः॥ १२६॥

भूपाल वल्लभ में कहा है कि प्रथम मूल की ५ पांच घटियों में जन्म होने पर राजा, मुख की सात ७ में पिता की मृत्यु, ४ घटी कन्धों में वल का आधिक्य, ८ घटी भुजाओं में वली, ३ घटी हाथ में हत्यारा, ९ घटी छाती में राज सचिव, २ घटी नाभि में ब्रह्म वेत्ता, १० गुह्य में अतिकामी और ६ घटी पैरों में जन्मकाल हो तो मरण होता है॥ १२४–१२६॥

१. ज्यो. नि. २४१ पृ.।

विशेष—होरारत्न में 'बाह्वोरष्टौ बली कण्ठे तिस्रो हत्यान्वितो भवेत्' स्त्रीजातक में 'कण्ठे तिस्रो हर्म्यान्वितो भवेत्' और पीयूषधारा में 'पाण्योस्तिस्रो हस्तान्वितो भवेत्' यह पाठ है।

'नाभौ द्वौ बलविद् भवेत्' यह होरारत्न व स्त्रीजातक में एवं पीयूषधारा व ज्योतिर्निबन्ध में 'नाभौ द्वौ ब्रह्मविद् भवेत्' यह पाठ है ॥ १२४–१२६ ॥

स्पष्टार्थ मूल पुरुषाकार सफल चक्र

भाग	श० अव०	घटी	
१	मस्तक	५	राजा
२	मुख	७	पिता मरण
३	कन्धा	४	महाबल
४	भुजा	८	बलवान्
५	हाथ	३	हत्या
६	हृदय	९	राज सचिव
७	नाभि	२	ब्रह्मवेत्ता
८	उपस्थ	१०	अति विषयी
९	जानु	६	अधिक बुद्धिमान्
१०	पैर	६	मरण

सहदेवः—

[1]मूर्द्धा वक्त्रं तथा बाहू हृन्नाभी च कटि (र ?)द्वयम् ।
गुह्यं पादौ दशस्थानं कटचां षट्कं क्रमात्फलम् ॥ १२७ ॥

आचार्य सहदेव ने बताया है कि मस्तक १, मुख २, भुजा ३, वक्षस्थल ४, नाभि ५, २ हाथ ६–७, गुह्यस्थल ८, पैर ९–१० (दोनों) ये दस स्थान होते हैं। इनमें ६, ६ घटियों को स्थापित करके देखना चाहिए और उसका फल भी समझना चाहिये ॥ १२७ ॥

घटियों का फल

मूर्ध्नि घातो मुखे क्षेम भ्रातृमातुलघौ करौ ।
हृदये शुभसौख्यं च नाभ्यां स्वामिविघातकः ॥ १२८ ॥
करद्वये मातृहन्ता गुह्ये तस्कर एव च ।
पादयोः धनहानिः स्यान्मूलचक्रफलं विदुः ॥ १२९ ॥

यदि मस्तक में इष्ट घटिका हो तो घात, मुख में कल्याण, भुजा में भाई व मामा का विनाश, हृदय में शुभता व सुख, नाभि में मालिक का विनाश, हाथों में जननी घातक, गुह्य में चोर और पैरों में धन की हानि होती है ॥ १२८–१२९ ॥

१. ज्यो. नि. २४१ पृ.।

घटिका न्यास

अन्यः—

मस्तके घटिका पञ्च वदने पंच योजयेत् ।
स्कन्धे चत्वारि चत्वारि भुजयोरष्टकं तथा ॥ १३० ॥
एकैकं हस्तयोर्दद्यो हृदये चाष्टमं न्यसेत् ।
द्वौ च नाभौ प्रदातव्यं गुह्ये दश तथैव च ॥ १३१ ॥
जानुनो रससंख्या च पादयोश्च षडेव हि ।
शिरःस्थे वालको जातो स्वकुलं घातयेद्ध्रुवम् ॥ १३२ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि मस्तक पर ४, मुख में ५, कन्धों में ४, ४, भुजा में आठ ८, हाथों में १, १, वक्षस्थल में ८, नाभि में २, गुह्यस्थल में दस १०, जानु में ६ और पैरों में ६ घटी का न्यास करना चाहिए। मस्तक की घटी में जन्म होने पर बालक अपने वंश का निश्चय ही हनन करता है ॥ १३०–१३२ ॥

विशेष—पाठकों की सुविधा के लिये यहाँ पर कन्या के जन्म में जो मूल का न्यास शरीर में किया है, उसे बताया जा रहा है। जैसे—चतस्रो नाडिकाशीर्षे कुर्वन्ति पशुनाशनम् मुखे षड् धनहानिश्च कण्ठे पञ्च धनागमः । कौटिल्यं हृदये पञ्च बाह्वोर्वित्तागमं च तत् । वेदाः पाण्योर्दयाधर्मं वेदा गुह्येऽतिकामिनी । ज्येष्ठमातुलनाशश्च जङ्घयोर्युगनाडिकाः । ज्येष्ठभ्रातृविनाशश्च चतस्रो जानुयुग्मके । पादयोर्दशनाडयश्च तत्र वैधव्यमादिशेत्' (मु. चि. २ प्र० ५५ श्लो० पी०टी०) । अर्थ—मस्तक पर ४ घटी में जन्म हो तो पशु पीडा, मुख में ६ धन हानि, कण्ठ में ५ धनागम, वक्ष स्थल में ५ कुटिलता, दोनों भुजा में ५, ५, धनागम, हाथ में ४, ४ दया, धर्म, गुह्य स्थल में ४ अति काम से युक्त, दोनों जंघा में ४ वड़े मामा का नाश, दोनों घुटना में ४ वड़े भाई का नाश और पैरों में १० वैधव्यता होती है ॥ १३०-१३२ ॥

स्पष्टार्थ कन्या का मूल चक्र

भाग	स्त्री श० अ०	घटी	फल
१	मस्तक	४	पशुपीडा
२	मुख	६	धन हानि
३	कण्ठ	५	धनागम
४	हृदय	५	कुटिलता
५	बाहु	१०	वित्तागम
६	पाणि	८	दयाधर्म
७	गुह्य	४	अतिकामिनी
८	जांघ	४	वड़े मामा का नाश
९	जानु	४	ज्येष्ठ भाई का नाश
१०	पैर	१०	वैधव्यता

पुरुषाकार श्लेषा चक्र ज्ञान

अब आगे आश्लेषा में पैदा होने वाले स्त्री पुरुष के शरीर में घटिकाओं का न्यास करके फल को बताते हैं।

अथाश्लेषापुरुषविचारः—

[1]मूर्ध्नि पञ्चसु राज्याप्तिर्मुखे सप्त पितृक्षयः।
नेत्रे द्वे जननीनाशो ग्रीवायां त्रिभिर्लम्पटः॥ १३३॥
स्कन्धे वेदा गुरोर्भक्तो हस्तेऽष्टौ च बली भवेत्।
हृद्येकादशभिश्चात्मघाती सञ्जायते नरः॥ १३४॥
स्त्रीवान्नाभौ भ्रमी षड्भिः गुदे नव तपोधनः।
पादे पंच धनं हंति सार्पादितत्फलं क्रमात्॥ १३५॥

जयार्णव में बताया है कि मस्तक पर ५ में अच्छे राज्य की या पुत्र की प्राप्ति, मुख पर ७ में पिता का नाश, नेत्र पर २ में माता का नाश, कण्ठ पर ३ में स्त्री में आसक्त, कन्धे पर ४ में गुरु भक्ति, हाथ पर ८ में बलवान्, वक्षस्थल पर ११ में स्वयं का नाश, नाभि पर ६ में स्त्री से युक्त, भ्रमण करने वाला, गुह्यस्थल पर ९ में तपस्वी और पैर पर ५ में जातक धन का नाशक होता है। यह श्लेषा का क्रम से फल होता है॥ १३३–१३५॥

विशेष—पीयूषधारा टीका में 'सुपुत्राप्तिः' 'ग्रीवायां लंपटस्त्रिषु'। 'गुरौ भक्तिः' 'श्रीमान्नाभौ भ्रमः' 'नन्दैस्तपोधनः' यह पाठान्तर है॥ १३३–१३५॥

स्त्रीजातक में कहा है 'मूर्ध्नि पञ्च मुखे पञ्च स्कन्धयोर्घटिकाष्टकम्॥ गजाश्वौ भुजयोर्युग्मं हस्तयोर्हृदयेऽष्टकम्। युग्मं नाभौ दिशो गुह्ये षड् जान्वोः षट्च पादयोः। विन्यस्य पुरुषाकारे सार्पस्य फलमादिशेत्। छत्रलाभः शिरोदेशे वदने पितृकान्तकम्। स्कन्धयोर्धनहस्त्वं च बाहुयुग्मे त्वकर्मकृत्। हत्याकरं करद्वन्द्वे राज्याप्तिर्हृदये भवेत्। अल्पायुर्नाभिदेशे च गुह्ये च सुखमद्भुतम्। जंघायां भ्रमणप्रीतिः पादयोर्जीवितात्पता। घटीफलं किल प्रोक्तं मूलस्य मुनिपुङ्गवैः'॥ १३३–१३५॥

स्पष्टार्थ पुरुषाकार आश्लेषा चक्र

भाग	शरी० अव०	घटी	फल
१	मस्तक	५	सुन्दर पुत्र या राज्य प्राप्ति
२	मुख	७	पिता का नाश
३	आँख	२	माता का नाश
४	गला	३	स्त्री लंपट
५	कन्धा	४	गुरु भक्त
६	हाथ	८	बलवान्
७	हृदय	११	आत्मघाती
८	नाभि	६	स्त्रीवान्, भ्रमी
९	गुह्य	९	तपस्वी
१०	पैर	५	धन विनाशी

१. ज्यो. नि. २४१–२४२ पृ.।

वृक्षाकार आश्लेषा चक्र ज्ञान

[1]रुद्रयामले—

फलं पुष्पं दलं शाखा त्वग्लतास्कंध एव च।
फलं क्रमाद्दशा १० ज्ञां ५ क ९ स्वर ७ विश्वा १३ र्क १२ सागराः ४ ॥१३६॥
नाडिकास्तद्भ्रवं बालं फलं कुर्याद्यथाक्रमम्।
श्रियं राज्यं भयं हानिं मातृपित्रात्मसंक्षयम् ॥ १३७ ॥

रुद्रयामल में कहा है कि आश्लेषा वृक्ष के फल, पुष्प, पत्ता, डाल, छाल, लता और स्कन्ध (मोटाई) ये भाग होते हैं। इन भागों में १०, ५, ९, ७, १३, १२, ४ क्रम से घटियों की स्थापना करके देखना चाहिये कि बालक की उत्पत्ति किस भाग में हुई है, और उसका फल भी क्रम से लक्ष्मी, राज्य, भय, हानि, माता, पिता व अपना नाश जानना चाहिए ॥ १३६–१३७ ॥

स्पष्टार्थं वृक्षाकार आश्लेषा चक्र

भाग	अवयव	घटी	फल
१	फल	१०	लक्ष्मी
२	पुष्प	५	राज्य
३	पत्ता	९	भय
४	डाल	७	हानि
५	छाल	१३	माता का नाश
६	लता	१२	पिता का नाश
७	स्कन्ध	४	अपना नाश

विशेष—पीयूष धारा में 'फलं पुष्पं दलं शाखात्वक्लताकन्द एव च। सार्पवल्यां दशाक्षाङ्कस्वरविश्वार्कसागराः। नाडिकास्तद्भ्रवे बाले फलं ज्ञेयं यथाक्रममम्। श्रीः श्री राजभयं हानिर्मातृपित्रात्मसंक्षयः'। (मु० चि० २ प्र० ५५ श्लो० टी०) इस प्रकार है ॥ १३६–१३७ ॥

भास्करव्यवहारे—[2]

सार्पांशे प्रथमे राज्यं द्वितीये च धनक्षयः।
तृतीये जननीनाशश्चतुर्थे मरणं पितुः ॥ १३८ ॥

भास्कर व्यवहार में बताया है कि श्लेषा के प्रथम चरण में राज्य, दूसरे में धनक्षति, तीसरे में माता का नाश और चौथे चरण में पिता का नाश होता है ॥ १३८ ॥

---

१. ज्यो० नि० २४२ पृ०। २. ज्यो० नि० २४२ पृ०।

निबन्धचूडामणौ—

मुखं सार्पस्याद्यपादं द्वितीयं गलकं स्मृतम् ।
तृतीयं नाभिसंज्ञं च चतुर्थं पुच्छमीरितम् ॥ १३९ ॥

निबन्धचूडामणि में बताया है कि श्लेषा का प्रथम चरण मुख, दूसरा गला, तीसरा नाभि और चौथा चरण पूँछ होता है ॥ १३९ ॥

मुखादि में जन्म का फल

मुखे राज्यस्य संप्राप्तिर्गले सौख्यमुदाहृतम् ।
नाभौ बन्धुविनाशः स्यात्पुच्छे मृत्युर्न संशयः ॥ १४० ॥

जब कि मुख में जन्म होता है तो राज्य की प्राप्ति, गले में सुख, नाभि में बान्धवों का नाश और पूँछ में जन्म होने पर मृत्यु होती है ॥ १४० ॥

अथ त्रिशन्नाडयात्मकफलम्—

अब आगे तीस मुहूर्तों की संज्ञा करके उसके फल को भी कूर्मयामल के आधार पर बताते हैं ।

३० मुहूर्तों के स्वामी

कूर्मयामले त्रिशन्नाडयात्मकं मूलफलम्—
उक्तं च
राक्षसो यातुधान्यश्च सोमशुक्रौ फणीश्वरः ।
पितृमातृयमः कालो वैश्वदेवो महेश्वरः ॥ १४१ ॥
साध्यदेवः कुबेरश्च शुक्रो मेघो दिवाकरः ।
गन्धर्वो यमदेवश्च ब्रह्मा विष्णुःक्षयस्तथा ॥ १४२ ॥
ईश्वरो विष्णुरिन्द्रश्च पवनो मुनयस्तथा ।
षण्मुखो भृङ्गरीटी च गौरी लक्ष्मीः सरस्वती ॥ १४३ ॥
प्रजापतिश्च मूलस्य त्रिशन्मुहूर्तनायकाः ।
विपरीता पुनर्ज्ञेया अश्लेषामूलतः पुनः ॥ १४४ ॥

कूर्मयामल में कहा है कि मूल के प्रथम मुहूर्त का १ राक्षस, दूसरे का यातुधान्य २, तीसरे का ३ सोम, चौथे का ४ शुक्र, पाँचवें ५ का फणीश्वर, छटे ६ का पिता, सातवें का ७ माता, आठवें ८ का यम, नवें ९ का काल, दसवें १० का विश्वेदेव, ग्यारहवें ११ का महेश्वर, बारहवें १२ का साध्यदेव, तेरहवें का १३ कुबेर, चौदहवें १४ का शुक्र, पन्द्रहवें का १५ मेघ, सोलहवें १६ का सूर्य, सत्रहवें १७ का गन्धर्व, अठारहवें १८ का यमदेव, उन्नीसवें १९ का ब्रह्मा, बीसवें २० का विष्णु, इक्कीसवें २१ का क्षय, बाईसवें २२ का ईश्वर, तेईसवें २३ का विष्णु,

चौबीसवें २४ का इन्द्र, पच्चीसवें २५ का मुनि, छब्बीसवें २६ का षण्मुख, सत्ताइसवें २७ का भृङ्गरीटी, अट्ठाईसवें २८ का गौरी, उन्नतीसवें २९ का लक्ष्मी और तीसवें ३० मुहूर्त का स्वामी सरस्वती होती है ॥ १४१–१४४ ॥

अशुभ मुहूर्त ज्ञान

आद्यो द्वितीयः षष्ठश्चाष्टमो नवम एव च।
अष्टादशस्त्वेकविंशश्चाष्टाविंशन्मुहूर्तकाः ॥ १४५ ॥
दुःखदा मूलनक्षत्रे कथिता पूर्वसूरिभिः ॥

१, २, ६, ८, ९, १८, २१, २८ संख्या वाले मुहूर्त दुःखदाता होते हैं, ऐसा पूर्वाचार्यों ने कहा है ॥ १४५-१४५½ ॥

अब आगे पहिले कूर्मयामल में वर्णित मूल के निवास स्थान को मासों के क्रम से विविध ग्रन्थों के वाक्यों से बताते हैं।

मूल की स्थिति ज्ञान

[1]कूर्मयामले—
पाताले ज्येफवैमार्गे स्वर्गे भाषाश्विमाघके ॥ १४६ ॥
पौषश्रवोर्जचैत्रेषु स्थितिर्मूलस्य भूतले ॥ १४७ ॥

कूर्मयामल में कहा है कि ज्येष्ठ (जेठ) व वैशाख, फागुन, अगहन में पाताल में, आषाढ़, भादों, क्वार, माघ, में स्वर्ग में, पूस, सावन, कार्तिक और चैत में मूल का निवास इस संसार में होता है ॥ १४५½–१४७ ॥

मणिमालायाम्—
फाल्गुने ज्येष्ठवैशाखे मार्गे मूले रसातले।
आषाढे चाश्विने माघे स्वर्गे भाद्रपदे स्थितिः ॥ १४८ ॥
श्रावणे कार्तिके चैत्रे पौषे च मृत्युमण्डले।
शुभं स्यात्स्वर्गपाताले मृत्युलोके च मृत्युदः ॥ १४९ ॥

मणिमाला में कहा है कि फागुन, जेठ, वैशाख, अगहन में रसातल में, आषाढ़, आश्विन, माघ, भादों में स्वर्ग में, सावन, कार्तिक, चैत, पूस मास में मूल का निवास मर्त्यलोक में होता है।

स्वर्ग व पाताल में मूल की स्थिति शुभावह और मर्त्यलोक में होने पर मरणदाता होती है ॥ १४८–१४९ ॥

रवियुक्ताश्विनी सौम्यादित्यहस्तादिकत्रयम्।
मैत्रं च रेवतीज्येष्ठा तदा मूलं न दोषकृत् ॥ १५० ॥

जब कि सूर्यवार से युक्त अश्विनी, बुध, सूर्य से युक्त हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा व रेवती नक्षत्र होता है तो मूल नक्षत्र दोषदायक नहीं होता है ॥ १५० ॥

१. ज्यो० नि० २४२ पृ०।

तृतीया दशमो षष्ठी शनिभौमसमन्विता ।
शुक्ला चतुर्दशी मूले जातं संहरते कुलम् ॥ १५१ ॥

तृतीया, दशमी, षष्ठी जब शनि या मंगल से युक्त हो या शुक्ल पक्ष की चौदस में उत्पन्न होने वाला अपने वंश का विनाशी होता है ॥ १५१ ॥

विशेष—कूर्मयामल में 'आद्यः षष्ठस्त्रयोविंशो द्वितीयो नवमोऽष्टमः । अष्टाविंशश्च मूलस्य मुहूर्ता दुःखदा जनौ' यह मुहूर्तों के आधार पर परिहार बताया है ॥ १५१ ॥

अथ मूलजातेऽर्भकदर्शनम्—

अब आगे मूल में पैदा हुए बालक का दर्शन कितने काल तक नहीं करना चाहिये, इसे विविध ग्रन्थों के वाक्यों से बताते हैं।

रुद्रयामले—

[1]शाक्रे पक्षं च गण्डांतं मूलयोर्वत्सराष्टकम् ।
मासानां नवकं सार्पे त्यजेत्सन्दर्शनं शिशोः ॥ १५२ ॥
भुक्तमूलर्क्षजं बालं षण्मासं नावलोकयेत् ।
ततः संदर्शनं कुर्याद्विर्ति वाञ्छन्ति पूर्वकम् ॥ १५३ ॥

रुद्रयामल में कहा है कि ज्येष्ठा में उत्पन्न बच्चे का १५ दिन, गण्डान्त व मूल में आठ वर्ष और आश्लेषा में नौ मास तक बालक का दर्शन नहीं करना चाहिये।

अभुक्त मूल में पैदा हुए का मुख ६ मास तक नहीं देखना और इसके पश्चात् शान्ति करके मुख देखना चाहिये ॥ १५२–१५३ ॥

[2]भुक्तमूलभवं बालं दिनानि सप्तविंशतिः ।
पित्रा नालोकनं कार्यं ततः शान्ति समाचरेत् ॥ १५४ ॥

अभुक्त मूल में जन्म ग्रहणकर्ता बालक का पिता को २७ दिन तक मुख नहीं देखना चाहिये तत्पश्चात् शान्ति करके देखना चाहिये ॥ १५४ ॥

गण्डान्तमूलसार्पेन्द्रपातवैधृतिदर्शजे ।
पैत्रोपरागजे शान्ति कुर्यात्तत्र दिने बुधः ॥ १५५ ॥

गण्डान्त, मूल, आश्लेषा, ज्येष्ठा, पात, वैधृति, अमा, पितृकार्य, ग्रहण में उत्पन्न की शान्ति मूलादि में करनी चाहिये ॥ १५५ ॥

मूल चरणवश मुख संदर्शन समय

मूलस्य प्रथमे पादे न पश्येच्च समाष्टकम् ।
द्वितीये तु चतुर्थं स्यात्तदर्द्धं तु तृतीयके ॥ १५६ ॥
षण्मासस्तु चतुर्थे तु तदंते सुखभाजनः ॥ १५७ ॥

---

१. ज्यो० नि० २४२ पृ० । २. ज्यो० नि० २४३ पृ० ।

मूल के प्रथम पाद में जन्म होने पर आठ वर्ष तक, दूसरे में चार वर्ष, तीसरे में दो वर्ष और चौथे में ६ मास तक दर्शन नहीं करना और इसके पश्चात् सुख से करना चाहिये ॥ १५६–१५७ ॥

अन्य नक्षत्रों में पुत्र मुख दर्शन निषेध समय

द्विमासश्चोत्तरादोषः पुष्ये चैव त्रिमासिकः।
पूर्वाषाढाष्टमे मासि चित्रा षण्मासकं फलम् ॥ १५८ ॥

नवमासं तथाश्लेषा मूले चाष्टकवर्षकम्।
ज्येष्ठापञ्चदशे मासि पुत्रदर्शनवर्जिता ॥ १ ९ ॥

उत्तरा में २ मास, पुष्य में ३ मास, पूर्वाषाढ़ा में ८ मास, चित्रा में ६ मास, आश्लेषा में ९ मास, मूल में ८ वर्ष और ज्येष्ठा नक्षत्र में पैदा होने वाले का १५ मास तक दर्शन पिता को नहीं करना चाहिये ।। १५८–१५९ ।।

उक्त दोषों में दान

तिथिगण्डे त्वनड्वाहं नक्षत्रे धेनुरुच्यते।
काञ्चनं लग्नगण्डे तु गण्डदोषो विनश्यति ॥ १६० ॥

तिथि गण्ड में बैल, नक्षत्र गण्ड में गाय और लग्न गण्ड में सुवर्ण का दान करने से गण्डदोष नहीं होता है ॥ १६० ॥

उत्तरे तिलपात्रं स्यात्पुष्ये गोदानमुच्यते।
अजाप्रदानं त्वाष्ट्रे स्यात्पूर्वाषाढे च काञ्चनम् ॥ १६१ ॥
उत्तरातिष्यचित्रासु पूर्वाषाढोद्भवस्य च।
कुर्याच्छान्तिं प्रयत्नेन नक्षत्रकरजां वुधः ॥ १६२ ॥

उत्तरा में तिलपूर्ण पात्र, पुष्य में गोदान, रेवती में बकरी का, पूर्वाषाढ़ा में सोने का दान करना चाहिये।

उत्तरा, पुष्य, चित्रा, पूर्वाषाढा में पैदा होने वाले की शान्ति उसी नक्षत्र में विधिपूर्वक करनी चाहिये ॥ १६१–१६२ ॥

अथ ज्येष्ठाजननविचारः—

अब आगे ज्येष्ठा नक्षत्र में जन्म लेने वाले के फलों को बताते हैं।

ज्येष्ठा चरण वश फल

ज्येष्ठं ज्येष्ठाद्यजो हन्ति द्वितीयेऽप्यथ सोदरम्।
तृतीये मातरं हन्ति स्वयंजातश्चतुर्थके ॥ १६३ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि ज्येष्ठा के प्रथम चरण में उत्पन्न होने वाला अपने बड़े भाई का, दूसरे में भी भाई का, तीसरे में माता का और चौथे में उत्पन्न स्वयं का विनाशी होता है ॥ १६३ ॥

प्रकारान्तर से

अन्य:—

ज्येष्ठजा श्रेष्ठजां हन्ति द्वितीये धनहानिदा।
तृतीये मातरं हन्ति पितरं हन्ति तुर्यके॥ १६४॥

ज्येष्ठा के पहिले पाद में उत्पन्न कन्या बड़ी बहिन का, दूसरे में धन का, तीसरे में माता का और चौथे में उत्पन्न होने पर पिता का नाश करने वाली होती है॥ १६४॥

पुन: प्रकारान्तर से

[1]अन्यस्तु—

ज्येष्ठाद्यपादजो वृद्धं बन्धुवर्गं द्वितीयजः।
धनं तृतीयजो हन्ति तथात्मानं चतुर्थजः॥ १६५॥

ज्येष्ठा के प्रथम चरण में पैदा होने वाला बड़े भाई का, दूसरे में बान्धव का, तीसरे में धन का और चौथे में स्वयं का नाशक होता है॥ १६५॥

जातक परिजात में कहा है 'ज्येष्ठाद्यपादेऽग्रजमाशु हन्याद् द्वितीयपादे यदि तत्कनिष्ठम्। तृतीयपादे पितरं निहन्ति स्वयं चतुर्थे मृतिमेति जातः' (९ अ० ५० श्लो०)॥

दशांश के आधार पर फल

अन्यदपि—

[2]ज्येष्ठादौ जननी माता द्वितीये जननी पिता।
तृतीये जननी भ्राता स्वयं माता चतुर्थके॥ १६६॥
आत्मानं पञ्चमे हन्ति षष्ठे गोत्रक्षयो भवेत्।
सप्तमे चोभयकुलं ज्येष्ठजातस्तु अष्टमे॥ १६७॥
नवमे श्वशुरं हन्ति सर्वं हन्ति दशांशके॥ १६८॥

ज्येष्ठा नक्षत्र के पहिले दशांश में जन्म होने पर नानी, दूसरे में नाना, तीसरे में मामा, चौथे में माता का, पाँचवें में स्वयं का, छठे में वंश का, सातवें में दोनों कुलों का, आठवें में बड़े भाई, नवें में श्वसुर का, और ज्येष्ठा के दशवें हिस्से में समस्त का विनाशी होता है॥ १६६–१६८॥

जातक पारिजात में कहा है 'विभक्ता दशभिर्ज्येष्ठानक्षत्राखिलनाडिकाः। आद्यंशे जननीमाता द्वितीये जननीपिता॥ तृतीये जननीभ्राता यदि माता चतुर्थके। पञ्चमे जाततनयः षष्ठे गोत्रविनाशकः॥ सप्तमे चोभयकुलं त्वष्टमे वंशनाशनम्॥ नवमे श्वसुरं हन्ति सर्वं हन्ति दशांशके॥ भौमवासरयोगेन ज्येष्ठाजा ज्येष्ठसोदरम्। भानुवासरयोगेन मूलजा श्वसुरं हरेत्' (९ अ० ४६–४९)॥ १६६–१६८॥

---

१. ज्यो० नि० २४५ पृ०।

२. ज्यो० सा० ६५पृ० १-२$\frac{1}{2}$=१६६-१६८।

पुनः मूलादि में जन्म का फल

गर्गः—

[1]मूलजा श्वशुरं हन्ति सार्पजा च तदङ्गनाम् ।
ज्येष्ठजा तु पतिज्येष्ठं देवरं तु द्विदैवजा ।। १६९ ।।

आचार्य गर्ग ने बताया है कि मूल में उत्पन्न होने वाली कन्या श्वसुर का, आश्लेषा में सास का, ज्येष्ठा में जेठ का और विशाखा में स्त्री अपने देवर का विनाश करने वाली होती है ।। १६९ ।।

नारदः—

[2]ज्येष्ठान्त्यपादजो ज्येष्ठं हन्ति बालो न बालिका ।
न बालिका तु मूलर्क्षे मातरं पितरं तथा ।। १७० ।।

ऋषि नारद ने बताया है कि ज्येष्ठा नक्षत्र के चौथे चरण में जन्म लेने वाला बालक व बालिका बड़े भाई को मारने वाले नहीं होते हैं । और कन्या मूल नक्षत्र में उत्पन्न होने पर माता पिता का विनाश करने वाली नहीं होती है ।। १७० ।।

[3]ज्येष्ठोत्पन्ना नरा नार्यो घ्नन्ति चन्द्रबलोज्झिते ।
कुलं वृद्धं पितुर्मातृपक्षजं च दिवानिशि ।। १७१ ।।

दिन रात में ज्येष्ठा में उत्पन्न होने वाला बालक व बालिका यदि निर्बल चन्द्र से युत होता है तो कुल, बड़े लोग, पिता और माता के पक्ष का विनाशी होता है ।।१७१।।

[4]ज्येष्ठान्त्यपादजातस्तु पितुः स्वस्य विनाशनम् ।
जायते नात्र सन्देहो दशाहाभ्यन्तरे यतः ।। १७२ ।।

ज्येष्ठा नक्षत्र के अन्तिम चरण में उत्पन्न होने वाला निश्चय ही दस दिन के भीतर पिता व अपना नाशक होता है ।। १७२ ।।

[5]गर्गः—

ज्येष्ठर्क्षे कन्यका जाता हन्ति शीघ्रं धवाग्रजम् ।
तस्माच्छान्तिं प्रवक्ष्यामि गण्डदोषप्रशान्तये ।। १७३ ।।

आचार्य गर्ग ने बताया है कि ज्येष्ठा नक्षत्र में पैदा होने वाली कन्या शीघ्र अपने पति के बड़े भाई का नाश करने वाली होती है । इसलिये गण्ड दोष नाश के लिये शान्ति को कह रहा हूँ ।। १७३ ।।

अथ मूलसार्पजातस्यापवादः—

अब आगे मूल, श्लेषा में उत्पन्न होने पर भी दोष नहीं होता है इसे विविध वाक्यों से बताते हैं ।

---

१. मु० चिं० ६ प्र० १९ श्लो० पी० टी० । २. ज्यो० नि० २४५ पृ० ।
३. ज्यो० नि० २४५ श्लो० । ४. ज्यो० नि० २४४ पृ० ।
५. ज्यो० नि० २४५ पृ० ।

[1]बादरायणः—

सार्पनैर्ऋतिगण्डान्तविषकन्यादियोगजाः ।
न स्युरुक्तफला लग्ने यदि तद्भङ्गदाः खगाः ॥ १७४ ॥

ऋषि बादरायण ने बताया है कि आश्लेषा, मूल, गण्डान्त, विषकन्यादि योग जन्य दोष जब कि लग्न में उसको दूर करने वाले ग्रह होते हैं तो नहीं होता है ॥ १७४ ॥

सारावल्याम् —

[2]गण्डान्तमूलजाता विषकन्याख्या भवन्ति नोक्तफलाः ।
यदि जन्मलग्नखेटास्तद्दोषस्यापहन्तारः ॥ १७५ ॥

सारावली में बताया है कि गण्डान्त, मूल व विषकन्या योग में उत्पन्न होने वाली कन्या स्वदोष से युक्त नहीं होती है जबकि लग्न में उस दोष के विनाशक ग्रह होते हैं ॥ १७५ ॥

[3]च्यवनः—

मूलसार्पादिजं दौष्ट्यं स्यादपश्यति लग्नपे ।
सक्रूरे विबले खेटे शुभदृष्टिविवर्जिते ॥ १७६ ॥

ऋषि च्यवन जी ने बताया है कि मूल, श्लेषादि जन्य दोष उसी स्थिति में होता है जबकि लग्न का स्वामी पाप ग्रह के साथ बलहीन, शुभ ग्रह की दृष्टि से रहित होता है ॥ १७६ ॥

विशेष—ज्योतिर्निबन्ध में 'सक्रूरेऽब्जे च विबले' 'शुभ दृष्टि से हीन पाप के साथ निर्बल चन्द्रमा से लग्नेश अदृष्ट हो तो'। यह उचित पाठ यवन जी के नाम से उद्धृत है ॥ १७६ ॥

[4]ब्रह्मर्षिसंहितायाम्—

पितरं हन्ति मूलाद्यपादेऽन्यत्र च मातरम् ।
पितृमातृग्रहौ न स्तो यद्योजसमराशिगौ ॥ १७७ ॥

ब्रह्मर्षि संहिता में बताया है कि बालक मूल के प्रथम चरण में पिता और दूसरे में माता का विनाशी होता है। यदि पिता, माता ग्रह क्रम से ओज, सम राशि में नहीं हों तो नाश होता है ॥ १७७ ॥

पिता मातादि संज्ञक ग्रह

बृहज्जातके—

दिवार्कशुक्रौ पितृमातृसंज्ञितौ शनैश्चरेन्दू निशि तद्विपर्ययात् ।
पितृव्यमातृष्वसृसंज्ञितौ तावथोजयुग्मर्क्षगतौ तयोः शुभौ ॥१७८॥

---

१. ज्यो० नि० २४२ पृ०। २. ज्यो० नि० २४२ पृ०।
३. ज्यो० नि० २४२ पृ० यवन के नाम से। ४. ज्यो० नि० २४२ पृ०।

बृहज्जातक में कहा है कि यदि दिन में गर्भाधान या जन्म हो तो सूर्य की पिता, शुक्र की माता, तथा रात में जन्मादि होने पर शनि की पिता और चन्द्रमा की माता संज्ञा होती है। इसके विपरीत पितृव्य व मातृष्वसृ संज्ञा होती है। अर्थात् दिन में जन्म होने पर शनि की चाचा, चन्द्रमा की मौसी, और रात में उत्पत्ति होने पर सूर्य, चाचा शुक्र मौसी संज्ञा वाला होता है। इन ग्रहों में पिता, चाचा संज्ञक विषम राशि में होने पर पिता, चाचा को शुभ फल दाता होते हैं। माता व मौसी संज्ञक सम राशि में होने पर माता मौसी को शुभ फल देने वाले होते हैं। इसके उलटे में अशुभ होता है॥ १७८॥

अथ मूलशान्तिः—

अब आगे मूल शान्ति की विधि को बताते हैं।

शान्ति करने का समय

अदर्शनपक्षे विशेषः।

सद्वारे सत्तिथौ भेषु गुरुपुष्यादिके शुभे।
सुलग्नेऽब्जबलं लब्ध्वा मूलादुत्थभयच्छिदे॥ १७९॥
विधेयं शान्तिकं यच्च यथावित्तानुसारतः।
काले दर्शनयोग्ये वा मासान्ते द्वादशेह्नि वा॥ १८०॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि विशेष करके तब जबकि बालक का मुख देखना निषेध हो शुभ वार, तिथि, गुरु, पुष्यादि शुभ नक्षत्र, और शुभ लग्न में चन्द्रबल प्राप्त करके मूलोत्पन्न दोषनाश हेतु अपने विभव के अनुसार मुख देखने के लिये विहित समय में या मास के अन्त में या बारहवें दिन शान्ति करनी चाहिए॥ १७९-१८०॥

उत्पलाचार्यवृत्तौ—

मूलमुत्थं दुष्टफलं परित्यागाद्विलीयते।
शिशोरदर्शनाद्वापि दानहोमजपैरपि॥ १८१॥

उत्पलाचार्य वृत्ति में कहा है कि मूलोत्पन्न दूषित फल त्याग से विलीन होता है अथवा बालक के अदर्शन या दान होम जपादि से दूर होता है॥ १८१॥

श्रीपतिः—

शतौषधीमूलमृदम्बुरत्नैः सबीजगर्भैः कलशैः समन्त्रैः।
कुर्याज्जनित्रीपितृबालकानां स्नानं शुभार्थी सह होमदानम्॥१८२॥

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि जिन कलशों में शतौषधि, सप्तमृत्तिका, जल, रत्न पड़े हुए हैं उनसे मन्त्रों के द्वारा माता, बालक, तथा पिता को स्नान कराना और शुभेच्छु को होम दानादिक करना चाहिए॥ १८२॥

[1]शतौषधिनामानि—

शतौषधियों के नाम

पुराणे—

बर्हिः शिखा १ हरिक्रान्ता २ सहदेवी ३ पुनर्नवा ४।
शरपुङ्खा ५ वराही च ६ काकजङ्घा ७ सुलक्ष्मणा ८ ॥ १८३ ॥
तुम्बिका चैव ९ कर्कन्धूः १० कर्पूरी ११ कारवेल्लिका १२।
कर्कोटी १३ चैव चक्राङ्का १४ श्वेतार्को १५ व्याघ्रपत्रकः १६ ॥१८४॥
रुदन्ती १७ चाश्वगन्धा च १८ मुसली १९ गिरिकर्णिका २०।
इन्द्रवारु २१ ण्यपामार्गः २२ शङ्खपुष्पी २३ कुमारिका २४ ॥१८५॥
शल्लकी २५ वाथ गन्धारी २६ निर्गुण्डी २७ देवदारिका २८
वटः २९ शमी ३० तथा प्लक्षः ३१ पालाशा ३२ श्वत्थ एव च ॥१८६॥
चूत ३४ श्चोदुम्बरो ३५ जम्बू ३६ नंदीवृक्षो ३७ थ वेतसः ३८
पुन्नागो ३९ प्यर्जुनोऽ ४० शोको ४१ बकुलो ४५ श्मन्तकस्तथा ४३ ॥१८७॥
साल ४४ स्ताल ४५ स्तमालश्च ४६ पाटलः ४७ शतपत्रिका ४८
मधूकश्च ४९ शिरीषश्च ५० श्रीवृक्षो ५१ बृहतीद्वयम् ५२॥५३ ॥१८८॥
बला ५४ चातिबला ५५ चैव पाठा ५६ नागबली ५७ तथा।
जाती ५८ वकुलकश्चैव ५९ केतकी ६० कदली ६१ तथा ॥ १८९ ॥
मातुलिङ्गी ६२ जयन्ती च ६३ यवानी ६४ पुंड्रिका ६५ तथा।
द्रोणपुष्पी ६६ तथा कुंभी ६७ श्रीपर्णी ६८ दमनस्तथा ६९ ॥ १९० ॥
चंपकः ७० पद्मकश्चैव ७१ तथा कांचनपुष्पिका ७२
सिद्धेश्वरी ७३ च वदरी ७४ राजवृक्षो ७५ धवस्तथा ७६ ॥ १९१ ॥
कुन्दश्च ७७ मुचकुन्दश्च ७८ गोजिह्वा ७९ क्षीरकन्दुका ८०।
दाडिमी ८१ बीजपूरी च ८२ ब्राह्मी ८३ चामलकी ८४ तथा ॥ १९२ ॥
भृङ्गराज ८५ अधोपुष्पी ८६ मत्स्याक्षी ८७ चाटरूषका ८८।
तरंगिणी ८९ गुडूची ९० च निशाह्वा ९१ शतमूलिका ९२ ॥ १९३ ॥
बाकुची ९३ काकजंघा ९४ च बर्बरी ९५ तुलसी ९६ तथा।
कुशः ९७ काश ९८ श्चक्षुमूलं ९९ तथा सर्षपमूलकम् १०० ॥ १९४ ॥

पुराण में कहा है कि मोरपंखी १, विष्णुक्रान्ता २, सहदेवी ३, पुनर्नवा ४, शरपुंखा ५, वराही ६, काकजँघा ७, सुलक्ष्मणा ८, तुम्बिका ९, कर्कन्धू १०, कर्पूरी ११, कारवेल्लिका १२, कर्कोटी १३, चक्राङ्का १४, सफेद आक १४, व्याघ्र पत्ता १६, रुदन्ती १७, अश्वगन्धा १८, मुसली १९, गिरिकर्णिका २०, इन्द्रवारुणी २१,

१. ज्यो० नि० २४३ पृ०।

अपामार्ग १२, शङ्खपुष्पी २३, कुमारिका २४, शल्लकी २५, गँधारी २६, निर्गुण्डी २७, देवदारिका २८, वट २९, शमी (छोंकरा) ३०, प्लक्ष ३१, ढाक ३२, पीपल ३३, आम ३४, गूलर ३५, जामुन ३६, नन्दीवृक्ष ३७, वेतस (लतर) ३८, पुन्नाग ३९, अर्जुन ४०, अशोक ४१, मौलसरी ४२, अश्मन्तक ४३, साल ४४, ताल ४५, तमाल ४६, पाटल ४७, शतपत्रिका ४८, महुआ ४९, शिरीष ५०, श्रीवृक्ष ५१, बृहती ५२, दूसरी बृहती ५३, बला ५४, अतिबला ५५, पाठा ५६, नागवल्ली ५७, जाती ५८, बकुलक ५९, केतकी ६०, केला ६१, मातुलिङ्गी ६२, जयन्ती ६३, यवानी ६४, पुण्ड्रिका ६५, द्रोणपुष्पी ६६, कुम्भी ६७, श्रीपर्णी ६८, दमन ६९, चम्पक ७०, पदमक ७१, काँचन पुष्पिका ७२, सिद्धेश्वरी ७३, बदरी ७४, धव ७५, राजवृक्षा ७६, कुन्द ७७, मुचकुन्द ७८, गोजिह्वा ७९, क्षीरकन्दुका ८०, दाडिमी ८१, बीजपूरी ८२, ब्राह्मी ८३, आमलकी ८४, भृङ्गराज ८५, अधोपुष्पी ८६, मत्स्याक्षी ८७, आटरूषका ८८, तरंगिणी ८९, गुडूची ९०, निशाह्वा ९१, शतमूलिका ९२, वाकुची ९३, काकजंघा ९४, बर्बरी ९५, तुलसी ९६, कुश ९७, काश ९८, इक्षुमूल ९९, सर्षपमूल १०० ये औषधियां होती हैं ॥ १८३–१९४ ॥

वसिष्ठ संहिता में कहा है—'श्रीवृक्षबिल्वखदिरविष्णुक्रान्ता पुनर्नवाः । देवदारुजटामांसीसहदेवीमुराशिवाः । फलिनी बकुला जातिर्लता रंजिष्ठसंज्ञिकाः । वटप्लक्षाम्रनीवारखदिरामल्लिकार्जुनाः' ॥ दमयन्ती महाजाती निम्बोशीरहरिद्रकाः ॥ सर्पाक्षी तुलसी रौद्रकुटादाडिमचम्पकाः । मातुलुङ्गजपात्वष्टी कर्णिकारोर्गकाञ्चनाः । सेवतीपनसद्राक्षा विशाक्षी श्वेतसर्षपाः ॥ राजीवकुंदमुकुलनीलोत्पलकरञ्जकाः । पुन्नागचन्दनद्रोणमंदरो हेमदुग्धकः । रक्तचन्दनजंबीरयूथिकागृहमल्लिकाः । सम्पर्कसिन्दुवारेन्द्ररक्तधत्तूरखाण्डिमाः ॥ अपामार्गोरुपालाश बृहती करवीरकाः । नद्यावर्तकुबेराक्षापाटलीहेमपुष्पिकाः ॥ शिरीषामलकाशोकरक्तागस्तिकपित्थकाः । बंधूकभृङ्गराजाख्यकृष्णवीमाधवीलताः । चतुर्जातो बर्हिशिखा कुटजो मधुबिम्बकः । तमालतरुपुष्पारुपुष्पाख्यश्चक्रमर्दिनी ॥ व्याकुली शाल्मली मौडीरास्नाखर्वपटोलिकाः । महाखार्जुरिकानारिकेलाख्यास्ते शतद्रुमाः' (१८ अ० १०७–११६ श्लो०) ॥ १८३–१९४ ॥

मूलानि शतमूलानि—

अलाभे चोक्तवृक्षाणां सद्वृक्षाणां समाहरेत् ।
एवं मूलशतं ग्राह्यं ततः कुंभे विनिक्षिपेत् ॥ १९५ ॥

इनमें से किसी वृक्ष की प्राप्ति न हो तो किसी शुभ वृक्ष की जड़ लेनी चाहिये । इस प्रकार १०० वृक्षों की जड़ को लेकर कलश में छोड़ना चाहिये ॥ १९५ ॥

तदलाभे

विष्णुक्रान्तासहदेवी तुलसी तु शतावरी ।
मूलानीमानि गृह्णीयाच्छताभावे विशेषतः ॥ १९६ ॥

इनके अभाव में अर्थात् १०० की लब्धि न होने पर विष्णुक्रान्ता, सहदेवी, तुलसी और शतावरी की जड़ ग्रहण करनी चाहिये ॥ १९६ ॥

विशेष—यह वाक्य सर्वोषधि या यों समझिये कि दश वस्तु के न मिलने पर उचित है क्योंकि 'होरारत्न' में 'दशालभे विशेषतः' ऐसा प्राप्त होता है ॥ १९६ ॥

शतौषधीनामभावे तु गृह्णीयात्सर्वमौषधम् ॥ १९७ ॥

शतौषधि न मिलने पर सर्वोषधि का ग्रहण करना चाहिये ॥ १९७ ॥

सर्वोषधिनामानि—

सर्वोषधि नाम

कर्णिकारं वचं कुष्ठं शालेयं रजनीद्वयम् ।
सुण्ठीचंपकमुस्ता च सर्वौषधिगणाः स्मृताः ॥ १९८ ॥

१ कर्णिकार, २ वच, ३ कुष्ठ, ४ शालेय, ६, ७ रजनीद्वय, ८ सुण्ठी, ९ चम्पक, १० मुस्ता, ये सर्वोषधि समुदाय होता है ॥ १९८ ॥

विशेष—होरारत्न में १० नाम हैं। जैसे 'कुलमांसी हरिद्रे द्वे मुराशैलेयचन्दनम् । वचा चम्पकहस्ताश्च सर्वौषध्यो दशैव हि' (२ अ० ७४ श्लो०) ॥ १९८ ॥

७ प्रकार की मिट्टी का ज्ञान

अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात्संगमाद्ध्रदात् ।
राजद्वाराच्च गोष्ठाच्च मृद्ग्राह्या कुंभगे क्षिपेत् ॥ १९९ ॥

१ घोड़ा के स्थान की, २ हाथी के स्थान की, ३ दीमक द्वारा निकाली गयी, ४ संगम स्थल की, ५ तालाव की, ६ राजद्वार की और ७ गौशाला की मिट्टी लेकर कलश में छोड़नी चाहिये ॥ १९९ ॥

विशेष—होरारत्न में ८ मृत्तिकाओं का उल्लेख है 'गजाश्वरथ्यावल्मीकसङ्गम-स्थानसंभवाः । ह्रदगोराजनगरद्वारतश्चाष्टमृत्तिकाः' (२ अ० ६२ श्लो०) ॥ १९९ ॥

पाँच रत्नों के नाम

वज्रमौक्तिकवैडूर्यपुष्परागेन्द्रनीलकम् ।
पञ्चरत्नमिदं प्रोक्तं मन्त्रैः कुम्भे विनिक्षिपेत् ॥ २०० ॥

१ हीरा, २ मोती, ३ लहसुनिया, ४ पुखराज, ५ इन्द्रनील ये पाँच रत्न होते हैं। इनको मन्त्रों से घड़े में छोड़ना चाहिये ॥ २०० ॥

पञ्चगव्य का ज्ञान

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः समाहरेत् ।
पञ्चगव्यमिदं कुंभे क्षिपेद्गजमदान्वितम् ॥ २०१ ॥

१ गाय का मूत्र, २ गाय का गोवर, ३ दूध, ४ दही, ५ घी इन पाँच गव्यों को हाथी के मद के साथ घड़े में छोड़ना चाहिये ॥ २०१ ॥

राजतं काञ्चनं ताम्रं विद्रुमं तीर्थवारि च।
निक्षिपेद्धेममूलं च दशाष्टयवनिर्मितम् ॥ २०२ ॥

चाँदी, सोना, तांवा, मूंगा, तीर्थों का जल और अठारह यवपरिमित सुवर्ण मूल घड़े में छोड़ना चाहिये ॥ २०२ ॥

देवदारुं च शैलेयं पद्मं नीलोत्पलं तथा।
वचां लोध्रं प्रियंगुं च जलदं श्वेतसर्षपान् ॥ २०३ ॥
धात्रीफलं च तगरुं निशा मांसीपुरस्तथा।
उशीरं चन्दनं कुष्ठं शतच्छिद्रे घटे क्षिपेत् ॥ २०४ ॥

देवदारु, छलीरा, कमल, नीलकमल, वच, लोध, कांगुनी, जलद, सफेद सरसों, धात्री फल, तगरु, निशा, मांसी, पुर, उशीर, चन्दन, कुष्ठ को सौ १०० छेदवाले घड़े में छोड़ना चाहिये ॥ २०३–२०४ ॥

शतरंध्रे घटे नव्ये सर्वमेतत्प्रपूरयेत्।
रन्ध्रतो निर्गतैस्तोयैः स्नापयेत्पितरौ शिशुम् ॥ २०५ ॥

शत १०० छेदवाले नवीन घड़े में छोड़कर छेदों से निकले हुए पानी से माता, पिता व वालक को स्नान कराना चाहिये ॥ २०५ ॥

वंशपात्रोपरिन्यस्त – शतच्छिद्रघटोदकैः ।
पितृमातृशिशूनां तन्मन्त्रैः स्नानं तु कारयेत् ॥ २०६ ॥

वांस से निर्मित पात्र के ऊपर इस सौ छेदवाले घड़े को रखकर उससे निकले हुए जल से पिता, माता व वालक को उनके मन्त्रों से स्नान कराना चाहिये ॥ २०६ ॥

स्वरूप ज्ञान

मूलरूपं विधातव्यं श्यामं कुणपवाहनम्।
खड्गखेटधरं चोग्रं द्विभुजं च वृकाननम् ॥ २०७ ॥

मूल नक्षत्र का रूप (रंग) काला है। मुरदा की सवारी वाला, तलवार और खेट को धारण किये हुए, उग्र, दो हाथ वाला, वैल के मुख के समान है ॥ २०७ ॥

स्थापयेन्नवग्रहांश्चैव वस्त्रगन्धादिभिर्यजेत्।
चरुं च श्रपयेत्तत्र नैर्ऋतं दुष्टवारुणम् ॥ २०८ ॥

नव ग्रहों की स्थापना करके वस्त्र, चन्दनादि से उनकी पूजा करनी चाहिये तथा चरु बनाकर, उससे हवन करके मूलजन्य पाप का नाश करना चाहिये ॥ २०८ ॥

जुहुयादाज्यभागान्तं पायसं नैर्ऋतिं ततः ।
पुष्पस्नानोक्तमन्त्रैश्च स्नापयेद्दम्पती शिशुम् ॥ २०९ ॥

आज्य भाग तक सामान्य हवन करना और मूल का खीर से हवन करके, पुष्पस्नानोक्त मन्त्रों से पिता, माता व बालक को स्नान कराना चाहिये ॥ २०९ ॥

प्रच्छादनोर्णवस्त्रादि दद्याद्धेनुं च काञ्चनम् ।
स्नानं कुम्भाम्बुभिः कुर्याद्द्विजभोज्यं शान्तिकृद्भवेत् ॥ २१० ॥

चदरा, ऊन के वस्त्रादि, गाय और सोने का दान करना चाहिये एवं कलश के जल से स्नान करना और ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये । इससे शान्ति होती है ॥ २१० ॥

आश्लेषा शान्ति ज्ञान

अथाश्लेषाशान्तिः—

अब आगे आश्लेषा में जन्म लेने वाले की शान्ति विधि को बताते हैं ।

आश्लेषायां तु जातानां शान्तिं वक्ष्याम्यतः परम् ।
जातस्य द्वादशाहे च शान्तिहोमं समाचरेत् ॥ २११ ॥

आश्लेषा में पैदा होने वाले लड़का, लड़की की शान्ति विधि को मैं अब आगे कहता हूँ । पैदा होने के पश्चात् बारहवें दिन इसकी शान्ति करनी चाहिए ॥ २११ ॥

मानवसंहितायाम्—

असंभवे तु जन्मर्क्षे अन्यस्मिन्वा शुभे दिने ।
स्नानाभ्यंगादिभिस्तस्मिन्वरयेत द्विजोत्तमान् ॥ २१२ ॥

मानव संहिता में कहा है कि यदि जन्म नक्षत्र में करना सम्भव न हो तो किसी भी शुभ दिन में स्नानादि से पवित्र श्रेष्ठ ब्राह्मणों को इस कार्य में नियुक्त करना चाहिए ॥ २१२ ॥

विभवे पञ्च कुम्भांस्तु द्वयं वा तदलाभतः ।
देवतास्थापने चैकमेकं रुद्राभिषेचने ॥ २१३ ॥

यदि कर्ता धनवान् हो तो पाँच कलश स्थापित करके और पाँच की सामर्थ न हो तो दो घट स्थापन करना चाहिये । एक कलश नक्षत्र देवता स्थापनार्थ और दूसरा रुद्रदेव का अभिषेचन करने के लिये करना चाहिये ॥ २१३ ॥

नागप्रतिकृतिं कुर्यात्सौवर्णीं पलमानतः ।
अथवा शक्तितः कुर्याद्वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ॥ २१४ ॥

१ पल के बराबर सोने की सर्प की आकृति बनवाना अथवा धन का लोभ छोड़कर अपने ऐश्वर्य के हिसाब से रचना कराना चाहिये ॥ २१४ ॥

मूले यत्तु विधानं स्यात्तत्समं सर्पदैवते ।
कद्रुद्राय प्रचेतस इति मंत्रविशेषतः ॥ २१५ ॥

मूल नक्षत्र शान्ति में जो विधान बताया गया है वही आश्लेषा की शान्ति में है किन्तु 'कद्रुद्राय प्रचेतसः' यह मन्त्र अधिक है ।। २१५ ।।

नैवेद्यं ह्यामिषं चास्ति पूजादानकृतिः समाः ।
अयुतं हवनं ह्यत्र तिलैः साज्यैः प्रधानकैः ।। २१६ ।।
ब्रह्मवृक्षस्य समिधः शतमष्टोत्तरं शुभाः ।

यहाँ नैवेद्य माँस सहित है वह भी पूजा दान आदि कार्य मूल के समान होता है । १० दस हजार आहुति तिल व घी से १०८ पीपल की शुभ समिधाओं से हवन करना चाहिए ।। २१६ ।।

शुभा इति द्वादशांगुलयुताः साग्रा अवक्रा अव्रणा असत्वाश्च ।

शुभ का आशय है कि १२ अङ्गुल लम्बी, आगे से पतली, सीधी, विना घाव की कमजोर शुभ होती है ।

अन्यत्सर्वं मूलविधानवत्—

अवशिष्ट सब मूल की तरह समझना चाहिये ।

पूजा प्रकार

अत्रामिषे विशेषोक्तिः—

रक्तचन्दनपुष्पाद्यैः पुष्पैः कृष्णसितादिभिः ।
मेषश्रृंगादिधूपैश्च घृतदीपैस्तथैव च ।। २१७ ।।
सुरापोलिकमांसाद्यैर्नैवेद्यं भोजनादिभिः ।
मत्स्यमांससुरादीनि ब्राह्मणानां विवर्जयेत् ।। २१८ ।।

लाल चन्दन व फूल, काले, सफेद फूल, बकरे की सींग की धूप, घी का दिया, शराब, कच्चा माँस नैवेद्य में (भाग में) लाना और भोजन में मछली, माँस शराब ब्राह्मणों को नहीं उपयोग करना चाहिये ।। २१७–२१८ ।।

यहाँ मांस के लिए विशेष कथन है ।

सुरा ज्ञान

सुरास्थाने प्रदातव्यं क्षीरं सैंधवमिश्रितम् ।
पायसं लवणोपेतं मांसस्थाने प्रकल्पयेत् ।। २१९ ।।

शराब के स्थान पर दूध में सेंधा नमक मिलाकर और माँस की जगह खीर में नमक छोड़कर अर्पण करना चाहिये ।। २१९ ।।

अब आगे ज्येष्ठा शान्ति विधि को बताते हैं ।

अथ ज्येष्ठाशांतिः—

सुदिने शुभनक्षत्रे चन्द्रताराबलान्विते ।
सूतकान्तेथवा कुर्याज्ज्येष्ठाशांति विधानतः ।। २२० ।।

शुभ दिन, नक्षत्र में चन्द्र व तारा बल से युक्त लग्न में आशौच के पश्चात् विधि पूर्वक ज्येष्ठा की शान्ति करनी चाहिए ॥ २२० ॥

वज्रांकुशधरं देवमैरावतगजान्वितम् ।
कुर्याच्छचीपतिं रम्यं देवेन्द्रं सुरनायकम् ॥ २२१ ॥

उस शान्ति में वज्र व अंकुश को धारण किये हुए, ऐरावत हाथी से युक्त इन्द्राणी के स्वामी, देवेन्द्र, देव स्वामी की सुन्दर प्रतिमा बनवानी चाहिये ॥ २२१ ॥

प्रतिमा की तौल

कर्षमात्रसुवर्णेन कर्षार्द्धेनाथ पादतः ।
तद्विधानं प्रकुर्वीत वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥ २२२ ॥

इन्द्र की एक कर्ष भर सोने की या आधे कर्ष की या कर्ष के चतुर्थांश की प्रतिमा बनवाकर धन लोभ छोड़कर विधि विधान से शान्ति करनी चाहिये ॥ २२२ ॥

पुनः लोकपाल के गुणों से युक्त

शांतितंदुलसंपूर्ण कुम्भस्थोपरि पूजयेत् ।
इन्द्रायेंद्रो मरुत्वत इति मंत्रेण वाग्यतः ॥ २२३ ॥
गंधपुष्पैर्धूपदीपैर्नानाभक्ष्यसमन्वितैः ।
पूजयेद्विधिना विप्रं लोकपालगुणान्वितम् ॥ २२४ ॥

शान्ति (साठी) के चावलों से पूर्ण घड़े के ऊपर मूर्ति रखकर 'इन्द्रायेन्द्रो मरुत्वत' इस मन्त्र से शान्त (चुप) होकर चन्दन, फल, नाना प्रकार के नैवेद्य से पूजन करना चाहिए । ब्राह्मण की विधि से पूजा करनी चाहिये ॥ २२३–२२४ ॥

रक्तवस्त्रद्वयोपेतं पूजयेत्सुरनायकम् ।
तत्र संस्थापयेत्कुम्भांश्चतुर्दिक्षु विशेषतः ॥ २२५ ॥

फिर दो लाल वस्त्रों से युक्त इन्द्र की पूजा करनी चाहिए । इस के बाद चार ४ कलशों की चारों दिशाओं में स्थापना करनी चाहिए ॥ २२५ ॥

तन्मध्ये स्थापयेत्कुम्भं शतच्छिद्रसमन्वितम् ।
पुण्योदकसमायुक्तान् वस्त्रयुग्मेन वेष्टितान् ॥ २२६ ॥

उन चारों के बीच में १०० छिद्रों से युक्त एक अन्य कलश स्थापित करना चाहिए । और उनमें तीर्थों से आनीत जल छोड़कर दो-दो वस्त्रों से वेष्टित करना चाहिए ॥ २२६ ॥

कुम्भेषु विन्यसेद्धीमान्पञ्चगव्यं समन्त्रकम् ।
पञ्चामृतं पञ्चरत्नं मृत्तिका पञ्चसंख्यका ॥ २२७ ॥
पञ्चवृक्षकषायांश्च पञ्चपल्लवकांस्तथा ।
सुवर्णकुशदूर्वाश्च शतौषधि विनिक्षिपेत् ॥ २२८ ॥

उक्त कलशों में मन्त्र के साथ पञ्चगव्य, पञ्चामृत, पञ्चरत्न, पाँच मिट्टी, पाँच वृक्षों की छाल या रस, पञ्चपल्लव, सुवर्ण, कुशा, घास और शतौषधि छोड़नी चाहिए ॥ २२७–२२८ ॥

पूजयेद्वारुणैर्मन्त्रैः कुम्भान् धीमान् प्रयत्नतः ।
त्वन्नो अग्ने जपेदादौ सत्वन्नोपि द्वितीयकम् ॥ २२९ ॥

समुद्रज्येष्ठा इति च इमं गङ्गे चतुर्थकम् ।
पूजयेद्वस्त्रपुष्पाद्यैश्चतुरः कलशानपि ॥ २३० ॥

पुनः प्रयत्नपूर्वक बुद्धिमान् को वारुण मन्त्रों से कलशों का पूजन करना चाहिये। प्रथम 'त्वंनो अग्ने' इसका फिर 'सत्वन्नो' का पुनः 'समुद्र ज्येष्ठा' का और चौथी बार 'इमं गंगे' का जप करना चाहिये तथा वस्त्र, पुष्पादि से चारों कलशों का भी पूजन करना चाहिये ॥ २२९–२३० ॥

जपं कुर्युः प्रयत्नेन मन्त्रैरेभिर्द्विजोत्तमाः ।
आनोभद्रा जपं चादौ भद्रा अग्नेर्द्वितीयकम् ॥ २३१ ॥

तृतीयं पुरुषं सूक्तं कद्रुद्राय चतुर्थकम् ।
आचार्यो मूलमन्त्रेण जपं कुर्याद्विशेषतः ॥ २३२ ॥

उत्तम ब्राह्मणों को इन मन्त्रों से प्रथम 'आनो भद्रा' का, दुबारा 'भद्रा अग्ने' का, फिर 'पुरुष सूक्त' का, बाद में 'कद्रुद्राय' का जप करना चाहिये और आचार्य को मूल के मन्त्र का विशेषकर जप करना चाहिये ॥ २३१–२३२ ॥

इन्द्रसूक्तं रुद्रजपं मृत्युञ्जयजपं ततः ।
इत्थं सम्पूज्य देवेन्द्रं वरुणं कुम्भसंस्थितम् ॥ २३३ ॥

सुसङ्कल्पविधानेन होमकर्म ततश्चरेत् ।
समिद्भिर्ब्रह्मवृक्षस्य शतमष्टोत्तरं ततः ॥ २३४ ॥

सर्पिषा चरुणा चैव मूलमन्त्रेण वाग्यतः ।
हुनेज्जाप्यं च तेनैव यतइन्द्र भवेति च ॥ २३५ ॥

और भी इन्द्रसूक्त का, रुद्र का, मृत्युंजय का जप करना चाहिये। इस प्रकार कलश पर स्थापित इन्द्र का पूजन करके, सुन्दर संकल्प विधान से होम, १०८ पीपल की समिधा से, घी, चरु से मूल मन्त्र से शान्त होकर करना चाहिये। जिस मन्त्र से जप करे, उसी से हवन भी करना चाहिये। क्योंकि इन्द्र, शिव यह अलग-अलग हैं ॥ २३३–२३५ ॥

तिलान्व्याहृतिभिर्हुत्वा शतमष्टोत्तरं पृथक् ।
भार्यां शिशुसमोपेतां यजमानं विशेषतः ॥ २३६ ॥
अभिषेकं प्रकुर्वीत सूक्तैर्वारुणसंज्ञकैः ।
समुद्रज्येष्ठादिभिर्मन्त्रैरिमं मे वरुणस्तथा ॥ २३७ ॥
द्यौःशान्त्यादिभिर्मन्त्रैरभिषेकं समाचरेत् ।
अभिषेकनिवृत्तौ तु यजमानः समाहितः ॥ २३८ ॥
शुक्लाम्बराणि धृत्वाथ कुर्यादाज्यावलोकनम् ।
रूपरूपं तु मन्त्रेण चित्रं तच्चक्षुरेव च ॥ २३९ ॥

१०८ आहुति व्याहृति से तिलों की देनी चाहिये। फिर बालक, माता, पिता का अभिषेक वारुण मन्त्रों से, समुद्र ज्येष्ठा से, इमंमे वरुण से, द्यौः शान्ति आदि से करना चाहिये। अभिषेक के बाद सावधान होकर सफेद वस्त्र धारण करके घी का अवलोकन 'रूपं रूपं' मन्त्र व 'चित्रन्देवानां' या 'तच्चक्षु' से करना चाहिये ॥ २३६–२३९ ॥

पुरतः देवता स्थित्वा धूपदीपनिवेदनम् ।
दद्याच्चाचमनं सम्यक्ताम्बूलार्घं तथैव च ॥ २४० ॥

फिर देवता के आगे स्थित होकर धूप, दीप का निवेदन कर आचमन कराना, पुनः ताम्बूल अर्पण कर अर्घ्य देना चाहिये ॥ २४० ॥

नमस्ते सुरनाथाय नमस्तुभ्यं शचीपते ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं गण्डदोषप्रशान्तये ॥ २४१ ॥

हे देवस्वामी नमस्कार आपको है। हे इन्द्राणी के पति, मैंने जो गण्डदोष शान्ति के लिए तुम्हें अर्घ्य दिया है, उसे ग्रहण कीजिये ॥ २४१ ॥

आचार्याय च गां दद्यात्सुशीलां च पयस्विनीम् ।
रक्तवर्णां वस्त्रयुतां सर्वालङ्कारसंयुताम् ॥ २४२ ॥

पुनः आचार्यजी को दुधार, भूषणों, वस्त्रों से युक्त लाल रंग की सीधी गाय का दान करना चाहिये ॥ २४२ ॥

वस्त्रयुग्मविधानं च यथाविभवसारतः ।
यक्षगन्धर्वसिद्धैश्च पूजितोसि शचीपते ॥ २४३ ॥
दानेनानेन देवेश गण्डदोषं विनाशय ।
अष्टोत्तरशतं संख्या कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ २४४ ॥

तेभ्योपि दक्षिणां दत्त्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत् ।
इमां कृत्वा ज्येष्ठाशान्ति यथाविध्युक्तमार्गतः ॥ २४५ ॥
ज्येष्ठानक्षत्रसम्भूतगण्डदोष प्रशान्तये ।
अज्ञानाद्वा यथा ज्ञानाद्वैकल्याद्वा धनस्य च ॥ २४६ ॥
यन्न्यूनमतिरिक्तं वा तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि ॥ २४७ ॥

वस्त्र युग्म का विधान अपने ऐश्वर्य के अनुसार करना चाहिये। हे इन्द्राणी के पति, आप तो यक्ष, गन्धर्व और सिद्धों से पूजित हो। इस दान से हे देवस्वामी इस गण्डदोष को दूर करो। फिर १०८ ब्राह्मणों को भोजन कराकर दक्षिणा भी देकर प्रणाम, क्षमायाचना करनी चाहिये। इस कहे हुए के अनुसार शान्ति करने पर ज्येष्ठा जन्य गण्डदोष शान्त हो जाता है। पुनः प्रार्थना करना। अज्ञान या ज्ञान से या धन के अभाव से जो कुछ मैंने अधिक या अल्प किया है, उसे आप क्षमा करने में समर्थ हैं। ॥ २४३–२४७ ॥

अब आगे एक नक्षत्र जनन शान्ति पिता माता भाई या वहिन के ही नक्षत्र में जन्म लेनेवाले की शान्ति विधि को बताते हैं।

[1]अथैकनक्षत्रजननशान्तिः—

समानभे यदा देवि पितापुत्रौ च सोदरौ।
भगिन्यो वा स्वबन्धू वा तदा पूर्वस्य नाशनम् ॥ २४८ ॥

हे देवि ! जव कि पिता-पुत्र या–भाई दो वहिनों या वान्धव एक नक्षत्र में उत्पन्न होते हैं तो पहिले पैदा हुए का नाश होता है ॥ २४८ ॥

वृद्धगार्ग्यः—

एकस्मिन्नेव नक्षत्रे पुत्र्योर्वा पितृपुत्रयोः।
प्रसूतिश्च तयोर्मृत्युर्भवेदेकस्य निश्चयः॥ २४९ ॥

वृद्ध गार्ग्य ने वताया है कि जव एक ही नक्षत्र में पुत्र-पुत्री या पिता-पुत्र का जन्म होता है तो निश्चय ही एक की मृत्यु होती है ॥ २४९ ॥

विधानं तत्र कर्तव्यं जन्मनक्षत्रपूजनम्।
नक्षत्रदेवता पूज्या त्वधिप्रत्यधिपूर्वकम् ॥ २५० ॥

एक नक्षत्र में जन्म होने पर जन्म नक्षत्र की शान्ति विधान से नक्षत्र के देवता अधि-प्रत्यधि देवता का पूजन करना चाहिये ॥ २५० ॥

यस्य ऋक्षस्य यद्द्रव्यं दक्षिणा विधिमन्त्रिणम्।
तच्च तस्य विधातव्यमृक्षदैवततुष्टये ॥ २५१ ॥

नक्षत्र देवता को प्रसन्न करने के लिए जो द्रव्य, मन्त्र, दक्षिणा विधान कहा गया है, उसको उसी रीति से करना चाहिये ॥ २५१ ॥

गृह्योक्तेन विधानेन हवनं तत्र कारयेत्।
भक्त्या हरिहरौ देवौ स्वर्णरूपमयौ शुभौ ॥ २५२ ॥

और अपनी गृह्य शाखोक्त विधि से हवन करना एवं भक्ति से हरि व हर की सुवर्ण मयी मूर्ति बनाकर पूजा करनी चाहिये ॥ २५२ ॥

१. ज्यो० नि० २४६ पृ०।

मूर्तिदानमन्त्रः—

विविधस्यास्य विश्वस्य पितरौ विश्वतोमुखौ ।
प्रीयेतां मूर्तिदानेन देवौ हरिहरावुभौ ॥ २५३ ॥

इस अनेक विध संसार के पिता और सर्वत्र दृष्टि रखने वाले विष्णु, और शिव इस मूर्तिदान से प्रसन्न हों ॥ २५३ ॥

दानं होमं विधेः पश्चाद्दानादन्वभिषेचनम् ।
अभिषेचनपूर्वात्र विधिपूजा स्मृता शिवे ॥ २५४ ॥

हवन के बाद दान, दान के पश्चात् अभिषेक और अभिषेक के बाद हे पार्वती ! विधि पूर्वक पूजा करनी चाहिये ॥ २५४ ॥

ततोभिगम्य गोविन्दशूलिनोश्च निकेतनम् ।
तूर्याणां च निनादेन जयघोषेण पार्वति ॥ २५५ ॥
पूजाविधिं समाप्यैवं सर्वोपस्करसंयुतम् ।
प्रार्थयेद्देवदेवेशौ लक्ष्मीशैलसुतेश्वरौ ॥ २५६ ॥

इसके बाद विष्णु व शिव के मन्दिर में भेरी आदि वाद्यों तथा जय उद्घोष के साथ जाकर वहाँ पूजा विधि का समापन करके समस्त उपस्कर के साथ विष्णु एवं शिव की प्रार्थना करनी चाहिये ॥ २५५–२५६ ॥

दण्डवत्प्रणिपातेन बन्दनीयौ पुनः पुनः ।
ततः स्वगृहमागत्य ब्राह्मणान् भोजयेत्सुधीः ॥ २५७ ॥
तोषयेद्दक्षिणादानैर्यथाशक्त्या वरानने ।
एवं कृते विधाने तु विघ्ननाशो भवेद्ध्रुवम् ॥ २५८ ॥

भूमि में डण्डे की तरह सोकर बार-बार प्रणाम करके अपने घर आकर ब्राह्मण भोजन कराके हे पार्वती, उन ब्राह्मणों को दक्षिणादि से प्रसन्न करना चाहिये । इस प्रकार करने से निश्चय ही विघ्न विलीन हो जाते हैं ॥ २५७–२५८ ॥

तुष्टिदं पुष्टिदं नृणां विधानं तत्र सुन्दरि ॥ २५९ ॥

हे सुन्दरि मनुष्यों के लिये यह विधान शान्ति पौष्टिकता और प्रसन्नता देनेवाला है ॥ २५९ ॥

[1]अथ कृष्णचतुर्दशीजननशान्तिः –

अब आगे कृष्ण पक्ष की चौदस में पैदा होनेवाले की शान्ति को बताते हैं ।

मन्दारस्थं सुखासीनं गर्गं मुनिवरं शुभम् ।
नमस्कृत्वा तु पप्रच्छ शौनको मुनिपुङ्गवः ॥ २६० ॥

मन्दार पर्वत पर सुख से बैठे हुए मुनिश्रेष्ठ शुभ गर्गजी से उत्तम ऋषि शौनकजी ने पूछा अर्थात् प्रश्न किया ॥ २६० ॥

---

१. ज्यो० नि० २४७ पृ० ।

शान्तिकर्माणि सर्वाणि त्वत्तो जानाम्यहं पुरा ।
अधुना श्रोतुमिच्छामि कृष्णपक्षचतुर्दशीम् ॥ २६१ ॥
दिवा वा यदि वा रात्रौ प्रसूतेः किं फलं वद ।
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां प्रसूतेः षड्विधं फलम् ॥ २६२ ॥

हे गर्गजी, पहिले मैं समस्त शान्ति कार्यों को आपसे जान चुका हूँ, इस समय मैं कृष्ण पक्ष की चौदस में जन्म लेनेवाले की शान्ति विधि जानने की इच्छा करता हूँ और दिन या रात में पैदा होने का क्या फल होता है, इसे बताइये ।

गर्गजी ने कृष्ण पक्ष की चौदस में पैदा होनेवाले का ६ प्रकार का फल बताया है ॥ २६१–२६२ ॥

चतुर्दशीं च षड्भागं कुर्यादादौ शुभं स्मृतम् ।
द्वितीये पितरं हन्ति तृतीये मातरं तथा ॥ २६३ ॥
चतुर्थे मातुलं हन्ति पञ्चमे वंशनाशनम् ।
षष्ठे तु धनहानिः स्यादात्मनो वंशनाशनम् ॥ २६४ ॥

गर्गजी ने बताया है कि चौदस की भोग की घटी में ६ का भाग देकर देखना कि यदि प्रथम षडंश हो तो शुभ, दूसरे में पिता मरण, तीसरे में माता की मृत्यु, चौथे में मामा का मरण, पाँचवें में वंश का नाश और छठे हिस्से में जन्म हो तो अपने वंश का नाश होता है ॥ २६३–२६४ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शान्तिं कुर्याद्विधानतः ।
आचार्यं वरयेद्धीमान् पुत्रदारसमन्वितम् ॥ २६५ ॥
स्वकर्मनिरतं शांतं श्रोत्रियं वेदपारगम् ।
सर्वालंकारसंयुक्तं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ २६६ ॥

इसलिये सर्व प्रयत्न से विधि पूर्वक शान्ति करनी चाहिये । और बुद्धिमान्, व्यक्ति जो पहले पुत्र स्त्री से युक्त, अपने कार्य में आसक्त, शान्त, श्रोत्रिय, वेद पारंगत, सब आभूषणों व लक्षणों से युक्त आचार्य का वरण करना चाहिये ॥ २६५–२६६ ॥

ब्राह्मणानृत्विजांश्चैव स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ।
रुद्राधिदेवता तस्याः कर्षमात्रसुवर्णतः ॥ २६७ ॥
तदर्द्धार्द्धेन वा कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ।
प्रतिमां कारयेच्छंभोः सर्वलक्षणसंयुताम् ॥ २६८ ॥
वृषभे च समासीनं वरदाभयपाणिनम् ।
शुद्धस्फटिकसंकाशं श्वेतमाल्यांबरान्वितम् ॥ २५६ ॥

इसके बाद स्वस्तिवाचन पूर्वक होता ब्राह्मणों का भी वरण करना तथा धन की कृपणता छोड़ कर शिवजी की १ कर्ष सुवर्ण की या ½ कर्ष की प्रतिमा बनवानी चाहिये ।

समस्त लक्षणों से युक्त शम्भु की प्रतिमा बैल पर स्थित अभय वरदान हाथ की मुद्रा, शुद्ध स्फटिक की प्रतिभा वाले, सफेद माला पहिने हुए, ऐसी बनवानी चाहिये ॥ २६७–२६९ ॥

त्र्यंबकेन च मन्त्रेण पूजां कुर्याद्विधानतः ।
स्थापयेच्चतुरः कुम्भान् चतुर्दिक्षु यथाक्रमम् ॥ २७० ॥
पुण्यतीर्थजलोपेतां धान्यस्योपरि विन्यसेत् ।
तन्मध्ये स्थापयेत्कुम्भं शतच्छिद्रसमन्वितम् ॥ २७१ ॥
पञ्चामृतं च रत्नानि पञ्चत्वक् पञ्चपल्लवान् ।
पञ्चधान्यं सुवर्णं च तत्तन्मन्त्रैर्विनिक्षिपेत् ॥ २७२ ॥
शतौषधानि निक्षिप्य श्वेतवस्त्रैश्च वेष्टयेत् ।
सर्वे समुद्रा सरितः तीर्थानि जलदानदाः ॥ २७३ ॥
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥ २७४ ॥
शेषं मूलशान्तिवत् ।

त्र्यम्बक मन्त्र से विधि पूर्वक पूजा करनी चाहिए । इस पूजा में चारों दिशा में चार कलश यथाक्रम स्थापित करके, पुण्य तीर्थ जल छोड़ कर सप्तधान्य के ऊपर विराजमान करना चाहिए, और बीच में एक घड़ा सौ छेद वाला स्थापित करके पंचामृत, पंचरत्न, पाँच छाल, पाँच पत्ता, पाँच धान्य, सुवर्ण उन उनके मन्त्रों से कलशों में छोड़ना तथा शतौषधि छोड़कर सफेद वस्त्र से लपेट देना चाहिये । और कहना चाहिये कि समस्त तीर्थ नदी, मेघ और समुद्र आकर मेरे यजमान के अरिष्ट को दूर करें । अवशिष्ट मूल की तरह समझना चाहिये ॥ २७०–२७४ ॥

[1]अथ सिनीवालीशान्तिः—

अब आगे सिनीवाली में जन्म लेने वाले की शान्ति विधि को बताते हैं ।

गर्गः—

सिनीवाल्यां प्रसूता स्याद्यस्य भार्या पशुस्तथा ।
गजाश्वमहिषी चैव शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥ २७५ ॥

आचार्य गर्ग ने बताया है कि जिसकी भार्या तथा पशु, हथिनी, घोड़ी, भैंस सिनीवाली में बच्चा पैदा करती है चाहे वह इन्द्र भी हो तो उसकी लक्ष्मी का हरण करती है ॥ २७५ ॥

विशेष—स्त्रीजातक में 'सिनीवाली प्रसूता' । पी० धा० व हो० र० में 'सिनीवाल्यां' 'गौरश्वी महिषी चैव' स्त्रीजातक में और 'गवाश्वं महिषी' यह पी० धा० व हो० र० में पाठ है ॥ २७५ ॥

---

१. ज्यो० नि० २४ पृ० ।

पशु उत्पत्ति के भेद

ये सन्ति सकलाश्चान्ये स्वप्रसादोपजीविनः ।
वर्जयेत्तानशेषांस्तु पशुपक्षिमृगादिकान् ।। २७६ ।।

जो कि अपने से पालित होते हैं पशु, पक्षी आदि यदि सन्तति पैदा करें तो दोषी और अपने बल से जो जीवन यापन करते हैं अर्थात् जंगली मृगादि पशु पक्षी होते हैं वह यदि प्रसूति से युक्त हों तो दोष नहीं होता है ।। २७६ ।।

कुहू प्रसूति फल

कुहूप्रसूतिरत्यर्थं सर्वदोषकरी महत् ।
यस्य प्रसूतिरेतस्य तस्यायुर्धनवर्द्धनम् ।। २७७ ।।

सर्वगण्डसमस्तत्र दोषोयं प्रबलो भवेत् ।
शान्ति विना विशेषेण परित्यागो विधीयते ।। २७८ ।।

परित्यागात्तत्र शान्ति कुर्याद्धीमान्विचक्षणः ।
तत्फलं तत्क्षणार्द्धेन पुनरेवानुपालनम् ।। २७९ ।।

कुहू में जिस घर में प्रसव होता है तो समस्त दोषों का आगमन बड़ा दोष होता है । और जिसका जन्म इसमें होता है उसकी आयु व जन की वृद्धि होती है ।। २७७ ।।

विशेष—मेरी दृष्टि में यह फल उचित नहीं प्रतीत होता क्योंकि इसकी जब शान्ति का विधान है तो धनादि का ह्रास ही उचित तथा स्त्रीजातक में 'सर्वदोषकरी मता' 'प्रसूतिरेतेषां तस्यायुर्धननाशिनी ।' होरारत्न में 'सवदोषकरी नृणाम्' 'रेतेषां तस्यायुर्धननाशिनी' 'यस्य प्रसूतिस्त्र स्यात्तस्यायुर्धननाशिनी' यह पी० धा० में पाठ है ।। २७७ ।।

इसमें जन्म लेने पर गण्ड के तुल्य दोष होता है अतः यह बड़ा दोष बताया गया है । शान्ति के विना जातक का त्याग करना और त्याग का कारण उपस्थित होने पर शान्ति करके बालक का ग्रहण करना चाहिए । इसका फल क्षणार्द्ध में होता है तब से उसका पालन पोषण करना चाहिए ।। २७७–२७९ ।।

विशेष—स्त्रीजातक में 'नारीं विना विशे' । होरा र० में 'नारीं विनावशेषाणां' । पी० धा० 'नारीं विना विशेषाणां' यह पाठ है स्त्री जा० व हो० र० में 'कुर्याद्भक्त्या विचक्षणः' यह पाठ है ।। २७८ २७९ ।।

कल्पोक्तशान्तिः कर्तव्या शीघ्रं दोषापनुत्तये ।
रुद्रः शक्र(?)श्च पितरः पूज्याः सुदेवताक्रमात् ।। २८० ।।

सिनीवाली में प्रसव होने पर अपने कल्पोक्त मार्ग से दोष दूर करने के लिये शीघ्र शान्ति करनी चाहिये । रुद्र, इन्द्र, पितर इन सुन्दर देवों का पूजन करना चाहिये ।। २८० ।।

प्रतिमा के सोने की तोल

कर्षमात्रसुवर्णेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः।
अथवा शक्तितः कुर्याद्वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥ २८१ ॥

प्रतिमां कारयेच्छंम्भोः चतुर्भुजसमन्विताम्।
त्रिशूलखड्गवरदाभयहस्तां यथाक्रमात् ॥ २८२ ॥

श्वेतवर्णां श्वेतपुष्पां श्वेताम्बरवृषस्थिताम्।
त्रियम्बकेन मन्त्रेण पूजां कुर्याद्यथाविधि ॥ २८३ ॥

१ कर्ष सुवर्ण की या ½ कर्ष की या अपनी शक्ति के अनुसार धन का लालच छोड़कर महादेवजी की प्रतिमा चार हाथों की २ में त्रिशूल, खड्ग और दो में वरद अभय मुद्रा से युक्त, सफेद रङ्ग की सफेद पुष्प की बैल पर सवार सफेद वस्त्र धारण किये हुए बनवानीं चाहिए और 'त्र्यम्बकं' नाम के मन्त्र से पूजा करनी चाहिए ॥२८१–२८३॥

इन्द्र का स्वरूप व पूजन मन्त्र

इन्द्रश्चतुर्भुजो वज्रांकुशचापः ससायकः।
रक्तवर्णो गजारूढो यतइन्द्रेति मन्त्रतः ॥ २८४ ॥

इन्द्र को चार भुजाओं से युक्त उनमें वज्र, अंकुश, पाश, बाण से युक्त लाल रंग की तथा हाथी पर सवार प्रतिमा बनाकर 'यत इन्द्र' इस मन्त्र से पूजन करना चाहिये ॥ २८४ ॥

पितर स्वरूप व पूजन मन्त्र

पितरः कृष्णवर्णाश्च चतुर्हस्ता विमानगाः।
यष्ट्यक्षसूत्रकमंडलुमयस्यैव धारिणः ॥ २८५ ॥
ये सत्या इति मन्त्रेण पूजां कुर्यादनन्तरम्।
आग्नेयां दिशमारभ्य कुम्भान् कोणेषु विन्यसेत् ॥ २८६ ॥

पितरों की प्रतिमा काले वर्ण की, चार हाथ की, विमान पर सवार, यष्टि, अक्ष-सूत्र और कमण्डल धारण किये हुए बनवाकर 'ये सत्या' इत्यादि मन्त्र से पूजन करने के बाद अग्निकोण से चारों कोणों में घड़ों की स्थापना करनी चाहिये ॥ २८५–२८६ ॥

कल्पोक्तशान्तिः कर्तव्या कुर्यात्क्षिप्रं स्वशक्तितः।
गोदानं वस्त्रदानं च सुवर्णं चोर्वरां शुभाम् ॥ २८७ ॥

अपनी शक्ति के अनुसार शीघ्र ही अपने कल्पोक्त विधान से शान्ति करना तथा गाय, वस्त्र सुवर्ण और अच्छी शुभ भूमि का दान करना चाहिये ॥ २८७ ॥

विशेष—पी० धा० में 'शीघ्रमेव प्रयत्नतः' तथा 'सुवर्णं चोर्णकं शुभम्' यह पाठ है ॥ २८७ ॥

दशदानानि चोक्तानि क्षीरमाज्यं गुडं तथा।
आज्यावेक्षणमेतानि तत्तन्मन्त्रैश्च कारयेत् ॥ २८८ ॥

एवं कथित दस प्रकार के दान और दूध, घी, गुड़ का दान उन-उनके मन्त्रों से करके घी का निरीक्षण अर्थात् छायादान करना चाहिये ॥ २८८ ॥

समिदाज्यचरोर्होमं तिलमाषैश्च सर्षपः।
अश्वत्थवृ(प्लक्ष)क्षपालाशसमिद्भिः खादिरैः शुभैः ॥ २८९ ॥

समिधा, घी, चरु, तिल, उर्द सरसों से हवन करना तथा पीपल, पाकर, ढाक और खैर की शुभ समिधा ग्रहण करनी चाहिए ॥ २८९ ॥

अष्टोत्तरशतंमुख्यं प्रत्येकं जुहुयाद्द्विजः।
त्रियम्बकेन मन्त्रेण तिलान्व्याहृतिभिः पुनः ॥ २९० ॥

प्रत्येक की १०८ आहुति 'त्र्यम्बकं' इस मन्त्र से करनी और तिल से हवन व्याहृतियों से करना चाहिए ॥ २९० ॥

चतुर्भिः कलशैर्युक्तं बृहत्कुम्भसमन्वितम्।
शान्तिवत्कलशं कार्यमभिषेकं च कारयेत् ॥ २९१ ॥
पितृमातृशिशूनां च अभिषेकं तु वारुणैः।
शंकरस्याभिषेकं तु कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ २९२ ॥

बड़े कलस से चारों कलसों को युक्त करके शान्ति कलस की तरह कलस करके पिता, माता व बालक का अभिषेक वारुण मन्त्रों से करना चाहिये और शंकर जी का अभिषेक करके बाद में ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये ॥ २९१–२९२ ॥

अन्येषां चैव सर्वेषां ब्राह्मणानां च तर्पणम्।
यथाशक्त्यनुसारेण द्विजसेवा च पूर्वकम् ॥ २९३ ॥

तथा यथाशक्ति सेवा से अन्य समस्त ब्राह्मणों को तृप्त करना चाहिये ॥ २९३ ॥

अथ गोप्रसवविधिः।

अब आगे गोप्रसव विधि को गर्ग के वाक्यों से बताते हैं।

गर्गः

प्रणिपत्य रविं वक्ष्ये प्रायश्चित्तमनुस्मरन्।
सर्वारिष्टविनाशाय यदुक्तं शान्तिकार्णवे ॥ २९४ ॥

गर्ग जी ने बताया है कि मैं सूर्य को नमस्कार करके शान्तिकार्णव में बताये हुए सर्व दोष विनाशी प्रायश्चित्त का अनुस्मरण करके उसे बताता हूँ ॥ २९४ ॥

पित्रारिष्टे सुतारिष्टे मात्ररिष्टे तथैव च।
प्रायश्चित्तं तदा कुर्यात्तत्तद्दोषस्य शान्तये ॥ २९५ ॥

पिता, बालक, माता के अरिष्ट प्राप्त होने पर उसकी शान्ति के लिये प्रायश्चित करना चाहिये ॥ २९५ ॥

पूषाश्विनौ गुरौ सार्पमघाचित्रेंद्रमूलभे ।
एषु ऋक्षेषु जातस्य कुर्याद्गोजननं तथा ॥ २९६ ॥

रेवती, अश्विनी, श्लेषा, मघा, चित्रा, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्र में यहाँ होने वाले को गो जनन विधि प्रायश्चित्त करना चाहिए। अर्थात् गाय से जन्म मान कर सविधि बालक का मुख देखना चाहिये ॥ २९६ ॥

जन्मर्क्षे वा त्रिजन्मर्क्षे शुभे वारे शुभे दिने ।
कृत्वाभ्यंगादिकं सर्वं गृहालंकारपूर्वकम् ॥ २९७ ॥
गोमयेनोपलिप्याथ गृहस्येशानकोणके ।
पंकजं कर्णिकायुक्तं रजोभिः श्वेतवर्णकैः ॥ २९८ ॥
व्रीहींस्तत्र विनिक्षिप्य यथावित्तानुसारतः ।
नवशूर्पं तु तन्मध्ये रक्तवस्त्रं प्रसारयेत् ॥ २९९ ॥

इस गो प्रसव विधान को जन्म के नक्षत्र में या जन्म के नक्षत्र से तीसरे नक्षत्र में शुभवार में स्वयं उवटन वगैरह से स्नान कर और घर को साफ सुथरा बनवाकर अर्थात् कार्यभूमि को गोवर से लिपवाकर घर के ईशान कोण में सफेदरंग की मिट्टी से कलिकाओं से युक्त कमल बनवाकर अपने धन के अनुसार उस पर चावल स्थापित करे और वाद में उसके बीच में नया सूप रखकर लाल कपड़ा उसके ऊपर बिछाना चाहिये ॥ २९७-२९९ ॥

स्थापयित्वा शिशुं तत्र पुनः सूत्रेण वेष्टयेत् ।
प्राङ्मस्तकमवाक्पादन्तिलगर्भगतं शिशुम् ॥ ३०० ॥
गोमुखं दर्शयित्वा तु पुनर्नीतं तु गोमुखात् ।
विष्णुर्योनीति सूक्तेन गव्येन स्थापयेच्छिशुम् ॥ ३०१ ॥
गवामंगेषु विप्रेण गवामंगेषु संस्पृशेत् ।
विष्णोः श्रेष्ठेति मन्त्रेण गोः प्रसूतं तु बालकम् ॥ ३०२ ॥

पुनः उस पर बालक को बैठाकर सूत से बाँधकर तिलों के बीच में गर्दन तक तिल से ढक कर, गाय के मुख के समीप तक बालक को ले जाय और यह समझे कि यह गाय के मुख से उत्पन्न हुआ है। तथा 'विष्णुर्योनि' इस गव्य मन्त्र से स्थापित करके गाय के अङ्गों का ब्राह्मण द्वारा स्पर्श कराकर 'विष्णोः श्रेष्ठेति' मन्त्र से, बालक को गाय से जन्म हुआ है, ऐसा मानना चाहिये ॥ ३००-३०२ ॥

साचार्यस्तं समादाय पश्चान्मात्रे ददत्पिता ।
माता जघन्यभागस्थं शिशुमानीय तन्मुखात् ॥ ३०३ ॥
ततः पित्रे तदा दद्यात्ततो मात्रे प्रदापयेत् ।
वस्त्रे स्थाप्य पितास्याथ पुत्रस्य मुखमोक्षयेत् ॥ ३०४ ॥

फिर आचार्य उस बालक को लेकर पिता को दे और पिता उसे उसकी माता को दे एवं माता बालक को लेकर गाय के मुख के पास ले जाकर अपनी जांघ पर बैठाकर पिता को दे और पिता माता को दे एवं माता वस्त्र पर बैठा दे तब उसके मुख का दर्शन पिता को करना चाहिये ॥ ३०३-३०४ ॥

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधिसर्पिश्च संयुतम् ।
आपोहिष्ठादिभिर्मंत्रैरभिषिञ्चन्ततः शिशुम् ॥ ३०५ ॥
मूर्ध्नि चाघ्राय तत्पुत्रं तन्मन्त्रेण तदा पिता ॥ ३०६ ॥

पुनः इसके पश्चात् गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी मिलाकर 'आपोहिष्ठा' इत्यादि से बालक का अभिषेक करके उसका मस्तक पिता को मन्त्र से सूँघना चाहिये ॥३०५-३०६॥

मस्तक चुम्बन मन्त्र

मूर्ध्नि चुम्बनमन्त्रः
अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादभिजायसे ।
आत्मा वै पुत्रनामासि सजीव शरदां शतम् ॥ ३०७ ॥
मूर्ध्नि त्रिवारमाघ्राय तं शिशुं स्थापयेत्ततः ।
पुण्याहं वाचयेत्पश्चाद्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ ३०८ ॥

तुम्हारा मेरे अंग २ से संभव है ओर हृदय से उत्पन्न हुए हो, तुम पुत्र नामवाली मेरी आत्मा हो अतः १०० वर्ष तक जीवित रहो इसप्रकार तीन वार मस्तक को सूँघकर पिता अपनी गोदी में से भूमि में बालक को स्थापित करके वेद के पारंगामी ब्राह्मणों से पुण्याहवाचन करावे ॥ ३०७-३०८ ॥

दरिद्रायाथ विप्राय तां गां चाभ्यर्च्य दापयेत् ।
गोवस्त्रस्वर्णधान्यानि दद्यादर्कादितः क्रमात् ॥ ३०९ ॥

तदनन्तर गाय का पूजन करके निर्धन ब्राह्मण को दान में देनी चाहिये । और सूर्यादि ग्रहों के क्रम से गाय वस्त्र व धान्यादि का दान करना चाहिये ॥ ३०९ ॥

यथाशक्तिधनं दद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तदा पिता ।
ततो होमं प्रकुर्वीत स्वस्वशाखोक्तमार्गतः ॥ ३१० ॥

पिता को अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को दान देकर अपनी शाखा के नियमानुसार होम करना चाहिये ॥ ३१० ॥

उल्लेखनादिकं कृत्वा चाज्यभागान्तमाचरेत् ।
होमस्येशानभागे तु धान्योपरिशुभं घटम् ॥ ३११ ॥
पञ्चगव्यं घटे स्थाप्य तिलांस्तत्र विनिक्षिपेत् ।
क्षीरद्रुमकषायांश्च पञ्चरत्नानि निक्षिपेत् ॥ ३१२ ॥

उल्लेखनादि करके आज्य भाग तक कार्य करना चाहिये ।

हवन वेदी से ईशान दिशा में धान्यों के ऊपर कलस स्थापित कर उसमें पंचगव्य, तिल, क्षीरवृक्ष रस और पंचरत्न छोड़ना चाहिये ॥ ३११-३१२ ॥

वस्त्रयुग्मेन संछाद्य गन्धादिभिरथार्चयेत् ।
विष्णुं वरुणमभ्यर्च्य प्रतिमां च विधानतः ॥ ३१३ ॥

उस कलस को दो वस्त्रों से ढक कर विष्णु और वरुण की प्रतिमा उस पर स्थापित करके गंधादि से पूजा करनी चाहिये ॥ ३१३ ॥

यत इन्द्रादिभिर्मंत्रैः कुम्भं स्पृष्ट्वाभिमन्त्रयेत् ।
दधिमध्वाज्ययुक्तेन होमं कुर्याद्विधानतः ॥ ३१४ ॥
आपोहिष्ठेति तिसृभिरप्सुमे साम इत्यतः ।
तद्विष्णोः परमं पदमभिक्ष्यांत्ये च सूक्ततः ॥ ३१५ ॥
ऋग्भिराभिः प्रत्यृचमष्टाविंशतिसख्यया ।
असक्तश्चाष्टसंख्या वा दधिमध्वाज्यसंयुतम् ॥ ३१६ ॥
आदित्यादिग्रहाणां च होमं कुर्यात्समंत्रकम् ॥ ३१७ ॥

कलस को 'यत इन्द्रादि' इस मन्त्र से स्पर्श करके अभिमन्त्रित करके दही, सहद और घी से 'आपोहिष्टा' इन तीनों से तथा 'अप्सुमे सोम' से 'तद्विष्णोः परमं पदं' से, अभिक्ष्यन्त सूक्त से विधि पूर्वक इन ऋग्वेद की ऋचाओं से प्रत्येक से अट्ठाईस बार हवन करना चाहिये । यदि २८ बार की सामर्थ्य न हो तो दही, सहत, घी को मिलाकर ८, ८ आहुति छोड़नी चाहिये । और सूर्यादि ग्रहों का उनके मन्त्रों से हवन करना चाहिये ॥ ३१४-३१७ ॥

वैधृतिव्यतीपातशान्तिः—

अब आगे वैधृति, व्यतीपात और संक्रान्ति में जन्म लेने वाले की शान्ति विधि को बताते हैं ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि शौनकीं शान्तिमुत्तमाम् ।
वैधृतौ च व्यतीपाते महादोषोभिजायते ॥ ३१८ ॥

गार्ग्य ऋषि ने कहा है कि मैं अब वैधृति व्यतीपात में जन्म लेने से जो बड़ा दोष होता है, उसके प्रशमनार्थ शौनकोक्त उत्तम शान्ति विधान को बताता हूँ ॥ ३१८ ॥

कुमारजन्मकाले च व्यतीपातश्च वैधृतिः ।
संक्रान्तिश्च रवेस्तत्र जातो दारिद्र्यकारकः ॥ ३१९ ॥

जब कि बालक का जन्म वैधृति या व्यतीपात या सूर्य संक्रमण समय में होता है तो वह परिवार में निर्धनता बुला देता है ॥ ३१९ ॥

दरिद्राणां महादुःखं सर्वनाशकरो भवेत् ।
शान्तिर्वा पुष्कला कार्या तत्र दोषो न कश्चन ॥ ३२० ॥

निर्धन लोगों को सर्वविनाशी बड़ा दुःख होता है। अतः इनमें उत्पन्न होने पर पुष्कल शान्ति करनी चाहिये। इससे जरा भी दोष नहीं होता है ॥ ३२० ॥

शान्ति कर्म क्रम तथा विधि

गोमुखप्रसवं कुर्याच्छांतिं कुर्यात्प्रयत्नतः।
जपाभिषेकदानैश्च होमादपि विधानतः ॥ ३२१ ॥
नवग्रहमखं कुर्यात्तस्य दोषप्रशांतये।
प्रथमं गोमुखाज्जन्म ततः शांतिं समाचरेत् ॥ ३२२ ॥

इसलिये प्रथम प्रयत्न से गोमुख प्रसव करके जप, अभिषेक दान, होम, नवग्रह मुख दोष शान्ति के लिये करना चाहिये। पहिले गाय के मुख से जन्म कराकर तब शान्ति करनी चाहिये ॥ ३२१-३२२ ॥

विशेष—'महद् दुःखं व्याधिपीडा महद्भयम्। अश्रियंमृत्युमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा। स्त्रीणां च शोको दुःखं च सर्वनाशकरं भवेत्। शान्तिर्वा ········होमादपि-विशेषतः।' यह पाठान्तर पी० धा० में है तथा अन्य विधान भी वहीं पर उपलब्ध है ॥ ३२१-३२२ ॥

[1]अथ त्रीतरशांतिः—

अब आगे त्रीतर शान्ति की विधि—तीन पुत्र उत्पन्न होने के पश्चात् कन्या की उत्पत्ति में या तीन लड़कियों के जन्म होने पर लड़के के जन्म पर जो दोष होता है उसके विनाश के लिये जो धार्मिक अनुष्ठान होता है उसे बताते हैं।

गर्गः—

सुतत्रये सुता चेत्स्यात्तत्त्रये वा सुतो यदि।
माता-पित्रोः कुलस्यापि तदानिष्टं महद्भवेत् ॥ ३२३ ॥

शान्ति सर्वस्व में बताया है कि यदि तीन पुत्र के पश्चात् पुत्री का और तीन पुत्रियों के बाद पुत्र का जन्म होता है तो माता पिता और कुल के लिये बालक बड़ा अरिष्ट कारक होता है ॥ ३२३ ॥

ज्येष्ठनाशो धने हानिः दुःखं वा सुमहद्भवेत्।
तत्र शांतिं प्रकुर्वीत वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ ३२४ ॥

इसमें जन्म होने पर बड़े लोग व धन का नाश, दुःख, बड़ा डर होता है। इसलिये धन का लालच छोड़कर शान्ति करनी चाहिये ॥ ३२४ ॥

समय ज्ञान

जातस्यैकादशाहे वा द्वादशाहे शुभे दिने।
आचार्यो ऋत्विजो वृत्वा ग्रहयज्ञपुरःसरम् ॥ ३२५ ॥

---

१. मु० चिं० २ प्र० ५६ श्लो० पी० टी०।

उक्त स्थिति में वालक के जन्म से ग्यारहवें या बारहवें शुभ दिन में आचार्य और होताओं का वरण करके प्रथम ग्रह शान्ति करनी चाहिए ।। ३२५ ।।

ब्रह्मा-विष्णुमहेशेन्द्रप्रतिमाः स्वर्णतः कृताः ।
पूजयेद्धान्यराशिस्थकलशोपरि शक्तितः ।। ३२६ ।।

इसके बाद अपनी शक्ति के अनुसार सोने की प्रतिमा ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्र की बनवाकर धान्य के ढेरों पर रक्खे हुए कलशों के ऊपर विराजमान करके पूँजना चाहिये ।। ३२६ ।।

पञ्चमे कलशे रुद्रं पूजयेद्रुद्रसंख्यया ।
रुद्रसूक्तानि चत्वारि शांतिसूक्तानि सर्वशः ।। ३२७ ।।

ओर पाँचवें कलश पर ११ रुद्र बनाकर, चार रुद्र सूक्त और शान्ति सूक्तों के मंत्रों से पूजा करनी चाहिये ।। ३२७ ।।

आचार्यो जुहुयात्तत्र समिदाज्यं तिलांश्चरुम् ।
अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा त्रिशतं तु वा ।। ३२८ ।।

आचार्य को समिधा, घी, तिल, चरु से १००८ या १०० या ३०० आहुति से हवन कराना चाहिये ।। ३२८ ।।

देवताभ्यश्चतुर्वक्त्रादिभ्यो ग्रहपुरःसरम् ।
ब्रह्मादिमंत्रैरिंद्रस्य यत इंद्रभयावहे ।। ३२९ ।।

ब्रह्मादि देवताओं को ४ आहुति उनके मन्त्रों से ग्रह हवन पुरस्सर करके और ब्रह्मा की 'ब्रह्मादि' से, इन्द्र की 'यत इन्द्र भयावहे' मन्त्र से करनी चाहिये ।। ३२९ ।।

ततः स्विष्टकृतं हुत्वा बलिं पूर्णाहुतिं ततः ।
अभिषेकं कुटुंबस्य शांतिपाठं तु कारयेत् ।। ३३० ।।

इसके अनन्तर स्विष्टकृत होम करके बलि और फिर पूर्णाहुति करके शान्ति सूक्तों से कुटुम्ब का अभिषेक करना चाहिये ।। ३३० ।।

ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या दीनानाथांश्च तर्पयेत् ।
कृत्वैवंविधिना शांतिं सर्वारिष्टाद्विमुच्यते ।। ३३१ ।।
कांस्यपात्रं शर्कराज्यपलैः षोडशमानतः ।
ब्राह्मणेभ्यः प्रदातव्यं शुभं भवति नान्यथा ।। ३३२ ।।

पुनः ब्राह्मण भोजन करके दीनों अनाथों को तृप्त करना चाहिये । इस प्रकार करने पर समस्त अरिष्ट का नाश हो जाता है। ब्राह्मणों को सोलह २ पल के मान का कांसे का पात्र देना चाहिये । इससे शुभ होता है, न करने पर अशुभ होता है ।। ३३१–३३२ ।।

अथ यमलजननशांतिः—

अब आगे जब दो बच्चे एक साथ उत्पन्न होते हैं तो उसकी शान्ति की विधि को काशीखण्डोक्त वाक्यों से बताते हैं ।

काशीखण्डे—

त्रिविधा यमलोत्पत्तिर्जायते योषितामिह ।
सुतौ च सुतकन्ये वा कन्य एव तथा पुनः ॥ ३३३ ॥

काशीखण्ड में बताया है कि स्त्रियों को तीन प्रकार के दो बच्चों का जन्म होता है। १ एक तो २ लड़के, २ दूसरा एक पुत्र एक पुत्री और तृतीय में २ दो कन्याओं की उत्पत्ति होती है ॥ ३३३ ॥

एकलिंगौ विनाशाय द्विलिंगौ मध्यमौ स्मृतौ ।
पित्रोर्विघ्नकरौ ज्ञेयौ तत्र शान्तिर्विधीयते ॥ ३३४ ।

समान लिङ्गधारी (२ पुत्र, या २ कन्या) का जन्म विनाशक और भिन्न चिह्न (१ पुत्र, १ पुत्री) वालों का मध्यम फल प्रद होता है। तथा पिता माता को विघ्न करने वाला होता है। इसलिये यमल जन्म में शान्ति करनी चाहिये ॥ ३३४ ॥

हेममूर्ती विधातव्ये दस्रयोश्च द्विजोत्तम ।
पलेन वा तदर्द्धेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः ॥ ३३५ ॥

हे द्विजोत्तम इसमें अश्विनी कुमारों की १ एक पल या आधा पल या चतुर्थांश पल सोने की मूर्ति बनवानी चाहिये ॥ ३३५ ॥

ब्रह्मवृक्षस्य पट्टे च स्थापयेद्रक्तवाससी ।
स्वस्तिके तंडुलानां च न्यस्ते पीठे द्विजोत्तम ॥ ३३६ ॥
पूजयेद्रक्तपुष्पैश्च चन्दनेनानुलेपयेत् ।
दशांगेनैव धूपेन धूपयेत्प्रयतः पुमान् ॥ ३३७ ॥
दीपैर्नीराजयेच्चैव नैवेद्यं परिकल्पयेत् ।
यस्मै त्वं सुकृते जातवेद इति मन्त्रेणाक्षतैरर्चयेत् ॥ ३३८ ॥

पीपल के वृक्ष के पटे (चौकी) पर लालवस्त्र विछाकर उसके ऊपर चावलों का सतियो (स्वस्तिक) बनाकर उसपर प्रतिमा स्थापित करके लाल पुष्प व चन्दन से पूजन करना, अनुलेपन करना और दशाङ्ग धूप से ही धूप लगाना, दीप से आरती करना, भोग चढाना और 'यस्मै त्वं सुकृते जातवेद' इस मन्त्र से चावल द्वारा समर्चना करनी चाहिये ॥ १३६–३३८ ॥

अनेनैव तु मन्त्रेण होमं कुर्यादतंद्रितः ।
अष्टोत्तरसहस्रं च पायसेन ससर्पिषा ॥ ३३९ ॥
शान्तिपाठं जपेद्विद्वान् सूर्यसूक्तं जपेत्ततः ।
विष्णुसूक्तं तथा गाथां वैश्वदेवीं जपेद्बुधः ॥ ३४० ॥
अश्वदानं ततो दद्यादाचार्याय कुटुंबिने ।
तयोर्मूर्ती प्रदातव्ये यजमानेन धीमता ॥ ३४१ ॥

एवं उक्त मन्त्र से ही निद्रा रहित होकर खीर व घी से १००८ आहुति करना, ततः शान्ति पाठ, सूर्य सूक्त, विष्णु सूक्त पाठ तथा वैश्वदेवी की कथा करके यजमान कुटुम्बी आचार्य को घोड़ा व प्रतिमाओं को अर्पित करे ॥ ३३९–३४१ ॥

तत्र दानमन्त्रः—

अश्वरूपौ महाबाहू अश्विनौ दिव्यचक्षुषौ।
अनेन वाजिदानेन प्रीयेतां मे यशस्विनौ ॥ ३४२ ॥

हे यशस्वी अश्वरूप दोनों दिव्य दृष्टि व लम्बी भुजावाले अश्विनी कुमार देवो मेरे इस घोड़े के दान से प्रसन्न हो जाओ ॥ ३४२ ॥

मूर्तिदानमन्त्रः—

आचामर्यः प्रथमो वेधा विष्णुस्तु सविता भगः।
दस्रमूर्तिप्रदानेन प्रीयतामाश्विनौ भगः ॥ ३४३ ॥

आचार्य ब्रह्मा और विष्णु सूर्य भगवान् इस नक्षत्र मूर्ति के दान से नक्षत्र देवता व सूर्य प्रसन्न हो जाओ ॥ ३४३ ॥

ततोभिषेचनं कार्यं दम्पत्योर्विधिवद्बुधैः।
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्दक्षिणाभिश्च तोषयेत् ॥ ३४४ ॥
सालंकारैश्च वस्त्रैश्च प्रार्थयेद्वचनैः शुभैः।
एवं कृते विधाने च यमलोत्पत्तिशान्तिकम् ॥ ३४५ ॥

इसके बाद माता पिता का अभिषेक विधि पूर्वक कर ब्राह्मणों को भोजन कराना और पीछे भूषण, वस्त्र व द्रव्य से उन्हें प्रसन्न करके सुन्दर वाणी से प्रार्थना करनी चाहिये। इस प्रकार विधान से करने पर यमल जनन दोष दूर होता है ॥३४४-३४५॥

अथ गोमहिष्यादिप्रसवशान्तिः—

अब आगे गाय भैंस आदि के सन्तति होने पर जो शान्ति होती है उसे बताते हैं।

भानौ सिंहगते चैव यस्य गोः संप्रसूयते।
मरणं तस्य निर्दिष्टं षड्भिर्मासैर्न संशयः ॥ ३४६ ॥

सूर्य के सिंह राशि में रहने पर यदि घर में गाय बच्चा उत्पन्न करती हैं तो उसके मालिक का या स्वयं का निःसंदेह विनाश होता है ॥ ३४६ ॥

तत्र शान्ति प्रवक्ष्यामि येन संपद्यते शुभम्।
प्रसूतां तत्क्षणादेव तां गां विप्राय दापयेत् ॥ ३४७ ॥

इस लिये मैं उस दोष को दूर करने के लिये तथा शुभागम हेतु शान्ति को कहता हूँ। उस प्रसूता गाय को तत्काल ब्राह्मण को दान में दे देना चाहिये ॥ ३४७ ॥

ततो होमं प्रकुर्वीत घृताक्तैः राजसर्षपैः।
आहुतीनां घृताक्तानामयुतं जुहुयात्ततः ॥ ३४८ ॥
व्याहृतिभिरत्रायं होमः कार्यः।

राजसर्षप अर्थात् सफेद मोटी सरसों को घी से आर्द्र करके दस १० हजार आहुति करनी चाहिये। यहाँ होम व्याहृतियों से होता है ॥ ३४८ ॥

सोपवासमयत्नेन दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ।
माघे बुधे च महिषी श्रावणे वडवा दिवा ।
सिंहे गावः प्रसूयन्ते स्वामिनो मृत्युदायकाः ॥ ३४९ ॥

उपवास के साथ ब्राह्मण को दक्षिणा देनी चाहिये। बुधवार के दिन माघ में भैंस का प्रसव, सावन में घोड़ी का दिन में और सिंह के सूर्य में गायों के बच्चा पैदा होना, उनके मालिकों को मृत्यु देने वाला होता है ॥ ३४९ ॥

पौषे च महिषी सूते दिने वाश्वतरी तथा ।
तदारिष्टं भवेत्किंचिच्छान्तौ शान्तिकमाचरेत् ॥ ३५० ॥
इत्यत्रापि शान्तितः शुभं तेन क्षेमाय शान्तिः कार्या ।

जब पौष मास दिन में भैंस के या घोड़ी के सन्तान का जन्म होता है तो अल्प अरिष्ट होता है। अतः शान्ति से अरिष्ट का दूरीकरण करना चाहिये ॥३५०॥

अब आगे बालक के जन्म के पश्चात् प्रसववती स्त्री को स्नान कब और किस समय, किस वार नक्षत्र में कराना चाहिए, इसे बताते हैं।

त्याज्य वार नक्षत्र

अथ सूतिकास्नानम्—

कृत्तिका भरणीमूलआर्द्रातिष्यपुनर्वसु ।
मघा चित्रा विशाखा च श्रवणो दशमस्तथा ॥ ३५१ ॥
एताः प्राणहतास्तारास्तासु स्नानं न कारयेत् ।
यदि स्नानं प्रकुर्वीत पुनः सूती न जायते ॥ ३५२ ॥

दैवज्ञमनोहर नामक ग्रन्थ में कहा है कि कृत्तिका, भरणी, मूल, आर्द्रा, पुष्य, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, विशाखा और श्रवण ये दस नक्षत्र प्राण लेने वाले होते हैं। इनमें प्रसूता को स्नान नहीं कराना चाहिये। और यदि उक्त नक्षत्रों में स्नान कराया जाता है तो पुनः प्रसूति नहीं होती अर्थात् पुनः स्त्री गर्भवती नहीं होती है ॥ ३५१–३५२ ॥

त्याज्य तिथि नक्षत्र

प्रतिपच्च नवम्यां च षष्ठ्यां च शनिशुक्रयोः ।
विधवा त्रीणि जन्मानि पुनः सूती न जायते ॥ ३५३ ॥

प्रतिपदा, नवमी, षष्ठी तिथि और शनि शुक्रवार का संयोग होने पर यदि प्रसूता को स्नान कराया जाता है तो स्त्री तीन जन्म तक विधवा होती है और पुनः सन्तानोत्पत्ति नहीं होती है ॥ ३५३ ॥

प्रसूता स्नान शुभ मुहूर्त

उत्तरात्रयरोहिण्यां सौम्यः पवनरेवतं ।
प्रसूती वनिता स्नायाद्धस्तमैत्र्याश्विनीषु च ।। ३५४ ।।

तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, स्वाती, रेवती, हस्त, अनुराधा अश्विनी में प्रसववती को स्नान कराना चाहिये ।। ३५४ ।।

प्रकारान्तर से

करेंद्रभाग्यानिलवासवांत्यमैत्र्यध्रुवाश्विध्रुवभेह्नि पुंसाम् ।
तिथावरिक्ते शुभमामनंति प्रसूतिकास्नानविधिं मुनींद्राः ।। ३५५ ।।

हस्त, ज्येष्ठा, पूर्वा फाल्गुनी, स्वाती, धनिष्ठा, रेवती, अनुराधा, अश्विनी, मृगशिरा और ध्रुवसंज्ञक (३ उत्तरा, रोहिणी) नक्षत्र में रिक्ता तिथि छोड़कर अन्य तिथियों में दिन में स्नान कराना चाहिये । ऐसा ऋषि प्रवरों का कथन है ।। ३५५ ।।

विशेष—यहाँ मूल में 'मैत्र्यध्रुवाश्विध्रुवमेऽन्हि' पाठ है । यह पी० धा० टीका से दिया है ।। ३५५ ।।

वारों के अनुसार

स्नाता प्रसूता असुता बुधेन स्नाता च वंध्या भृगुनंदनेन ।
सौरेषु मृत्युः पयहानिरिन्दौ पुत्रार्थकामा रविभौमजीवाः ।। ३५६ ।।

यदि प्रसववती बुध को स्नान करती है तो सुत से हीन, शुक्र को वन्ध्या, शनि को मरण पाने वाली, सोमवार को दूध से रहित और सूर्य, भौम या गुरुवार में स्नान करती है तो पुत्र, धन व अभीष्ट से युक्त होती है ।। ३५६ ।।

बृहज्ज्योतिषसार में कहा हैं 'हस्ताश्विनीत्र्युत्तररोहिणीषु मृगानुराधापवनान्त्यभेषु । स्नायात् प्रसूता गुरुभानुभौमे त्यक्त्वा हरेर्वासरमष्टषष्ठीम्' । (१०६ पृ० ।। ३५६ ।।

मुहूर्त चिन्तामणि में अन्य भी 'पौष्णध्रुवेन्दु करवातहयेषु सूतीस्नानं समित्रभरवीज्य-कुजेषु शस्तम् । नार्द्रात्रयं श्रुतिमघान्तकमित्रमूलत्वाष्ट्रे ज्ञसौरिवसुषड्वविरिक्ततिथ्याम्' (१०६ पृ०) ।। ३५६ ।।

अथ स्तनपानम्—

अब आगे मुक्तावली के आधार पर स्तनपान के मुहूर्त को बताते हैं ।

मुक्तावल्याम्—

पुनर्वसौ पुष्यमघासु मूले त्रिरुत्तरा चैव विशाखिका च ।
वारेऽर्कजीवे बुधशुक्रचन्द्रे स्तनपानकार्ये शुभदा भवन्ति ।। ३५७ ।।

मुक्तावली में बताया है कि पुनर्वसु, पुष्य, मघा, मूल, तीनों उत्तरा, विशाखा नक्षत्र, सूर्य, गुरु, बुध, शुक्र, चन्द्रमा ये वार स्तन पान कर्म में शुभ होते हैं ।। ३५७ ।।

प्रकारान्तर से

रिक्तां भौमं परित्यज्य विष्टिं पातं च वैधृतिम् ।
मृदुध्रुवक्षिप्रभेषु स्तनपानं हितं शिशोः ।। ३५८ ।।

भद्रा, व्यतीपात, वैधृति और रिक्ता तिथियों व भौमवार को छोड़कर मृदु, ध्रुव, क्षिप्र नक्षत्रों में बालक को प्रथम स्तनपान कराना हितकर होता है ।। ३५८ ।।

मुहूर्तगणपतौ—

[1]जातकर्मोक्तनक्षत्रे श्रवणे च पुनर्वसौ।
त्यक्त्वा स्वातीस्तन्यपानं शुभं प्रोक्तं शुभेऽह्नि ।। ३५९ ।।

मुहूर्तगणपति नामक ग्रन्थ में कहा है कि जात कर्म संस्कार जिन नक्षत्रों कहा है उन्हीं नक्षत्रों में और श्रवण, पुनर्वसु में शुभवार में स्वाती को छोड़कर स्तन पान कराना चाहिये ।। ३५९ ।।

सूतिका क्वाथ (काढ़ा) मुहूर्त ज्ञान

अथ सूतिकाक्वाथः—

[2]भैषज्यगदिते धिष्ण्ये वारे दुर्योगवर्जिते।
आरोग्यहेतवे क्वाथः सूतिकायाश्च तच्छिशोः ।। ३६० ।।

जिन तिथि वार नक्षत्रों में औषधि सेवन की जाती हैं उन्हीं में सूतिका स्त्री को काढ़ा देना आरोग्य के लिये शुभकारी होता है ।। ३६० ।।

सूतिका पथ्य सेवन मुहूर्त

अथ सूतिकापथ्यम्—

मुहूर्तगणपतौ—

[3]अन्नाशनोक्तनक्षत्रे शुभाहे सांशुमालिनि।
हित्वा रिक्तां च दुर्योगं सूतिकापथ्यमीरितम् ।। ३६१ ।।

मुहूर्तगणपति नामक ग्रन्थ में बताया है कि अन्न प्राशन में जो नक्षत्र शुभ होते हैं उन्हीं नक्षत्रों में शुभदिन या रविवार को दुष्ट योग व रिक्ता तिथि को छोड़कर सूतिका को पथ्य सेवन कराना चाहिये ।। ३६१ ।।

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरंजने संस्कारोक्तं त्रिपंचाशत्तमं जातकर्मप्रकरणं समाप्तम्।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन जी द्वारा रचित वृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का त्रेपनवाँ प्रकरण जातकर्म नामक समाप्त हुआ ।। ५३ ।।

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज मुरलीधर-चतुर्वेदकृतात्रिपञ्चाशत्प्रकरणस्य बृहद्दैवज्ञरञ्जनसंग्रहग्रन्थस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्तिमगात् ।। ५३ ।।

---

१. प्र० १४ श्लो० ३९।   २. मु० ग० १४ प्र० ४० श्लो०।
३. प्र० १४ श्लो० ४१।

अथ चतुष्पंचाशत्तमं नामकर्मप्रकरणं प्रारभ्यते ।

कुमारस्यायुर्रभिवृद्धिव्यवहारसिद्धिबीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणार्थम् ।

अब आगे चौवनवें प्रकरण में बालक का नाम कब किस मुहूर्तकाल में करना चाहिये, इसकी क्या आवश्यकता है इसे अनेक वाक्यों से बताते हैं ॥

गुरुः—

अथातः संप्रवक्ष्यामि मुहूर्तं नामकर्मणः ।
नामकर्मक्रियाकाले सर्वसंपद्विवर्धनः ॥ १ ॥

ऋषि बृहस्पति जी कहते हैं कि मैं अब नाम करण के मुहूर्त को बताता हूँ । यह नाम करण क्रिया समय पर करने पर समस्त सम्पत्तियों को बढ़ाने वाली होती है ॥ १ ॥

नामाखिलस्य व्यवहारहेतुः शुभावहं कर्म शुभांगहेतुः ।
नाम्नैव कीर्ति लभते मनुष्यस्ततः प्रशस्तं खलु नामकर्म ॥ २ ॥

नाम ही समस्त व्यवहारों का कारण, शुभावह काम और शुभाङ्ग का हेतु होता है । नाम से मनुष्य कीर्ति प्राप्त करता है । इसलिये नाम करण शास्त्रों में प्रशस्त कार्य कहा गया है ॥ २ ॥

नारदः—

[1]सूतकान्ते नामकर्म विधेयं स्वकुलोचितम् ।
नामपूर्वं प्रशस्तं स्यान्मंगलैः शुभमीक्षता ॥ ३ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि अपनी वंश परम्परा के अनुसार आशौच के अन्त में नामकरण करना चाहिये । शुभ की दृष्टि से अच्छे माङ्गलिक अक्षरों से नाम शुभ होता है ॥ ३ ॥

विशेष—ज्योतिर्निबन्ध में 'मङ्गलैः सुसमाक्षरैः' यह पाठ है ॥ ३ ॥

व्यासः—

नामधेयं दशम्यां तु केचिदिच्छन्ति सूरयः ।
द्वादश्यामाहुरन्ये तु मासे पूर्णे तथापरे ॥ ४ ॥
अष्टादशेऽहनि तथा वदन्त्यन्ये मनीषिणः ॥ ५ ॥

ऋषि व्यास का कहना है कि कोई २ आचार्य दसवें दिन नाम कर्म करने को कहते हैं । और अन्य लोग बारहवें दिन तथा अपरजन मास की पूर्ति में या अठारहवें दिन करना चाहिये ऐसा कहते हैं ॥ ४–५ ॥

---

१. ज्यो० नि० १११ पृ० ।

बृहस्पतिः[1]—

द्वादशे दशमे वापि जन्मतो दिवसे शुभम्।
षोडशे विंशतिश्चैव द्वाविंशे वर्णतः क्रमात् ॥ ६ ॥

ऋषि बृहस्पति ने बताया है कि जन्म से बारहवें या दशवें दिन नामकर्म शुभ होता है अथवा सोलहवें, या बीसवें या बाईसवें दिन वर्ण क्रम से करना चाहिये। सारांश यह है कि ब्राह्मण का सोलहवें दिन, क्षत्रिय का अठारहवें दिन और वैश्यका बीसवें दिन और शूद्र का बाईसवें दिन नाम कर्म करना चाहिये ॥ ६ ॥

प्राप्त काल में भी विशेष

प्राप्तकालेपि विशेषमाह।

गर्गः[2]—

व्यतीपाते च संक्रांतौ ग्रहणे वैधृतावपि।
श्राद्धं विना शुभं नैव प्राप्तकालेपि मानवः ॥ ७ ॥

उक्त समय में यदि व्यतीपात, संक्रान्ति, ग्रहण, वैधृति और श्राद्ध दिन हो तो नाम करण शुभ नहीं होता है ॥ ७ ॥

व्यवहारचण्डेश्वरः—

व्यतीपाते तथा वज्रे विष्ट्यांगारकवासरे।
दग्धे दिने निरंशे च प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ ८ ॥

व्यवहार चण्डेश्वर में बताया है कि व्यतीपात, वज्र, भद्रा, भौमवार, दग्धदिन और संक्रान्ति के दिन नहीं करना चाहिये ॥ ८ ॥

नृसिंहः[3]—

सायाह्ने दुष्टयोगे च शनिभूमिजवारयोः।
रिक्तापर्वाष्टमो षष्ठी किंस्तुघ्नं च विशेषतः ॥ ९ ॥
एतैर्दोषैर्युते काले रात्रावपि न कारयेत्।
छिद्राख्या पूर्णिमा रिक्ता हित्वा शेषाः शुभावहाः ॥ १० ॥

आचार्य नृसिंह ने बताया है कि सायाह्न, दुष्ट योग, शनि, मंगलवार, रिक्ता पर्व, अष्टमी, षष्ठी तिथि, किंस्तुघ्न विशेषकर, इन दोष युक्त समय, रात्रि, छिद्रा तिथि को छोड़कर शेष में नाम कर्म शुभ होता है ॥ ९–१० ॥

शकुन्यादीनि विष्टिं च नामकर्मणि वर्जयेत्।
शुभनक्षत्रयोगेषु शुभेषु शुभमीरितम् ॥ ११ ॥

शकुनि आदि करण, विष्टि का त्याग कर शुभ नक्षत्र योग लग्न में नाम कर्म शुभ होता है ॥ ११ ॥

---

१. ज्यो० नि० १११ पृ० २ श्लो०। २. ज्यो० नि० ११२ पृ० ४ श्लो०।
३. ज्यो० नि० ११२ पृ० १० श्लो०।

बृहस्पतिः[1]--

पूर्वाह्ले श्रेष्ठ इत्युक्तो मध्याह्ने स्याद्विशेषतः ।
अपराह्नं च रात्रिं च वर्जयेन्नामकर्मणि ॥ १२ ॥

ऋषि बृहस्पति ने बताया है कि नामकरण पूर्वाह्न में श्रेष्ठ तथा मध्याह्न में विशेष कर उत्तम होता है। नाम क्रिया में अपराह्न व रात्रि का त्याग करना चाहिए ॥ १२ ॥

स्वामिनामनि रात्रौ च न दोषं शुभदं च तत् ।
अमासंक्रांतिविष्ट्यादौ प्राप्तकालेपि नाचरेत् ॥ १३ ॥

नाम कर्म स्वामी के नाम में रात में दोष प्रद न होकर शुभ प्रद होता है। और अमावास्या, संक्रान्ति और भद्रादि में समय प्राप्त होने पर भी नहीं करना चाहिये ॥१३॥

अत्राह्नीति दिवसविधानेनैव कर्मणि गुरुशुक्रमूढता नास्तीति ।

इस नामकरण में दिन में करना और अमुक दिन में ऐसा होने से गुरु शुक्र की मूढता का दोष नहीं होता है; इसे बृहस्पति जी के वचनों से बताते हैं ।

बृहस्पतिः--

यानि कार्याणि चोक्तानि मासि मासि शचीपते ।
तेषु तेष्वेवमेव स्यान्मासकालस्तु साधनात् ॥ १४ ॥
मासि प्रोक्तेषु कालेषु मूढत्वं गुरुशुक्रयोः ।
न दोषकृत्तदा मासलक्षणोथ बलान्वितः ॥ १५ ॥
मासप्रयुक्तकार्येषु प्रोक्ता दोषा न दोषदाः ॥ १६ ॥

बृहस्पतिजी ने कहा है कि जो जो काम मास में या मास के अन्दर दिनों में होते हैं हे इन्द्र उन कार्यों की सिद्धि उनमें होने के नाते उन कालों में गुरु शुक्र का मूढत्व दोष, दोषप्रद नहीं होता है। क्योंकि मासलक्षण बल से युक्त होता है। मास प्रयुक्त कामों में उक्त दोष, दोष देने वाले नहीं होते हैं ॥ १४--१६ ॥

नारदः[2]--

देशकालोपघाताद्यैः कालातिक्रमणं यदि ।
अनस्तगे भृगावीज्ये तत्कालं चोत्तरायणे ॥ १७ ॥

ऋषि नारदजी ने बताया है कि यदि देश, काल जन्य उत्पातों से काल का अतिक्रमण हो गया हो तो शुक्र, गुरु के उदित रहने पर अस्त न होनेपर उत्तरायण में नामकरण करना चाहिये ॥ १७ ॥

गर्गः[3]--

एकादशेह्नि विप्राणां क्षत्रियाणां त्रयोदशे ।
वैश्यानां षोडशे कार्यं मासान्ते शूद्रजन्मनः ॥ १८ ॥

---

१. मु० चि० ५ प्र० ११ श्लो० पी० टी० । २. ज्यो० नि० ११३ पृ० ।
३. मु० चि० ५ प्र० १२ श्लो० पी० टी० ।

आचार्य गर्ग ने कहा है कि जन्म से ग्यारहवें दिन ब्राह्मणों का तेरहवें दिन क्षत्रियों का सोलहवें दिन वैश्यों का और मास के अन्त में शूद्रों का नामकरण करना चाहिये ॥ १८ ॥

माहेश्वरः—

कार्ये सूनोर्जननसमये जातकर्माथ नामा
पित्रान्यैर्वा जननदिवसाद्द्वादशान्त्याद्यके वा ।
नक्षत्रैर्वा ध्रुवमृदुचरक्षिप्रसंज्ञैस्तु शुक्रे
केन्द्रस्थे वा सुरपतिगुरौ वासरे सद्ग्रहाणाम् ॥ १९ ॥

आचार्य माहेश्वर ने वताया है कि पिता या अन्य के द्वारा वालक के जन्म समय में जातकर्म और जन्म के काल से वारहवें दिन या अशौच के अन्त्य के अनन्तर प्रथम अर्थात् ग्यारहवें दिन, मृदु, ध्रुव, चर, क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्रों में केन्द्र में शुक्र के रहने पर या गुरु के स्थित होने पर शुभग्रहों के वार में नाम कर्म करना चाहिये ॥१९॥

नारदः—

चरक्षिप्रध्रुवे मैत्रे नक्षत्रे शुभवासरे ।
चन्द्रताराबलोपेते दिवसे च शिशोः शुभे ॥ २० ॥

ऋषि नारदजी ने वताया है कि चर, क्षिप्र, ध्रुव संज्ञक नक्षत्र, शुभवार, चन्द्र व तारा वल से युक्त दिन में बालक का नामकरण करना चाहिये ॥ २० ॥

चण्डेश्वरः—

वस्वादित्यगुरूत्तरादितिमृगैश्चित्रानुराधानिलै-
र्मूलावैष्णवरेवतींदुतुरगैः सञ्ज्ञां प्रकुर्याच्छिशोः ।
वारेणार्कशशिज्ञवाक्पतिगुरोर्लग्नस्थिते शोभने
सौम्ये केन्द्रनवात्मजन्मसहितैः पापैश्च शेषस्थितैः ॥ २१ ॥

आचार्य चण्डेश्वर ने वताया है कि धनिष्टा, हस्त, पुष्य, उत्तरा ३, पुनर्वसु, मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, स्वाती, मूल, श्रवण नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र, बुध, गुरु के वार में, लग्नस्थ शुभ ग्रह के रहने पर बुध या शुभ ग्रहों के केन्द्र, नव, पाँच में स्थित होनेपर और शेष स्थान में पाप ग्रहों की उपस्थिति में वालक का नामकरण करना चाहिये ॥ २१ ॥

बृहस्पतिः[1]—

शुभवारे च तद्वर्गे शुभानां नामसंपदे ।
राशयश्च स्थिरा श्रेष्ठा द्विस्वभावाः शुभैर्युताः ॥ २२ ॥
शुभलग्ने शुभांशे च नैधने शुद्धिसंयुते ।
उच्चग्रहोदये वास्य दर्शने वा विशेषतः ॥ २३ ॥

---

१. ज्यो० नि० ११२ पृ० १३ श्लो० ।

आचार्य बृहस्पति ने बताया है कि नाम कर्म शुभ ग्रह के वार, वर्ग, नाम स्थिर राशियों में और शुभ से युत द्विस्वभाव राशि में, शुभ लग्न नवांश में अष्टम में ग्रह के न रहने पर या उच्च ग्रह के लग्न में स्थित होने पर या विशेष कर उच्च से दृष्ट लग्न में करना चाहिये ॥ २२–२३ ॥

अलाभे प्रोक्तकालस्य योगान् वक्ष्यामि नामनि ।
केन्द्रत्रिकोणे वा जीवे पापे अन्यतरो भवेत् ॥ २४ ॥
चन्द्रे शुभांशके सौम्ये योगा नामनि शोभनः ।
भवे शुक्रेऽथवा क्रूरे केन्द्रे शीतकरे गुरौ ॥ २५ ॥
सितपक्षे शुभो योगः संपदे नामकर्मणि ॥ २६ ॥

यदि उक्त काल की प्राप्ति न हो सके तो मैं नामकरण के योगों को कहता हूँ—केन्द्र या त्रिकोण में गुरु के रहने पर और अन्य राशियों में पाप ग्रह की उपस्थिति में, शुभ नवांश में चन्द्रमा के रहने पर, ग्यारहवें शुक्र या पाप ग्रह तथा केन्द्र में चन्द्रमा व गुरु के होने पर, शुक्ल पक्ष में यह नामकरण में शुभ योग होता है ॥ २४-२६ ॥

संग्रहकारः[1]—
देवग्रामगजाश्वानां वृक्षाणां वापिकूपयोः ।
सर्वोपकरणानां च चिह्नानां योषितां नृणाम् ॥ २७ ॥
काव्यादीनां कवीनां च पश्वादीनां विशेषतः ।
राजप्रासादसंज्ञानां नामकर्म विशिष्यते ॥ २८ ॥

संग्रहकार ने बताया है कि देव, गाँव, हाथी, घोड़ा, वृक्ष, बावरी, कुआ, समस्त उपकरण, चिह्न, स्त्री, पुरुष, काव्य, कवि, विशेषकर पशु आदि और राजमहल का नाम करण विशेषतया होता है ॥ २८ ॥

गर्गस्तु[2]—
मासनाम गुरोर्नाम दद्याद्बालस्य वै पिता ।
कृष्णोनंतोच्युतश्चक्री वैकुण्ठोथ जनार्दनः ॥ २९ ॥
उपेन्द्रो यज्ञपुरुषो वासुदेवस्तथा हरिः ।
योगीशः पुण्डरीकाक्षो मासनामान्यनुक्रमात् ॥ ३० ॥

आचार्य गर्ग ने कहा है कि मास नाम तुल्य या गुरु नाम के समान बालक का पिता उसका नामकरण करे । १ कृष्ण, २ अनन्त, ३ अच्युत, ४ चक्री, ५ वैकुंठ, ६ जनार्दन, ७ उपेन्द्र, ८ यज्ञ पुरुष, ९ वासुदेव, १० हरि, ११ योगीश, १२ पुण्डरीकाक्ष ये अगहन आदि बारह मासों के नाम क्रम से वर्णित हैं ॥ २९–३० ॥

---

१. ज्यो० नि० ११२ पृ० १६–१७ श्लो० ।
२. ज्यो० नि० ११२ पृ० १८–१९ श्लो० ।

वसिष्ठ जी ने कहा है 'चैत्रादिमासनामानि वैकुण्ठोऽथ जनार्दनः। उपेन्द्रो यज्ञपुरुषो वासुदेवस्त्रिविक्रमः। योगीशः पुण्डरीकाक्षः कृष्णोऽनन्तोऽच्युतस्तथा। चक्रधारीति चैतानि' (५ प्र० मु० चि० ४ श्लो० पी० टी०) ॥ २९–३० ॥

नामधेयं तु वर्णानां कर्तव्यं तु समाक्षरम्।
शर्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मांतं क्षत्रियस्य तु ॥ ३१ ॥

गुप्तदासांतकं नाम कथितं वैश्यशूद्रयोः।
नामधेयं तु कर्तव्यं स्वकुलानुगमेन वा ॥ ३२ ॥

स्त्रीणामोजाक्षरं शांतं विस्पष्टार्थं मनोरमम्।
नाम कार्यं नराणां च न कार्यं विषमाक्षरम् ॥ ३३ ॥

सब वर्णों के लोगों का नामकरण सम अक्षरों में करना चाहिये।

ब्राह्मणों के नाम के अन्त में शर्मा, क्षत्रियों के वर्मा, वैश्यों के गुप्त और शूद्रों के नाम के अन्त में दास शब्द का प्रयोग अपनी वंश परम्परा के अनुसार करना चाहिये।

स्त्रियों का नाम विषम मनोहर, शान्त, विशेष स्पष्ट अर्थवाला होना चाहिये और पुरुष का कभी भी विषमाक्षरों में नाम नहीं रखना चाहिये ॥ ३३ ॥

दीर्घनाम कृतं कुर्यान्न च युग्माक्षरांतकम्।
अकारांतं न कर्तव्यं स्त्रियैतच्च हितप्रदम् ॥ ३५ ॥

स्त्रियों का दीर्घमात्रान्त नाम रखना चाहिये अन्त में संयुक्ताक्षर न हो और अकार भी शुभ फल देने वाला नहीं होता है ॥ ३४ ॥

अथावकहडाचक्रम्—

अब आगे नाम रखने के लिये अर्थात् नक्षत्रों में अक्षरों के न्यास को या अवकहडा चक्र को बताते हैं।

अवकहडा चक्र ज्ञान

चूचे चोलाश्विनी ज्ञेया लोलूलेलो भरण्यथ।
अइउए कृत्तिकायां ओवावीवू च राहिणी ॥ ३५ ॥
वेवोकाकी मृगशिरः कुघङछ तथाद्रंका।
केकोहाही पुनर्वसु हूहेहोडा तु पुष्यभम् ॥ ३६ ॥
डीडूडेडो तु आश्लेषा ममामूमे मघा स्मृता।
मोटाटीटू पूर्वफाल्गु टेटोपाप्युत्तरं तथा ॥ ३७ ॥
पूषणठहस्ततारा पेपोरारी तु चित्रका।
रूरेरोता स्मृता स्वाती तीतूतेतो विशाखिका ॥ ३८ ॥
नानीनूनेऽनुराधर्क्षे ज्येष्ठा नोना यियूस्मृता।
येयो भाभी मूलतारा पूर्वाषाढा भुधाफडा ॥ ३९ ॥

भेभोज्याज्युत्तराषाढा जूजेजोषाभिजिद्भवेत् ।
खिखू खेखो श्रवणभं गागोगूगे धनिष्ठिका ॥ ४० ॥
गोसाशिशू शतभिषक् सेसो दादा तु पूर्वभात् ।
दुथ झत्रउत्तराभाद्रा देदो चाची तु रेवती ॥ ४१ ॥

चू, चे, चो, ला अश्विनी में, ली, लू, ले, लो भरणी में, अ, इ, उ, ए कृत्तिका में, ओ, वा, वी, वू रोहिणी में, वे, वो, का, की मृगशिरा में, कु, घ, ङ, छ आर्द्रा में, के, को, हा, ही पुनर्वसु में, हू हे, हो, डा पुष्य में, डी, डू, डे, डो आश्लेषा में, म, मी, मू, मे, मघा में, मो, टा, टी, टू, पूर्वाफाल्गुनी में, टे, टो, पा, पी, उत्तरा फाल्गुनी में, पू, ष, ण, ठ, हस्त में, पे, पो, रा, री, चित्रा में, रू, रे, रो, ता, स्वाती में, ती, तू, ते तो विशाखा में, ना, नी, नू, ने, अनुराधा में, नो, ना, यि, यू, ज्येष्ठा में, ये, यो, भा, भी, मूल में, भू, घ, फ, ढ पूर्वाषाढा में, भे, भो, जा, जी, उत्तराषाढा में, जू, जे, जो, षा अभिजित में, खि, खू, खे, खो श्रवण में, गा, गी, गू, गे, धनिष्ठा में, गो, सा, सू शतभिषा में, से, सो, दा, दी पूर्वाभाद्रपदा में, दू, थ, झ, ञ उत्तराभाद्र पदा में और दे, दो, चा, ची रेवती में चारों चरण समझकर नामकरण करना चाहिये ॥ ३५–४१ ॥

स्पष्टार्थ सारणी

नक्षत्र	अश्विनी	भरणी	कृत्तिका	रोहिणी	मृगशिरा	आर्द्रा	पुनर्वसु
वर्ण	चू,चे,चो, ला	ली,लू,ले लो	अ,इ,उ,ए	ओ,वा,वी, वू	वे,वो,का, की	कु,घ,ङ, छ	के,को,हा, ही
नक्षत्र	पुष्य	आश्लेषा	मघा	पू.फा.	उ.फा.	हस्त	चित्रा
वर्ण	हू,हे,हो डा	डी,डू,डे, डो	म,मा,मू,मे	मो,टा,टी, टू	टे,टो,पा,पी	पू,ष,ण, ठ	पे,पो,रा, री,
नक्षत्र	स्वाती	विशाखा	अनुराधा	ज्येष्ठा	मूल	पू.षा.	उ.षा.
वर्ण	रू,रे,रो, ता	ती,तू,ते, तो	ना,नी,नू,ने	नो,या,यि, यू	य,यो,भा, भी	भू,ध,फ, ढ	भे,भो, जा,जि
नक्षत्र	अभि.	श्रवण	धनिष्ठा	शतभिषा	पू.भा.	उ.भा.	रेवती
वर्ण	जू,जे,जो षा	खि,खू,खे खो	गा,गी,गु, गे	गो,सा,से, सु	से,सो,दा,दी	दू,थ,झ, ञ	दे,दो,चा, ची

राशिप्रविभागमाह—

अव आगे राशि प्रविभाग को अर्थात् किन-किन नक्षत्रों की कौन-कौन राशि होती हैं वताते हैं ।

प्रथम मेष वृष राशि में नक्षत्रों का स्थान

[1]वाराहीसंहितायाम्—

अश्विन्यो भरण्यो बहुलापादश्च कीर्त्यते मेषः।
वृषभो बहुलाशेषं रोहिण्यर्द्धं च मृगशिरसः॥ ४२॥

वाराही संहिता में बताया है कि अश्विनी व भरणी के चारों-चारों चरण और कृत्तिका के प्रथम पाद की मेष राशि और कृत्तिका के ३ चरण रोहिणी के चार और मृगशिरा के पहिले व दूसरे चरण की वृष राशि होती है॥ ४२॥

मिथुन और कर्क राशि में नक्षत्रों का स्थान

मृगशिरसोर्धं रौद्रं पुनर्वसोश्चांशकत्रयमिथुनम्।
पादश्च पुनर्वसुतस्तिष्योऽश्लेषा च कर्कटः॥ ४३॥

मृगशिरा के ३-४ चरण, आर्द्रा के ४ और पुनर्वसु नक्षत्र के १-३ पाद की मिथुन और पुनर्वसुका चौथा चरण, पुष्य के १-४ तक और आश्लेषा के १-४ चरण की कर्क राशि होती है॥ ४३॥

सिंह और कन्या राशि में नक्षत्रों का स्थान

सिंहोथ मघा पूर्वा च फाल्गुनी पाद उत्तरायाश्च।
तत्परिशेषं हस्तश्चित्राद्यर्द्धं च कन्याख्यः॥ ४४॥

मघा व पूर्वाफाल्गुनी के १-४ चरण और उत्तराफाल्गुनी के प्रथम चरण की सिंह राशि और उत्तराफाल्गुनी के दूसरे चरण से चौथे तक हस्त के १-४ चरण और चित्रा के १-२ चरणों की कन्या राशि होती है॥ ४४॥

तुला और वृश्चिक राशि में नक्षत्रों का स्थान

तौलिनि चित्रांत्यार्द्धं स्वातिः पादत्रयं विशाखायाः।
अलिनि विशाखापादस्तथानुराधान्विता ज्येष्ठा॥ ४५॥

चित्रा के ३-४ स्वाती के १-४ और विशाखा के १-३ चरण की तुला और विशाखा का चौथा चरण अनुराधा के १-४ तक और ज्येष्ठा के १-४ चरण की वृश्चिक राशि होती है॥ ४५॥

धनु और मकर राशि में नक्षत्रों का स्थान

मूलमाषाढा पूर्वाप्रथमश्चाप्युत्तरांशको धन्वी।
मकरस्तत्परिशेषं श्रवणः पूर्वे धनिष्ठार्द्धम्॥ ४६॥

मूल के १-४ चरण, पूर्वाषाढ के १-४ चरण और उत्तराषाढ के प्रथम पाद की धनु और उत्तराषाढ के २-४ चरण, श्रवण के १-४ चरण और धनिष्ठा के १-२ चरण तक की मकर राशि होती है॥ ४६॥

---

१. १०२ अ० १-६ श्लो०।

कुम्भ और मीन राशि में नक्षत्रों का स्थान

कुम्भोन्त्यधनिष्ठार्द्धं शतभिषगंशत्रयं च पूर्वायाः।
भाद्रपदायाः शेषं तथोत्तरा रेवती च झषः॥ ४७॥

धनिष्ठा नक्षत्र के ३–४ चरण, शतभिषा के १–४ पाद और पूर्वाभाद्रपदा के १–३ चरण की कुम्भराशि और पूर्वाभाद्र पद के चौथे चरण, उत्तरा भाद्रपद के व रेवती के चारों चरण की मीन राशि होती है॥ ४७॥

यवनमतम्—
यत्र स्थितः शीतकरो नराणां स्याज्जन्मराशि तमुदाहरंति।
यथा तथा येषु खगाः स लग्नास्थिता न ते सप्त कुतो भवंति॥ ४८॥
अतोष्टराशिर्मनुजोथ सर्वः प्रोक्तानि तेभ्यश्च शुभाशुभानि।
फलानि तेषां तु वियोगयोगादहृष्टवर्गोत्थफलं स्फुटं स्यात्॥ ४९॥

यवनों का मत है कि जैसे पुरुषों की कुण्डली में जहाँ जिस राशि में चन्द्रमा होता है, वह उसकी राशि होती है। ऐसे ही लग्नादि सात भावों में शेष ग्रह होते हैं, वे सात भी राशियाँ क्यों नहीं होतीं? क्योंकि उनके अच्छे-बुरे योगों के कारण ही तो अदृष्ट को अच्छा-बुरा फल मिलता है। इसलिए मनुष्य को आठ राशिवाला मानना चाहिये॥ ४८–४९॥

भोगादौ लग्नभं योज्यं राजकार्यार्किभं तथा।
चन्द्रभं सर्वकार्येषु संग्रामादौ च भौमभम्॥ ५०॥
विद्याभ्यासे बुधर्क्षे च विवाहे गुरुभं स्मृतम्।
शुक्रयुग्मं प्रयाणे च दीक्षायां शनिभं बुधैः॥ ५१॥

भोगादि में लग्न राशि, राजकीय कार्य में सूर्य राशि, समस्त कामों में चन्द्र राशि, संग्रामादि में मंगल राशि, विद्याभ्यास में बुध राशि, विवाह में गुरु राशि, यात्रा में शुक्र और दीक्षा में शनि राशि का विचार करना चाहिए॥ ५०–५१॥

नाम राशि की प्रधानता

बृहस्पतिः[१]—
व्यवहारराजसेवायां संग्रामग्रामधामगेहेषु।
ज्ञातेपि जन्मराशौ फलमुक्तं नामराशिवशात्॥ ५२॥

बृहस्पतिजी ने बताया है कि व्यवहार, राजसेवा, युद्ध, गाँव, धाम, घर के कार्यों में जन्मराशि का ज्ञान होने पर भी नाम राशि से उक्त कार्यों का सम्पादन करना चाहिये॥ ५२॥

---

१. ज्यो० नि० ९९ पृ० १–२ श्लो०।

अन्य आचार्य के मत में

अन्योपि—

विवाहे सर्वमांगल्ये यात्रादौ ग्रहगोचरे।
जन्मराशिप्रधानत्वं नामराशिं न चिन्तयेत् ॥ ५३ ॥

विवाह, समस्त मांगलिक काम, यात्रा, ग्रह गोचर में जन्म राशि की प्रधानता होती है। अर्थात् इसी से करना और नाम राशि से नहीं करना चाहिए ॥ ५३ ॥

देशे ग्रामे ग्रहे युद्धे सेवायां व्यवहारके।
नामराशिप्रधानत्वं जन्मराशिं न चिन्तयेत् ॥ ५४ ॥

देश, गाँव, घर, लड़ाई, व्यवहार में नाम राशि की प्रधानता होने से जन्मराशि से विचार उक्त बातों का चिन्तन नहीं करना चाहिये ॥ ५४ ॥

स्वरशास्त्रे—[1]

प्रसुप्तो येन जागर्ति येनागच्छति शब्दितः।
तत्र नामादिमो वर्णो ग्राह्यः स्वरविशारदैः ॥ ५५ ॥

सोया हुआ जिससे जग जाय और बुलाने पर आ जाय, ऐसा नाम का आदि वर्ण स्वर शास्त्र ज्ञाताओं को ग्रहण करना चाहिए ॥ ५५ ॥

विशेष—नरपति जयचर्या में 'प्रसुप्तो बुध्यते येन ''' । तत्र नामाद्यवर्णे या मात्रा सा मात्रा स्वरः स्मृतः' यह पाठ है ॥ ५५ ॥

न प्रोक्ता ङञणा वर्णा नामादौ सन्ति ते न हि।
चेद्भवन्ति तदा ज्ञेया गजडास्ते यथाक्रमम् ॥ ५६ ॥

वर्ण स्वर चक्र में ङ, ञ, ण, वर्णों को नहीं कहा है क्योंकि नाम के आदि में नहीं होते हैं। यदि हों तो भी इनके स्थान में क्रम से ग, ज, ड को यथाक्रम समझना चाहिए ॥ ५६ ॥

वर्णों में विशेष

षखौ सशौ बवौ चैव ज्ञेयाविति परस्परम्।
संयोगाक्षरगे नाम्नि ग्राह्यस्तत्रादिमाक्षरम् ॥ ५७ ॥

स्वर शास्त्र में व व, श स, ष ख ये सजातीय माने जाते हैं। यदि नाम का प्रथम अक्षर संयुक्ताक्षर हो तो उसमें जिसका पहिले उच्चारण हो उसे ग्रहण करके वर्ण स्वर का ज्ञान करना चाहिए ॥ ५७ ॥

---

१. ज्यो० नि० ९९ पृ०।

कदाचित् अधिक नामों में ग्राह्य नाम

बहूनि यस्य नामानि नरस्य स्युः कथंचन।
तस्य पश्चाद्भवं नाम ग्राह्यं स्वरविशारदैः॥ ५८॥

यदि किसी के अधिक नाम हों तो उनमें जो पीछे वाला हो, उसे स्वरज्ञ को ग्रहण करके वर्ण स्वर का ज्ञान करना चाहिए॥ ५८॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते सङ्ग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने संस्कारोक्तं चतुष्पञ्चाशत्तमं नामकरणप्रकरणं समाप्तम्।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का चौवनवाँ नामकरण नाम वाला प्रकरण समाप्त हुआ॥ ५४॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर चतुर्वेदकृता बृहद्दैवज्ञरञ्जनसंग्रहग्रन्थस्य चतुःपञ्चाशत् प्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्तिमगात्॥ ५४॥

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमं खट्वारोहणप्रकरणं प्रारभ्यते।

अब आगे पचपनवें प्रकरण में नवजात बालक को खाट पर कब, किस दिन, किस काल में या किस नक्षत्र वार में किस तरफ पैर व शिर करके सुलाना चाहिये, इसे बताते हैं।

प्र० शय्या शयन मूहूर्त

[1]बृहस्पतिः—

खट्वारोहस्तु कर्तव्यो दशमे द्वादशेपि च।
षोडशे दिवसे वापि द्वात्रिंशद्दिवसेपि वा॥ १॥

ऋषि बृहस्पतिजी ने बताया है कि दसवें या बारहवें या सोलहवें या बत्तीसवें दिन बालक को खाट पर सुलाना चाहिए॥ १॥

१. ज्यो० नि० ११२ पृ०।

प्रकारान्तर

[1]भविष्योत्तरपुराणे—

अभीष्टपुण्यदिवसे चन्द्रताराबलान्विते ।
मृदुध्रुवक्षिप्रभे तु स्वमाता कुलयोषितः ॥ २ ॥
योगशायिहरिं स्मृत्वा प्राक्शीर्षं विन्यसेच्छिशुम् ॥ ३ ॥

भविष्योत्तर पुराण में बताया है कि इष्ट पुण्य दिन में चन्द्र व तारा के बली होने पर मृदु, ध्रुव, क्षिप्र नक्षत्रों में माता या कुलकी स्त्रियों द्वारा योगशायि भगवान् का स्मरण करके पूर्व दिशा में बालक का मस्तक करके खाट पर शयन कराना चाहिये ॥ २–३ ॥

खट्वाचक्र का ज्ञान

अथ खट्वाचक्रम्—

खट्वाचक्रं प्रवक्ष्यामि यथा गर्गेण भाषितम् ।
येन विज्ञातमात्रेण ज्ञायते च शुभाशुभम् ॥ ४ ॥

अब मैं जैसा कि गर्ग जी ने खट्वाचक्र का वर्णन किया है उसे कह रहा हूँ । जिसके जानने से शुभाशुभ का परिचय मिलता है ॥ ४ ॥

सूर्यऋक्षाच्चतुष्कं च देयं धिष्ण्यं तु मस्तके ।
कोणयोरष्टनक्षत्रं शाखायामष्ट एव च ॥ ५ ॥
खट्वामध्ये त्रिकं चैव वेदसंख्या च पादयोः ।

सूर्य के नक्षत्र से चार ४ नक्षत्र मस्तक पर, पुनः ८ कोणों में, फिर ८ पाटियों पर बीच में ३, ४ पैरों में न्यास करके चन्द्र नक्षत्र को देखना कि किस अवयव में है ॥ ५-५½ ॥

अवयवों में चन्द्रमा का फल

मस्तके च शुभं ज्ञेयं कोणयोरथ मृत्युदः ॥ ६ ॥

यदि मस्तक में हो तो शुभ और कोने के में हो तो मृत्यु होती है ॥ ६ ॥

शाखाष्टकं शुभं प्रोक्तं त्रिकं मध्ये सुखप्रदम् ।
पादयोर्वेदनक्षत्रं हानिर्मृत्युर्महद्भयम् ॥ ७ ॥
सूर्यभाद्दिनभं गण्यं खट्वाचक्रं विशेषतः ॥ ८ ॥

शाखा (पाटी) के आठों कोणों में होने पर शुभ, बीच के तीनों में सुख और पैरों के चारों में हो तो हानि और मृत्यु व बड़ा भय होता है । इसका विचार सूर्य के नक्षत्र से दिन के नक्षत्र तक गिन कर समझना चाहिये ॥ ७–८ ॥

---

१. ज्यो० नि० ११२ पृ० ।

खाट की लकड़ी के शुभ वृक्ष

[1]वाराहः—

असनस्पन्दनचन्दनहरिद्रसुरदारुतिन्दुकी शाला।
काश्मर्यंजनपद्मकशाका वा शिंशपा च शुभाः ॥ ९ ॥

आचार्य वराह मिहिर जी ने बताया है कि विजयसार, स्पन्दन, हरिद्रा, देवदारु, तिन्दुकी, शाल, काश्मरी, अञ्जन, पद्मक, शाक, शिंशपा (सीसम) ये वृक्ष शय्यादि के लिए शुभ होते हैं ॥ ९ ॥

अशुभ वृक्ष

कण्टकिनो वा ये स्युर्महानदीसङ्गमोद्भवा ये च ॥

काँटे वाले जो हों वे, महानदी संगम में जो उत्पन्न हुए हैं वे सब अशुभ वृक्ष खाट के लिये होते हैं।

शयन निषेध

श्रीपतिः—

गोधान्यदेवाग्निगुरूपदिष्टान्स्वपेन्न चैवापरसौम्यमूर्द्धा।
न चानुवंशो न जलार्द्रपादः श्रियोभिलाषी पुरुषो न नग्नः ॥ १० ॥

आचार्य श्रीपति जी ने बताया है कि गाय, धान्य, देव, अग्नि, मन्त्र के ऊपर, पश्चिम या उत्तर मस्तक करके, पीछे बांस करके, गीले पैर और विना वस्त्र के नंगा होकर लक्ष्मी की इच्छा करने वाले को शयन नहीं करना चाहिये ॥ १० ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते सङ्ग्रहे वृहद्दैवज्ञरञ्जने
संस्कारोक्तं पञ्चपञ्चाशत्तमं खट्वारोहणप्रकरणं समाप्तम्।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन जी द्वारा रचित वृहद्दैवज्ञरञ्जन संग्रह ग्रन्थ का पचपनवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ५५ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेव चतुर्वेदात्मज मुरलीधर चतुर्वेदकृता बृहद्दैवज्ञरञ्जनसंग्रहग्रन्थस्य पञ्चपञ्चाशत्तम प्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दीटीका पूर्णा ॥ ५५ ॥

---

१. बृ० सं० ७९ अ० २ श्लो०।

अथ षट्पञ्चाशत्तमं कर्णवेधप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे छप्पनवें प्रकरण में कनछेदन कब किस काल, नक्षत्र में करना उचित होता है इसे विविध ग्रन्थों के वाक्यों से बताते हैं।

कनछेदन का महत्व

बृहस्पतिः —

अथातः संप्रवक्ष्यामि कर्णवेधस्य शोभनम् ।
कालं चतुर्मुखात् प्रोक्तं नीरोगाय श्रियाय च ॥ १ ॥

ऋषि बृहस्पति जी ने बताया है कि मैं अब कनछेदन के उत्तम शुभ समय को बताता हूँ, जो कि पहिले ब्रह्मा जी ने नीरोगता और लक्ष्मी प्राप्ति के लिए कहा है ॥१॥

कृते सुखविवृद्धयैतत्कर्तव्यं कर्णयोर्व्यधम् ।
अङ्गहीनभयात्केचित्केचिदङ्गादिनां क्षयः ॥ २ ॥
इति मत्वा न कुर्वन्ति नैवमाह पितामहः ॥ ३ ॥

इसके करने पर सुख की वृद्धि होती है इसलिये कनछेदन करना चाहिए।

कोई अंगहीनता के डर से या कोई शरीरावयव के क्षय से भय मान कर नहीं करते किन्तु पितामह ने ऐसा नहीं कहा है ॥ २–३ ॥

यो वेधेत्कर्णवेधेन स्वाङ्गे हानि तु तैरपि ।
नाभिच्छेदं न कर्तव्यं अङ्गहीनभयादिति ॥ ४ ॥

जो कि कान में छेद करने के औजार से छेद करता है वह स्वाङ्ग की हानि करता है, ऐसा नहीं है, क्योंकि अंगहीनता के भय से फिर नाल छेदन भी नहीं करना चाहिए ॥ ४ ॥

काल ज्ञान

[1]जन्मतो दशमे वाह्नि द्वादशे वाथ षोडशे ।
सप्तमे मासि वा कुर्यादष्टमे मासि वा पुनः ॥ ५ ॥

बालक के जन्म दिन से दसवें या बारहवें या सोलहवें दिन या सात या आठवें मास में कनछेदन करना चाहिए ॥ ५ ॥

निषिद्ध समय

[2]चूडामणी—

मासे षष्ठे सप्तमे चाष्टमे वा वेध्यौ कर्णौ द्वादशे षोडशेह्नि ।
मध्ये चाह्नः पूर्वभागे न रात्रौ नक्षत्रे द्वे द्वे तिथी वर्जनीये ॥ ६ ॥

---

१. ज्यो० नि० ११४ पृ० २ श्लो० ।

२. मु० चिं० ५ प्र० २४ श्लो० पी० टी० वसिष्ठ के नाम से है।

चूड़ामणि में कहा है कि छठे, सातवें या आठवें मास में या बारहवें या सोलहवें दिन मध्याह्न से पहिले कनछेदन करना और रात व दो नक्षत्र दो तिथि के दिन नहीं करना चाहिए ॥ ६ ॥

विशेष बात

बृहस्पतिः—
यस्मिन्वारे तिथी तारे द्वे द्वे युक्ते न शोभने ।
सन्धिद्वयोः पुरो लग्नाद्यदि स्यात् शुभता तयोः ॥ ७ ॥

बृहस्पतिजी ने बताया है कि जिस वार में दो तिथि या दो नक्षत्र हों तो वह शुभ नहीं होता है । यदि लग्न से पहिले की सन्धि में हों तो उनमें शुभता होती है ॥ ७ ॥

मध्याह्ने तु प्रशस्तं स्यादपराह्णे न शोभनम् ।
मध्याह्ननिशिवर्ज्यं तन्मुहूर्तंस्यातिनाडिकम् ॥ ८ ॥

कनछेदन मध्याह्न में शुभ और अपराह्न में अशुभ होता है । एवं मध्याह्न व रात में उस मुहूर्त की अतिक्रम घटियों का त्याग करना चाहिए ॥ ८ ॥

प्रकारान्तर से समयादिक

गर्गः—
मासे षष्ठे सप्तमे वाप्यष्टमे द्वादशेऽह्नि वा ।
कर्णवेधं प्रशंसन्ति पुष्ट्यायुःश्रीविवृद्धये ॥ ९ ॥

आचार्य गर्ग ने बताया है कि छठे या सातवें या आठवें मास में या बारहवें दिन आयु की पुष्टि और लक्ष्मी की वृद्धि के लिए कर्ण वेध करना चाहिए ॥ ९ ॥

यस्मिन्नहनि नक्षत्रद्वयं तिथिद्वयं वा भवति तत्र कर्णवेधं न कुर्यात् ।

[1]अर्केनुकूले शशिनि प्रशस्ते तारावले चन्द्रविवृद्धिपक्षे ।
अयुग्मवर्षे शुभदः शिशूनां कर्णस्य वेधं मुनयो वदन्ति ॥ १० ॥

जिस दिन दो नक्षत्र या दो तिथि हों उस दिन कर्णवेध नहीं करना और शुक्ल पक्ष में, सूर्य अनुकूल होने पर तथा तारा व चन्द्र के शुभत्व में विषम वर्ष में बालकों का कनछेदन करना, ऐसा ऋषि लोग कहते हैं ॥ १० ॥

सूर्य बल की प्रधानता

चिरप्रवासयात्रायां गृहे कर्णस्य वेधने ।
चूडाकृतौ प्रतिष्ठायां भानुशुद्धिर्विधीयते ॥ ११ ॥

अधिक प्रवास जन्य यात्रा, घर, कनछेदन, चूड़ाकर्म और प्रतिष्ठा में सूर्य शुद्धि का विचार करना चाहिए ॥ ११ ॥

---

१. मु० चि० ५ प्र० २४ श्लो० पी० टी० ।

कनछेदन में त्याज्य

[1]न जन्ममासे न च चैत्रपौषे न भाद्रसंज्ञे न हरौ प्रसुप्ते ।
तिथौ न रिक्ते न च विष्टिदुष्टे कर्णस्य वेधं मुनयो वदन्ति ।। १२ ।।

कान के छेद करने में जन्म का मास, चैत, भादों, पूस का महिना, हरिशयन, (चौमासा) रिक्ता तिथि और दुष्ट योग का त्याग करना, ऐसा ऋषि लोग कहते हैं ।। १२ ।।

पुनः मुहूर्त

[2]नृसिंहः—

वेध्यौ कर्णावदन्तस्य विषमेऽब्देऽथवा शिशोः ।
शुक्लपक्षे शुभे वारे चैत्रपौषोर्जफाल्गुने ।। १३ ।।

आचार्य नृसिंह ने बताया है कि बालक के दांत निकलने से पहिले या विषम वर्ष, शुक्ल पक्ष, शुभवार, चैत, पूस, कातिक या फाल्गुन मास में दोनों कानों में छेद कराना चाहिये ।। १३ ।।

ग्रन्थान्तर से समय

गर्गः—

[3]कार्तिके पौषमासे च चैत्रे वा फाल्गुनेपि वा ।
कर्णवेधं प्रशंसन्ति शुक्लपक्षे शुभे दिने ।। १४ ।।

आचार्य गर्ग ने बताया है कि कार्तिक, पूस, चैत, फागुन में शुक्ल पक्ष, शुभ दिन में कर्ण वेध करना चाहिये ।। १४ ।।

पुनः शुभाशुभ काल

चण्डेश्वरः—

न श्रावणे तथा भाद्रे नैव चाश्विनकार्तिके ।
पौषे चैव न कुर्वीत कर्णयोरपि वेधनम् ।। १५ ।।

आचार्य चण्डेश्वर का कहना है कि सावन, भादों, आश्विन या कार्तिक या पौष में कानों में छेद नहीं करना चाहिये ।। १५ ।।

हरौ प्रसुप्ते न च चैत्रपौषे न भाद्रसंज्ञे न च जन्ममासे ।
रोगं विना न प्रवदन्ति नित्यं कर्णस्य वेधं मुनयो वदन्ति ।। १६ ।।

भगवान् विष्णु के शयन दिनों में, चैत, पूस; भादों व जन्म मास में करने से नित्य रोग होता है, अतः नहीं करना ऐसा मुनि लोग कहते हैं ।। १६ ।।

जन्मर्क्षे जन्ममासे च रिक्तापर्वाविमेषु च ।
भद्रायामशुभे चन्द्रे न कुर्यात्कर्णवेधनम् ।। १७ ।।

---

१. मु० चि० ५ प्र० २४ श्लो० पी० टी० ।

२. ज्यो० नि० ११४ पृ० ८ श्लो० । ३. मु० चि० ५ प्र० २४ श्लो० पी० टी० ।

जन्म के नक्षत्र मास में, रिक्ता, पूर्णिमा, अमा तिथि में, भद्रा में अशुभ चन्द्रमा के होने पर कनछेदन नहीं करना चाहिये ॥ १७ ॥

कनछेदन में शुभाशुभ तिथि

[१]बृहस्पतिः—

द्वितीया दशमी षष्ठी सप्तमी च त्रयोदशी ।
द्वादशी पञ्चमी शस्ता तृतीया कर्णवेधने ॥ १८ ॥

ऋषि बृहस्पति ने बताया है कि द्वितीया, दशमी, षष्ठी, सप्तमी, त्रयोदशी, द्वादशी, पञ्चमी, तृतीया कनछेदन में शुभ होती है ॥ १८ ॥

एकादश्यष्टमी पर्व रिक्ता वर्ज्याः शुभावहाः ।
शिष्टाश्च तिथयः सर्वाः कृष्णे चान्त्यत्रिकं विना ॥ १९ ॥

एकादशी, अष्टमी, पर्व और रिक्ता तिथियों को और कृष्ण पक्ष की तीन अन्तिम तिथियों को छोड़कर शेष सब शुभ होती हैं ॥ १९ ॥

शुभाशुभ वार

[२]मन्दाराकांशवाराः स्युर्वर्ज्याः शेषास्तु शोभनाः ।
गुरुशुक्रेन्दुजेन्दूनां पूज्या वारांशकोदयाः ॥ २० ॥

शनि, मंगल, सूर्य को छोड़कर सब वार शुभ और- गुरु, शुक्र- बुध व चन्द्रमा का नवांश लग्न में शुभ होता है ॥ २० ॥

शुभाशुभ नक्षत्र

चण्डेश्वरः—

हस्तादितिश्रवणमैत्रभवासवेषुपौष्णग्राश्विनतिष्यमरुदिन्दुसचित्रभानि ।
श्रेष्ठानि मूलमरुणात्मजभानि पूर्वात्र्युत्तरात्रितयमग्निभनिन्दितानि ॥२१॥

भरणीकृत्तिकाश्लेषाविशाखार्द्रामुपेन्द्रजम् ।
कर्णवेधविधौ सप्त भानि वर्ज्यानि यत्नतः ॥ २२ ॥

आचार्य चण्डेश्वर ने बताया है कि हस्त, पुनर्वसु, श्रवण, अनुराधा, धनिष्ठा, रेवती, अश्विनी, पुष्य, स्वाती, मृगशिरा और चित्रा नक्षत्र कनछेदन में श्रेष्ठ एवं मूल पु. व. तीन पूर्वा, तीन उत्तरा, ये निन्दित नक्षत्र और भरणी, कृत्तिका, आश्लेषा, विशाखा, आर्द्रा और ज्येष्ठा नक्षत्र ये सातों त्याज्य होते हैं ॥ २१–२२ ॥

---

१. मु० चिं० ५ प्र० २४ श्लो० पी० टी० ।

२. ज्यो० नि० ११४ पृ० ११ श्लो० ।

कनछेदन मुहूर्त

राजमार्तण्डे—

मैत्रे हस्ते सवित्रे हरिगुरुसहिते स्वातिपौष्ण्याश्विनीषु
शक्रादित्ये च सौम्ये शशिकरणसुते भार्गवेन्दौ गुरौ वा।
पक्षे शुक्ले च नास्तङ्गतवति भृगुजे नैव रिक्ते तिथौ च
केन्द्रे जीवे भृगौ वा सहजरिपुगतैः पापकैः कर्णवेधः ॥ २३ ॥

राज मार्तण्ड में बताया है कि अनुराधा, हस्त, पुनर्वसु में विष्णु जागृति व गुरु के उदय में स्वाती, रेवती, अश्विनी, ज्येष्ठा में सूर्य, बुध, या शुभ वार शुक्र या गुरु या सोमवार में, शुक्ल पक्ष में, शुक्रास्त न होने पर रिक्ता तिथियां को छोड़कर केन्द्र में गुरु, शुक्र के रहने पर तथा तीसरे, छठे में पापग्रह के होने पर कनछेदन करना चाहिये ॥ २३ ॥

प्रकारान्तर

श्रीपतिः[1]—

पौष्णवैष्णवकराश्विनी चित्रापुष्यवासवपुनर्वसुमित्रैः।
सेन्दवैः श्रवणवेधविधानं निर्दिशन्ति मुनयो हि शिशूनाम् ॥ २४ ॥

आचार्य श्रीपति जी ने बताया है कि रेवती, श्रवण, हस्त, अश्विनी, चित्रा, पुष्य, धनिष्ठा, पुनर्वसु, अनुराधा और मृगशिरा में बालकों के कानों में छेद करना चाहिये, ऐसा ऋषि लोग कहते हैं ॥ २४ ॥

ग्रन्थान्तर से

चूडामणौ—

ज्येष्ठादित्यसमीरणार्कशतभे पुष्यश्रविष्ठाश्विनी
चित्रावैष्णववायुपौष्णमृगभे वारे बुधादित्रये।
भ्रात्रायारिगते खले च शुभदे केन्द्रत्रिकोणस्थिते
वर्षे चायुजि कर्णवेधनविधिः पक्षे सिते शोभनः ॥ २५ ॥

चूडामणि ग्रन्थ में बताया है कि ज्येष्ठा, पुनर्वसु, स्वाती, हस्त, शतभिषा, पुष्य, श्रवण, अश्विनी, चित्रा, श्रवण, कृत्तिका, रेवती, मृगशिरा नक्षत्र में बुध या गुरु या शुक्र वार में, ३, ६, ११ में पापग्रह के रहने पर, केन्द्र व त्रिकोण में शुभ ग्रहों की स्थिति वश विषम वर्ष में बालक का कान छिदवाना चाहिये ॥ २५ ॥

शुभाशुभ लग्न

वृद्धनारदः[2]—

वृषभे मिथुने मीने कुलीरे कन्यकासु च।
तुलाचापे तु कुर्वीत कर्णवेधं शुभाप्तये ॥ २६ ॥

---

१. मु० चि० ५ प्र० २४ श्लो० पी० टी०।
२. ज्यो० नि० ११४ पृ० ९–१० श्लो० २६–२७।

मेषश्च मकरश्चैव मध्यमौ गुरुणोदितौ ।
सिंहवृश्चिककुम्भाश्च अधमत्वाद्विवर्जिताः ॥ २७ ॥

वृद्ध नारद जी ने बताया है कि वृष, मिथुन, मीन, कर्क, कन्या, तुला लग्न में शुभ प्राप्ति के लिये कनछेदन करना चाहिये । मेष व मकर में गुरु का उदय हो तो ये मध्यम लग्न होते हैं और सिंह, वृश्चिक, कुंभ राशि अधम होने के नाते त्याज्य होती है ॥ २६–२७ ॥

विशेष—यह पद्य पीयूष धारा में उपलब्ध हैं किन्तु निषेधार्थक हैं ॥ २६–२७ ॥

पुनः लग्न शुद्धि

चण्डेश्वरः—

देवाचार्यशशांकपुत्रभृगुजाः केंद्रस्थिताः शोभनाः
तिग्मांशुक्षितिसूनुसूर्यतनया शस्तास्त्रिषष्ठायगाः ।
षष्ठाष्टांत्यगतस्तथापरहिते शेषे शशी शोभनः
श्रुत्योर्वेधविधौ वदंति मुनयः श्रेष्ठाः समस्ता इमे ॥ २८ ॥

आचार्य चण्डेश्वर ने बताया है कि गुरु, बुध, शुक्र केन्द्रस्थ हों तथा पापग्रह सूर्य-मंगल, शनि ३, ६, ११ में शुभ, ४, ६, ८, १२ वें को छोड़ कर शेष में चन्द्रमा शुभ होता है । अतः कथित शुभ समय में कनछेदन करना चाहिये, ऐसा ऋषि लोग कहते है ॥

पुनः शुभ लग्न ज्ञान

बृहस्पतिः—

[1]रन्ध्रारिव्ययगो नेष्टो गुरुः शेषेषु शोभनः ।
सुतरन्ध्रगतः सोमो नेष्टस्त्वन्यत्र शंकरः ॥ २९ ॥

[2]षट् सप्ताष्टगतः शुक्रो न शुभोप्यत्र शोभनः ।
चन्द्रो द्वित्रिसुतास्तेषु धर्मकर्मांशगः शुभः ॥ ३० ॥

ऋषि बृहस्पति जी ने बताया है कि ६ । ८ । १२ में गुरु अशुभ, शेषों में शुभ, ५ । ८ में चन्द्रमा अशुभ और अवशिष्टों में शुभ, ६ । ७ । ८ में अशुभ भी शुक्र शुभ और चन्द्रमा २ । ३ । ५ । ७ । ९ । १० भाव में शुभ होता है ॥ २९–३० ॥

[3]त्रिषडायगताः पापाः शुभाः स्युःकर्णवेधने ।
अनुक्तेष्वपि भावेषु स्ववर्गस्थाः स्वतुंगगाः ॥ ३१ ॥

मित्रराशिरताश्चैव मित्रदृष्टाश्च शोभनाः ।
अष्टमस्था ग्रहाः सर्वे नेष्टाः स्युः कर्णवेधने ॥ ३२ ॥

---

१. ज्यो० नि० ११४ पृ० १३ श्लो० ।
२. ज्यो० नि० ११४ पृ० १४ श्लो० ।
३. ज्यो० नि० ११४ पृ० १५ श्लो० ।

कनछेदन में ३ । ६ । ११ में पापग्रह शुभ और अनुक्त भावों में अपने वर्ग में या उच्च में हों या मित्र राशि में मित्र ग्रह से दृष्ट हों तो शुभ और आठवें भाव में सब अशुभ फल दाता होते हैं ॥ ३१–३२ ॥

महाबलयुतो जीवः शुक्रस्योपचये स्थितः ।
शुक्रोपि तद्वदिंदोश्चेत्स योगः कर्णवेधने ॥ ३३ ॥
शातकुंभमयी सूची वेधने शोभनप्रदा ।
राजता वायसी वापि यथा विभवतः शुभा ॥ ३४ ॥

शुक्र के उपचय स्थान में गुरु बड़ा बली होता है और शुक्र भी चन्द्रमा से उपचय स्थान में हो तो यह योग अधिक शुभ होता है ॥

कान में छेद करने के लिए सुवर्ग की सुई शुभ प्रद होती है या चाँदी या लोहे की अपनी शक्ति के अनुसार बनवानी चाहिये ॥ ३३–३४ ॥

आदौ संपूज्य दैवज्ञं भिषजां दैवमेव च ।
विदुषो ब्राह्मणांश्चैव कर्मकारं तथैव च ॥ ३५ ॥
ब्राह्मणैराशिषं कृत्वा वंदिभिश्च प्रियैर्जनैः ।
दासीभिश्चापि शंखैश्च भेरीदुन्दुभिपूर्वकैः ॥ ३६ ॥
[1]सुभूमौ प्रवणे रम्ये शुचौ देशेंबरे रवौ ।
सन्निधौ वेधयेत्कर्णौ स्त्रीपुंसोर्वामदक्षिणौ ॥ ३७ ॥

सर्व प्रथम दैवज्ञ की पूजा करके फिर दैवज्ञ, वैद्य, विद्वान् ब्राह्मण और कर्मकार (छेदन कर्ता) का पूंजन करना तथा उनसे आशीर्वाद ग्रहण करके वन्दी प्रिय जन, दास, दासियों के साथ शंख; दुंदुभि भेरी के शब्दों से आकाश मण्डल के परिपूरित होने पर शुद्ध सुन्दर, देश में सूर्य के प्रकाश में स्त्री, पुरुष के बायें व दायें कान में छेद करना चाहिये ॥ ३५–३७ ॥

कन्या के नासिका छेद का मुहूर्त

[2]कर्णवेधोक्तभे शस्तं कन्याया घ्राणवेधनम् ।
त्र्युत्तराजलपस्वाती पूर्वाह्णे शुक्लपक्षके ॥ ३८ ॥

मुहूर्त गणपति में कहा है कि जिन नक्षत्रों में कर्ण वेध होता है उन्हीं में कन्या की नासिका में छेद करना तथा तीनों उत्तरा, शतभिषा स्वाती नक्षत्र में शुक्ल पक्ष पूर्वाह्ण में शुभ होता है ॥ ३८ ॥

[3]शुक्लसूत्रसमायुक्तताम्रसूच्याथ वेधयेत् ।
वेधात्तृतीयनक्षत्रे क्षालयेदुष्णवारिणा ॥ ३९ ॥

---

१. ज्यो० नि० ११४ पृ० १८ श्लो० ।
२. मु० ग० १४ पृ० ६९ श्लो० ।
३. ज्यो० नि० ११४ पृ० १९ श्लो० ।

अथवा तामें की सुई में सफेद सूत लगाकर उससे छेद करना और वेधित नक्षत्र से तीसरे नक्षत्र में गरम पानी से उस छेद को धोना चाहिये ॥ ३९ ॥

पुण्यनाशक शकुन

[1]देवल:—

कर्णरन्ध्रे रवेश्छाया न विशेदग्रजन्मनः।
तं दृष्ट्वा सुलयं यांति पुण्यौघाश्च पुरातनाः ॥ ४० ॥

ऋषि देवल ने बताया है कि सूर्य की छाया ब्राह्मण के कान के छिद्र में प्रवेश नहीं करनी चाहिये, उसको देखकर प्राचीन पुण्य समूहों का विनाश होता है ॥ ४० ॥

शुभाशुभ कान

[2]शंख:—

अंगुष्टमात्रौ सुषिरौ कर्णौं न भवतो यदि।
तस्मै श्राद्धं न दातव्यं यदि चेदासुरं व्रजेत् ॥ ४१ ॥

आचार्य शङ्ख ने बताया है कि अंगुष्ठमात्र कान सुखदाता होते हैं। यदि इस आकार के न हों तो उसका श्राद्ध नहीं करना चाहिये। यदि श्राद्ध किया गया तो राक्षस उसका उपभोग करते हैं ॥ ४१ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्‌गयादत्तात्मज रामदीनकृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरंजने संस्कारोक्तं षट्पंचाशत्तमं कर्णवेधप्रकरणं समाप्तम्।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक सङ्ग्रह ग्रन्थ का छप्पनवाँ कर्णवेध नाम वाला प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ५६ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेव चतुर्वेदात्मजमुरलीधर चतुर्वेदकृता बृहद्दैवज्ञरञ्जनसङ्ग्रहग्रन्थस्य षट्पञ्चाशत् प्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका परिपूर्णा ॥ ५६ ॥

---

१. ज्यो० नि० ११४ पृ० २० श्लो०।
२. ज्यो० नि० ११५ पृ० २१ श्लो०।

अथ सप्तपञ्चाशत्तमं दोलारोहणप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे सत्तावनवें प्रकरण में नवजात शिशु को कब झूला में झुलाना पलना में किस समय सुलाना चाहिए, इसे बताते हैं ।

पलना में झुलाने के नक्षत्र

[1]करद्वये वै श्रुतिरेवतीचादितिद्वये चाश्विनिवासवेषु ।
कृत्वा शिशूनां नृपतेश्च तद्वद्विलंविता सा सुखदा नृपाणाम् ॥ १ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि हस्त, चित्रा, श्रवण, रेवती, पुनर्वसु, पुष्य, अश्विनी और धनिष्ठा में बालकों को या राजबालक को झूला में झुलाने से सुख होता है ॥ १ ॥

दोलारोहणफलार्थं रामोक्तदोलाचक्रम्—

रामोपि—

[2]दोलारोहेऽर्कभात्पंच शरपंचेषुसप्तभैः ।
नैरुज्यं मरणं कार्श्यं व्याधिः सौख्यं क्रमाच्छिशोः ॥ २ ॥

आचार्य रामदैवज्ञ ने बताया है कि शिशु को पहिले पहिले झूला में सुलाने के समय सूर्य जिस नक्षत्र में हो उससे ५ पाँच नक्षत्रों में चन्द्रमा के रहने पर नीरोगता, पुनः ६–१० तक के नक्षत्र में चन्द्र हो तो बालक का मरण फिर ११–१५ तक में कृशता, पुनः १६–२० तक में शरीर में व्याधि और सूर्य नक्षत्र से २१–२७ तक के नक्षत्रों में चन्द्रमा हो तो बालक सुख से समय व्यतीत करेगा, यह जानना चाहिये ॥ २ ॥

प्रकारान्तर से दोलाचक्र

तदन्यः—

[3]सूर्यभाच्चन्द्रभं यावत्पंच पंच चतुर्दिशम् ।
मध्ये तु सप्त देयानि दोलिका चक्र उत्तमे ॥ ३ ॥

पूर्वभागे निरोगित्वं दक्षिणे मरणं ध्रुवम् ।
पश्चिमे तु कृशो बाल उत्तरे व्याधिसंभवः ॥ ४ ॥
शेषेषु सप्तधिष्ण्येषु बालकः शयने सुखी ॥ ५ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि सूर्य के नक्षत्र से ५, ५ नक्षत्र चारों दिशाओं में और सात नक्षत्रों को बीच में स्थापित कर देखना कि यदि झुलाने के दिन चन्द्रमा पूर्व

---

१. ज्यो० नि० ११३ पृ० ४ श्लो० ।   २. मु० चि० ५ प्र० १४ श्लो० ।
३. मु० चि० ५ प्र० १४ श्लो० पी० टी० ।

भाग में हो तो नीरोगता, दक्षिण में हो तो मरण, पश्चिम में कृशता, उत्तर में व्याधि की सम्भावना और मध्य के नक्षत्रों में बालक को पलना में सुलाने से सुख होता है ।। ३–५ ।।

मुहूर्त गणपति में कहा है 'रविभात् पञ्चमे सौख्ये ततः पञ्चदशस्वपि । शुभं च ततः शेषे शुभं दोलाधिरोहणम्' (१५ प्र० ५३ श्लो०) ।

[1]ज्योतिःसारे—

आंदोलशयनं पुंसो द्वादशे दिवसे शुभः ।
त्रयोदशे तु कन्याया न नक्षत्रविचारणा ।। ६ ।।

ज्योतिःसार में कहा है कि पुरुष को बारहवें दिन और कन्या को तेरहवें दिन झूला में झुलाना चाहिए । इसमें नक्षत्र का विचार नहीं करना चाहिए ।। ६ ।।

स्पष्टार्थं दोलाचक्र

नक्षत्र	५	५	५	५	७
फल	शु०	अशु०	अशु०	अशु०	शुभ

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मज रामदीनकृते संग्रहे वृहद्दैवज्ञरंजने संस्कारोक्तं सप्तपञ्चाशत्तमं दोलारोहणप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र पं० रामदीनजी द्वारा रचित वृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक ग्रन्थ का सत्तावनवाँ दोलारोहण नाम का प्रकरण समाप्त हुआ ।। ५७ ।।

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर चतुर्वेदकृता वृहद्दैवज्ञरञ्जनसङ्ग्रहग्रन्थस्य सप्तपञ्चाशत्प्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्णा ।। ५७ ।।

---

१. ज्यो० सा० १०५ पृ० ।

अथाष्टपञ्चाशत्तमं दुग्धपानविधिप्रकरणं प्रारभ्यते

अब आगे अट्ठावनवें प्रकरण में नवजात शिशु को प्रथम दुग्ध पान कब कैसे कराना चाहिये, इसे बताते हैं।

प्रथम दुग्धपान मुहूर्त

[1]नृसिंहः—

एकत्रिंशद्दिने चैव पयः शंखेन पाययेत्।
अन्नप्राशननक्षत्रे दिवसोदयराशिषु ॥ १ ॥

आचार्य नृसिंह ने बताया है कि बालक के जन्म से इकतीसवें दिन शङ्ख से दूध पिलाना चाहिये। या अन्नप्राशन में विहित नक्षत्र, दिन, लग्न में शङ्ख से दूध पिलाना चाहिए ॥ १ ॥

मुहूर्त गणपति में कहा है 'एकत्रिंशत्तमे घस्रे ऋक्षेचान्नाशनोदिते। पूर्वाह्णे च शुभे वारे पयः पानं शिशोः स्मृतम्' (१५ प्र० ५५ श्लो०) ॥ १ ॥

प्रकारान्तर से

नक्षत्रे मासि संपूर्णे जातर्क्षे तु विशेषतः।
मासांते दुग्धपानं स्यात्पश्चात्काले सुशोभने ॥ २ ॥

'नक्षत्र, मास, पूर्ण होने पर विशेष कर जातकर्म में वर्णित दिवसादि में मास के अन्त में, सुन्दर काल में दुग्ध पान श्रेयस्कर होता है ॥ २ ॥

वृ० ज्योतिषसार में कहा है 'जातकर्मोक्तनक्षत्रे श्रवणे च पुनर्वसौ। त्यक्त्वा स्वातीं स्तन्यपानं शुभं प्रोक्तं शुभेऽहनि' (११९ पृ०) ॥ २ ॥

दुग्धपान में शुभ नक्षत्र

उत्तरात्रयहस्तश्च त्वाष्ट्रवैष्णववासवाः।
पौष्णाश्विनौ मघा स्वाती वारुणादितिजीवभम् ॥ ३ ॥
रोहिण्यैंदवमैत्राश्च दुग्धपाने शिशोः शुभाः।

तीनों उत्तरा, हस्त, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, चित्रा, अश्विनी, मघा, स्वाती, शतभिषा, पुनर्वसु, पुष्य, रोहिणी, मृगशिरा और अनुराधा नक्षत्र बालक को दूध पिलाने में शुभ होते हैं ॥ ३–३½ ॥

---

१. ज्यो० नि० ११३ पृ० १-८ श्लो०।

दुग्धपान वर्जित नक्षत्रादि

षष्ठी रिक्ताष्टमी चैव वर्ज्या विष्टिस्थिराणि च ॥ ४ ॥
वर्ज्यास्त्वशुभयोगाश्च कृष्णे चांत्यत्रिभागकम् ।
अधोमुखानि वर्ज्याणि मीनाजालिगृहाणि च ॥ ५ ॥

षष्ठी, रिक्ता, अष्टमी तिथि, विष्टि व स्थिर करण अशुभ योग और कृष्णपक्ष के अन्तिम तीसरे भाग में अधोमुख नक्षत्र, मीन, मेष, वृश्चिक राशि का दुग्धपान में त्याग करना चाहिये ॥ ३½–५ ॥

शुभ काल

जीवशुक्रेंदुसौम्यानां वारवर्गे क्षणाः शुभाः ।
शुभानां राशयः श्रेष्ठा विशेषाच्छुभकर्मणि ॥ ६ ॥

शुभ कामों में गुरु, बुध, चन्द्र, शुक्र के वार, वर्ग, शुभ क्षण और शुभग्रहों की लग्न में माङ्गलिक काम शुभदायी होता है ॥ ६ ॥

लग्न शुद्धि

आयारिभ्रातृगाः पापा विशेषेण शिशोः शुभाः ।
पूर्वाह्णे चापि मध्याह्ने कुर्याद्रात्रि तु वर्जयेत् ॥ ७ ॥

दूध पिलाने की लग्न से ३।६।११ वें पाप ग्रह विशेषतया शुभकारी होते हैं। तथा पूर्वाह्ण व मध्याह्न में शुभ होता है। इसका आचरण रात्रि में नहीं करना चाहिये ॥ ७ ॥

त्याज्य पदार्थ

योगिनी राहुरुद्रादि मुखं चैव विवर्जयेत् ॥ ८ ॥

इस कार्य में योगिनी, राहु, रुद्र आदि के मुख का त्याग करना चाहिये ॥ ८ ॥

वार योगिनी ज्ञान

[1]वारयोगिनी—

इन्द्रवायुयमशूलिपाशिना बर्हिषा श्रवणरक्षसी क्रमात् ।
अर्धयाममनुवासरादितो दिक्षु संभ्रमति योगिनी चरा ॥ ९ ॥

वार क्रम से जैसे वारों में अर्धयाम भ्रमण करता है, ठीक उसी रीति से दिशाओं में योगिनी का संचरण होता है। यह प्रथम पूर्व में फिर क्रम से वायव्य, दक्षिण, ईशान, पश्चिम, अग्निकोण, उत्तर और अन्त में नैऋत्य में रहती है ॥ ९ ॥

---

१. ज्यो० नि० ११३ पृ० १ श्लो० ।

राहु का लक्षण

[1]अथ राहुलक्षणम्—

गुरुभान्वोर्वसेत्प्राच्यामिन्दौ शुक्रे च दक्षिणे।
कालराहुः कुजे प्रत्यगुत्तरे बुधमंदयोः॥ १०॥

जब कि गुरु (९।१२), सूर्य (५) की राशि में होता है तो पूर्व में इसका मुख रहता है। चन्द्र शुक्र की राशि में होने पर दक्षिण, मंगल की राशि में पश्चिम, बुध शनि की राशि में हो तो उत्तर में मुख होता है॥ १०॥

रुद्रमुख लक्षण

[2]अथ रुद्रलक्षणम्—

हरिसोमवह्निराक्षसयमवरुणानिलहरेष्वेवम्।
उदयति भ्रमति सदा घटिकारुद्रो महाप्रबलः॥ ११॥

प्रथम दिशा में उदित होकर फिर क्रम से अग्निकोण, नैर्ऋत्य, दक्षिण, पश्चिम, वायुकोण, उत्तर में सदा बड़ा बली घटिकारुद्र भ्रमण करता है॥ ११॥

ई. ४	पू. १	अ. ६
उ. ७		द. ३
वा. २	प. ५	नै. ८

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते संग्रहे वृहद्दैवज्ञरंजने संस्कारोक्तं अष्टपंचाशत्तमं दुग्धपानविधिप्रकरणं समाप्तम्।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र पं० रामदीनजी द्वारा रचित वृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का अट्ठावनवाँ दुग्धपान विधि नामवाला प्रकरण समाप्त हुआ॥ ५८॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज मुरलीधर चतुर्वेदकृता वृहद्दैवज्ञरञ्जन संग्रहग्रन्थस्याष्टपञ्चाशत्प्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्ण॥ ५८॥

---

१. ज्यो० नि० ११३ पृ० १ श्लो०।
२. ज्यो० नि० ११३ पृ० १ श्लो०।

अथैकोनषष्टितमं दन्तोत्पत्तिकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे उनसठवें प्रकरण में बालकों की दन्तोत्पत्ति के शुभाशुभ फल को शान्ति विधि के साथ बताते हैं ।

दन्तोत्पत्ति से शुभाशुभ

व्यवहारचण्डेश्वरः—

[1]प्रथमे दंतजननात्स्वयमेव विनश्यति ।
द्वितीये भ्रातरं हंति तृतीये भगिनीं तथा ॥ १ ॥
चतुर्थे मातरं हंति पंचमे ज्येष्ठभ्रातरम् ।
षष्ठे परान्नभोगी स्यात्सप्तमे पितृसौख्यदः ॥ २ ॥
अष्टमे पुष्टिजनको नवमे लभते धनम् ।
लभते दशमे मासि सौख्यमेकादशेपि च ॥ ३ ॥
द्वादशे सुखसम्पत्तिर्दंतानां जनने फलम् ॥ ४ ॥

व्यवहार चण्डेश्वर में कहा है कि यदि बालक प्रथम मास में दाँत से युक्त होता है तो स्वयं का मरण, दूसरे में छोटे भाई का, तीसरे में बहिन का, चौथे में माता का, पाँचवें में बड़े भाई का मरण होता है । छठे में शिशु के दाँत निकलने पर बालक दूसरे का अन्न खानेवाला, सातवें में पिता को सुख देनेवाला, आठवें में पुष्ट शरीरवाला, नवें में धन पानेवाला, दशवें-ग्यारहवें में सुखी और बारहवें में ऐश्वर्य से युक्त होनेवाला होता है, यह पवित्र फल कहा गया है ॥ १–४ ॥

विशेष—पी० धा० टीका में 'सम्पत्तिर्दन्तानां जनने फलम्' यह पाठ है ॥ १–४ ॥

ग्रन्थान्तर से शुभाशुभ

[2]रामाचार्योपि—

मासे चेत्प्रथमे भवेत्सदशनो बालो विनश्येत्स्वयं
हन्यात्सः क्रमतोनुजातभगिनीभात्रग्रजांद्वयादिके ।
षष्ठादौ लभते हि भोगमतुलं तातात्सुखं पुष्टतां
लक्ष्मीसौख्यमथो जनः सदशनो चोर्द्ध्वं स्वपित्रादिहा ॥ ५ ॥

रामाचार्यजी ने भी अपने मुहूर्त चिन्तामणि नामक ग्रन्थ में बताया है कि यदि जन्म के वाद प्रथम मास में बालक के दाँतों की प्रथम उत्पत्ति हो तो बालक स्वयं नष्ट,

---

१. मु० चि० ५ प्र० २३ श्लो० पी० टी० ।
२. मु० चि० ५ प्र० १३ श्लो० ।

दूसरे में छोटे भाई का, तीसरे में बहिन का, चौथे में माता का और पाँचवें में दाँतों की उत्पत्ति होने से अपने बड़े भाई का मरण करने वाला होता है। छठे महीने में अटूट भोग, सातवें में पिता से सुख, आठवें में स्वशरीर पोषक, नवें में लक्ष्मीवान्, दसवें में विशेष सुख पानेवाला होता है।

यदि जन्म दाँत के साथ हुआ हो तो अपने माता, पिता व स्वयं का मृत्युसूचक होता है यदि प्रथम ऊपर के दाँत निकले तो भी माता, पिता व स्वयं का मरणकर्ता होता है ॥ ५ ॥

अथ दन्तोत्पत्तिशान्तिः—

अब आगे अशुभ काल में दन्तोत्पत्ति होने पर जो शान्ति की जाती है, उसे बताते हैं।

पुष्कर उवाच—

कथयस्व मुनिश्रेष्ठ महर्षे भार्गव प्रभो।
शुभाशुभं च तच्छान्ति वद जन्मफलं शिशोः ॥ ६ ॥

श्री पुष्करजी बोले—

हे ऋषियों में उत्तम भार्गवजी, बालकों के दन्तोत्पत्ति में जो शुभाशुभ फल होता है, उसे शान्ति विधि के साथ मुझसे कहिये ॥ ६ ॥

भार्गव उवाच—

[1]उपरि प्रथमं यस्य जायते च शिशोर्द्विजः।
दंतैर्वा सह यस्य स्याज्जन्म तद्बालकं न सत् ॥ ७ ॥

भार्गवजी ने उत्तर में कहा कि जिस शिशु के पहिले ऊपर के दाँत आते हैं या दाँतों के साथ जन्म होता है, वह बालक शुभ नहीं होता है ॥ ७ ॥

सदन्त जन्मोत्पत्ति फल

मातरं पितरं खादेदात्मानं वापि मातुलान्।
सदन्तं बालकं विद्याद्राक्षसंतत्कुलान्तकृत् ॥ ८ ॥

दाँत के साथ बालक का जन्म पिता, माता, अपने लिए या मामा के लिए घातक होता है। ऐसा शिशु राक्षस के समान कुल का विनाशी होता है ॥ ८ ॥

प्रकारान्तर से निश्चय

यदि दंतैः समं जन्म यदिदमुशना शिशोः।
स्युर्मध्ये सप्तमासानां कुलनाशस्तदा ध्रुवम् ॥ ९ ॥

शिशु का दाँत के साथ जन्म सात मास में कुल नाशक होता है ॥ ९ ॥

---

१. मु० चि० ५ प्र० १३ श्लो०।

शुभ दन्तोत्पत्ति समय

अष्टमादिषु मासेषु दन्तोत्थानं शुभावहम् ।
अथ तद्दोषनाशाय विधानं शृणु सत्तम ॥ १० ॥

बालक के जन्म से आठवें आदि मास में दन्तोत्पत्ति शुभ होती है । अशुभ काल में उत्पत्ति दोष का विनाश जैसे होता है, उसे अब सुनो ॥ १० ॥

शान्ति विधान

प्रथमं पूजयेत्तत्र देवदेवं च केशवम् ।
अग्निं संस्थाप्य जुहुयाद्घृतेन चरुणा पृथक् ॥ ११ ॥
देवदेवं केशवं च वृद्धिसोमं समीरणम् ।
धातारं च विधातारं कुलदेवं नवग्रहान् ॥ १२ ॥
यजेत्तल्लिगजैर्मन्त्रैर्नाममंत्रैरथापि वा ।
यथाशक्ति सहस्रं वा शतं वाथाष्टविंशतिः ॥ १३ ॥
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणा देया ततः स्नानं शिशोर्मतम् ।
भद्रासने निवेश्यैनं मृद्भिः सर्वौषधैः फलैः ॥ १४ ॥
सर्वैर्मनोरमैर्गन्धैः स्नापयेत्तीर्थवारिणा ।
तदनु ब्राह्मणा भोज्याः सुवासिन्यः सुहृद्गणाः ॥ १५ ॥

पहिले देवताओं के देव केशवदेवजी की पूजा कर अग्नि स्थापन करके घृप, चरु से केशव, वृद्धि, सोम, समीरण, धाता, विधाता, कुलदेव और नवग्रहों का उनके उनके मन्त्रोंसे यथाशक्ति १००० या १०० या २८ आहुति प्रत्येक को देना चाहिये । फिर ऋत्विगों को दक्षिणा देकर शिशु को भद्रासन पर बैठाकर मृत्तिका सर्वोषधि, फल, समस्त सुन्दर इत्र और तीर्थ के जल से स्नान कराकर ब्राह्मण और सुवासिनियों को भोजन कराना चाहिये ॥ ११–१५ ॥

स्नान विधि

[1]विष्णुधर्मोत्तरे—
गजपृष्ठगतं बालं नौःस्थं वा स्नापयेद्गुरुः ।
तदभावे काञ्चनेन निर्मिते च वरासने ॥ १६ ॥
सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्बीजैः पुष्पैः फलैः शुभैः ।
पञ्चगव्यैश्च रत्नैश्च छत्रं शिरसि धारयेत् ॥ १७ ॥

विष्णुधर्मोत्तर में कहा है कि गुरु को हाथी पर या नाव पर बैठाकर स्नान कराना चाहिये । इनके अभाव में सुन्दर सुवर्ण के आसन पर सर्वोषधि, समस्त बीज, गन्ध, पुष्प, फल, पञ्चगव्य व रत्नों से सिर पर छत्र लगाकर स्नान कराना चाहिये ॥ १६–१७ ॥

---

१. मु० चिं० ५ प्र० १३ श्लो० ।

विप्रभोज्यं ततः कुर्याच्छक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् ।
अकालदन्तजे दोषे शान्तिरेवं विधीयते ॥ १८ ॥

इसके अनन्तर ब्राह्मणों को भोजन कराकर यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये । यह असमय में दन्तोत्पत्ति दोष नाशक शान्ति का प्रकार है ॥ १८ ॥

चुम्बेत्कुमारं त्रीन्वारं प्रायश्चित्तमिदं स्मृतम् ।
मृदं वाङ्गारकान् भक्तं दधि सिन्धुमुखे क्षिपेत् ॥ १९ ॥

पुनः बालक का तीन वार चुम्बन लेने से यह प्रायश्चित होता है । मिट्टी, अँगार, भात, दही को समुद्र में छोड़ना चाहिये ॥ १९ ॥

नौकामारोहयेद्बालं सह धात्र्याथवाग्रजम् ।
स्वर्णं दद्याद्द्विजा भोज्याः सर्पिषा पायसेन च ॥ २० ॥

माता के साथ, वड़े भाई के साथ बालक को नौका में बैठाकर सोने का दान करके घी खीर से ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये ॥ २० ॥

रुद्रयामले —

प्रथमं दन्तनिर्मुक्तिरूर्ध्वं बालस्य चेद्भवेत् ।
क्लेशाय मातुलस्येह तदा प्रोक्ता महर्षिभिः ॥ २१ ॥

रुद्रयामल में कहा है कि यदि बालक के पहिले ऊपर की पँक्ति में दाँत निकले तो मामा के लिए क्लेश होता है, ऐसा महर्षियों ने बताया है ॥ २१ ॥

सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं कांस्यमयं तु वा ।
दध्योदनेन सम्पूर्तं पात्रं दद्याच्छिशोः करे ॥ २२ ॥

समन्त्रं भाजनं दत्त्वा स पश्येन्मातुलः शिशुम् ।
सालङ्कारं सवस्त्रं च शिशुमालिंग्य सादरः ॥ २३ ॥

इसलिए मामा को चाहिये कि दही-भात सुवर्ण के या चांदी के या तांबे के या कांसे के पात्र में भरकर बालक के हाथ में मन्त्रों के द्वारा रखकर बालक को देखे और आभूषण व वस्त्रों से युक्त बालक का आदर के साथ आलिङ्गन करे ॥ २२–२३ ॥

पात्र रखने का मन्त्र

तत्र मन्त्रः —

रक्ष भो भागिनेय त्वं रक्ष मे सकलं कुलम् ।
गृहीत्वा भाजनं सान्नं प्रसन्नो भव मे सदा ॥ २४ ॥
निर्विघ्नं कुरु कल्याणं निर्विघ्नां च स्वमातरम् ।
अध्यात्मानमधिष्ठाप्य चिरञ्जीव मया सह ॥ २५ ॥

हे भागनेय (वहिन के पुत्र), तू मेरी व समस्त वंश की रक्षा कर । इस अन्न के साथ पात्र को लेकर मेरे ऊपर सदा प्रसन्न हो और विघ्न से रहित कल्याण करो, अपनी

माता के विघ्नों को दूर करो, अपनी आत्मा का मेरे साथ अधिक काल तक जीवन व्यतीत करो ।। २४–२५ ।।

ततोभिनन्दयेद्विद्वान्भगिनीं भगिनीपतिम् ।
होमं कृत्वा तिलाज्येन ब्राह्मणानपि पूजयेत् ।। २६ ।।
एवंकृते विधानेन विघ्नः कोपि न जायते ।। २७ ।।

इसके पश्चात् बहिन व बहनोई का अभिनन्दन करना चाहिये । घी, तिल से हवन करके ब्राह्मणों का भी पूजन करना चाहिये ।

इस विधि से कार्य करने पर कुछ भी विघ्न नहीं होता है ।। २६–२७ ।।

दान का विधान

नागार्जुनसंहितायाम्—

सदन्तं बालकं दद्याद्ब्राह्मणाय सदक्षिणम् ।
वत्सस्य मधुलाजानां प्राङ्मुखं दधिदीपयोः ।। २८ ।।

नागार्जुन संहिता में कहा है कि बालक के पूर्व में शहद, लावा, दही करके दक्षिणा के साथ सदन्त शिशु को ब्राह्मण को दे देना चाहिये ।। २८ ।।

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मज रामदीनकृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने संस्कारोक्तं एकोनषष्टितमं दन्तोत्पत्तिप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित वृहद्दैवज्ञरञ्जन संग्रह ग्रन्थ का उनसठवाँ दन्तोत्पत्ति प्रकरण समाप्त हुआ ।। ५९ ।।

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेव चतुर्वेदात्मज मुरलीधरचतुर्वेदकृता वृहद्दैवज्ञरञ्जनसंग्रहग्रन्थस्यैकोनषष्टितमप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्तिमगात् ।। ५९ ।।

अथ षष्टितमं ताम्बूलभक्षणप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे साठवें प्रकरण में बालक को प्रथम पान कब खिलाना चाहिये, इसे विविध ग्रन्थों के वाक्यों से बताते हैं ।

प्रथम पान खिलाने का मुहूर्त

व्यवहारचण्डेश्वरः—

[1]सार्द्धमासद्वये दद्यात्ताम्बूलं प्रथमं शिशोः ।
कर्पूरादिकसम्मिश्रं विलासाय सुखाय च ॥ १ ॥

व्यवहार चण्डेश्वर में कहा है कि पहिले-पहिले शिशु को ढाई मास में पान खिलाना चाहिये । कपूर आदि से मिश्रित पान विलास व सुख के लिए होता है ॥१॥

ताम्बूल दान प्रशंसा

निबन्धचूडामणौ—

[2]ताम्बूलं शिशवे दद्याद्ब्राह्मणेभ्योति भक्तितः ।
मेधावी सुभगः प्राज्ञो दर्शनीयश्च जायते ॥ २ ॥

निबन्ध चूडामणि में कहा है कि पहिले भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों को दान देकर तब बालक को पान खिलाना चाहिये, जिससे वह बुद्धिमान्, भाग्यशाली, पण्डित और दर्शनीय (देखने योग्य) होता है ॥ २ ॥

विशेष—मुहूर्त चिन्तामणि की पी० टी० में भी कहा है 'ताम्बूलं सुण्ठुर्योः दद्याद् ब्राह्मणेभ्योऽति भक्तितः । मेधावी सुभगः प्राज्ञो दर्शनीयश्च जायते' (५ प्र. २३ श्लो.)॥२॥

नक्षत्र, लग्न ज्ञान

[3]गर्गः—

दिनकरचन्द्रसमीरणमित्रं पुष्यपुनर्वसुरेवतिचित्रा ।
मृगघटमन्मथकन्या समेतं पूगफलाशनमेभिरभीष्टम् ॥ ३ ॥

आचार्य गर्ग ने बताया है कि हस्त, मृगशिरा, स्वाती, अनुराधा, पुष्य, पुनर्वसु, रेवती, चित्रा नक्षत्र में, मकर, कुम्भ, तुला, कन्या लग्न में पूग फल (सुपाड़ी) का अशन शुभ होता है । यहाँ सुपाड़ी उपलक्षण है, अतः पान जानना चाहिये ॥ ३ ॥

विशेष—पी० टी० में 'मैत्रं''''चित्रा । घटमिथुनं कन्यकलग्ने' यह पाठान्तर है तथा राजमार्तण्ड के नाम से उद्धृत है (मु. चि. ५ प्र. २३ श्लो. पी. टी.) ॥ ३ ॥

---

१. ज्यो० सा० १०६ पृ० ।　　　२. मु० चि० ५ प्र० २३ श्लो० पी० टी० ।
३. मु० चि० ५ पृ० २३ श्लो० पी० टी० में राजमार्तण्ड से उद्धृत है ।

ग्रन्थान्तर से शुभ नक्षत्र वार

नृसिंहः—

[1]मूलादितिद्रविणपुष्यकरोत्तरासु पौष्णाश्विविष्णुरजनीकरशक्रभेषु ।
वारेषु जीवशशिसूर्यसितेन्दुजानां ताम्बूलभक्षणविधिः कथितः शिशूनाम् ॥४॥

आचार्य नृसिंह ने बताया है कि मूल, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, उत्तरा ३, रेवती, अश्विनी, श्रवण, मृगशिरा, ज्येष्ठा नक्षत्र, गुरु, चन्द्रमा, सूर्य, शुक्र, बुधवार में बालक को पान खिलाना शुभ होता है ॥ ४ ॥

प्रकारान्तर से

व्यवहारचण्डेश्वरः –

मूलातिष्यकरेन्दुविष्णुवरुणज्येष्ठाश्विनी रोहिणी-
मित्रर्क्षे रविजीवशुक्ररजनीनाथात्मजातां दिने ।
कन्यामीननृयुग्मगोः समुदये शस्तेषु चन्द्रादिषु
प्राक्पूगाशनमिष्यते शिशुजनस्यान्नादिकं प्राशनम् ॥ ५ ॥

व्यवहार चण्डेश्वर में कहा है कि मूल, पुष्य, हस्त, मृगशिरा, श्रवण, शतभिषा, ज्येष्ठा, अश्विनी, रोहिणी, अनुराधा नक्षत्र, सूर्य, गुरु, शुक्र, बुधवार में, कन्या, मीन, मिथुन, वृष लग्न में चन्द्रमा के शुभ होने पर प्रथम २ शिशु को पान खिलाना या अन्न आदि भक्षण कराना श्रेयस्कर होता है ॥ ५ ॥

लग्न शुद्धि

[2]दुश्चिक्यलाभरिपुकर्मगताश्च पापाः सौम्यग्रहा नवमपञ्चमकेन्द्रसंस्थाः ।
आरोग्यता विपुलभोगसुखोपभोक्ता ताम्बूलभक्षणविधौ च नरः प्रसिद्धः ॥ ६ ॥

उक्त कार्य में लग्न से ३।११।६।१० में पापग्रह और १।४।७।१०।५।९ में शुभ ग्रह नीरोगता, अतिभोग, सुख का अनुभव व ख्यातिदाता होते हैं ॥ ६ ॥

मु० चि० की पी० टी० में दीपिकाकार का वचन 'दुश्चिक्यलाभभवनारिगताश्च पापाः सौम्यग्रहा नवमपञ्चमकण्टकस्थाः । आरोग्यशान्तिशुभभाग्यसुखोपभुक्त्यै ताम्बूलभक्षणविधौ मुनिभिः प्रदिष्टाः' (५ प्र. २३ श्लो.) ॥ ६ ॥

पुनः ग्रन्थान्तर से

रामः—

[3]वारे भौमार्किहीने ध्रुवमृदुलघुभैर्विष्णुमूलादितीन्द्र-
स्वातीवस्वम्बुपेतैर्मिथुनमृगवधूकुम्भगे मीनलग्ने ।
सौम्यैर्वेदत्रिकोणैरशुभगगनगैः शत्रुलाभत्रिसंस्थै-
स्ताम्बूलं सार्द्धमासद्वयमितसमये प्रोक्तमन्नाशने वा ॥ ७ ॥

---

१. मु० चि० ५ प्र० २३ श्लो० पी० टी० में दीपिकाकार से उद्धृत है ।

२. मु० चि० ५ प्र० २३ श्लो० पी० टी० ।

३. मु० चि० ५ प्र० २३ श्लो० ।

रामदैवज्ञ ने मुहूर्त चिन्तामणि में बताया है कि मंगल और शनिवार को छोड़कर शेष वारों, ध्रुव, मृदु, लघुसंज्ञक नक्षत्र व श्रवण, मूल, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, स्वाती और धनिष्ठा नक्षत्रों मिथुन, मकर, कन्या, कुम्भ या मीन लग्न में, लग्न से १।४।७।१०।५।९ स्थानों में शुभ ग्रह व ३।६।११ वें भाव में पापग्रह के रहने पर ढाई मास में अथवा अन्नप्राशन के दिन पहिले-पहिले बालक को पान खिलाना चाहिए ॥ ७ ॥

निबन्धचूडामणौ—

मूलाश्विमित्रकरपुष्यहरीन्दुपूषाचित्रोत्तरा पवनशक्रपुनर्वसौ च ।
वारे रवीन्दुगुरुबोधनभार्गवानां ताम्बूलभक्षणविधिः शुभदः शिशूनाम् ॥ ८ ॥

निबन्ध चूडामणि में कहा है कि मूल, अश्विनी, अनुराधा, हस्त, पुष्य, श्रवण, मृगशिरा, पूर्वाषाढा, चित्रा, उत्तरा ३, स्वाती, ज्येष्ठा, पुनर्वसु नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र, गुरु, बुध, शुक्रवार के दिन बालकों को पान खिलाना शुभ होता है ॥ ८ ॥

लग्नशुद्धि

त्रिषडायगते क्रूरे शुभे केन्द्रत्रिकोणगे ।
शिशोः सार्द्धद्वये मासे सुभगं पूगभक्षणम् ।। ९ ।।

उक्त काम में लग्न से ३।६।११ में पाप ग्रह, १।४।७।१०।५।९ में शुभ ग्रहों के रहने पर ढाई मास में बालक को पान का प्रथम चर्वण कराना चाहिए ॥ ९ ॥

ग्रन्थान्तर से मुहूर्त

राजमार्तण्डे —

पुष्योत्तरादितिदिवाकरवाजिपौष्णमूलानुराधवसुवासववैष्णवेषु ।
वारेषु शौरिधरणीसुतवारवर्ज्यं ताम्बूलनूतनफलाद्यशनं शुभाय ॥ १० ॥

राजमार्तण्ड में कहा है कि पुष्य, ३ उत्तरा, पुनर्वसु, हस्त, अश्विनी, रेवती, मूल, अनुराधा, धनिष्ठा, श्रवण नक्षत्र में शनि मंगलवार को छोड़कर पहिले-पहिले पान का भक्षण बालक को शुभ होता है ॥ १० ॥

पर्णाग्रं पर्णमूलं च चूर्णपर्णं द्विपर्णकम् ।
गलितं शुष्कपर्णं च शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥ ११ ॥

पान की नोंक व डंठल, टूटा पान, यमल पान, गला हुआ और सूखा पान चर्वण करने पर इन्द्र की भी लक्ष्मी का हरण करता है। अतः उक्त पान नहीं खाना चाहिए ॥ ११ ॥

विशेष—मुहूर्त चिन्तामणि की पी० टी० 'पर्णाग्रंपर्णपृष्ठं वा चूर्णपर्णं द्विपर्णकम् । रात्रौ खदिरताम्बूलं शक्रस्यापि श्रियं हरेत्' इस प्रकार से है ॥ ११ ॥

वसिष्ठः—

[1]पर्णमूले भवेद्व्याधिः पर्णाग्रे पापसम्भवः ।
चूर्णपर्णं हरत्यायुः शिरा बुद्धिविनाशिनी ॥ १२ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने कहा है कि पान के पत्ते के मूल (डंठल) खाने से व्याधि, आगे के भाग से पाप, पान के टुकड़ों को खाने से आयु क्षय और शिरा भक्षण से बुद्धि नाश होता है ॥ १२ ॥

तस्मादग्रं च मूलं च शिरां चैव विशेषतः ।
चूर्णपर्णं वर्जयित्वा ताम्बूलं खादयेद्बुधः ॥ १३ ॥

इसलिए विशेष कर पान के अग्रभाग, मूल, शिरा और टुकड़ों को छोड़कर बुद्धिमान् को पान खाना चाहिए ॥ १३ ॥

विशेष—मु० चि० की पी० टी० में 'पर्णमूले भवेद्व्याधिः पर्णाग्रे धनसंक्षयः । चूर्णपर्णं हरत्यायुः शिरा बुद्धि·····' पाठान्तर है ॥ १३ ॥

अथ ताम्बूले ग्राह्यत्वं तत्रैव ।

अब आगे वहीं पर ग्राह्य पान के विषय में जो बताया है, उसे कहते हैं ।

सुपूगं च सुपत्रं च चूर्णेन च समन्वितम् ।
अदत्वा द्विजदेवेभ्यस्ताम्बूलं वर्जयेद्बुधः ॥ १४ ॥

सुन्दर सुपारी व सुगन्धित ग्राह्य ताम्बूल चूर्ण (मसाला या चूना) के साथ अच्छा पान का पत्ता ब्राह्मण व देवता को जब तक अर्पण न करे तब तक बुद्धिमान् पान न खाय ॥ १४ ॥

एकपूगं सुखारोग्यं द्विपूगं निष्फलं भवेत् ।
अतिश्रेष्ठं त्रिपूगं च ह्यधिकं नैव दुष्यति ॥ १५ ॥

एक सुपाड़ी से युत पान सुख व आरोग्य दाता, दो सुपाड़ी का निष्फल, तीन का अति श्रेष्ठ और इससे अधिक दोषदायी नहीं होता है ॥ १५ ॥

भारद्वाजः—

पत्राणि नागवल्यास्तु द्विगुणं शुक्तिचूर्णकम् ।
अन्यैरस्पष्टके पश्च पृष्ठचूर्णमलाततः ॥ १६ ॥
कर्पूरसंयुतं यत्तत्ताम्बूलमितिभाषितम् ।
प्रभाते पूगमधिकं मध्याह्ने खदिरं तथा ॥ १७ ॥
निशासु चूर्णमधिकं ताम्बूलं भक्षयेत्सदा ।
भुक्तस्योपरिताम्बूलं लवङ्गं वा हरीतकीम् ॥ १८ ॥

---

१. मु० चि० ५ प्र० २३ श्लो० पी० टी० ।

कपूर से जो युक्त होता है नागवल्ली के पत्ते, दो भाग चूना या सीप का चूर्ण, पाँच भाग खैर आदि का चूर्ण तथा वह ताम्बूल कहलाता है। सुबह सुपाड़ी अधिक, मध्याह्न में कत्था और रात में अधिक मसाला छोड़कर पान खाना चाहिए। भोजन के पश्चात् पान, लौंग या हर्र खाना चाहिए ॥ १६–१८ ॥

आहारस्य तु पाकार्थं भोजयेद्भिषगुत्तमः।
ताम्बूलेक्षुफले चैव भुक्तस्नेहानुलेपने ॥ १९ ॥

आहार को पचाने के लिए, तथा सरस और अनुलेपन के लिए उत्तम वैद्य को ताम्बूल और ईख का रस पीने को कहना चाहिए ॥ १९ ॥

मधुपर्के च सोमे च नोच्छिष्टं मनुरब्रवीत् ॥ २० ॥

मधुपर्क व सोम यज्ञ में पान खाने में मुख जूठा नहीं होता है। ऐसा ऋषि मनु का कहना है ॥ २० ॥

अथ चन्द्रसूर्ययोर्दर्शनम्।

अब बालक को प्रथम सूर्य व चन्द्रमा का दर्शन कब कराना चाहिए, इसे बताते हैं।

पहिले-पहिले सूर्य, चन्द्र दर्शन काल

चूडामणौ
ततस्तृतीये कर्तव्यं मासि सूर्यस्य दर्शनम्।
चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोश्चन्द्रस्य दर्शनम् ॥ २१ ॥

चूडामणि नामक ग्रन्थ में बताया है कि बालक को तीसरे मास में सूर्य का और चौथे मास में चन्द्रमा का प्रथम दर्शन कराना चाहिए ॥ २१ ॥

इति श्रीमज्ज्योतिर्विद्गयादत्ताजरामदीनकृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरंजने
संस्कारोक्तं षष्टितमं तांबूलभक्षणप्रकरणं समाप्तम्।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित वृहद्दैवज्ञरञ्जन सङ्ग्रहग्रन्थ का ताम्बूलभक्षण नामक साठवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ६० ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधरचतुर्वेदकृता वृहद्दैवज्ञरञ्जनसङ्ग्रहग्रन्थस्य षष्टितमप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका परिपूर्णा ॥ ६० ॥

अथैकषष्टितमं निष्क्रमणप्रकरणं प्रारभ्यते।

अब आगे इकसठवें प्रकरण में बालक को प्रथम घर से कब निकालना चाहिए। इसे अनेक ग्रन्थों के वाक्य से बताते हैं।

निष्क्रमण मूहूर्त

बृहस्पतिः—

अथ वक्ष्ये शुभं कालमुपनिष्क्रमणस्य तु।
[1]अथ निष्क्रमणो नाम गृहात्प्रथमनिर्गमः॥ १॥

बृहस्पतिजी ने बताया है कि अब मैं बालक के उपनिष्क्रमण के शुभ काल को कहता हूँ। उपनिष्क्रमण नाम बालक का प्रथम घर से निकलना होता है॥ १॥

अकृतायां क्रियायां वा श्रीरायुर्नाशनं शिशोः।
कृते संपद्विवृद्धिः स्यादायुर्वर्धनमेव च॥ २॥

इस क्रिया (निष्क्रमण) को न करने पर बालक की लक्ष्मी व आयु का नाश होता है और करने पर संपत्ति तथा आयुष्य की वृद्धि होती है॥ २॥

अत्रिः—

आर्द्राधोमुखवर्जितानुपहृतेर्क्षे वाप्यरिक्ते तिथौ
वारे भौमशनीतरे घटतुलासिंहालिकन्योदये।
सद्दृष्टेथ चतुर्थमासि यदि वा मासे तृतीये शशि-
न्यक्षीणे शुभद शिशोरथ गृहान्निष्कासनं कारयेत्॥ ३॥

ऋषि अत्रि ने बताया है कि आर्द्रा, अधो मुख वा उपहत नक्षत्रों को छोड़कर रिक्ता रहित तिथि में भौम, शनि का त्याग करके, कुंभ, तुला, सिंह, वृश्चिक, कन्या लग्न में शुभ ग्रह से दृष्ट होने पर चौथे या तीसरे मास में अक्षीण चन्द्रमा में बालक का घर से प्रथम बाहर निकालना शुभ होता है॥ ३॥

[2]यम—

तृतीये मासि कर्तव्यं महः सूर्यस्य दर्शनम्।
उपनिष्क्रमणं कुर्याच्चतुर्थे मासि सावने॥ ४॥

आचार्य यम ने बताया है कि तीसरे मास में सूर्य का दर्शन और चौथे सावन मास में बालक को घर से बाहर निकालना चाहिये॥ ४॥

---

१. ज्यो० नि० ११५ पृ० तथा मु० चि० १५ श्लो० पी० टी०।
२. ज्यो० नि० ११५ पृ०।

विशेष—ज्योतिर्निवन्ध में 'कर्तव्यमहः सूर्यस्य दर्शनम्। चतुर्थे मासि कर्तव्य-मग्नेश्चन्द्रस्य दर्शनम्'। यह पाठ है ॥ ४ ॥

[1]व्यासः—

मैत्रे पुष्यपुनर्वसुप्रथमभे पौष्णेनुकूले विधौ
हस्ते चैव सुरेश्वरे च मृगभे तारासु शस्तासु च।
कुर्यान्निष्क्रमणं शिशोर्बुधगुरौ शुक्रेष्वरिक्तातिथौ
कन्याकुम्भतुलामृगारिभवने सौम्यग्रहालोकिते ॥ ५ ॥

ऋषि व्यास ने बताया है कि अनुराधा, पुष्य, पुनर्वसु, अश्विनी, हस्त, रेवती नक्षत्र में चन्द्रमा के अनुकूल होने पर, मृग में गुरु के रहने पर प्रशस्त ताराओं में बुध या गुरु या शुक्रवार में रिक्ता रहित तिथि में, कुंभ, तुला, कन्या लग्न में षष्ठ भाव शुभ दृष्ट होने पर प्रथम बालक का घर से निष्काशन करना चाहिये ॥ ५ ॥

चूडामणौ—
ज्येष्ठादित्यकरोत्तराश्विविधिभे वातानुराधाहरौ
पूषाषाढकिंमूलवासवगुरौ मासे तृतीयेऽथवा।
मंदारोत्थितवासरेथ धवले पक्षे शुभे रात्रिपे
कुर्यादष्टमकेंद्रकोणरहिते पापे शिशोर्निष्क्रमम् ॥ ६ ॥

चूडामणि में बताया है कि ज्येष्ठा, पुनर्वसु, हस्त, उत्तरा ३, अश्विनी, रोहिणी, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, पूर्वाषाढ, मूल, धनिष्ठा, पुष्य नक्षत्र में तीसरे मास में भौम, शनिवार को छोडकर शुक्ल पक्ष में, शुभ चन्द्रमा के रहने पर तथा लग्न से ८। १। ४ ७। १०। ५। ९ पाप ग्रह के न होने पर बालक को प्रथम २ घर से बाहर निकालना चाहिये ॥ ६ ॥

पुनः घर से निकालने का मुहूर्त

व्यवहारचंडेश्वरः—
चतुर्थे निष्क्रमं कुर्यात्तृतीये योषितां सदा।
तृतीये शुक्लपक्षे वा शिशोर्निष्क्रमणं गृहात् ॥ ७ ॥

व्यवहार चण्डेश्वर में बताया है कि पुरुष का चौथे मास में और स्त्री का सदा तीसरे मास में निष्कासन अथवा तीसरे मास, शुक्ल पक्ष में दोनों को घर से प्रथम निकालना चाहिये ॥ ७ ॥

गुरु ने कहा है 'गृहान्निष्क्रमणं सूनोश्चतुर्थे मासि कारयेत्। यात्रोक्ते समये मासि तृतीये द्वादशेऽहनि' (मु. चि. ५ प्र. १५ श्लो.) ॥ ७ ॥

---

१. वृ० ज्यो० सो० १४३ पृ०।

[1]मासे तृतीये शशिवृद्धिपक्षे क्षपाकरे गोचरशोभनस्थे ।
उत्पातपापग्रहवर्जिते भे निष्कासनं सौख्यकरं शिशूनाम् ॥८॥

प्रशस्त तृतीय मास शुक्ल में चन्द्रमा के गोचरीय अनुकूल होने पर, उत्पात, व पापग्रह से नष्ट नक्षत्र को छोड़कर बालक का प्रथम घर से निकालना सुखकारी होता है ॥८॥

विशेष—यह पद्य पीयूषधारा टीका में राजमार्तण्ड के नाम से पाठान्तर से प्राप्त है। यथा 'मासे तृतीये शशिवृद्धिपक्षे क्षपाकरे शोभनगोचरस्थे। उत्पातपापग्रहवर्जिते भे निष्कासनं सौख्यकरं शिशूनाम्' (५ प्र. १५ श्लो.) ॥ ८ ॥

निष्क्रमण में विशेष

कारिकायाम्—

[2]चतुर्थे मासि पुण्यर्क्षे शुक्ले निष्क्रमणं भवेत् ।
स्नातं स्वलंकृतं चाभिहितं स्वस्त्ययनं शुभम् ॥ ९ ॥

वहिर्निष्कासयेन्नेहाच्छंखपुण्याहनिस्वनैः ।
आदाय गेहान्निष्क्राम्य गच्छेयुर्देवतालयम् ॥ १० ॥

अभ्यर्च्य देवतां सम्यगाशिषां वाचयेदथ ।
कृत्वा प्रदक्षिणं गेहमानयंति ततः स्वकम् ॥ ११ ॥

कारिका में बताया है कि चौथे मास में शुभ नक्षत्र, शुक्ल पक्ष में निष्क्रमण कराना। जैसे बालक को घर में स्नान कराकर सुन्दर वस्त्र अलङ्कारों से सुसज्जित कर अपनी गोदी में लेकर स्वस्तिवाचन के पश्चात् घर से बाहर निकालकर देवता के मन्दिर ले जाकर अच्छी रीति से देवता की पूजा करके, आशीर्वाद लेकर प्रदक्षिणा करके बालक को घर लाना चाहिये ॥ ९–११ ॥

विशेष—ये कारिका के वाक्य ज्योतिर्निबन्ध से संगृहीत हैं। इनके आगे भी कहा है 'मातृस्वसृगृहं गत्वा मातुलादेर्गृहं नयेत्। दशाशीर्वचनाद्यैः स्याद्दीर्घायुरभिनन्दितः। जयन्तस्य मतेनायं लिखितः शिशुनिष्क्रमः' (११५ पृ.) ॥ ९–११ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरंजने संस्कारोक्तं एकषष्टितमं निष्क्रमणप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र पं० रामदीनजी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन संग्रह ग्रन्थ का इकसठवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ६१ ॥

इति श्रीमथुरास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज मुरलीधर चतुर्वेद कृता बृहद्दैवज्ञरञ्जनसंग्रहग्रन्थस्यैकषष्टितम प्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्णा ॥ ६१ ॥

---

१. मु० चिं० ५ प्र० १५ श्लो० पी० टी० । २. ज्यो० नि० ११५ पृ० ८ श्लो० ।

अथ द्विषष्टितमं उपवेशनप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे बासठवें प्रकरण में शिशु को भूमि में प्रथम-प्रथम कब बैठाना चाहिए, इसे विविध ग्रन्थों के वाक्य से बताते हैं ।

[1]पंचमे च तथा मासि भूमौ समुपवेशयेत् ।
तत्र सर्वे ग्रहाः शस्ता भौमोप्यत्र विशेषतः ॥ १ ॥

पहिले-पहिले बालक को भूमि में पांचवें मास में बैठाना चाहिए । इसमें सब ग्रहों का बल देखना चाहिए तथा मंगल का विशेषकर विचारना चाहिए ॥ १ ॥

उपवेशन में तिथि व नक्षत्र

तिथिं विवर्जयेद्रिक्तां शस्तान्यच्छृणु भामिनि ।
उत्तरात्रितयं सौम्यं पुष्यर्क्षं शक्रदेवतम् ॥ २ ॥
प्राजापत्यं च हस्तं च शस्तमश्विनमित्रभम् ।
वाराहं पूजयेद्देवं पृथिवीं च तथा द्विजम् ॥ ३ ॥
पूजनं पूर्ववत्कृत्वा गुरुदेवद्विजन्मनाम् ।
भूभागमुपलिप्याथ तत्र कृत्वा सुमण्डलम् ॥ ४ ॥
शंखपुण्याहशब्देन भूमौ समुपवेशयेत् ॥ ५ ॥

रिक्ता तिथियों को छोड़कर अन्य तिथि में, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, पुष्य, ज्येष्ठा, रोहिणी, हस्त, अश्विनी, अनुराधा नक्षत्र में वराह, पृथ्वी, गुरु, देवता, ब्राह्मण की पूर्ववत् पूजा करके भूमि को लीप कर सुन्दर मण्डल बनाकर, शंख व पुण्याहवचनों के शब्द के साथ भूमि पर बालक को बैठाना चाहिए ॥ ३–५ ॥

उपवेशन मन्त्र

मंत्रस्तु—
रक्षैनं वसुधे देवि सदा सर्वगते शुभे ।
आयुःप्रमाणं सफलं निक्षिपस्व हरिप्रिये ॥ ६ ॥

हे हरि की प्यारी, सर्वत्र शुभ भूमि इस बालक की सदा रक्षा करना और इसे दीर्घायु प्रदान करना ॥ ६ ॥

---

१. ज्यो० नि० ११५ पृ० १–६ श्लो० ।

उपवेशन विधि

बृहस्पतिना तु –
चत्वरे सुशुचौ देशे गोमयाक्ते च सुस्थिते ।
समभूमौ सुपुष्पाढ्ये सुभृत्यैः परिवारिते ॥ ७ ॥
धान्यपद्मे सुखासीनं बालं बालामथापि वा ।
अर्चयेद्गंधपुष्पाढ्यं भस्म मूर्ध्नि ललाटके ॥ ८ ॥
न्यस्य रक्षां ततः कृत्वा मृतसंजीविनीं जपेत् ।
तत्रार्चयेद्गणेशानं भूतेशानं तथैव च ॥ ९ ॥
अन्नेनैव बलिं दद्याद् दिक्षु सर्वासु दैववित् ।
दैवज्ञभिषजोःपूजां यावच्छक्यं प्रयोजयेत् ॥ १० ॥

ऋषि बृहस्पति ने बताया है कि आंगन में पवित्र स्थान में गोबर से लीपकर पुष्प बिछाई हुई भूमि में धान्य से कमल बनाकर उसके चारों ओर बन्धु-बान्धव, नौकरों से घेरे हुए सुन्दर आसन पर कमल पर बालक को बैठाकर गन्ध पुष्पादि से पूजा करके मस्तक पर भस्म लगाना चाहिए तथा गणेश, महेश की पूजा करके ज्योतिषी चारों दिशाओं में अन्न से ही बलि दे तथा अपनी शक्ति के अनुसार दैवज्ञ व वैद्य की पूजा करनी चाहिए ॥ ७–१० ॥

[1]रामाचार्योऽपि चिंतामणौ—
पृथिवीं वराहमभिपूज्य कुजे विशुद्धे
रिक्ते तिथौ व्रजति पंचममासि बालम् ।
बध्वा शुभैर्ह्नि कटिसूत्रमथ ध्रुवेंदु-
ज्येष्ठार्कमैत्रलघुभैरुपवेशयेत्कौ ॥ ११ ॥

रामाचार्य ने मुहूर्त चिन्तामणि में बताया है कि गोचर से बली भौम को जानकर पृथ्वी मां तथा वराह भगवान् की पूजाकर रिक्ता रहित तिथियों, शुभ ग्रहों के वारों, चर लग्न पांचवें महीने में बालक की कमर में कटिसूत्र बाँधकर ध्रुव संज्ञक, ज्येष्ठा, अनुराधा और लघु संज्ञक नक्षत्रों में बालक को सर्वप्रथम जमीन में बैठाना चाहिए ॥ ११ ॥

बालक की जीविका का ज्ञान

[2]तस्मिन् काले स्थापयेत्तत्पुरस्ताद्वस्त्रं शस्त्रं पुस्तकं लेखनीं च ।
स्वर्णं रौप्यं यच्च गृह्णाति बालस्तैराजीवस्तस्य वृत्तिः प्रदिष्टा ॥१२॥

उस समय बालक के सामने वस्त्र, शस्त्र, पुस्तक, लेखनी (कलम) सुवर्ण चांदी स्थापित करके देखना कि शिशु किसको लेता है, जिसे पहिले छुए उसी से उसकी जीविका होती है ॥ १२ ॥

---

१. मु० चिं० ५ पृ० २१ श्लो० । २. मु० चिं० ५ पृ० २१ श्लो० ।

अन्यत्रापि—

[1]अग्रतोऽपि विनिक्षिप्य शिल्पभांडानि सर्वतः।
शस्त्राणि चैव शास्त्राणि ततः पश्येत्तु लक्षणम् ॥ १३ ॥
प्रथमं यत्स्पृशेद्बालस्ततो भाण्डं स्वयं तदा।
जीविका तस्य बालस्य तेनैव तु भविष्यति ॥ १४ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि बालक के आगे शिल्प पात्र, शास्त्र, शस्त्रों को चारों ओर स्थापित करके देखना कि बाल किस वस्तु को ले रहा है, जिसे छुए उसी से जीविका कहना चाहिए ॥ १३–१४ ॥

पुनः अन्य के वाक्य से

तदन्यः—

वस्त्रं शस्त्रं पुस्तकं लेखनीं च स्वर्णं रौप्यं शिल्पभांडादिकं च।
काले तस्मिन्स्थापयेद्बालकस्य आदौ देवान् ब्राह्मणान् पूजयित्वा। १५ ॥
यद्यद्वस्तुं चास्पृशेद्बालकादौ सत्तत्तास्याजीविका वै वदंति।

बालक के उपवेशन समय में वस्त्र, शस्त्र, पुस्तक, लेखनी, सोना, चांदी, चित्रित पात्र या खिलौना स्थापित करके देखना चाहिये कि बालक प्रथम किसको लेता है, जिसे छुए उसी से ही उसकी जीविका होती है ॥ १५ ॥

दत्तकपुत्रपरिग्रहविधिः।

अब आगे दत्तक पुत्र के ग्रहण की विधि को जो कि पारिजात ग्रन्थ में शौनक ऋषि ने बताई है उसे कहते हैं।

पारिजाते शौनकः—

अपुत्रो मृतपुत्रो वा पुत्रार्थं समुपोष्य च।
वाससी कुण्डले दत्त्वा उष्णीषं चांगुलीयकम् ॥ १६ ॥
बन्धूनन्नेन संभोज्य ब्राह्मणांश्च विशेषतः।
अन्वाधानादि यत्तंत्रं कृत्वाज्योत्पवनांतकम् ॥ १७ ॥
तदा समक्षं गत्वा तु पुत्रं देहीति याचयेत्।
दाने समर्थो दातास्मै येयज्ञेनेति पंचभिः ॥ १८ ॥
देवस्यत्वेति मन्त्रेण हस्ताभ्यां परिगृह्य च।
अंगादंगेत्यृचं जप्त्वा आघ्राय शिशुमूर्धनि ॥ १९ ॥
गृहमध्ये तामाधाय चरुं हुत्वा विधानतः।
यस्त्वाहृदेत्यृचा चैव तुभ्यमग्र ऋचैकया ॥ २० ॥
सोमोददादित्येताभिः प्रत्यृचं पंचभिस्तथा।
स्विष्टकृदादि होमं च कृत्वा शेषं समापयेत् ॥ २१ ॥
ब्राह्मणानां सपिंडे च कर्तव्यः पुत्रसंग्रहः।
तदभावेऽसपिंडो वा अन्यत्र तु न कारयेत् ॥ २२ ॥

१. मु० चि० ५ पृ० २२ श्लो० पी० टी०।

ऋषि शौनक ने बताया है कि विना पुत्र वाला या मृत पुत्र वाला अपने पुत्रत्व के निमित्त धर्मशास्त्रानुसार पुत्र का चयन करके वस्त्र, कुण्डल, अंगूठी, पगड़ी देकर उसका समुपोषण करके वान्धवों को अन्न से व विशेषकर ब्राह्मणों को भोजन कराकर अन्वाधानादिसे आज्य निरीक्षणान्त कर्म करके जिसका पुत्र हो उसके पास जाकर मुझे पुत्र दीजिए ऐसी याचना करे और कहे कि आप दान में समर्थवान् दाता हैं अतः दान करना चाहिए। तथा 'ये यज्ञेन' इत्यादि पांच मन्त्रों का उच्चारण करके 'देवस्यत्वा' इत्यादि से हाथों से पुत्र को पकड़कर 'अंगादंग' इत्यादि से बालक के मस्तक को सूँघकर घर के मध्य में बैठाकर विधि से चरु का हवन 'यस्त्वा हृदा' 'तुभ्य मग्र' इत्यादि एक ऋचा से तथा 'सोमोददत्' इत्यादि पाँच ऋचाओं से करके पुनः 'स्विष्टकृत्' होम करके शेष की समाप्ति करनी चाहिए।

ब्राह्मणों को अपने गोत्र का जो बालक सपिंड में हो उसका संग्रह करना इसके अभाव में असपिंड का, अन्यथा भिन्न गोत्र के पुत्र का संग्रह नहीं करना चाहिए ॥ १६–२२ ॥

दत्तक में ग्राह्याग्राह्यत्व

वसिष्ठः—

नत्वेकं पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वा न स्त्रीपुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वा अत्रानुज्ञानाद्भर्तुरिति। यत्तु समंत्रकं होमस्य पुत्रप्रतिग्रहांगत्वात् व्याहृत्यादि मंत्रपाठे च स्त्रीशूद्रयोरनधिकारात्तयोर्दत्तकः पुत्रो न भवत्येवेति शुद्धिविवेके। तन्नेत्यन्ये भर्तुरनुज्ञया स्त्रिया अपि प्रतिग्रहोक्तेः। यद्यपि मेधातिथिना भार्यात्ववददृष्टरूपं दत्तकत्वं होमसाध्यमुक्तम्। स्त्रियाश्च होमासंभवस्तथापि व्रतादिवद्विप्रद्वारा होमादि कारयेदिति हरिनाथादयः। संबंधतत्त्वेप्येवं शूद्रस्यापि चैवं स्त्रीशूद्राश्च सधर्माण इति स्मृतेः। अतएव पराशरेण शूद्रकर्तृको होमो विप्रद्वारैवोक्तः।

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि एक पुत्र नहीं देना और ग्रहण भी नहीं करना चाहिए। अथवा स्त्री को पुत्र नहीं देना तथा नहीं ग्रहण करना चाहिए क्योंकि विना पति की आज्ञा के स्त्री को देने का अधिकार नहीं है।

जो कि और भी कारण पुत्र ग्रहण में यह बताया गया है कि मन्त्र से हवन करके ग्रहण करना व्याहृति और मन्त्र पाठ में स्त्री, शूद्रों का अधिकार नहीं है इसलिये शूद्र व स्त्री को दत्तक ग्रहण करना संभव नहीं है ऐसा शुद्धिविवेक में कहा है सो उचित नहीं है ऐसा अन्य आचार्य लोग नहीं मानते हैं। क्योंकि पति की आज्ञा से स्त्री भी दत्तक का ग्रहण कर सकती है।

स्त्री का होम करना असंभव है तो भी व्रतादि की भांति ब्राह्मण द्वारा होम कराना चाहिए। ऐसा हरिनाथादि का कहना है।

सम्बन्ध तत्त्व में शूद्र के लिए भी ऐसा ही कहा है क्योंकि शूद्र व स्त्री समान धर्म वाले होते हैं ऐसा स्मृति वचन है।

इसलिए ही पराशर मुनि ने शूद्रकर्तृकहोम ब्राह्मण द्वारा ही कहा है।

विशेष बात

दत्तके विशेषः—

कालिकापुराणे—

पितुर्गोत्रेण यः पुत्रः संस्कृतः पृथिवीपते।
आचूडान्तं न पुत्रः स पुत्रतां याति चान्यतः ॥ २३ ॥

कालिका पुराण में बताया है कि हे राजन्, जो पुत्र पिता के गोत्र से चूडा संस्कार तक संस्कृत होता है, वह दूसरे का पुत्र नहीं बन सकता है ॥ २३ ॥

चूडोपनयसंस्कारा निजगोत्रेण वै कृताः।
दत्ताद्यास्तनयास्ते स्युरन्यथा दास उच्यते ॥ २४ ॥

चूडा, यज्ञोपवीत अपने गोत्र से करने पर ही दत्तक पुत्र पुत्र होता है अन्यथा वह पुत्र न होकर दास (भृत्य) होता है ॥ २४ ॥

ऊर्ध्वं तु पञ्चमाद्वर्षान्न दत्ताद्याः सुता नृप।
गृहीत्वा पञ्चवर्षीयं पुत्रेष्टिं प्रथमं चरेत् ॥ २५ ॥

हे राजन्, पाँच वर्ष से ऊपर अवस्था वाले पुत्र को दत्तक के लिए नहीं देना चाहिये, अतः पाँच वर्ष के बालक का ही ग्रहण करके पुत्रेष्टि यज्ञ कराना चाहिये ॥ २५ ॥

दत्तक ग्रहण का मुहूर्त

तन्मुहूर्तः—

हस्तादि पञ्चकभिपग्वसुपुष्यभेषु सूर्यक्षमाजगुरुभार्गववासरेषु।
रिक्ताविवर्जिततिथिष्वलिकुम्भलग्ने सिंहे वृषे भवति दत्तपरिग्रहोयम् ॥ २६ ॥

हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, अश्विनी, धनिष्ठा, पुष्य नक्षत्र, सूर्य, मंगल, गुरु, शुक्रवार, रिक्ता रहित तिथि, कुम्भ, सिंह, वृश्चिक, वृष लग्न में गोद लेना शुभ होता है ॥ २६ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने
संस्कारोक्तं द्विषष्टितमं उपवेशनप्रकरणं समाप्तम्।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का बासठवाँ उपवेशन प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ६२ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेव चतुर्वेदात्मज मुरलीधर चतुर्वेदकृता बृहद्दैवज्ञरञ्जननामकसंग्रहस्य द्विषष्टितमप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका परिपूर्ण ॥ ६२ ॥

अथ त्रिषष्टितमं अन्नप्राशनप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे तिरसठवें प्रकरण में बालक को प्रथम अन्न कब देना चाहिये, इसे विविध ग्रन्थों के आधार पर बताते हैं ।

अन्न प्रशंसा

भार्गवपुराणे असितवाक्यम्—
अन्नमेव परब्रह्म प्रपञ्चत्वं च तत्कृतम् ।
प्रकृतिर्नास्ति संदेहः कथं चैतन्निबोध मे ॥ १ ॥

भार्गव पुराण में श्री असितजी का वाक्य है कि अन्न ही परमेश्वर का स्वरूप है और समस्त संसार अन्न से ही प्रपञ्चित है । सारांश—सारी लड़ाई भोजन की ही दृष्टिगोचर हो रही है । प्रकृति कुछ नहीं है, यह सन्देह की बात है । इसका निराकरण मुझसे कहो ॥ १ ॥

ब्रह्मादितृणपर्यन्तं यदेतदखिलं जगत् ।
सर्वमन्नमयं यस्मात् ब्रह्मा चेद् ब्रूहि पार्थिवम् ॥ २ ॥

ब्रह्मादि से लेकर तिनका तक जो कुछ समस्त संसार है, वह अन्नमय ही है ॥ २ ॥

अन्नप्रशंसा व प्रभोजन मुहूर्त

बृहस्पतिनापि—
शिशूनामन्नभुक्त्यर्थं वदामि समयं शुभम् ।
आदौ भोजनशक्तिः स्याद्भोजने जगतःस्थितिः ॥ ३ ॥

ऋषि बृहस्पति ने बताया है कि मैं बालकों के प्रथम २ अन्न ग्रहण के शुभ समय को कहता हूँ । क्योंकि प्रथम भोजन की शक्ति है तब संसार में रहना सम्भव होता है ॥ ३ ॥

निरोगित्वं च भोज्येन बलं तेजो जवस्तथा ।
दीर्घायुष्यं च सर्वेषां श्रीमतां च तथा नृणाम् ॥ ४ ॥

भोज्य पदार्थ से ही नीरोगता सबकी बल, तेज, गति, दीर्घ काल तक जीवन की स्थिति होती है चाहे कोई धनी हो या साधारण मनुष्य ॥ ४ ॥

षष्ठे मासि शुभे चन्द्रे पक्षे चाप्यसितेतरे ।
अन्नस्य प्राशनं कुर्याद्धितायं प्रथमं शिशोः ॥ ५ ॥

छठे मास, शुभ चन्द्रमा, शुक्ल पक्ष में प्रथम २ बालक को अन्न खिलाना शुभ होता है ॥ ५ ॥

मासों में विशेष

पुंसोन्नप्राशनं कुर्यान्मासे षष्ठे सदा बुधैः।
स्त्रीणां तु पञ्चमे मासि आधानादष्टकेपि च ॥ ६ ॥

छठे मास में पुरुषों को और स्त्रियों को पाँचवें में या आधान (गर्भ) से आठवें मास में प्रथम-प्रथम अन्न खिलाना चाहिए ॥ ६ ॥

नारदः—

[1]षष्ठे मास्यष्टमे वापि पुंसां स्त्रीणां तु पञ्चमे।
सप्तमे मासि वा कार्यं नवान्नप्राशनं शुभम् ॥ ७ ॥

ऋषि नारदजी ने बताया है कि छठे या आठवें मास में पुरुषों को और स्त्री को पाँचवें यां सातवें मास में प्रथम-प्रथम अन्न खिलाना शुभ होता है ॥ ७ ॥

गर्गः—

[2]युग्मेषु मासेषु च षट्सु पुंसां संवत्सरे वा नियतं शिशूनाम्।
अयुग्ममासेषु च कन्यकानां नवान्नसंप्राशनमिष्टमेतत् ॥ ८ ॥
षष्ठादियुग्ममासेषु शिशूनामन्नभोजनम्।
कन्यानां पञ्चमान्मासादयुग्मे भोजनं स्मृतम् ॥ ९ ॥

ऋषि गर्ग ने कहा है कि सम ६ मासों में या वर्षों में बालकों को और विषम मासों में बालिकाओं को अथवा षष्ठ आदि सम मास या वर्ष में पुरुषों को और पंचमादि विषम मास में स्त्रियों को प्रथम-प्रथम अन्न खिलाना शुभ होता है ॥ ८–९ ॥

वसिष्ठः —

[3]बालान्नभोजनविधौ गुरुशुक्रमौढ्यं मासप्रयुक्तमशुभं त्वधिमासदोषः।
नास्त्यत्र सावनविधाविह मासि षष्ठे युग्मे च मासि परतः सितचन्द्रपक्षे ॥१०॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि बालकों के नवान्न प्राशन कार्य में गुरु व शुक्र का अशुभ अस्तदोष नहीं होता है क्योंकि यह मास विहित कार्य स्थिर है। अतः अस्त होने पर भी छठे या आठवें आदि सम मास में शुक्ल पक्ष में करना चाहिए ॥ १० ॥

मलमास में दोषाभाव ज्ञान

नारदः—

सीमन्तादीनि कर्माणि प्राशनान्तानि यानि वै।
न दोषो मलमासस्य मौढ्यस्य गुरुशुक्रयोः ॥ ११ ॥

ऋषि नारद जी ने कहा है कि सीमन्तादि संस्कार से लेकर अन्न प्राशन तक के संस्कारों में मलमास तथा गुरु शुक्र के अस्त का दोष नहीं होता है ॥ ११ ॥

---

१. मु. चि. ५ पृ. १७ श्लो. पी. टी. तथा ज्यो. नि. ११६ पृ.।

२. व. सं. २७ अ. १ श्लो. 'षष्ठमासात्' पाठ है।

३. ज्यो. नि. ११६ पृ.। विधिरत्न से उद्धृत है।

अन्न प्राशन में त्याज्य तिथियाँ

[1]रिक्तादिनक्षयं नन्दा द्वादशीमष्टमीममाम् ।
त्यक्त्वान्यतिथयः श्रेष्ठाः प्राशने शुभवासराः ॥ १२ ॥

नारद मुनि का कहना है कि रिक्ता, क्षय, नन्दा, द्वादशी, अष्टमी व अमावस्या से अन्य तिथियों में और शुभवारों में अन्नप्राशन करना श्रेयस्कर होता है ॥ १२ ॥

प्रकारान्तर से

पञ्चपर्वसु रिक्तायां नन्दायामाद्यभोजनम् ।
बलमायुर्यशो हन्ति सप्तम्यां चेति केचन ॥ १३ ॥

पांच पर्व वाली, रिक्ता और नन्दा तिथियों में बालक को पहिले-पहिले भोजन कराने या अन्न खिलाने से बल, आयु व यश का नाश होता है कोई सप्तमी में भी दोष मानते हैं ॥ १३ ॥

एकादश्यां च सप्तम्यां द्वादश्यां पञ्चपर्वसु ।
बलमायुर्यशो हन्याच्छिशूनाभन्नभोजने ॥ १४ ॥

एकादशी, सप्तमी, द्वादशी व पांच पर्व की तिथियों में प्रथम बालक को अन्न खिलाने पर उसके बल, आयु, यश का विनाश होता है ॥ १४ ॥

अन्न प्राशन में वारों का फल

वाचालो बलवान्दिने दिनकरे अत्यन्तदीप्तानलो
देहे हीनहुताशनः शशिरुचौ भौमे रुजापीडितः ।
बोधे भोगसुखी प्रियः प्रथमभुक् जीवे चिरायुः सुखी
शुक्रे कान्तिबलाधिकेतिमलिनो मन्दे च मन्दानलः ॥ १५ ॥

बालक को पहिले-पहिले रविवार को अन्न खिलाने पर वाचाल व बली और प्रबल जठराग्नि वाला, चन्द्रवार को अन्न देने पर मन्दाग्नि, भौम को रोग से दुःखी, बुध को भोग से सुखी, सुन्दर, गुरु को दीर्घायु, सुखी, शुक्र को अधिक बली व कान्तिमान् और शनिवार को पहिले-पहिले अन्न बालक को देने पर वह अत्यन्त मलिन और मन्दाग्नि वाला होता है ॥ १५ ॥

विशेष—पी० धा० में 'शशिशुक्रे च मन्दाग्निः शनौ भौमे बलक्षयः । बुधार्कगुरुवारेषु प्राशनं हि शुभावहम् (५ प्र० १७ श्लो०) ॥ १५ ॥

तथा ज्योतिर्निबन्ध में भी 'बुधशुक्रगुरूणां तु वा बालान्न भोजने । चन्द्रवारं प्रशंसन्ति कृष्णे चान्त्यत्रिकं विना । मिष्टान्नभुग्जीवनिशाकराभ्यां शुक्रेण वाग्मी रविणा दरिद्री । कुजेन रोगी शशिजेन भोगी क्षीणायुरादित्यसुतेऽहि कुर्यात् । अर्काङ्गारकमन्दानां वाराश्चापि शुभप्रदाः । यदा वाराधिपस्तिष्ठेत्स्वोच्चमित्रगृहे तदा' (११६ पृ०) ॥१५॥

---

१. मु. चि. ५ प्र. १७ श्लो. पी. टी. ।

राजमार्तंडे—

हस्तः पुष्यपुनर्वसूकमलजत्वाष्ट्रेंदुमित्राश्विनी-
वायव्योत्तरवासवानिलमघापौष्णेष्वरिक्ते तिथौ ।
वारेष्विन्दुजभार्गवेंदुदिनकृद्वाचस्पतीनां शिशो-
रन्नप्राशनमंगनामिथुनगोमीनोदये शोभनम् ॥ १६ ॥

राजमार्तण्ड में बताया है कि हस्त, पुष्य, पुनर्वसु, रोहिणी, चित्रा, मृगशिरा, अनुराधा, अश्विनी, स्वाती, उत्तरा, धनिष्ठा, मघा, रेवती नक्षत्र में, रिक्ता तिथियों को छोड़कर, बुध, शुक्र, चन्द्र, सूर्य, गुरुवार में, कन्या, मिथुन, वृष, मीन लग्न में बालक को पहिले-पहिले अन्न खिलाना शुभ होता है ॥ १६ ॥

प्रदीपे—

[1]विष्णुरुष्णकिरणो हिमरश्मिर्वायुमित्रवरुणादितिचित्राः ।
अश्वितिष्यवसुपौष्णरोहिणी त्र्युत्तराश्च शिशुभोजनतारा ॥ १७ ॥

प्रदीप में कहा है कि श्रवण, हस्त, मृगशिरा, स्वाती, अनुराधा शतभिषा, पुनर्वसु, चित्रा, अश्विनी, पुष्य, धनिष्ठा, रोहिणी व तीनों उत्तरा अन्न प्राशन में शुभ तारा होती है ॥ १७ ॥

विशेष—पी० धा० टी० में यह पद्य प्र० ५ के १७ श्लो० की वसिष्ठ नाम से उद्धृत है ॥ १७ ॥

चूडामणौ—

रेवत्यश्विपुनर्वसूहरियुगब्राह्म्यानुराधा गुरु-
स्वातीभानुमघाविशाखरजनीनाथोत्तरा त्वाष्ट्रभे ।
वारे सूर्यशशांकबोधनगुरौ शुक्रेप्यरिक्ते तिथा-
वन्नप्राशनमीरितं मिथुनगोकन्याझषे सूरिभिः ॥ १८ ॥

चूडामणि में कहा है कि रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी, अनुराधा, पुष्य, हस्त, विशाखा, मघा, मृगशिरा, उत्तरा, चित्रा नक्षत्र में, सूर्य, चन्द्रमा, बुध, गुरु, शुक्रवार, रिक्ता रहित तिथि में, मिथुन, वृष, कन्या, मीन लग्न में प्रथम-प्रथम शिशु को अन्न खिलाना चाहिये ॥ १८ ॥

रामाचार्यः—

[2]रिक्तानन्दाष्टदर्शं हरिदिवसमथो सौरिभौमार्कवारं
लग्नं जन्मर्क्षलग्नाष्टमगृहलवगं मीनमेषालिकं च ।
हित्वा षष्ठात्समेमास्यथ च मृगदृशां पञ्चमादोजमासे
नक्षत्रैः स्यात्स्थिराख्यैः समृदुलघुचरैर्बालकान्नाशनं सत् ॥ १९ ॥

---

१. मु. चिं. ५ प्र. १७ श्लो. पी. में वसिष्ठ के नाम से उद्धृत है ।
२. मु. चिं. ५ प्र. १७ श्लो. ।

श्रीरामदैवज्ञ ने मुहूर्त चिन्तामणि में कहा है कि रिक्ता, नन्दा, अष्टमी, अमावास्या ३०, द्वादशी १२ तिथियों को छोड़कर शेष तिथियों में सूर्य, शनि, मंगलवार का त्याग करके अन्य वारों में, जन्म लग्न व राशि से अष्टम राशि व नवांश को छोड़कर शेष राशि लग्नों में मीन, मेष और वृश्चिक लग्न को छोड़कर शेष लग्नों में, बालकों का छठे मास से सम मासों में (६।८।१०।१२) और कन्याओं का पाँचवें मास से विषम (५।७।९।११) मासों में प्रथम २ शिशु को स्थिर, मृदु, लघु, चर, नक्षत्रों में भोजन कराना शुभ होता है ॥ १९ ॥

नारदः—
षष्ठे मासि सिते पक्षे शुभे केंद्रत्रिकोणगे।
त्रिषडायगते क्रूरे चन्द्रे मृत्यरिवर्जिते ॥ २० ॥

ऋषि नारदजी ने कहा है कि छठे मास में, शुक्ल पक्ष में, लग्न से केन्द्रत्रिकोण में शुभग्रह के रहने पर तथा ३।६।११ में पाप स्थिति में ६।८ को छोड़कर अन्य स्थानों में चन्द्रमा के रहने पर शुभ होता है ॥ २० ॥

ज्योतिर्विवरणे—
[1]जन्मर्क्षे श्रीक्षयं विद्यात्कर्मर्क्षे चापि सौख्यकृत्।
आधानर्क्षे च बालानां भोजनं रोगनाशनम् ॥ २१ ॥

ज्योतिर्विवरण में कहा है कि जन्म के नक्षत्र में अन्न प्राशन होने पर लक्ष्मी का नाश, कर्म नक्षत्र में सुख, और आधान के नक्षत्र में बालक को प्रथम २ अन्न खिलाने पर रोग का नाश होता है ॥ २१ ॥

गुरु बल

वृद्धनारदः—
[2]यदा वाराधिपस्तिष्ठेत्स्वोच्चमित्रगते तदा।
गुरुणा बलिना वापि वीक्षितश्च बलान्वितः ॥ २२ ॥

वृद्ध नारदजी ने बताया है कि जब वारेश अपनी उच्च या मित्र की राशि में होता है अथवा बली गुरु से दृष्ट हो तो भी बली होता है ॥ २२ ॥

प्राशन लग्न में गुरु के शुभाशुभ स्थान

बृहस्पतिः –
केन्द्रत्रिकोणयोराद्ये लग्ने शोभनदो गुरुः।
अशोभनस्तु षष्ठाष्टभ्रातृष्वन्त्यगतस्तथा ॥ २३ ॥

बृहस्पतिजी ने बताया है कि प्राशन लग्न से केन्द्र (१।४।७।१०) त्रिकोण (५।९), ११ में गुरु शुभ और ६।८।३।१२ में अशुभ होता है ॥ २३ ॥

---

१. ज्यो. नि. ११६ पृ.। २. ज्यो. नि. ११६ पृ.।

उक्त लग्न में शुक्र के शुभ स्थान

लग्नार्थसहजात्मार्थबंध्वायाष्टनवस्थितः ।
शुक्रः शुभकरो भुक्तो स्मरार्यस्तेन शोभनः ॥ २४ ॥

शुक्र १।२।३।५।११।८।९ में शुभ होता है । इसमें बालक को अन्न खिलाने पर वह श्रेष्ठ होता है ॥ २४ ॥

पापों की शुभता

त्रिषडायगताः सूर्यराहुभौमदमास्तथा ।
भोक्तुः शुभकराः सर्वे पापाः शेषास्त्वशोभनाः ॥ २५ ॥

३।६।११ में समस्त पापग्रह सूर्य, राहु, मंगल, शनि शुभ और अन्य ग्रह अशुभ होते हैं ॥ २५ ॥

लग्न शुभ योग

सितपक्षे शुभांशस्थे चन्द्रे जीवे त्रिकोणगे ।
शुक्रे च केन्द्रगे लग्नाद्योगोयं नवभोजने ॥ २६ ॥

शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा जब शुभ ग्रह के नवांश में हो, गुरु ५ या ९ में, और शुक्र लग्न से केन्द्र में होता है तो नवान्न भोजन में एक योग होता है ॥ २६ ॥

त्रिषडायेष्वथैकस्मिन्क्रूरे बलसमन्वितः ।
केन्द्रे शुभे बलयुते योगो भोजनशोभनः ॥ २७ ॥

३।६।११ में या इनमें से एक में पाप ग्रह बली हो व केन्द्र में बली शुभग्रह हो तो दूसरा योग होता है ॥ २७ ॥

भवोदयार्थभ्रातृस्था मन्दशुक्रज्ञभास्कराः ।
क्रमाद्रवौ कुजे वापि योगोमृतसमः शनेः ॥ २८ ॥

११।१।२।३ में क्रम से शनि, शुक्र, बुध, सूर्य हो या मंगल, सूर्य हो तो अमृत समान योग होता है ॥ २८ ॥

शुभांशे शीतगौ भोक्तुर्दद्युरायुः श्रियं शुभाम् ।
एवं भोज्यं नवत्वेपि कथितं ब्रह्मणा स्वयम् ॥ २९ ॥

अन्न प्राशन लग्न में चन्द्रमा शुभग्रह के नवांश में रहने पर खाने वाले को आयु, अधिक लक्ष्मी प्राप्त होती है । इसी प्रकार नवीन भोज्य में भी उक्त फल होता है । ऐसा स्वयं ब्रह्माजी ने बताया है ॥ २९ ॥

नवारामादिभिः सिद्धः फलपत्रादयस्तथा ।
गजादिवाहनाः सर्वे नवभोज्याश्चिरायते ॥ ३० ॥

तथा नवीन बगीचे आदि से तैयार फल पत्रादि गजादि सवारियों को नवान्न देने पर वे अधिक काल तक जीवित रहते हैं ॥ ३० ॥

कालिदासः—

अज्ञातिजातिगुणरूपविधानकानामन्नादिबीजरसपुष्पफलौषधानाम् ।
संसेवनं सुकृतसौख्ययशोभिवृद्धयै निःसंशयं नरवरो विदधीत नात्र ॥ ३१ ॥

कालिदासजी का कथन है कि जिस अन्न, बीज, रस, पुष्प, फल और औषध की पूर्ण रूप से गुण-दोष की जानकारी न हो, उसे पुण्य, सुख, यश की अभिवृद्धि की कामना करने वाले व्यक्ति को कभी सेवन न करना चाहिये ॥ ३१ ॥

भोजन विधि में निषेध

शिरावेष्टस्तु यो भुंक्ते दक्षिणाभिमुखस्तु यः ।
वामपादकरः स्थित्वा तद्वै रक्षांसि भुंजते ॥ ३२ ॥

जो शिर को लपेट कर या दक्षिण दिशा को मुँह करके अथवा बाँए पैर पर हाथ रखकर भोजन करता है उसके भोजन का सारा अंश राक्षस खा जाते हैं ॥ ३२ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मज रामदीनकृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरंजने
त्रिषष्टितमं अन्नप्राशनप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का अन्न प्राशन नाम वाला तिरसठवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ६३ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक्र पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज मुरलीधरचतुर्वेदकृता त्रिषष्टितमप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका परिपूर्णा ॥ ६३ ॥

अथ चतुष्षष्टितमं अब्दपूर्तिप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे चौसठवें प्रकरण में जन्मोत्सव के दिन क्या-क्या करना चाहिए तथा तेल कब लगाना चाहिए, इसे बताते हैं।

अब्द पूर्ति में कर्तव्य

मुहूर्तगणपतौ—

[1]प्रतिवर्षे तु जन्माहे स्नायादुत्सवपूर्वकम् ।
गणेशांबां समभ्यर्च्य देवताश्चिरजीविनः ॥ १ ॥
[2]कृत्वायुष्यं च विध्युक्तं कर्मदानान्यनेकशः ।
बद्ध्वा मंगलसूत्रं च भुक्तमिष्टजनैः सह ॥ २ ॥

मुहूर्त गणपति में बताया है कि प्रतिवर्ष जन्म के दिन उत्सव के साथ स्नान करना और गणेश, लक्ष्मी व चिरजीवी देवताओं का पूजन करके विधि पूर्वक आयु वृद्धि के लिये अनेक दान कार्य करके मंगलसूत्र बाँध कर इष्ट मित्रों के साथ भोजन करना चाहिए ॥ १-२ ॥

ज्योतिषरत्ने श्रीधरः—

[3]वर्षांतजन्मदिवसे रविमासशुद्धे संस्नाप्य शांतिकरकर्मचिराय कृत्वा ।
आविध्य हेमकटिसूत्रमथानुकूले लग्ने शिशोर्नवतरांवरयोगमाहुः ॥ ३ ॥

ज्योतिषरत्न नामक ग्रन्थ में श्रीधराचार्य के वाक्य से ज्ञात होता है कि सौर मास से जब वर्ष समाप्ति हो तो जन्म के दिन अच्छी तरह से शिशु को स्नान करा कर आयु वृद्धि हेतु शान्ति कर्म करके सुवर्ण का सूत्र कमर में बाँधना चाहिए तथा अनुकूल लग्न में नवीन वस्त्र पहनाना चाहिए ॥ ३ ॥

विधिरत्ने—

अब्देन सौरेण शिशोः समांते बालं सुसंस्नाप्य च जन्मधिष्णे ।
कृत्वायुषो वृद्धिकरं च कर्म तं धारयेच्छांतिसुवर्णसूत्रम् ॥ ४ ॥

विधि रत्न में कहा है कि सूर्य मान से वर्ष समाप्ति होने पर बालक को जन्म के नक्षत्र में अच्छी रीति से स्नान कराकर फिर आयु वृद्धि के लिये शान्ति कार्य कराना चाहिये और कमर में सुवर्ण सूत्र शान्ति के निमित्त बाँधना चाहिए ॥ ४ ॥

---

१. १४ प्र. ७०-७१ श्लो. । तथा 'न्याहे रमायास्तपपूर्वकम्' प्रकाशित में पाठ है ।

२. २ पृ. में 'कृष्णायुः' पाठ है ।

३. पृ० मु० ग० में 'मुक्ते शिष्टं द्विजैः सह' पाठ है ।

मुहूर्ततत्त्वे –

जन्मर्क्षे वाह्नि हैमं सुतनुषु कटिसूत्रादि बद्ध्वाब्दपूर्तिः ।

मुहूर्त तत्त्व में कहा है कि जन्म के नक्षत्र या दिन में कमर में सूत्र बाँध कर वर्ष पूर्ति करनी चाहिए ।

पारिजाते—

प्रतिसंवत्सरांतर्क्षे वक्ष्ये नृणां विधिं पराम् ।
दत्त्वा गोभूहिरण्यादि तथा स्वर्णादिनिर्मितम् ॥ ५ ॥

बध्नीयात्कटिसूत्रं च वासः संगृह्य नूतनम् ।
दूर्वांकुरैरथाद्येन चरुणा च पिनाकिनम् ॥ ६ ॥
आयुष्यहोमं कृत्वा च तर्पयेत्पितृदेवताः ॥ ७ ॥

पारिजात में बताया है कि प्रति वर्ष के अन्त के नक्षत्र में मनुष्यों की परम विधि को कहता हूँ । जन्म के दिन गाय, सुवर्णादि का दान करके सोने का सूत्र कमर में बाँध कर नवीन वस्त्र धारण करके प्रथम चरु से तथा दूर्वा से महादेवजी का आयु वृद्धि के लिए हवन करके पितरादिकों का तर्पण करना चाहिए ॥ ५–७ ॥

आदित्यपुराणे—

सर्वैश्च जन्मदिवसे स्नातैर्मंगलवारिभिः ।
गुरुविप्राग्निदेवाश्च पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥ ८ ॥
स्वनक्षत्रं च पितरस्तथा देवाः प्रजापतिः ।
प्रतिसंवत्सरं यत्नात्कर्तव्यं च महोत्सवः ॥ ९ ॥

आदित्यपुराण में बताया है कि जन्म के दिन समस्त जनों को मंगल जनों से स्नान करके गुरु, ब्राह्मण, देवता, अग्नि का पूजन प्रयत्न पूर्वक करना चाहिए । स्वनक्षत्र पितर, देवता, प्रजापति का प्रति वर्ष महोत्सव करना चाहिए ॥ ८-९ ॥

जन्मोत्सव के दिन निषिद्ध

विवादं च उदासीनं तथा च कटुभोजनम् ।
मुंडनं नखकेशानां मैथुनं नैव कारयेत् ॥ १० ॥
खर्जूरमात्मगात्राणि त्यागं च नखकेशयोः ।
मैथुनं च विवादं च वर्जयेदिह जन्मनि ॥ ११ ॥

विवाद, उदासीनता, कड़वा भोजन, नाखून व केशों का त्याग और शरीर खुजाना मैथुन उस दिन नहीं करना चाहिए ॥ १०-११ ॥

वारानुसार तेल लगाने का फल

अथ तैलाभ्यंगः ।
[१]रविस्तापं कांतिं वितरति शशी भूमितनयो
मृतिं लक्ष्मीं चांद्रिः सुरपतिगुरुर्वित्तहरणम् ।
विपत्तिं दैत्यानां गुरुरखिलभोगानुभवनं
नृणां तैलाभ्यंगात्सपदि कुरुते सूर्यतनयः ॥ १२ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि सूर्यवार को तेल लगाने से सन्ताप, चन्द्र को तेज वृद्धि, मंगल को मरण, बुध को लक्ष्मी प्राप्ति, गुरु को धन का हरण (चोरी होना), शुक्र को विपत्ति और शनिवार को तेल लगाने से मनुष्य को समस्त भोग सुखों का अनुभव होता है ॥ १२ ॥

दूषित वारों में तेल लगाने का प्रकार

रवौ पुष्पं गुरौ दूर्वां भौमवारे च मृत्तिकाम् ।
शुक्रे च गोमयं क्षिप्यं तैले स्नानं सुखावहम् ॥ १३ ॥

सूर्य वार में पुष्प, गुरु में दूर्वा, भौम में मिट्टी और शुक्रवार के दिन तेल में गोबर छोड़ कर लगाने से दोषदायी नहीं होता है ॥ १३ ॥

तेल लगाने का निषेध

नार्कारवारे न च संक्रमेपि न वैधृतौ न व्यतिपातयोगे ।
न पक्षमध्ये न च विष्टिषष्ठ्योरभ्यंग इष्टो न च पर्वसूक्तः ॥ १४ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि सूर्य, भौम वार, संक्रान्ति, वैधृति, व्यतीपात योग, पक्ष मध्य, विष्टि, षष्ठी और पर्व तिथि में तेल नहीं लगाना चाहिए ॥ १४ ॥

चतुर्दश्यष्टमी दर्शे पौर्णिमास्यर्कसंक्रमे ।
तैलस्नानं न कुर्वंति सुतबन्धुधनक्षयः ॥ १५ ॥

चौदस, अष्टमी, अमावास्या, पूर्णिमा, सूर्य सङ्क्रान्ति में तेल नही लगाना चाहिए। लगाने से इन दिनों में पुत्र, बान्धव और धन का क्षय होता है ॥ १५ ॥

नारदजी ने कहा है 'व्यतीपाते च संक्रान्तावेकादश्यां च पर्वसु । अर्कभौमादिविष्ट्यां नाभ्यङ्गं न च वैधृतौ" मु० चि० १ प्र० ७ श्लो० पी० टी० ॥ १५ ॥

अदूषित तेल का ज्ञान

सार्षपं गंधतैलं च पक्वतैलं यदौषधे ।
अन्यद्रव्ययुतं वापि तत्तैलं नैव दुष्यति ॥ १६ ॥

सरसों का गमगमा, पका हुआ, दवाई वाला अथवा अन्य द्रव्य से युक्त तेल दोष दाता नहीं होता है ॥ १६ ॥

---

२. ज्यो० सा० १५ पृ० ।

धर्मसारे—

मंत्रितं क्वथितं तैलं सार्षपं पुष्पवासितम् ।
द्रव्यान्तरयुतं वापि नैव दुष्येत्कदाचन ॥ १७ ॥

धर्मसार में बताया है कि अभिमन्त्रित, क्वाथ से निर्मित, सरसों का पुष्पों से वासित या अन्य पदार्थ से मिश्रित तेल कभी भी दोषी नहीं होता है ॥ १७ ॥

स्त्रीसगं खादनं पानं स्वाध्यायं क्षुरकर्म च ।
न कुर्याद्दन्तसंघर्षं तैले शिरसि संस्थिते ॥ १८ ॥

मस्तक पर तेल लगाकर स्त्री सङ्ग (मैथुन), भोजन, पान, अध्ययन, क्षौरकार्य और दाँतों का संघर्षण नही करना चाहिए ॥ १८ ॥

तेल लगाने में दोष का दूरीकरण

तैलाभ्यंगो न दोषाय प्रत्यहं क्रियते च यः ।
उत्सवे वातरोगे वा यत्र वाचनिकोपि वा ॥ १९ ॥

जो प्रतिदिन तेल लगाते हैं उनके लिए दोष नही होता तथा उत्सव बात व्याधि वा वाचनिक होने पर भी तेल लगाने का दोष नही होता है ॥ १९ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते संग्रहे बृहद्वज्ररंजने
संस्कारोक्त चतुष्षष्टितमं अब्दपूर्तिप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र पं० रामदीनजी द्वारा रचित वृहद् वज्ररञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का अब्दपूर्ति नाम वाला चौसठवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ६४ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भगवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर चतुर्वेदकृता वृहद् वज्ररञ्जनग्रन्थस्य चतुःषष्टितमप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका परिपूर्णा ६४ ॥ ६४ ॥

अथ पञ्चषष्टितमं चूडाप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अथ मुंडनप्रकारमाह ।

अब आगे पैंसठवें प्रकरण में मुण्डन कब करना तथा क्षौर किन-किन दिनों में शुभाशुभ होता है, इसे बताते हैं ।

शुभ समय का महत्त्व

वृहस्पतिः—

अथानंतरमुक्तं हि क्षुरकर्म विचक्षणैः ।
क्षुरेणैवायुषो वृद्धिः कृतेन समये शुभे ॥ १ ॥

वृहस्पतिजी ने बताया है कि विद्वानों ने शुभ समय में क्षौर कार्य करना चाहिए। क्योंकि क्षुरा से ही आयु की वृद्धि होती है ॥ १ ॥

अशुभ काल में क्षौर करने का फल

अशुभे समये चैव कृतमायुःक्षयाय च।
तेजोबलं यशो वीर्यं वृद्धिनाशक्रमात्तथा ॥ २ ॥

क्षौर कार्य अशुभ काल में करने से आयु क्षय, तेज-बल-यश-पराक्रम और वृद्धि का नाश होता हैं ॥ २ ॥

तस्मात्सम्यक्परीक्ष्यैव कर्तव्यं क्षौरमायुषे।
बुधैरायुष्यमित्युक्तं चूडाकर्मैव तेन हि ॥ ३ ॥

इसलिए अच्छी रीति से शुभ समय को जानकर ही आयुवृद्धि के लिए क्षौर कराना चाहिये। विद्वानों ने चूडाकार्य से ही आयुवृद्धि होती है, ऐसा कहा है ॥ ३ ॥

शतवर्षे स्थिते नृणां अर्थान्मृत्युं जिघांसते।
कुर्वंत्यकाले ये क्षौरं तेनायुर्हीयते यतः ॥ ४ ॥

अच्छे समय में क्षौर करने से सौ वर्ष तक मनुष्य स्थित होता है, वह मृत्यु को मारता है। अशुभ काल में क्षौरकर्म जो करते हैं तो उनकी आयु का ह्रास होता है ॥ ४ ॥

क्षौरेणायुर्विवृद्धिः स्यात्क्षौरेणायुःक्षयस्तथा।
सदसत्कालयोर्नृणां कृते चाल्पदिन दिने ॥ ५ ॥

क्योंकि क्षौर से आयु की वृद्धि और क्षौर से आयु का क्षय शुभाशुभ समय में करने से तथा जल्दी-जल्दी करने से होता है ॥ ५ ॥

कब मुण्डन करना

अनाचाराननाज्ञानानकाले क्षुरकारिणः।
दुरंत्याद्यास्तमालस्यान्मृत्युर्मर्त्यान्समाप्नुयात् ॥ ६ ॥

आचार से रहित, अज्ञानी, असमय में क्षौर कर्म करने वाले, दुष्कर कर्म करने वाले और आलसी लोगों को मृत्यु शीघ्र आती है ॥ ६ ॥

तृतीयेऽब्दे शिशोर्गर्भज्जन्मतो वा विशेषतः।
पञ्चमे सप्तमे वापि स्त्रियः पुंसोथवा समे ॥ ७ ॥
द्वितीये जन्मनि सार्द्धं कदाचिदभिधीयते।
त्रैवर्णिकानामेवैतन्नान्येषां समर्योत्यगः ॥ ८ ॥

शिशु का गर्भ से या विशेषकर जन्म से तीसरे वर्ष में या पाँचवें या सातवें वर्ष में या स्त्री का सम वर्ष में या दोनों का जन्म साथ हो तो सम वर्ष में तीनों वर्णों के लोगों का चौल करना, अन्यों का नहीं करना चाहिये ॥ ७-८ ॥

चूडा कर्म मुहूर्त

[1]चंडेश्वरः –

चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः।
प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिदर्शनात् ॥ ९ ॥

चण्डेश्वरजी ने बताया है कि समस्त द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) को चूडाकर्म अपने कुलाचारवश प्रथम या तीसरे वर्ष में वेदानुसार करना चाहिये ॥ ९ ॥

[2]षड्गुरुशिष्यः—

आद्येऽब्दे कुर्वते केचित्पंचमेन्ये द्वितीयके।
उपनीत्या सहैवेति विकल्प्या कुलधर्मतः ॥ १० ॥

षड्गुरु शिष्य ने बताया है कि कोई-कोई प्रथम वर्ष में, अन्य लोग पाँचवें वर्ष में तथा दूसरे लोग स्वधर्मवश यज्ञोपवीत के साथ चूडाकर्म करते हैं ॥ १० ॥

नारदः—

तृतीये पंचमेऽब्दे वा स्वकुलाचारतोपिवा।
बालानां जन्मतः कार्यं चौलमावत्सरत्रयात् ॥ ११ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि तीसरे या पाँचवें वर्ष में अथवा अपने कुलानुसार काल में बालकों का चूडा संस्कार जन्म से तीसरे वर्ष से विषम वर्षों में करना चाहिये ॥ ११ ॥

वृद्धनारदः—

[3]जन्मतस्तु तृतीयेऽब्दे श्रेष्ठमिच्छंति पंडिताः।
पंचमे सप्तमे वापि जन्मतो मध्यमं भवेत् ॥ १२ ॥
अधमं गर्भतः स्यात्तु नवमैकादशेपिवा ॥ १३ ॥

वृद्ध नारदजी ने बताया है कि जन्म से तीसरे वर्ष में चौल शुभ होता है, यह विद्वानों का पक्ष है। जन्म से पाँचवें या सातवें वर्ष में मध्यम और गर्भ से नवें या ग्यारहवें वर्ष में चौल अधम फलदायी होता है ॥ १२-१३ ॥

---

१. मु० चि० ५ प्र० २९ श्लो० पी० टी० मनु के नाम से उद्धृत है।
२. ज्यो० नि० ११७ पृ० ३ श्लो०।
३. ज्यो० नि० ११७ पृ० ५ श्लो० में 'गर्भतः स्याद्वा दशमैकादशेऽपि वा' पाठ है।

बृहस्पतिः—

उत्तरायणगे सूर्ये विशेषात्सौम्यगोलके ।
अधिमासेतिनिंद्यः स्यात्संसर्पांहस्पती तथा ॥ १४ ॥

बृहस्पतिजी ने बताया है कि विशेषकर उत्तर गोल व उत्तर अयन में चौल का मुहूर्त शुभ होता है तथा अधिक मास और संसर्प अंहस्पति में अति निन्दनीय होता है ॥ १४ ॥

गुरुशुक्रौ सुदृश्येते यदातिस्फुटमंबरे ।
बालवृद्धात्वयं कालं प्रतीत्येव तयोर्द्वयोः ॥ १५ ॥
यस्याः क्रियायाः संप्रोक्तः कालो मासैर्दिनैरपि ।
तस्या न दोषमूढत्वं वक्रं वा जीवशुक्रयोः ॥ १६ ॥

गुरु व शुक्र के आकाश में स्पष्ट दिखाई देने पर उनके बालत्व व वृद्ध काल की दोनों की प्रतीति में करना, क्योंकि जिस कार्य का मास या दिवस में होना बताया गया है, उस काम में गुरु शुक्र का वक्र व मूढत्व दोष नहीं होता है ॥ १५–१६ ॥

वर्षसंख्याविधिः प्रोक्तः शुभेष्वेवाशुभस्तयोः ।
मूढतामारशत्रूणां ब्रह्मणा चोदिता स्वयम् ॥ १७ ॥

वर्ष कृत्यविधि में गुरु और शुक्र का शुभत्व ही शुभ माना गया है, उनकी मूढता वृद्धत्व या दुष्ट स्थान में स्थिति शुभ नहीं है । ऐसा ब्रह्माजी ने स्वयं कहा है ॥ १७ ॥

मूढत्व में अशुभता

देवानां स्थापने काले यज्ञादावथ नित्यके ।
राज्ञाभिषेके पूर्वं च तयोर्मौढ्यमशोभनम् ॥ १८ ॥

देवताओं के स्थापन समय, यज्ञादि, नित्यकर्म, राजा के अभिषेक के पूर्व गुरु-शुक्र का मूढत्व अशुभ होता है ॥ १८ ॥

नगरग्रामपूर्वाणांमालिकारंभणादिषु ।
गर्भन्यासादिनां चैव तयोर्मौढ्यमशोभनम् ॥ १९ ॥

नगर, गाँव, माला या महल के आरम्भ में, गर्भाधान में शुक्र-गुरु का मूढत्व अशुभ होता है ॥ १९ ॥

दक्षिणायनादि में निषेध

माहेश्वरः—

[1]चूडाकर्म नृपाभिषेकनिलयाग्न्याधानपाणिग्रहो
देवस्थापनमौंजिबंधनविधिः कुर्यान्न याम्यायने ।
देवेज्यास्फुजिते न चास्तमितयोर्वृद्धे च बाल्ये तयोः
केतावभ्युदिते तथा ग्रहणतो यावत्तिथिश्चाष्टमी ॥ २० ॥

१. मु० चिं० ५ प्र० २६ श्लो० पी० टी० ।

आचार्य माहेश्वर ने बताया है कि चूडाकर्म, राज्याभिषेक, गृहारम्भ, अग्न्याधान, विवाह, देवताओं की स्थापना और यज्ञोपवीत दक्षिणायन में तथा गुरु-शुक्र के अस्त, वृद्ध, बाल समय, केतु के उदय और ग्रहण के पश्चात् एक सप्ताह तक नहीं करना चाहिये ॥ २० ॥

रामः—

[१]ऋतुमत्याः सूतिकायाः सूनोश्चौलादि नाचरेत् ।
गर्भिण्यां मातरि शिशोः क्षौरकर्म न कारयेत् ॥ २१ ॥

रामदैवज्ञ ने बताया है कि शिशु की माता के रजस्वला होने पर तथा प्रसववती होने पर सन्तान के चौल, विवाहादि शुभ कार्य तथा माता के गर्भवती रहने पर शिशु का क्षौर कार्य नहीं करना चाहिये ॥ २१ ॥

विशेषतस्तु विवाहप्रकरणे द्रष्टव्यम् ।

इस विषय में विशेषता का अवलोकन विवाह प्रकरण में करना चाहिये ।

गर्भिणी रहने पर निषेध

[२]पुत्रचूडाकृतौ माता गर्भिणी यदि सा भवेत् ।
शस्त्रेण मृत्युमाप्नोति तस्मात्क्षौरं विवर्जयेत् ॥ २२ ॥

पुत्र के चौल संस्कार में यदि माता गर्भिणी है तो शस्त्र से मृत्यु पानेवाली होती है । इसलिए क्षौर नहीं करना चाहिये ॥ २२ ॥

नारदः—

[३]चूडाकर्म न कर्तव्यं यस्य माता तु गुर्विणी ।
करोति यदि मूढात्मा तदा गर्भस्य नो शुभम् ॥ २३ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि जिस बालक की माता गर्भिणी हो, उसका चौल संस्कार नही करना चाहिये ।

यदि कोई मूढ करता है तो गर्भ के लिए शुभकारी नहीं होता है ॥ २३ ॥

परिशिष्टे—

[४]माता कुमारमादायेत्युक्तं कात्यायनादिभिः ।
सा चेद्यदि सगर्भा स्यात्तदा चौलं न कारयेत् ॥ २४ ॥

कात्यायनादि परिशिष्ट में बताया है कि माता बालक को लेकर आवे, यह मां गर्भवती हो तो शिशु का चौल नहीं करना चाहिये ॥ २४ ॥

---

१. मु० चि० ५ प्र० ३३ श्लो० । २. ज्यो० नि० ११९ पृ० ५ श्लो० ।
३. ज्यो० नि० ११८ पृ० २ श्लो० अनाम से । ४. ज्यो० नि० ११८ पृ० ३ श्लों० ।

चूडामणौ—

[1]पुत्रचूडाकृतौ माता गर्भिणी यदि सा भवेत् ।
विपद्यते गुरुश्चैव दंपती चतुरब्दतः ॥ २५ ॥

चूडामणि में बताया है कि पुत्र के चौल संस्कार में यदि माता गर्भवती होती है तो चार वर्ष के अन्दर पिता या दम्पती का मरण होता है ॥ २५ ॥

गर्भे मातुः कुमारस्य न कुर्याच्चौलकर्म तु ।
पंचमासादधः कुर्यादत ऊर्ध्वं न कारयेत् ॥ २६ ॥

बालक की माता के गर्भवती होने पर शिशु का चौल संस्कार गर्भ के पाँच मास से कम होने पर करना और पाँच मास से ऊपर गर्भ हो तो कथमपि नहीं करना चाहिये ॥ २६ ॥

अस्यापवादः ।

इसके अपवाद को बताते हैं ।

नारदः—

[2]सूनोर्मातरि गर्भिण्यां चूडाकर्म न कारयेत् ।
पंचमाब्दादथोर्ध्वं तु गर्भिण्यामपि कारयेत् ॥ २७ ॥

ऋषि नारदजी ने बताया है कि बालक की माता को गर्भवती होने पर पाँच वर्ष तक के शिशु का चौल नहीं करना और बालक ५ वर्ष से अधिक हो तो गर्भिणी रहने पर भी करना चाहिये ॥ २७ ॥

ज्वरित में निषेध

गर्गः—

ज्वरमुत्पादनं यस्य लग्नं तस्य न कारयेत् ।
दोषनिर्गमनात्पश्चात्स्वस्थो धर्मं समाचरेत् ॥ २८ ॥

गर्गजी का कहना है कि जिसको ज्वर हो उसकी लग्न का विचार नहीं करना और जब ज्वर दूर हो जाय तब स्वस्थ होकर धर्म का आचरण करना चाहिये ॥ २८ ॥

चौल मुहूर्त

पराशरः—

[3]माघादिपञ्चके चौलं हित्वा क्षीणं विधुं मधुम् ।
क्रूरवारं तिथिं रिक्तां षष्ठीं संध्यां च जन्मभम् ॥ २९ ॥

ऋषि पराशर ने बताया है कि क्षीण चन्द्रमा, चैत्र, पापवार' रिक्ता व षष्ठी तिथि, सन्ध्या और जन्म नक्षत्र को छोड़कर माघादि पाँच (माघ, फागुन, वैशाख, जेठ, आषाढ) मासों में चौल संस्कार करना चाहिये ॥ २९ ॥

---

१. व०सं० २८ अ० ६ श्लो० 'दम्पती शिशुरब्दतः' पाठ है ।
२. मु० चि० ३१ श्लो० पी० टी० ।
३. ज्यो० नि० ११७ पृ० २ श्लो० नारद के नाम से उद्धृत है ।

चौल का निषेध

चूडामणौ—

न जन्ममासे न च जन्मभे तथा विधौ विरुद्धेऽशुभतारकासु ।
युग्माब्दमासे न च कृष्णपक्षे चूडा न कार्या खलु चैत्रमासे ॥ ३० ॥

चूडामणि में कहा है कि जन्म मास व नक्षत्र, विपरीत चन्द्र, अशुभ तारा, समवर्ष तथा मास, कृष्ण पक्ष और चैत के महिने में चौल संस्कार नहीं करना चाहिये ॥३०॥

क्षौरं च व्रतबन्धं च विद्यारम्भस्तथैव च ।
गलग्रहे न कर्तव्यं यदिच्छेत्पुत्रजन्मनि ॥ ३१ ॥

क्षौर, जनेऊ, विद्यारम्भ गलग्रह में नहीं करना चाहिये ॥ ३१ ॥

षष्ठयष्टमीद्वादशीषु रिक्तापर्वावमेषु च ।
गलग्रहे च भद्रायां क्षुरकर्म न कारयेत् ॥ ३२ ॥

६।८।१२ रिक्ता, पर्व, अवम तिथि, गलग्रह तथा भद्रा में क्षुरकर्म अर्थात् क्षौर नहीं करना चाहिये ॥ ३२ ॥

चौल में शुभाशुभ पक्ष

बृहस्पतिः—

शुक्लपक्षे शुभं प्रोक्तं कृष्णपक्षे शुभेतरम् ।
अशुभोंत्यत्रिभागः स्यात्कृष्णपक्षे निराकृते ॥ ३३ ॥

बृहस्पतिजी ने बताया है कि चौल शुक्ल पक्ष में शुभ और कृष्ण पक्ष में अशुभ तथा अशुभ भी कृष्ण पक्ष के अन्तिम तृतीय भाग में कृष्ण पक्ष की एकादशी से अमा तक अशुभ होता है ॥ ३३ ॥

शुभ क्षौर तिथि

मनुः—

द्वितीया च तृतीया च पञ्चमी दशमी नृणाम् ।
एकादशी द्वादशी च प्रशस्ता क्षौरकर्मणि ॥ ३४ ॥

ऋषि मनु ने बताया है कि २।३।५।१०।११।१२ तिथियाँ क्षौर में शुभ होती हैं ॥ ३४ ॥

वसिष्ठः—

द्वित्रिपञ्चमसप्तम्यामेकादश्यां तथैव च ।
दशम्यां च त्रयोदश्यां कार्यं क्षौरं विजानता ॥ ३५ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि २।३।५।७।१०।११।१३ में क्षौर करना चाहिये ॥३५॥

वसिष्ठ संहिता में कहा है 'पञ्चमी सप्तमी चैव दशम्येकादशी तथा । त्रयोदशी तृतीया च चौलकर्मणि शोभना' (२८ अ० १० श्लो०) ॥ ३५ ॥

सूर्यादिवार में चौल का फल

चण्डेश्वरः—

आयुःक्षयं प्रकुरुते दिनकृद्दिने च दोषापतेरपि सुखानि च दीर्घमायुः।
पृथ्वीसुतस्य च सुरैरपि रक्षितानां क्षौरं करोति निधनं न चिरान्नराणाम् ॥३६॥
आरोग्यमिदुजदिने चिरजीवितश्च जीवस्य जीवितमति प्रबलं बलं च।
नानाविधं विषयभोगसुखं सितस्य मन्दस्य मुण्डनविधौ विभवप्रणाशः ॥३७॥

श्री चण्डेश्वरजी का कहना है कि सूर्यवार में चौल कराने से आयु का क्षय, चन्द्रवार में सुख व दीर्घायु, भौमवार में देवताओं से रक्षित होने पर भी शीघ्र मरण, बुधवार में अधिक समय तक जीवन, गुरु में बली होकर जीवन, शुक्रवार में नाना प्रकार के विषय भोगों से सुखी और शनिवार में चौल कराने से ऐश्वर्य का नाश होता है ॥ ३६–३७ ॥

वासं हरेत्क्षौरमिहायुषोर्कः शनैश्चरः पञ्चकुजस्तथाष्टौ।
आचार्यभृग्विदुबुधाः क्रमेण दध्युर्दशैकादशसप्तमं च ॥ ३८ ॥

सूर्यवार के दिन क्षौर करने पर आयु का एक दिन, शनि ५ दिन और मंगल ८ दिन हरण कर लेता है अर्थात् इन वारों में क्षौर करने से इतनी आयु कम हो जाती है। बृहस्पति, शुक्र, चन्द्र और बुध क्रम से १०, १०, ११ और ७ दिन आयु को बढ़ाते हैं ॥ ३८ ॥

शुभाशुभ चौल में वार

गुरुः—

पापग्रहाणां वाराश्च निन्दिताः क्षुरकर्मणि।
शुभग्रहाणां ये वारास्ते पूज्या ब्रह्मणोदितम् ॥ ३९ ॥

बृहस्पतिजी ने बताया है कि क्षौर कार्य में पाप ग्रहों के वार निन्दित और शुभग्रहों के वार श्रेष्ठ होते हैं। ऐसा ब्रह्मा ने कहा है ॥ ३९ ॥

[1]बुधवारः शुभः प्रोक्तः पापग्रहयुते बुधे।
सोमवारः सिते पक्षे पूज्यः कृष्णेतिगर्हितः ॥ ४० ॥

बुधवार के दिन पाप ग्रह से युत बुध होने पर भी क्षौर शुभ और शुक्ल पक्ष में सोमवार के दिन श्रेष्ठ तथा कृष्णपक्ष में सोमवार में क्षौर अति अशुभ होता है ॥ ४० ॥

चौल में विहित नक्षत्र

नक्षत्रेषु करक्षपाकरगुरुज्येष्ठाधनिष्ठाश्विनीपौष्णा-
दित्यनिलर्क्षवारुणहरित्वाष्ट्रेषु शस्ते क्षणे।
कर्तव्यं क्षणदाकरे बलवति क्षौरं सुतारान्विते
प्रोक्तर्क्षेपि नवे हि पक्षविरतौ कुर्यान्न रिक्ते तिथौ ॥ ४१ ॥

---

१. ज्यो. नि. ११७ पृ. ७ श्लो.।

हस्त, मृगशिरा, पुष्य, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, अश्विनी, रेवती, पुनर्वसु, स्वाती, शतभिषा, श्रवण, चित्रा नक्षत्र में, प्रशस्त, प्रबल क्षण में सुन्दर तारा में चौल करना और पक्ष के अन्त वाली तथा रिक्ता तिथियों में नहीं करना चाहिये ॥ ४१ ॥

राजमार्तंडे —

पौष्णाश्वितिष्यवसुवासववासुदेववातार्कचन्द्रवरुणादितिचित्रभेषु ।
वारेषु सोमबुधवाक्पतिभार्गवानां क्षौरं हितं शुभफलं शुभतारकासु ॥४२॥

राजमार्तण्ड में बताया है कि रेवती, अश्विनी, पुष्य, धनिष्ठा, श्रवण, स्वाती, हस्त, मृगशिरा, शतभिषा, पुनर्वसु, चित्रा नक्षत्र में, सोम, बुध, गुरु, शुक्रवार और शुभतारा में क्षौर शुभफलदायी होता है ॥ ४२ ॥

शुभाशुभ कथन

बृहस्पतिः—

नक्षत्राणां तथा तेषामश्विन्याद्यं पृथक् पृथक् ।
शुभाशुभफलं वक्ष्ये नवक्षौरे न वानवे ॥ ४३ ॥

बृहस्पतिजी कहते हैं कि मैं अब अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रों में नवीन क्षौर कराने के शुभाशुभ फल को कहता हूँ अर्थात् प्रथम क्षौर में ही यह नक्षत्रोक्त फल होगा न कि बार-बार के क्षौर में ॥ ४३ ॥

अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी में क्षौर का फल

अश्विन्यां तुष्टिमाप्नोति भरण्यां मरणं भवेत् ।
कृत्तिकासु क्षयो रोगो रोहिण्यां रोगनाशनम् ॥ ४४ ॥

बृहस्पतिजी ने बताया है कि अश्विनी में क्षौर कराने से प्रसन्नता, भरणी में मरण, कृत्तिका में क्षयरोग और रोहिणी में रोग का नाश होता है ॥ ४४ ॥

मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य में क्षौर का फल

सौभाग्यवृद्धिः सौम्ये स्यादार्द्रे वित्तस्य नाशनम् ।
पराक्रमं पुनर्वस्वोः पुष्ये मानार्थसिद्धये ॥ ४५ ॥

मृगशिरा में क्षौर से सौभाग्य की वृद्धि, आर्द्रा में धन का नाश, पुनर्वसु में पराक्रम और पुष्य में क्षौर कराने से सम्मान व धन की वृद्धि होती है ॥ ४५ ॥

आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी में क्षौर का फल

सार्पे शरीरपीडा स्याद्धननाशश्च पैतृके ।
व्याधयो बहवो भाग्ये फाल्गुने रोगनाशनम् ॥ ४६ ॥

आश्लेषा में शरीर कष्ट, मघा में धन नाश, पूर्वाफाल्गुनी में अनेक व्याधि और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में क्षौर कराने से रोग का नाश होता है ॥ ४६ ॥

हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा में क्षौर का फल

तेजोवृद्धिश्च हस्ते स्यात्सौभाग्यं त्वाष्ट्रभे भवेत् ।
स्वात्यां दुःखविनाशः स्यादिद्राग्नेरतुविनाशनम् ॥ ४७ ॥

हस्त में क्षौर कराने से तेज की वृद्धि, चित्रा में सौभाग्य, स्वाती में दुःख का नाश, विशाखा में विनाश होता है ॥ ४७ ॥

अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा में क्षौर का फल

मैत्रे मित्रविरोधः स्याज्ज्येष्ठायां भूतिनाशनम् ।
समूलनाशनं मूले पूर्वाषाढे च पूर्ववत् ॥ ४८ ॥

अनुराधा में मित्रों से विरोध, ज्येष्ठा में ऐश्वर्य का नाश, मूल और पूर्वाषाढा में क्षौर कराने से समूलनाश होता है ॥ ४८ ॥

उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा में क्षौर का फल

सौम्यमत्युत्तराषाढे वैष्णवे रूपशोभनम् ।
वासवे ह्यायुषो वृद्धिर्वारुणे बलवर्द्धनम् ॥ ४९ ॥

उत्तराषाढ में सरल स्वभाव, श्रवण में सुन्दरता, धनिष्ठा में आयु की वृद्धि और शतभिषा में क्षौर कराने से बल की वृद्धि होती है ॥ ४९ ॥

पू०, भा०, उ०, भा०, रेवती में क्षौर का फल

पूर्वप्रोष्ठपदे मृत्युरहिर्बुध्न्ये सुखावहः ।
पौष्णे स्यान्महती वृद्धिरेवं क्षौरे फलं क्रमात् ॥ ५० ॥

पूर्वाभाद्रपद में मृत्यु, उत्तराभाद्र पद में सुख और रेवती में क्षौर कराने से अत्यधिक वृद्धि होती है ॥ ५० ॥

क्षौर कर्म में शुभ तारा

[1]संपदि क्षेमभे मैत्रे साधकेभेतिमैत्रके ।
क्षुरकर्म प्रशस्तं स्याच्छोभनांशगते विधौ ॥ ५१ ॥

संपत्, क्षेम, मैत्र, साधक, अतिमैत्रक ताराओं में तथा शुभ नवांशस्थ चन्द्रमा में भी क्षौर कार्य शुभ होता है ॥ ५१ ॥

अशुभ ताराओं में त्याज्य अंश

[2]आद्यंशो विपदि त्याज्यः प्रत्यरी चरमांशकः ।
वधे त्याज्यः तृतीयांशः शेषांशा अपि शोभनाः ॥ ५२ ॥

विपत् तारा में पहला अंश, प्रत्यरि में अन्तवाला, वध में तृतीयांश का त्याग करना चाहिये । उक्त ताराओं के शेष भाग भी शुभ होते हैं ॥ ५२ ॥

---

१. ज्यो. नि. ११७ पृ. ११ श्लो. । २. ज्यो. नि. ११७ पृ. १२ श्लो. ।

लग्न व अष्टमस्थ तथा चन्द्र राशि से अष्टमस्थ चन्द्र का त्याग

जन्माष्टमे विधौ याति क्षौरमायुःक्षयाय च ।
तस्माच्चन्द्राष्टमं वर्ज्यं सर्वथा क्षुरकर्मणि ॥ ५३ ॥

जन्म लग्नस्थ व लग्न से अष्टम राशिस्थ चन्द्र में क्षौर कराने से आयु का क्षय होता है । इसलिये चन्द्र से अष्टमस्थ का त्याग क्षौर में सर्वथा करना चाहिये ॥ ५३ ॥

क्षौर में श्रेष्ठ राशियां

आर्कोकेरश्च मत्स्यश्च बुधशुक्रेन्दुराशयः ।
क्षुरकर्मणि पूज्याः स्युः ग्रहाणां च स्वभावतः ॥ ५४ ॥

मकर, मीन, मिथुन, कन्या, वृष, तुला और कर्क राशि ग्रहों के स्वभाववश क्षौर कर्म में श्रेष्ठ होती है ॥ ५४ ॥

व्याधिशोकप्रदौ सिंहवृश्चिकौ क्षुरकर्मणि ।
अतीवदुःखदो मेषश्चापो राजभयप्रदः ॥ ५५ ॥
कुम्भः कुलविनाशाय कथितः क्षुरकर्मणि ।
शुभैर्युक्तोपि दृष्टोपि न शुभः कुम्भधृग्ग्रहः ॥ ५६ ॥

क्षौर कर्म में सिंह, वृश्चिक राशि, व्याधि व शोक को देनेवाली मेष अति दुःखदायिनी, धनु राजभयदाता और कुम्भ राशि कुल का विध्वंस करनेवाली होती है । शुभ ग्रह से दृष्ट या युक्त कुम्भ को धारण करनेवाला ग्रह शुभ नहीं होता है ॥५५–५६॥

लग्न शुद्धि

चण्डेश्वरः—
क्षौरर्क्षे स्वकुलोद्भवेन विधिना चूडा विधेयाबुधै-
र्लग्नस्थे भृगुजे चतुष्टयगते जीवेथवा बोधने ।
मन्दार्कावनिनन्दनैश्च शशिना क्षीणेन युक्तेषु च
लाभारातितृतीयभेषु विहिते लग्नोद्गमे सर्वदा ॥ ५७ ॥

आचार्य चण्डेश्वरजी ने बताया है कि क्षौर के नक्षत्र में अपनी वंश परम्परा के अनुसार चूड़ा कर्म करना चाहिये । चौल लग्न में शुक्र तथा केन्द्र में गुरु या बुध के रहने पर और शनि, सूर्य, मंगल, क्षीण चन्द्रमा के ११।६।३ में रहने पर अर्थात् उक्त योगों से युक्त लग्न में सर्वदा करना चाहिये ॥ ५७ ॥

लग्न योग

बृहस्पतिः—
[1]अष्टमस्था ग्रहाः सर्वे नेष्टाः शुक्रविवर्जिताः ।
शुक्रो निधनगः क्षौरे सर्वसंपत्प्रदः शिशोः ॥ ५८ ॥

---

१. मु. चि. ५ प्र. २९-३० श्लो. पी. टी. ।

श्री बृहस्पतिजी ने बताया है कि क्षौर में शुक्र को छोड़कर समस्त ग्रह लग्न से अष्टम अशुभ होते हैं। शुक्र अष्टम भाव में सब सम्पत्तियों को देनेवाला होता है ॥ ५८ ॥

त्रिकोणकंटके वापि सत्कर्मणि रते विधौ।
गुरुर्वातिबली प्रोक्तः क्षौरयोगः शुभावहः ॥ ५९ ॥

कर्म स्थान में शुभ चन्द्रमा ५।९ या १।४।७।१० में अधिक बली गुरु हो तो क्षौर सुखदायी होता है ॥ ५९ ॥

सिते पक्षे विधौ पूर्णे भवेल्लग्नाद्ग्रहो बली।
लग्नस्थोपचये नाथे चूडायोगः शुभावहः ॥ ६० ॥

शुक्ल पक्ष पूर्ण चन्द्रमा में लग्न से बली ग्रह चन्द्रमा और उपचय का स्वामी लग्न में हो तो क्षौर कर्म में चूडायोग शुभदायी होता है ॥ ६० ॥

गुरुर्भृगुर्वा चन्द्रो वा शुभांशस्थो बलान्वितः।
यदोपचयगो लग्नात्क्षौरयोगः शुभावहः ॥ ६१ ॥

गुरु वा शुक्र वा चन्द्रमा शुभ ग्रह के नवांश में बली लग्न से उपचय में होने पर क्षौर योग शुभ फलदाता होता है ॥ ६१ ॥

लग्नेन्दुराशिनाथौ द्वौ भवनाथयुतेक्षितौ।
भवेत्कश्चिद्बली स्वार्थे चूडायोगः शुभावहः ॥ ६२ ॥

लग्नेश व चन्द्र राशीश एकादशेश से दृष्ट या युक्त हों तथा कोई बली ग्रह लग्न से दूसरे भाव में होने पर चूडायोग शुभसूचक होता है ॥ ६२ ॥

मीनशुक्रेण लग्नस्थो भवे भानौ चतुष्टये।
गुरौ याते वरो योगः शुभदः क्षुरकर्मणि ॥ ६३ ॥

मीन लग्न में शुक्र, ग्यारहवें सूर्य और केन्द्र में गुरु के रहने पर क्षौर कार्य में श्रेष्ठ शुभ योग होता है ॥ ६३ ॥

घटे सशुक्रे लग्नस्थे सबुधे व्ययगे रवौ।
त्रिकोणगे गुरौ चन्द्रे चूडायोगोयमुत्तमः ॥ ६४ ॥

कुम्भ लग्न में शुक्र, बारहवें सूर्य, बुध और त्रिकोण में गुरु चन्द्रमा के रहने पर उत्तम चूडायोग होता है ॥ ६४ ॥

मीने मेषे वृषे लग्ने ससिते भवगे रवौ।
बुधोदये च योगाः स्युश्चूडाकर्मणि शोभनाः ॥ ६५ ॥

शुक्र के साथ बुध मीन या मेष या वृष लग्न में हो तथा ग्यारहवें भाव में सूर्य हो तो चूडा कार्य में शुभ होता है ॥ ६५ ॥

[1]यमे कर्किणि सिंहेन सहिते भृगुजे बुधे।
रवौ भवे व्यये वापि योगः क्षौरे शुभावहः ॥ ६६ ॥

---

१. ज्यो. नि. ११८ पृ.।

कर्क में शनि, सिंह में शुक्र, बुध और ग्यारहवें या बारहवें सूर्य हो तो क्षौर में शुभ फलदाता होता है ॥ ६६ ॥

भवव्ययोदये भानुः बुधशुक्रौ यदा स्थितौ ।
चन्द्रे शुभांशके केन्द्रे चूडायोगः शुभावहः ॥ ६७ ॥

ग्यारहवें बारहवें लग्न में सूर्य, शुक्र, बुध हो तथा शुभ ग्रह के नवांश में चन्द्रमा केन्द्र में हो तो शुभावह चूडा योग होता है ॥ ६७ ॥

त्रिषडायेषु पापेषु शुभाः केन्द्रत्रिकोणयोः ।
एको द्वौ वा यथालाभं चूडायोगः शुभावहः ॥ ६८ ॥

३।६।११ में पाप ग्रह और केन्द्र व त्रिकोण में शुभ ग्रह एक या दो या जितने प्राप्त हों तो चूडा योग शुभावह होता है ॥ ६८ ॥

क्षौरे स्मरस्थौ भौमार्कौ मृत्युदं नियतं शिशोः ।
यमो भाग्यविनाशाय सर्वनाशाय भार्गवः ॥ ६९ ॥

क्षौर लग्न से सप्तम में मंगल, सूर्य होने पर क्षौर कर्ता की मृत्यु निश्चय करते हैं। और शनि भाग्य का नाश एवं लग्न से सप्तमस्थ शुक्र समस्त नाशक होता है ॥६९॥

स्मरे ज्ञचन्द्रजीवाः स्युः क्षौरे संपद्विवृद्धये ।
राहुकेतू स्मरस्थाने सर्वकार्यविनाशनौ ॥ ७० ॥

लग्न से सप्तम में बुध, चन्द्र, गुरु क्षौर में सम्पत्ति की वृद्धि करने वाले और सप्तमस्थ राहु, केतु सब कार्यों के नाशक होते हैं ॥ ७० ॥

[1]पापग्रहाणां वारादौ विप्राणां तु शुभो रवेः (विः ?) ।
क्षत्रियाणां क्षमासूनुर्विट्शूद्राणां शनिः शुभः ॥ ७१ ॥

पाप ग्रहों के वारों में ब्राह्मणों के लिये रविवार, क्षत्रियों के लिये मंगल और वैश्य शूद्रों को शनिवार शुभ होता है ॥ ७१ ॥

विशेष—पीयूषधारा में 'ग्रहाणां वारेऽपि' यह पाठान्तर है ॥ ७१ ॥

कालवश क्षौर का त्याग

संध्ययोर्निशि निर्वेशः प्रवेशः क्षुरकर्मजः ।
प्रधानं चैव वर्ज्याः स्युस्तैलाभ्यंगं विशेषतः ॥ ७२ ॥

दोनों सन्ध्या व रात्रि में उपभोग, प्रवेश, क्षौर का मुख्यतया तथा विशेषता से तेल मालिस का त्याग करना चाहिए ॥ ७२ ॥

निषिद्ध नक्षत्र

श्रीपतिः—

[2]षट्कृत्तिका पञ्च मघास्त्रिमैत्रो ब्रह्म्याष्टको यश्चतुरुत्तराश्च ।
क्षौरं सवर्षं चतुराननोपि न प्राणतीति प्रकटप्रवादः ॥७३॥

---

१. ज्यो. नि. ११७ पृ. ८ श्लो । २. ज्यो. नि. ११७ पृ. १० श्लो. ।

आचार्य श्रीपतिजी ने बताया है कि ६ बार कृत्तिका में, पाँच बार मघा में, तीन बार अनुराधा में, आठ बार रोहिणी में और चार बार उत्तरा में क्षौर कराने पर, ब्रह्मा होने पर भी एक साल तक जीवन यापन नहीं होता है। ऐसा लोक में प्रसिद्ध है ॥७३॥

नृपों के क्षौर का दिन

गर्गः—

क्षौरकर्म महीशानां पञ्चमे पञ्चमेऽहनि।
कर्तव्यं क्षौरनक्षत्रेष्वथवा तन्मुहूर्तके ॥ ७४ ॥

गर्गाचार्यजी ने बताया है कि राजाओं को पाँचवें-पाँचवें दिन या क्षौर नक्षत्रों में क्षौर करना चाहिए ॥ ७४ ॥

राज्ञः कुर्यात्पंचमे पञ्चमेऽह्नि क्षौरर्क्षे वा श्मश्रुकर्मोदये वा।
त्यक्त्वा ताराः पञ्चसप्तत्रिपूर्वाः यात्राकाले नैव कार्यं न युद्धे ॥७५॥

राजाओं को पाँचवें-पाँचवें दिन या क्षौर नक्षत्र या श्मश्रु कार्योक्त नक्षत्रों में ३।५।७ वीं ताराओं को छोड़कर क्षौर करना चाहिये। यात्रा समय व युद्ध में क्षौर नहीं करना चाहिए ॥ ७५ ॥

चन्द्र व तारा शुद्धि के अभाव में क्षौर का विधान

चन्द्रशुद्धिर्यदा नास्ति तारायाश्च विशेषतः।
अक्षौरभेपि कर्तव्यं वारेण बुधसोमयोः ॥ ७६ ॥
प्राचीमुखः सौम्यमुखोपि भूत्वा कुर्यान्नरः क्षौरमनुत्कटस्वः ॥७७॥

श्री गर्गाचार्यजी का कथन है कि जब चन्द्र व तारा शुद्धि न प्राप्त हो तो अक्षौर के नक्षत्र में भी बुध व चन्द्रवासर के दिन क्षौर पूर्व मुख या उत्तर मुख होकर क्षौर कराना चाहिये ॥ ७६–७७ ॥

बिना मुहूर्त के क्षौर का विधान

नृपाज्ञया ब्राह्मणसंगतौ च बद्धस्य मोक्षे क्रतुदीक्षणे च।
विवाहकाले मृतसूतके च सर्वेषु शस्तं क्षुरकर्मभेषु ॥ ७८ ॥

राजा की आज्ञा से या विप्र कथन से, जेल से मुक्त होने पर, यज्ञ व दीक्षा एवं विवाह के समय और मृताशौच की निवृत्ति होने पर समस्त नक्षत्रों में क्षौर कर्म शुभ होता है ॥ ७८ ॥

[1]नृपविप्राज्ञया यज्ञे मरणे बंधमोक्षणे।
उद्वाहेऽखिलवारर्क्षतिथिषु क्षौरमिष्टदम् ॥ ७९ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि राजा की आज्ञा से, मरण में, बन्धन से मुक्त होने पर, विवाह में समस्त वार, नक्षत्र, तिथियों में क्षौर इष्ट फलदायी होता है ॥ ७९ ॥

१. मु० चि० ५ पृ० ३५ श्लो० पी० टी०।

पुनः प्रकारान्तर से

वृहस्पतिः—

राजाज्ञया च दीक्षायां प्रत्यये रोगपीडिते ।
क्षुरकर्मणि कर्तव्या नास्ति कालविधिर्नृणाम् ॥ ८० ॥

वृहस्पति जी ने बताया है कि राजा की आज्ञा से, दीक्षा में, प्रत्यय में, रोगी होने के बाद समय की विधि अर्थात् मुहूर्त की आवश्यकता नहीं होती है ॥ ८० ॥

शुभकाल की आवश्यकता का अभाव

[1]राजकार्ये नियुक्तानां नटानां रूपजीविनाम् ।
श्मश्रुरोमनखच्छेदे नास्ति कालविशेषता ॥ ८१ ॥

जो कि राजकीय काम में नियुक्त हो व स्वरूप से जीवन यापन कर्ता नटों के लिए दाढ़ी, रोम, नाखून कटवाने के प्रयोजन से काल की आवश्यकता नहीं होती है ॥८१॥

मृते च सूतके चैव व्रतान्ते निष्कृति तथा ।
विवाहे द्वादशाहे वा सीमन्ते राजशासने ॥ ८२ ॥
क्षौरं सद्यः प्रयुंजीत देहरंगोपजीविनाम् ।
एवं भूतेषु चान्येषु प्राप्ते त्वावश्यकेष्वपि ॥ ८३ ॥

मरण, सूतक, व्रत के अन्त, प्रायश्चित्त, विवाह, द्वादशाह, सीमन्त, राजकीय शासन और शरीर की शोभा से जीविका चलाने में, तथा अन्य उक्त प्रकार के सदृश आवश्यक काम में क्षौर जल्दी करना चाहिये ॥ ८२–८३ ॥

कारणवश क्षौर

क्षौरेषु कालो नापेक्ष्यो वज्रिन् कर्तव्यतां ययुः ।
चिरं विभ्रन्ति ये केशान् श्मश्रूंस्ते ब्रह्मचारिणः ॥ ८४ ॥
कारणे सति कुर्वन्ति क्षौर हि परमायुषः ।
दर्शे च पौर्णमास्यां च द्वादश्यां सोमपः शुभः ॥ ८५ ॥
अस्यैव रात्रौ कर्तव्यमन्येषां च विवर्जयेत् ॥ ८६ ॥

क्षौर में काल की आवश्यकता नहीं होती किन्तु कर्तव्यतावश क्षौर कराने का विधान है। ब्रह्मचारी लोग अधिक समय तक बाल और दाढ़ी रखते हैं। वृद्ध लोग कारण वश क्षौर कराते हैं। सोमयाजी लोग अमा, पूर्णिमा व द्वादशी में कराते हैं। सोमपायियों को ही रात्रि में क्षौर शुभ होता है ॥ ८४–८६ ॥

५० वर्ष के पश्चात् इच्छा से क्षौर का विधान

पंचाशद्वायनात्पूर्वं क्षौरं नैमित्तिकं विना ।
कुर्यान्निरस्तदूर्ध्वं तु स्वेच्छया वपनं चरेत् ॥ ८७ ॥

---

१. ज्यो० नि० १२० पृ० ९ श्लो० ।

शुद्धानि यानि मुनिभिः क्षौरं धिष्ण्यानि संप्रदिष्टानि ।
दंतनखकूर्चवपने प्रोक्तानि शुभानि तान्येव ॥ ८८ ॥

५० वर्ष के पहले बिना कारण क्षौर नहीं कराना और ५० वर्ष की अवस्था के बाद इच्छा होने पर कभी भी क्षौर कराना चाहिये । ऋषियों ने जिन क्षौर के शुभ नक्षत्रों को कहा है वे ही नक्षत्र दांत साफ करने में व बाल नाखून कटाने में शुभ होते हैं ॥ ८७–८८

क्षौर का निषेध

न स्नातमात्रगमनोत्सुकभूषिताना-
मभ्यक्तभुक्तरणकालनिवेशितानाम् ।
संध्या निशा कुजदिने च तिथौ च रिक्ते
क्षौरं हितं न नवकेऽह्नि न चापि विष्ट्याम् ॥ ८९ ॥

स्नान के बाद, यात्रा में, अलंकृत होकर, तेल मालिश के बाद भोजन करके, रणोन्मुख, सन्ध्या, रात, मंगलवार, रिक्ता तिथि, नवम दिन, भद्रा में क्षौर शुभ नहीं होता है ॥ ८९ ॥

नारदः—
[1]अभ्यक्तं संध्ययोर्नीत निशि भुक्ते न चाहवे ।
नोत्कटे भूषिते नैव याने न नवमेऽह्नि च ॥ ९० ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि उबटन करने के बाद, दोनों सन्ध्याओं के अन्त में, भोजन के पश्चात्, रात, उत्कटता, युद्धोन्मुख, अलङ्कृत होकर, यात्रा, नवम दिन में क्षौर नहीं कराना चाहिये ॥ ९० ॥

श्मश्रु कर्म निषेध

भद्रापक्षांतरिक्ता व्रतदिनवसुभूश्राद्धषष्ठीषु रात्रौ
संध्यापातारभास्वत्शनिषु घटधनुःकर्ककन्यागतेर्के ।
जन्मर्क्षे जन्ममासे सुरदिनयजने भूषितो ग्रामयायो
भुक्तोभ्यक्तोभिषिक्तः समदिन रजिगः श्मश्रुकार्यं न कुर्यात् ॥ ९१ ॥

भद्रा, पक्षान्त, रिक्ता, व्रत दिन, अष्टमी, प्रतिपदा, श्राद्ध, षष्ठी, रात, सन्ध्या, व्यतीपात, मङ्गल, सूर्य, शनिवार, 'कुम्भ, धनु, कर्क, कन्यागत सूर्य में जन्म के नक्षत्र व मास, देव पूजन में, विभूषित, ग्राम गमन, भुक्त, अभ्यक्त, अभिषिक्त; सम दिन में श्मश्रु कार्य नहीं करना चाहिये ॥ ९१ ॥

चूडा करण व क्षौर में मन्त्र का स्मरण

चूडाकरणे क्षौरे च मन्त्रस्मरणम् ।
केशवमानर्तपुरं पाटलिपुत्रं पुरीमहच्छत्रम् ।
दितिरदितीच स्मरतः क्षौरविधौ भवति कल्याणम् ॥ ९२ ॥

१. ज्यो० नि० ११८ पृ० ३० श्लो० ।

चूडा करण व क्षौर में केशव, आनर्तपुर, पाटलिपुत्र, पुरीमहच्छत्र दिति और अदिति का स्मरण करने से कल्याण होता है ।। ९२ ।।

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनज्योतिर्वित्कृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरंजने संस्कारोक्तं पञ्चषष्टितमं चूडाप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र पं० ज्योतिषी रामदीनजी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक सङ्ग्रह ग्रन्थ का ६५वां प्रकरण समाप्त हुआ ।।६५।।

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पण्डित केशवदेवचतुर्वेदात्मज-मुरलीधरचतुर्वेदकृता बृहद्दैवज्ञरञ्जनसंग्रहग्रन्थस्य पञ्चषष्टितमचूडाप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्णा ।। ६५ ।।

अथ षट्षष्टितमं दन्तधावनप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे छियासठवें प्रकरण में दाँत कब और किस वस्तु से साफ करने चाहिये इसे विविध ग्रन्थों के वाक्यों से बताते हैं ।

दाँत धोने का मुहूर्त

बृहस्पतिः—

अथानन्तरमुक्तं हि दन्तधावनकर्मणः ।
पञ्चमे सप्तमेब्दे वा स्त्रियः पुंसोऽथवा समे ।। १ ।।

बृहस्पतिजी ने बताया है कि इसके अनन्तर कहा है दाँत धोने रूपी काम का समय वह यह है कि स्त्री पुरुषों को पाँचवें या सातवें या सम वर्ष में दाँत साफ करना चाहिये ।। १ ।।

दन्ता नित्यं सुधाख्यास्युर्यतिभिः सोमयाजिभिः ।
एतैस्तु शुक्रवारे वा भानुवारेन्दुयोरपि ।। २ ।।

सोमयाजी यति (मुनि) यों के दाँत प्रतिदिन साफ रहते हैं । ये लोग शुक्र या सूर्य या सोमवार को साफ करते हैं ।। २ ।।

नक्षत्रे विषता न स्याद्दंतधावनकारिणः ।
पक्षयोगास्तथा नैव विशेषाद्दंतधावने ।। ३ ।।

अपने जन्म के नक्षत्र में दाँत साफ करने से विपत्ति नहीं होती तथा दाँत धोने में विशेष कर पक्षादि योग नहीं होते हैं ।। ३ ।।

नारदः—

दर्शषष्ठ्यां प्रतिपदि द्वादश्यां प्रतिपर्वसु ।
प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु न कदाचिद्दंतधावनम् ।। ४ ।।

ऋषि नारदने बताया है कि अमा, षष्ठी, प्रतिपदा, द्वादशी में कभी दाँत साफ नहीं करना चाहिये ॥ ४ ॥

विशेष—पद्य में १, ३०, ६, पुनरुक्त है ॥ ४ ॥

चन्द्रोदये विष्णुः—

प्रतिपद्दर्शषष्ठोषु चतुर्दश्यष्टमीषु च।
नवम्यां भानुवारे च दन्तकाष्ठं विवर्जयेत् ॥ ५ ॥

चन्द्रोदय में विष्णु आचार्य ने बताया है कि प्रतिपदा, अमा, षष्ठी, चतुर्दशी, अष्टमी, नवमी व सूर्य वार में काष्ठ से दाँत साफ नहीं करना चाहिए ॥ ५ ॥

दर्शषष्ट्यां प्रतिपदि द्वादश्यां प्रतिपर्वसु।
नवम्यां न च कुर्वीत कदाचिद्दन्तधावनम् ॥ ६ ॥

अमा, षष्ठी, प्रतिपदा, द्वादशी, प्रत्येक पर्व तिथि, नवमी में कभी भी दाँत साफ नहीं करना चाहिये ॥ ६ ॥

नारदः—

चतुर्दश्यष्टमी पौर्णमासीसंक्रमणेषु च।
नन्दासु च नवम्यां च दन्तकाष्ठं विवर्जयेत् ॥ ७ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि चौदस, अष्टमी, पूर्णिमा, संक्रान्ति, नन्दा तिथि और नवमी में लकड़ी से दाँत साफ नहीं करना चाहिये ॥ ७ ॥

तेलादि विशेष का त्याग

श्राद्धे यज्ञे च नियमे तथा प्रोषितभर्तृका।
व्यतीपाते च संक्रांत्यां नन्दाभूताष्टपर्वसु ॥ ८ ॥
तैलं क्षौरं रतिं मांसं दन्तकाष्ठं विवर्जयेत् ॥ ९ ॥

श्राद्ध, यज्ञ, नियम (व्रत), पति के परदेश में रहने पर, व्यतीपात, संक्रान्ति, नन्दा, चतुर्दशी, अष्टमी व पर्व तिथियों में तेल, क्षौर, मैथुन, माँस व लकड़ी से दाँत साफ नहीं करना चाहिये ॥ ८–९ ॥

दांने का निषेध

वसिष्ठः—

शन्यर्कशुक्रवारेषु कुजाहे व्रतवासरे।
जन्माहे श्राद्धदिवसे दन्तकाष्ठं विवर्जयेत् ॥ १० ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि शनि, सूर्य, शुक्र, मङ्गलवार, व्रत दिन, जन्म दिन, माता-पिता के श्राद्ध दिन में लकड़ी से दाँत साफ नहीं करना चाहिये ॥ १० ॥

पांच पर्व तिथि ज्ञान

चतुर्दश्यष्टमी कृष्णा त्वमावस्या च पूर्णिमा।
पुण्यानि पञ्च पर्वाणि रविसंक्रातिरेव च ॥ ११ ॥

ऋषि वसिष्ट ने बताया है कि कृष्णपक्ष की चौदस, व अष्टमी, अमा, पूर्णिमा और सूर्य संक्रान्ति ये पाँच पर्व तिथियाँ होती है ॥ ११ ॥

पञ्चपर्वसु नन्दासु न कुर्याद्दन्तधावनम् ।
तत्र कुर्यादनादृत्य स नरो विधिहंतकः ॥ १२ ॥

पाँच पर्व तिथि व नन्दा तिथियों में दाँत साफ नहीं करना चाहिये यदि इसमें जो करता है उसका अनादर इसलिये करना कि वह ब्रह्मा का घाती होता है ॥ १२ ॥

संवर्तः—
रवौ विवाहे आशौचे वर्जयेद्दन्तधावनम् ॥ १३ ॥

संवर्त ने बताया है कि सूर्य वार, विवाह, अशौच में दाँत साफ नहीं करना चाहिये ॥ १३ ॥

तिथि ज्ञान

हेमाद्री स्कान्दे—
अभ्यंगे जलधिस्नाने दन्तधावनमैथुने ।
जाते च निधने चैव तत्कालव्यापिनी तिथिः ॥ १४ ॥

हेमाद्रि में बताया है कि उबटन, समुद्र स्नान, दाँत सफाई, मैथुन, जन्म व निधन में तात्कालिक तिथि ग्रहण करनी चाहिये ॥ १४ ॥

दाँतुन के भेद

वाराहीये—
वल्ली लतागुल्मतरुप्रभेदैः स्युर्दंतकाष्ठानि सहस्रशो यैः ।
फलानि वाच्यान्यपि तत्प्रसंगान्माभूदतो वच्म्यथ कामिकानि ॥ १५ ॥

आचार्य वराहमिहिर ने बताया है कि वल्ली, लता, गुल्म (गुच्छा) और वृक्षों के भेद से हजारों तरह से दाँतुन किया जाता है। जिनसे फल कहे जाते हैं, उनके प्रसङ्गों को अधिक न बढ़ाकर केवल अभीष्ट फल देने वाले दतवन को कहता हूँ ॥ १५ ॥

विशेष—प्रकाशित बृ० सं० में 'फलानि वाच्यान्यथ तत्प्रसङ्गो' यह पाठान्तर है ॥ १५ ॥

वर्जनीय दन्तकाष्ठ

अज्ञातपूर्वाणि न दन्तकाष्ठान्यद्यान्न पत्रैश्च समन्वितानि ।
न युग्मपर्वाणि न पाटितानि न चोर्ध्वशुष्काणि विना त्वचा वा ॥ १६ ॥

आचार्य वराह ने बताया है कि अपरिचित, पत्तों से युत, युग्म पर्वों से युत, फटा हुआ, वृक्ष पर ही सूख गया हो या त्वचा से रहित काठ की दातुन नहीं करनी चाहिये ॥ १६ ॥

शनी आदि वृक्षों के दन्त धावन का फल

वैकंकतश्रीफलकाश्मरीषु ब्राह्मी द्युतिः क्षेमतरौ सुदाराः।
वृद्धिर्वटेऽर्के प्रचुरं च तेजः पुत्रा मधूके: ककुभे प्रियत्वम् ॥ १७ ॥

वैकङ्कत, वेल व काश्मरी (गम्भारी) वृक्ष का दन्त धावन करने से ब्राह्मी द्युति, क्षेम वृक्ष का करने से उत्तम स्त्री का लाभ, वट वृक्ष का करने से धन की वृद्धि, आक से करने पर-अधिक तेज प्राप्ति और मधूक से करने पर पुत्र प्राप्ति व ककुभ से प्रियत्व मिलता है ।। १७ ।।

विशेष—प्रकाशित वृ. सं. में 'मधूके सगुणाः प्रियत्वम्' यह पाठान्तर है ॥ १७ ॥

शिरीष आदि वृक्षों के दन्तधावन का फल

लक्ष्मीःशिरीषे च तथा करंजे प्लक्षेर्थसिद्धिः समभीप्सिता स्यात्।
मानत्वमायाति जनस्य जात्यां प्राधान्यमश्वत्थतरौ वदन्ति ॥ १८ ॥

शिरीष व कन्जा के वृक्ष से करने से लक्ष्मी की प्राप्ति, पाकर से करने पर अभीष्ट धन की सिद्धि, चमेली के वृक्ष से करने पर सम्मान लाभ और पीपल के वृक्ष से दातुन करने पर प्रधानता की प्राप्ति होती है ॥ १८ ॥

बेर आदि वृक्षों के दन्तधावन का फल

आरोग्यमायुर्बदरीबृहत्यांरैश्वर्यवृद्धिः खदिरे सबिल्वे।
द्रव्याणि चेष्टान्यतिमुक्तके स्युः प्राप्नोति तान्येव पुनः कदंबे ॥ १९ ॥

वेर व कटेरी से करने पर आरोग्य और दीर्घायु का लाभ, खैर व वेल वृक्ष से करने पर ऐश्वर्य की वृद्धि, तेन्दुआ से करने पर अभीष्ट द्रव्यों का लाभ और कदम्ब वृक्ष से दांतुन करने पर अभीष्ट द्रव्यों का लाभ होता है ॥ १९ ॥

नीम आदि वृक्षों के दन्तधावन का फल

निम्बेर्थाप्तिः करवीरेन्नलब्धिर्भांडीरे स्यादिदमेव प्रभूतम्।
शम्यां शत्रूनपहंत्यर्जुने च श्यामायां च द्विषतामेव नाशः ॥ २० ॥

नीम के वृक्ष से दाँतुन करने पर धन का लाभ, कनेर के वृक्ष से अन्न का लाभ, भाण्डीर वृक्ष से करने पर अधिक अन्न का लाभ, शमी वृक्ष से शत्रु हनन, अर्जुन से और श्यामा वृक्ष से दाँतुन करने पर शत्रुमारक होता है ।। २० ।।

शाल आदि वृक्षों के दन्तधावन का फल

शालेऽश्वकर्णे च वदन्ति गौरवं सभद्रदारावपि चाटरूषके।
वाल्लभ्यमायाति जनस्य सर्वतः प्रियंग्वपामार्गसजंवुदाडिमैः ॥ २१ ॥

शाल और अश्वकर्ण से दाँतुन करने पर सम्मान वृद्धि, देवदारु व वासिका से भी सम्मान वर्धन, प्रियङ्गु, अपामार्ग, जामुन और नारङ्गी के वृक्ष से दन्तधावन करने से चारों ओर प्रियता की प्राप्ति होती है ॥ २१ ॥

दन्तधावन करने का विधान

उदङ्मुखः प्राङ्मुख एव वाब्दं कामं यथेष्टं हृदये निवेश्य।
आद्यादनिंद्यं च सुखोपविष्टं प्रक्ष्याल्य जह्याच्च शुचिप्रदेशे ॥ २२ ॥

बृहत्संहिता में बताया है कि उत्तर या पूर्व की ओर मुख करके सुख से बैठकर वार्षिक यथाभिलषित कामना हृदय में स्थापित कर विहित काष्ठ से दाँतुन करना चाहिये। फिर दाँतुन को धोकर पवित्र स्थान में गिरा देना चाहिये ॥ २२ ॥

त्यक्त दन्तधावन का शुभाशुभ फल

अभिमुखपतितं प्रशांतदिक्स्थं शुभमतिशोभनमूर्ध्वसंस्थितं यत्।
अशुभकरमतोन्यथा प्रदिष्टं स्थितपतितं च करोति मिष्टमन्नम् ॥ २३ ॥

जिस तरफ बैठ कर दांतुन करे उसी दिशा से प्रशान्त दिशा में यदि दाँतुन गिरे तो शुभ और गिर कर खड़ा रहे तो अति सुन्दर होता है। इससे विपरीत में अशुभ फल होता है। तथा खड़ा होकर गिर जाय तो मीठा भोजन मिलता है ॥ २३ ॥

वर्ण वश दातौन की नाप ज्ञान

आह्लिकाचारतत्त्वे—
द्वादशांगुलविप्राणां क्षत्रियाणां नवांगुलम्।
अष्टांगुलं तु वैश्यानां शूद्राणां च षडंगुलम् ॥ २४ ॥
चतुरंगुलमानं तु नारीणां विधिरुच्यते।
कनिष्ठाग्रसमस्थूलपर्वाग्रकृतकूर्चकम् ॥ २५ ॥

आह्लिकाचारतत्त्व में बताया है कि ब्राह्मणों को दस अंगुल, क्षत्रियों को ९ अंगुल, वैश्यों को आठ अंगुल और शूद्रों को ६ अंगुल की दाँतुन करनी चाहिये ॥ २४ ॥

स्त्रियों के लिये चार अंगुल की दाँतुन बतलाई गई है। कनिष्ठा अंगुलि के अग्र भाग के समान मोटी आगे से पोई हो वह दाँतुन श्रेष्ठ होती है ॥ २५ ॥

अभाव में विधान

पैठीनसिः—
अलाभे वा निषेधे वा काष्ठानां दन्तधावने।
पर्णादिना विशुद्धयेत जिह्वोल्लेखः सदैव हि ॥ २६ ॥

ऋषि पैठीनसि ने बताया है कि काठ की दाँतुन के अभाव या निषेध में पत्ता से जीभ साफ करना चाहिए ॥ २६ ॥

व्यासः
अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धायां तथा तिथौ।
अपां द्वादशगंडूषैः विदध्याद्दन्तधावनम् ॥ २७ ॥

व्यास जी ने बताया है कि काठ की दाँतुन के अलाभ में तथा निषिद्ध तिथि में १२ बार पानी से कुल्ला करने पर दन्त धावन होता है ॥ २७ ॥

दाँतुन से पूर्व प्रार्थना का मन्त्र

दन्तधावने आदो प्रार्थनामंत्रः—

आयुर्बलं यशोवर्चः प्रजाः पशुवसूनि च।
ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वन्नो देहि वनस्पते ॥ २८ ॥

हे वनस्पते तुम आयु, वल, यश, तेज, सन्तान, पशु, धन, वुद्धि, विद्या सव कुछ हमको दो ॥ २८ ॥

दाँतुन करने का कारण

मुखदुर्गंधिनाशाय दन्तानां च विशुद्धये।
ष्ठीवनाय च गात्राणां कुर्वेहं दन्तधावनम् ॥ २९ ॥

मुख की दुर्गन्ध दूर करने, दाँतो की सफाई के निमित्त और इन्द्रियों की शुद्धि के लिये मैं दाँतुन कर रहा हूँ ॥ २९ ॥

अकरण में पाप

महाभारते—

दन्तशुद्धि विना भुंक्ते पादौ प्रक्षालनं विना।
अदृष्टदेवगोविन्दः सोपि चाण्डाल उच्यते ॥ ३० ॥

महाभारत में कहा है विना दाँत व पैर धोकर जो भोजन करता है तथा जिसने गोविन्द देव को अर्पण किये विना खाया वह भी चाण्डाल होता है ॥ ३० ॥

मनुः—

दन्तशुद्धि विना यांहि पादप्रक्षालनं विना।
भुज्यते हि नरो सम्यक्पुनः संस्कारमर्हति ॥ ३१ ॥

मनु ऋषि ने वताया है कि जो विना दाँत व पैर धोकर भोजन करता हैं वह पुनः संस्कार के योग्य होता है ॥ ३१ ॥

अथाक्षरारम्भः—

अव आगे वालक को अक्षर का प्रारम्भ कव करना चाहिये इसे वताते हैं।

अक्षरारम्भ मुहूर्त

श्रीधरीये—

[1]उदग्गते भास्वति पञ्चमेऽब्दे प्राप्तेक्षरस्वीकरणं शिशूनाम्।
सरस्वतीं विघ्नविनायकं च गुडोदनाद्यैरभिपूज्य कुर्यात् ॥ ३२ ॥

आचार्य श्रीधर ने वताया है कि उत्तरायन सूर्य में वालक के पाँचवें वर्ष की प्राप्ति में गुड, चावलादि से गणेश व सरस्वती जी की सुन्दर रीति से पूजा कराकर अक्षर का आरम्भ करना चाहिये ॥ ३२ ॥

---

१. पी० धा० में वसिष्ठ के नाम से है। ज्यो० नि० १२० पृ०।

[2]विधिरत्ने—

बालस्य पञ्चमे वर्षे प्राप्ते भानौ मृगादिके ।
आरभेनाक्षरविधिं शुभे काले यथोदिते ॥ ३३ ॥

विधिरत्न में बताया है कि बालक जब पांचवें वर्ष में हो तब मकरादि पांच राशियों में सूर्य के रहने पर उक्त शुभ समय में अक्षर का आरम्भ कराना चाहिए ॥ ३३ ॥

नृसिंहः—

[3]अक्षरस्वीकृता प्रोक्ता प्राप्ते पञ्चमहायने ।
उत्तरायणगे सूर्ये कुम्भमासं विवर्जयेत् ॥ ३४ ॥

आचार्य नृसिंह ने बताया है कि बालक जब पांचवें वर्ष में प्रवेश करे तो उस वर्ष कुम्भ के सूर्य को छोड़कर उत्तरायन में अक्षर का आरम्भ कराना चाहिये ॥ ३४ ॥

विश्वामित्रः—

[4]प्राप्ते तु पञ्चमे वर्षे त्वप्रसुप्ते जनार्दने ।
विद्यारम्भस्तु कर्तव्यो यथोक्तविधिवासरे ॥ ३५ ॥

ऋषि विश्वामित्र ने बताया है कि शिशु को पांच वर्ष का होने पर हरिशयन को छोड़कर पूर्वोक्त विधि से उक्त दिनों में अक्षरारम्भ कराना चाहिये ॥ ३५ ॥

हरिशयन का ज्ञान

[5]आषाढशुक्लद्वादश्यां शयनं कुरुते हरिः ।
निद्रां त्यजति कार्तिक्यां तयोः सम्पूज्यते हरिः ॥ ३६ ॥

आषाढ़ शुक्ल द्वादशी से कार्तिक शुक्ल १० दशमी तक विष्णु भगवान् शयन करते हैं । और कार्तिक शुक्ल एकादशी को निद्रा का त्याग करते हैं ॥ ३६ ॥

अक्षरारम्भ मुहूर्त

[6]हस्तादित्यसमीरमित्रपुरजित्पौष्णाश्विचित्राच्युते-
श्वारार्कांशदिनोदयादिरहिते चांशौ स्थिते चोभये ।
पक्षे पूर्णनिशाकरे प्रतिपदं रिक्तां विहायाष्टमीं
षष्ठीमष्टमशुद्धभाजि भवने प्रोक्ताक्षरस्वीकृतिः ॥ ३७ ॥

आचार्य श्रीधर ने बताया है कि हस्त, पुनर्वसु, स्वाती, आर्द्रा, रेवती, चित्रा, श्रवण नक्षत्र में, मङ्गल, सूर्य के लग्नस्थ नवांश को छोड़कर, स्थिर या द्विस्वभाव लग्न में, शुक्ल पक्ष में, प्रतिपदा, रिक्ता, षष्ठी, अष्टमी तिथि का त्याग करके लग्न से अष्टम भाव शुद्ध (ग्रह रहित) होने पर अक्षर का आरम्भ कराना चाहिये ॥ ३७ ॥

---

२. ज्यो० नि० १२० पृ० २ श्लो० । ३. ज्यो० नि० १२० पृ० ४ श्लो० ।
४. ज्यो० नि० १२० पृ० ५ श्लो० । ५. ज्यो० नि० १२० पृ० ६ श्लो० ।
६. ज्यो० नि० १२० पृ० ७ श्लो० । तथा मु० चिं० ५ प्र० ३७ श्लो० ।

संस्कार से बालादि संज्ञा

प्राक् चूडाकरणाद्बालः यावदन्नाशनाच्छिशुः ।
कुमारकस्तु विज्ञेयो यावन्मौञ्जीनिबन्धनम् ॥ ३८ ॥

चौल से पूर्व बाल, अन्नप्राशन से पूर्व शिशु और मौञ्जी बन्धन (यज्ञोपवीत) से पूर्व कुमार होता है ॥ ३८ ॥

जनेऊ से पूर्व धर्म

अथानुपनीतधर्माः—

माधवीये विष्णुपुराणे—
भक्ष्याभक्ष्ये तथा पेये वाच्यावाच्ये तथानृते ।
अस्मिन्काले न दोषः स्यात्स यावन्नोपनायनम् ॥ ३९ ॥

जनेऊ से पहले, भक्ष्याभक्ष्य, पेय, वाच्यावाच्य, असत्य बोलने से दोष नहीं होता है ॥ ३९ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते संग्रहे वृहद्दैवज्ञरञ्जने
षट्षष्टितमं दन्तधावनप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र पं० रामदीन जी द्वारा रचित वृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक सङ्ग्रह ग्रन्थ का दन्तधावन नाम वाला छियासठवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ६६ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज मुरलीधर चतुर्वेदकृता वृहद्दैवज्ञरञ्जनग्रन्थस्य षट्षष्टितमदन्तधावनप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्तिमगात् ॥ ६६ ॥

अथ सप्तषष्टितमं व्रतबन्धप्रकरणं प्रारभ्यते ।

वृहस्पतिसंहितायाम्—

अब आगे सड़सठवें प्रकरण में यज्ञोपवीत कब, किस अवस्था व काल में करना चाहिये । इसे विविध वाक्यों से बताते हैं ॥

व्रतबन्ध कथन

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि द्विजानां व्रतबन्धनम् ।
कालः प्रोक्तोमराणां च नराणां च द्विजन्मनि ॥ १ ॥

वृहस्पति जी अपनी संहिता में बताते हैं कि मैं अब विप्र व अन्य द्विजों के लिये व्रतबन्ध संस्कार के काल को कह रहा हूँ ॥ १ ॥

व्रतबन्ध में शुभ वर्ष

नारदः—

[1]आधानादष्टमे वर्षे जन्मतो वाग्रजन्मनाम् ।
राज्ञामेकादशे मौञ्जीवन्धनं द्वादशे विशाम् ॥ २ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि ब्राह्मण के बालकों का गर्भ से या जन्म से आठवें वर्ष में, क्षत्रियों का ग्यारहवें और बारहवें वर्ष में वैश्यों के शिशुओं का व्रतबन्धन (मौञ्जी बन्धन) संस्कार करना चाहिये ॥ २ ॥

अत्रिः—

गर्भाष्टमेष्टमे वाब्दे पञ्चमे सप्तमेपि वा ।
द्विजत्वं प्राप्नुयाद्विप्रो वर्षे त्वेकादशे नृपः ॥ ३ ॥

ऋषि अत्रि ने बताया है कि गर्भ से या जन्म से आठवें वर्ष में या सातवें या पाँचवें वर्ष में ब्राह्मण बालक और ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रियां के कुमारों का यज्ञोपवीत करना चाहिये ॥ ३ ॥

वर्षों में विशेष

नारदः—

जन्मतः पञ्चमे वर्षे वेदशास्त्रविशारदः ।
उपनीतो यतः श्रीमान्कार्यं तत्रोपनायनम् ॥ ४ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि जन्म से पाँचवें वर्ष में जनेऊ करने पर वेद शास्त्र में प्रवीण होता है, इस लिये पाँचवें वर्ष में करना चाहिये ॥ ४ ॥

संग्रहे —

ब्रह्मवर्चसमोजश्च विद्या श्रीश्च यशः सुखम् ।
विप्रादेरुपनीतस्य पञ्चमादब्दतः फलम् ॥ ५ ॥

संग्रह में बताया है कि ब्राह्मणादि को पाँचवें वर्ष से यज्ञोपवीत करने पर अर्थात् पाँचवें वर्ष में करने से तेज व छठे में ओज, सातवें में विद्या, आठवें में लक्ष्मी, नवें में यश और दसवें में सुख होता है ॥ ५ ॥

यज्ञोपवीत में इष्ट वर्ष

विष्णुः—

षष्ठे तु धनकामश्चेद्विद्याकामस्तु सप्तमे ।
अष्टमे सर्वकामस्य नवमे कान्तिमिच्छता ॥ ६ ॥
कर्तव्यं दशमे वर्षे धनकामस्य वाञ्छया ।
एकादशे सुखार्थी स्याद्द्वादशाब्देपि तत्फलम् ॥ ७ ॥
द्वादशाब्देप्यतिक्रान्ते प्रायश्चित्तार्हको द्विजः ॥ ८ ॥

---

१. मु० चि० ५ प्र० ३९ श्लो० पी० टी० ।

आचार्य विष्णु ने बताया है कि धन की कामना से छठे, विद्या की इच्छा होने पर सातवें, समस्त कामना से आठवें, कान्ति की इच्छा से नवें, धन की कामना से दशवें, सुख की इच्छा से ग्यारहवें व बारहवें वर्ष में भी यज्ञोपवीत करना चाहिये। ब्राह्मण का बालक बारह वर्ष व्यतीत करने के पश्चात् के प्रायश्चित योग्य हो जाता है ।। ६–८ ।।

यज्ञोपवीत निषेध

बृहस्पतिः—

आषोडशाब्दको विप्रो नोपनीयः कदाचन।
क्षत्रियो विंशतेरूर्ध्वं न वैश्यः पञ्चविंशतिः ।। ९ ।।

बृहस्पति जी ने बताया है कि सोलह वर्ष के बाद ब्राह्मण, २० के बाद क्षत्रिय और २५ वर्ष के बाद वैश्य के बालक का यज्ञोपवीत नहीं करना चाहिये ।। ९ ।।

मनुस्मृति में कहा है 'आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते। आद्वाविंशात्क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः' (२ अ० ३८ श्लो०) ।। ९ ।।

व्रात्य ज्ञान

[1]चण्डेश्वरः—

अतऊर्ध्वं त्रयोप्येते यथाकालमसंस्कृताः।
सावित्रीपतिता व्रात्या व्रात्यस्तोमादृते न हि ।। १० ।।

आचार्य चण्डेश्वर ने बताया है कि इसके बाद यज्ञोपवीत संस्कार से रहित ये तीनों वर्ण सावित्री से भ्रष्ट तथा शिष्टों से निन्दित होकर 'व्रात्य' कहलाते हैं और व्रात्यस्तोम यज्ञ के विना उनकी शुद्धि नहीं होती ।। १० ।।

विशेष—मनुस्मृति में 'व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिता' यह पाठान्तर के साथ पद्य है ।। १० ।।

ऋतुवश वर्णादि के उपनयन का ज्ञान

वसंते ब्राह्मणमुपनयीत ग्रीष्मे राजन्यं शरदि वैश्यमिति।
वसन्ताद्या द्विजादीनां मुख्याः स्युर्व्रतबन्धने ।। ११ ।।

वसन्त ऋतु में ब्राह्मण, ग्रीष्म में क्षत्रिय और शरद ऋतु में वैश्य बालकों का मुख्य यज्ञोपवीत समय होता है ।। ११ ।।

माघादि मासषट्केषु मेखलाबन्धनं मतम्।
चूडाकरणमन्यच्च श्रावणादौ विवर्जयेत् ।। १२ ।।

माघ आदि ६ मासों में मेखलाबन्धन शुभ है तथा श्रावणादि में चौल नहीं करना चाहिये ।। १२ ।।

---

१. मु० चिं० ५ प्र० ३९ श्लो० पी० टी० में याज्ञवल्क्य के नाम से उद्धृत है।

नान्यकालनिषेधाय तथा गर्गवचः शृणु।
माघे द्रविणशीलाढ्यः फाल्गुने च दृढ़व्रतः ॥ १३ ॥
मार्गशीर्षे भवेद्भ्रष्टः शेषे दुःखमवाप्नुयात् ॥ १४ ॥

अन्य काल निषेध के लिये यह नहीं है, ऐसा गर्ग का कहना है उसे श्रवण करो। माघ में जनेऊ करने पर धन से युक्त, फाल्गुन में सत्य संकल्प, अगहन में भ्रष्ट और शेषों में करने पर दुःख की प्राप्ति होती है ॥ १३–१४ ॥

उत्तमादि काल

बृहस्पतिः—
मृगकुम्भगते भानौ मध्यमं मीनमेषयोः।
उत्तमांगो यमस्थेर्के मध्यमं ह्यौपनायनम् ॥ १५ ॥

बृहस्पतिजी ने बताया है कि मकर व कुम्भ के सूर्य में मध्यम, मीन, मेष के सूर्य में व्रतबन्ध उत्तम होता है ॥ १५ ॥

मार्तण्डे—
माघे मासि महाधनो धनपतिः प्रज्ञा बलं फाल्गुने
मेधावी भवति व्रतोपनयने चैत्रे चतुर्वेदवित्।
वैशाखे निखिलोपभोगसहितो ज्येष्ठे वरिष्ठो बुध-
श्चाषाढेपि महामखप्रकरणः प्राप्नोति निष्ठां भुवि ॥ १६ ॥

मार्तण्ड में बताया है कि माघ मास में व्रतबन्ध करने पर बालक बड़ा धनी, धनपति, फागुन में बुद्धि, बल से युक्त मेधावी, चैत में करने पर चारों वेदों का वेत्ता, वैशाख में समस्त उपभोग से युक्त, जेठ में बड़ा विद्वान् और आषाढ में भी बड़े यज्ञों का वेत्ता होने से भूमि में बड़ी प्रतिष्ठा पाता है ॥ १६ ॥

जेठ में निषेध

गर्गः—
[1]ज्येष्ठमासे विशेषेण सर्वज्येष्ठस्य चैव हि।
उपनीतस्य पुत्रस्य जडत्वं मृत्युरेव च ॥ १७ ॥

ऋषि गर्ग ने बताया है कि विशेषकर जेठ मास में सबसे बड़े पुत्र का उपनयन करने पर मूर्खता व मृत्यु होती है ॥ १७ ॥

मेधावी लक्षण

रत्नकोशे—
वसन्तसमये दद्यादष्टे गर्भाष्टमेपि वा।
मेधावी मेखलाबंधो जन्ममासेषु जन्मभे ॥ १८ ॥

---

१. ज्यो० नि० १२२ पृ० २८ श्लो०।

रत्नकोश में वताया है कि जन्म या गर्भ से आठवें वर्ष में वसन्त ऋतु में जनेऊ करने से जन्म मास व नक्षत्र में भी वालक मेधावी होता है ।। १८ ।।

वसिष्ठः—

[1]यज्वा वसन्तसमये बहुवित्तभोगी वर्षाऽष्टमे विविधशास्त्रविशारदस्तु ।
वेदार्थपालनपरः खलु जन्ममासे ऋक्षेपि जन्मनि वहुक्रतुभाजनं स्यात् ।।१९।।

ऋषि वसिष्ठ ने वताया है कि वसन्त ऋतु में यज्ञोपवीत करने से वालक यज्ञ करने वाला अधिक धन का भोगी, आठवें वर्ष में विविध शास्त्रों में चतुर, जन्म मास में वेदार्थ की आज्ञा मानने में तत्पर और जन्म के नक्षत्र में जनेऊ करने से शिशु अधिक यज्ञों का पात्र अर्थात् कर्ता होता है ।। १९ ।।

[2]जन्मोदये जन्मसु तारकासु मासेथवा जन्मनि जन्मचन्द्रे ।
व्रतेन विप्रस्तु वहुश्रुतोपि प्रज्ञाविशेषे कथितः पृथिव्याम् ।। २० ।।

जन्म लग्न, जन्म की तारा, मास वा जन्म के चन्द्रमा में जनेऊ करने पर वालक अधिक शास्त्रज्ञ होकर किसी एक विषय में बहुत प्रसिद्ध होता है ।। २० ।।

गर्भाष्टमे गर्गपराशराद्यैः फलं यदुक्तं व्रतबंधनेन ।
ततोधिकं जन्मसु तारकासु मासेथवा जन्मनि मानवानाम् ।। २१ ।।

गर्भ से आठवें वर्ष में गर्ग पराशर आदि ने व्रतवन्ध का जो फल वताया है उससे अधिक जन्म की तारा अथवा मास में शुभफल होता है ।। २१ ।।

शस्ते शशिनि सुरेज्ये सवितरि शस्ते च मेखलावंधः ।
भवति चिरायुर्विद्वानुक्ते संवत्सरे विप्रः ।। २२ ।।

वालक की राशि से चन्द्र व गुरु सूर्य शुद्धि देखकर अर्थात् इन तीनों के शुभ होने पर उक्त वर्ष में यज्ञोपवीत करने से विद्वान् तथा दीर्घायु होता है ।। २२ ।।

गुरु शुक्र स्थितिवश अशुभता

नीचारिराशावतिनीचगे वा पराजितो वापि गुरौ सिते वा ।
मौंजीव्रतं यस्य करोति नूनं सवेदशास्त्रस्मृतिकर्महीनः ।। २३ ।।

गुरु या शुक्र के अपनी नीच वा शत्रु वा अस्त राशि या पराजित होने पर जिसका यज्ञोपवीत संस्कार होता है वह वालक वेद शास्त्र व स्मार्त कर्म से हीन होता है ।।२३।।

उपनयन निषेध

वृहस्पतिः—

भृगोरंगिरसो मूढे कर्तव्यं नोपनायनम् ।
तयोर्वाल्ये च वार्द्धक्येऽधिमासे दक्षिणायने ।। २४ ।।

---

१. मु० चि० ५ प्र० ४५ श्लो० पी० टी० ।
२. मु० चि० ५ प्र० ४५ श्लो० पी० टी० ।

वृहस्पति जी ने बताया है कि शुक्र व गुरु के अस्त तथा बाल्यकाल एवं वार्द्धक्य में और मलमास व अधिक मास में उपनयन नहीं करना चाहिये ।। २४ ।।

चण्डेश्वरः—

अस्तंगते दैत्यगुरौ च जीवे ऋक्षेप्यनुक्तेप्यथ पापयुक्ते ।
व्रतोपनीतो दिवसैः प्रणाशं प्रयाति देवैरपि रक्षितोपि ।। २५ ।।

आचार्य चण्डेश्वर ने बताया है कि शुक्र वा गुरु के अस्त होने पर, अनुक्त नक्षत्र या पापग्रह से युक्त होने पर यज्ञोपवीत करने पर बालक देवताओं से रक्षित होने पर भी कुछ समय बाद मरण अवश्य पाता है ।। २५ ।।

व्रतबंधं विवाहं च चूडां कर्णस्य वेधनम् ।
ज्येष्ठपुत्रदुहित्रोश्च ज्येष्ठमासे न कारयेत् ।। २६ ।।

आचार्य चण्डेश्वर ने बताया है कि व्रतबन्ध, विवाह, चौल और कर्णवेध संस्कार बड़े लड़के या लड़की का जेठमास में नहीं करना चाहिये ।। २६ ।।

करने पर बल ज्ञान

वसिष्ठः—

उपनयनं विप्राणां गोदानं विवाहमङ्गलादीनि ।
कुर्याद्बलवति चन्द्रे जीवे भानौ च नियमेन ।। २७ ।।

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि ब्राह्मण बालक का उपनयन, गोदान, विवाहादि मङ्गल कार्य बलवान् चन्द्र, गुरु व सूर्य के रहने पर करना चाहिये ।। २७ ।।

अशुभ गुरु में विधान

नारदः—

[1]बालस्य बलहीनोपि शांत्या जीवो बलप्रदः ।
यथोक्तवत्सरे कार्यमनुक्ते नोपनायनम् ।। २८ ।।

ऋषि नारद ने बताया है कि शिशु का गुरु गोचरीय बल रहित हो तो कथित वर्ष में गुरु की शान्ति करके जनेऊ करना चाहिये । अनुक्तकाल में यज्ञोपवीत नहीं करना चाहिये ।। २८ ।।

गुरु की शुभता

वृहस्पतिः—

[2]झषचापकुलीरस्थो जीवोप्यशुभगोचरः ।
अतिशोभनतां दद्याद्विवाहोपनयादिषु ।। २९ ।।

वृहस्पति जी ने बताया है कि मीन, धनु, कर्क राशि में गोचर से अशुभ होने पर भी विवाह, उपनयनादि में अत्यन्त अच्छा फल दाता होता है ।। २९ ।।

---

१. ज्यो० नि० १२१ पृ० ११ श्लो० । २. ज्यो० नि० १२१ पृ० १२ श्लो० ।

विशेषाद्देवमंत्री चेदशुभे गोचरे स्थितः।
चापमीनकुलीरेषु शुभदश्चोपनायने ॥ ३० ॥

गोचर से अशुभ होने पर यदि गुरु, मीन या धनु या कर्क में स्थित होता है तो विशेषतया उपनयन में शुभ फलदाता होता है ॥ ३० ॥

धनुमीनकुलीरस्थो जीवो जन्मांत्यमृत्युगः।
अतिसौख्यं बटोः कुर्याद्वसिष्ठवचनं यथा ॥ ३१ ॥

धनु या मीन या कर्कस्थ गुरु स्वराशि या बारहवें या आठवें होता है तो अधिक सुखदाता होता है। जैसा कि वसिष्ठ का वचन है ॥ ३१ ॥

वसिष्ठः—

स्वोच्चे स्वमित्र स्वगृहे त्रिकोणे जीवे स्थिते यद्युपनीतकाले।
शिशोः सहोत्थे चतुरष्टकर्मजन्मांत्यषष्ठेऽपि शुभं वदंति ॥ ३२ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि यज्ञोपवीत वेला में गुरु अपनी उच्च, मित्र, स्वराशि, या मूलत्रिकोण राशि में ३, ४, ८, १०, १, १२, ६ राशि में हो तो शुभ फल होता है ॥ ३२ ॥

गुरु के जन्म राशि से शुभाशुभ स्थान

धर्मार्थलाभसुतभार्यगते सुरेज्ये मौंजीव्रतं शुभकरं च बटोः पितुश्च।
जन्माष्टबंधुरिपुरिःफनभस्तृतीये दारिद्र्यशोकबहुरोगयुतो द्विजन्मा ॥ ३३ ॥

स्वराशि से ९।२।११।५।७ राशि में गोचरीय गुरु, जनेऊ में बालक व पिता का शुभ कर्ता होता है तथा १।८।४।६।१२।१०।३ राशि में निर्धनता, शोक और अधिक रोगों से युक्त करने वाला होता है ॥ ३३ ॥

पूजित व अशुभ गुरु स्थान

जन्मतस्त्रिरिपुराशिसंस्थे इच्छंति पूजां दशमे सुरेज्ये।
नेच्छंति पूजांबुधिगे व्ययस्थे पुरातना अष्टमगेऽपि जीवे ॥ ३४ ॥

जन्म की राशि से ३।६।१० में गुरु पूजा से शुभ और ४।८ राशि में गुरु की पूजा करने पर भी शुभता नहीं होती है ॥ ३४ ॥

अशुभता में शुभत्व

संग्रहे—

[1]हरिनीचारिभागेऽपि व्रतोद्वाहादि मंगलम्।
न निषिद्धं यदि स्वोच्चे स्वभे वा संस्थिते गुरुः ॥ ३५ ॥

संग्रह ग्रन्थ में कहा है कि सिंह, मकर और शत्रु राशि के नवांश में भी गुरु के उच्च राशि या स्वराशि में रहने पर विवाहादि माङ्गलिक कार्य निषिद्ध नहीं होता है ॥ ३५ ॥

---

१. ज्यो. नि. १२२ पृ. १९ श्लो.।

[1]गोचरेपि सुराचार्यो वेदवर्णेश्वरोऽथवा ।
अशुभोपि शुभो ज्ञेयो यदि स्वोच्चे स्वभे स्थितः ॥ ३६ ॥

अथवा अपने वेद या वर्ण का स्वामी गुरु होने पर गोचर में अशुभ होने पर भी यदि उच्च या स्वराशि में हो तो शुभ होता है ॥ ३६ ॥

[2]व्रतकाले तु संप्राप्ते शुद्धिर्यस्य न जायते ।
कृत्वार्चां शक्तितः पश्चाद्विधेयं मौंजिबंधनम् ॥ ३७ ॥

जिसको व्रतवन्ध का समय तो प्राप्त है किन्तु गोचरीय गुरु की शुद्धि नहीं मिल रही है तो अपनी शक्ति के अनुसार गुरु की पूजा करके जनेऊ करना चाहिये ॥ ३७ ॥

गुरु पूजा

वृहस्पतिः—

व्रते जन्मत्रिखारिस्थे जीवोपीष्टोर्चनात्सकृत् ।
शुभोतिकाले तुर्याष्टव्ययस्थे द्विगुणार्चनात् ॥ ३८ ॥

वृहस्पति जी ने वताया है कि यज्ञोपवीत में १।३।१०।६ राशि में गुरु की एक बार पूजा करने पर शुभ और अति कालातिक्रमण में ४।८।१२ राशि में भी दुगुनी पूजा करने से शुभ होता है ॥ ३८ ॥

शुभाब्दे देवमन्त्री चेदशुभे गोचरे शिशोः ।
स शान्त्या शुभतां याति सर्वेप्येवं ग्रहा ययुः ॥ ३९ ॥

यदि शुभ वर्ष में गुरु बालक के गोचर से अशुभ हो तो शान्ति से शुभता होती है तथा समस्त दूषित ग्रह शान्ति से शुभ होते हैं ॥ ३९ ॥

अशुभेब्दे ग्रहाः सर्वे शुभगोचरगा अपि ।
शान्तिभावाच्छुभं नैव यात्यब्दः कालमृत्युकृत् ॥ ४० ॥

अशुभ वर्ष में गोचर से सब शुभ ग्रह होने पर भी अशुभ फल होता है । शान्ति से अशुभ वर्ष शुभ नहीं होता है । अर्थात् अशुभ वर्ष में जनेऊ होने पर मरण होता है ॥ ४० ॥

[3]मुख्यकालस्तु वलवान्व्रते गोचरशुद्धितः ।
यतो निषिद्धवर्षस्य शान्तिर्नो दृश्यते क्वचित् ॥ ४१ ॥

यज्ञोपवीत में मुख्यकाल ही वली होता है और गोचर शुद्धि से काल की शान्ति द्वारा शुद्धि किसी ग्रन्थ में दृष्टिगोचर नहीं होती है ॥ ४१ ॥

---

१. ज्यो. नि. १२२ पृ. २० श्लो. ।
२. ज्यो. नि. १२२ पृ. १६ श्लो. ।
३. ज्यो० नि० १२२ पृ० २१ श्लो० ।

तस्माद्ग्रहेभ्यः कालत्वाद्वली संवत्सरः स्मृतः ।
शान्तिर्ग्रहाणां कर्तव्या ननु संवत्सरस्य सा ॥ ४२ ॥

इसलिये ग्रहों से वली वर्ष होता है। शान्ति ग्रहों की करनी चाहिये, न कि वर्ष की या काल की करनी चाहिये ॥ ४२ ॥

अष्टक वर्ग विचार

पराशरः—
गोचरे नाबलो जीवः सूर्यचन्द्रे च निर्बले ।
विचार्याष्टकवर्गोत्थबलं कुर्याद्वले व्रतम् ॥ ४३ ॥

ऋषि पराशर ने वताया है कि गोचर से गुरु वली और सूर्य चन्द्रमा निर्वल हों तो अष्टक वर्ग से विचार करके यज्ञोपवीत करना चाहिये ॥ ४३ ॥

गोचर से निषेध

[1]अष्टकवर्गविशुद्धेषु गुरुशीतांशुभानुषु ।
व्रतोद्वाहौ च कर्तव्यौ गोचरे न कदाचन ॥ ४४ ॥

अष्टक वर्ग से गुरु, चन्द्र, सूर्य की शुद्धि देखकर यज्ञोपवीत और विवाह करना और गोचर की शुद्धि से कभी भी नहीं करना चाहिये ॥ ४४ ॥

अष्टक वर्ग का महत्त्व

अष्टवर्गेषु ये शुद्धास्ते शुद्धाः सर्वकर्मसु ।
अविशुद्धा विशुद्धास्ते निर्दिष्टा यवनादिभिः ॥ ४५ ॥

अष्टक वर्ग से जो ग्रह शुद्धि प्राप्त करता है वह सव काम में शुभ तथा गोचर से अशुभ और अष्टक वर्ग से शुद्ध विशेष शुभ होता है। ऐसा यवनादिकों का मत है ॥४५॥

गोचर का महत्त्व

[2]नृसिंह—
मौञ्जीवन्धे विवाहे च प्रतिष्ठायां विशेषतः ।
गोचरेणैव कर्तव्यं वेधावलमकारणम् ॥ ४६ ॥

नृसिंह जी ने वताया है कि यज्ञोपवीत, विवाह और प्रतिष्ठा गोचर से शुद्ध होने पर ही करना, वाम वेध शुद्धि को इसमें त्यागना चाहिये ॥ ४६ ॥

कार्य में बल

वेधावलं वामवेधवलम् । श्रीपतिः—
वर्णाधिपे वलोपेते उपवीतक्रिया हिता ।
सर्वेषां वा गुरौ चन्द्रे सूर्ये च वलशालिनि ॥ ४७ ॥

---

१. मु० चि० ५ प्र० ४६ श्लो० पी० टी० ।
२. मु० चि० ५ प्र० ४६ श्लो० पी० टी० में गर्ग के नाम से है ।

आचार्य श्रीपतिजी ने बताया है कि यज्ञोपवीत कार्य वर्णेश के बली होने पर ही अथवा गुरु, सूर्य, चन्द्र के बलवान् होने पर शुभ होता है ॥ ४७ ॥

शाखाधिपे बलिनि केन्द्रगतेथवास्मिन्वारेस्य चोपनयनं गदितं द्विजानाम् ।
नीचस्थिते रिपुगृहे च पराजिते स्याज्जीवे भृगौ श्रुतिविधिस्मृतिकर्महीनः ।४८॥

ब्राह्मण बालकों का जनेऊ शाखाधिप बली होकर जब लग्न से केन्द्र में हो तथा शाखाधिप के वार में शुभ होता है। शुक्र या गुरु के नीच राशि या शत्रु राशि में या पराजित अवस्था में रहने पर जिसका यज्ञोपवीत होता है वह बालक वेद विधान व स्मृति कार्य से रहित होता है ॥ ४८ ॥

यज्ञोपवीत निषेध

माहेश्वरः—
[1]नानध्याये रविसुतदिने कृष्णपक्षे निशायां
सप्तम्यां च क्रमशशिमितायां च रिक्ते तिथौ च ।
मौञ्जीबन्धः सुरपतिगुरौ नीचराशिप्रपन्ने
कार्यस्तज्ज्ञैः रिपुभवनगते वाजिते वासिते वा ॥ ४९ ॥

आचार्य माहेश्वरजी ने बताया है कि अनध्याय शनिवार, कृष्णपक्ष, रात्रि, सप्तमी, प्रतिपदा, रिक्ता तिथि में तथा गुरु को नीच व शत्रु घर में या पराजित होने पर इसी प्रकार शुक्र की स्थिति रहने पर यज्ञोपवीत नहीं करना चाहिये ॥ ४९ ॥

वर्णाधिप ग्रह ज्ञान

पती सितेज्यौ विप्राणां नृपाणां कुजभास्करौ ।
वैश्यानां शशभृत्सौम्याविति वर्णाधिपाः स्मृताः ॥ ५० ॥

ब्राह्मणों के स्वामी शुक्र, गुरु, क्षत्रियों के भौम, सूर्य और वैश्यों के स्वामी ग्रह चन्द्र, बुध होते हैं ॥ ५० ॥

वर्णपरक ग्रह शुद्धि ज्ञान

गुरौ शुक्रेनुकूले वा द्विजस्य व्रतबन्धनम् ।
गोचरे च रवौ भौमे सुस्थिते क्षत्रियस्य च ॥ ५१ ॥
वैश्यानां चन्द्रशुद्धौ च कारयेद्व्रतबन्धनम् ॥ ५२ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि गुरु, शुक्र के अनुकूल होने पर ब्राह्मणों का, रवि, भौम की अनुकूलता में क्षत्रियों का और चन्द्रमा के अनुकूल होने पर वैश्य बालक का यज्ञोपवीत करना चाहिये ॥ ५१-५२ ॥

चारों वेदों के स्वामी ग्रह

ऋग्वेदाधिपतिर्जीवो यजुर्वेदपतिः सितः ।
सामवेदाधिपो भौमोऽथर्ववेदाधिपो बुधः ॥ ५३ ॥

---

१. मु० चि० ५ प्र० ४४ श्लो० पी० टी० ।

श्री माहेश्वरजी ने वताया है कि ऋग्वेद का गुरु, यजुर्वेद का शुक्र, सामवेद का भौम और अथर्ववेद का स्वामी बुध होता है ॥ ५३ ॥

मुहूर्त में विशेष शुभता

नारदः—

[1]शाखाधिपतिवारश्च शाखाधिपबलं शिशोः ।
शाखाधिपतिलग्नं च दुर्लभं त्रितयं व्रते ॥ ५४ ॥

ऋषि नारद जी ने वताया है कि वेदाधिप वार, वली शाखेश और वेदाधीश ग्रह राशि लग्न ये तीनों मिलना दुर्लभ होता है ॥ ५४ ॥

धनी होने का लक्षण

चूडामणौ—

[2]परमोच्चगतो जीवो शाखेशे वाथवा सिते ।
व्रताच्छिशुर्धनाढ्यः स्याद्वेदशास्त्रविशारदः ॥ ५५ ॥

चूडामणि ग्रन्थ में वताया है कि परमोच्च में गुरु या शाखेश या शुक्र के होने पर यज्ञोपवीत करने पर वालक धनी और वेदशास्त्र में चतुर होता है ॥ ५५ ॥

अनध्याय लक्षण

अथानध्यायाः ।

अव अनध्याय कव होता है, इसे वताते हैं ।

नारदः—

[3]चतुर्दशीद्वयं चैव प्रतिपच्चाष्टमी तथा ।
पक्षयोरुभयोरेकमनध्यायाष्टकं विदुः ॥ ५६ ॥

ऋषि नारदजी ने वताया है कि चौदस से दो अर्थात् चौदस, पूर्णिमा, चौदस, अमावास्या, दोनों पक्षों की प्रतिपदा और अष्टमी ये ८ दिन अनध्याय के होते हैं ॥ ५६ ॥

[4]पूर्वापरतिथिभ्यां तु तदुक्तं मौञ्जिनिवन्धने ।
त्याज्यमन्येप्यनध्याया परित्यक्तास्तु केवलाः ॥ ५७ ॥

दोनों पक्षों की तिथियों में जो अनध्याय वताया है उसका यज्ञोपवीत में त्याग करना और अन्य तो केवल परित्यक्त ही होते हैं ॥ ५७ ॥

---

१. मु० चिं० ५ प्र० ४४ श्लो० पी० टी० ।

२. ज्यो० नि० १२४ पृ० ६७ श्लो० ।

३. ज्यो० नि० १२० पृ० ४६ श्लो० ।

४. ज्यो० नि० १२३ प्र० ४७ श्लो० । त्याज्या अन्येऽप्यनध्यायाः' पाठ शुद्ध है ।

अन्य अनध्याय

[1]अष्टकासु च सर्वासु युगमन्वन्तरादिषु ।
अनध्यायं प्रकुर्वीत तथा सोपपदास्वपि ॥ ५८ ॥

समस्त अष्टका, युगादि, मन्वादि और सोपपदाओं में अनध्याय करना चाहिये ॥५८॥

सोपपदा का ज्ञान

सोपपदास्तु स्मृत्यर्थसारे—
सिताज्येष्ठे द्वितीया च आश्विने दशमी सिता ।
चतुर्थी द्वादशी माघे एताः सोपपदाः स्मृताः ॥ ५९ ॥

स्मृत्यर्थसार में बताया है कि जेठ शुक्ल द्वितीया, आश्विन सुदी दशमी, माघ की चतुर्थी व द्वादशी तिथि सोपपदा होती है ॥ ५९ ॥

विशेष—पी० धा० टी० में 'आषाढे दशमी सिता' यह पाठान्तर है ॥ ५९ ॥

सोपपदा में अध्ययन विधान

चण्डेश्वरः—
[2]वेदव्रतोपनयने स्वाध्यायाध्ययने तथा ।
न दोषो यजुषां सोपपदास्वध्ययनेपि च ॥ ६० ॥

आचार्य चण्डेश्वर ने बताया है कि वेद व्रत, यज्ञोपवीत, स्वाध्याय, अध्ययन में तथा यजुर्वेदियों को सोपपदा में अध्ययन का दोष नहीं होता है ॥ ६० ॥

अध्ययन का त्याग

[3]अयने विषुवे चैव सूतके मृतके तथा ।
तात्कालिकेप्यनध्याये प्रदोषेऽध्ययनं त्यजेत् ॥ ६१ ॥

अयन, विषुव दिन, जनन व मरण अशौच और तात्कालिक अनध्याय में अध्ययन का त्याग करना चाहिये ॥ ६१ ॥

प्रदोष का ज्ञान

तृतीया प्रहरे न्यूना द्वादशी प्रहरद्वयम् ।
षष्ठी रात्रेः सार्धयामात्प्रदोषो जायते तदा ॥ ६२ ॥

जब कि तृतीया एक प्रहर से न्यून हो या द्वादशी दो याम तक हो और षष्ठी रात्रि में डेढ़ प्रहर तक हो तो प्रदोष होता है ॥ ६२ ॥

---

१. ज्यो० नि० १२३ पृ० ४८ श्लो० ।

२. ज्यो० नि० १२३ पृ० ५५ श्लो० ।

३. ज्यो० नि० १२३ पृ० ४९ श्लो० ।

प्रदोष लक्षण

गर्गः—

[1]चतुर्थी याममेकं तु सार्द्धयामं तु सप्तमी।
त्रयोदशी चार्द्धरात्रं प्रदोषो रजनीमुखे॥ ६३॥

ऋषि गर्ग ने बताया है कि चौथ एक प्रहर तक, सप्तमी डेढ प्रहर तक, तेरस आधी रात तक होने पर रात्रि के प्रारम्भ में दोष होता है॥ ६३॥

गलग्रह का ज्ञान

[2]त्रयोदश्यादि चत्वारि सप्तम्यादि दिनत्रयम्।
चतुर्थी दिनमेकं स्यादष्टावेते गलग्रहाः॥ ६४॥

ऋषि गर्ग ने बताया है कि तेरस से चार तिथि (तेरस, चौदस, अमा, पूर्णिमा, नवमी) और चौथ ये आठ दिन गलग्रह होता है॥ ६४॥

वसिष्ठ संहिता में कहा है 'कृष्ण पक्षे चतुर्थी च सप्तम्यादि दिनत्रयम्। त्रयोदशी चतुष्कं च अष्टावेते गलग्रहाः' (२९ अ. ३४ श्लो.)॥ ६४॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'प्रतिपक्षेऽष्टमं चैव चतुर्दश्या दिनत्रयम्। रिक्ता च व्रत-बन्धादावष्टौवर्ज्याः गलग्रहाः' (सं. प्र. १०९ श्लो.)॥ ६४॥

पक्ष शुभाशुभ ज्ञान

नारदः—

शुक्लपक्षे शुभः प्रोक्तो त्वशुभः कृष्णपक्षगः।
कृष्णाष्टम्यूर्ध्वं तिथिषु व्रतबन्धेष्वनिष्टदम्॥ ६५॥

ऋषि नारद ने बताया है कि यज्ञोपवीत शुक्ल पक्ष में शुभ और कृष्ण पक्ष में अशुभ तथा कृष्ण पक्ष की अष्टमी से आगे की तिथियों में करने से अनिष्ट फल होता है॥ ६५॥

तिथियों का शुभाशुभत्व

[3]शुक्लपक्षे द्वितीया च तृतीया पञ्चमी तथा।
त्रयोदशी च दशमी सप्तमी व्रतबन्धने॥ ६६॥
श्रेष्ठास्त्वेकादशी षष्ठी द्वादश्येतास्तु मध्यमाः।
एकां चतुर्थी सन्त्यक्त्वा(ज्य?)कृष्णपक्षेपि मध्यमा॥ ६७॥

शुल्क पक्ष की द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, तेरस, दशमी और सप्तमी जनेऊ में श्रेष्ठ तथा एकादशी, षष्ठी, द्वादशी और कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को छोड़कर अन्य तिथियाँ यज्ञोपवीत में मध्यम होती है॥ ६६–६७॥

---

१. मु० चि० ५ प्र० ५५ श्लो० पी० टी०।
२. मु० चि० ५ प्र० ४८ श्लो० पी० टी०।
३. मु० चि० ५ प्र० ४० श्लो० पी० टी०।

जनेऊ का मुहूर्त

वृहस्पतिः—

[1]व्रतं शुक्ले त्रिपञ्चाङ्गदशेशार्कमिते तिथौ ।
देयं द्विसप्तकामेषु कुमारे वयसोधिके ॥ ६८ ॥

ऋषि वृहस्पति जी ने बताया है कि अवस्था अधिक होने पर शुक्ल पक्ष में तृतीया, पञ्चमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, द्वितीया, सप्तमी में व्रतबन्ध श्रेष्ठ होता है ॥ ६८ ॥

विशेष स्थिति में तिथि

[2]कृष्णे भूनेत्रवह्नीशतिथौ स्वेशे बले सति ।
सङ्कटादौ व्रतं कार्यमिति प्राह वृहस्पतिः ॥ ६९ ॥

संकटादि में कृष्ण पक्ष में प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, एकादशी तिथि में अपने शाखेश के बली होने पर यज्ञोपवीत करना, ऐसा बृहस्पति जी ने कहा है ॥ ६९ ॥

उपनयन तिथि

व्यवहारसारे—

द्वितीया पञ्चमी षष्ठी तृतीया द्वादशी तथा ।
दशम्येकादशी शस्ता तिथयो व्रतबन्धने ॥ ७० ॥

व्यवहार सार में बताया है कि द्वितीया, पञ्चमी, षष्ठी, तृतीया, द्वादशी, दशमी, एकादशी तिथियाँ यज्ञोपवीत में शुभ होती हैं ॥ ७० ॥

अनिष्ट तिथि का ज्ञान

मन्वन्तरादि तिथिषु युगादावष्टकासु च ।
व्रताध्ययनकं कर्म नेष्टदं गालवोऽब्रवीत् ॥ ७१ ॥

मन्वन्तरादि, युगादि तिथि, अष्टकाओं में यज्ञोपवीत व अध्ययन कार्य इष्ट फल दाता नहीं होता है, ऐसा गालव ऋषि ने कहा है ॥ ७१ ॥

अन्योक्त तिथि

[3]मनुः—

या चैत्रवैशाखसिता तृतीया माघस्य सप्तम्यपि फाल्गुनस्य ।
कृष्णे तृतीयोपनये प्रशस्ता प्रोक्ता भरद्वाजमुनीन्द्रमुख्यैः ॥ ७२ ॥

ऋषि मनु ने बताया है कि चैत व वैशाख के शुक्ल पक्ष की तृतीया, माघ शुक्ल सप्तमी और फागुन कृष्ण तृतीया में यज्ञोपवीत शुभ होता है, ऐसा भरद्वाजादि ऋषियों का कहना है ॥ ७२ ॥

विशेष—वसिष्ठसंहिता में 'कृष्णद्वितीयोपनये प्रशस्ता' यह पाठान्तर है ॥ ७२ ॥

---

१. ज्यो० नि० १२२ पृ० ४० श्लो० । ३. व० सं० २९ अ० ३९ श्लो० ।
२. ज्यो० नि० १२३ पृ० ४१ श्लो० ।

प्रतिपदादि में करने का फल

चण्डेश्वरः—

[1]प्रतिपदि मदिरासक्तः श्रुतिपटुरुचिरो भवेद्द्वितीयायाम् ।
नीतिज्ञो मेधावी जितसकलरिपुस्तृतीयायाम् ॥ ७३ ॥
मन्दमतिर्गतवित्तो दीनश्चपलश्चतुर्थ्यां स्यात् ।
पञ्चम्यां बहुवित्तः पूर्णायुर्धनपतिर्मतिमान् ॥ ७४ ॥
षष्ठ्यामशुचिः सुभार्यः सप्तम्यां व्याधिभिर्युक्तः ।
अष्टम्यामनायुष्यं स्यान्नवम्यां धनवर्जितः ॥ ७५ ॥
दशम्यां सर्वसम्पूर्णं एकादश्यां गुणान्वितः ।
द्वादश्यां श्रुतिशास्त्रज्ञः त्रयोदश्यां मृतिर्भवेत् ॥ ७६ ॥
चतुर्दश्यां भवेन्नाशः पञ्चदश्यां क्षयो भवेत् ।
अमायां तु भवेद्दुःखी वेदस्मृतिविवर्जितः ॥ ७७ ॥

आचार्य चण्डेश्वर ने बताया है कि प्रतिपदा में जनेऊ करने पर बालक शराब में आसक्त, द्वितीया में वेद में चतुर सुन्दर, तृतीया में नीतिवेत्ता, बुद्धिमान् और समस्त शत्रुओं को पराजित करने वाला, चौथ में बुद्धि व धन से हीन, दीन, चञ्चल, पञ्चमी में बड़ा धनी, दीर्घायु व धनपति, छठ में अपवित्र, सुन्दर भार्या वाला, सप्तमी में रोगी, अष्टमी में आयु हीन, नवमी में धन हीन, दशमी में सबसे परिपूरित, एकादशी में गुणी, द्वादशी में वेद ज्ञाता, त्रयोदशी में मरण, चौदस में विनाश, पूर्णिमा में क्षय और अमावास्या में यज्ञोपवीत करने से दुःखी व वेद, स्मृति से रहित होता है ॥ ७३–७७ ॥

बादरायण ने कहा है 'प्रतिपदि मदिरासक्तः श्रुतिवरमेधाधिको द्वितीयायाम् । नीतिज्ञो मेधावी जितसकलारिस्तृतीयाम् । मन्दधियाहृतचित्तोऽधीतश्चपलश्चतुर्थ्यां स्यात् । पञ्चम्यां बहुवित्तः पूर्णायुर्धनपतिर्मतिमान् । षष्ठ्यामशुचिः सततं सप्तम्यां व्याधिसंतप्तः । अल्पायुरथाष्टम्यां नवमे धनवर्जितः सदा पुरुषः । दशम्यामर्थसंपत्तिरेकादश्यां गुणान्वितः । द्वादश्यां नीतिशास्त्रज्ञः निधनाय त्रयोदशी । चतुर्दश्यां भवेन्नाशः पञ्चदश्यां क्षयो भवेत्' (मु. चि. ५ प्र. ४० श्लो. पी. टी.) ॥ ७३–७७ ॥

वारों का शुभाशुभत्व

[2]नारदः—

आचार्यसौम्यकाव्यानां वाराः शस्ताः शशीनयोः ।
वारौ तौ मध्यफलदावितरौ निन्दितौ व्रते ॥ ७८ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि व्रतबन्ध में गुरु, बुध, शुक्रवार शुभ, चन्द्र, सूर्य मध्यम फलदाता और शनि, भौम अशुभ होते हैं ॥ ७८ ॥

---

१. मु० चि० ५ प्र० ४० श्लो० पी० टी० ।
२. मु० चि० ५ प्र० ४० श्लो० पी० टी० ।

प्रकारान्तर से

[1]सर्वेषां जीवशुक्रज्ञवाराः शस्ताः शशीनयोः।
वारौ तौ मध्यमौ ज्ञेयौ सामबाहुजयोः कुजः ॥ ७९ ॥

समस्तद्विजों के लिये यज्ञोपवीत में गुरु, शुक्र, बुधवार शुभ तथा चन्द्र, सूर्य का मध्यम फल होता है। क्षत्रियों व साम वेदियों के लिये भौमवार शुभ होता है ॥ ७९ ॥

त्याज्यवार

[2]वारौ मन्दारयोर्वर्ज्यौ कृष्णे वर्ज्यौ निशापतेः।
अस्तङ्गतस्य सौम्यस्य वारो वर्ज्यो द्विजन्मनि ॥ ८० ॥

शनि व मङ्गलवार का तथा कृष्ण पक्ष में सोमवार का एवं अस्त बुधवार का यज्ञोपवीत में त्याग करना चाहिये ॥ ८० ॥

प्रत्येकवार का फल

ज्योतिःप्रकाशे—
मेधा भानुदिने जडत्वहिमगौ चन्द्रात्मजे बोधवान्
पञ्चत्वं कुजमन्दयोर्भृगुसुते वाग्मी बलीयान् शुचिः।
षट्कर्माभिरतः सुखी सुरगुरौ विद्वान् चिरायुर्नरो
धिष्ण्ये पापनिपीडते च हिमगौ मूढो गतायुर्भवेत् ॥ ८१ ॥

ज्योतिः प्रकाश नामक ग्रन्थ में कहा है कि सूर्यवार में जनेऊ करने से बुद्धिमत्ता, चन्द्रवार में जडता, बुध में ज्ञानवान, मङ्गल व शनि में मरण, शुक्रवार में वाग्मी, बली, पवित्र, गुरुवार में यजनादि में लीन, सुखी, विद्वान्, दीर्घायु और पाप से पीडित नक्षत्र में चन्द्रमा के रहने पर सोमवार में करने से बालक मूर्ख और गतायु होता है ॥ ८१ ॥

बुधेषु शास्त्रे गुरवे च विद्या देवज्ञशुक्रे रविराधिपत्यम्।
सोमे अविद्या मरणं च भौमे मन्दो मतिः सौम्यव्रतोपनीयात् ॥ ८२ ॥

गुरु में शास्त्र पंडित, विद्वान्, शुक्र में देवज्ञ, सूर्य में आधिपत्य, सोमवार में अविद्या मङ्गल में मरण और बुध में जनेऊ करने से बालक अल्प बुद्धि होता है ॥ ८२ ॥

उपयनयन नक्षत्रों का ज्ञान

श्रीपतिः—
सौम्ये पौष्णे वैष्णवे वासवाख्ये हस्तस्वातित्वाष्ट्रपौष्णाश्विभेषु।
ऋक्षेदित्ये मेखलाबंधमोक्षौ संस्मृज्येते नूनमाचार्यवर्यैः ॥ ८३ ॥

आचार्य श्रीपति जी ने बताया है कि सौम्य संज्ञक, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, हस्त, स्वाती, चित्रा, रेवती अश्विनी, पुनर्वसु नक्षत्र में श्रेष्ठ आचार्यों ने मेखलाबन्धन व मोक्ष करने को कहा है ॥ ८३ ॥

---

१. ज्यो० नि० १२३ पृ० ४३ श्लो०। २. ज्यो० नि० १२३ पृ० ४४ श्लो०।

यज्ञोपवीत मुहूर्त

राजमार्तंडे—

शुक्ले पक्षे शशिदिनकरे देवपूज्ये च सम्यक्
वारे भानोः सितस्य त्रिदशपतिगुरोश्चोत्तरे तिग्मभानौ।
हस्तश्चित्राश्विशक्रादितिवसुवरुणोपेन्द्रपुष्येन्दुपौष्णे
स्वातिष्वव्याहतासु स्मृतमुपनयनं भार्गवाद्यैर्मुनीन्द्रैः ॥ ८४ ॥

राजमार्तण्ड में कहा कि शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा, सूर्य, गुरु के शुद्ध रहने पर सूर्य, शुक्र, गुरुवार, उत्तरायण, हस्त, चित्रा, अश्विनी, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, धनिष्ठा, शतभिषा, श्रवण, पुष्य, मृगशिरा, रेवती, स्वाती नक्षत्र में वेध न हो तो भार्गवादि श्रेष्ठ ऋषियों ने यज्ञोपवीत करना बताया है ॥ ८४ ॥

व्यवहारचण्डेश्वरः--

हस्तत्रये दैत्यरिपुत्रये च शक्रेंदुपुष्याश्विनिरेवतीषु।
वारेर्कशुक्रज्ञबृहस्पतीनां हितानुबंधी द्विजमौंजिबंधः ॥ ८५ ॥

व्यवहार चण्डेश्वर में कहा है कि हस्त से तीन (हस्त, चित्रा, स्वाती) श्रवण से तीन (श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा) नक्षत्र, ज्येष्ठा, मृगशिरा, पुष्य, अश्विनी, रेवती नक्षत्र, सूर्य, शुक्र, बुध, गुरुवार में व्रतबन्ध शुभ होता है ॥ ८५ ॥

ब्राह्मणों को वर्जित नक्षत्र

सार्पिविशाखापितृपूर्वभाद्रपदं कृशानुर्जलमुत्तराश्च।
याम्यं द्विजानां व्रतबंधनेऽत्र मृत्युर्भवेत्पूर्वमुनिप्रवादः ॥ ८६ ॥

आश्लेषा, विशाखा, मघा, पूर्वाभाद्रपद, कृत्तिका, शतभिषा, भरणी नक्षत्र में ब्राह्मण वटु का व्रतबन्ध करने पर मरण होता है, ऐसा प्राचीन मुनियों का कहना है ॥ ८६ ॥

मैत्रादितिब्राह्मभगार्कमूलऋक्षेषु पंचस्वपि तन्निषेधः।
कालातिवाहे तु विना विधेयं कर्तव्यमत्रापि हि मौंजिबंधः ॥ ८७ ॥

अनुराधा, पुनर्वसु, रोहिणी, पूर्वा फाल्गुनी, मूल, इन पाँचों नक्षत्रों में ब्राह्मण बालक का व्रतबन्ध नहीं करना किन्तु यदि काल का अतिक्रमण होता हो तो इन में भी यज्ञोपवीत करना चाहिये ॥ ८७ ॥

उत्तम मुहूर्त ज्ञान

[1]समुच्चये—

पूर्वाषाढहरित्रयेश्विमृगभे हस्तत्रये रेवती
ज्येष्ठापुष्यभगेषु चोत्तरगते भानौ च पक्षे सिते।
गोमीनौ प्रमदा धनुर्वनचरे शुक्रार्कजीवे तिथौ
पंचम्यां दशमी त्रये व्रतमिह श्रेष्ठं द्वितीयाद्वयम् ॥ ८८ ॥

---

१. ज्यो० सा० १०० पृ०।

समुच्चय में बताया है कि पूर्वाषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी, मृगशिरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, रेवती, ज्येष्ठा, पुष्य, पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र, उत्तरायण, शुक्ल पक्ष, वृष, मीन, कन्या, धनु, सिंह लग्न में, शुक्र, सूर्य गुरुवार, पञ्चमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, द्वितीया, तृतीया तिथि में यज्ञोपवीत उत्तम होता है ।। ८८ ।।

प्रकारान्तर से

ज्येष्ठापुष्यहरित्रयाश्विमृगभे हस्तत्रये पूषभे
वारे सूर्यबृहस्पतीन्दुजभृगौ सूर्ये च सौम्यायने ।
सिंहे तौलिमृगांगनाह्यझषे लग्ने च पक्षे सिते
मौंजीबंधनमामनंति मुनयस्ताराधिपे शोभने ।। ८९ ।।

ज्येष्ठा, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी, मृगशिरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, रेवती नक्षत्र, सूर्य, गुरु, बुध, शुक्रवार, उत्तरायण, सिंह, तुला, मकर, कन्या, धनु, मीन लग्न, शुक्ल पक्ष में चन्द्र के शुभ होने पर ऋषियों ने व्रतबन्ध को शुभ बताया है ।।८९।।

व्रतबन्ध में त्याज्य योग

बृहस्पतिः—
व्याघातं परिघं वज्रं व्यतीपातोथ वैधृतिः ।
गण्डातिगण्डशूलं च विष्कंभं नव वर्जयेत् ।। ९० ।।

बृहस्पति जी ने बताया है कि व्याघात, परिघ, वज्र, व्यतीपात, वैधृति, गण्ड, अतिगण्ड, शूल और विष्कम्भ इन नौ योगों का यज्ञोपवीत में त्याग करना चाहिये ।। ९० ।।

अथ वेदपरत्वे नक्षत्रविचारः—

अब आगे स्ववेदानुसार यज्ञोपवीत के नक्षत्रों को बताते हैं ।

[1]संग्रहे—
पूर्वाहस्तत्रयं ह्यार्द्रा श्रुतिमूलेषु ऋग्चाम् ।
यजुषां पौष्णमैत्रार्कादित्यपुष्यमृदुध्रुवैः ।। ९१ ।।

ऋग्वेद व यजुर्वेदी के उपनयन नक्षत्र सङ्ग्रह में बताया है कि पूर्वात्रय, हस्त, चित्रा, स्वाती, आर्द्रा, श्रवण, और मूल नक्षत्र में ऋग्वेदी का तथा रेवती, अनुराधा, हस्त, पुनर्वसु, पुष्य, सौम्य व ध्रुव संज्ञक नक्षत्रों में यजुर्वेदी बालक का यज्ञोपवीत करना चाहिये ।। ९१ ।।

सामवेदी व अथर्ववेदी के नक्षत्र

सामगानां हरीशार्कवसुपुष्योत्तराश्विभैः ।
धनिष्ठादितिमैत्रार्केष्विदुपौष्णेष्वथर्वणाम् ।। ९२ ।।

---

१. ज्यो० नि० १२४ पृ० ६२-६३ श्लो० ।

सङ्ग्रह में कहा है कि श्रवण, आर्द्रा, धनिष्ठा, पुष्य, तीनों उत्तरा और अश्विनी में सामवेदी का एवं धनिष्ठा, पुनर्वसु, अनुराधा, हस्त, मृगशिरा और रेवती नक्षत्र में अथर्ववेदी का यज्ञोपवीत करना चाहिये ॥ ९२ ॥

प्रकारान्तर से ऋग्वेदी के नक्षत्र

अन्यत्रापि—

मूले हस्तत्रये सार्पे शैवे पूर्वात्रये श्रुतौ ।
ऋग्वेदाध्यायिनां कार्यं मेखलाबंधनं बुधैः ॥ ९३ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि विद्वानों ने मूल, हस्त, चित्रा, स्वाती, आश्लेषा, आर्द्रा, तीनों पूर्वा तथा श्रवण नक्षत्र में ऋग्वेदियों का मेखलाबन्धन करने को बताया है ॥९३॥

यजुर्वेदियों के नक्षत्र

पुष्ये पुनर्वसौ पौष्णे हस्ते मैत्रे शशांकभे ।
ध्रुवेषु च प्रशस्तं स्याद्यजुषां व्रतबंधनम् ॥ ९४ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि पुष्य, पुनर्वसु, रेवती, हस्त, अनुराधा, मृगशिरा व ध्रुव संज्ञक नक्षत्रों में यजुर्वेदियों का व्रतबन्ध प्रशस्त होता है ॥ ९४ ॥

सामवेदियों के नक्षत्र

पुष्यवासवहस्ताश्विशिवकर्णोत्तरात्रयम् ।
प्रशस्तं रशनाबंधं बटूनां सामगायिनाम् ॥ ९५ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि पुष्य, धनिष्ठा, हस्त, अश्विनी, आर्द्रा, श्रवण, तीनों उत्तरा नक्षत्र में सामवेदियों का मेखलाबन्धन शुभ होता है ॥ ९५ ॥

अथर्ववेदियों के नक्षत्र

मृगमैत्राश्विनीहस्तरेवत्यदितिवासवम् ।
अथर्वशाखिनां शस्तो भगणोयं व्रतार्पणे ॥ ९६ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि मृगशिरा, अनुराधा, अश्विनी, हस्त, रेवती, पुनर्वसु, धनिष्ठा नक्षत्र में अथर्ववेदियों का यज्ञोपवीत करना चाहिये ॥ ९६ ॥

दूषित नक्षत्र

ज्योतिःप्रकाशे—

ग्रहणोत्पातऋक्षे च विद्धर्क्षे पापसंयुते ।
व्रतबंधे द्विजातीनां मृत्युरोगौ न संशयः ॥ ९७ ॥

ज्योतिष्प्रकाश नामक ग्रन्थ में कहा है कि ग्रहण व उत्पात नक्षत्र, विद्ध और पाप ग्रह से युक्त नक्षत्र में यज्ञोपवीत करने से मृत्यु या रोग अवश्य होता है ॥ ९७ ॥

सप्तशलाका चक्र की विशेषता

चक्रे सप्तशलाकाख्ये सर्वकर्माणि निश्चितम् ।
वर्जयित्वा विवाहं च कुर्याद्वेधस्य निर्णयः ॥ ९८ ॥

ज्योतिः प्रकाश ग्रन्थ में कहा है कि सप्तशलाका चक्र से विवाह के नक्षत्र को छोड़ कर अन्य समस्त शुभ काम के नक्षत्र का वेध देख कर निर्णय करना चाहिये ।। ९८ ।।

वेधित नक्षत्र का त्याग

कर्णवेधे विवाहे च व्रते पुंसवने तथा ।
प्राशने अन्नचूडायां विद्धमृक्षं विवर्जयेत् ।। ९९ ।।

ज्योतिः प्रकाश में कहा है कि कर्णवेध, विवाह, यज्ञोपवीत, पुंसवन, अन्नप्राशन व चौल संस्कार में वेधित नक्षत्र का त्याग करना चाहिये ।। ९९ ।।

यज्ञोपवीत में वर्जित काल

[१]कृष्णे प्रदोषेऽनध्याये शनौ निश्यपराह्णके ।
प्राक्संध्यागर्जितो नेष्टो व्रतबंधो गलग्रहे ।। १०० ।।

मुहूर्तचिन्तामणि में बताया है कि कृष्ण पक्ष की पंचमी के पश्चात्, प्रदोष में अनध्याय में, शनिवार, रात्रि, अपराह्न, बादलों के गरजने पर और गलग्रह दोष में यज्ञोपवीत नहीं करना चाहिये ।। १०० ।।

अथ लग्नफलम्—

अब आगे बारह राशियों की लग्न में यज्ञोपवीत करने के फल को बताते हैं ।

मेष, वृष, मिथुन, कर्क लग्न का फल

जडत्वं मेषलग्ने स्याद्विद्यावित्त वृषोदये ।
ज्ञानी च मिथुने लग्ने कुलीरे च षडंगवित् ।। १०१ ।।

ग्रन्थान्तर में बताया है कि मेष लग्न में यज्ञोपवीत करने पर वटु मूर्ख, वृष में विद्वान्, धनी, मिथुन में ज्ञानी और कर्क लग्न में यज्ञोपवीत करने से बालक वेद के ६ अङ्गों को जानने वाला होता है ।। १०१ ।।

सिंह, कन्या; तुला, वृश्चिक लग्न का फल

शिल्पिकर्मकरः सिंहे पंडितः कन्यकोदये ।
तुलोदये वणिक्जीवी वृश्चिके रोगभाग्भवेत् ।। १०२ ।।

सिंह लग्न में जनेऊ करने से शिल्पी (चित्र) काम कर्ता, कन्या में पण्डित, तुला में व्यापारी और वृश्चिक लग्न में जनेऊ करने पर बालक रोगी होता है ।। १०२ ।।

धनु, मकर, कुम्भ, मीन लग्न का फल

पूज्यो धनाढ्यो धनुषि शूद्रवृत्तिर्मृगे भवेत् ।
नृपप्रेष्यो घटे लग्ने झषे वेदार्थविद्धनी ।। १०३ ।।

धनु लग्न में यज्ञोपवीत करने पर शिशु पूज्य, धनी, मकर में शूद्र वृत्तिवाला, कुम्भ में राजा का नौकर और मीन लग्न में यज्ञोपवीत करने पर बालक वेद के अर्थ को जानने वाला तथा धनी होता है ।। १०३ ।।

---

१. मु० चिं० ५ प्र० ४८ श्लो० ।

१२ राशियों के नवांश में यज्ञोपवीत का फल

वाक्कुण्ठः श्रुतिमान् वक्ता जडः क्रूरोर्थवान्गुणी ।
क्रूरः पूज्यः खलः प्रेष्यो धीमान् मेषादिकेंशके ॥ १०४ ॥

जिसका मेष के नवांश में यज्ञोपवीत होता है वह कुण्ठित वाणी वाला, वृष के नवांश में शास्त्रज्ञ, मिथुन में वक्ता, कर्क में मूर्ख, सिंह में क्रूर, कन्या में धनी, तुला में गुणी, वृश्चिक में क्रूर, धनु में पूजनीय, मकर में दुष्ट, कुम्भ में नौकर और मीन राशि के नवांश में यज्ञोपवीत करने से बालक बुद्धिमान होता है ॥ १०४ ॥

सूर्यादि के नवांश में होने का फल

रव्याद्यंशैः क्रमात्क्रूरो जडः पापरतः सुधीः ।
यज्वा च दीक्षितो मूर्खः षडवर्गेणापि तत्फलम् ॥ १० ॥

जिसका सूर्य के नवांश में यज्ञोपवीत होता है वह बालक क्रूर, चन्द्र के में मूर्ख, मङ्गल के में यज्ञकर्ता, शुक्र के में दीक्षित और शनि के नवांश में जनेऊ करने से बालक मूर्ख होता है । यही फल षड्वर्ग का भी होता है ॥ १०५ ॥

लग्न में गुरु की विशेषता

गुरुः—

जीवोदये जीवगृहोदये वा जीवांशके जीवनिरीक्षिते वा ।
अल्पश्रुतोपि व्रतबंधनेषु वागीशतुल्यो भवति द्विजेन्द्रः ॥ १०६ ॥

जब कि व्रतबन्ध की लग्न में गुरु हो या गुरु की राशि हो या गुरु के नवांश में गुरु से दृष्ट लग्न हो तो अल्पज्ञ बालक भी वृहस्पति के समान होता है ॥ १०६ ॥

लग्नशुद्धि ।

श्रीपतिः—

लग्ने जीवे भार्गवे च त्रिकोणे शुक्रांशस्थे स्याद्विधौ वेदवेदी ।
सौरांशस्थे सूरिलग्ने सशुक्रे विद्याशीलप्रोज्झितः स्यात्कृतघ्नः ॥१०७॥

आचार्य श्रीपतिजी ने बताया है कि व्रतबन्ध की लग्न में गुरु, त्रिकोण (५।९) में शुक्र व शुक्र के नवांश में चन्द्रमा होने पर शिशु वेद ज्ञाता होता है । तथा शनि के नवांश में लग्न व उसमें शुक्र होने पर बालक विद्या, विनय से रहित एवं कृतघ्न होता है ॥ १०७ ॥

प्रकारान्तर से लग्न शुद्धि

[1]स्वानुष्ठाने रतः स्यात्प्रवरमतियुतः केंद्रसंस्थे सुरेज्ये
विद्यासौख्यार्थयुक्तो ह्युशनसि शशिजेऽध्यापकश्च प्रदिष्टः ।
सूर्ये राजोपसेवी भवति धरणिजे शस्त्रवृत्तिर्द्विजन्मा
शीतांशौ वैश्यवृत्तिर्दिनकरतनये सेवकश्चांत्यजानाम् ॥ १०८ ॥

१.मु० चि० ५ प्र० ५१ श्लो० पी० टी० ।

जब कि व्रतबन्ध लग्न से केन्द्र में गुरु होता है तो बालक अपने अनुष्ठान में आसक्त, श्रेष्ठ मतिमान्, शुक्र के केन्द्र में होने पर विद्या, सुख व धन से सम्पन्न, बुध के होने पर अध्यापक, सूर्य से राजकीय सेवक, मङ्गल से शस्त्र वृत्ति, चन्द्रमा से बनिया और केन्द्र में शनि के होने पर, बालक अन्त्यजों का नौकर होता है ।। १०८ ।।

पुनः प्रकारान्तर से सूर्यादि के नवांश में लग्न का फल

[1]शन्यंशे ह्युदयति मूर्खतार्कभागे क्रूरत्वं भवति च पापधीः कुजांशे ।
चन्द्रांशे त्वतिजडता बुधे पटुत्वं यज्ञत्वं गुरुभृगुभागयोर्गृणंति ।।१०९।।

श्रीपतिजी ने बताया है कि यदि व्रतबन्ध की लग्न में शनि का नवांश हो तो बालक मूर्ख, सूर्य के नवांश में क्रूर, मङ्गल के में पापबुद्धि, चन्द्रमा के में बड़ा मूर्ख, बुध के में चतुर और गुरु या शुक्र के नवांश में लग्न हो तो बालक यज्ञ करने वाला होता है ।। १०९ ।।

प्रकारान्तर से लग्न शुद्धि

[2]सार्के जीवे निर्गुणेर्थेन हीनः क्रूरः सारे स्यात्पटुः सत्समेते ।
भानोः पुत्रे नालसो निर्गुणश्च स्याच्छुक्रेन्दू जीववत्संप्रकल्प्यौ ।।११०।।

यज्ञोपवीत लग्न में सूर्य गुरु निर्बल होने पर धनहीन, मङ्गल गुरु से क्रूर, शुभ से युक्त गुरु होने पर चतुर, शनि गुरु लग्न में होने पर निर्गुण व आलस से हीन और व्रतबन्ध की लग्न में शुक्र चन्द्रमा होने पर गुरु की तरह फल समझना चाहिए ।।११०।।

जीवशुक्रबुधाः केन्द्रे बलिनोर्केन्दुवेदपाः ।
उपनीतस्तदा शिष्यो दीर्घायुर्यज्ञकृद्भवेत् ।। १११ ।।

यज्ञोपवीत लग्न से केन्द्र में गुरु, बुध, शुक्र हों तथा सूर्य, चन्द्र व वेद स्वामी बली होने पर जिसका यज्ञोपवीत होता है वह शिशु दीर्घायु तथा यज्ञ करने वाला होता है ।। १११ ।।

लग्न शुद्धि में विशेष

[3]संग्रहे—
मौंजीबंधे विशेषेण प्राग्लग्नं पंचमं तथा ।
भाव्यं क्रूरग्रहैर्मुक्तं भृगुराह तथाष्टमम् ।। ११२ ।।
मेखलाबंधकार्ये च सर्वथा पञ्चमं गृहम् ।
शुभयुक्तं प्रशंसीत तदालिखितमेव च ।। ११३ ।।

संग्रह ग्रन्थ में कहा है कि व्रतबन्ध की लग्न व विशेष कर पञ्चम भाव तथा अष्टम भाव क्रूरग्रहों से हीन एवं शुभयुक्त होना चाहिये, ऐसा भृगु ने बताया है ।।११२-११३।।

---

१. मु० चि० ५ प्र० ५१ श्लो० पी० टी० ।
२. मु. चि. ५ प्र. ५२ श्लो. पी. टी. । ३. ज्यो० नि० १२५ पृ० ९० श्लो० ।

अथ ग्रहाणां पृथक् स्थानफलम्—

अब आगे ग्रहों के भावस्थ फल को पृथक्-पृथक् बताते हैं।

लग्न चक्रस्थ १२ भावों में सूर्य का फल

गुरुः—

मृत्युर्हानिर्ज्ञानवान् बंधुनाशः काणो हीनो व्याधिहा दाहकारी।
व्याधिप्राप्तः सुन्दरः कर्मसिद्धिर्ज्ञानी हानिर्लग्नतः सूर्ययोगात् ॥११४॥

बृहस्पतिजी ने बताया है कि व्रतबन्ध लग्न में सूर्य के होने पर मरण, दूसरे भाव में होने से हानि, तीसरे में ज्ञानी, चौथे में बान्धव विनाश, पाँचवें में काना, छठे में हीन, सातवें में व्याधिहन्ता, आठवें में सन्तापी, रोगी, नवे में सुन्दर, दसवें में कार्य सिद्धिकर्ता, ग्यारहवें में ज्ञानी और व्रतबन्ध लग्न से बारहवें में सूर्य हो तो बालक को हानि होती है ॥११४॥

व्रतबन्ध में द्वादश भावस्थ चन्द्र का फल

कृष्णे नेष्टो द्रव्यवृद्धिः प्रमोदो बंधोर्वृद्धिः कृष्णचंद्रस्तु नेष्टः।
शत्रोर्हानिः शास्त्रद्रष्टा च रोगी धर्मी कर्मी लाभदो वित्तनाशः ॥११५॥

लग्नस्थ कृष्ण पक्षी चन्द्रमा अशुभ, दूसरे में धन वृद्धिकर्ता, तीसरे में प्रसन्नता, चौथे में बान्धव वृद्धि, पाँचवें में क्षीण अशुभ, छठे में शत्रुनाश, सातवें में शास्त्रद्रष्टा, आठवें में रोगी, नवें में धार्मिक, दसवें में कर्मठ, ग्यारहवें में लाभद और यज्ञोपवीत लग्न से बारहवें चन्द्रमा होने पर बालक का धन नष्ट होता है ॥ ११५ ॥

द्वादश भावस्थ भौम का फल

शीघ्रं वृद्धिश्चौरभीतिः सुखी च सत्याहीनो धीविनाशश्च सौख्यम्।
दाहो मृत्युर्द्रव्यवृद्धिस्त्वकर्मी लाभो नाशो मूर्तितो भूमिजश्चेत् ॥११६॥

व्रतबन्ध की लग्न में मङ्गल के होने पर शीघ्र वृद्धि दूसरे में चोर भय, तीसरे में सुखी, चौथे में सच बोलनेवाला, पाँचवें में बुद्धि नाश, छठे में सुख, सातवें में सन्ताप, आठवें में मरण, नवें में धनवृद्धि, दसवें में आलसी, ग्यारहवें में लाभ और बारहवें भाव में होने से नाश होता है ॥ ११६ ॥

द्वादश भावस्थ बुध का फल

सौम्ये विद्याद्रव्यवान्हर्षयुक्तः बंधोः सौख्यं सत्कवित्वे निरोगी।
वृद्धिश्चायुर्धर्मयुक्तः सुकर्मी द्रव्यप्राप्तिः पुण्यमार्गे व्ययः स्यात् ॥११७॥

व्रतबन्ध की लग्न में बुध होने पर बालक विद्वान्, लग्न से दूसरे में धनवान्, तीसरे में प्रसन्न, चौथे में बान्धव से सुख, पाँचवें में अच्छा कवि, छठे में निरोग, सातवें में बुद्धिमान्, आठवें में चिरायु, नवें में धार्मिक, दसवें में सुन्दर कार्यकर्ता, ग्यारहवें में धनलब्धि और बारहवें भाव में बुध के होने से वह धार्मिक कामों में व्यय करनेवाला होता है ॥ ११७ ॥

लग्न से बारह भावों में गुरु का फल

कीर्तिर्द्रव्यो बन्धुभिर्निन्दितश्च सौख्यं कीर्तिः शत्रुपक्षक्षयं च।
द्रव्यप्राप्तिर्दीर्घजीवी च धर्मी भोगो कीर्तिर्द्रव्यवान्देवपूज्यः ।।११८।।

व्रतबन्ध की लग्न में गुरु होने से कीर्तिमान, दूसरे में धनी, तीसरे में बान्धवों से निन्दित, चौथे में सुखी, पाँचवें में कीर्तिमान, छठे में शत्रुओं का विनाशी, सातवें में धनलब्धि, आठवें में दीर्घायु, नवें में धार्मिक, दसवें में भोगी, ग्यारहवें में कीर्तिमान और यज्ञोपवीत लग्न से बारहवें भाव में गुरु के होने पर वटु धनवान् होता है ॥ ११८ ॥

लग्न से बारह भावों में शुक्र का फल

लोभी भोगी ज्ञानवान् बन्धुवृद्धिर्धीमान् शत्रोर्नाशकः शास्त्रद्रष्टा।
नाशो धर्मी सुप्रियश्चैव सौख्यं वित्तप्राप्तिर्लग्नतः शुक्रयोगात् ।।११९।।

व्रतबन्ध की लग्न में शुक्र होने पर बालक लोभी, दूसरे में भोगी, तीसरे में ज्ञानी, चौथे में बन्धु वृद्धि, पाँचवें में बुद्धिमान्, छठे में शत्रुनाशक, सातवें में शास्त्रद्रष्टा, आठवें में विनाश, नवें में धार्मिक, दसवें में सुन्दर प्रिय, ग्यारहवें में सुखी और यज्ञोपवीत लग्न से बारहवें भाव में शुक्र के होने पर बालक धनप्राप्ति करनेवाला होता है ॥ ११९ ॥

लग्न से बारह भावों में शनि का फल

रोगी चौरो ज्ञानवान्सप्रमादो रोगी कीर्तिर्मृत्युभीतिश्च मूर्खः।
मूर्खश्चापि ज्ञानवान्कुव्ययी च शौरिश्चैवं राहुकेतू च लग्नात् ।।१२०।।

व्रतबन्ध लग्न में शनि के होने से बालक रोगी, दूसरे में चोर, तीसरे में ज्ञानी, चौथे में प्रमादी, पाँचवें में रोगी, छठे में कीर्तिमान, सातवें में मरण, आठवें में भय, नवें में मूर्ख, दसवें में बड़ा मूर्ख, ग्यारहवें में ज्ञानी और उपनयन लग्न से बारहवें भाव में शनि के होने से वटु दूषित काम में व्यय करनेवाला होता है और शनि के समान राहु केतु का फल भी समझना चाहिये ॥ १२० ॥

नवमे दशमे राहुर्म्लेच्छः पापी तदा भवेत्।
व्रतबन्धे च मोक्षे च शेषस्थाने च सूर्यवत् ॥ १२१ ॥

व्रतबन्ध लग्न से नवें या दसवें राहु होने पर बालक म्लेच्छ व पापी होता है तथा व्रतमोक्ष में भी शेष स्थानों का सूर्य की तरह फल समझना चाहिये ॥ १२१ ॥

केन्द्रस्थ सूर्यादि ग्रहों का फल

[1]संग्रहे—
केंद्रास्थतैरिनाद्यैर्नृपसेवाविट्क्रियोस्त्रवृत्तिश्च।
वेदाभ्यासी यज्वा क्रतुकर्ता हीनसेवको भवति ॥ १२२ ॥

---

१. ज्यो० नि० १२४ पृ० ८१ श्लो०।

व्रतबन्ध की लग्न से केन्द्र में सूर्य के होने पर बालक राजा का सेवक, चन्द्रमा से विदूषक, भौम से अस्त्र वृत्तिवाला, बुध से वेदाभ्यासी, गुरु से यजनकर्ता, शुक्र से यज्ञ करनेवाला और केन्द्र में शनि हो तो बालक दीनजनों का दास होता है ॥ १२२ ॥

अन्य लग्नशुद्धि योग

[1]सिते त्रिकोणगे चंद्रे शुक्रांशे लग्नगे गुरौ ।
उपनीतो भवेद्विप्रो वेदशास्त्रार्थपारगः ॥ १२३ ॥

व्रतबन्ध लग्न से ५ या ९ में शुक्र, शुक्र के नवांश में चन्द्रमा और लग्न में गुरु होने पर जिसका यज्ञोपवीत होता है, वह वेद शास्त्र का पूर्ण ज्ञाता होता है ॥ १२३ ॥

लग्न से वर्जित ग्रह

चंद्रक्रूरास्तु नो नेष्टाः सर्वे रंध्रे व्यये कविः ।
सितेन्दुलग्नपाः षष्ठे मौंजीविद्यासु कर्मसु ॥ १२४ ॥

व्रतबन्ध लग्न में चन्द्र व पाप ग्रह का, आठवें में सब ग्रहों का, बारहवें में शुक्र का और छठे भाव में शुक्र, चन्द्रमा व लग्नेश का त्याग करना चाहिये ॥ १२४ ॥

अशुभ स्थानस्थ ग्रह के दोष का दूरीकरण

[2]अनिष्टस्थानगोप्यत्र ग्रहः कोपि न दोषकृत् ।
शुभदृष्टः शुभो यस्मात् सौम्यवर्गे यदि स्थितः ॥ १२५ ॥

व्रतबन्ध लग्न में दूषित स्थान में स्थित ग्रह का दोष नहीं होता । यदि वह शुभ ग्रह से दृष्ट हो तथा शुभ ग्रहों के वर्ग में स्थित होता है तो दोष का अभाव जानना चाहिये ॥ १२५ ॥

प्राणहन्ता योग

[3]रन्ध्रांत्यारिगतः शुक्रो लग्नेशो वा षडष्टगः ।
चन्द्रे लग्नारिरन्ध्रस्थे वटोः प्राणापहारकः ॥ १२६ ॥

व्रतबन्ध लग्न से ८।१२।६ में शुक्र हो या लग्नेश छठे या आठवें हो तथा चन्द्रमा लग्न या छठे या आठवें में होने पर यज्ञोपवीत होने से शिशु का मरण होता है ॥१२६॥

मौंजीबन्धे विशेषेण प्राग्लग्नं पञ्चमं तथा ।
भव्यं क्रूरग्रहैर्मुक्तं भृगुराह तथाष्टकम् ॥ १२७ ॥

इसका अर्थ ११२ श्लोक में है अर्थात् द्वितीय बार आया है ॥ १२७ ॥

लग्नबल तथा दशमस्थ

मौंजीपटले—

[4]शुभदो बलवान्भानुः लग्नगो दशमस्तथा ।
सर्वशाखाधिपा यस्मात् सर्वेषां व्रतबन्धने ॥ १२८ ॥

---

१. ज्यो. नि. १२४ पृ. ८२ श्लो. । २. ज्यो, नि. १२४ पृ. ८५ श्लो. ।
३. ज्यो. नि. १२५ पृ. ८७ श्लो. । ४. ज्यो. नि. १२५ पृ. ९१–९२ श्लो. ।

मौञ्जीपटल में कहा है कि व्रतबन्ध में लग्नस्थ सूर्य शुभ फलदायक होता है, क्योंकि सूर्य सब वेदों का स्वामी होता है ॥ १२८ ॥

सर्वशाखाधिपो भानुः केचिदूचुर्महर्षयः ।
तस्माद्‌गत्यन्तराभावे लग्नस्थोर्कः प्रशस्यते ॥ १२९ ॥

किसी-किसी ऋषि ने सूर्य को समस्त शाखाधिप माना है । इसलिए अगतिक स्थिति में केवल लग्न में सूर्य हो तो शुभ फलदाता होता है ॥ १२९ ॥

लग्न में चन्द्रमा का फल

नारदः--

[1]स्वोच्चसंस्थेपि शीतांशुर्व्रतिनो यदि लग्नगः ।
तं करोति शिशुं निस्वं सततं क्षयरोगिणम् ॥ १३० ॥

ऋषि नारदजी ने बताया है कि व्रती की लग्न में स्वोच्चस्थ चन्द्रमा होने पर भी बालक को निर्धन व निरन्तर क्षयरोगी बनाता है ॥ १३० ॥

बृहस्पतिः--

[2]चन्द्रोदयेऽभिशस्तःस्यात्क्षयरोगी सितेतरे ।
सिते पक्षे भवेद्यज्वा स्वभे तुंगे विशेषतः ॥ १३१ ॥

बृहस्पतिजी ने बताया है कि लग्न में शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा शुभ और कृष्ण पक्ष का शिशु को क्षय रोगी करता है । विशेष कर उच्चस्थ या स्वराशिस्थ शुक्लपक्षीय चन्द्रमा बालक को लग्न में होने पर यज्ञ करने वाला बनाता है ॥ १३१ ॥

लग्न शुद्धि

संग्रहे--

[3]लग्नाश्रितेषु रन्ध्रेषु पापेषु मरणं बटोः ।
सौख्यं स्यात्त्रिषडायेषु जडत्वमितरेषु च ॥ १३२ ॥

संग्रह में बताया है कि लग्न व रन्ध्र (८) में पापग्रह हो तो बालक का मरण और ३।६।११ में पापग्रह होने पर सुख तथा अन्य स्थान में व्रतबन्ध लग्न से पापग्रहों की सत्ता से शिशु मूर्ख होता है ॥ १३२ ॥

शुभग्रहों के शुभ स्थान

अरन्ध्रारिगताः श्रेष्ठाः शुभा सर्वत्रगा व्रते ।
व्ययेपि न शुभः प्रोक्तो तथाब्जे दृष्टलग्नगाः ॥ १३३ ॥

८।६ स्थान को छोड़कर व्रतबन्ध में सब स्थानों में ग्रह शुभ होते हैं । तथा व्यय स्थान में भी ग्रह शुभ नहीं होता और लग्न में चन्द्र शुभ से दृष्ट शुभ नहीं होता है ॥ १३३ ॥

---

१. ज्यो. नि. १२५ पृ. ९३ श्लो. । २. ज्यो. नि. १२५ पृ. ९४ श्लो. ।
३. ज्यो. नि. १२५ पृ. ९६–९७ श्लो. ।

विशेष—इसका चतुर्थ चरण शुद्ध नहीं है। ज्योतिर्निबन्ध में यह 'व्ययेऽपि न शुभ शुक्रस्तथाऽब्जोऽर्यष्टलग्नगः' उचित पाठ मिलता है। अर्थात् बारहवें शुक्र तथा ६।८।१ में चन्द्रमा शुभ नहीं होता है ॥ १३३ ॥

दूषित ग्रहण का परिहार

वृहस्पतिः—

अनिष्टस्थानगोप्यत्र ग्रहः कोपि न दोषकृत् ।
सद्वर्गे शुभदृष्टो वा स्वोच्चे स्वर्क्षे विशेषतः ॥ १३४ ॥

वृहस्पतिजी ने बताया है कि कोई भी ग्रह दूषित स्थान में स्थित होकर यदि शुभग्रह के वर्ग में या शुभग्रह से दृष्ट या विशेष कर अपनी राशि या उच्च राशि में स्थित हो तो दोषदायी नहीं होता है ॥ १३४ ॥

अन्य योग

[1]विद्यां प्राप्तां विनश्येतां भौममन्दौ द्वितीयगौ ।
अन्योन्यमथवा दृष्टौ द्वादशस्थौ तु बन्धदौ ॥ १३५ ॥

मंगल और शनि जब व्रतबन्ध लग्न से दूसरे स्थान में स्थित हों या परस्पर में दृष्ट हों तो विद्या का अभाव होता है। ये दोनों बारहवें हों तो बन्धनकारक होते हैं ॥ १३५ ॥

[2]यथोक्तसमयालाभे योगान्वच्मि शुभप्रदान् ।
द्विजन्मकालसंसूतान्वसिष्ठाङ्गिरसोक्तितः ॥ १३६ ॥

अब मैं उक्त शुभ समय की प्राप्ति न होने पर वसिष्ठ व आङ्गिरस मुनि कथित व्रतबन्ध लग्न के योगों को कहता हूँ ॥ १३६ ॥

केन्द्रत्रिकोणगे जीवे भानुः शुक्रेऽथवा व्यये ।
द्वितीये ज्ञे शुभो योगो द्विजानामुपनायने ॥ १३७ ॥

व्रतबन्ध लग्न से केन्द्र या त्रिकोण में गुरु के रहने तथा बारहवें में सूर्य या शुक्र एवं द्वितीय स्थान में बुध के होने पर शुभ योग होता है ॥ १३७ ॥

धार्मिक योग

लग्नार्थभ्रातृगे शुक्रे जीवे कोणार्थकंटके ।
त्रिषडेकादशे क्रूरे व्रती भवति धार्मिकः ॥ १३८ ॥

व्रतबन्ध लग्न में या २।३ में शुक्र, ५।९।२।१।४।७।१० में गुरु तथा ३।६।११ में पापग्रह होने पर बालक धार्मिक होता है ॥ १३८ ॥

वेदार्थ वेत्ता योग

गुरौ केन्द्रे भवे भानौ चन्द्रे शुभनवांशके ।
कर्किचापझषस्थेऽस्मिन्व्रती वेदार्थविद्भवेत् ॥ १३९ ॥

---

१. ज्यो. नि. १२५ पृ. १०२ श्लो.। २. ज्यो. नि. १२५ पृ. १०३–१०५ श्लो.।

व्रतबन्ध लग्न से केन्द्र में गुरु, ग्यारहवें में सूर्य और शुभ ग्रह के नवांश में कर्क, धनु, मीन में चन्द्रमा होने पर जिसका उपनयन होता है वह वेद के अर्थ को जानने वाला होता है ॥ १३९ ॥

अन्य शुभ योग

[1]दशमायोदये जाताः शुक्रभान्विदुजाः क्रमात् ।
चन्द्रे शुभनवांशस्थे योगः स्यादुपनायने ॥ १४० ॥

व्रतबन्ध लग्न से दसवें स्थान में शुक्र, ग्यारहवें में सूर्य और लग्न में बुध तथा शुभ ग्रह के नवांश में चन्द्रमा के रहने पर शुभ योग होता है ॥ १४० ॥

चैत्र की विशेषता

मौंजीपटले—
अतीव दुष्टे सुरराजपूज्ये सिंहस्थिते वा द्विजपुंगवानाम् ।
व्रतस्य बन्धः खलु मासि चैत्रे कृतश्चिरायुः सुखसंपदः स्यात् ॥ १४१ ॥

मौञ्जीपटल में कहा है कि गुरु के अत्यन्त दूषित होने पर या सिंह राशि में रहने पर भी चैत मास में ब्राह्मणादि का यज्ञोपवीत करने पर शिशु दीर्घायु तथा सुखी व संपन्न होता है ॥ १४१ ॥

गर्गः—
[2]शुद्धिर्न विद्यते यस्य प्राप्ते वर्षेऽष्टमे यदि ।
चैत्रे मीनगते भानौ तस्योपनयनं शुभम् ॥ १४२ ॥

गर्गजी ने बताया है कि जिसका आठवाँ वर्ष तो है किन्तु गुरु शुद्ध नहीं है तो ऐसे वटु का चैत मास में मीनस्थ सूर्य में यज्ञोपवीत शुभ होता है ॥ १४२ ॥

नष्टे शुक्रे गुरौ चास्ते गुर्वादित्ये मलिम्लुचे ।
तत्रोपनयनं कार्यं चैत्रे मीनगते रवौ ॥ १४३ ॥

शुक्र या गुरु के अस्त, गुर्वादित्य, अधिक मास में भी मीन के सूर्य में (चैत मास में) यज्ञोपवीत करना चाहिये ॥ १४३ ॥

नष्टे शुक्रे तथा जीवे दुर्बले चन्द्रभास्करे ।
तत्रोपनयनं कार्यं चैत्रे मीनगते रवौ ॥ १४४ ॥

शुक्र गुरु के अस्त में, दुर्बल चन्द्र, सूर्य होने पर भी मीनस्थ सूर्य में चैत मास में यज्ञोपवीत करना चाहिये ॥ १४४ ॥

गोचराष्टकवर्गाभ्यां गुरुशुद्धिर्न लभ्यते ।
तत्रोपनयनं कार्यं चैत्रे मीनगते रवौ ॥ १४५ ॥

जब कि गोचर व अष्टकवर्ग से गुरु शुद्धि न मिले तो मीनस्थ सूर्य में चैत मास में जनेऊ करना चाहिये ॥ १४५ ॥

---

१. ज्यो नि. १२१ पृ. १७ श्लो. ।   २. मु. चिं. ५ पृ. ४७ श्लो. पी. टी. ।

जन्मभादष्टगे सिंहे नीचे वा शत्रुभे गुरौ।
मौंजीबन्धः शुभः प्रोक्तश्चैत्रे मीनगते रवौ ॥ १४६ ॥

जब कि जन्म राशि से अष्टम या सिंह राशि में या नीच या शत्रु राशि में गुरु हो तो भी चैत के महीने में मीनस्थ सूर्य में यज्ञोपवीत शुभ होता है ॥ १४६ ॥

जीवभार्गवयोरस्ते सिंहस्थे देवतागुरौ।
मेखलाबन्धनं शस्तं चैत्रे मीनगते रवौ ॥ ॥ १४७ ॥

जब कि गुरु, शुक्र अस्त हों तथा सिंहस्थ गुरु हो तो भी मीनस्थ सूर्य में चैत मास में मेखलाबन्धन शुभ होता है ॥ १४७ ॥

मीनस्थितेर्के खलु चैत्रमासे शुभप्रदो ब्राह्मणमौंजिबन्धनम् ॥ १४८ ॥

ब्राह्मण के बालकों का मीनस्थ सूर्य में चैत मास में उपनयन संस्कार शुभ होता है ॥ १४८ ॥

विशेष

मुहूर्ततत्त्वटीकायाम्—
सौम्यायने व्रतं कार्यं चैत्रे मासि विशेषतः।
विवाहं नैव मीनस्थे मेषेर्के च व्रतं नहि ॥ १४९ ॥

मुहूर्त तत्त्व टीका में कहा है कि विशेष कर उत्तरायण व चैत मास में व्रतबन्ध करना चाहिये। मीन के सूर्य में विवाह तथा मेष के सूर्य में यज्ञोपवीत नहीं करना चाहिये ॥ १४९ ॥

मीनस्थ सूर्य में निषेध

मीनस्थे पद्मिनीमित्रे नीचेरिस्थे च वाक्पतौ।
व्रतादिषु निषेधः स्याद्विन्ध्यस्योत्तरवासिनाम् ॥ १५० ॥

मीन के सूर्य व नीच या शत्रु राशिस्थ गुरु होने पर विन्ध्यपर्वत के उत्तर में रहने वालों को व्रतबन्धादि नहीं करना चाहिये ॥ १५० ॥

माता के गर्भिणी होने पर निषेध

गर्भिणी यस्य वै माता मासादूर्ध्वं तु पञ्चमात्।
तस्योपनयनं नैव प्रागेवादि हि कारयेत् ॥ १५१ ॥

जब कि बालक की माता पाँच मास से अधिक गर्भवती हो तो यज्ञोपवीत नहीं करना और पाँच मास से अल्प गर्भ हो तो करना चाहिये ॥ १५१ ॥

माता के रजस्वला होने पर विशेष

मनुः—
उद्वाहव्रतचूडासु यस्य माता रजस्वला।
तदा न मंगलं कार्यं शुद्धे कार्यं शुभेप्सुभिः ॥ १५२ ॥

ऋषि मनु ने बताया है कि विवाह, यज्ञोपवीत या चौल संस्कार में जिसकी माता पुष्पवती होती है तो उसका मङ्गल काम नहीं करना तथा कल्याण की इच्छा करने वाले को माता के शुद्ध होने पर करना चाहिये ॥ १५२ ॥

व्रतबन्ध में त्याज्य समय

[1]प्रदोषे निश्यनध्याये मन्दे कृष्णे गलग्रहे।
मधुं विना चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति ॥ १५३ ॥

वसन्त ऋतु के विना प्रदोष, रात्रि, अनध्याय, शनिवार, कृष्णपक्ष, गलग्रह में यज्ञोपवीत करने से वटु का दुबारा संस्कार करना पड़ता है ॥ १५३ ॥

विनर्तुना वसन्तेन कृष्णे पक्षे गलग्रहे।
अपराह्णे चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति ॥ १५४ ॥

वसन्त ऋतु को छोड़कर कृष्ण पक्ष, गलग्रह तथा अपराह्ण में जनेऊ करने पर बालक पुनः संस्कार करने योग्य होता है ॥ १५४ ॥

पुनर्वसु में निषेध

ताराचन्द्रानुकूलेपि ग्रहाब्देषु शुभेष्विह।
पुनर्वसौ कृती विप्रः पुनः संस्कारमर्हति ॥ १५५ ॥

व्रतवन्ध में चन्द्र व तारा के अनुकूल होने पर अभीष्ट वर्ष शुभ होने से भी पुनर्वसु में उपनयन करने पर दुबारा बालक संस्कार के योग्य होता है ॥ १५५ ॥

पुनः प्रकारान्तर से निषेध

देवेज्यशुक्रयोरस्ते पुनर्वसौ गलग्रहे।
उपनीतस्त्वनध्याये पुनः संस्कारमर्हति ॥ १५६ ॥
[2]अजिनं मेखला दण्डो भैक्षचर्या व्रतानि च।
निवर्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि ॥ १५७ ॥

गुरु शुक्र के अस्त में, पुनर्वसु, गलग्रह, अनध्याय में संस्कार करने पर दुबारा संस्कार करना चाहिये। दुबारा संस्कार करने में अजिन, मेखला, दण्ड, भिक्षाचरण और व्रत के नियम नहीं किये जाते ॥ १५६–१५७ ॥

पुनः प्रकारान्तर से निषेध

[3]यो न मन्त्रैः स्वशाखोक्तैः संस्कृतो नाधिकारिणा।
नासौ द्विजत्वमाप्नोति पुनः संस्करणं विना ॥ १५८ ॥

जिसका अधिकारी पुरुष के द्वारा अपनी शाखा के मन्त्रों से यज्ञोपवीत संस्कार नहीं होता तो वह ब्राह्मणत्व नहीं प्राप्त करता है। इसलिये उसका दुबारा यज्ञोपवीत करना चाहिये ॥ १५८ ॥

---

१. मु. चि ५ प्र. ४८ श्लो. पी. टी.। २. ज्यो. नि. १२२ पृ. ३७ श्लो.।
३. ज्यो. नि. १२२ पृ. ३९ श्लो.।

व्रतबन्ध के निषेधक उत्पात

व्रतेह्नि पूर्वसंध्यायां वारिदो यदि गर्जति।
तद्दिनं स्यादनध्यायं व्रतं तत्र न कारयेत् ॥ १५९ ॥

यज्ञोपवीत दिन से पूर्व के दिन यदि बादलों की गर्जना होती है तो उस दिन अनध्याय होता है। अतः यज्ञोपवीत नहीं करना चाहिये ॥ १५९ ॥

अभ्रिमा यानहीनस्तु जातिहीनस्तु गर्जिमा।
वृष्टिमा प्राणसंदेहो इत्येवं मुनिरब्रवीत् ॥ १६० ॥

ऋषि मनु ने बताया है कि यदि व्रत से पूर्व दिन बादल हो तो जनेऊ करने पर बालक वाहन से हीन, मेघों की गर्जना से जाति हीन और वर्षा हो तो प्राणों का सन्देह होता है ॥ १६० ॥

दोष का परिहार

अभ्रिमा वस्त्रदानेन धेनुदानेन गर्जिमा।
वृष्टिमा हिरण्यदानेन न दोषो मुनिरब्रवीत् ॥ १६१ ॥

बादलों का वस्त्र दान से, गर्जना का गौदान से और वर्षा का दोष सुवर्ण के दान से दूर होता है। ऐसा मनु ऋषि ने बताया है ॥ १६१ ॥

अन्य उत्पात में त्याग

धराकंपकेतूदयोल्कादिपातोपरागो च दिग्दाहनिर्घातघोषे।
अकालेथ विद्युद्घनवर्षणं च न कुर्याद्व्रतं सप्तरात्रि न यात्राम् ॥ १६२ ॥

भूकम्प, केतु उदय, उल्कादि पतन, ग्रहण, दिग्दाह, निर्घात शब्द में तथा असमय की वर्षा व बिजली चमकने पर सात दिन तक यज्ञोपवीत व यात्रा नहीं करनी चाहिये ॥ १६२ ॥

ज्योतिर्निबन्धे—

नांदीश्राद्धं कृतं चेत्स्यादनध्यायस्तु कालिकः।
तदोपनयनं कार्यं वेदारम्भं न कारयेत् ॥ १६३ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है कि नान्दी श्राद्ध करने के पश्चात् यदि तात्कालिक पाठान्तर से असामयिक अनध्याय हो तो व्रतबन्ध करना और वेदारम्भ नहीं करना चाहिये ॥ १६३ ॥

विधिनाचार्यसामीप्यनयनं तूपनायनम्।
एतत्प्रधानं सावित्रीवचनं वान्यवादकम् ॥ १६४ ॥

विधिपूर्वक दीक्षा ग्रहण करने के लिए वटु को आचार्य के समीप लाना ही उपनयन कहलाता है और सावित्री मन्त्र की दीक्षा ही इसमें प्रधान होती है।

संस्कार्यप्रसंगात् स्मृत्यंतरोक्ता अपि संस्कारा लिख्यन्ते ।

अब आगे संस्कार्य प्रसङ्गवश स्मृत्यन्तरों में कथित संस्कारों को यहाँ बताया जा जा रहा है ।

षंढान्धबधिरस्तब्धजडगद्गदपंगुषु ।
कुब्जवामनरोगार्तशुष्कांगिविकलांगिषु ।। १६५ ।।
मत्तोन्मत्तेषु मूकेषु शयनस्थे निरिन्द्रिये ।
ध्वस्तपुंस्त्वेपि चैतेषु संस्काराः स्युर्यथोचिताः ।। १६६ ।।

स्मृत्यन्तर में कहा है कि नपुंसक, अन्धा, बहिरा, निस्तब्ध, मूर्ख, तोतला, लँगड़, कुबड़ा, ठेंगना, रोगी, दुःखी, पतलीदेह, विकलाङ्ग, मत्त, पाँगल, गूँगा, शयित, निरिन्द्रिय पुरुषत्व से नष्ट का भी यथोचित संस्कार करना चाहिये ।। १६५-१६६ ।।

पुत्रों में पिण्ड दाता का ज्ञान

औरसः पुत्रिकापुत्रः क्षेत्रजो गूढजस्तथा ।
कानीनश्च पुनर्भूतो दत्तः क्रीतश्च कृत्रिमः ।। १६७ ।।
दत्तात्मा च सहोढश्च त्वपविद्धसुतस्ततः ।
पिंडदोंशहरश्चैषां पूर्वाभावे परः परः ।। १६८ ।।
एते द्वादश पुत्राश्च संस्कार्या स्युर्द्विजातयः ।
केचिदाहुर्द्विजैर्जातौ संस्कार्यौ कुंडगोलकौ ।। १६९ ।।

औरस, दौहित्र, क्षेत्रज, गूढ, कानीन, पुनर्भू, दत्त, क्रीत, कृत्रिम, दत्तात्मा, सहोढ, अपविद्ध ये बारह प्रकार के पुत्र क्रम से एक के अभाव में दूसरा, उत्तरोत्तर पिण्डदाता तथा सम्पत्ति के अधिकारी माने जाते हैं । इन बारह पुत्रों का यज्ञोपवीत संस्कार करना चाहिये । किसी का मत है कि कुण्ड, गोलक यदि ब्राह्मण से उत्पन्न हों तो उनका भी संस्कार करना चाहिये ।। १६७-१६९ ।।

अमृते च मृते पत्यौ जारजौ कुंडगोलकौ ।
मूकोन्मत्तौ न संस्कार्याविरयेके ।

पति के जीवित रहते जार से उत्पन्न सन्तान कुण्ड और पति के मरने पर जारज सन्तान गोलक कहलाती है । मूक, उन्मत्त का यज्ञोपवीत नहीं करना चाहिये ।

शंखलिखितौ—
नोन्मत्तमूकान् संस्कुर्यात् ।।
विष्णुना परीक्षितं याजयेत् ।। १७० ।। नाध्यापयेन्नोपनयेत् ।।

शङ्ख और लिखित ऋषियों का कथन है कि उन्मत्त मूकों का संस्कार न करें और विष्णु ने कहा है कि परीक्षा करके ही यज्ञ की दीक्षा देनी चाहिये । विना परीक्षा के अध्यापन व उपनयन नहीं करना चाहिये ।। १७० ।।

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मज रामदीनकृते बृहद्दैवज्ञरंजने संग्रहे सप्तषष्टितमं व्रतबन्धप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नाम के सङ्ग्रहग्रन्थ का सड़सठवाँ व्रतबन्ध प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ६७ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेव चतुर्वेदात्मज मुरलीधर चतुर्वेदकृता बृहद्दैवज्ञरञ्जनसंग्रहग्रन्थस्य सप्तषष्टितम व्रतबन्धप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्णा ॥६७॥

अथाष्टषष्टितमं विद्यारंभप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे अड़सठवें प्रकरण में विद्या का आरम्भ कब, किस काल, मुहूर्त में करना चाहिये । इसे विविध ग्रन्थों के वचन से बताते हैं ।

यज्ञोपवीत के अनन्तर सन्ध्या करने का विधान

बृहस्पतिः—
अथोपनीतस्तत्काले तदा ह्यस्तमयेऽथवा ।
संध्यां सम्यगुपासीत सायं प्रातर्दिने दिने ॥ १ ॥

बृहस्पतिजी ने बताया है कि जनेऊ होने के तत्काल बाद या सूर्यास्त होने पर अच्छी प्रकार सन्ध्या करे और फिर प्रतिदिन सायं-प्रातः सन्ध्या करनी चाहिये ॥ १ ॥

उपाकर्म का विधान

शशी यदातिसम्पूर्णः श्रावणे प्रोष्ठपद्दिवा ।
द्वयोरभावे हस्तर्क्षे उपाकर्म द्वयोः पुरः ॥ २ ॥

जिस दिन सर्वाधिक पूर्ण चन्द्रमा दिन में सावन या भादों में हो, उस दिन उपाकर्म करना, दोनों मास की पूर्णिमा दिन में न हो तो हस्त नक्षत्र में करना चाहिये ॥ २ ॥

[1]द्वितीयजन्मतः पूर्वमारभेदक्षरान्सुधीः ।
मौंजीबन्धनतः पश्चाद्वेदारम्भः प्रशस्यते ॥ ३ ॥

यज्ञोपवीत से पहिले अक्षरारम्भ और व्रतबन्ध के पश्चात् वेदारम्भ शुभ होता है ॥ ३ ॥

---

१. ज्यो. नि. १२० पृ. ।

विद्या की प्रधानता

विद्यया सर्वसिद्धिः स्यात्संपदः प्राप्तिरेव च।
आयुर्यशश्च बोधं च बोधात्सर्वासु भावयेत् ॥ ४ ॥

शास्त्रों में कहा है कि विद्या से सब की सिद्धि, संपत्ति का लाभ, आयु, यश, ज्ञान और ज्ञान से सबका अनुभव हो जाता है ॥ ४ ॥

विद्या का महत्व

भास्करीये—
विद्यानाम नरस्य कीर्तिरतुला भाग्यक्षये चाश्रयो
धेनुः कामदुधा रतिश्च विरहे नेत्रं तृतीयं च सा।
सत्कारायतनं कुलस्य महिमा रत्नैर्विना भूषणं
तस्मादन्यमपोह्य हेतुविषयं विद्याधिकारं कुरु ॥ ५ ॥

श्रीभास्कराचार्य ने सिद्धान्त शिरोमणि के भाष्य में कहा है कि विद्या से मनुष्य की असीमित कीर्ति होती है और भाग्य की क्षीणता होने पर यह आश्रय देने वाली, अभीष्ट फल देने वाली कामधेनु, विप्रलम्भ में अनुराग वाली, तीसरी आँख के तुल्य सत्कार स्वरूपा कुल की महिमा बढ़ाने वाली होती है। जैसे रत्नों के विना अलङ्कार सुशोभित नहीं होते, उसी प्रकार विद्या के विना मनुष्य की शोभा नहीं होती है। इसलिये सबका त्याग करके अपनी इच्छानुसार विद्या का अर्जन अच्छी रीति से करना चाहिये ॥ ५ ॥

विद्यारम्भ का काल

वृहस्पतिमतं चैव तदभावेऽधुनोच्यते।
सौम्यायने प्रदोषादि चिंतयेद्व्रतबंधवत् ॥ ६ ॥

वृहस्पति के मत से उसके काल को मैं कह रहा हूँ कि विद्या का आरम्भ उत्तरायण में व्रतवन्ध की तरह प्रदोषादि का विचार करके करना चाहिये ॥ ६ ॥

गर्गः—
सौम्यायने सौम्यबले गुरुसूर्येंदुसद्बले।
अनध्यायप्रदोषाद्यं चिंतयेद्व्रतबंधवत् ॥ ७ ॥

आचार्य गर्ग ने बताया है कि उत्तरायण, उत्तर बल, गुरु, सूर्य, चन्द्र के बली होने पर यज्ञोपवीत की तरह अनध्याय, प्रदोषादि का विचार करके विद्यारम्भ करना चाहिये ॥ ७ ॥

अन्य बल कर्तव्यादि

चन्द्रार्के सबले सौम्ययोगे सारस्वताभिधे।
गणेशं गिरमभ्यर्च्य सर्वविद्यां समारभेत् ॥ ८ ॥

सूर्य, चन्द्रमा के बली होने पर सारस्वत नामक शुभयोग में गणेश व सरस्वती की पूजा करके समस्त विद्याओं का आरम्भ करना चाहिये ॥ ८ ॥

पूजयित्वा हरिं लक्ष्मीं देवीं चैव सरस्वतीम् ।
स्वविद्यासूत्रकारांश्च स्वां च विद्यां विशेषतः ॥ ९ ॥

विद्यारम्भ से पूर्व विष्णु भगवान्, लक्ष्मीजी, सरस्वतीजी, अपनी परम्परागत विद्या-सूत्रकारों का पूजन करके आरम्भ करना चाहिये ॥ ९ ॥

चौदह विद्याओं के नाम

अंगानि वेदाश्चत्वारो मीमांसान्यायविस्तरः ।
पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ॥ १० ॥

१ ऋग्वेद, २ यजुर्वेद, ३ सामवेद, ४ अथर्ववेद, ५ शिक्षा, ६ कल्प, ७ व्याकरण, ८ निरुक्त, ९ छन्द, १० ज्योतिष, ११ मीमांसा, १२ न्याय-वैशेषिक, १३ पुराण और १४ धर्मशास्त्र ये १४ चौदह विद्या होती हैं ॥ १० ॥

उपविद्याओं के नाम

आयुर्वेदो धनुर्वेदो वेदो गांधर्व एव च ।
अर्थशास्त्रमिति ह्येता उपविद्याः प्रकीर्तिताः ॥ ११ ॥

१ आयुर्वेद, २ धनुर्वेद, ३ गान्धर्ववेद, ४ अर्थशास्त्र ये उपविद्या नाम से वर्णित हैं ॥ ११ ॥

विद्यारम्भ का समयादि

[1]प्राप्ते तु पंचमे वर्षे अप्रसुप्ते जनार्दने ।
षष्ठीं प्रतिपदं चैव वर्जयित्वा तथाष्टमीम् ॥ १२ ॥
रिक्तां पंचदशीं चैव सौरिभौमदिनं तथा ।
एवं सुनिश्चिते काले विद्यारम्भं तु कारयेत् ॥ १३ ॥

बालक के पाँचवें वर्ष में विष्णुशयन से हीन काल में, षष्ठी, प्रतिपदा, अष्टमी, रिक्ता, पूर्णिमा तिथि व शनि, मङ्गलवार को छोड़कर सुन्दर निर्णीत वेला में विद्यारम्भ कराना चाहिये ॥ १२–१३ ॥

शुक्लपक्षे शुभा सर्वा विद्यारम्भे दिनं तथा ।
विहायार्धं त्रिभागे च परं कृष्णेपि शस्यते ॥ १४ ॥

विशेष—शुक्ल पक्ष की समस्त तिथि तथा वार विद्यारम्भ में शुभ होते हैं । कृष्ण पक्ष के अन्तिम तृतीयांश या आधे भाग को छोड़कर शेष तिथि शुभ होती हैं ॥ १४ ॥

---

१. ज्यो० नि० १२० पृ० ।

विद्यारम्भ मूहूर्त

श्रीपतिः[१]—

विद्यारम्भः सुरगुरुसितज्ञेष्वभीष्टार्थदायी
कर्तुश्चायुश्चिरमपि करोत्यंशुमान्मध्यमोत्र ।
नीहारांशौ भवति जडता पंचता भूमिपुत्रे
छायासूनावपि च मुनयः कीर्तयंत्येवमाद्याः ॥ १५ ॥

आचार्य श्रीपतिजी ने कहा है कि गुरु, शुक्र, बुधवार में विद्यारम्भ करने पर इच्छित धनदायक, आयु को बढ़ानेवाला, सूर्यवार में मध्यम फल, सोमवार में मूर्खता व शनि और मङ्गलवार को विद्यारम्भ करने पर मरण होता है, ऐसा पुरातन महर्षियों का कहना है ॥ १५ ॥

नक्षत्रों का ज्ञान

हस्ताश्वयुक्श्रवणचित्रसमीरमित्रा पुष्यादितींदुनिर्ऋतिर्वसुवारणेषु ।
पूर्वोत्तराकमलसंभवपौष्णभेषु विद्याश्रुतिस्मृतिमुखाः कथिता द्विजानाम् ॥ १६ ॥

हस्त, अश्विनी, श्रवण, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, पुष्य, पुनर्वसु, मृगशिरा, मूल, धनिष्ठा, पूर्वा ३, उत्तरा ३, रोहिणी व रेवती नक्षत्र में विद्या, वेद, स्मृति पढ़ने का आरम्भ करना चाहिये ॥ १६ ॥

चण्डेश्वरः—

विद्यारम्भः प्रशस्तो भवति अथ रिपौ प्राप्तबोधे सुधांशौ
शस्ते तीक्ष्णद्युतौ च त्रिदशपतिगुरावुद्गते चापि शुक्रे ।
अप्राप्ते सिंहराशौ दशशतकिरणे चापि दैत्यारिपूज्ये
स्वाध्याये भानुशुक्रत्रिदशगुरुदिने लग्नसंस्थे च जीवे ॥ १७ ॥

आचार्य चण्डेश्वर ने कहा है कि छठे वली चन्द्रमा व सूर्य के शुभ होने पर एवं गुरु-शुक्र के उदित रहने पर और सिंह के अतिरिक्त राशि में गुरु, शुक्र की स्थिति में, लग्नस्थ गुरु के रहने पर सूर्य, शुक्र, गुरुवार के दिन विद्यारम्भ शुभ होता है ॥ १७ ॥

बृहस्पतिः—

लग्नवारदशा वर्ज्या विद्यारम्भेर्कभौमयोः ।
लग्ने द्वयंगे च विद्याप्तिः स्थिरे जाड्यं चरे भ्रमः ॥ १८ ॥

बृहस्पतिजी ने बताया है कि सूर्य, मङ्गलवार के दिन लग्न व वार की दशा को छोड़कर द्विस्वभाव लग्न में विद्या आरम्भ करने पर उसकी प्राप्ति, स्थिर लग्न में मूर्खता और चर लग्न में भ्रान्ति होती है ॥ १८ ॥

---

१. मु० चिं० ५ प्र० ३८ श्लो० पी० टी० ।

विद्यारम्भ में लग्नशुद्धि

[१]त्रिषडायगताः पापास्त्रिकोणे कण्टके शुभाः ।
विद्यारम्भे शुभाः प्रोक्ताः पंचमे पापवर्जिते ॥ १९ ॥

विद्यारम्भ लग्न से तीसरे, छठे, ग्यारहवें में पापग्रह और पञ्चम पापग्रह से रहित तथा केन्द्र (१ । ४ । ७ । १०) त्रिकोण (५ । ९) में शुभग्रह शुभ फलदायी होते हैं ॥ १९ ॥

सारस्वत योग का ज्ञान

[२]हस्ते बुधांशके युक्ता यदि भान्विन्दुसोमजाः ।
सौम्यवारे रवौ लग्ने योगः सारस्वताह्वयः ॥ २० ॥

हस्त नक्षत्र में बुध के नवांश में सूर्य, चन्द्र, बुध के होने पर बुधवार के दिन लग्नस्थ सूर्य में विद्यारम्भ करने पर सारस्वत योग होता है ॥ २० ॥

प्रकारान्तर से

[३]हस्ते बुधांशकस्थौ चेद्बुधेंदू लग्नगौ तदा ।
बुधवारे मुहूर्तेषु योगः सारस्वताह्वयः ॥ २१ ॥

हस्त नक्षत्र में बुध के नवांश में लग्नस्थ बुध, चन्द्रमा के रहने पर बुधवार में शुभ मुहूर्त में विद्यारम्भ करने से सारस्वत योग होता है ॥ २१ ॥

अत्युच्चस्थे बुधे लग्ने पाथोनाद्यत्रिभागगे ।
भानौ तत्सौम्यवारे च योगो वागीश्वराह्वयः ॥ २२ ॥

कन्या के प्रथम द्रेष्काण में परमोच्चांश में लग्नस्थ बुध होने पर सूर्यवार या बुधवार में विद्यारम्भ करने पर वागीश्वर योग होता है ॥ २२ ॥

इन्द्वर्कज्ञदिने वारनाथे लग्ने बुधांशके ।
हस्तर्क्षस्य गता हेति योगः सारस्वताह्वयः ॥ २३ ॥

चन्द्र, सूर्य, बुधवार में हस्त नक्षत्र में बुध के नवांश में दिन स्वामी के लग्नस्थ होने पर सारस्वत योग होता है ॥ २३ ॥

वर्गोत्तमस्थे लग्ने ज्ञे जीवे चोभयराशिगे ।
गुरुशुक्रबुधाः केन्द्रे योगः सारस्वताह्वयः ॥ २४ ॥

बुध अपनी वर्गोत्तम राशि में लग्न में तथा गुरु द्विस्वभाव राशि में और केन्द्र में बुध, गुरु, शुक्र के रहने से सारस्वत योग होता है ॥ २४ ॥

स्यात्युच्चलग्नगे भानौ ज्ञसितौ वृषमीनगौ ।
वर्गोत्तमगतौ यद्वा योगः सारस्वताह्वयः ॥ २५ ॥

---

१. ज्यो० नि० १२९ पृ० १३ श्लो० । २. ज्यो० नि० १२९ पृ० १६ श्लो० ।
३. ज्यो० नि० १२९ पृ० १८ श्लो० ।

लग्नस्थ सूर्य अपने परमोच्चांश में बुध, शुक्र, वृप, मीन में अथवा अपनी वर्गोत्तम राशि में रहने पर सारस्वत योग होता है ॥ २५ ॥

बुधोत्तमे गुरोरंशे केन्द्रगे ज्ञार्कभार्गवाः ।
त्रयोदश्यां यमे लग्ने योगः सारस्वताह्वयः ॥ २६ ॥

बुध अपने वर्गोत्तम में तथा गुरु के नवांश में अथवा बुध, सूर्य, शुक्र के केन्द्र में रहने पर और तेरस तिथि में शनि लग्नस्थ होने पर विद्यारम्भ में सारस्वत योग होता है ॥ २६ ॥

लग्ने बुधांशकःस्याच्चेदिदुज्ञे ना बुधोदये ।
बुधवारे गुरोर्वापि योगः सारस्वताह्वयः ॥ २७ ॥

बुध नवांशस्थ लग्न में चन्द्र, बुध होने पर या पुरुष राशि में लग्नस्थ बुध होने पर, बुधवार या गुरुवार में भी विद्यारम्भ में सारस्वत योग होता है ॥ २७ ॥

उत्तम विद्यायोग

[1]कर्किण्यः पंचमे भागे गुरावुदयगे सति ।
गुरोर्वारे च होरायां विद्यायोगोयमुत्तमः ॥ २८ ॥

कर्क से पाँचवीं राशि के नवांश में गुरु लग्न में होने पर, गुरुवार में, गुरु की होरा में विद्यारम्भ का उत्तम योग होता है ॥ २८ ॥

सप्तविंशतिमे भागे शशिगे लग्नगे तथा ।
मीनस्य सितवारेह्नि विद्यायोगोयमुत्तमः ॥ २९ ॥

मीन राशि के सत्ताईसवें अंश में लग्नस्थ चन्द्रमा के रहने पर शुक्रवार के दिन विद्यारम्भ का उत्तम योग होता है ॥ २९ ॥

पृथक्भानि विशेषेण शास्त्राणां फलदास्त्वमी ।
प्रत्येकमेकतो वक्ष्ये वृत्रारेऽवहितः शृणु ॥ ३० ॥

विशेष शास्त्रों के लिए पृथक्-पृथक् नक्षत्रों का फल होता है अर्थात् प्रत्येक शास्त्र पढ़ने के लिए अलग-अलग नक्षत्र फलदायी होते हैं। हे वृत्रासुर के शत्रु (इन्द्र), मैं प्रत्येक शास्त्राभ्यास के लिए अलग-अलग नक्षत्रों को कह रहा हूँ, दत्तचित्त होकर सुनो ॥ ३० ॥

हस्त, पुष्य, पुनर्वसु में विद्या का आरम्भ

भेरीतालादिशास्त्रेषु नाट्ये सामुद्रिकाह्वये ।
हस्ततिष्यस्तथादित्यः संगीते संगमेव च ॥ ३१ ॥

भेरी, ताल आदि, नाट्य, सामुद्रिक विद्या तथा सङ्गीतों का प्रारम्भ हस्त, पुष्य, पुनर्वसु नक्षत्र में करना चाहिये ॥ ३१ ॥

---

१. ज्यो० नि० १२९ पृ० २१ श्लो० ।

आश्लेषा, रोहिणी में

गांधर्वे नीतिशास्त्रे च प्रशस्ता एव नादिने ।
सार्पः शाकुनिके ज्ञाने वेदे रोहिण्यही शुभौ ॥ ३२ ॥

पुरुष ग्रह के वार में गान्धर्व विद्या व नीतिशास्त्र का, आश्लेषा में शकुन और रोहिणी व आश्लेषा में वेद विद्यारम्भ शुभ होता है ॥ ३२ ॥

धनिष्ठा, हस्त में

वासवं स्याद्धनुर्वेदे सायुर्वेदे विशेषतः ।
हस्तो बहूनां शास्त्राणां विशेषेण प्रशस्यते ॥ ३३ ॥

धनिष्ठा नक्षत्र में विशेषकर आयुर्वेद तथा धनुर्वेद पढ़ना चाहिये और हस्त नक्षत्र विशेषकर अधिक शास्त्रों के पढ़ने में शुभ होता है ॥ ३३ ॥

शास्त्राभ्यास व अधिरोहण के नक्षत्र

कौटिल्ये क्षुरिकागेये वेदे शांतिकगन्धके ।
मल्ले महानरो षट्के रूपे तुरगवारणे ॥ ३४ ॥

हस्त में अर्थशास्त्र, क्षुरिका, गान, वेद, शान्तिक, गन्धक, मल्ल, घोड़ा, हाथी एवं रूप विद्या का अभ्यास करना चाहिये ॥ ३४ ॥

अनुराधा व ध्रुव नक्षत्र में

शास्त्राभ्यासेधिरोहे च रौद्रतिष्योत्तरात्रयम् ।
पूषाश्रवणरोहिण्यः सौम्यवायू च शोभनौ ॥ ३५ ॥

आर्द्रा, पुष्य, तीनों उत्तरा, रेवती, श्रवण, रोहिणी, सौम्य, स्वाती नक्षत्र शास्त्राभ्यास व अधिरोहण में शुभ होते हैं ॥ ३५ ॥

मैत्रं कुक्कुटशास्त्रे च आयुर्वेदे गजाश्वयोः ।
तयोरारोहणं चैव ध्रुवभानि शुभानि च ॥ ३६ ॥

कुक्कुट शास्त्र व आयुर्वेद का अनुराधा में और हाथी, घोड़ा के चढ़ने में ध्रुवसंज्ञक नक्षत्र शुभ होते हैं ॥ ३६ ॥

अश्विनी, अनुराधा, पुनर्वसु, चित्रा में

अश्विनी चाश्वविद्यायां गजविद्यासु शोभनम् ।
त्वाष्ट्रं चित्रकविद्यासु चामी मैत्रं पुनर्वसु ॥ ३७ ॥

अश्विनी में घोडा विद्या, चित्रा में हाथी विद्या, अनुराधा व पुनर्वसु में चित्रकारी विद्या का अभ्यास करना चाहिये ॥ ३७ ॥

धर्मशास्त्राभ्यास

धर्मशास्त्रेषु वैश्वाद्यत्रितयं पौष्णमेव च ।
अश्विनी रोहिणी सौम्यं पुष्यं हस्तादिपंचके ॥ ३८ ॥

पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, रेवती, अश्विनी, रोहिणी, मृदुसंज्ञक, पुष्य और हस्त से पांच नक्षत्र में धर्मशास्त्र पढ़ना चाहिये ।। ३८ ।।

ज्योतिषादि अङ्गशास्त्रों का अध्ययन

ज्योतिषाद्यंगशास्त्राणां स्वातीहस्तपुनर्वसुः
पौष्णहस्ताश्विनीमूलवारुणाः स्युः सुपूजिताः ।। ३९ ।।

स्वाती, हस्त, पुनर्वसु, रेवती, अश्विनी, मूल, शतभिषा में ज्योतिषादि षडङ्गशास्त्र का अभ्यास करना चाहिये ।। ३९ ।।

योगशास्त्र व आयुर्वेद पढने का मुहूर्त

वारुणं योगशास्त्रेषु समयेऽब्धिदुभं शुभम् ।
हस्तस्वात्याश्विसौम्याः स्युरायुर्वेदे सुपूजिताः ।। ४० ।।

मृगशिरा, शतभिषा में योगशास्त्र और स्वाती, हस्त, अश्विनी तथा सौम्य संज्ञक नक्षत्र में आयुर्वेद पढ़ना चाहिये ।। ४० ।।

गणित व ज्योतिष पढ़ने का मुहूर्त

गणिते रेवतीहस्तमैत्रपुष्यार्द्रवासवाः ।
ज्योतिःशास्त्रनिमित्ते च रोहिणो वारुणं शुभे ।। ४१ ।।

रेवती, हस्त, अनुराधा, पुष्य, आर्द्रा व धनिष्ठा में गणित और शतभिषा व रोहिणी में ज्योतिष पढ़ना चाहिये ।। ४१ ।।

अर्थशास्त्र पढ़ने का मुहूर्त

आदित्यवैष्णवस्वातितिष्यहस्ताश्विवारुणाः ।
त्रीण्युत्तराणि रोहिण्योप्यर्थशास्त्रे सुपूजिताः ।। ४२ ।।

पुनर्वसु, श्रवण, स्वाती, पुष्य, हस्त, अश्विनी, शतभिषा, तीनों उत्तरा तथा रोहिणी में अर्थशास्त्र पढ़ना चाहिये ।। ४२ ।।

ब्रह्म विद्या पढ़ने का मुहूर्त

ब्रह्मविद्यासु पूर्वाणि नक्षत्राणि शुभान्यमी ।
योगाः सर्वे शुभा वज्रिन् कथयन्ति सुपूजिताः ।। ४३ ।।

तीनों पूर्वा और समस्त योगों में शुभत्व होने से इनमें ब्रह्मविद्या पढ़नी चाहिये ।। ४३ ।।

शैवागम, वैष्णवागम पढ़ने का मुहूर्त

शैवागमे शुभान्याहुः क्षिप्राण्युग्राणि भान्यपि ।
ततो विष्णवागमे शस्तश्चरसाधारणादिभम् ।। ४४ ।।

क्षिप्र व उग्र संज्ञक नक्षत्रों में शैवागम और चर तथा साधारण संज्ञक नक्षत्रों में वैष्णवागम पढ़ना चाहिये ।। ४४ ।।

विषशास्त्र का मुहूर्त

विषशास्त्रे शुभा योगा वारे नक्षत्रयोजिताः ।
सर्वे शंसंति मुख्यत्वे वृत्रारे ब्राह्मणाः पुरा ॥ ४५ ॥

विषशास्त्र के अध्ययन में वार व नक्षत्र के योग से समस्त शुभ योगों की हे वृत्र के शत्रु प्राचीन सव ब्राह्मण मुख्य रूप से प्रशंसा करते हैं ॥ ४५ ॥

समस्त शास्त्राध्ययन मुहूर्त

ध्रुवाणि सर्वशास्त्रेषु सर्वसाधारणान्यपि ।
मृदूनि सर्वविद्यासु सर्वज्ञानेषु भान्यपि ॥ ४६ ॥

ध्रुव व साधारण संज्ञक नक्षत्र समस्त विद्या पढ़ने में और समस्त विद्या व ज्ञान में मृदुसंज्ञक नक्षत्र शुभ होते हैं ॥ ४६ ॥

वैष्णवं सुप्रशंसंति मायाचौर्यादिकैतवैः ।
शंसंति सर्वभान्याहुर्ज्योतिःशास्त्रे विरोधतः ॥ ४७ ॥

श्रवण नक्षत्र में माया जाल, चोरी और धूर्तता शास्त्र शुभ फलदायक तथा ज्योतिष शास्त्र में विरोध से अन्य सव नक्षत्रों को कहा है ॥ ४७ ॥

फल में विशेष

प्रोक्ते शुभेषु सर्वेषु शुभवारे शुभांशके ।
शुभग्रहदृशा युक्ते शुभयुक्ते शुभग्रहे ॥ ४८ ॥
विशेषाद्बुधवर्गेषु वुधदृष्टे वुधोदये ।
वुधवारे च होरायां शंसंति ज्ञेप्यनस्तगे ॥ ४९ ॥

उक्त समस्त शुभ मुहूर्तों में शुभ का वार, नवाँश, शुभ दृष्ट, शुभ युक्त, शुभ ग्रह विशेष कर बुध के वर्ग में, वुध से दृष्ट, वुध की लग्न, वुधवार, वुध की होरा और वुध के अस्त न होने पर मुहूर्त की प्रशंसा करते हैं ॥ ४८–४९ ॥

अथ विद्यारम्भेप्यनध्यायः ।[1]

अव आगे विद्या पढ़ने में कव अनध्याय करना या किस दिन नहीं पढ़ना चाहिये, इसे वताते हैं ।

न पढ़ने के दिन

प्रतिपत्पौर्णिमामा चतुर्दश्यष्टमी तथा ।
अनध्यायाः सोपपदा युगमन्वादयस्तथा ॥ ५० ॥

प्रतिपदा, पूर्णिमा, अमावास्या, चौदस, अष्टमी, सोपपदा, युगादि, मन्वादि तिथियों में अध्ययन नहीं करना चाहिये ॥ ५० ॥

---

१. ज्यो० नि० १२९ पृ० १ श्लो० ।

इनमें पढ़ने का फल

अष्टमी हन्त्युपाध्यायं शिष्यं हन्ति चतुर्दशी।
अमावस्योभयं हंति सर्वं हंति च पौर्णिमा ॥ ५१ ॥

अष्टमी में पढ़ने से पढ़ाने वाले का, चौदस में पढ़ने वाले का, अमावास्या में गुरु शिष्य दोनों का और पूर्णिमा में सबका विनाश होता है ॥ ५१ ॥

प्रतिपदा में पढ़ने का फल

यथा यौधिष्ठिरी सेना गांगेयशरपोडिता।
प्रतिपत्पाठशीलस्य विद्येव तनुतां गता ॥ ५२ ॥

जैसे गांगेय के बाणों से पीडित युधिष्ठिर की सेना छोटी हो गई उसी प्रकार प्रतिपदा में पढ़ने से विद्या में अल्पता होती है ॥ ५२ ॥

नारद के आधार पर निषिद्ध दिन

[1]नारदः—
अयने विषुवे चैव शयने बोधने हरेः।
अनध्यायस्तु कर्तव्यो मन्वादिषु युगादिषु ॥ ५३ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि अयन, विषुव संक्रान्ति दिन, हरिशयन, हरिबोधनदिन, युगादि और मन्वादि में अनध्याय करना अर्थात् पढ़ना नहीं चाहिये ॥ ५३ ॥

युगादि तिथि ज्ञान

[2]कार्तिके शुक्लनवमी त्वादिःकृतयुगस्य च।
त्रेतादिर्माधवे शुक्लतृतीया पुण्यसंज्ञिता ॥ ५४ ॥
कृष्णा पंचदशो माघे द्वापरादिरुदीरिता।
कल्यादिः स्यात्कृष्णपक्षे नभस्ये च त्रयोदशी ॥ ५५ ॥

कार्तिक शुक्ल अक्षय नवमी में सत युग का, वैशाख शुक्ल तृतीया में त्रेता का, माघ पूर्णिमा में द्वापर का और भाद्रकृष्ण तेरस (पूर्णिमान्त मास से आश्विन कृष्ण) में कलियुग का प्रारम्भ हुआ है ॥ ५४–५५ ॥

मन्वादि तिथि

द्वादश्यूर्जे शुक्लपक्षे नवम्यश्वयुजे सिते।
चैत्रे भाद्रपदे चैव तृतीया शुक्लसंज्ञिता ॥ ५६ ॥
एकादशी सिता पौषेप्याषाढे दशमी सिता।
माघे च सप्तमी शुक्ला नभस्येथ सिताष्टमो ॥ ५७ ॥

१, ज्यो० नि० १२९ पृ० २ श्लो०।
२. ज्यो० नि० ९२९ पृ० ३ श्लो०।

श्रावणे मास्यमावस्या फाल्गुने मासि पूर्णिमा ।
आषाढे कार्तिके मासे चैत्रे ज्येष्ठे च पूर्णिमा ।। ५८ ।।

कार्तिक शुक्ल द्वादशी १, आश्विन शुक्ल नवमी २, चैत्र शुक्ल तृतीया ३, भादो सुदी तृतीया ४, पूस सुदी एकादशी ५, आषाढ शुक्ल दशमी ६, माघ शुक्ल सप्तमी ७, भादो शुक्ल अष्टमी ८, सावन की अमावास्या ९, फाल्गुन की पूर्णिमा १०, आषाढ पूर्णिमा ११, कातिक पूर्णिमा १२, चैत पूर्णिमा १३, जेठ की पूर्णिमा १४ ये चौदह मनुओं की आदि तिथि होती हैं ।। ५६–५८ ।।

इनमें फल

मन्वादयस्नानदानश्राद्धेष्वत्यन्तपुण्यदाः ।

इन मन्वादि तिथियों में स्नान, दान, श्राद्ध करना अधिक पुण्य प्रद होता है ।।५८½।।

तीन अष्टकाओं का ज्ञान

मार्गशीर्षे तथा पौषे माघमासे तथैव च ।। ५९ ।।
तिस्रोष्टकाः समाख्याताः कृष्णपक्षे तु सूरिभिः ।

अगहन, पौष, माघ मास ये कृष्ण पक्ष में तीन अष्टका होती हैं, ऐसा विद्वानों ने कहा है ।। ५८½–५९½ ।।

सोपपदा तिथि का ज्ञान

सिताज्येष्ठद्वितीया तु आश्विने दशमी सिता ।। ६० ।।
चतुर्थी द्वादशी माघे एताः सोपपदाः स्मृताः ।। ६१ ।।

जेठ शुक्ल द्वितीया, क्वार शुक्ला दशमी और माघ मास की चौथ व द्वादशी तिथि सोपपदा होती है ।। ५९½–६१ ।।

अध्ययन निषेध काल

संध्यायां गर्जिते मेघे शास्त्रचिन्तां करोति यः ।
चत्वारि तस्य नश्यंति आयुर्विद्या यशो बलम् ।। ६२ ।।

सन्ध्या के समय मेघों की गड़-गड़ाहट में जो शास्त्र की चिन्ता करता है उसकी आयु, विद्या, यश और बल इन चारों का विनाश होता है ।। ६२ ।।

विशेष बात

नारदः—
संध्यायां नियमेनैव शास्त्राभ्यासं करोति यः ।
नश्यंत्यायुर्यशो विद्या बलं गर्गादिसम्मतम् ।। ६३ ।।

ऋषि नारद ने बताया है कि जो सज्जन नियम पूर्वक सन्ध्या काल में रोज ही शास्त्राभ्यास करता है उसके आयु, यश, विद्या व बल चारों नष्ट होते हैं इसमें गर्गादि का भी मत है ।। ६३ ।।

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृतसंग्रहे बृहद्वज्ञरञ्जने
अष्टषष्टितमं विद्यारम्भप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित बृहद् वज्ञरञ्जन संग्रह ग्रन्थ का अड़सठवाँ विद्यारम्भ नाम वाला प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ६८ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर चतुर्वेदकृताऽष्टषष्टितमप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका बृहद् वज्ञरञ्जनसंग्रह ग्रन्थस्य परिपूर्णा ॥ ६८ ॥

अथैकोनसप्ततितमं समावर्तनप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे उनहत्तरवें प्रकरण में समावर्तन कब करना चाहिये । इसे विविध वाक्यों से बताते हैं ।

समावर्तन काल

बृहस्पतिः—

व्रतमोक्षे च गोदाने स्नाने चैव विशेषतः ।
कालं वच्मि द्विजानां च सम्यगायुर्विवृद्धये ॥ १ ॥

श्रीबृहस्पतिजी ने बताया है कि विशेष कर मैं ब्राह्मणों की अच्छी रीति से आयु की वृद्धि हो इसके लिये गोदान, व्रत त्याग और स्नान के समय को बताता हूँ ॥ १ ॥

अधीत्य वेदांश्च तदर्थशास्त्राण्यालभ्य लब्ध्वा च गुरोरनुज्ञाम् ।
कुर्यात्समावर्तनकर्म पश्चाद्गोदानतः पाणिनिपीडनात्प्राक् ॥ २ ॥

जनेऊ के बाद वेदों को पढ़कर और उनके अर्थ बतलाने वाले शास्त्रों का ज्ञान करके गुरु की आज्ञा लेकर विवाह से पहिले समावर्तन करना चाहिये ॥ २ ॥

समावर्तन मुहूर्त

सौम्यायने निर्मलयोः सुरेज्यदैत्येज्ययोर्व्योम्नि वलक्षपक्षे ।
सन्त्यज्य रिक्तावममष्टमीं च वैनाशिकाख्याखिलमृक्षवृन्दम् ॥ ३ ॥

उत्तरायण में गुरु शुक्र के उदित होने पर शुक्ल पक्ष में, रिक्ता, क्षय, अष्टमी तिथि, और वैनाशिक नक्षत्र समुदाय को छोड़कर समावर्तन करना चाहिये ॥ ३ ॥

केशान्त मुहूर्त

केशान्तं षोडशे वर्षे कुर्याच्चौलोक्तभादिके ।
गुरुशुद्ध्यादिके काले व्रतोक्ते व्रतमोक्षणम् ॥ ४ ॥

चौल मुहूर्त में वर्णित नक्षत्रादि में सोलहवें वर्ष में केशान्त और गुरु शुद्धि आदि समय में व्रतबन्ध में कथित नक्षत्रादि में समावर्तन करना चाहिये ॥ ४ ॥

अथवा वस्त्रनक्षत्रवारलग्नेषु शस्यते ।
गुरोर्गृहान्निवृत्तानां समावर्तनमण्डनम् ॥ ५ ॥

अथवा वस्त्र धारण नक्षत्र, वार, लग्न में केशान्त संस्कार करना, जब बालक गुरु से अध्ययन करके आता है तो समावर्तन तत्पश्चात् विवाह होता है ॥ ५ ॥

समावर्तन मुहूर्त

चण्डेश्वरः—
अनुकूले निशानाथे शुभस्थानस्थिते रवौ ।
चूडाकरणवत्कार्या मेखलाबन्धनच्युतिः ॥ ६ ॥
व्रतबन्धोक्तनक्षत्रे दिने लग्ने शुभान्विते ।
मेखलामोक्षणं कुर्यादुपाकर्म यथाविधि ॥ ७ ॥

आचार्य चण्डेश्वर ने बताया है कि चन्द्रमा के अनुकूल होने पर, शुभ स्थान स्थित सूर्य में चौल के कथित मुहूर्त में केशान्त और जनेऊ में प्रतिपादित नक्षत्र लग्न, वार में उपाकर्म की तरह समावर्तन करना चाहिये ॥ ७ ॥

नक्षत्रादि ज्ञान

त्रीण्युत्तराण्यदितिपौष्णमघाधनिष्ठा पुष्याश्विशीतकरधातृकरादि पंच ।
सौम्यग्रहस्य दिवसेन सिते च पक्षे मौंजीविमोक्षणविधिं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥८॥

तीन उत्तरा, पुनर्वसु, रेवती, मघा, धनिष्ठा, पुष्य, अश्विनी, मृगशिरा, रोहिणी और हस्त से पाँच नक्षत्रों में, शुभ वार में, शुक्ल पक्ष में विद्वान् लोग मौञ्जीमोक्षण संस्कार करने को बताते हैं ॥ ८ ॥

कालविधाने—
वागीशादितिसौम्यपौष्णदिनकृन्मित्रोत्तरारोहिणी
गोविदेषु शशांकभानुगुरुविच्छुक्रांशवारादिषु ।
रिक्तां पर्व तथाष्टमीं प्रतिपदं मेषं च कीटं हरिं
हित्वा शुद्धियुतेष्टमेह्नि विमले कुर्यात्समावर्तनम् ॥ ९ ॥

काल विधान में बताया है कि पुष्य, पुनर्वसु, सौम्य नक्षत्र, रेवती, हस्त, अनुराधा, तीनों उत्तरा, रोहिणी श्रवणमें , चन्द्र, सूर्य, गुरु, बुध, शुक्र के वार वा अंशादि में, रिक्ता, पर्व, अष्टमी, प्रतिपदा तिथि व मेष, वृश्चिक, सिंह राशि को छोड़कर शुद्धि से युत आठवें दिन समावर्तन करना चाहिए ॥ ९ ॥

[1]रामोऽपि—
व्रतोक्तदिवसादौ हि समावर्तनमिष्यते ॥ १० ॥

---

१. मु० चिं० ५ प्र० ६० श्लो० ।

श्रीरामदैवज्ञ ने मुहूर्त चिन्तामणि में बताया है कि व्रतबन्ध के दिनादि में समावर्तन करना चाहिये ॥ १० ॥

गदाधरः—

वेदं समाप्य स्नायात् स्नानशब्देन समावर्तनसंस्कार उच्यते। स्नानं च द्वितोयाश्रमप्रतिपत्तिः। तदनुष्ठानयोग्यता च षडंगे वेदाधिगते भवति।

श्रीगदाधर जी ने बताया है कि वेदाध्ययन समाप्त करके स्नान करना चाहिये। यहाँ स्नान शब्द से समावर्तन संस्कार कहा गया है। स्नान तो अर्थात् समावर्तन तो दूसरे आश्रम की अर्थात् गृहस्थाश्रम प्राप्ति है। इस समावर्तन की तो तब ही योग्यता है कि जब व्यक्ति षडङ्ग वेदों का अध्ययन कर ले।

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने
एकोनसप्ततितमं समावर्तनप्रकरणं समाप्तम्।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित बृहद् वज्ञरञ्जन संग्रह ग्रन्थ का उनहत्तरवाँ समावर्तन संस्कार नाम वाला प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ६९ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भगवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर-चतुर्वेदकृता बृहद् वज्ञरञ्जनसंग्रहग्रन्थस्थैकोनसप्ततिप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका परिपूर्णा ॥ ६९ ॥

अथ सप्ततितमं छुरिकाबन्धनप्रकरणं प्रारभ्यते।

अब आगे सत्तरवें प्रकरण में, शूद्रों का यज्ञोपवीत तथा समावर्तन संस्कार नहीं होता है इसलिये उनको व राजपुत्रों तथा क्षत्रियों को अपनी कमर में, शस्त्र चाकू वगैरह विवाह से पूर्व कब किस मुहूर्त में बाँधना चाहिये, इसे विविध ग्रन्थों के वाक्य बल से बताते हैं।

शस्त्र बाँधने का मुहूर्त

बृहस्पतिः—

शूद्राणां स्नानाभावेन शस्त्रसंयोग उच्यते।
ब्रह्मप्रसादाच्चैतस्मादायुशौर्य्यविवर्द्धनः ॥ १ ॥

बृहस्पति जी ने बताया है कि शूद्रों का समावर्तन न होने से शस्त्र का संयोग अर्थात् बाँधने का विधान है। इस शस्त्र बन्धन से ब्रह्मा के आशीर्वाद से आयु और शौर्य की वृद्धि होती है ॥ १ ॥

छुरिका बन्धन मुहूर्त

[1]नारदः—

छुरिकाबन्धनं वक्ष्ये नृपाणां प्राक्करग्रहात् ।
विवाहोक्तेषु मासेषु शुक्लपक्षेप्यनस्तगे ॥ २ ॥

ऋषि नारद जी ने बताया है कि अब मैं विवाह से पूर्व राजाओं को शस्त्र बाँधना चाहिये इसे कहता हूँ। विवाह में उक्त मासादि, शुक्ल पक्ष, गुरु, शुक्र, भौम के अस्त रहित समय में छुरिका बन्धन करना चाहिये ॥ २ ॥

[2]शूद्राणां राजपुत्राणां मौंज्यभावेऽस्त्रबन्धनम् ।
मौंजीबन्धोक्ततिथ्यादौ कार्यं भौमदिनं विना ॥ ३ ॥

संग्रह ग्रन्थ में बताया है कि शूद्र व राज पुत्रों का मौञ्जी बन्धन न होने से शस्त्र बन्धन यज्ञोपवीत मुहूर्त में कथित चैत्र रहित मास तथा भौम वार को छोड़कर अन्य मास वारादि में करना चाहिये ॥ ३ ॥

[3]रामः—

विचैत्रव्रतमासादौ विभौमास्ते विभूमिजे ।
छुरिकाबन्धनं शस्तं नृपाणां प्राग्विवाहतः ॥ ४ ॥

रामदैवज्ञ ने अपने मुहूर्त चिन्तामणि नामक ग्रन्थ में बताया है कि चैत्र रहित व्रतबन्ध के मासादि में तथा भौम के अनस्त समय और भौमवार को छोड़कर अन्यवारों में विवाह से पूर्व राजपुत्रों को शस्त्र बाँधना शुभ होता है ॥ ४ ॥

[4]नारदः—

जीवे शुक्रे च भूपुत्रे चन्द्रतारावलान्विते ।
मौंजीबन्धर्क्षतिथिषु कुजवर्जितवासरे ॥ ५ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि गुरु, शुक्र, मंगल, चन्द्र और तारा के बली होने पर मौञ्जी बँधन में कथित नक्षत्र तिथि आदि में भौमवार को छोड़कर अन्य वारों में शस्त्र बाँधना चाहिये ॥ ५ ॥

तेषां नवांशके कर्तुरष्टमोदयवर्जिते ।
शुद्धेष्टमी विधौ लग्ने षडष्टान्त्यविवर्जिते ॥ ६ ॥
धनत्रिकोणकेन्द्रस्थैः शुभैस्त्र्यायारिगैः परैः ।
छुरिकाबन्धनं कार्यमर्चयित्वा सुरान् पितॄन् ॥ ७ ॥
अर्चयेच्छुरिकां सम्यग्देवतानां च सन्निधौ ।
ततः सुलग्ने बध्नीयात्कट्यां लक्षणसंयुताम् ॥ ८ ॥

---

१. ज्यो० नि० १३० पृ० ।
२. ज्यो० नि० १३० पृ० ।
३. मु० चिं० ५ प्र० ५९ श्लो० ।
४. ज्यो० नि० १३० पृ० ।

गुरु शुक्रादि के नवांश में बाँधने वाले व्यक्ति की अष्टम व लग्न राशि को छोड़कर तथा ६, ८, १२ से रहित चन्द्र लग्नस्थ लग्न शुद्धि होने पर शुद्ध अष्टमी से आगे रहने पर, २।३।५।९।१।४।७।१० में शुभ ग्रह स्थित हो तथा ३।११।६ में पापग्रह के होने पर देवता व पितरों की पूजा करके शस्त्र बाँधना चाहिये। बाँधने से पहले अच्छी तरह से छुरिका का पूजन करके देवता के सान्निध्य में, सुन्दर लग्न में अच्छे लक्षणों से युक्त छुरी, तलवार कमर में बाँधनी चाहिये ॥ ६–८ ॥

तस्यास्तु लक्षणं वक्ष्ये यदुक्तं ब्रह्मणा पुरा।
सम्मितं छुरिकायामविस्तारेणैव ताडयेत् ॥ ९ ॥
भाजितं गजसंख्यैश्च अंगुलान्परिकल्पयेत्।
शेषे चैव फलं वक्ष्ये ध्वजाये धनवान्भवेत् ॥ १० ॥
धूमाये मरणं सिंहे जयश्वायेतिरोगताम्।
धनलाभो वृषेत्यन्तं दुःखी भवति गर्दभे ॥ ११ ॥
गजायेत्यन्तसम्प्राप्तिर्ध्वांक्षे वित्तविनाशनम् ॥ १२ ॥

अब मैं छुरिका के लक्षणों को जो कि पहिले ब्रह्मा जी ने बताये थे उन्हें कह रहा हूँ। छुरिका की लम्बाई को चौड़ाई से गुणा करके आठ का भाग देकर शेष से आयों के आधार पर फल समझना चाहिये।

जैसे १ शेष होने पर ध्वज आय में बाँधने वाला धनी, धूम आय में मरण, सिंह में विजय व श्वा में अधिक रोग, वृष में अधिक धनागम, गर्दभ में दुःख, गज में ज्यादा धन लब्धि और ध्वांक्ष आय में धन का विनाश होता है ॥ ९–१२ ॥

खड्ग विवाह मुहूर्त

खड्गोद्वाहः अन्यः —
चन्द्रपञ्चाङ्गसंशुद्धौ सौम्यायनविवाहभे।
राज्ञो गोधूलिके लग्ने खड्गोद्वाहः प्रशस्यते ॥ १३ ॥

अन्य लोगों का कहना है कि पञ्चाङ्ग शुद्धि से चन्द्रमा को युत होने पर उत्तरायण में विवाह में कथित नक्षत्रादि में, राजाओं को गोधूलि लग्न में खड्ग विवाह करना चाहिये ॥ १३ ॥

कक्षा बांधने का ज्ञान

कक्षाबन्धनम्—
त्रीण्युत्तराण्यदितिपौष्णमघाधनिष्ठापुष्याश्विशीतकरधातृकरादि पञ्च।
एतानि कक्षविधिबन्धनसम्मितानि सौम्यग्रहस्य दिवसे च सिते च पक्षे ॥ १४ ॥

तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, रेवती, मघा, धनिष्ठा, पुष्य, अश्विनी, मृगशिरा, रोहिणी हस्तादि पाँच नक्षत्रों में शुक्ल पक्ष में शुभग्रह के वार में कक्षा बन्धन करना चाहिये ॥ १४ ॥

अथाभिवादनप्रकारः।

अब आगे अभिवादन के प्रकार को अनेक वाक्यों से बताते हैं।

नमस्कार विधि

तत्र याज्ञवल्क्यः —

ततोऽभिवादयेद्वृद्धानसावहमिति ब्रुवन्।

ऋषि याज्ञवल्क्य ने बताया है कि 'यह मैं हूँ', ऐसा कहते हुए नमस्कार, पाँवलागी आदि करना चाहिये।

ब्रह्मपुराणे—

उत्थाय मातापितरौ पूर्वमेवाभिवादयेत्।
आचार्यश्च ततो नित्यमभिवाद्यो विजानता॥ १५॥

ब्रह्मपुराण में कहा है कि प्रतिदिन शयन से उठकर माता व पिता को प्रथम अभिवादन करने के बाद विशेषता से गुरु को रोज प्रणाम करना चाहिये॥१५॥

प्रत्यभिवादन का महत्व

[1]मनुः—

यो न वेत्त्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम्।
नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः॥ १६॥

जो ब्राह्मण अभिवादन के बाद प्रत्यभिवादन (शास्त्रीय अभिवादन का आशीर्वाद रूप प्रत्युत्तर) भी नहीं जानता हो, विद्वान् ब्राह्मण उसका अभिवादन भी न करे, क्योंकि जैसा शूद्र वैसा ही यह होता है॥ १६॥

अभिवादत यो विप्र आशिषं न प्रयच्छति।
श्मशाने जायते वृक्षः कंकगृध्रोपसेवितः॥ १७॥

ग्रन्थान्तरों में बताया है कि जो ब्राह्मण अभिवादन प्राप्त करके अभिवादन कर्ता को आशीर्वाद नहीं देता वह श्मशान पर चील व गीधों से सेवित वृक्ष होता है॥ १७॥

शातातपः—

पाषंडं पतितं व्रात्यं महापातकिनं शठम्।
सोपानत्कं कृतघ्नं च नाभिवादेत्कदाचन॥ १८॥

ऋषि शातातप ने बताया है कि पाखण्डी, पतित, व्रात्य, महापातकी, धूर्त, जूता पहिने हुए और कृतघ्न का अभिवादन कभी नहीं करना चाहिये॥ १८॥

धावन्तं च प्रमत्तं च मूत्रोत्सर्गकृतं तथा।
भुञ्जानमाचमानं च नास्तिकं नाभिवादयेत्॥ १९॥

दौड़ते हुए, पागल, पेशाव किये हुए, खाते हुए, आचमन करते हुए का और नास्तिक व्यक्ति का अभिवादन नहीं करना चाहिये॥ १९॥

---

१. २ अ० १२६ श्लो०।

वमन्तं जृम्भमाणं च कुर्वंतं दन्तधावनम् ।
अभ्यक्तशिरसं चैव स्नातं वा नाभिवादयेत् ॥ २० ॥

वमन करते हुए का, जँभाई लेते हुए का, दाँतुन करते हुए का, शिर मालिश करते हुए या धोते हुए का, स्नान करते हुए को नमस्कार नहीं करना चाहिये ॥ २० ॥

बृहस्पतिः –
जपयज्ञगणस्थं च समित्पुष्पकुशानलान् ।
उदपात्रार्घभैक्षान्नहस्तं तं नाभिवादयेत् ॥ २१ ॥

बृहस्पतिजी ने बताया है कि जपयज्ञगणस्थ, समिधा, पुष्प, कुश, अग्नि को तथा जलपात्र, अर्घ्य व भिक्षा के अन्न को हाथ में लिये हुए व्यक्ति का अभिवादन नहीं करना चाहिये ॥ २१ ॥

अन्य भी

उदक्यां सूतिकां नारी भर्तृघ्नीं ब्रह्मघातिनीम् ।
अभिवाद्य द्विजो मोहादहोरात्रेण शुद्धयति ॥ २२ ॥

जो ब्राह्मण मोहवश रजस्वला, सूतिका, पति को मारने वाली और ब्राह्मण को मारने वाली स्त्री का अभिवादन करता है वह एक दिन का प्रायश्चित्त करके शुद्ध होता है ॥ २२ ॥

अभिवादन न करने पर प्रायश्चित्त

जन्मदग्निः —
देवताप्रतिमां दृष्ट्वा यतिं दृष्ट्वा त्रिदण्डिनम् ।
नमस्कारं न कुर्याच्चेत्प्रायश्चित्ती भवेन्नरः ॥ २३ ॥

ऋषि जमदग्निजी ने बताया है कि जो व्यक्ति देवता की प्रतिमा को देखकर तथा त्रिदण्डी स्वामी को देखकर प्रणाम नहीं करता वह प्रायश्चित्त का भागी होता है ॥२३॥

अभिवादन का फल

[1]मनुः—
अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुः प्रज्ञा यशो बलम् ॥ २४ ॥

प्रतिदिन अभिवादन करने वाले तथा नित्य बड़ों की सेवा करने वाले मनुष्य की आयु, विद्या, यश और बल ये चार वस्तु बढ़ती हैं ॥ २४ ॥

एतच्चाभिवादनमधिकवयसामेव कार्यम् ।

इस अभिवादन का बड़े लोगों में ही प्रयोग करना चाहिये ऐसा मनु ने बताया है ।

वन्दनीय व्यक्ति

तथा च मनुः[2]—
ज्यायांसमभिवादयेत् । इति ।

मनु ऋषि ने बताया है कि वृद्धों को नमस्कार करना चाहिये ।

---

१. मनुस्मृ० २ अ० १२१ श्लो० ।   २. मनुस्मृ० २ अ० १२२ श्लो० ।

ग्रन्थान्तर से

स्मृत्यर्थसारे—

गुरवो माता स्तन्यधात्रीं च पिता पितामहादयो मातामहश्चान्नदाता भयत्राता आचार्यश्चोपनेता च मन्त्रविद्योपदेष्टा च तेषां पत्न्यश्चोपसंग्राह्याः समावृते न च। बाले समवयस्के चाध्यापके गुरुवच्चरेत्। मातुलाश्च पितृव्याश्च श्वशुराश्च यवीयांसोपि प्रत्युत्थायाभिवाद्याः। उपाध्यायः ऋत्विजो ज्येष्ठ-भ्रातरश्च सर्वेषां पत्न्यश्चैवं मातृष्वसा च सवर्णा भ्रातृभार्या च नित्यमभिवाद्याः। [1]विप्रोष्य तूपसंग्राह्या ज्ञातिसम्बन्धियोषितः।

स्मृत्यर्थसार में कहा है कि गुरुजन, माता, दूध पिलाने वाली, पिता, पितामहादि, मातामह, अन्नदाता, डर दूर कर्ता, आचार्य, उपनेता, मन्त्रोपदेशक और उनकी पत्नी से अभिवादन करके आशीर्वादग्रहण करना चाहिये। छोटा या अपनी के समान अवस्था का अध्यापक हो तो उससे गुरु की तरह व्यवहार करना चाहिये।

मामा, चाचा, श्वसुर लघु हो तो भी उठकर उन्हें अभिवादन करना चाहिये। उपाध्याय, ऋत्विज, बड़ा भाई और इनकी पत्नी तथा मौसी व सगोत्र स्त्री भाई की पत्नी को नित्य नमस्कार करना चाहिये॥

मनुस्मृति में बताया है कि जातिवालों (पितृ पक्षस्थ) तथा सम्बन्धियों (मातृ पक्ष व श्वसुर पक्ष) की स्त्रियों का परदेश या प्रवास से आकर अभिवादन करना चाहिये।

प्रतिवर्ण से कुशल प्रश्नविधि

[2]विप्रोष्य विप्रं कुशलं पृच्छेन्नृपमनामयम्।
वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च॥ २५॥

परदेश से आने पर अपने मिलने वाले ब्राह्मण से कुशल, क्षत्रिय से नीरोगता, वनिया से क्षेम और शूद्र से आरोग्यता पूछनी चाहिये॥ २५॥

विशेष—मनुस्मृति में 'ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत् क्षत्रवन्धुमनामयम्' यह पाठान्तर है॥ २५॥

दीक्षित के नामोच्चारण का निषेध

न वाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपि सर्वथा।
पूज्यैस्तमभिभाषेत भोभवत्कर्मनामभिः॥ २६॥

सर्वथा दीक्षित छोटे व्यक्ति को भी नाम से नहीं पुकारना चाहिये। और 'भो' 'आप' इन शब्दों का प्रयोग कर पूज्य वाक्यों से बातचीत करनी चाहिये॥ २६॥

---

१. मनुस्मृ० २ अ० १३२ श्लो०।   २. मनुस्मृ० २ अ० १२७ श्लो०।

एक हाथ से अभिवादन का निषेध

जन्मप्रभृति यत्किंचिच्चेतसा धर्ममाचरेत् ।
सर्वं तन्निष्फलं याति एकहस्ताभिवादनात् ॥ २७ ॥

जन्म से लेकर मन से जिन धर्मों का आचरण किया जाता है वह सब एक हाथ से अभिवादन करने पर निष्फल होता है ॥ २७ ॥

विशेष

एतदपि विद्वद्विषयम् । यतः स एवाह अजाकर्णेन विदुषो मूर्खाणामेकपाणिना । इति । अजाकर्णौ संपुटितौ यथा तथैव संपुटितं करद्वयमपीत्यजाकर्णौ । अभिवादने पादग्रहणं नास्ति । पादस्पर्शनं कार्यम् ।

सर्वे वापि नमस्कार्याः सर्वावस्थासु सर्वदा ।
अभिवादे नमस्कारे तथा प्रत्यभिवादने ॥
आशीर्वाच्या नमस्कार्यैर्वयस्ये तु पुनर्भवेत् ।
स्त्रियो नमस्या वृद्धाश्च वयसा पत्युरेव ताः ॥ २८ ॥

यह भी विद्वानों का कहना है कि बकरी के कानों के समान दो हाथों के संपुट से विद्वान् का और एक हाथ से मूर्खों का अभिवादन होता है ॥

जैसे बकरी के दोनों कान संपुटित होते हैं, वैसे ही दोनों हाथ संपुटित करने पर बकरी के कान जैसे होते हैं ।

अभिवादन में पाद ग्रहण नहीं होता, पैर का स्पर्श करना चाहिये ।

अथवा सबका समस्त अवस्था में सब समय नमस्कार करना चाहिये । अभिवादन में नमस्कार, प्रत्यभिवादन में आशीर्वाद देना चाहिये । और समवयस्कों से तत्समान ही उत्तर में कहना चाहिये ।

वृद्ध स्त्रियों को नमस्कार करना क्योंकि अवस्था से स्वामिनी हैं ॥ २८ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनज्योतिर्वित्कृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने सप्ततितमं छुरिकाबन्धनप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का सत्तरवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥७०॥

इति श्री मथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधरचतुर्वेदकृता श्रीधरी हिन्दी टीका बृहद्दैवज्ञरञ्जनसङ्ग्रहग्रन्थस्य सप्ततितमप्रकरणस्य समाप्तिमगात् ॥ ७० ॥

अथैकसप्ततितमं विवाहप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अथ सर्वेषामाश्रमाणां गृहस्थाश्रमो मुख्यतरस्तस्य लक्षणमुक्तम् ।

अब आगे इकहत्तरवाँ विवाह प्रकरण प्रारम्भ करते हैं । भारतीय आश्रमिक समाज व्यवस्था के अन्तर्गत गृहस्थाश्रम ही सर्वोत्कृष्ट होता है। यह विवाह द्वारा ही सम्भव है । क्योंकि सृष्टि क्रम में सृष्टि का प्रादुर्भाव भी स्त्रीधारा तथा पुरुष धारा के संभोग से ही हुआ है । इसमें विविध प्रमाण शास्त्रों में उपलब्ध हैं। इस आश्रम की समस्त आश्रमों से श्रेष्ठता है तथा यही सब आश्रमों की आधार शिला है । और यह विवाह कब, किस समय में, किस मुहूर्त में किसके साथ करना तथा इसमें स्त्री पुरुष के विविध प्रकार के मेलापक को बताते हैं ।

गृहस्थाश्रम का लक्षण

दया लज्जा क्षमा श्रद्धा प्रज्ञा त्यागः कृतज्ञता ।
गुणा यस्य भवन्त्येते गृहस्थो मुख्य एव च ॥ १ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि दया, लज्जा, क्षमा, श्रद्धा, बुद्धि, त्याग, कृतज्ञता, ये गुण जिसमें होते हैं वह मुख्य गृहस्थ होता है ॥ १ ॥

गृहस्थ का महत्त्व

शंखः—

वानप्रस्थो ब्रह्मचारी यतिश्चैव तथा द्विजः ।
गृहस्थस्य प्रसादेन जीवन्त्येते यथाविधि ॥ २ ॥

ऋषिशङ्ख ने बताया है कि वानप्रस्थी, ब्रह्मचारी, संन्यासी, ब्राह्मण गृहस्थ की कृपा से ही जीवन प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः ।
ददाति च गृहस्थश्च तस्माच्छ्रेयो गृहाश्रमी ॥ ३ ॥

गृहस्थ ही यज्ञ करता है, गृहस्थ ही तपस्या करता है, गृहस्थ ही दान देता है । इसलिये गृहस्थ श्रेष्ठ माना गया है ॥ ३ ॥

गृहस्थाश्रम महिमा

व्यासः—

गृहाश्रमात्परो धर्मो नास्ति नास्ति पुनः पुनः ॥ ४ ॥
यज्ञैर्हिर्दक्षिणावद्भिर्वह्निश्रूषया तथा ।
गृही स्वर्गमवाप्नोति तथा चातिथिपूजनात् ॥ ५ ॥

ऋषि व्यास ने बताया है कि गृहस्थाश्रम को छोड़कर कोई भी आश्रम उत्तम नहीं है। क्योंकि दक्षिणा सहित ये गृहस्थ यज्ञ करते हैं तथा अग्नि की शुश्रूषा करते हैं। और अतिथि के पूजन करने से गृहस्थ स्वर्ग प्राप्त करता है॥ ४–५॥

अर्ध पुरुष

पुनर्व्यासः—

यावन्न विद्यते जाया तावदर्द्धो भवेत्पुमान्।
नार्द्धं प्रजायते सर्वं प्रजायेतेत्यपि श्रुतिः॥ ६॥

व्यासजी ने कहा है कि जबतक स्त्री की प्राप्ति नहीं होती, तबतक पुरुष आधा होता है और अकेले में सन्तान नहीं होती एवं सन्तान पैदा करना चाहिये, ये श्रुति कहती है॥ ६॥

स्वानुकूल पत्नी का महत्त्व

दक्षः—

पत्नीमूलं गृहं पुंसां यदि च्छन्दानुवर्तिनी।
गृहाश्रमात्परं नास्ति यदि भार्या वशानुगा॥ ७॥

दक्ष जी ने बताया है कि पुरुषों का घर पत्नी मूलक होता है जब कि पत्नी अपने अनुकूल होती है। इसलिये अपने अनुकूल पत्नी के रहने पर गृहस्थ आश्रम से अधिक सुख कुछ नहीं होता है॥ ७॥

विनय की महत्ता

वसिष्ठः—

शिष्यो भार्या शिशुर्भ्राता मित्रं दासः समाश्रिताः।
यस्यैतानि विनीतानि तस्य लोकेपि गौरवम्॥ ८॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि जिसके आश्रय में शिष्य, पत्नी, पुत्र, भाई, मित्र और नौकर विनीत होता है वह इस संसार में भी गौरव प्राप्त करता है॥ ८॥

गृहस्थाश्रम की प्रशंसा

मनुः—

[1]यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्॥ ९॥

ऋषि मनु ने बताया है कि जैसे नदी, नद सब समुद्र में मिलते हैं अर्थात् आश्रय प्राप्त करते हैं उसी प्रकार समस्त आश्रम गृहस्थ का ही आश्रय प्राप्त करते हैं॥ ९॥

[2]यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्वं आश्रमाः॥ १०॥

मनुस्मृति में बताया है कि जिस प्रकार प्राण वायु का आश्रय कर सब जीते हैं, उसी प्रकार गृहस्थ का आश्रय कर सभी आश्रम चलते हैं॥ १०॥

---

१. म० स्मृ० ६ अ० ९० श्लो०। २. म० स्मृ० ३ अ० ७२ श्लो०।

पुनः प्रशंसा

[१]यस्मात्त्रयोप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम् ।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥ ११ ॥

जिस कारण तीनों आश्रम (ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, संन्यास) वाले गृहस्थाश्रमी से ही प्रतिदिन अन्न को प्राप्त करते हैं । इस कारण गृहस्थाश्रमी ही सबसे श्रेष्ठ होता है ॥११॥

गृहस्थाश्रम में प्रवेश का अधिकार

[२]वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाचरेत् ॥ १२ ॥

मनुस्मृति में बताया है कि ब्रह्मचारी को चाहिये कि अखण्डित ब्रह्मचर्य को धारण करते हुए तीनों वेदों को या उतना न कर सके तो दो वेदों को या एक वेद का अपनी शाखा के आधार पर अध्ययन करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिये ॥ १२ ॥

विवाह का महत्व

वृहस्पतिः—
विवाहादेव सत्सृष्टिः सत्सृष्ट्यैव जगत्त्रयम् ।
चतुर्वर्गफलावाप्तिस्तस्मात्परिणयः शुभः ॥ १३ ॥

वृहस्पतिजी ने बताया है कि विवाह से ही शुभ सृष्टि होती है और अच्छी सृष्टि से तीनों लोक में चतुर्वर्ग फल की प्राप्ति होती है । इसलिये विवाह शुभ होता है ॥ १३ ॥

विवाहसमये काले सुखासीनं शुभं प्रियम् ।
दैवज्ञं भक्तितो नत्वा संपूज्यादौ यथाबलम् ॥ १४ ॥

जबकि विवाह का समय दोनों का प्राप्त हो तो शुभ, प्रिय, सुख से बैठे हुए दैवज्ञ को भक्ति पूर्वक नमस्कार करके पूजन करना चाहिये ॥ १४ ॥

उडूनि नामनी चोक्त्वा संपृच्छेत्सकृदेव तम् ।
ज्ञानी चास्याक्षराज्ज्ञात्वा लग्नं तत्कालसम्भवम् ॥ १५ ॥

और एक बार उस ज्योतिषी से नामाक्षर तथा नक्षत्रों को बताकर पूँछना चाहिये । ज्ञानी ज्योतिषी को इसके बताने के समय में लग्न का ज्ञान करके यथा बल से फलादेश करना चाहिये ॥ १५ ॥

८ आठ विवाह व उनका समय

श्रीपतिः—
प्राजापत्यं ब्राह्मदैवर्षिसंज्ञाः कालेषूक्तेष्वेव कार्या विवाहाः ।
गान्धर्वाख्यश्चासुरो राक्षसश्च पैशाचो वा सर्वकाले विधेयाः ॥ १६ ॥

---

१. मनु० स्मृ० ३ अ० ७८ श्लो० । २. मनु० स्मृ० ३ अ० २ श्लो० ।

आचार्य श्रीपतिजी ने बताया है कि प्राजापत्य, ब्राह्म, दैव और आर्ष विवाह उक्त समय में ही करना और गान्धर्व, आसुर, राक्षस व पैशाच विवाह सब समय में करना चाहिये ॥ १६ ॥

प्रतिवर्ण के लिये विवाह

चत्वारो ब्राह्मणस्याद्या राज्ञां गांधर्वराक्षसौ ।
राक्षसश्चासुरो वैश्ये शूद्रे चान्त्यस्तु गर्हितः ॥ १७ ॥

प्रथम के चार ब्राह्मणों के लिये, राजाओं को गान्धर्व व राक्षस, वैश्यों को राक्षस व आसुर तथा शूद्रों को आसुर विवाह करना तथा अन्त्यज में विवाह नहीं होता है ॥१७॥

ब्राह्म, दैव, आर्ष विवाह का लक्षण

[1]ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्त्यलंकृता ।
यज्ञस्थऋत्विजे दैव आदायार्षस्तु गोद्वयम् ॥ १८ ॥

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि अपनी शक्ति के अनुसार कन्या को अलङ्कृत करके वर को अपने घर में बुलाकर विवाह करना ब्राह्म विवाह होता है ॥

और यज्ञस्थ ऋत्विज को कन्या देना दैव तथा दो गाय का दान लेकर ऋत्विज से उसे कन्या देना आर्ष विवाह होता है ॥ १८ ॥

आसुर, गान्धर्व, राक्षस, पैशाच विवाह का लक्षण

[2]आसुरो द्रविणादानाद्गन्धर्वः समयान्मिथः ।
राक्षसो युद्धहरणात्पैशाचः कन्यकाछलात् ॥ १९ ॥

जाति वाले व कन्या को धन देकर दान करना आसुर, इच्छानुसार परस्पर संयोग या लव से गान्धर्व, युद्ध में हरण से राक्षस और कपट से विवाह पैशाच होता है ॥१९॥

विशेष—यहाँ पर प्राजापत्य का लक्षण नहीं बताया है अतः पाठकों की सुविधा के लिये बताया जा रहा है 'सहोभौ चरतां धर्ममितिवाचाऽनुभाष्य च । कन्याप्रदान-मभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः' (३ अ० ३० श्लो० मनु०) ॥ १९ ॥

अथाब्दशुद्धिः—

वर्ष शुद्धि ज्ञान

नारदः—
वर्षग्रहसंशुद्धिस्त्वयनविशुद्धिश्च माससंशुद्धिः ।
तिथिवारादिविशुद्धिर्लग्नांशविशुद्धिर्विवाहेषु ॥ २० ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि वर्ष में अर्थात् जिस वर्ष में विवाह करना हो उसमें ग्रहों की, अयन, मास, तिथि, वारादि और लग्नादि की शुभता का विचार करके विवाह करना चाहिये ॥ २० ॥

---

१. मु० चि० ६ प्र० १ श्लो० पी० टी० । २. मु० चि० ६ प्र० १ श्लो० पी० टी० ।

कन्या उपभोग

वेदे वाक्ये—

जन्मतः प्रथमे वर्षे सोमो भुंक्तेथ कन्यकाः ।
गन्धर्वोथ द्वितीयेऽब्दे तृतीयेग्निस्ततो नरः ॥ २१ ॥

जन्म से प्रथम वर्ष में सोम, द्वितीय में गन्धर्व और तीसरे वर्ष में अग्नि कन्या का उपभोग करता है ॥ २१ ॥

उपभोग में विवाह का निषेध

पराशरस्तु—

षडब्दमध्ये नोद्वाहः कन्या वर्षद्वयं ततः ।
सोमो भुंक्तेऽथ गन्धर्वस्ततः पश्चाद्धुताशनः ॥ २२ ॥

ऋषि पराशर ने बताया हैं कि १ से ६ वर्ष के भीतर कन्या का विवाह नहीं करना चाहिये । क्योंकि २ वर्ष तक सोम, ३, ४ में गन्धर्व और पाँचवें छठे वर्ष में कन्या का उपभोग अग्नि करता है ॥ २२ ॥

और भी ग्रन्थान्तर

अन्यदपि—

चन्द्रगन्धर्ववह्न्यम्वुशिवसोमस्मरा इमे ।
पतयः कन्यकानां च वाल्यात् सन्ति सदैव ते ॥ २३ ॥

ग्रन्थान्तर में वताया है कि पहिले वर्ष का स्वामी सोम, दूसरे का गन्धर्व, तीसरे का अग्नि, चौथे का जल, पाँचवें का महादेव, छठे का सोम और सातवें वर्ष का स्वामी कामदेव होता है ॥ २३ ॥

अतः सप्तमवर्षादूर्ध्वं कन्यकाविवाह उचितः ।

इसलिये सातवें वर्ष के बाद कन्या का विवाह उचित होता है ।

पारिजाते यमः—

स्त्रीणामुपनयनस्थानोपपन्नो विवाह इति
तदुचितो वयोवस्थायां विवाहस्योचितत्वात् ।

पारिजात में यम ने वताया है कि स्त्रियों का उपनयन स्थानीय विवाह होता ही है, अतः वह विवाह उपनयन के उचित वर्ष व अवस्था में होता है ।

विवाह वर्ष ज्ञान

यमः—

सप्तसंवत्सरादूर्ध्वं विवाहः सार्ववर्णिकः ।
कन्यायाः शस्यते राजन्नान्यथा धर्मगर्हितः ॥ २४ ॥

यमजी ने बताया है कि समस्त वर्णों में सात वर्ष के बाद ही कन्या का विवाह हे राजन् प्रशस्त माना गया है । और इसके विपरीत में निन्दित होता है ॥ २४ ॥

उच्चस्थ गुरु की विशेषता

बृहस्पतिः—
सप्ताब्दात्पञ्च वर्षेषु स्वोच्चस्वर्क्षगतो गुरुः।
अशुभेपि शुभं दद्याच्छुभर्क्षेषु च किंपुनः॥ २५॥

बृहस्पतिजी ने बताया है कि सातवें वर्ष के पश्चात् पाँच वर्षों में अशुभ गुरु होने पर यदि अपनी उच्चराशि या अपनी राशि में हो तो शुभ फल दाता होता है और गोचरीय शुभ राशिस्थ गुरु हो तो कहना ही क्या है॥ २५॥

सात वर्ष के अनन्तर वर्ष में कन्या की संज्ञा का ज्ञान

व्यासः—
अष्टवर्षा भवेद्गौरी नव वर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला॥ २६॥

ऋषि व्यास ने बताया है कि आठ वर्ष की कन्या गौरी, नौ वर्ष की रोहिणी और दस वर्ष की कन्या संज्ञा, इसके बाद रजोमती होती है॥ २६॥

उक्तों के दान का फल

मरीचिः—
गौरी ददन्नाकपृष्ठं वैकुण्ठं रोहिणीं ददत्।
कन्याददद्ब्रह्मलोकं रौरवं वृषलीं ददत्॥ २७॥

ऋषि मरीचि ने बताया है कि गौरी के दान से स्वर्ग की, रोहिणी से वैकुण्ठ की, कन्या से ब्रह्मलोक की और वृषली का दान देने से रौरव नरक प्राप्त होता है॥ २७॥

कन्यादि दान महत्व

[1]वात्स्यः—
गौरी विवाहिता सौख्यसम्पन्ना स्यात्पतिव्रता।
रोहिणी धनधान्यादि पुत्राद्या सुभगा भवेत्॥ २८॥

श्रीवात्स्यजी ने बताया है कि गौरी का विवाह करने से वह सुख से सम्पन्न व पतिव्रता, रोहिणी के दान से वह धनधान्य पुत्रादि से युत सौभाग्यवती होती है॥२८॥

कन्या विवाहिता सम्पत्समृद्धा स्वामिपूजिता॥ २९॥

तथा कन्या के विवाह से वह सम्पत्तियों से युत तथा पति से सन्मान पाने वाली होती है॥ २९॥

बलानुसार उक्तों का दान

गौरी गुरोर्बलं देयं रोहिणीभास्करस्य च।
कन्या चन्द्रबलं देयमष्टदोषविवर्जितम्॥ ३०॥

---

१. व० सं० ३२ अ० २ श्लो०।

गौरी का गुरु बल, रोहिणी का सूर्य बल और कन्या का अष्ट दोष से रहित चन्द्र बल देखकर दान करना चाहिये ॥ ३० ॥

अर्कगुर्वोर्बलं गौर्या रोहिण्यर्कबला स्मृता ।
कन्या चन्द्रबला प्रोक्ता वृषली लग्नतो बलात् ॥ ३१ ॥

गौरी का सूर्य, गुरु बल, रोहिणी का सूर्य बल, कन्या का चन्द्र बल और वृषली का लग्न बल देखकर दान करना चाहिये ॥ ३१ ॥

गुर्विद्विनबला गौरी गुर्विदुबलरोहिणी ।
रवीन्दुबलजा कन्या प्रौढा लग्नबला स्मृता ॥ ३२ ॥

गुरु, चन्द्र, सूर्य इनके बली होने पर गौरी का, सूर्य बली में रोहिणी का, सूर्य, चन्द्र के बली होने पर कन्या का और लग्न के बली होने पर प्रौढा का विवाह करना चाहिये ॥ ३२ ॥

वर्षों का ज्ञान

[1]वसिष्ठः—

अब्देषु युग्मेषु च कन्यकानां स्वजन्मवर्षाच्छुभदो विवाहः ।
अयुग्मवर्षेषु शुभो नराणां विपर्यये दुःखगदप्रदः स्यात् ॥ ३३ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि समवर्षों में कन्या का और विषम वर्षों में लड़के का विवाह करना चाहिये । इसके विपरीत में करने पर विवाह दुःख रोग दाता होता है ॥ ३३ ॥

समवर्ष में उचित

नारदः—

[2]युग्मेब्दे जन्मतः स्त्रीणां प्रीतिदं पाणिपीडनम् ।
एतत्पुंसामयुग्मेब्दे व्यत्यये नाशनं तयोः ॥ ३४ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि जन्म से समवर्षों में कन्या का विवाह प्रेम देने वाला और पुरुषों का विषम वर्ष में प्रीतिदाता इसके विपरीत में दोनों का नाशक होता है ॥ ३४ ॥

संवर्तः—

युग्मेब्दे सम्पदो विन्द्याद्धनधान्यायुषः सदा ।
भर्तृदुष्टा भवत्योजे वर्षे नास्त्यत्र संशयः ॥ ३५ ॥

---

१. मु० चिं० ६ प्र० १२ श्लो० पी० टी० ।

२. मु० चिं० ६ प्र० १२ श्लो० पी० टी० ।

संवर्तजी ने बताया है कि समवर्ष में कन्या का विवाह सम्पत्ति, धन, धान्य, आयु से सदा संयुत और विषम में भर्ता (पति) के लिये निश्चय ही दुष्टा कन्या होती है ॥३५॥

पराशरः—

[1]युग्मेऽब्दे सम्पदः सौख्यविद्याधर्मायुषः सदा।
भर्तृदुष्टा भवत्योजे निषेकान्नात्र संशयः ॥ ३६ ॥

ऋषि पराशर ने बताया है कि निषेक (गर्भ) से समवर्षों में कन्या का विवाह सम्पत्ति, सुख, विद्या, धर्म, आयु, दाता होता है। और विषमवर्षों में कन्या का विवाह करने पर निश्चय ही पति के लिए दुष्टा होती है ॥ ३६ ॥

[2]कश्यपः—

विवाहो जन्मतः स्त्रीणां युग्मेऽब्दे पुत्रपौत्रदः।
अयुग्मे श्रीप्रदः पुंसां विपरीते तु मृत्युदः ॥ ३७ ॥

ऋषि कश्यप ने बताया है कि जन्म से कन्याओं का समवर्ष में विवाह पुत्र, पौत्र देने वाला और पुरुषों का विषम वर्ष में लक्ष्मी देने वाला और इसके विपरीत में मृत्यु दाता होता है ॥ ३७ ॥

दैवज्ञो निर्दिशेद्युग्ममुद्वाहेऽब्दं प्रयत्नतः।
सौभाग्यं धनसम्पत्तिराजे दुःखान्विता भवेत् ॥ ३८ ॥

ज्योतिषीजी को प्रयत्न से समवर्ष में विवाह का आदेश करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से सौभाग्य व धन-सम्पत्ति होती है और विषम वर्ष में कन्या का विवाह करने पर वह दुःख से युक्त होती है ॥ ३८ ॥

[3]मन्वर्थमुक्तावल्याम्—

अयुग्मे दुर्भगा नारी युग्मे च विधवा भवेत्।
तस्माद्गर्भान्विते युग्मे विवाहे सा पतिव्रता ॥ ३९ ॥

मन्वर्थमुक्तावली में बताया है कि विषम वर्ष में विवाह करने पर कन्या दुर्भगा व सम में विधवा होती है। इसलिए गर्भ से समवर्ष में परिणय करने से स्त्री पतिव्रता होती है ॥ ३९ ॥

[4]श्रीपतिनिबन्धे—

मासत्रयादूर्ध्वमयुग्मवर्षे युग्मे तु मासत्रयमेव यावत्।
विवाहशुद्धिं प्रवदन्ति सन्तो वात्स्यादयो गर्गवराहमुख्याः ॥ ४० ॥

---

१. मु० चि० ६ प्र० १२ श्लो० पी० टी०।
२. मु० चि० ६ प्र० १२ श्लो० पी० टी०।
३. मु० चि० ६ प्र० १२ श्लो० पी० टी०।
४. मु० चि० ६ प्र० १२ श्लो० पी० टी०।

श्रीपति निवन्ध में कहा है कि तीन मास से ऊपर विषम वर्ष में और समवर्षों में तीन मास के भीतर ही विवाह शुद्धि वात्स्यादि, गर्ग, वराह प्रभृति विद्वानों ने बताया है ॥ ४० ॥

नारदः—

आदौ मासत्रये नेष्टं युग्मसंवत्सरस्य तु ।
पुरतो वर्षशुद्धिश्च गर्भमासान्विताः शुभाः ॥ ४१ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि समवर्ष में आदि के तीन मास अशुभ, तीसरे मास से आगे मासों में गर्भ के मास से युक्त होने पर वर्ष शुभ होते हैं ॥ ४१ ॥

लल्लः—

विवाहे जन्मतः स्त्रीणां वर्जनीयं प्रयत्नतः ।
नैव पुंनामिह प्राहुर्ज्योतिर्नयविदो बुधाः ॥ ४२ ॥

आचार्य लल्ल ने बताया है कि जन्म से स्त्रियों के वर्ष की संख्या विवाह में त्यागना चाहिये तथा पुरुषों के वर्ष का जन्म से त्याग नहीं करना चाहिये। ऐसा ज्योतिष नयवेत्ता विद्वानों का कहना है ॥ ४२ ॥

शुद्धि विचार

श्रीपतिरपि—

रवीज्यशशिशुद्धिश्च दशवर्षाणि कारयेत् ।
अत ऊर्ध्वं रजस्कन्या तस्माद्दोषो न विद्यते ॥ ४३ ॥

आचार्य श्रीपतिजी ने बताया है कि सूर्य, गुरु, चन्द्र शुद्धि का विचार कन्या की दस वर्ष की आयु तक करना चाहिये, क्योंकि इसके पश्चात् कन्या रजोवती होती है। इसलिए दोष नहीं होता है ॥ ४३ ॥

व्यासः—

[1]दशवर्षव्यतिक्रान्ता कन्या शुद्धिविवर्जिता ।
तस्यास्तारेन्दुलग्नानां शुद्धौ पाणिग्रहो मतः ॥ ४४ ॥

ऋषि व्यास ने बताया है कि दस वर्ष से कन्या की अवस्था ज्यादा हो तो उसके गुरु, सूर्य शुद्धि का विचार न करके तारा, चन्द्र, लग्नवल देखकर विवाह करना चाहिये ॥४४॥

नारदः—

गुरुरवलो रविरशुभः प्राप्ते एकादशाब्दया कन्या ।
गणयति गणकविशुद्धः स गणको ब्रह्महा भवति ॥ ४५ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि गुरु निर्वल, सूर्य अशुभ हो तथा कन्या ग्यारह वर्ष की अवस्था में होने पर जो ज्योतिषी शुद्धि की गणना करता है, वह ज्योतिषी ब्राह्मण की हत्या करने वाला होता है ॥ ४५ ॥

---

१. मु० चि० ६ प्र० १२ श्लो० पी० टी० ।

न करने पर पाप

राजमार्तण्डे—
सम्प्राप्तैकादशे वर्षे कन्यां यो न विवाहति।
मासे मासे रजस्तस्या पिता पिबति शोणितम् ॥ ४६ ॥

राजमार्तण्ड में बताया है कि कन्या को ग्यारह वर्ष की होने पर जो विवाह नहीं करता वह पिता महीने-महीने उसका रज और शोणित का पान करता है ॥ ४६ ॥

नारदः—
सम्प्राप्ते द्वादशे वर्षे कन्यां यो न विवाहति।
मासि मासि रजस्तस्याः पिता पिबति शोणितम् ॥ ४७ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि कन्या को ग्यारह वर्ष की होने पर जो विवाह नहीं करता वह पिता उसका मास-मास में उत्पन्न रज व शोणित का पान करता है ॥ ४७ ॥

यमः—
कन्या द्वादशवर्षाणि याऽप्रदत्ता वसेद्गृहे।
ब्रह्महत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वरयेत्स्वयम् ॥ ४८ ॥

ऋषि यम ने बताया है कि बारह वर्ष तक जो कन्या अप्रदत्त स्थिति में घर में वास करती है तो उसके पिता को ब्रह्महत्या प्राप्त होती है। ऐसी कन्या को पति का स्वयं वरण करना चाहिये ॥ ४८ ॥

रजोदर्शन से पूर्व दान

वसिष्ठः—
रजो हि दृष्टं यदि कन्यकायाः कुलद्वयं दुर्गतिमेति तस्याः।
तस्मान्नितान्तं च तदुक्तकालं वध्वाश्च पाणिग्रहणं विधेयम् ॥ ४९ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि यदि कन्या का रज पिता के घर में अविवाहित अवस्था में दृष्टि गोचर होता हो तो उस कन्या के दोनों कुल दुर्गति को प्राप्त होते हैं, इसलिये निश्चय से रज से पूर्व विवाह करना चाहिये ॥ ४९ ॥

रजोत्पत्ति से पाप

नारदः—
[1]यावन्तस्त्वृतवस्तस्याः समतीयुः पतिं विना।
तावन्त्यो भ्रूणहत्यास्तु उभयोर्न ददाति ताम् ॥ ५० ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि पति के बिना जितने ऋतुधर्म बिना दान किये अतीत होते हैं, उतनी भ्रूण हत्याओं का दोष दोनों को होता है ॥ ५० ॥

१. मु० चिं० ६ प्र० ११ श्लो० पी० टी०।

वृषली संज्ञा का ज्ञान

पितुर्गृहे तु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता ।
सा कन्या वृषली ज्ञेया तत्पतिर्वृषलीपतिः ॥ ५१ ॥

जो कन्या विना विवाह के पिता के घर रज को देखती है, वह कन्या वृषली और उसका पति वृषलीपति होता है ॥ ५१ ॥

वृषली का फल

गुरुः—
चाण्डाली वृषलीभूता त्वकृतोपनया यदि ।
वन्ध्या स्याद्वृषलीरूपा वृषली मृतपुत्रिणी ॥ ५२ ॥
रजस्वला या कौमार्ये वृषली सावरूपिणी ॥ ५३ ॥

चाण्डाली, अकृतोपनया (जिसने उपनयन = विवाह न किया हो), वन्ध्या, मृतवत्सा और कुमारी अवस्था में (विना विवाह हुए) जिसे रजोदर्शन हो जाय, ये वृषली कहलाती हैं ॥ ५२–५३ ॥

विशेष—विवाह संस्कार ही स्त्रियों का उपनयन संस्कार कहलाता है ।

रजोत्पत्ति से फल

नारदः—
पिता पितामहो भ्राता पितृव्यो मातुलस्तथा ।
पञ्चैते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ ५४ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि पिता, बाबा, भाई, चाचा, मामा ये पाँचों रजोवती कन्या को देखते हैं तो नरक में जाते हैं ॥ ५४ ॥

[1]वात्स्यः—
माता चैव पिता चैव ज्येष्ठभ्राता तथैव च ।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ ५५ ॥

ऋषि वात्स्य ने बताया है कि माता, पिता, बड़ा भाई ये तीनों रजस्वला कन्या को देख कर नरक में जाते हैं ॥ ५५ ॥

यस्तां विवाहयेत्कन्यां ब्राह्मणो मदमोहितः ।
असंभाष्यो ह्यपांक्तेयः स भवेद्वृषलीपतिः ॥ ५६ ॥

जो मद मोहित ब्राह्मण उस कन्या से विवाह कर लेता है, वह असंभाष्य, अपांक्तेय व वृषली पति होता है ॥ ५६ ॥

गुरु शुद्धि अभाव कथन

रजस्वलायाः कन्याया गुरुशुद्धिं न चिन्तयेत् ।
अष्टमेपि प्रकर्तव्यो विवाहस्त्रिगुणार्चनात् ॥ ५७ ॥

---

१. मु० चि० ६ प्र० ११ श्लो० पी० टी० ।

रजस्वला कन्या की गुरु शुद्धि का विचार नहीं करना और अष्टम गुरु में भी तिगुनी पूजा करके विवाह कर लेना चाहिये ।। ५७ ।।

विशेष

सर्वत्रापि शुभं दद्याद्द्वादशाब्दात्परं गुरुः ।
पञ्चषष्ठाब्दयोरेव शुभगोचरता मता ।। ५८ ।।

ऋषि वात्स्य का कहना है कि सब जगह बारह वर्ष से अधिक होने पर गुरु शुभ होता है । पांच या छै वर्ष में गोचरीय शुभता का विचार करना चाहिये ।। ५८ ।।

प्रौढ़ा होने पर विशेष

नारदः—
अतिप्रौढा तु या कन्या कुलधर्मविरोधिनी ।
अविशुद्धचापि सा देया चन्द्रलग्नबलेन तु ।। ५९ ।।

ऋषि नारद ने बताया है कि जो कन्या अधिक प्रौढ़ होती है, वह कुल परम्परागत धर्म का विरोध करने वाली होती है । इसलिये गुरु, सूर्य के अशुभ होने पर भी लग्न व चन्द्रबल के आधार पर कन्या का दान करना चाहिये ।। ५९ ।।

अन्य मत

राजग्रस्तेऽथवा युद्धे पितॄणां प्राणसंक्षये ।
अतिप्रौढा च या कन्या नानुकूल्यं प्रतीक्ष्यते ।। ६० ।।

अथवा राज्य में उपद्रव होने पर या युद्ध में पितादि के प्राण नष्ट होने पर अधिक अवस्था वाली कन्या ग्रहों की अनुकूलता की प्रतीक्षा नहीं करती है ।। ६० ।।

प्रतिकूलता का अभाव

दैवज्ञमनोहरे—
दुर्भिक्षे राष्ट्रभङ्गे च पित्रोर्वा प्राणसंक्षये ।
प्रौढायामपि कन्यायां प्रतिकूलं न दुष्यति ।। ६१ ।।

दैवज्ञ मनोहर में बताया है कि दुर्भिक्ष, राष्ट्रभङ्ग, पिता माता का मरण होने पर तथा प्रौढ कन्या को ग्रहों की प्रतिकूलता दोषदायी नहीं होती है ।। ६१ ।।

अथ विनैव मेलापके विवाह.

अब आगे मेलापक के विना विवाह करना चाहिये इसे बताते हैं ।

मेलापक का अभाव

दीपिकायाम्—
अयोजिता सन्धिलब्धा क्रीता स्नेहादिनार्पिता ।
स्वयमेवागता कन्या नैवास्तां शुद्धिमेलको ।। ६२ ।।

दीपिका में बताया है कि आयोजित, सन्धि से प्राप्त, खरीदी हुई, प्रेम से अर्पित, और स्वयं आई हुई भी कन्या की शुद्धि व मेलापक का विचार नहीं करना चाहिये ।। ६२ ।।

बहूनामेकजातानां कन्यकानां करग्रहे ।
ज्येष्ठायां मेलकं वीक्ष्य लघ्वीनां नैव चिन्तयेत् ॥ ६३ ॥

एक व्यक्ति से उत्पन्न अधिक कन्याओं के विवाह में बड़ी कन्या का मेलापक देखकर छोटी कन्याओं के मेलापक का विचार नहीं करना चाहिये ॥ ६३ ॥

आसुरादिविवाहेषु राशिकूटं न चिन्तयेत् ।
तथा द्व्यङ्गातिवृद्धानां दुर्भगानां पुनर्भवाम् ॥ ६४ ॥

आसुरादि विवाहों में तथा हीनांग या अधिकाङ्गों के, अधिक बूढ़ों के, दरिद्रों के और पुनर्भू स्त्रियों के विवाह में कन्या के राशिकूट का विचार नहीं करना चाहिये ॥ ६४ ॥

विशेष—एक पति के मर जाने पर या पति को छोड़ कर दूसरा विवाह करने वाली पुनर्भू कहलाती है ॥ ६४ ॥

[1]मनसश्चक्षुषोर्यस्मिन्वरे यस्यां च योषिति ।
सन्तोषो जायते यत्र नान्यत्किञ्चिद्विचिन्तयेत् ॥ ६५ ॥

दीपिका में कहा है कि जिस पुरुष व स्त्री के मन व नेत्र मिल जाँय (दोनों संतुष्ट हों) तो इसमें अन्य कुछ भी नहीं विचार की आवश्यकता होती है ॥ ६५ ॥

जीवत्पितृकाया अपि ऋतौ वर्षत्रयानन्तरं स्वयम्बर कालः ।
अदातृकाया इत्येतत् सर्वव॰साधारणम् ।

जो कन्या के पिता के जीवित भी तीन वर्ष तक ऋतुमती होती है उसे स्वयं पति का वरण करना चाहिये । क्योंकि वह अदेया होती है ।

स्वयम्बर के योग कन्या

कन्याप्रदातारः कालनिर्णयदीपिकायामुक्ताः—
पिता पितामहो भ्राता मातृबन्धुर्यदा नहि ।
ऋतौ वर्षत्रयादूर्ध्वं कन्या कुर्यात्स्वयम्बरम् ॥ ६६ ॥

कालनिर्णयदीपिका में बताया है कि पिता, बाबा, भाई, व मामा के उपस्थित न रहने पर यदि कन्या तीन वर्ष से अधिक पुष्पवती हो तो उसे स्वयम्वर करना चाहिए ॥ ६६ ॥

बौधायनः—
वर्षाणि त्रीण्यृतुमती कांक्षेत पितृशासनम् ।
ततश्चतुर्थे वर्षे तु विन्देत सदृशं पतिम् ॥ ६७ ॥

ऋषि बौधायन ने बताया है कि ऋतुमती कन्या तीन वर्ष तक पिता के शासन की प्रतीक्षा करती है और चौथे वर्ष में तो उसे इच्छानुसार समान पति प्राप्त करना चाहिये ॥ ६७ ॥

---

१. ज्यो० नि० १३६ पृ० २ श्लो० ।

मनुः—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥ ६८ ॥

ऋषि मनु ने बताया है कि कन्या ऋतुमती होने पर तीन वर्ष तक (पिता आदि के योग्यतर पति के लिए दान करने की) प्रतीक्षा करे, इसके पश्चात् समान योग्यता वाले पति को स्वयं ही वरण कर ले ॥ ६८ ॥

अथ विवाहे शुद्धिक्रमः—

विवाह में शुद्धिक्रम

[1]सापिण्डं गोत्रशुद्धिं च शीलं सामुद्रिकाणि च ।
जातकादिभमेलं च वीक्ष्यं वाग्दानतः पुरा ॥ ६९ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि सापिण्ड, गोत्र शुद्धि, स्वभाव, सामुद्रिक, जातक व नक्षत्र मेलापक का निरीक्षण वचन दान से पूर्व करना चाहिये ॥ ६९ ॥

कुलपरीक्षा—

कुल परीक्षा का ज्ञान

मनुः—

[2]लेपभागश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः ।
पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्डं साप्तपौरुषम् ॥ ७० ॥

ऋषि मनु ने बताया है कि सापिण्ड सात पीढ़ी तक होता है और आदि के ४ पुरुष लेप भाग के अधिकारी तथा पिता, पितामह, प्रपितामह पिण्ड के अधिकारी एवं पुत्र पिण्डदाता होता है ॥ ७० ॥

[3]सन्तानं भिद्यते यस्मात्पूर्वजादुभयत्रतः ।
तमादाय गणेद्धीमान् वरं याजेच्च कन्यकाम् ॥ ७१ ॥

जिस पूर्वज से वर या कन्या दोनों ओर की सन्तान का भेद होता है उस पुरुष को लेकर ही सपिण्ड आदि में गणना करनी चाहिये ॥ ७१ ॥

असपिण्डादि ज्ञान

धर्मप्रदीपे—

[4]असपिण्डां च पितृतः सप्तमात्पुरुषात्परम् ।
मातृतः पञ्चमादूर्ध्वमसमानर्षिगोत्रजा ॥ ७२ ॥

धर्म प्रदीप में बताया है कि पिता से सप्तम पुरुष के अनन्तर और माता से पाँच पुरुष से ऊपर की कन्या असपिण्डा व असमान गोत्र, ऋषि वाली होती है ॥ ७२ ॥

---

१. ज्यो० नि० १३१ पृ० १ श्लो० । २. ज्यो० नि० १३१ पृ० ३ श्लो० ।
३. ज्यो० नि० १३१ पृ० ४ श्लो० । ४. ज्यो० नि० १३२ पृ० ५ श्लो० ।

निर्णयवचन

स्मृतिचन्द्रिकायां निर्णयवचनम्—

[1]मूलगोत्रादन्यगोत्रामुद्वहेदष्टमाष्टमीम् ।
अन्यगोत्रादन्यगोत्रात्षष्ठः षष्ठीं समुद्वहेत् ॥ ७३ ॥

स्मृति चन्द्रिका में बताया है कि मूल गोत्र से अन्य गोत्र की कन्या आठवीं पीढ़ी की व वर भी आठवीं पीढ़ी के का विवाह और अन्य गोत्र से अन्य गोत्र की कन्या-वर का छटी पीढ़ी में विवाह उचित होता है ॥ ७३ ॥

तृतोया चतुर्थी में विधान

[2]तृतीयां वा चतुर्थी वा पक्षयोरुभयोरपि ।
उद्वहेत्सर्वथा लाभ इति कैश्चिदुदीरितम् ॥ ७४ ॥

स्मृतिचन्द्रिका में कहा है कि चतुर्थी, दोनों पक्षों की तृतीया में विवाह करने पर सर्वथा लाभ होता है, ऐसा किसी आचार्य का कथन है ॥ ७४ ॥

विशेष

[3]मातुलस्य तु गोत्राच्च मातृगोत्रात्तथैव च ।
समानप्रवरा ह्यूढा परित्याज्या प्रपालयेत् ॥ ७५ ॥

स्मृति चन्द्रिका में कहा है कि मामा तथा माता के गोत्र के तुल्य प्रवर वाली विवाहिता का त्याग करके उसका पालन करना चाहिये ॥ ७५ ॥

[4]पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा ।
उभयोर्मातृतश्चैव षष्ठः षष्ठीं समुद्वहेत् ॥ ७६ ॥

माता से पाँच पीढ़ी ऊपर व पिता से सात के ऊपर या दोनों से छठी-छठी पीढ़ी में विवाह करना चाहिये ॥ ७६ ॥

विवाह निषेध

लिङ्गपुराणे—

[5]वाक्यबन्धकृतानां तु स्नेहसम्बन्धभागिनाम् ।
विवाहोत्र न कर्तव्यो लोकगर्हा प्रसज्यते ॥ ७७ ॥

लिङ्ग पुराण में बताया है कि स्नेही से यदि वाक्य बन्धन हो गया हो तो लोक में निन्दा के भय से विवाह नहीं करना चाहिये ॥ ७७ ॥

सपिण्डा का निषेध

स्मृतिमहार्णवे—

[6]या तु प्रतीतिसम्बन्धा मातृगोत्रद्वये च या ।
सगोत्रा च सपिण्डा च वर्ज्या सोद्वाहकर्मणि ॥ ७८ ॥

---

१. ज्यो० नि० १३२ पृ० ६ श्लो० । २. ज्यो० नि० १३२ पृ० ७ श्लो० ।
३. ज्यो० नि० १३२ पृ० ८ श्लो० । ४. ज्यो० नि० १३२ पृ० ९ श्लो० ।
५. ज्यो० नि० १३२ पृ० १० श्लो० । ६. ज्यो० नि० १३२ पृ० ११ श्लो० ।

स्मृति महार्णव में बताया है कि जो विश्वसनीय सम्बन्धिनी कन्या हो तथा माता के गोत्र द्वय में हो, सगोत्रा हो तथा सपिण्डा हो, ऐसी कन्या का विवाह कार्य में त्याग उचित होता है ॥ ७८ ॥

अथ गोत्रविचारः—

अब आगे गोत्र का विचार करते हैं।

समानप्रवरां कन्यामेकगोत्रामथापि वा।
विवाहयति यो मूढस्तस्य वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥ ७९ ॥

तुल्य प्रवर वा एक गोत्र की कन्या से जो मूर्ख विवाह करता है, उसके निस्तार को बताता हूं ॥ ७९ ॥

निस्तार का ज्ञान

उत्सृज्य तां ततो भार्यां मातृवत्परिपालयेत्।
अथ समानार्षगोत्रजाविवाहे प्रायश्चित्तम्।
परिणीय सगोत्रां तु समानप्रवरां तथा।
त्यागं कुर्याद्द्विजस्तस्यास्ततश्चान्द्रायणं चरेत्।
त्यागश्चोपभोगस्यैव न तु तस्याः।

विवाह के बाद उसका भार्या के रूप में त्याग करके माता की तरह पालन करना चाहिये।

उपभोग का ही त्याग करना न कि विवाहिता कन्या का।

प्रवरमञ्जर्याम्—
[1]पञ्चानां त्रिषु सामान्यादविवाहस्त्रिषु द्वयोः।
भृग्वंगिरोगणेष्वेवं शेषेष्वेकोपि वारयेत् ॥ ८० ॥

प्रवर मञ्जरी में कहा है कि पाँच पुरुषों में सामान्यतया तीन में विवाह का अभाव तथा तीन में दोनों का भृगु अङ्गिरा के गणों में भी अभाव और अवशिष्टों में एक और का भी निषेध प्राप्त है ॥ ८० ॥

[2]समानप्रवरो भिन्नो मातृगोत्रवरस्य च।
विवाहो नैव कर्तव्यः सा कन्या भगिनी भवेत् ॥ ८१ ॥

मातृ गोत्र प्रवर का समान प्रवर या भिन्न प्रवर होने पर विवाह नहीं करना चाहिये। क्योंकि वह बहिन होती है ॥ ८१ ॥

विशेष बात

अत्र विशेषमाह सूत्रकारः—
[3]एक एव ऋषिर्यावत्प्रवरेष्वनुवर्तते।
तावत्समानगोत्रत्वमृते भृग्वंगिरोगणात् ॥ ८२ ॥

१. ज्यो० नि० १३२ पृ० ३ श्लो०।
२. ज्यो. नि. १३२ पृ. ४ श्लो.। ३. ज्यो. नि. १३२ पृ. २ श्लो.।

सूत्रकार ने बताया है कि एक ही ऋषि प्रवरों में हो तो समानगोत्रता होती है भृगु, अङ्गिरा के गण को छोड़ कर तुल्य गोत्रत्व होता है ॥ ८२ ॥

गोत्रप्रवर्तकाः प्राधान्येनाष्टौ मुनयः ते च अगस्त्याष्टमाः सप्तर्षयः ।

प्रधानता से आठ ही ऋषि गोत्र प्रवर्तक हुए हैं, वे अगस्त्य के साथ सप्तर्षि ही हैं। जैसा कि

गोत्र प्रवर्तक ऋषि

तथा च बोधायनः—

[1]विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमः ।
अत्रिर्वसिष्ठः कश्यपश्च सप्तैते ऋषयः स्मृताः ॥ ८३ ॥

बौधायन सूत्र में कहा है कि विश्वामित्र १. जमदग्नि २. भरद्वाज ३. गौतम ४. अत्रि ५. वसिष्ठ ६. कश्यप ७. ये सात ऋषि होते हैं ॥ ८३ ॥

सप्तऋषीणामगस्त्याष्टमानां यदपत्यं गोत्रमित्याचक्षत इति ।

इनके साथ आठवाँ अगस्त्य इन आठों की जो सन्तान इनको गोत्र नाम से कहते हैं।

अत्र संग्रहकारस्त्वष्टादशगणानाह—

यहाँ पर संग्रहकार ने १८ ऋषियों के नाम बताये हैं, उन्हें बता रहे हैं।

१८ गोत्र प्रवर्तक

[2]जामदग्न्यो वीतहव्यो वैन्यो गृत्समदाह्वयः ।
व्याघ्रः श्रीगौतमाख्यश्च भारद्वाजाह्वयः कपिः ॥ ८४ ॥
हारितो मौद्गलः कण्वो विरूपो विष्णुरुद्धयः ।
अत्रिर्विश्वामित्रक्रौंचौ वसिष्ठः कश्यपाह्वयः ॥ ८५ ॥
अगस्त्यश्चेति मुनयोऽष्टादशगणाः स्मृताः ॥ ८६ ॥

संग्रहकार ने बताया है कि जामदग्न्य १, वीतहव्य २, वैन्य ३, गृत्समद ४, व्याघ्र ५ गौतम ६, भारद्वाज ७, कपि ८, हारीत ९, मौद्गल १०, कण्व ११, विरूप १२, विष्णु १३, विश्वामित्र १४, क्रौञ्च १५, वसिष्ठ १६, कश्यप १७, अगस्त्य १८ ये गोत्र प्रवर्त्तक हुए हैं ॥ ८४-८६ ॥

स्मृत्यन्तरम्—

[3]सावित्रीं यस्य यो दद्यात्तत्कन्यां न विवाहयेत् ।
तद्गोत्रे तत्कुले वापि विवाहो नैव दोषकृत् ॥ ८७ ॥

स्मृत्यन्तर में कहा है कि जो जिसको सावित्री (गायत्री) की दीक्षा देता है उसकी कन्या से विवाह नहीं करना तथा उसके गोत्र या कुल की कन्या से विवाह करना दोष दायी नहीं होता है ॥ ८७ ॥

---

१. ज्यो. नि. १३३ पृ. । २. ज्यो. नि. १३३ पृ. ८–९ श्लो. ।
३. ज्यो. नि. १३५ पृ. ५१ श्लो. ।

वर्णादिको त्याज्य कन्या

गुरुः—

[1]गुरोः सगोत्रप्रवरा नोद्वाह्याः क्षत्रवैश्ययोः।
स्वगोत्रे ह्यनभिज्ञे च विप्रैराचार्यगोत्रजाः॥ ८८॥
द्वयामुष्यायणकाः सर्वे दत्तकक्रीतकादयः॥ ८९॥

गुरुजी ने बताया है कि क्षत्रिय, वैश्य को गुरु के गोत्र व प्रवर वाली कन्या से विवाह नहीं करना और अपने गोत्र का अज्ञान हो तो ब्राह्मण को गुरु के गोत्र की कन्या से विवाह करना चाहिये। दत्तक और क्रीत पुत्र द्वामुष्यायग होते हैं अर्थात् इनका दो गोत्रों से सम्बन्ध रहता है॥ ८८-८९॥

अथ वरपरीक्षा—

अब आगे किस पुरुष को किन गुणों के कारण कन्यादान करना चाहिये इसे बताते हैं।

वर का परीक्षण

[2]कुलं शीलं वपुर्विद्या वयो वित्तं सनाथता।
गुणाः सप्त वरे यस्मिन् तस्मै कन्या प्रदीयते॥ ९०॥

कुल १, शील २, शरीर ३, विद्या ४, अवस्था ५, धन ६, सनाथता ७ ये सात गुण जिस पुरुष में हों उसे कन्या देनी चाहिये॥ ९०॥

विशेष बात

[3]ब्राह्मणस्य कुलं ग्राह्यं न वेदाः सपदक्रमाः।
कन्यादाने तथा श्राद्धे न विद्या तत्र कारणम्॥ ९१॥

ब्राह्मण का कुल ग्राह्य होता है न कि पद क्रम के साथ वेदज्ञान ग्राह्य होता है। कन्या के दान में तथा श्राद्ध में विद्या कारण नहीं होती है॥ ९१॥

स्वर्गच्युत का लक्षण

कवित्वमारोग्यमतीवमेवा धर्मप्रशस्ता मधुरा च वाणी।
कृष्णे च भक्तिः स्वजने च पूजा स्वर्गच्युतानां खलु चिह्नमेतत्॥ ९२॥

जिसमें कविता करने की शक्ति, आरोग्यता, अधिक बुद्धिमत्ता, धार्मिक प्रसिद्धता, वाणी में माधुर्य, कृष्ण भगवान् की भक्ति और अपने जनों के प्रति पूज्यता की दृष्टि होती है, वह स्वर्गच्युत होता है॥ ९२॥

विद्वान् का लक्षण

सत्यं तपो ज्ञानमहिंसता च विद्याप्रियत्वं च सुशीलता च।
एतानि यो धारयते स विद्वान् न केवलं यः पठते स विद्वान्॥ ९३॥

जो कि सत्य, तपश्चर्या, ज्ञान, अहिंसा, विद्या, प्रियता, शालीनता को धारण करता है जिसमें ये गुण होते हैं वह विद्वान् होता है, न कि जो केवल पढ़ता है वह विद्वान् होता है॥ ९३॥

---

१. ज्यो. नि. १३५ पृ.। २. ज्यो. नि. १३५ पृ.। ३. ज्यो. नि. १३५ पृ.।

पात्रता

स्वाध्यायाढ्यं योनिवंतं प्रशान्तं वैतानस्थं पापभीरुर्बहुत्वम् ।
स्त्रीषु क्षांतं धार्मिकं गोगरण्यमेतैः क्रांतं तादृशं पात्रमाहुः ॥ ९४ ॥

जो स्वाध्याय से संपन्न, पुरुषत्व से युक्त, शान्त स्वभावी, यज्ञीय, पाप से अधिक डरने वाला, स्त्रियों में क्षान्त, धार्मिक, गायों का रक्षक होता है वह कन्या ग्रहण करने का पात्र होता है ॥ ९४ ॥

कारिकानिबन्धे—

अब आगे किस प्रकार के वर को कन्या नहीं देनी चाहिये, इसे कारिकानिबन्ध के आधार पर बताते हैं ।

[1]अन्धो मूकः क्रियाहीनश्चापस्मारनपुंसकः ।
दूरस्थः पतितः कुष्ठो दीर्घरोगी वरो न सत् ॥ ९५ ॥

कारिका निबन्ध में कहा है कि अन्धा, गूँगा, कार्य रहित (निकम्मा), मिर्गी रोग से पीडित, नपुंसक, दूरवासी, पतित, कोढ़ी, लम्बा रोगी वर शुभ नहीं होता है ॥९५॥

६ प्रकार के वर को कन्यादान का निषेध

[2]नात्यासन्ने नातिदूरे नात्याढ्ये नातिदुर्बले ।
वृत्तिहीने च मूर्खे च षड्भिः कन्या न दीयते ॥ ९६ ॥

अधिक पास १, अधिक दूर २, अधिक धनी ३, अधिक दुबला ४, जीविका से रहित ५, और मूर्ख ६ इन ६ को कन्या नहीं देनी चाहिये ॥ ९६ ॥

[3]मूर्खनिर्धनदूरस्थशूरमोक्षाभिलाषिणाम् ।
त्रिगुणाधिकवर्षाणां न देया जातु कन्यका ॥ ९७ ॥

मूर्ख, दरिद्री, दूरस्थ, वीर, मोक्षाभिलाषी और तिगुनी अवस्था वाले को कन्या नहीं देनी चाहिये ॥ ९७ ॥

वर के दोष

ब्रह्मवैवर्ते—

वृद्धाय गुणहीनायाबुद्धायाज्ञानिने तथा ।
दरिद्राय च मूर्खाय रोगिणे कुत्सिताय च ॥ ९८ ॥
अत्यंतकोपयुक्ताय चात्यंतदुर्मुखाय च ।
व्यंगुलायांगहीनाय चान्धाय बधिराय च ॥ ९९ ॥
जडाय चैव मूकाय क्लीबतुल्याय पापिने ।
ब्रह्महत्यां लभेत्सोपि यः स्वकन्यां ददाति च ॥ १०० ॥

---

१. ज्यो. नि. १३५ पृ. । २. ज्यो. नि. १३५ पृ. ।
३. ज्यो. नि. १३५ पृ. ।

ब्रह्म वैवर्त में कहा है कि वृद्ध, गुणहीन, बुद्धि रहित, अज्ञानी, दरिद्री, मूर्ख, रोगी, कुत्सित (निन्दित), अधिक क्रोधी, ज्यादा बुरा बोलने वाला, अधिक अंगुली से युक्त, अन्ध, बहिरा, जड, गूंगा, नपुंसक के तुल्य और पापी वर को जो कन्या देता हैं वह ब्राह्मण की हत्या रूपी पाप को प्राप्त करता है ।। ९८-१०० ।।

अन्यत्रापि—

बालं वृद्धं काणं कुब्जं वामनं बधिरं तथा।
षंढं व्यंगं क्रोधरतं मूकं शीतगदं तथा ।। १०१ ।।

परदाररतं वेश्यारतं पांडुकिनं पुनः।
आलस्यं निश्चलं चैव गंडमालादिरोगिणम् ।। १०२ ।।

निर्धनं दूरदेशस्थं शूरं मूर्खं तथैव च।
दोषैकविंशतिप्राप्तं न वृणीत कदाचन ।। १०३ ।।

ग्रन्थान्तर में कहा है कि बालक १, बूढ़ा २, काना ३, कुबड़ा ४, नाटा ५, बहिरा ६, नपुंसक ७, अंगहीन ८, क्रोधी ९, गूंगा १०, शीतरोगी ११, (कफी) परस्त्रीगामी १२, वेश्या में आसक्त १३, कोढ़ी १४, आलसी १५, निश्चल १६, कंठ माला का रोगी १७, धनहीन १८, दूरवासी १९, वीर २०, मूर्ख २१, ये दोष जिस वर में हों, उसे कन्या कदापि नहीं देना चाहिये ।। १०१-१०३ ।।

महादोष का ज्ञान

दासोजातश्च कुष्ठी च अपस्मारी नपुंसकः।
चत्वारश्च महादोषाः शेषा दोषाश्च मध्यमाः ।। १०४ ।।

दासी से उत्पन्न १, कोढ़ी २, मिर्गी का रोगी ३ और नपुंसक ४ ये महादोष और शेष मध्यम दोष होते हैं ।। १०४ ।।

अपरीक्षित दान का फल

अपरीक्ष्य वरं कन्यां निर्गुणाय ददाति यः।
कुलं तस्यैव तच्छोकसंतप्तो वा निकृंतति ।। १०५ ।।

विना वर का परीक्षण किये, जो गुणहीन को कन्या का दान देता है तो उसके शोक से उसी का परिवार पीड़ित होता है या प्रायश्चित्त करता है ।। १०५ ।।

अतः—
शांताय गुणिने चैव यूने च विदुषेपि च।
वैष्णवाय सुतां दत्वा दशवापी फलं भवेत् ।। १०६ ।।

शान्त, गुणी, जवान, विद्वान्, वैष्णव के लिये कन्या देने पर दस वापी दान का फल होता है ।। १०६ ।।

योग्य वर की महत्ता

दशवापिसमा कन्या यदि पात्रे प्रदीयते।
अपत्यार्थं स्त्रियः सृष्टाः स्त्रीक्षेत्रं वीजिनो नराः।
क्षेत्रं बीजवते देयं नाबीजी क्षेत्रमर्हति ॥ १०७ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि कन्या दस वापी के समान होती है यदि योग्य वर को दी जाती है तो इससे सन्तान होती है, क्योंकि सन्तान के निमित्त ही स्त्री का सृजन हुआ है। स्त्री खेत व पुरुष वीज होता है अतः बीज से युक्त को कन्या देनी चाहिये, क्यतः पुरुषत्व से हीन अर्थात् बीज से रहित व्यक्ति क्षेत्र का उपयोग करने की इच्छा ही नहीं करता है ॥ १०७ ॥

अथ कन्यापरीक्षा—

अब आगे कन्या किस प्रकार की त्याज्य होती है, इसे ज्योतिःसागर के वाक्यों से बताते हैं।

विवाह में त्याज्य कन्या

ज्योतिःसागरे—

[1]भुजंगविहंगमभीषणपादपनाम्नो लकाररेफांता।
ऋक्षनदीनरसंज्ञा न विवाह्या कन्यका सद्भिः ॥ १०८ ॥

ज्योतिःसागर में कहा है कि सर्प, पक्षि, भयङ्कर, वृक्ष के नामवाली, रकार लकारान्त, नक्षत्र, नदी, पुरुष संज्ञावाली कन्या से विवाह नहीं करना ॥ १०८ ॥

अत्रांतशब्देन उपांतो लक्षितः।

यहाँ अन्त शब्द से उपान्तिम का ग्रहण होता है।

[2]धन्या पर्वसु पुण्याख्या प्रेमनाम्नी च कन्यका।
अतिदीर्घा च कपिला वर्ज्या कृष्णातिरोमशा ॥ १०९ ॥

पर्वों में धन्य पुण्य व प्रेम नामवाली कन्या का तथा अधिक लम्बी, कपिल, काली व अधिक रोमवाली का त्याग करना चाहिये ॥ १०९ ॥

विशेष—ज्योतिर्निबन्ध में 'धन्या पर्वत पुष्पाख्या पुष्पनाम्नी च कन्यका' यह पाठान्तर है ॥ १०९ ॥

[3]गतभीषणमाख्यातं नद्याख्यं वारुणं नदः।
पक्षद्वीशं तरुर्मूलं यत्नतः परिवर्जयेत् ॥ ११० ॥

गत भीषण, प्रसिद्ध, नदी, वारुण, नद, पक्षद्वीश, वृक्ष मूल नाम की कन्या का यत्न से त्याग करना चाहिये ॥ ११० ॥

[4]इति केचिन्मतं प्रोक्तं परैः प्रोक्तमथोच्यते।
भुजंगादि प्रसिद्धार्थनाम्नीं कन्यां विवर्जयेत् ॥ १११ ॥

---

१. ज्यो. नि. १३६ पृ. ३ श्लो.। २. ज्यो. नि. १३६ पृ. ४ श्लो.।
३. ज्यो. नि. १३६ पृ. ५ श्लो.। ४. ज्यो. नि. १३६ पृ. ६ श्लो.।

यह किसी का मत कहा है और अन्य के मत से कहते हैं कि सर्पादि प्रसिद्धार्थ नाम की कन्या का त्याग करना चाहिये ॥ १११ ॥

विशेष—ज्यो नि. में 'ठान्तं भीषणमाख्यातं नद्याप्यं' 'पक्षिद्वीशं' 'सार्पाश्लेषाक्षंकं नद्या' (११०–१११) पाठ है।

सामुद्रिक दूषित लक्षण ज्ञान

ललाटविपुला कुब्जा निर्लज्जाऽसत्यभाषिणी ।
व्याधिग्रस्ता च हीनांगी स्थूला दीर्घा कलिप्रिया ॥ ११२ ॥
अन्धा च बधिरा कन्या दशदोषान्विवर्जयेत् ।
[1]अर्चितं वचनमुन्नतं मनो निर्विशेषसुखदं दशा वपुः ।
अस्ति चेद्यदपराङ्मुखीमतिर्लक्षणैः किमु नरैर्नृयोषिताम् ॥ ११३ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि विशाल माथे की, १. कुबडी, २. निर्लज्ज, ३. झूठ बोलने वाली, ४. रोगिणी, ५ हीन शरीरी, ६. मोटी, ७. लम्बी, ८. कलेशिन, ९. अन्धी, ८ बहरी १० इन दस दोषों से युक्त कन्या का त्याग करना चाहिये।

पूजित, उन्नत वाणी, मन को सब सुख देने वाली शरीर की दशा हो और यदि अपराङ्मुखी बुद्धि हो तो स्त्री, पुरुष के उक्त लक्षणों से क्या प्रयोजन होता है, अपितु पराङ्मुखता से सब गुण नष्ट होते हैं ॥ ११२–११३ ॥

विशेष– ज्यो० नि० में 'दशां वपुः' 'अस्ति चेदथ पराङ्' यह पाठान्तर है ॥ ११२–११३ ॥

कपिलादि का निषेध

मनुः—
[2]नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकांगीं न रोगिणीम् ।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचालां न पिंगलाम् ॥११४॥

ऋषि मनु ने बताया है कि कपिल (भूरे) वर्ण वाली, अधिक अङ्गों वाली, रोगिणी, बिलकुल रोम से हीन, अधिक लोमवाली, अधिक बोलने वाली और भूरी-भूरी आँखों वाली कन्या से विवाह नहीं करना चाहिये ॥ ११४ ॥

विवाह के अयोग्य कन्या

[3]ऋक्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं नच भीषणनामिकाम् ॥ ११५ ॥

मनुस्मृति में कहा है कि नक्षत्र, पेड़, नदी, म्लेच्छ, पहाड़, पक्ष, सर्प, दूत या दासी नामवाली और भयङ्कर नाम वाली कन्या से विवाह नहीं करना चाहिये ॥११५॥

विशेष—म० स्मृ० में 'नर्क्षवृक्ष·······नान्त्यपर्वत' पाठान्तर है ॥ ११५ ॥

---

१. ज्यो. नि. १३५ पृ. १ श्लो.। २. म. स्मृ. ३ अ. ८ श्लो.।
३. म. स्मृ. ३ अ. ९ श्लो.।

अन्य दोष

नेत्रे यस्याः केकरे पिंगले वा स्याद्दुःशीला श्यावलोलेक्षणा च ।
कूपो यस्या गंडयोः सस्मितायां निःसंदिग्धं बंधकीं तां वदंति ॥११६॥

जिसकी आँख भींगी या भूरी या धूसरित चञ्चल नेत्र होते हैं वह दुःशीला और जिसके हँसते समय कपोलों में गढ्ढा होता है वह कन्या निश्चय ही वेश्या होती है ॥ ११६ ॥

घृष्टा कुदन्ता यदि पिंगलाक्षी लोम्ना समाकीर्णपदांगयष्टिः ।
मध्ये च पुष्टा यदि राजकन्या कुलेपि योग्या न विवाहनीया ॥११७॥

धृष्ट, कुत्सित दाँत की, भूरे नेत्रवाली, अधिक लोम की, समान फैले हुए पैर वाली, दुबली पतली मध्य में मोटी, राजकन्या भी कुल में विवाह के योग्य नहीं होती है ॥११७॥

विवाहोपयुक्त कन्या

वधूं सुलक्षणोपेतां प्रसन्नास्यां कुलोद्भवाम् ।
कन्यकां वृणुयाद्रूपवतीमव्यंगविग्रहाम् ॥ ११८ ॥

अच्छे लक्षणों से युत, प्रसन्न मुखी, सुन्दर कुलोत्पन्ना, रूपवती और पूर्ण शरीरावयव से युक्त कन्या से विवाह करना चाहिये ॥ ११८ ॥

उक्त का परिहार

मात्स्यसूक्ते—
गंगा च यमुना चैव गोमती च सरस्वती ।
नदीष्वासां नाम वृक्षे मालती तुलसी अपि ॥ ११९ ॥
रेवती अश्विनी भेषु रोहिणी शुभदा भवेत् ।
अव्यंगांगीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ॥ १२० ॥
तनुलोमकेशदशनां मृद्वंगीमुद्वहेत्स्त्रियम् ॥ १२१ ॥

नदियों में गङ्गा, यमुना, गोमती, सरस्वती के, वृक्षों में मालती, तुलसी, नक्षत्रों में रेवती, अश्विनी, रोहिणी नाम की शुभदा कन्या, पूर्ण शरीर वाली, मृदु नाम की, हंस, हाथी की चाल वाली, लघु लोम, केश, दाँत वाली और कोमल शरीर वाली कन्या से विवाह करना चाहिये ॥ ११९–१२१ ॥

विशेष

श्यामा सुकेशी तनुलोमराजी शुभ्रा सुशीला सुगति. सुदंता ।
वेदीविमध्या यदि पंकजाक्षी कुलेन हीनापि विवाहनीया ॥१२२॥

श्यामा (काली), सुन्दर केश वाली, छोटी रोम राजी से युक्त, शुभ्र, सुशील, अच्छी गति व दांत वाली यदि कमल के समान नेत्र वाली हो तो कुल से हीन होने पर भी विना वेदी के विवाह करना चाहिये ॥ १२२ ॥

कन्या विक्रय फल

ब्रह्मवैवर्ते—

य: कन्यापालनं कृत्वा करोति विक्रयं यदि।
विपदा धनलोभेन कुंभीपाकं स गच्छति ॥ १२३ ॥

ब्रह्मवैवर्त में कहा है कि जोकि मनुष्य कन्या का पालन करके, यदि धन लोभ की विपत्ति से उसे बेचता है तो वह कुम्भीपाक नाम वाले नरक में जाता है ॥ १२३ ॥

कन्यामूत्रपुरीषं च तत्र भक्षति पातकी।
दंशितः कृमिकाकैश्च यावद्रिन्द्राश्चतुर्दश ॥ १२४ ॥
तदंते व्याधियोनौ च लभते जन्म निश्चितम्।
विक्रीणाति मांसभारं वहत्येव दिवानिशम् ॥ १२५ ॥

वहीं पर वह नरक में पेशाव, विष्टा को पातकी खाता है तथा कीड़ा व कौआ से वहीं पर डसा या चौदह इन्द्र के समय तक खाया जाता है। अर्थात् काटते हैं और अन्त में व्याध योनि में अवश्य जन्म लेकर मांस-वाहक होकर मांस का दिन रात विक्रय करता है ॥ १२४–१२५ ॥

अथ प्रसगेन स्वस्यारिष्टानि—

अब आगे प्रसङ्गवश स्वकीय अरिष्टों को बताते हैं।

प्रथम आयु परीक्षण कथन

[1]पूर्वमायु: परीक्षेत पश्चाल्लक्षणमादिशेत्।
आयुर्हीननराणां च लक्षणैः किं प्रयोजनम् ॥ १२६ ॥

विवाह मेलापक विचारने से पहिले आयु का ज्ञान करना चाहिये। तत्पश्चात अन्य लक्षणों को देखना क्योंकि बिना आयुष्य के लक्षणों से कोई प्रयोजन नहीं होता है ॥१२६॥

भाग्य की महत्ता

[2]स्वप्नो निमित्तं शकुनं स्वकर्म शरीरभोगं तु किमद्भुतानि।
दोषाभिचारग्रहचारकालाः काम्यानि दैव विविधफलानि ॥१२७॥

स्वप्न, निमित्त, शरीर भोग, दोष, अभिचार, ग्रहचार, काल ये सब भाग्यवश विविध काम्य फल होते हैं, इसमें आश्चर्य की बात नहीं है ॥ १२७ ॥

विशेष ज्योतिर्निबन्ध में 'शारीरमागन्तुकमद्भुतानि' यह पाठान्तर है ॥ १२७ ॥

उद्योग की महत्ता

[3]फलं यदि प्राक्तनमेव तत्किं कृष्याद्युपायेषु परं प्रयत्नः।
श्रुतिस्मृतिश्चापि नृणां निषेधविध्यात्मके कर्मणि किं निषण्णा ॥ १२८ ॥

---

१. ज्यो. नि. १३८ पृ. १ श्लो.। २. ज्यो. नि. १३८ पृ. २ श्लो.।
३. ज्यो. नि. १३८ पृ. ३ श्लो.।

ग्रन्थान्तर में बताया है कि यदि पूर्व अर्जित ही फल होता है तो कृषि आदि उपाय करने की तथा श्रुति, स्मृति में प्रतिपादित विधान व निषेध कर्मों के वर्णन की कोई आवश्यकता नहीं है ॥ १२८ ॥

आयुहीन का लक्षण

[1]अरुन्धती ध्रुवश्चैव विष्णोस्त्रीणि पदानि च।
आयुर्हीना न पश्यन्ति चतुर्थं मातृमण्डलम् ॥ १२९ ॥

अरुन्धती, ध्रुव, विष्णु भगवान् के तीन पैर और चौथा मातृमण्डल जो नहीं देखता है उसकी आयु समाप्ति पर है, यह जानना चाहिये ॥ १२९ ॥

अरुन्धती आदि का ज्ञान

[2]देहेप्यरुन्धती जिह्वा ध्रुवो नासाग्रमेव च।
भ्रुवोर्विष्णुपदं मध्यं तारकामातृमण्डलम् ॥ १३० ॥

शरीर में जीभ अरुन्धती, नाक का आगे का हिस्सा ध्रुव, दोनों भौंहों के बीच में विष्णुपद और तारका मातृ मण्डल होता है ॥ १३० ॥

दिन संख्या ज्ञान

नव भ्रुवोः सप्त घोषं पञ्च तारा त्रिनासिका।
जिह्वामेकदिनं प्रोक्तं म्रियते मानवो ध्रुवम् ॥ १३१ ॥

भौंहों को न देखनेपर नव, कान में शब्द न सुनने पर सात, तारापर पाँच, नाक पर तीन और जीभ को न देखने पर एक दिन के भीतर मनुष्य मृत्यु प्राप्त करता है ॥१३१॥

आयु हीन लक्षण

[3]आकीर्णश्रवणो यस्तु न घोषं श्रृणुयात्तथा।
नभो मन्दाकिनीमिन्दोश्छायां नेक्षेद्गतायुषः ॥ १३२ ॥

अधिक शब्द होने पर जो सुनने में असमर्थ तथा आकाश गङ्गा व चन्द्रमा की छाया को नहीं देखता उसकी आयु समाप्त समझना चाहिये ॥ १३२ ॥

मरण लक्षण

[4]हकारे शीतलं यस्य सकारोग्निसमप्रभः।
लक्षणं त्वीदृशं दृष्ट्वा तस्यायुः स्यात्समार्द्धकम् ॥ १३३ ॥

जिसके बोलने में कफ तथा श्वांस लेने में गर्म हवा आती हो तो ऐसा जानकर उसकी आयु ६ मास जानना चाहिये ॥ १३३ ॥

---

१. ज्यो. नि. १३८ पृ. ४ श्लो.। २. ज्यो. नि. १३८ पृ. ५ श्लो.।
३. ज्यो. नि. १३८ पृ. ६ श्लो.। ४. ज्यो. नि. १३८ पृ. ७ श्लो.।

अन्य मरण लक्षण

[1]स्थूलो वापि कृशोऽकस्माद्दरिद्रो वा धनाढ्यकः।
यो भुंक्ते न धृतिं लेभे स याति यममन्दिरम् ॥ १३४ ॥

अचानक मोटा हो या पतला हुआ हो, धनी हो या दरिद्री हो जो खाकर भी संतोष नहीं धारण करता वह यमपुरी जाने वाला है, ऐसा जानना चाहिये ॥ १३४ ॥

आठ मास से पूर्व मरण के लक्षण

[2]पांसुपंकादिषु न्यस्तं खण्डं यस्य पदं भवेत्।
पुरतः पृष्ठतो वापि सोष्टौ मासान्न जीवति ॥ १३५ ॥

मिट्टी, कीचड़ आदि में पैर रखने पर जिसके आगे या पीछे से खण्डित दृष्टिगोचर होते हैं वह आठ मास से पूर्व ही मृत्यु का भागी होता है ॥ १३५ ॥

६ मास से पूर्व मरने का लक्षण

[3]संसृज्यते न सलिलैर्नलिनीदलवत्तनुः।
स्नानमाचरतो यस्य षण्मासान्न स जीवति ॥ १३६ ॥

जिसके नहाते समय नलिनी खण्ड की तरह जलों से शरीर का सृजन न होता हो तो उसका ६ मास से पूर्व मरण होता है ॥ १३६ ॥

प्रकारान्तर

[4]स्नानांबुलिप्तगात्रस्य यस्योरः प्राक्प्रशुष्यति।
गात्रेष्वार्द्रेषु सर्वेषु सोर्द्धमासं न जीवति ॥ १३७ ॥

नहाने के जल से समस्त शरीर गीला होने पर जिसका हृदय पहिले सूख जाता है, वह ६ मास तक जीवन नहीं प्राप्त करता है ॥ १३७ ॥

प्राप्त मृत्यु ज्ञान

[5]जलादर्शादिषु छायां विकृतां यः प्रपश्यति।
स्वं स्विद्यते ललाटं च तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥ १३८ ॥

जल, दर्पणादि में जो अपनी छाया को विकृत देखता है तथा मस्तक पर पसीना होता है तो उसकी मृत्यु उपस्थित है, ऐसा जानना चाहिये ॥ १३८ ॥

[6]न मान्त्यङ्गुलयस्तिस्रो मुखे यस्य स नश्यति।
ऊर्ध्वांतिर्यगधो दृष्टिर्यस्य स्यात्सोऽपि मृत्युभाक् ॥ १३९ ॥

जो कि अपने मुख के सामने तीन अँगुलियों को नहीं पहिचानता है, वह मृत्यु को प्राप्त करता है तथा जिसकी ऊँची, नीची, तिरछी दृष्टि होती है, वह भी मरण को प्राप्त करता है ॥ १३९ ॥

---

१. ज्यो. नि. १३८ पृ. ८ श्लो.।
२. ज्यो. नि. १३८ पृ. ९ श्लो.।
३. ज्यो. नि. १३८ पृ. १० श्लो.।
४. ज्यो. नि. १३८ पृ. ११ श्लो.।
५. ज्यो. नि. १३८ पृ. १२ श्लो.।
६. ज्यो. नि. १२८ पृ. १३ श्लो.।

सात दिन आयु ज्ञान

[1]नयनांते विनिष्पीड्य यस्तु तेजो न पश्यति ।
मयूरचन्द्रिकाकारं स सप्ताहाद्विपद्यते ॥ १४० ॥

जो कि नेत्रों को बन्द करके मोर के पंख के समान तेज का अवलोकन नहीं करता वह सात दिन पश्चात् मृत्यु प्राप्त करता है ॥ १४० ॥

आयु हीन योग ज्ञान

[2]गन्धर्वनगरं पश्येद्दिवानक्षत्रमण्डलम् ।
परनेत्रेषु चात्मानं न पश्येन्न स जीवति ॥ १४१ ॥

जो कि दिन में गन्धर्व नगर, नक्षत्र मण्डल को देखता है तथा दूसरे के नेत्र में अपना चित्र नहीं देखता तो उसका जीवन नहीं होता है ॥ १४१ ॥

[3]कंककाकाद्युलूकाद्या गोधाद्या यदि मध्यमाः ।
जीवाः शीर्षे पतन्त्येव तदा जीवत्यसंशयः ॥ १४२ ॥

कङ्क (स० चील), कौआ, उल्लू, गोधादि मध्यम जीव यदि मस्तक पर गिर जायें तो जीवन का संदेह समझना चाहिये ॥ १४२ ॥

विशेष — ज्योतिर्निबन्ध में 'सरटः कङ्ककाकाद्या' 'जीवितसंक्षयः' यह पाठ है ॥१४२॥

[4]कपोतः प्रविशेद्यस्य गृहं घूको गृहोपरि ।
शब्दं कुर्यात्स नश्येच्च यः पश्येत्काकमैथुनम् ॥ १४३ ॥

जिसके घर में कबूतर का प्रवेश तथा घर के ऊपर बैठकर उल्लू बोलता हो या जो काक मैथुन देखता है उसका मरण कुछ समय पश्चात् होता है ॥ १४३॥

[5]स्वप्ने पश्यति आत्मानं षण्मासायुर्निरीक्षिते ।
कर्णनासाकरादीनां छेदनं पंकमज्जनम् ॥ १४४ ॥

[6]पतनं दन्तकेशानां पक्वमांसस्य भक्षणम् ।
खरोष्ट्रमहिषं यानं तैलाभ्यङ्गं च मृत्यवे ॥ १४५ ॥

जो व्यक्ति स्वप्न में अपने प्रतिविम्ब को देखता है, उसकी आयु ६ मास की होती है । तथा कान, नाक, हाथ का काटना, दांत, बाल का पतन, पके मांस का भक्षण, गदहा, ऊँट भैंसा की सवारी और कीचड़ में स्नान करना देखता है तो ये मरणके लिये होता है अर्थात् उनको देखने पर आसन्न मरण समझना चाहिये ॥ १४४–१४५ ॥

विशेष —ज्योतिर्निबन्ध में 'स्वप्ने मुण्डितमात्मानं' 'खरोष्ट्रमहिषैर्यानं' यह पाठान्तर उचित है ॥ १४४–१४५ ॥

---

१. ज्यो. नि. १३८ पृ. १४ श्लो. ।
२. ज्यो. नि. १३८ पृ. १५ श्लो. ।
३. ज्यो. नि. १३८ पृ. १६ श्लो. ।
४. ज्यो. नि. १३९ पृ. १७ श्लो. ।
५. ज्यो. नि. १३९ पृ. १८ श्लो. ।
६. ज्यो. नि. १३९ पृ. १९ श्लो. ।

अथ छायापुरुषदर्शनम्—

अब आगे छाया रूपी पुरुष के दर्शन की विधि और उससे जो फल होता है, उसे बताते हैं।

अथातः संप्रवक्ष्यामि छायापुरुषलक्षणम्।
येन विज्ञानमात्रेण त्रिकालज्ञो भवेन्नरः॥ १४६॥

अब मैं इसके पश्चात् छाया रूपी पुरुष के लक्षण को बताता हूँ, क्योंकि इसके ज्ञान से व्यक्ति तीनों कालों (भूत, वर्तमान, भविष्य) का जानने वाला होता है॥१४६॥

कालो दूरस्थितो वापि येनोपायेन लक्षयेत्।
प्रवक्ष्यामि समासेन यथोद्दिष्टं शिवागमे॥ १४७॥

अथवा जिस उपाय से दूरस्थ काल का ज्ञान होता है पुनः उसका महत्व जिस प्रकार शिवागम में वर्णित है, उसे मैं क्रमानुसार कहता हूँ॥ १४७॥

छाया पुरुष दर्शन विधि

एकान्ते विजने गत्वा कृत्वादित्यं तु पृष्ठतः।
निरीक्षेत निजां छायां कण्ठदेशे समाहितः॥ १४८॥
ततश्चात्मसमीक्षेत ततः पश्यति शंकरम्।
ॐ ह्रीं परब्रह्मणे नमः।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा पश्चाद्व्योम्नि पश्यति।
शुद्धस्फटिकसंकाशं नानारूपधरं हरम्।
षण्मासाभ्यन्तरे तस्य नास्ति किंचित्सुदुर्लभम्॥ १४९॥
तद्रूपं शुभ्रवर्णं यः पश्यति व्योम्नि निर्मले।
महादेवसमः साक्षाद्गोचराणां पतिर्भवेत्॥ १५०॥

निर्जन एकान्त स्थान में जाकर, सूर्य को पीछे करके खड़ा होकर अपनी छाया को कण्ठ देश में समाहित होकर इसके बाद अपने को देखकर, महादेवजी का दर्शन करके 'ॐ ह्रीं परब्रह्मणे नमः' इसका १०८ बार जप करके पीछे आकाश को देखने पर यदि शुद्ध स्फटिक की आभा के समान नाना रूपी शंकर की मूर्ति लक्षित होती है तो उसको ६ मास तक कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता है।

यदि आकाशस्थ स्वरूप महादेवजी के समान सफेद निर्मल आकाश में लक्षित हो तो द्रष्टा साक्षात् शिव के समान गोचर पति होता है॥ १४८–१५०॥

पूर्वोक्त दर्शन से फल

वर्षद्वयेन तेनाथ कर्ता हर्ता स्वयं प्रभुः।
त्रिकालज्ञानमात्रेण कर्ता हर्ता स्वयंप्रभुः॥ १५१॥

उक्त दर्शन आकाश में होने पर व्यक्ति कर्ता, हर्ता, स्वयं राजा होता है, क्योंकि इससे तीनों समय का ज्ञान होने के नाते भी कर्ता, हरण कर्ता, स्वयं समर्थ होता है॥ १५१॥

सम्पूर्णावयवं तं चेत्सम्मुखं श्वेतमीक्षते।
यावदब्दं सुखं क्षेमं विजयं प्राप्नुयात्तदा ॥ १५२ ॥

आकाशस्थ सफेद रूप का सब अवयवों के साथ सामने दर्शन होने पर वर्ष भर सुख, कल्याण, और विजयश्री हस्तगत होती है ॥ १५२ ॥

तद्रूपं कृष्णवर्णं यः पश्यति व्योम्नि निर्मले।
षण्मासान्मृत्युमाप्नोति स योगी नात्र संशयः ॥ १५३ ॥

आकाशस्थ रूप यदि काले वर्ण का दीप्त आकाश में लक्षित होता है तो वह योगी निश्चय ही ६ मास तक मरण प्राप्त करता है ॥ १५३ ॥

पीतादिवर्ण दर्शन का फल

पीते व्याधिर्भयं रक्ते नीले हत्यां विनिर्दिशेत्।
दृष्टे तस्मिन् शिरोहीनो मासषट्कं स जीवति ॥ १५४ ॥

वा आकाशस्थ रूप पीला होने पर व्याधि (रोग), लाल में भय, नीले में हत्या और विना मस्तक के दीखने पर ६ मास तक जीवन होता है ॥ १५४ ॥

अनेक वर्ण दर्शन का फल

नानावर्णैरुपेतोऽस्मिन्नुद्वेगो जायते महान्।
दुर्भिक्षं दारुणं देशे कर्बुरे च पराङ्मुखे ॥ १५५ ॥
विद्वरं धूमिते रूक्षे भिन्ने छिन्ने विघातनम्।
विकर्णं हायने चैकव्यन्से वै माससप्तकम् ॥ १५६ ॥
सरन्ध्रहृदये सप्त दशमासान् विहस्तके।
विपार्श्वे त्रीण्युरस्के द्वौ व्यासे मासं हि जीवनम् ॥ १५७ ॥

यदि आकाशस्थ रूप अनेक रंग का दीखने में आये तो अधिक उद्वेग, देश में भयंकर दुर्भिक्ष तथा पराङ्मुख कर्बुर में भी उक्त फल और धूमित रूक्ष में अकल्याण, छिन्न-भिन्न में घात, विकीर्ण होने पर एक वर्ष के भीतर, एक स्कन्ध में सात मास में, सछिद्र हृदय में सात मास में, हाथ से शून्य होने पर दस मास, विना कुक्षि में तीन, आर्द्र वक्षस्थल में दो और चौड़ा शरीर होने पर एक मास जीवन होता है ॥ १५५–१५७ ॥

प्रकारान्तर

द्विदेहदर्शने मृत्युः सद्य एव न संशयः।
मित्रनाशो विपादे च बन्धुनाशो विवाहुके ॥ १५८ ॥
आत्मनाशो विशीर्षे स्यात्सर्वाभावे कुलक्षयः।
पादाङ्गुली च जठरं विनाशः क्रमशो भवेत् ॥ १५९ ॥
षण्मासेनाथ वर्षेण क्रमाद्वर्षद्वयेन वा।
अशिरो मासि मरणं विना जङ्घां दिनत्रयम् ॥ १६० ॥
अष्टाभिः स्कन्धनाशेन छायालुप्ते तु तत्क्षणात्।

द्विदेह दर्शन में जल्दी ही अवश्य मरण, विना पैर में मित्र नाश, विना हाथ में बान्धवों का विनाश, मस्तक रहित में आत्मनाश, सर्वाभाव में कुल का अपचय, पाद, अँगुली, पेट का क्रम से विनाश देखने पर छः मास या एक वर्ष या दो वर्ष में मरण होता है ॥ १५८–१५९½ ॥

विना मस्तक में एक मास में, विना जाँघ होने पर तीन दिन, कन्धारहित स्वरूप में आठ दिन और आकाश में छाया या स्वरूप न दीखने पर तत्काल मरण होता है ॥ १५९½–१६०½ ॥

स्वरवश मरण

यस्य सूर्यस्वरोजस्रं षोडशाहं वहेत्तदा ॥ १६१ ॥
सद्यो मृत्युस्ततो नूनं न्यूनाहमिति मासके ।
एवं वामस्वरेणैव तयोर्नाशे मृतिः क्षणात् ॥ १६२ ॥

जिसका सूर्य स्वर निरन्तर सोलह दिन तक चलता है तो उसकी निश्चय ही एक मास से कम अर्थात् तीस दिन के भीतर मृत्यु होती है तथा इसी प्रकार वाम स्वर में भी समझना चाहिये और दोनों के न चलने पर तत्काल मरण होता है ॥१६०½–१६२॥

प्रकारान्तर

यस्य सूर्यायते चन्द्रः सूर्यश्चन्द्रायते तदा ।
अह्नद्वयं त्रयं तस्य षण्मासाभ्यन्तरे मृतिः ॥ १६३ ॥

जिसको चन्द्रमा सूर्य के रूप में सूर्य चन्द्र रूप में दृष्टिगोचर होता है तो उसका दो दिन, तीन दिन या ६ मास के भीतर मरण होता है ॥ १६३ ॥

निष्प्रभं भास्करं पश्येन्म्रियते दशभिर्दिनैः ।
जाग्रत्पश्यति यः स्वप्नं सोपि वर्षं न जीवति ॥ १६४ ॥

जो कि तेजरहित सूर्य को देखता है तो दस दिन में मरण और जागते हुए स्वप्न देखता है, वह भी एक वर्ष तक जीवन नहीं प्राप्त करता है ॥ १६४ ॥

शरीरावयव के अज्ञान में मरण

न विन्देत्कर्णघोषं यो नासाग्रं रसनां ध्रुवम् ।
मेढ्रं वामं न पश्येद्यः षण्मासान्न स जीवति ॥ १६५ ॥

जो कि कान में शब्द, नासाग्र, जिह्वा (जीभ) को स्थिरता से नहीं जानता तथा विपरीत उपस्थ को नहीं देखता तो ६ मास के भीतर मरण प्राप्त करता है ॥१६५॥

मणिबन्धं ललाटस्थं यदि सूक्ष्मं न पश्यति ।
यो दुर्गन्धिर्विना हेतुं निःश्रीको वाति दीप्तिमान् ॥ १६६ ॥
कृशाङ्गः स्थूलदेहः स्यात्क्षरत्केशनखोपि वा ।
स्रवद्वामेक्षणं वापि मासषट्कं स जीवति ॥ १६७ ॥

जो कि मस्तकस्थ सूक्ष्म मणिवन्ध को नहीं देखता और अकारण लक्ष्मीहीन दीप्तमान् दुर्गन्ध वाले वायु को देखता है तथा दुवला, मोटा, झरते केश या नाखून में भी या बायीं आँख में पानी आता देखता है तो ६ मास तक जीवित रहता है ॥ १६६–१६७ ॥

चिह्न अज्ञानवश मरण

ध्रुवं विष्णुपदं चैत्रारुन्धतीं मातृमण्डलम् ।
भूगोलं चन्द्रगं चिह्नमपश्यन्नैव जीवति ॥ १६८ ॥

जो ध्रुव, विष्णुपद, अरुन्धती, मातृमण्डल, चन्द्रगत चिह्न व भूगोल को नहीं देखता, वह जीवन प्राप्त करने में असमर्थ होता है ॥ १६८ ॥

शीघ्र मरण लक्षण

कफो मज्जति यस्याशु पंकादौ खण्डितं पदम् ।
स्नातस्य प्रागुरः शुष्येद्धूमालिः स्याच्च मूर्द्धनि ॥ १६९ ॥
नो सुभुंक्ते धृतिं धत्ते स्थूलदेहः कृशोथवा ।
विपर्यासः स्वभावस्य नोमात्यास्येङ्गुलत्रयम् ॥ १७० ॥

जिसका कफ शीघ्र पानी में डूब जाय, कीचड़ादि में खण्डित पैर चिह्न लक्षित होता है और स्नान करने के पश्चात् प्रथम छाती सूख जाय या धुआँ की पंक्ति मस्तक पर हो या खाने पर धीरता न हो, चाहे मोटा या दुवला हो या विपरीत स्वभावी हो या जब ३ अँगुली का ज्ञान न हो तो मरण होता है ॥ ६९–१७० ॥

अथ कन्यादोषानाह—

अब आगे कन्या के दोषों को वताते हैं ।

कन्या दोष ज्ञान

त्रिविक्रमः—

मृत्युः पौंश्चल्यवैधव्यदारिद्रमनपत्यता ।
एतान् दोषान्परित्यज्य विवाहपटलं ब्रुवे ॥ १७१ ॥

आचार्य त्रिविक्रम ने वताया है कि मरण, पौंश्चल्यता, वैधव्य, दरिद्रता व सन्तान शून्यता इन दोषों को कन्या की कुण्डली में अच्छी रीति से समझकर विवाह का आदेश देना चाहिये ॥ १७१ ॥

अन्य प्रमाण

अन्यत्रापि—

पञ्च पाणिग्रहे दोषा वर्जनीयाः प्रयत्नतः ।
दारिद्र्यं मरणं व्याधिः पौंश्चल्यमनपत्यता ॥ १७२ ॥

ग्रन्थान्तर में भी वताया है कि निर्धनता, मरण, रोग, पौंश्चल्यता, अनपत्यता इन पांच दोषों को विवाह में प्रयत्न से त्यागना चाहिये ॥ १७२ ॥

मरण, पति स्थान ज्ञान

चन्द्राद्वा जन्मलग्नाद्वा बलाबलविमृश्यतः।
अष्टमं पतिमृत्युः स्यात्सप्तमस्थानमेव च ॥ १७३ ॥

चन्द्रमा या लग्न से सप्तम पति व अष्टम मरण स्थान का बलावल अनुसार फल जानकर आदेश करना चाहिये ॥ १७३ ॥

अथ जातकशास्त्रादर्भककुमार्योर्जन्मलग्नात् पापग्रह-
सामान्यतो निषेधकष्टतरशुभान्याह ताजकसागरात्—

अब आगे जातक शास्त्र के आधार पर वर-कन्या की कुण्डलीवश पापग्रह किस स्थान में निषिद्ध, कष्टदायी और शुभ होते हैं, इसे ताजक सागर के वचन से बताते हैं।

निषेध, कष्टतर, शुभस्थान

द्वितीयपुत्रांकव्यवस्थितश्च पापस्तु साधारणदोषमाह।
केन्द्राष्टमस्थे खलु पापखेटे कष्टांतरं चान्यगृहे प्रशस्तम् ॥ १७४ ॥

ताजक सागर में बताया है २।५।९ में पापग्रह साधारण दोषदाता, १।४।७।८।१० में निषिद्ध कष्टदाता और अवशिष्ट स्थानों में शुभ होता है ॥ १७४ ॥

अथ कामिनीनां योगजग्रहाद्रंडासुतहाकुलटायोगत्रयमाह—

अब आगे स्त्रियों की कुण्डली में योगज ग्रहों से रण्डा, सुतहा और वेश्या योग इन तीनों को बताते हैं।

रण्डा, सुतहा, कुलटा योग

सूर्ये कुजे लग्नकलत्रसंस्थे स्वर्क्षोच्चगेष्वर्थयुताश्च रण्डा।
पापैः सुतस्थैः सुतवर्जिता स्याल्लग्ने कलत्रे कुलटा शनौ स्त्री ॥१७५॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि सूर्य, भौम, लग्न सप्तम में अपनी राशि या उच्च राशि में स्थित हों तो कन्या रण्डा (विधवा), पापग्रह बली पंचम में हो तो पुत्र से हीन और लग्न या सप्तम में बली शनि होने पर कन्या वेश्या होती है ॥ १७५ ॥

अथ विधवा दुष्टा असुता दरिद्रा योगचतुष्टयमाह—

अब आगे विधवा, दुष्टा, पुत्रहीन और दरिद्रा योग लक्षण को बताते हैं।

विधवा, दुष्टा, असुता, दरिद्रा योग लक्षण ज्ञान

लग्नास्तरन्ध्रगैः पापैर्विधवा व्ययगैः खलाः।
पुत्रस्थैरसुता नारी दरिद्रा धनबन्धुगैः ॥ १७६ ॥

जिस कन्या की कुण्डली में लग्न, सप्तम, अष्टम में पापग्रह होते हैं, वह कन्या विधवा, बारहवें में पाप की सत्ता से दुष्टा, पंचम में होने पर पुत्रहीना और द्वितीय व चतुर्थ में पाप की सत्ता से स्त्री दरिद्रा होती है ॥ १७६ ॥

अथ वरकन्ययोः मरणयोगमाह—

अब आगे वर-कन्या की कुण्डली में मरण योग लक्षण को बताते हैं।

मृत्यु योग ज्ञान

षष्ठाष्टमस्थे हिमगौ च क्रूरे लग्ने मृतिः स्यात्खलु वत्सरेष्टमे।
चन्द्रे विलग्ने क्षितिजे कलत्रे वर्षेष्टमे स्यान्मरणं वरस्त्रियोः ॥ १७७ ॥

जिस वर-कन्या की कुण्डली में ६।८ में चन्द्र और लग्न में पापग्रह होता है, वह आठवें वर्ष में मृत्यु प्राप्त करता है।

अथवा जिसके लग्न में चन्द्रमा और सातवें भाव में मंगल होता है, वह पुरुष या स्त्री आठवें वर्ष में मरण प्राप्त करती है ॥ १७७ ॥

वैधव्य या मरण योग

उदयात्सप्तमसंस्थे रवितनये शशांकपुत्रे वा।
वैधव्यं क्षितितनये सप्तमगे कन्यका म्रियते ॥ १७८ ॥

जिस कन्या की कुण्डली में लग्न से सप्तम में शनि या बुध होता है तो वह विधवा और मंगल के होने पर मरण प्राप्त करने वाली होती है ॥ १७८ ॥

अथ कन्यायाः पतिद्वयादियोगं तथा पुरुषस्य भार्याद्वयादियोगमाह—

अब आगे कन्या की कुण्डली में दो पति होने व पुरुष को दो स्त्री होने के योग को बताते हैं।

दो पति योग लक्षण

चरोदये शीतकरे चरस्थिते पापग्रहैः केंद्रचरैर्बलान्वितैः।
सौम्यग्रहैश्चाप्ययुतेक्षितैर्वधूःपतिद्वयं याति तथा द्विदेहगैः ॥१७९॥

जिसकी कुण्डली में चरसंज्ञक लग्न व चरराशि में चन्द्रमा, बली पापग्रह केन्द्रस्थ हों व द्विस्वभाव राशिस्थ शुभग्रहों से अदृष्ट अयुक्त होते हैं तो ऐसी कन्या दो पति बनाती है ॥ १७९ ॥

अथ पुंश्चलीकुलनाशिनीयोगद्वयमाह—

पुंश्चली कुलनाशिनी योग लक्षण

लग्ने सितेंद्वोर्यमभौमभस्थयोः संदृष्टयोः पापखगेन पुंश्चली।
लग्नेथ चंद्रे ह्यशुभग्रहान्तरे पापेक्षिते स्यात्कुलनाशिनी वधूः ॥१८०॥

जिसकी कुण्डली में लग्नस्थ शनि या मंगल की राशि में शुक्र चन्द्रमा, पाप ग्रह से दृष्ट हों तो स्त्री पुंश्चली (व्यभिचारिणी) और लग्न या चन्द्रमा पाप ग्रह के बीच में हों तो वधू कुल नाशिनी होती है ॥ १८० ॥

अथ कुमारिकायोनिक्षतादियोगमाह—

अब आगे कुमारी की योनि क्षत या अक्षत है इसे बताते हैं।

स्थिरोदये शीतगुलग्ननाथौ स्थिरर्क्षगावक्षतयोनिरंगना।
चरोदये चन्द्रविलग्ननाथौ चरस्थितौ स्याद्रमिता कुमारिका ॥१८१॥

जिस कन्या का स्थिर लग्न में जन्म होता है और चन्द्रमा व लग्नेश भी स्थिर राशि में होता है तो वह कन्या अक्षत योनि (शादी से पूर्व अभुक्त) एवं चर लग्न व चर राशि में चन्द्र तथा लग्नेश के रहने पर कन्या क्षत योनि होती है ।। १८१ ।।

देशान्तर गमन योग

चरे लग्ने चरे चन्द्रे चरेंशे खलखेचराः।
तेषां स्वामिचरेंशे वा नारी देशान्तरं व्रजेत् ।। १८२ ।।

जिस कन्या की कुण्डली में चर लग्न, चर राशि में चन्द्रमा और पाप ग्रहचर राशि में हों वा उनके स्वामी चर राशि के नवांश में हो तो कन्या देशान्तर का गमन करने वाली होती है ।। १८२ ।।

योनि व्याधि योग

लग्ने धने जले पुत्रे मासे रन्ध्रे कुजे रवौ।
पापयुक्तेक्षिते शुष्कराशौ गर्भेषु चोष्णता ।। १८३ ।।

जिस कन्या की कुण्डली में लग्न, द्वितीय, चतुर्थ, पञ्चम, वारह, अष्टम भाव में शुष्क राशि में पाप से युक्त या दृष्ट मंगल, सूर्य होते हैं, उसकी योनि में उष्णता का रोग होता है ।। १८३ ।।

सदोष कन्या योग

चरोदये शीतकरे द्विदेहे स्यात्स्वल्पदोषा सुकुमारिका सा।
चन्द्रेक्षितौ शुक्रकुजौ च केंद्रे कन्यां सदोषां कुरुतेऽरिगौ च । १८४।।

जिसकी कुण्डली में चर लग्न, द्विस्वभाव में चन्द्रमा होता है, वह कन्या अल्प दोष से युक्त और चन्द्र से दृष्ट शुक्र, मंगल केन्द्र में शत्रु राशि में हो तो कन्या सदोषा होती है ।। १८४ ।।

गुप्त व प्रकट रमण का योग

हित्वा स्थिरं चन्द्रकुजेत्थशाले परेण गुह्याद्रमिता कुमारी।
चन्द्रार्कशन्योरुदयस्थयोः सा परेण कन्या प्रगटोपभुक्ता ।।१८५।।

जिसकी कुण्डली में स्थिर राशि को छोड़ कर भिन्न राशिस्थ चन्द्र व भौम में इत्थशाल योग हो तो कुमारी दूसरे के साथ छुप कर रमण करने वाली और चन्द्रमा के साथ सूर्य या शनि का एक राशिस्थ इत्थशाल हो तो कन्या खुलकर रमण करने वाली होती है ।। १८५ ।।

पुंश्चली योग ज्ञान

अथ सामान्यतः स्त्रीणां पौंश्चल्यादियोगं ताजिकशास्त्रादाह—

अब आगे सामान्यता से स्त्रियों के पौंश्चल्यादि योग को ताजिक शास्त्र के आधार पर बताते हैं ।

लग्नाधिनाथेन हिमांशुना वा यदित्थशालं कुरुते महीसुतः ।
भवत्यवश्यं स्वगृहैव योषा स्वर्क्षे कुजे याति तदीयमंदिरम् ॥१८६॥

जिसकी कुण्डली में लग्नेश या चन्द्रमा से भौम का इत्थशाल योग होता है वह अपने घर में ही और भौम के राशि में होने पर पुरुष के घर जाकर पुंश्चली होती है ॥ १८६ ॥

पुरुष विशेष ज्ञान

सपापशीतांशुरवीत्थशाले भुक्तांगनेयं नृपसंनिभेन ।
यमेत्थशाले भृतकेन भुक्ता ज्ञशुक्रयोर्लेखकविप्रवैश्यैः ॥ १८७ ॥

जिस कन्या की कुण्डली में पाप ग्रह से युक्त चन्द्रमा से सूर्य का इत्थशाल योग होता है वह नृप के समान व्यक्ति द्वारा, शनि का इत्थशाल होने पर नौकर से और बुध या शुक्र का सपाप चन्द्रमा से इत्थशाल होने पर लेखक, ब्राह्मण, वनिया से भुक्त होती है ॥ १८७ ॥

प्रकारान्तर

यामित्रनाथे बहुखेटसंयुते भवंति जारा बहवस्तु योषितः ।
भावीत्थशाले स्मरपस्य भाविनः त्यक्त्वा तथा द्यूनपतीसराफकः ॥१८८॥

जिसकी कुण्डली में सप्तमेश अधिक ग्रहों से युक्त होता है वह अधिक व्यभिचारिणी होती है और सप्तमेश से किसी का भावी इत्थशाल हो तो भविष्य में अधिक, सप्तमेश से ईसराफ योग के विना स्त्री पुंश्चली होती है ॥ १८८ ॥

साध्वी सुशीला योग

लग्ने चरेंदोर्धिषणेत्थशाले साध्वी तथा केन्द्रगते सुरार्चिते ।
धर्मात्मजस्थे च सती सुशीला ज्ञेयांगनास्ते त्वशुभैर्विवर्जितैः ॥ १८९ ॥

जिसकी कुण्डली में चर लग्नस्थ चन्द्रमा का भौम के साथ इत्थशाल योग तथा गुरु केन्द्र में पापग्रह से रहित होता है वह कन्या साध्वी एवं नवम, पंचम में होने पर सती सुशीला होती है ॥ १८९ ॥

सुशीला पतिव्रता योग ज्ञान

शुभैः शशांकलग्नस्थैरपापैः स्थिरराशिगैः ।
स्वर्क्षोच्चगैश्च केन्द्रस्थैः स्त्री सुशीला पतिव्रता ॥ १९० ॥

जिसकी कुण्डली में शुभग्रह चन्द्रमा व लग्न से युक्त, स्थिर राशि में, पाप से रहित या अपनी राशि में, उच्च राशि में केन्द्रस्थ हों तो वह कन्या सुशीला व पतिव्रता होती है ॥ १९० ॥

रुष्टा स्त्री योग ज्ञान

अथ रुष्टास्त्रीयोगमाह—

तुर्योपरिस्थते भृगुजे चतुर्थादधस्थितेर्केण समेति रुष्टा ।
शुक्रे पुनर्वक्रगतेभ्युपैति विनिर्गतेर्काद्भृगुजेन चेति ॥ १९१ ॥

जिसकी कुण्डली में चौथे भाव से आगे शुक्र और पीछे सूर्य होता है उसको रुष्टा स्त्री प्राप्त होती है, शुक्र के वक्र होने पर या सूर्य से आगे होने पर भी यही फल होता ॥ १९१ ॥

विशेष

पूर्णे विधौ सा द्रुतमेति रुष्टा क्षीणैः प्रभूतैर्दिवसैः समेति ।
सूर्ये बले भर्तुरनिष्टदात्री भर्ता स्त्रियोऽनिष्टकरः सिते च ॥ १९२ ॥

पूर्ण चन्द्र होने पर रुष्ट स्त्री शीघ्र जाने वाली और क्षीण में बहुत दिन के पश्चात् जाने वाली होती है। सूर्य के बली होने पर पति का और शुक्र बली होने पर स्त्री का अनिष्ट होता है ॥ १९२ ॥

दाम्पत्य प्रीति योग ज्ञान

अथ पुंसोः प्रीत्यादि योगमाह—

लग्नेशयामित्रपतीत्थशाले स्नेहो भवेत्स्त्रीनरयोरतीव ।
सुस्नेहदृष्ट्या च तयोः शशांककंबूलयोगे शुभयोः शुभं स्यात् ॥ १९३ ॥

जिसकी कुण्डली में लग्नेश व सप्तमेश में इत्थशाल होता है उन स्त्री-पुरुष का परस्पर में अत्यन्त स्नेह और उक्त दोनों से यदि स्नेह दृष्ट युक्त शशांक या कम्बूल शुभ योग होता है तो दोनों का शुभ होता है ॥ १९३ ॥

लग्नेशास्तपयोः स्नेहदृष्ट्या सौख्यं मिथो भवेत् ।
क्रूरदृष्ट्या कलि दृष्टेरभावे मध्यमं भवेत् ॥ १९४ ॥

जिसकी कुण्डली में लग्नेश व सप्तमेश में परस्पर मित्र दृष्टि होती है उन दोनों का प्रेम और पाप दृष्टि से कलह एवं दृष्टि के अभाव में मध्यम फल होता है ॥ १९४ ॥

आज्ञाकारी वनिता व पुरुष का ज्ञान

लग्नस्थिते द्यूनपतौ स्वभर्तुरादेशकर्त्री वनिता सदा स्यात् ।
जायास्थिते लग्नपती स्वभार्या आदेशकारी पुरुषः सदैव ॥ १९५ ॥

जिस पुरुष की कुण्डली में सप्तमेश लग्न में होता है उसकी पत्नी पति का आदेश मानने वाली और स्त्री कुण्डली में लग्नेश सप्तम भाव में होने पर पति सदा स्त्री के आदेश मानने वाला होता है ॥ १९५ ॥

ग्रह दृष्टि ज्ञान

पश्यन्ति सप्तमं सर्वे शनिजीवकुजाः पुनः ।
विशेषतश्च त्रिदशत्रिकोणचतुरष्टमान् ॥ १९६ ॥

समस्त ग्रह सप्तम स्थान को और शनि ३।१० को, गुरु, ९।५ को, भौम ४।८ स्थान को विशेष और पूर्ण दृष्टि से देखता है ॥ १९६ ॥

वर कन्याओं में परम प्रीति योग ज्ञान

लग्नेश्वरो लग्नगतः स्मरेशो जायास्थितो द्वावथ लग्नसंस्थौ ।
यामित्रगौ द्वावथ भर्तृवध्वोः प्रेमातिरेकं कुरुते प्रकर्षात् ।। १९७ ।।

जिसकी कुण्डली में लग्नेश लग्न में, सप्तमेश सप्तम में या दोनों लग्न में या दोनों (लग्नेश सप्तमेश) सप्तम में होते हैं तो वर वधू में पारस्परिक गाढ प्रेम होता है ।। १९७ ।।

झंझट व प्रीति ज्ञान

शत्रुदृष्ट्या च दम्पत्योर्नित्यं झकटको भवेत् ।
लग्नेशास्तपयोः सप्तदृष्ट्या स्युः प्रीतिरुत्तमा ।। १९८ ।।

जिसकी कुण्डली में लग्नेश व सप्तमेश में पारस्परिक शत्रु दृष्टि होती है तो दोनों में प्रायः झँझट होता है और सप्तम दृष्टि हो तो उत्तम प्रीति होती है ।। १९८ ।।

अथ वंध्या–काकवंध्या–मृतवत्सा–गर्भस्रवा–पुष्पहंता–योगपंचकमाह ।

अब आगे वन्ध्या, काकवन्ध्या, मृतवत्सा, गर्भस्रवा और पुष्पहन्ता योग को बताते हैं ।

वन्ध्या, काकवन्ध्या योग ज्ञान

स्वर्क्षस्थितौ रन्ध्रगतौ यमार्कौ तदा स्त्रियं संदिशतश्च वंध्यान् ।
छिद्रस्थितौ चन्द्रबुधौ सदोषां वा काकवंध्या वदतोंगनां वै ।। १९९ ।।

जिसकी कुण्डली में आठवें भाव में अपनी राशि में शनि या सूर्य होता है वह कन्या सन्तान से रहित (वन्ध्या) और आठवें में चन्द्र बुध होने पर सदोषा काकवन्ध्या होती है ।। १९९ ।।

स्त्रीजातक में कहा है 'रन्ध्रगौ सूर्यचन्द्रौ चेद्विलग्नान्निजराशिगे । वन्ध्याऽथ चन्द्रमाः सौम्यः काकवन्ध्या तदा भवेत्' (८५ पृ०) ।। १९९ ।।

मृतप्रजा, गर्भस्रवा, पुष्पहन्ता योग ज्ञान

मृतप्रजा छिद्रगयोः सितेज्ययोर्गर्भस्रवा भूमिसुतेऽष्टमस्थिते ।
छिद्रे स्वरे छिद्रगते बलान्विते पुष्पं न विद्यत्यबलासु गर्भदम् ।। २०० ।।

जिसकी कुण्डली में आठवें भाव में शुक्र, गुरु होते हैं वह मृतप्रजा (जिसकी सन्तान उत्पन्न होकर नष्ट हो) और अष्टम में मंगल के होने पर गर्भस्रवा तथा अष्टम व सप्तम में बली हो तो कन्या का रज गर्भधारण करने वाला नहीं होता हैं ।। २०० ।।

अपरं च—

सुतस्थाने द्विपापे च त्रिपापे गुरुभस्थिते ।
तदा स्त्रीपुरुषौ वंध्यौ विज्ञेयौ शत्रुवीक्षतौ ।। २०१ ।।

जिसकी कुण्डली में पाँचवें स्थान में गुरु की राशि में शत्रु से दृष्ट दो या तीन पापग्रह होते हैं तो स्त्री-पुरुष वन्ध्या होते हैं ।। २०१ ।।

भगिनी भ्रातृगृहिणो मातुल मातुलानी च।
पितृव्यमातृष्वसादि-सुतवत्कारकादपि ॥ २०२ ॥

इसी प्रकार बहिन, भावज, मामा, मामी, चाचा, मौसी आदि स्थानों के कारक ग्रहों के आधार पर उनके सम्बन्धों में विचार करना चाहिये ॥ २०२ ॥

पतिवन्ध्या, नारीवन्ध्या योग ज्ञान

लग्ने शनौ कामगते शशांके शुक्रेक्षिते वा यदि वंध्ययुक्त: ॥ २०३ ॥

जिसकी कुण्डली में लग्न में शनि, सातवें में चन्द्र अथवा शुक्र से दृष्ट होते हैं तो वह नारी वन्ध्या होती है ॥ २०३ ॥

अथ नारीपुरुषयोर्मरणयोगमाह—

अब आगे नारी पुरुष के मरण योग को बताते हैं।

स्त्री पुरुष मरण योग ज्ञान

लग्ने व्यये चतुर्थे च पंचमे सप्तमे ग्रहा:।
पतिवन्ध्या भवेन्नारी नारीवन्ध्या भवेत्पति: ॥ २०४ ॥

जिसकी कुण्डली में लग्न, द्वादश, चतुर्थ, पञ्चम, सप्तम में ग्रह होते हैं, वह नारी पतिवन्ध्या और पुरुष नारीवन्ध्या होता है ॥ २०४ ॥

भार्या मरण योग ज्ञान

लग्नेशरन्ध्रेशपतीत्थशालकृद्रंध्रस्थचंद्रेण युतो मृतिप्रद:।
षष्ठस्थ आत्मानमरिजनात्मन: कुर्याद्व्ययं प्राप्तगतश्च संतत:।

जिसकी कुण्डली में लग्नेश व अष्टमेश पति से इत्थशाल करने वाला ग्रह अष्टमस्थ चन्द्रमा से युक्त होता है तो मरण प्रद तथा षष्ठस्थ से युक्त होने पर स्वयं का ही और व्ययस्थ से योग करने पर शत्रु जन का मरण करता है ॥ २०४ ॥

सप्तमे क्रूरखचर: शुभदृष्टिविवर्जित: ।
भार्यामरणद: प्रोक्तो विनष्टो वास्तनायक: ॥ २०५ ॥

जिसकी कुण्डली में सप्तम में शुभग्रह की दृष्टि से रहित पापग्रह होता है या सप्तमेश अस्त होता है उसकी स्त्री का मरण होता है ॥ २०५ ॥

अथ केवलभौमकृद्वधूवरयोर्दोषमाह—

अब आगे केवल वर-कन्या के मंगली दोष को विविध वाक्यों से बताते हैं।

मंगली दोष ज्ञान

लग्ने व्यये च पाताल यामित्रे चाष्टमे कुजे।
कन्या भर्तृविनाशाय भर्तृ: कन्या विनश्यात ॥ २०६ ॥

जिसकी कुण्डली में लग्न या द्वादश या चतुर्थ या सप्तम या अष्टम में मंगल होता है वह कन्या और पुरुष मंगली दोष से युक्त होकर पुरुष व स्त्री के विनाशक होते हैं ॥२०६॥

लग्नादिदोर्यदा भौमः सप्ताष्टांत्याद्यतुर्यगः।
पत्युर्भार्याविनाशाय भार्यायाः पतिनाशनम् ॥ २०७ ॥

जिसकी कुण्डली में लग्न और चन्द्रमा से मंगल सात, आठ, बारह, लग्न या चौथे में होता है वह कन्या पति का और पुरुष स्त्री को नष्ट करने वाला होता है ॥ २०७ ॥

बालवैधव्य व कुलनाशकरी वधू लक्षण

द्वयादिपापयुते भौमे सप्तमे चाष्टमे स्थिते।
बालवैधव्ययोगः स्यात्कुलनाशकरी वधूः ॥ २०८ ॥

जिसकी कुण्डली में दो आदि पापों से युक्त भौम सप्तम या अष्टम होता है तो वह कन्या बाल्यकाल में विवाहित होने पर विधवा वधू कुल का नाश करने वाली होती है ॥ २०८ ॥

भौम दोषापवाद

सप्तमस्थो यदा भौमो गुरुणा च निरीक्षितः।
तदा तु सर्वसौख्यं स्यान्मगंलीदोषनाशकृत् ॥ २०९ ॥

जिसकी कुण्डली में सप्तमस्थ भौम, गुरु से दृष्ट होता है तो मंगल के दोष का विनाश होकर सब प्रकार से सुख होता है ॥ २०९ ॥

मृत्युकारक

गुरुः—
पापयुक्तो यदा चन्द्रात्षष्ठे चाष्टमगे यदि।
विवाहसमयान्मृत्युं दद्यादष्टाब्दरेतयोः ॥ २१० ॥

गुरु ने बताया है कि चन्द्रमा से ६। ८ स्थान में पापग्रह से युक्त भौम होता है तो विवाह के बाद आठवें वर्ष में मृत्यु कारक होता है ॥ २१० ॥

दम्पतियों को अशुभ

लग्ने पापग्रहैर्युक्ते नीचशत्रुगृहस्थितैः।
अष्टमे वत्सरे चैव दम्पत्योर्न शुभावहः ॥ २११ ॥

जिस दम्पती की लग्न में नीच या शत्रु राशि में पापग्रह होता है तो आठवें वर्ष में वर कन्या का अशुभ होता है ॥ २११ ॥

८वें वर्ष में मरण ज्ञान

जन्मलग्ने यदा चन्द्रस्तस्मात्षष्ठेऽष्टमे कुजः।
वर्षाष्टमे नरो याति यमालयमपुत्रकः ॥ २१२ ॥

जिसकी कुण्डली में लग्न में चन्द्रमा तथा चन्द्र से ६ या ८ में भौम होता है, वह पुरुष बिना सन्तान के विवाह के पश्चात् यमलोक का गमन करता है ॥ २१२ ॥

२, ३ आदि पापग्रहवश फल

कामार्ता विधवा कुलक्षयकरी पापद्वये चास्तगे
वेश्या स्वामिवधं करोति कुलटा पापत्रयं चास्तगे ।
राहुः सप्तमगः करोति नियतं रिष्टं निहन्ति स्त्रियः
चाण्डालीगतिचित्तमेव कुरुते पापत्रये वीक्षितः ॥ २१३ ॥

जिसकी कुण्डली में सप्तम में दो पापग्रह होते हैं, वह विधवा, काम से दुःखी, कुल का नाश करने वाली और तीन पापग्रह सप्तम में होने से वेश्या, कुलटा, पति की हत्या करने वाली और सप्तमस्थ राहु होने पर रिष्ट का नाश करने वाली तथा तीन पापग्रह से दृष्ट होने पर चाण्डाली के समान गति व चित्तवाली होती है ॥ २१३ ॥

[1]वसिष्ठः —

स्वनीचगः शत्रुनिरीक्षितश्च पापो विलग्नाद्यदि पञ्चमस्थः ।
विवाहिता या मृतपुत्रिणी स्याद्वन्ध्याथ वा भर्तृविवर्जिता च ॥ २१४ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने कहा है कि जिसकी कुण्डली में लग्न से पाँचवें स्थान में पापग्रह अपनी नीच राशि में शत्रु से दृष्ट होता है तो वह कन्या विवाहित होने पर मृत सन्तान वाली, वन्ध्या या पति से वर्जित होती है ॥ २१४ ॥

पति मरण का ज्ञान

क्रूरव्योमचरः स्त्रीणामष्टमस्थो विलग्नतः ।
नीचारिपापवर्गेषु यदि मृत्युकरः पतेः ॥ २१५ ॥

जिस स्त्री की कुण्डली में लग्न से आठवें स्थान में नीच या शत्रु या पाप के वर्ग में पापग्रह होता है तो यह स्वामी की मृत्युदाता होती है ॥ २१५ ॥

भौम दोष का परिहार

आथास्य भंगयोगः—

लग्नाद्विधोर्वा यदि जन्मकाले शुभग्रहो वा मदनाधिपश्च ।
द्यूनस्थितो हंत्यनपत्यदोषं वैधव्यदोषं च विषांगनाख्यम् ॥ २१६ ॥

जिसकी कुण्डली में लग्न या चन्द्रमा से सातवें स्थान में शुभग्रह या सप्तमेश होता है, उसकी सन्तानहीनता, वैधव्यता और विषाङ्गनाजन्य दोष का नाश होता है ॥ २१६ ॥

प्रकारान्तर

केन्द्रे कोणे शुभाढ्यश्चेत्त्रिषडायेप्यसद्ग्रहाः ।
तदा भौमस्य दोषो न मदने मदपस्तथा ॥ २१७ ॥

जिसकी कुण्डली में केन्द्र, त्रिकोण में शुभग्रह और ३।६।११ में पापग्रह होता है तथा सप्तम में सप्तमेश हो तो मंगली दोष का अभाव होता है ॥ २१७ ॥

---

१. व० सं० ३१ अ० ४ श्लो० ।

भौमतुल्यो यदा भौमः पापो वा तादृशो भवेत् ।
उद्वाहः शुभदः प्रोक्तश्चिरायुः पुत्रपौत्रदः ॥ २१८ ॥

जिस मेलापक में भौम के तुल्य भौम या उसी प्रकार का पापग्रह होता है तो विवाह शुभ फलदाता होता है और वर-कन्या दीर्घायु, पुत्र, पौत्रादि से सम्पन्नता होती है ॥ २१८ ॥

[1]अथ कन्यावैधव्योपशमनम् । मार्कंडेयपुराणे—

अब आगे कन्या के वैधव्यता दोष निवृत्यर्थ उपाय को बताते हैं ।

कुम्भ विवाह कथन

बालवैधव्ययोगे तु कुम्भेषु प्रतिमादिभिः ।
कृत्वा लग्नं ततः पश्चात्कन्योद्वाह्येति चापरे ॥ २१९ ॥

मारकण्डेय पुराण में बताया है कि यदि कन्या की कुण्डली में बाल विधवा योग हो तो घट या प्रतिमा के साथ विवाह विधि करने के बाद कन्या का विवाह करना चाहिये ॥ २१९ ॥

तत्र पुनर्भूदोषाभाव उक्तो विधानखण्डे—

प्रतिमा या कुम्भ विवाह करने पर पुनर्भू दोष का अभाव होता है, ऐसा विधान-खण्ड में वर्णित है ।

पुनर्भू दोषाभाव

[2]स्वर्णांवुपिप्पलानां च प्रतिमा विष्णुरूपिणी ।
तया सह विवाहे तु पुनर्भूत्वं न जायते ॥ २२० ॥

विधान खण्ड में बताया है कि सुवर्ण या जल (पूर्ण घट) या पीपल या विष्णुरूपिणी प्रतिमा के साथ विवाह करने से पुनर्भू दोष का अभाव होता है ॥ २२० ॥

प्रकारान्तर

सूर्यारुणसंवादे—
विवाहात्पूर्वकाले च चन्द्रताराबलान्विते ।
विवाहोक्तेन मन्थन्या कुम्भेन सह चोद्वहेत् ॥ २२१ ॥
सूत्रेण वेष्टयेत्पश्चाद्दशतन्तुविधानतः ।
कुंकुमालंकृतं देहं तयोरेकान्तमन्दिरे ॥ २२२ ॥
ततः कुंभं च निःसार्य प्रभज्य सलिलाशये ।
ततोऽभिषेचनं कुर्यात्पञ्चपल्लववारिभिः ॥ २२३ ॥

सूर्यारुण संवाद में बताया है कि विवाह से पहिले चन्द्र व तारा के बली होने पर विवाहोक्त विधि से घड़ा के साथ विवाह करके एकान्त स्थान मे दस बार सूत से वेष्टित

१. मु. चि. ६ प्र० ७ श्लो. पी. टी ।
२, मु. चि. ६ प्र० २० श्लो. पी. टी. तथा ज्यो. नि. १५९ पृ० ।

कर कुमकुम से देह अलंकृत करना। इसके पश्चात् घट निकालकर तालाव या नदी में करके पंचपल्लवों से अभिषेक करना चाहिये ॥ २२१–२२३ ॥

कुम्भप्रार्थनापि तत्रैवोक्ता—

कुम्भ की प्रार्थना भी वहीं पर कही गयी है।

कुम्भप्रार्थना

वरुणाङ्गस्वरूपाय जीवनानां समाश्रय।
पतिं जीवय कन्यायाश्चिरं पुत्रसुखं कुरु ॥ २२४ ॥
देहि विष्णो वरं देव कन्यां पालय दुःखतः।
ततोलङ्कारवस्त्रादि वराय प्रतिपादयेत् ॥ २२५ ॥

हे जीवों के आधार वरुण, देहस्वरूप तुम्हें नमस्कार है। कन्या के पति को दीर्घायु व पुत्र सुख से सुखी बनाओ और हे विष्णो वरदान दो कि कन्या को दुःख से रक्षा करो। इसके पश्चात् वर के लिए वस्त्र, अलंकार आदि देना चाहिये ॥ २२४–२२५ ॥

तत्रैव मूर्तिदानमप्युक्तम्—

वहीं पर मूर्ति दान की विधि कथित है अब उसे बताते हैं।

ब्राह्मणं साधुमामंत्र्य सम्पूज्य विविधार्हणैः।
तस्मै दद्याद्विधानेन विष्णोर्मूर्तिं चतुर्भुजाम् ॥ २२६ ॥

सज्जन विद्वान् ब्राह्मण को बुलाकर उसकी योग्य विविध वस्तुओं से पूजा करके चार भुजा वाली विष्णु की प्रतिमा उसको देनी चाहिये ॥ २२६ ॥

शुद्धवर्णसुवर्णेन वित्तशक्त्याथवा पुनः।
निर्मितां रुचिरां शङ्खगदाचक्राब्जसंयुताम् ॥ २२७ ॥
दधानां वाससी पीते कुमुदोत्पलमालिनीम्।
सदक्षिणां च तां दद्यान्मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥ २२८ ॥

अपनी शक्ति के अनुसार शुद्ध वर्ण के सोने की सुन्दर शंख, गदा, चक्र, कमल को तथा पीत वस्त्र व कुमुद या कमल की माला धारण करती हुई प्रतिमा को दक्षिणा के साथ मन्त्रोच्चारण पूर्वक दान करना चाहिये ॥ २२७–२२८ ॥

दान मन्त्र

यन्मया प्राचि जनुषि त्यक्त्वा पतिसमागमम्।
विषोपविषशस्त्राद्यैर्हतो वातिविरक्तया ॥ २२९ ॥
प्राप्यमानं महाघोरं यशःसौख्यधनापहम्।
वैधव्यात्पतिदुःखौघनाशाय सुखलब्धये ॥ २३० ॥
बहुसौभाग्यलब्धौ च महाविष्णोरिमां तनुम्।
सौवर्णनिर्मितां शक्त्या तुभ्यं सम्प्रददे द्विज ॥ २३१ ॥

अनघाद्याहमस्मीति त्रिवारं प्रजपेदिति ।
एवमस्त्विति तस्योक्तं गृहीत्वा स्वगृहं विशेत् ॥ २३२ ॥
ततो वैवाहिकं कुर्याद्विधिं दाता मृगीदृशः ॥ २३३ ॥

जो कि मैंने पूर्व जन्म में पति समागम का त्याग करते हुए अत्यन्त विरक्ति से विष या उपविष या शस्त्र से पति का हनन किया यश, सुख, धन को नष्ट करने वाला बड़ा घनघोर पाप किया है उससे अर्थात् विधवा पन से प्राप्त होने वाले पति के दुःख समुदाय का नाश करने के लिये तथा सुख प्राप्ति हेतु, अधिक सुख की कामना से हे विप्र ! सोने से बनी हुई विष्णु की प्रतिमा का दान तुमको कर रही हूँ । तत्पश्चात् 'अनघाद्याहमस्मि' इस मन्त्र को तीन बार जप कर ब्राह्मण से 'ऐसा ही हो' इसे सुनकर घर में प्रवेश करके दाता द्वारा कन्या के विवाह की विधि को करना चाहिये ॥ २२९–२३३ ॥

अन्येप्यश्वत्थवृक्षविवाहवृक्षसेचनादयस्तत्रैव ज्ञेयाः ।
ग्रन्थगौरवभयान्नेहोच्यते ।

और भी अश्वत्थ वृक्ष विवाह, वृक्ष सेचनादि वहीं से समझना चाहिये ग्रन्थ के बड़े हो जाने के भय से यहाँ नहीं लिखा है ।

अथ जन्मर्क्षविचारः ।

अब आगे अशुभ जन्म के नक्षत्रों को बताते हैं ।

विशाखा जन्म फल

च्यवनः—
विशाखातुलया युक्ता देवरस्य शुभावहाः ।
विशाखा वृश्चिकोद्भूता देवरं हंत्यसंशयम् ॥ २३४ ॥

च्यवन ऋषि ने बताया है कि विशाखा नक्षत्र तुला राशि से युक्त होने पर कन्या के देवर को शुभदायक और वृश्चिक राशि से युक्त विशाखा निश्चय ही देवर का नाशक होता है ॥ २३४ ॥

वृद्धनारदः—
न निहन्ति देवरं कन्या तुलामिश्रद्विदेवजा ।
चतुर्थपादजा त्याज्या दुष्टा वृश्चिकपुच्छवत् ॥ २३५ ॥

वृद्ध नारदजी ने बताया है कि तुला राशि से सहित विशाखा नक्षत्रोत्पन्न कन्या देवर का नाश करने वाली नहीं होती है इसलिये चतुर्थ चरण में उत्पन्न का त्याग करना क्योंकि वह बिच्छू की पूँछ की तरह दूषित होती है ॥ २३५ ॥

मूल में जन्म का फल

[1]नारदः—
सुतः सुता वा नियतं श्वसुरं हन्ति मूलजः ।
तदन्त्यपादजो नैव तथाश्लेषाद्यपादजः ॥ २३६ ॥

---

१. मु. चिं. ६ प्र० २० श्लो. पी. टी ।

ऋषि नारद ने बताया है कि कन्या वा वर (पुरुष), मूल नक्षत्रोत्पन्न निश्चय ही श्वसुर का मरण करने वाले होते हैं किन्तु मूल के चतुर्थ चरण में तथा आश्लेषा के प्रथम चरण में प्रसूत, नाशक नहीं होते हैं ।। २३६ ।।

प्रकारान्तर से मूलादि फल

[१]रामाचार्योऽपि—

श्वश्रूविनाशमहिजौ सुतरां विधत्तः कन्यासुतौ निर्ऋतिजौ श्वशुरं हतश्च ।
ज्येष्ठाभजाततनयास्वधवाग्रजं च शक्राग्निजा भवति देवरनाशकर्त्री ।।२३७।।

श्रीरामदैवज्ञ ने बताया है कि आश्लेषा नक्षत्रोत्पन्न पुरुष या कन्या सास के नाशक और मूलोत्पन्न श्वसुर के मारक एवं ज्येष्ठा में उत्पन्न कन्या पति के बड़े भाई को नाश करने वाली तथा विशाखा में उत्पन्न कन्या देवर (पति के छोटे भाई) को मारने वाली होती है ।। २३७ ।।

मूलादि दोष का अपवाद

[२]द्वीशाद्यपादत्रयजा कन्या देवरसौख्यदा ।
मूलान्त्यपादसर्पाद्यपादजातौ तयोः शुभौ ।। २३८ ।।

श्रीरामदैवज्ञ ने बताया है कि विशाखा के प्रथम तीन चरणों में उत्पन्न कन्या देवर को सुख देने वाली और मूल के चौथे चरण में, आश्लेषा के प्रथम चरण में उत्पन्न कन्या, पुरुष दोनों सास श्वसुर के लिए शुभ होते हैं ।। २३८ ।।

ग्रन्थान्तर से मूलादि जन्म फल

[३]ज्योतिःसारे—

मूलजा च गुणं हन्ति व्यालजा कुलटांगना ।
विशाखाजा देवरघ्नी ज्येष्ठाजा ज्येष्ठनाशिनी ।। २३९ ।।

ज्योतिःसार में बताया है कि मूल में पैदा हुई कन्या वर के गुणों को नाश करने वाली आश्लेषा में उत्पन्न व्यभिचारिणी, विशाखा में जायमान देवर को और ज्येष्ठा में जन्म लेने वाली कन्या पति के बड़े भाई को मारने वाली होती है ।। २३९ ।।

द्वीशसार्पेंद्रमूलेषु देवरं श्वश्रूमग्रजम् ।
श्वशुरं वै क्रमाद्धन्ति कन्यापुरुषयोर्द्वयोः ।। २४० ।।

विशाखा, आश्लेषा, ज्येष्ठा, मूल में उत्पन्न हुई कन्या क्रम से देवर, सास, पति के बड़े भाई व श्वसुर का विनाश करने वाली होती है ।। २४० ।।

[४]गर्गः—

मूलजा श्वशुरं हन्ति सार्पजा च तदंगनाम् ।
ज्येष्ठजा च पतिज्येष्ठं देवरं तु द्विदैवजा ।। २४१ ।।

---

१. मु. चि. ७ प्र० १९ श्लो । २. मु. चि. ६ प्र० २० श्लो ।
३. १११ पृ० । ४. ज्यो. नि. १५९ पृ. १ श्लो. ।

गर्गाचार्यजी ने बताया है कि मूल में जायमान कन्या श्वसुर का, आश्लेषा में सास का, ज्येष्ठा में पति के बड़े भाई का और विशाखा में उत्पन्न हुई कन्या देवर का अर्थात् पति के छोटे भाई का नाश करने वाली होती है ॥ २४१ ॥

ज्येष्ठा विशाखा में पुत्र, कन्या का फल

धवाग्रजं हन्ति सुरेन्द्रजाता तथैव कन्या भगिनी पुमांश्च ।
द्विदैवजा देवरमाशु हन्याद्भार्यानुजामाशु हि हन्ति सूनुः ॥ २४२ ॥

गर्गाचार्यजी ने बताया है कि ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न कन्या–पुरुष पति के बड़े भाई व पत्नी की बड़ी बहिन को और विशाखा में पैदा होनेपर देवर व छोटी बहिन के मारक होते हैं ॥ २४२ ॥

[1]पत्न्यग्रजामग्रजं वा हन्ति ज्येष्ठर्क्षजः पुमान् ।
तथा भार्यास्वसारं वा शालकं वा द्विदैवजः ॥ २४३ ॥

ज्येष्ठा में उत्पन्न पुरुष पत्नी की बड़ी बहिन या भाई का और विशाखा में उत्पन्न पत्नी की छोटी बहिन या साले को नाश करने वाला होता है ॥ २४३ ॥

कश्यप पटल के आधार पर शुभाशुभ

कश्यपपटले—
मूलान्त्यपादजौ श्रेष्ठौ तथाश्लेषान्त्यपादजौ ।
द्वीशान्त्यपादजौ दुष्टौ तथा ज्येष्ठान्त्यपादजौ ॥ २४४ ॥

कश्यप पटल में बताया है कि मूल के अन्तिम चरण में उत्पन्न पुरुष कन्या उत्तम और आश्लेषा, विशाखा, ज्येष्ठा के चौथे चरण में जायमान दोनों अशुभ होते हैं ॥ २४४ ॥

मूलादि परिहार

[2]नारदः—
मूलव्यालभवो दोषो विवाहे य उदाहृतः ।
स मौंजीबन्धनादूर्ध्वं पुंसां नैवेति केचन ॥ २४५ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि विवाह में मूल, आश्लेषा जन्य दोष जो कहा गया है वह मौञ्जीबन्धन के पश्चात् नही होता है ऐसा किसी का मत है ॥ २४५ ॥

पैत्र्यगण्डोद्भवा कन्या श्वशुरघ्नी च केचन ।
इत्यत्र केवलेनैकचरणाद्यः दोषकारकः ॥ २४६ ॥

पैत्र्य गण्ड में उत्पन्न कन्या श्वसुर की नाशक होती है ऐसा किसी का मत है । इसमें केवल एक चरण पहिला ही त्याज्य होता है ॥ २४६ ॥

---

१. ज्यो. नि. १५९ पृ. ४ श्लो. । २. ज्यो. नि. १६० पृ. ६ श्लो. ।

अस्यापवादः—

अब मूलादि दोष का अभाव किस परिस्थिति में नहीं होता है इसे विविध अपवाद वाक्यों से बताते हैं।

नक्षत्र दोषापवाद

जगन्मोहने—

ऋक्षदोषे समुत्पन्ने भावनाथेऽस्तनीचगे।
षष्ठाष्टमव्यये वापि ऋक्षदोषो न संशयः ॥ २४७ ॥

जगन्मोहन ने बताया है कि नक्षत्र दोष होने पर भाव नाथ (सप्तमेश) के अस्त, नीच, छठा, आठवें में होने पर निश्चय ही नक्षत्र दोष नहीं होता है ॥ २४७ ॥

[1]जातकोत्तमे—

मूलसार्पोद्भवं दोष्टचं न स्यात्पित्रादयो ग्रहाः।
उच्चस्थानस्थिताः सौम्यदृष्टाश्च बलिनो यदि ॥ २४८ ॥

जातकोत्तम ग्रन्थ में कहा है कि मूल, आश्लेषा का दोष पितादि ग्रहों के उच्चस्थ तथा शुभग्रहों से दृष्ट या बली होने पर नहीं होता है ॥ २४८ ॥

[2]भावे भावाधिपे चैव चन्द्रे च बलशालिनि।
उक्तदोषा विनश्यन्ति शुभग्रहयुतेक्षते ॥ २४९ ॥

जब भाव, भावेश, चन्द्र, बली शुभग्रहों से दृष्ट युत होते हैं तो उक्त दोषों का नाश होता है ॥ २४९ ॥

नामर्क्षादि्भमेलनम्।

अब आगे नाम व जन्म के नक्षत्रों से वर कन्या के मेलापक को विविध वाक्यों से बताते हैं।

बृहस्पतिः—

दम्पत्योर्जन्मताराभ्यां नामर्क्षाभ्यामथापि वा।
भमेलं चिन्तयेत् प्राज्ञो सुखसन्तानहेतवे ॥ २५० ॥

बृहस्पतिजी ने बताया है कि वर कन्या के सुख, सन्तति हेतु जन्म नक्षत्रों से या नाम के नक्षत्रों से नक्षत्र मेलापक का विचार करना चाहिये ॥ २५० ॥

[3]वसिष्ठः—

जन्मभं जन्मधिष्ण्येन नामधिष्ण्येन नामभम्।
व्यत्ययेन यदा योज्यं दम्पत्योर्निधनप्रदम् ॥ २५१ ॥

---

१. ज्यो. नि. १६० पृ. १४ श्लो.। २. ज्यो. नि. १६० पृ. १५ श्लो.।
३. व. सं. ३२ अ. ९५ श्लो.।

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि वर कन्या के जन्म के नक्षत्र से जन्म का नक्षत्र और नाम के नक्षत्र से नाम के नक्षत्र के साथ मेलापक का विचार करना चाहिये। और विपरीत अर्थात् एक का जन्म दूसरे का नाम नक्षत्र से करने पर दोनों का विनाश होता है ॥ २५१ ॥

कुर्यात्षोडशकर्माणि जन्मराशौ बलान्विते ।
सर्वाण्यन्यानि कार्याणि नामराशौ बलान्विते ॥ २५२ ॥

सोलह संस्कार जन्मराशि के बलवान् होने पर और अन्य काम नाम राशि के बली होने पर करने चाहिये ॥ २५२ ॥

ज्ञातं जन्म यदा पुंसः स्त्रियो न ज्ञायते तदा ।
जन्म नाम्नोर्बलं ज्ञात्वा कुर्वीतोद्वाहमङ्गलम् ॥ २५३ ॥

जब कि पुरुष का जन्म नक्षत्र ज्ञात होता है और कन्या का नहीं होता है तो जन्म, नाम के बलों को जानकर विवाह मङ्गल काम करना चाहिये ॥ २५३ ॥

वसिष्ठः—

[1]अज्ञातजन्मनां नृणां नामभे परिकल्पना ।
तेनैव चिंतयेत् सर्वं राशिकूटादि जन्मवत् ॥ २५४ ॥

ऋषि वसिष्ट ने वताया है कि जिसकी जन्म, राशि विदित नहीं होती है तो उसके नाम से राशि जान कर उसी से ही जन्म राशि की तरह समस्त राशि कूटादि का विचार करना चाहिये ॥ २५४ ॥

पटलसारे—

जन्मज्ञानेपि चैकस्य द्वयोर्नाम्नोर्भमेलकः ।
चिन्त्यस्तत्रैव जन्मर्क्षाद्वीक्ष्यं लग्नेन्दुजं बलम् ॥ २५५ ॥

पटलसार में बताया है कि वर कन्या में एक की जन्म राशि ज्ञात होने पर दोनों के नाम राशि से मेलापक देखकर जन्मराशि से लग्न व चन्द्रबल का विचार करना चाहिये ॥ २५५ ॥

अन्यः—

वध्वा जन्म यदा ज्ञातं न विज्ञातं वरस्य तु ।
नामर्क्षाभ्यां तदा कुर्याद्दम्पत्योः पाणिपीडनम् ॥ २५६ ॥

ग्रन्थान्तर में वताया है कि जब कन्या की जन्मराशि तो ज्ञात होती है और पुरुष की अज्ञात तो दोनों की नाम राशि से मेलापक विचार कर विवाह करना चाहिये ॥ २५६ ॥

जन्मर्क्षं यदि न ज्ञातं तदा नामैव संश्रयेत् ।
सदा लौकिककार्येषु नामर्क्षमवलोकयेत् ॥ २५७ ॥

१. व. सं. ३२ अ. ९६ श्लो. ।

जब कि जन्मराशि का ज्ञान नहीं होता है तो नाम से ही समस्त मेलापक का विचार करना और सदा व्यावहारिक कामों में नाम राशि से ही कार्यारम्भ करना चाहिये ॥ २५७ ॥

यदा स्त्री जन्मसम्पत्तिर्वरजन्म न लभ्यते ।
स्त्रियः स्याज्जन्मशुद्धिर्नुर्नाम्नोर्मेलक्रिया तदा ॥ २५८ ॥

जब कि स्त्री की जन्म राशि ज्ञात होती है और पुरुष की राशि अज्ञात होती है तो स्त्री की जन्म राशि से गोचरीय शुद्धि का और पुरुष एवं स्त्री की नामराशि से मेलापक का विचार करना चाहिये ॥ २५८ ॥

वरस्य जन्मना सार्द्धं नाम वध्वा विचिंतयेत् ।
नतु नाम्नावरस्यात्र अंगनाजन्म चिंतयेत् ॥ २५९ ॥

वर की जन्म राशि के साथ स्त्री की नामराशि से विचार करना चाहिये और स्त्री की जन्म राशि के साथ वर (पुरुष) की नाम राशि से मेलापक का विचार नहीं करना चाहिये ॥ २५९ ॥

शार्ङ्गधरः—
विवाहघटनं चैव लग्नजं ग्रहजं बलम् ।
नामभिश्चिंतयेत्सर्वं जन्म न ज्ञायते यदा ॥ २६० ॥

आचार्य शार्ङ्गधर जी ने बताया है कि विवाह मेलापक लग्न, ग्रह जन्म बल का चिन्तन जन्म राशि दोनों की अज्ञात होने पर नाम की राशि से ही करना चाहिये ॥ २६० ॥

दीपिकायाम्—
जन्म न ज्ञायते येषां तेषां नाम्नैव गण्यते ।
चक्रेऽवकहडे भांशे तन्नाडी कैश्चिदग्निभात् ॥ २६१ ॥

दीपिका में बताया है कि जिनकी जन्म राशि अज्ञात होती है तो उनकी नाम राशि से गणना करनी चाहिये । ३६० अंश के अवकहडा चक्र में किसी किसी आचार्य ने कृत्तिका से नाडी की गणना करना कहा है ॥ २६१ ॥

नामराशि का प्राधान्य

काकिण्यां वर्गशुद्धौ च वादे द्यूते स्वरोदये ।
मन्त्रे पुनर्भूवरणे नामराशेः प्रधानता ॥ २६२ ॥

काकिणी, वर्ग शुद्धि, विवाद, जुआ, स्वरोदय, मन्त्र और पुनर्भूवरण में नाम राशि की प्रधानता होती है ॥ २६२ ॥

नामान्तर से विचार

नृसिंहः—
नाचवर्णोद्भवानां च स्त्रीपुंसोर्वैरिभे गणे ।
नामान्तरेण तत्कार्यं विवाहादौ विचक्षणैः ॥ २६३ ॥

आचार्य नृसिंह ने बताया है कि नीच जाति में उत्पन्न स्त्री पुरुष के गण विचार में शत्रुता प्राप्त हो तो नामान्तर से विवाहादि में विचार करना चाहिये ॥२६३॥

भारतीय परम्परानुसार जब कि वर कन्या के गुण दोषादि को अच्छी रीति से जानने के पश्चात् उभय पक्ष के सज्जन लोग दोनों की कुण्डली लेकर किसी ज्योतिषी के समीप पहुँच कर उनकी कुण्डलियों का शुभ दिन में स्थिर सन्तति, सुख, सौभाग्यादि लाभ के निमित्त विचार करवाते हैं उसे मेलापक नाम से पुकारा जाता है। अतः आगे उसी का विचार कूटादि योगवश किया जा रहा है।

मेरी दृष्टि में ये किसी देश में इनसे अल्प प्रचलित होते होंगे। वर्तमान में सर्वत्र आठ ही प्रकार के कूटों से विचार दृष्टिगोचर होता है। इस लिये प्रथम उन कूटों की संख्या को पटलसार के वाक्यों से बताते हैं।

समस्त देशों में प्रसिद्ध ८ कूटों के नाम व गुण संख्या

[1]पटलसारे—

वर्णं च वश्यं च मिथश्च तारा योनिश्च मैत्री खगयोर्गुणश्च।
भमेलको नाडिकशुद्धिरेते यथोत्तरं स्युर्बलिनोऽष्टभेदाः॥ २६४॥

पटलसार में बताया है कि १ वर्ण, २ वश्य, ३ तारा, ४ योनि, ५ ग्रह मैत्री, ६ गण, ७ भकूट और ८ नाडी ये आठ कूटों के नाम से प्रसिद्ध हैं। प्रत्येक कूट में उत्तरोत्तर एक एक गुण की वृद्धि होती है। जैसे वर्ण का १, वश्य का २, तारा का ३, योनि का ४ इस प्रकार आगे भी समझना चाहिये॥ २६४॥

विशेष—दैवज्ञमनोहर में स्पष्टता से है 'नाडी भेदे गुणा अष्टौ सप्त सद्राशिकूटके। षड्गुणा गणमैत्र्यां च सौहार्दे पञ्चखेटयोः। योनिमैत्र्यां च चत्वारस्त्रयस्तारावले गुणाः'॥ २६४॥

वर्णादि से कूट विधान

[2]गौतमः—

विप्राणां दश कूटं स्यात्क्षत्रियाणां तथाष्टकम्।
वैश्यानामथ षड्भेदं शूद्राणां च चतुष्टयम्॥ २६५॥

गौतमजी ने बताया है कि ब्राह्मण के लिये दस १० कूट, क्षत्रिय के लिये आठ ८, वैश्य के छै ६ और शूद्र के विवाह के लिए चार ४ कूटों का विचार करना चाहिये॥ २६५॥

दस कूटों के नाम

[3]वर्णो वश्यं नृदूरं च वल्लभत्वं च तारका।
योनिर्मित्रगणे राशिनाडिकेति क्रमाद्दश॥ २६६॥

---

१. ज्यो. नि. १४१ पृ.।
२. ज्यो. नि. १४१ पृ. ५ श्लो. अन्यमत के नाम से उद्धृत
३. ज्यो. नि. १४१ पृ. ६ श्लो.।

वर्ण १, वश्य २, नृदूर ३, वल्लभत्व ४, तारा ५, योनि ७, ग्रहमैत्री ७, गण ८, राशि ९ और नाडिका १० ये दस कूट होते हैं ।। २६६ ।।

विशेष

[1]तत्र दूरद्वयं हित्वा कूटं भेदाष्टकं भवेत् ।
तारादि षट्कं षडभेदं परं योनिचतुष्टयम् ।। २६७ ।।

उक्त दस कूटों में नृदूर व वल्लभत्व को छोड़कर प्रायः सर्वत्र ८ आठ कूटों का ही विचार होता है । तारादि ६ के ६ भेद और योनि के चार भेद होते हैं ।। २६७ ।।

विशेष—ग्रन्थान्तर में कहा है कि शुभ राशि कूट होने पर ८ कूटों का और अशुभ राशि कूट होने पर ९ कूटों का विचार करना चाहिये यथा 'वर्णश्च वश्यं वरदूरतारा योनिर्गणः खेटसुहृत्त्वमेव । राशिश्च नाडी नवभेदकं स्यादसद्भकूटे च विलोकनीयम्' (१४१ पृ० ज्यो० नि० ४ श्लो०) ।।

आठ कूट विचार में ३६ गुण होते हैं, क्योंकि वर्णादिको एकोत्तर वृद्धि से होने के नाते १–८ तक गिनने का सरल उपाय लीलावती में बताया है यथा 'सैकपदघ्न पदार्धं' से

$$\frac{(८+१)\times \cancel{८}^{४}}{\cancel{२}} = (८+१)४ = ९\times४ = ३६ ।$$

नवकूट में $\frac{(९+१)\times ९}{२} = \frac{१०\times ९}{२} = ५\times ९ = ४५$

दस में $\frac{(१०+१)\times १०}{२} = (१०+१)\times ५ = ११\times ५ = ५५$

तथा १८ अठारह में $\frac{(१८+१)\times १८}{२} = (१८+१)\times ९ = १९\times ९ = १७१$

गुण संख्या होती है ।

इन कूटों की आवश्यकता शास्त्रों में दोनों (वर कन्या) प्रतियोगियों की परस्पर में स्थिर प्रीति रहने के लिये ही देश या विप्रादि वर्ग वश ८।१०।९।१८ कूटों को आधारशिला मानकर की गई है ।। २६७ ।।

राशिवश शुभाशुभ फल

[2]स्वराशिसंख्या दम्पत्योर्वेदाप्तः शेषतः फलम् ।
उत्तमं स्याद्विशेषेल्पे मध्यं तुल्येधिकेऽधमम् ।। २६८ ।।

वर कन्या की राशिसंख्या को चार से भाग देने पर १ शेष में उत्तम, तुल्य में मध्यम और ३ शेष में अधमफल होता है ।। २६८ ।।

---

१. ज्यो. नि. १४१ पृ. ७ श्लो. ।
२. ज्यो. नि. १४१ पृ. १ श्लो. ।

अथ वर्णकूटम्

अब आगे उक्त आधारों में से प्रथम वर्ण के द्वारा प्रीति विचार को बताते हैं।

वर्णज्ञान

नारदः—

झषालिकर्कटा विप्रास्तदूर्ध्वा क्षत्रियादयः।
पुंस्त्रीराशौ समे श्रेष्ठं पुंसो हीने तथा शुभम्[1] ॥ २६९ ॥

ऋषि नारद ने कहा है कि मीन, वृश्चिक, कर्कराशि की ब्राह्मण संज्ञा और इनके आगे यानी ३, ३ राशियों की क्षत्रियादि संज्ञा होती है। पुरुष स्त्री समान वर्ण राशि के श्रेष्ठ तथा पुरुष से हीन वर्ग राशि स्त्री शुभ होती है ॥ २६९ ॥

प्रपञ्चसारे—

स्युः कर्कटो वृश्चिकमीनविप्रा नृपा हि सिहश्च धनुश्च मेषः।
तुला च कुम्भो मिथुनश्च वैश्याः कन्यावृषोथो मकरश्च शूद्राः ॥ २७० ॥

प्रपञ्चसार में कहा है कि कर्क, वृश्चिक, मीन राशि का विप्र वर्ण, सिंह, धनु, मेष का क्षत्रिय, तुला, कुम्भ, मिथुन का वैश्य, कन्या, मकर, वृष का शूद्र वर्ण होता है ॥ २७० ॥

अन्यः—

कर्कालिमीना विप्राः स्युः नृपाः सिंहाजधन्विनः।
कन्यानक्रवृषा वैश्या शूद्रा युग्मतुलाघटाः ॥ २७१ ॥

ग्रन्थान्तर में वर्णित है कि कर्क, वृश्चिक, मीन का ब्राह्मण, सिंह, धनु, मेष का क्षत्रिय, कन्या, मकर, वृष का वैश्य और मिथुन, तुला, कुम्भ का शूद्र वर्ण होता है ॥ २७१ ॥

स्पष्टार्थ वर्णचक्रम्

राशि	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
वर्ण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	ब्राह्मण

विशेष—प्रपञ्चसार में वैश्य व शूद्र संज्ञक राशियों में विपरीतता है ॥ २७१ ॥

चारों वर्ण के अधिप ग्रह

केशवः—

[2]षट्कर्मणां सितदेवदैत्यौ राजन्यकस्याधिपती कुजार्कौ।
विट्शूद्रयोश्चन्द्रबुधौ शनिश्च संकीर्णपः स्त्रीनृषु वर्णमैत्री ॥ २७२ ॥

---

१. मु० चि० ६ वृ० २२ श्लो० पी० टी० ८ 'पुंवर्षराशी' स्त्रीराशी यह पठान्तर है। क २. ज्यो० नि० १४१ पृ० ३२ श्लो० 'सख्यं ही' पाठान्तर है।
२. वि० वृ० ३ अ० १९ श्लो०।

आचार्य केशव ने बताया है ब्राह्मण वर्ण के स्वामी शुक्र, गुरु, क्षत्रिय के मंगल, सूर्य, वैश्य व शूद्र के चन्द्रमा, बुध और संकीर्ण जाति का स्वामी शनि होता है ।।२७२।।

वर्ण वश उत्तमप्रीति ज्ञान

वरं वर्णाधिके प्रीतिरुत्तमा स्त्रीवरानुगाः ।
समवर्णे मिथः सौख्यं हीने स्नेहो न जायते ।। २७३ ।।

मेलापक में पुरुष वर्ण उत्तम होने पर स्त्री पुरुषों में उत्तम प्रेम और स्त्री पुरुष की आज्ञा में रहने वाली, मध्यम अर्थात् समान वर्ण का होने से दोनों में प्रीति का अभाव और सुख की हीनता होती है ।। २७३ ।।

उत्तम वर्ण स्त्री का निषेध

[1]वर्णश्रेष्ठा तु या नारी वर्णहीनस्तु यः पुमान् ।
विवाहं नैव कुर्वीत तस्या भर्ता न जीवति ।। २७४ ।।

जिस मेलापक में श्रेष्ठ वर्ण की स्त्री व हीन वर्ग का वर प्राप्त हो तो परिणय नहीं करना चाहिये, क्योंकि इसमें स्त्री के पति का विनाश होता है ।। २७४ ।।

विशेष—पीयूषधारा में वर्ण ज्येष्ठा 'विवाहं यदि कुर्वीत' यह पाठान्तर है ।।२७४।।

यदि जीवति भर्ता च गर्भपातं विदेशगः ।। २७५ ।।

यदि पति जीता है तो विदेश में जाने पर गर्भपात होता है ।। २७५ ।।

वर्ण द्वारा गुण श्रेष्ठादि ज्ञान

एकवर्णो भवेच्छ्रेष्ठो मध्यमो विप्रक्षत्रियो ।
अधमो विप्रवैश्यो च विप्रशूद्रो विवर्जयेत् ।। २७६ ।।

दोनों (वर. कन्या) का समान वर्ण होने पर उत्तम फल, विप्र, क्षत्रिय होने पर मध्यम, विप्र वैश्य होने पर अधम और ब्राह्मण शूद्र वर्ण होने पर सदा त्यागना चाहिये ।। २७६ ।।

वर्ण द्वारा गुण संख्या ज्ञान

दैवज्ञमनोहरे —
[2]एको गुणः सदृग्वर्णे तथा वर्णोत्तमे वरे ।
हीनवर्णे वरे शून्यं केप्याहुः सदृशे दलम् ।। २७७ ।।

दैवज्ञ मनोहर में बताया है कि वर कन्या के समान वर्ण व वर के उच्चस्तरीय वर्ण होने पर एक गुण और वर के हीन वर्ण होने पर शून्य गुण होता है । किसी किसी के मत में तुल्य वर्ण होने पर आधा गुण होता है ।। २७७ ।।

---

१. मु० चि० ६ प्र० २२ श्लो० पी० टी० में 'वर्ण ज्येष्ठा' यह पा० ।
२. मु० चि० ६ प्र० २२ श्लो० पी० टी० तथा ज्यो० नि० १४७ पृ० ।

[1]मार्तण्डोपि—

भूवर्णैक्यवरोत्तमे इति।

मुहूर्त मार्तण्ड में भी कहा है कि वर कन्या के वर्ण की समानता होने पर और वर के उत्तम वर्ण होने पर एक गुण होता है।

अथ हीन परिहारः

विवाहपटले—

हीनवर्णो यदा राशी
राशीशो वर्ण उत्तमः।
तदा राशीश्वरो ग्राह्य-
स्तद्राशिं नैव चिन्तयेत् ॥२७८॥

वर्णगुणज्ञान चक्र

●	ब्रा.	क्ष.	वै.	शू.
ब्राह्मण	१	०	०	०
क्षत्रिय	१	१	०	०
वैश्य	१	१	१	०
शूद्र	१	१	१	१

यदि वर की राशि का वर्ण कन्या के राशि वर्ण से हीन हो परन्तु राशि का स्वामी उत्तम वर्ण हो तो वर्ग मिलान हो जाता है अर्थात् राशि के वर्ण वश जो अशुभता होती उसका विनाश होता है ॥ २७८ ॥

अथ वश्यकूटम्

अब आगे पूर्वोक्त कूटों में से द्वितीय वश्य नामक कूट के गुणादि ज्ञान को बताते हैं।

राशि आकृति ज्ञान

तत्रादौ राशिस्वरूपं वराहः—

आचार्य वराह मिहिर ने अपने बृहज्जातक ग्रन्थ में बताया है कि—

[2]मत्स्यौ घटी नृमिथुनं सगदं सवीणं
चापी नरोश्वजघनमकरो मृगास्यः।
तौली ससस्यदहना प्लवगाश्च कन्या
शेषाः स्वनामसदृशाः खचौराश्च सर्वे ॥ २७९ ॥

मीन राशि—परस्पर मुख पुच्छ मिलित दो मछलियों के समान है।

कुम्भ राशि—कन्धे पर घड़ा लिये हुए पुरुष के तुल्य है।

मिथुन राशि—स्त्री पुरुष का जोड़ा, स्त्री वीणा से युक्त तथा पुरुष गदा से युक्त है।

धनु राशि—हाथ में धनुष लिये घोड़े की सी जाँघ वाला पुरुष है।

मकर राशि—हिरन के तुल्य आनन वाले मगर के समान है।

कन्या राशि—हाथ में अन्न और अग्नि लेकर नाव पर बैठी हुई कन्या है।

शेष राशि अपने नाम के सदृश हैं तथा समस्त राशियाँ आकाश में रहने वाली हैं ॥ २७९ ॥

---

१. ४ प्र० १० श्लो०।   २. बृ० वा० १ अ० ५ श्लो०।

वश्यकूट का ज्ञान

[1]सर्वे वश्या नृजातेःस्युर्भक्ष्यास्तेषां जलोद्भवाः ।
सिंहं हित्वाथ सिंहस्य वश्यास्ते वृश्चिकं विना ॥ २८० ॥

पुरुष राशि के वश में समस्त राशियाँ होती हैं। सिंह को छोड़कर और जल से उत्पन्न उनके भक्ष्य होते हैं तथा वृश्चिक को छोड़कर सिंह के सब वशीभूत होते हैं ॥ २८० ॥

श्रीपतिः—

सिंहं हित्वा मानुषाणां विधेया भक्ष्यास्तेषां तोयजाता हरेश्च ।
वश्यास्त्यक्त्वा वृश्चिकं चैवमन्यद्वश्यावश्यं विद्धि लोकप्रसिद्धम् ॥ २८१ ॥

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि सिंह को त्याग कर नर राशि के वश में समस्त राशियाँ और जलोद्भव राशियाँ भक्ष्य एवं सिंह राशि के वशीभूत वृश्चिक को छोड़कर समस्त राशियाँ होती हैं। अन्य वश्यावश्य लोक में प्रसिद्ध जो हो उसे समझना चाहिये ॥ २८१ ॥

वसिष्ठः —

[2]वश्यास्त्यक्त्वा राशयोऽन्ये नृभानां सिंहं तस्याप्येकमन्ये विधेयाः ।
कीटं त्यक्त्वा लोकतोऽन्यत्प्रसिद्धं वश्यावश्यं नैव तोयालयंश्च ॥ २८२ ॥

पुरुष राशि के वश में सिंह का त्याग कर अन्य राशियाँ व सिंह राशि के वशी भूत वृश्चिक को छोड़ कर समस्त राशियाँ होती हैं। अन्य जानकारी अर्थात् वर कन्या के पारस्परिक सम्बन्धों का ज्ञान संसार की रीति से जानना चाहिये। जलचर राशियाँ वृश्चिक के वश में नहीं होती हैं ॥ २८२ ॥

राशिवश वश्य ज्ञान

बृहस्पतिः—

मेषस्य वश्यो सिंहालिः कर्कि वश्योः वृषस्य तु ।
यमस्य कन्या वश्यं स्यात्कर्किणश्चापवृश्चिकौ ॥ ८३ ॥
तुला सिंहस्य वश्यं स्यात्पाथोनेयस्य मत्स्यभौ ।
मृगकन्ये तु जूकस्य कर्किःस्याद्वृश्चिकस्य तु ॥ २८४ ॥
मीनो चापस्य वश्यं स्यात्क्रियकुम्भौ मृगस्य तु ।
मेषःकुम्भस्य वश्यं स्यान्मकरो मीनवश्यवत् ॥ २८५ ॥

आचार्य बृहस्पति ने बताया है कि मेष राशि के वश में सिंह, वृश्चिक, वृष के वश में कर्क, मिथुन के वश में कन्या, कर्क के वश में धनु, वृश्चिक, सिंह के में तुला, कन्या में मीन, तुला के मकर, कन्या, वृश्चिक के में कर्क, धनु के में मीन, मकर के वश में मेष

---

१. ज्यो० नि० १४१ पृ० तथा 'भक्ष्यस्थाशु जलो' पाठान्तर है।
२. व० स० ३२ अ० २०१ श्लो०।

कुम्भ, कुम्भ के में मेष राशि और मीन राशि के वशीभूत मकर राशि होती है ॥ २८३–२८५ ॥

प्रकारान्तर से वश्यावश्य

अन्य:—

[1]चापाजौ वृषभेण कुम्भमिथुनौ कर्केण मेषस्त्रिया
शैलाग्नी सविषेण कार्मुकहरी नक्रेण नित्यद्विषौ ।
तद्वत्कुम्भतुले झषेण वशगाः सिंहं विनान्ये नृणां
तद्भोज्यं जलचारिणो हरिवशाः सर्वे विना वृश्चिकम् ॥ २८६ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि वृष राशि से धनु, मेष की, कर्क से कुम्भ, मिथुन की, कन्या से मेष की, वृश्चिक से तुला, मिथुन की, मकर से धनु, सिंह की, मीन से कुम्भ तुला की नित्य शत्रुता मानी गई है। मनुष्य संज्ञक राशि के वश में सिंह को छोड़ कर समस्त राशियाँ होती हैं और उनकी भोज्य राशियाँ जलचर राशि होती हैं। वृश्चिक का त्याग करके सिंह राशि के वशीभूत अवशिष्ट राशियाँ होती हैं ॥ २८६ ॥

गुण विभाग ज्ञान

दैवज्ञमनोहरे —

[2]सख्यं वैरं च भक्ष्यं च संख्यामाहुस्त्रिधा पुनः ।
वैरभक्ष्ये गुणाभावो द्वयोः सख्यं गुणद्वयम् ॥ २८७ ॥
वश्यवैरे गुणस्त्वेको वश्यभक्ष्ये गुणार्द्धकः ॥ २८८ ॥

दैवज्ञ मनोहर में बताया है कि मित्रता, शत्रुता और भक्ष्यता ये तीन विभाग होते है। इन्हीं से गुण संख्या का ज्ञान किया जाता है। जैसे वर कन्या राशि में शत्रुता या भक्ष्यता होने पर गुण का अभाव, दोनों में मित्रता होने से दो गुण की प्राप्ति होती है। एक वश्य व एक शत्रु होने पर एक गुण एवं वश्य, भक्ष्य होने पर आधा गुण होता है ॥ २८७–२८८ ॥

मुहूर्तमार्तण्डेपि —

अथ वशभक्षेद्धं द्वयोर्मित्रयोः खं वैराशनके धरारिवशके इति ।

मुहूर्तमार्तण्ड नामक ग्रन्थ में बताया है कि वश्य भक्ष्य में आधा गुण जैसे नृ जाति राशियों की जलचर राशियाँ वश में व भोज्य होती हैं अतः आधा गुण होता है। दोनों में मित्रता होने पर दो २ गुण शत्रु, भक्षता में शून्य गुण, शत्रु वश्यता में एक गुण होता हो तो है ॥

---

१. वि० वृ० ३ अ० १० श्लो० ।

२. मु० चि० ६ प्र० २३ श्लो० पी० टी० तथा पुनः के स्थान पर 'बुधाः' 'गुणार्धकः' पर 'गुणोऽधिक' पा० है ।

सिद्धान्त रूपा गति कथन

विवाहवृन्दावने[1] —

स्वभावमैत्री सखिता स्वपत्योर्वशित्वमन्योन्यभयोनिशुद्धिः ।
परस्परः पूर्वगमे गवेष्यो हस्तो त्रिवर्गी युगपद्युतिश्चेत् ॥ २८९ ॥

विवाह वृन्दावन में कहा है कि स्वभाव मैत्र्यादिक चारों के मध्य पूर्व पूर्व के अभाव में पर का अन्वेषण करना चाहिये । प्रथम सम सप्तकादि स्वभाव मैत्री का विचार, इसके अभाव में, राशिस्वामियों की मित्रता का विचार पुनः इसके न मिलने पर राशियों की वश्यता और इसके अभाव में दोनों की नक्षत्र शुद्धि अर्थात् नक्षत्र वश योनि का ज्ञान करके शत्रुता का अभाव देखना चाहिये । यदि चारों प्रकार से शुभता प्राप्त हो तो हाथ में धर्म, अर्थ, काम की सिद्धि होती है ॥ २८९ ॥

टिप्पणी—यहाँ पर नृजाति, जलचरादि संज्ञक राशियों का वर्णन न होने से पाठकों की सुविधा के लिये बताया जा रहा है । मुहूर्तगणपति में कहा है कि 'युग्मं कुम्भस्तुला कन्या प्राग्दलं धनुषोद्विपात् । परार्धं धनुषश्चैव पूर्वार्धं मकरस्य च । केशरी वृषभाख्यश्च मेषश्चैते चतुष्पदः । नक्रोत्तरदलं मीनो जलचारी प्रकीर्तितः । कर्कः कीटकसंज्ञश्च वृश्चिकस्तु सरीसृपः' (१५ प्र० २३–२५) ॥ २८९ ॥

वश्यगुणाः

चतुष्पाद	२	॥	१	०	०	२
मानव	॥	२	०	०	०	०
जलचर	१	०	२	२	२	२
वनचर	०	०	२	२	२	०
कीट	१	०	१	०	०	२

स्पष्टार्थ वश्यावश्य चक्र

संज्ञा	द्विपद	चतुष्पद	जलचर	कीट	सर्प
राशि	कुम्भ, मिथुन, कन्या तुला, धनु का पूर्वार्ध	सिंह वृष, मेष धनु का परार्ध मकर का पूर्वार्ध	मकर का उत्तरार्ध मीन	कर्क	वृश्चिक

१. अ० ३ श्लो० १४ ।

स्पष्टार्थ चक्र

संज्ञा	द्विपद	चतुष्पद	जलचर	वनचर	कीट
राशि	मिथुन, धनु, कुम्भ, कन्या, तुला	मेष, वृष	कर्क, मीन, मकर	सिंह	वृश्चिक

अथ ताराकूटम्

अब आगे तृतीय ताराकूट की शुद्धि को बताते हैं।

तारा ज्ञान

[1]वरभाद्गणयेद्यावत्कन्यर्क्षे कन्यकादपि।
वरभं नवहृच्छेषं तारा सन्ति परस्परम् ॥ २९० ॥

ज्योतिर्निबन्ध में बताया है कि वर के नक्षत्र से कन्या के नक्षत्र तक जो संख्या प्राप्त हो और कन्या के नक्षत्र से वर के नक्षत्र तक गिनने पर जो हो उसमें ९ का भाग देने पर जो शेष दोनों का होता है वह पारस्परिक तारा होती है ॥ २९० ॥

नारदः—

[2]स्त्रीभमारभ्य गणने नवपर्यायतः क्रमात्।
जन्मत्रिपंचसप्तस्थं पुंभस्याद्वरनाशनम् ॥ २९१ ॥
पुंभमारभ्य गणने स्त्रीभं जन्मादिके स्थले।
स्त्रीविनाशो भवेत्तस्माद्दिनकूटं विवर्जयेत् ॥ २९२ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि स्त्री के नक्षत्र से वर के नक्षत्र तक ९, ९ के अन्तर से गिनने पर यदि वर के नक्षत्र की संख्या १, ३, ५, ७ हो तो वर का विनाश होता है। और वर के नक्षत्र से स्त्री के नक्षत्र को पूर्वोक्त रीति से गणना करने पर १, ३, ५, ७ संख्या मिले तो स्त्री का विनाश होता है। इस लिये उक्त दिन कूट का त्याग करना चाहिये ॥ २९१–२९२ ॥

शार्ङ्गीये—

नरर्क्षाद्गणयेद्यावत्कन्यर्क्षे कन्यभादपि।
वरभं नवहृच्छेषास्तारा: सन्ति परस्परम् ॥ २९३ ॥
त्यक्त्वा त्रिपंचसप्ताख्याः शेषोद्वाहे मिथः शुभाः ॥ २९४ ॥

शार्ङ्गीय ग्रन्थ में बताया है कि वर के नक्षत्र से कन्या के नक्षत्र तक गिनने पर और कन्या के नक्षत्र से वर के नक्षत्र तक गिनने पर जो संख्या हो उसमें ९ का भाग देने पर शेष दोनों की तारा होती हैं। इनमें ३, ५, ७ संख्यक तारा अशुभ व शेष विवाह में शुभ होती हैं ॥ २९३–२९४ ॥

---

१. ज्यो० नि० १४२ पृ० १२ श्लो०। २. मु० चि० ६ प्र० २४ श्लो० पी० टी०।

[1]कश्यप:—

गणयेत्कन्यका धिष्ण्या[2]दावृत्यावरजन्मभम् ।
जन्मत्रिपंचसप्तर्क्षे हित्वान्यर्क्षे शुभप्रदः ॥ २९५ ॥

केशवार्क:—

[3]भीरुभादचलपंचतृतीयाः शोकवैरविपदे वरतारा ॥ २९६ ॥

आचार्य कश्यप व केशवार्क ने बताया है कि कन्यका नक्षत्र से वर के नक्षत्र को ९ की आवृत्ति से गिनने पर ७।५।३ संख्यक तारा हों तो शोक, शत्रुता और विपत्ति दाता तारा वर की होती है ॥ २९५–२९६ ॥

तारा गुण ज्ञान

दैवज्ञमनोहरे—

[4]एकतो लभ्यते तारा शुभाश्चैवाशुभान्यतः ।
तदा सार्द्धं गुणाश्चैव तारा शुद्धया मिथस्त्रयः ॥ २९७ ॥
उभयोर्न शुभस्तारा तदा शून्यं समादिशेत् ॥ २९८ ॥

तारागुणाः

तारा	१	२	३	४	५	६	७	८	५
१	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
२	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
३	१॥	१॥	०	१॥	२	१॥	०	१॥	१॥
४	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
५	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
६	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
७	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
८	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	१॥
९	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३

दैवज्ञमनोहर नामक ग्रंथ में कहा है कि यदि वर कन्या में से एक की शुभ तारा और दूसरे की अशुभ तारा होने पर १½ गुण, दोनों की शुभ तारा होने पर ३ गुण और दोनों की अशुभ तारा उक्त रीति से होने पर शून्य गुण (गुणाभाव) होता है ॥ २९७–२९८ ॥

---

१. मु० चिं० ६ प्र० २४ श्लो० पी० टी० ।
२. ष्ण्याद्यावत्यव० वृ० दै० ।
३. मु० चिं० ६ प्र० २४ श्लो० पी० टी० तथा वि० वृ० ३ अ० २ श्लो० ।
४. मु० चिं० ६ प्र० १४ श्लो० पी० टी० ।

[1]मार्तण्डेपि—

अथोसद्वयोरग्नयः मिश्रे तच्छकलम् इति ।

मुहूर्त मार्तण्ड ग्रंथ में कहा है कि दोनों (वर-कन्या) की शुभ तारा होने पर तीन गुण और मिश्रित होने पर अर्थात् एक की शुभ और दूसरे की अशुभ होने पर १½ गुण होता है ॥

अथ योनिकूटम्

अब आगे चतुर्थ योनिकूट को रामाचार्य के वाक्य से बताते हैं ।

[2]रामाचार्यः—

अश्विन्यांबुपयोर्हयो निगदितः स्वात्यर्कयोः कासरः
सिंहो वस्वजपाद्भयोः समुदितो याम्यं तयोः कुञ्जरः ।
मेषो देवपुरोहितानलभयोः कर्णाम्बुनोर्वानरः
स्याद्वैश्वाभिजितोस्तथैव नकुलश्चन्द्राब्जयोन्योरहिः ॥ २९९ ॥
ज्येष्ठामैत्रभयोःकुरंग उदितो मूलार्द्रयोः श्वा तथा
मार्जारोदितिसार्पयोरथ मघायोन्योस्तथैवोंदुरुः ।
व्याघ्रो द्वीशभचित्रयोरपि च गौरर्यम्णवुध्न्यर्क्षयो-
र्योनिः पादगयोः परस्परमहावैरं विवाहे त्यजेत् ॥ ३०० ॥

योनिगुणाः

	अ.	ग.	मे.	स.	श्वा.	मा.	मू.	गौ.	भैं.	व्या.	ह.	वा.	न.	सिं.
अश्व	४	२	२	३	२	२	२	१	०	१	३	३	२	१
गज	२	४	३	३	२	२	२	२	३	१	२	३	२	०
मेष	२	३	४	२	१	२	१	३	३	१	२	०	३	१
सर्प	३	३	२	४	२	१	१	१	१	२	२	२	०	२
श्वान	२	२	१	२	४	२	१	२	२	१	०	२	१	१
मार्जार	२	२	२	२	२	४	०	२	२	१	३	३	२	२
मूषक	२	२	१	१	१	०	४	२	२	२	२	२	२	१
गौ	१	२	३	२	२	२	१	४	३	०	३	२	२	१
भैंस	१	३	३	२	२	२	२	३	४	१	२	२	२	३
व्याघ्र	१	२	१	१	१	१	२	०	१	४	१	१	२	२
हरिण	३	२	२	२	२	३	२	३	२	१	४	२	२	०
वानर	३	३	०	२	२	३	२	२	२	१	२	४	३	२
नकुल	२	३	३	९	०	२	१	२	२	२	२	३	४	२
सिंह	१	०	१	२	२	१	१	१	३	२	२	२	२	४

१. मु० मा० ४ प्र० १० श्लो० । २. मु० चिं० ६ प्र० २५-२६ श्लो० ।

मुहूर्त चिन्तामणि में कहा है कि अश्विनी, शततारका नक्षत्र की अश्वयोनि, स्वाती हस्त की महिष, धनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपदा की सिंह, भरणी, रेवती की हाथी, पुष्य, कृत्तिका की मेष, श्रवण, पूर्वाषाढ की वानर, उत्तराषाढ, अभिजित् की नकुल, रोहिणी, मृगशिरा की सर्प, ज्येष्ठा, अनुराधा की हिरन, मूल, आर्द्रा की कूकुर, पुनर्वसु, आश्लेषा की मार्जार, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तरा भाद्रपदा की गाय योनि होती है। श्लोक के दो चरणों में परस्पर महावैर होना भी वर्णित है। यह विवाह में त्याज्य होता है ॥ २९९–३०० ॥

परिहारवाक्यम् –

अब आगे अत्रि ऋषि द्वारा कथित परिहार वचन को बताते हैं।

अत्रि:—

[1]एकयोनिषु सम्पत्त्यै दम्पत्योः सङ्गमः सदा।
भिन्नयोनिषु मध्यस्यादरिभावो न चैतयोः ॥ ३०१ ॥

अत्रि ऋषि ने कहा है कि एक योनि में दम्पति सङ्गम सदा सम्पत्ति दाता, भिन्न योनि में मध्य, योनि न होने पर वैर होता है ॥ ३०१ ॥

[2]योनेरभावे नोद्वाहः स तु कार्यो वियोगदः।
राशिवश्यं च यद्यस्ति कारयेन्न तु दोषभाक् ॥ ३०२ ॥

योनि के अभाव में अर्थात् शुभ न होने पर विवाह नहीं करना, करने पर वियोग दाता होता है। अशुभ योनि होने पर भी राशि वश्यता होने पर करने से दोष की लब्धि नहीं होती है ॥ ३०२ ॥

[3]एकयोनिषु कलहो गजयोः सिंहयोः शुनोः।
महद्वैरस्य समता महिषस्य कपेस्तथा ॥ ३०३ ॥

गर्ग संहिता में बताया है कि एक योनि में हाथी सिंह कुक्कुर में कलह और अधिक शत्रुता महिष और वानर में होने पर समता होती है ॥ ३०३ ॥

[4]सद्भकूटे योनिवैरं मृत्युदं च परित्यजेत्।
तत्र चेद्ग्रहयोः सख्यं नातिदुष्टं विदुर्बुधाः ॥ ३०४ ॥

शुभ भकूट होने पर भी योनिवैर होने से मृत्युदाता होने से त्याग करना चाहिये। यदि राशि स्वामियों में मित्रता हो तो अधिक अशुभता नहीं होती ऐसा विद्वानों का कथन है ॥ ३०४ ॥

[5]योनिवैरं सदा त्याज्यं स्त्रीपुंसोर्भिन्नलिङ्गयोः।
एकलिङ्गजयोः प्रोक्तं मध्यमं नातिदोषदम् ॥ ३०५ ॥

---

१. मु० चि० ६ प्र० २६ श्लो० पी० टी०।
२. मु० चि० ६ प्र० २६ श्लो० पी० टी०।
३. ज्यो० नि० १४२ पृ० ७ श्लो०।
४. ज्यो० नि० १४२ पृ० ९ श्लो०।
५. ज्यो० नि० १४२ पृ० १२ श्लो०।

ज्योतिषप्रकाश नाम के ग्रन्थ में कहा है कि वर कन्या की भिन्न योनि होने पर शत्रुता हो तो उसका सदा त्याग करना और एक योनि में शत्रुता मध्य फलदाता होने के नाते अधिक दोष प्रद नहीं होती है ॥ ३०५ ॥

[1]सति सद्राशिकूटेपि योनिवैरं न दोषकृत् ।
यदि स्यादवले योनेः पुंसोर्योनिर्बलीयसी ॥ ३०६ ॥

शुभ राशिगत होने पर योनि वैर दोषदायी नहीं होता जब कि कन्या की योनि से बलिष्ठ योनि पुरुष की होती है ॥ ३०६ ॥

विशेष—योनि के गुण का विभाग 'महद्वैरे च स्वभावे च यथा क्रम' 'मैत्रे चैवाति मैत्रे च रवेन्दुद्वित्रिचतुर्गुणाः (मु० चि० ६ प्र० २५-२६ श्लो० पी० टी०) ॥ ३०६ ॥

अथग्रहमैत्री—

अब आगे पंचम ग्रह मैत्री विचार को बताते हैं ।

ग्रहों के नैसर्गिक मित्रामित्र ज्ञान

गणेशः—

[2]चन्द्रेज्यक्षितिजाः रवीन्दुतनयौ गुर्विन्दुसूर्याः क्रमात्
शुक्रार्कौ रविचन्द्रभूमितनयाः ज्ञार्कौ सितज्ञौ मताः ।
अर्कादेः सुहृदः समा अथ बुधः सर्वे च शुक्रार्कजौ
भौमाचार्ययमा यमः कुजगुरू पूज्याः परे वैरिणः ॥ ३०७ ॥

स्पष्टार्थ नैसर्गिक मैत्री चक्र

ग्रहाः	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	रा.	के.
मित्राणि	चं. गु. मं.	सू. बु.	गु. सू. चं.	शु. सू.	सू. चं. मं.	बु. श.	शु. बु.	शु. श.	सू. चं. मं.
समाः	बु.	मं. गु. शु श.	शु. श.	मं. गु. श.	श.	मं, गु.	गु.	बु. गु.	बु. गु.
शत्रवः	शु. श.	×	बु.	चं.	बु. शु.	सू. चं.	सू. चं. मं.	सू. चं. मं.	श. शु.

जातकालङ्कार में कहा है कि सूर्य के चन्द्रमा, गुरु, भौम मित्र, बुध सम, शुक्र, शनि शत्रु होते हैं । चन्द्रमा के सूर्य बुध मित्र और अवशिष्ट ग्रह सम होते हैं । भौम के

१. ज्यो० नि० १४२ पृ० ११ श्लो० । २. जातका० १ अ० १० श्लो० ।

गुरु, सूर्य, चन्द्रमा मित्र, शुक्र, शनि सम और बुध शत्रु होता है। बुध के शुक्र, सूर्य मित्र, मंगल, गुरु, शनि सम, चन्द्रमा शत्रु होता है। गुरु के सूर्य, चन्द्रमा भौम मित्र, शनि सम व बुध शुक्र शत्रु होते हैं। शुक्र के बुध शनि मित्र, भौम, गुरु सम, सूर्य, चन्द्रमा शत्रु होते हैं। शनि के शुक्र बुध मित्र, गुरु सम, सूर्य, चन्द्रमा, भौम शत्रु होते हैं ॥३०७॥

विशेष—ग्रन्थान्तर में राहु केतु के मित्रादि प्राप्त होते हैं 'रविचन्द्रकुजा राहोः रिपवः परिकीर्तिताः। समौ बुधगुरू ज्ञेयौ मित्रे शुक्रशनैश्चरौ ॥ केतोः शनिसितौ शत्रू समौ गुरुबुधौ स्मृतौ। रविचन्द्रकुजास्तस्य मित्राणि सम्भवन्ति हि' ॥ ३०७ ॥

तात्कालिक मैत्री ज्ञान

केशवः—

[1]अपार्श्वकेन्द्रद्वयगाः प्रसूतौ तत्कालमित्राणि मिथः खपन्था।
न्यूनामपि स्त्री नृषु भृत्यराज्ञां तत्कालसंख्यं विशिनष्टि मैत्रीम् ॥३०८॥

विवाहवृन्दावन में बताया है कि ग्रह जिस भाव में कुण्डली में हो उससे दोनों तरफ केन्द्रों के मध्य स्थान में अर्थात् १०।११।१२।२।३।४ में रहने वाले ग्रह मित्र होते हैं और अवशिष्ट स्थान में रहने वाले शत्रु होते हैं। सम्पूर्ण स्त्री, पुरुष, दास व राजा के ग्रहवश तात्कालिक मैत्री का विचार करना चाहिये, क्योंकि तात्कालिक नैसर्गिक मैत्री से पञ्चधा मैत्री विशेष होती है ॥ ३०८ ॥

विशेष

नारदः—

नैसर्गिकाणि मित्राणि चिन्तनीयानि यत्नतः।
न च तत्कालमित्राणि वश्यराशिमतः शृणु ॥ ३०९ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि यत्न से नैसर्गिक मित्रता का चिन्तन करना चाहिये एवं तात्कालिक मैत्री का नहीं करना चाहिये अब वश्य राशियों का श्रवण करो ॥३०९॥

वसिष्ठः—

[2]अन्योन्यमित्रं शस्तं स्यात्सममित्रं तु मध्यमम्।
उदासीनं कनिष्ठं स्यान्मृतिदं शात्रवं स्मृतम् ॥ ३१० ॥

नैसर्गिक तात्कालिक मित्रता शुभ, सममित्र मध्यम, शत्रु, मित्र अधम और शत्रु, शत्रु होने पर मरण दायक होता है ॥ ३१० ॥

[3]शत्रुमित्रं च विज्ञेयं दम्पत्योः कलहप्रदम्।
अन्योन्यं समशत्रुत्वं दम्पत्योर्निधनप्रदम् ॥ ३११ ॥

शत्रु मित्र होने पर दम्पति में कलह और सम शत्रु होने पर पारस्परिक दोनों का मरण होने की सम्भावना होती है ॥ ३११ ॥

---

१. वि० वृ० ० अ० १५ श्लो०। २. मु० चिं० ६ प्र० २७–२८ श्लो० पी० टी०।
३. मु० चिं० ६ प्र० २७–२८ श्लो० पी० टी०।

विशेष—'दम्पत्योर्विरहप्रदम्' यह पी० टी० में पाठ है ॥ ३११ ॥

गुण विभाग ज्ञान

देवज्ञमनोहरे—

[1]ग्रहमैत्रं सप्तविधं गुणाः पञ्च प्रकीर्तिताः ।
तत्रैकाधिपतित्वे च मित्रत्वे गुणपञ्चकम् ॥ ३१२ ॥
[2]चत्वारः सममित्रत्वे द्वयोः साम्ये त्रयो गुणाः ।
मित्रवैरे गुणाश्चैकः समवैरे गुणार्द्धकम् ॥ ३१३ ॥
[3]परस्परं खेटवैरे गुणं शून्यं विनिर्दिशेत् ।
असद्भ सममित्रादौ व्येका ग्राह्या यथोदिता ॥ ३१४ ॥

दैवज्ञ मनोहर में कहा है कि ग्रह मित्रता ७ प्रकार की होती है और गुण संख्या ५ है । जिन वर कन्या की राशियों के स्वामी एक व अधिपों में मित्रता होने पर ५ गुण होते हैं । सम मित्र में ४ गुण, दोनों की समानता होने पर अर्थात् सम होने पर ३ गुण, मित्र, शत्रु, होने पर १ गुण, सम वैर में ½ गुण, परस्पर ग्रहों में शत्रुता होने पर शून्य गुण होता है । अशुभ राशि में सम मित्रता होने पर ३ गुण होते हैं ॥ ३१२–३१४ ॥

पुनः ग्रन्थान्तर से गुण ज्ञान

मार्तण्डे—

[4]एकेशोभयमित्रयोः शरमिता त्वर्द्धं समारातिके ।
चत्वारः सममित्रके रिपुहिते भूमिव्युदासे त्रयः ॥ ३१५ ॥

वधूगुणाः	वरगुणाः						
	र	चं	मं	बु	गु	शु	श
र	५	५	५	३	५	०	०
चं	५	५	४	१	४	॥	॥
मं	५	४	५	॥	५	३	॥
बु	३	१	॥	५	॥	५	४
बृ	५	४	५	॥	५	॥	३
शु	५	॥	३	५	॥	५	५
श	०	॥	॥	४	३	५	५

१. मु० चि० ६ प्र० २७–२८ श्लो० पी० टी० ।
२. मु० चि० ६ प्र० २७–२८ श्लो० पी० टी० ।
३. मु० चि० ६ प्र० २७–२८ श्लो० पी० टी० । ४. मु० मा० ४ प्र० ११३ श्लो० ।

मुहूर्तमार्तण्ड में बताया है कि जब दोनों का राशि स्वामी एक वा परस्पर में मित्र होता है तो ५ गुण, सम शत्रु में ½ गुण, सम मित्र में ४ गुण शत्रु मित्र में एक १ गुण और दोनों में उदासीनता होने पर ३ गुण होते हैं ॥ ३१५ ॥

अस्यापवादः—

उक्त का अपवाद

वसिष्ठः—

[1]द्विर्द्वादशे वा नवपञ्चमे वा षट्काष्टके राक्षसयोषितो वा ।
एकाधिपत्ये भवनेशमैत्रैः शुभाय पाणिग्रहणं विधेयम् ॥ ३१६ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि द्वितीय-द्वादश वा नवम-पञ्चम वा ६।८ वर कन्या की राशि होने पर वा कन्या का राक्षस गण होने पर दोनों की राशियों के स्वामी एक होने पर या राशीश्वरों में मैत्री होने पर विवाह शुभ होता है ॥ ३१६ ॥

राजमार्तण्डः—

[2]भवेत्त्रिकोणे बहुपुत्रवित्तो द्विर्द्वादशे चार्थमुपैति कन्या ।
षट्काष्टके सौख्यफलं विधत्ते स्त्रीणां विवाहो ग्रहमैत्रिभावे ॥ ३१७ ॥

राजमार्तण्ड नाम के ग्रन्थ में बताया है कि जब वर कन्या की राशियों के स्वामियों में मित्रता मिलती है तो ५।९ में अधिक पुत्र व धन की प्राप्ति २।१२ में कन्या धनवती ६।८ में सुख की लब्धि होने से विवाह शुभ होता है ॥ ३१७ ॥

सप्तर्षिमते—

[3]नभोगारिभवं हरेत्सद्भकूटं विरुद्धं भकूटं हरेत्खेटमैत्री ।
न वर्णशुद्धिर्नगणो न योनिर्द्विर्दादशे चापि षडाष्टके वा ॥ ३१८ ॥
[4]वरेपि दूरेप्यथवा त्रिकोणे मैत्री यदा स्याच्छुभदो विवाहः ॥ ३१९ ॥

सप्तर्षि मत में कहा है कि ग्रह जन्य शत्रुता को शुभ भकूट नष्ट करता है और विपरीत भकूट का विनाश राशीश्वरों में मित्रता होने पर समाप्त होता है ।

ग्रन्थान्तर में बताया है कि जबकि वर कन्या के राशीश्वरों में मैत्री होती है तो वर्ण शुद्धि न होने पर तथा गण, योनि, ६।८।२।१२, व पाँच नौ पारस्परिक दोनों की राशि होने पर तथा वर की राशि दूर होने पर भी विवाह शुभ होता है ॥ ३१८–३१९ ॥

---

१. मु० चि० ६ प्र० ३२ श्लो० पी० टी० ।
२. मु० चि० ६ प्र० ३२ श्लो० पी० टी० ।
३. मु० चि० ६ प्र० ३३ श्लो० पी० टी० ।
४. वि० वृ० ३ अ० २ श्लो० पी० टी० ।

राशि मेलापक ज्ञान

केशवः —

[1]व्ययेन वित्तं न तपस्यपत्यं नायुर्द्विषत्वेन वधूवराणाम् ।
द्विर्दादशे पञ्चनवः षडष्टौ जन्मर्क्षयोः सख्यविधिर्न दृष्टः ॥ ३२० ॥

आचार्य केशव ने बताया है कि वर कन्या की २।१२ राशि होने पर मैत्री का अभाव होता है क्योंकि व्यय होने से धन का अभाव होता है। इसी प्रकार ९।५ राशि होने पर नवम तपः स्थान है और पंचम सन्तति अतः तपस्या में संतान का अभाव एवं ६।८ में ८ आयु स्थान व ६ शत्रु स्थान इसलिये शत्रु होने के नाते आयु का अभाव होता हैं। इसलिये २।१२, ५।९, ६।८ राशियाँ दूषित होती है ॥ ३२० ॥

मित्रता वश परिहार

शौनकः—

वर्गवैरं योनिवैरं गणवैरं नृदूरकम् ।
दुष्टकूटफलं सर्वं ग्रहमैत्रेण नश्यति ॥ ३२१ ॥

ऋषि शौनक ने बताया है कि जबकि वर कन्या के राशीश्वरों में मित्रता होती है तो वर्ग शत्रुता, योनिवैर, गणवैर, नृदूर और दुष्ट कूट का समस्त अशुभ फल नष्ट होता है ॥ ३२१ ॥

[2]यथेशयोर्मिथो भावो दम्पत्योस्तादृशो भवेत् ।
दुष्टकूटं शुभं मैत्र्यात्सद्भकूटेपि शस्यते ॥ ३२२ ॥

जैसा वर कन्या के राशीश्वरों में सम्बन्ध होता है वैसा ही दम्पत्ति में प्रेम होता है। ग्रहों के स्वामियों में मित्रता होने पर दुष्ट कूट शुभकूट में परिणत होता है ॥ ३२१–३२२ ॥

ज्योतिःप्रकाशे—

[3]राशीशौ सुहृदौ स्यातां जन्मकाले यदा तदा ।
ग्रहवैरेपि कर्तव्यं भकूटं मुनयो जगुः ॥ ३२३ ॥
ग्रहमैत्रे शुभे लब्धे राशिकूटं न चिन्तयेत् ॥ ३२४ ॥

ज्योतिः प्रकाश नामक ग्रन्थ में बताया है कि जबकि जन्मकालीन वर कन्या के राशीशों में मित्रता होती है तो ग्रहशत्रुता में भी भकूट का दोष नहीं होता है ऐसा ऋषियों का कहना है। शुभ ग्रह मित्रता की लब्धि होने पर राशि कूट का चिंतन नहीं करना चाहिये ॥ ३२३–३२४ ॥

मनुरपि—

राश्याधिपैके मैत्रे वा दुष्टकूटं शुभं भवेत् । इति ॥ ३२५ ॥

---

१. वि० बृ० ३ अ० १ श्लो० । २. ज्यो० नि० १४३ पृ० ५ श्लो० ।
३, ज्यो० नि० १४३ पृ० ६ श्लो० ।

मनु ने भी बताया है कि वर कन्या का राशीश एक होने पर वा दोनों में मैत्री होने पर अशुभ भकूट शुभ होता है ॥ ३२५ ॥

अथ गणकूटम्—

अब आगे गणकूट को प्रथम केशव के वाक्य से बताते हैं।

यह पद्य विवाह वृन्दावन का है यहाँ ग्रन्थकार ने उलट-पलट के लिखा है अतः अर्थ नहीं होता है। मैंने उक्त ग्रन्थ के आधार पर दिया है।

गणकूटज्ञान

केशवः—

[1]त्रियुग्मी रोहिण्या सहशिवयमर्क्षे नरिसुरे
श्रुतिस्वारे हाश्विन्यनुमृगशिरः पुष्यनवकम्।
परं दैत्ये मृत्युर्दनुजमनुजानामनिमिषैः
सह्रश्चैवं वैरं निर्ऋतितनयानां परिणये ॥ ३२६ ॥

विवाह वृन्दावन में कहा है कि तीनों पूर्वा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, आर्द्रा, भरणी इन नव नक्षत्रों की मनुष्य संज्ञा, श्रवण, स्वाती, अनुराधा, पुनर्वसु. पुष्य, हस्त, रेवती, अश्विनी, मृगशिरा की देवता संज्ञा और चित्रा ज्येष्ठा. धनिष्ठा विशाखा, मूल, कृत्तिका, शतभिषा मघा. श्लेषा इन ९ की राक्षस संज्ञा होती हैं। इनका प्रयोजन यह है कि यदि वर कन्या के नक्षत्र, राक्षस, मनुष्य हो तो मृत्यु होती है। विवाह मेलापक में राक्षस व दैवताओं में अत्यन्त शत्रुता होती है। शेषों में मित्रता जाननी चाहिये ॥३२६॥

गणवश प्रीतिज्ञान

अन्यः—

[2]देमारामादमादेदे रारा मम दरादरा।
दरा राम मदे रारा ममादेति गणत्रयम् ॥ ३२७ ॥

इसका अर्थ इस चक्र से समझें—

गण

वर	दे०	रा०	दा०	दे०	रा०	म०	दे०	रा०	म०
कन्या	मा०	मा०	मा०	दे०	रा०	म०	रा०	द०	रा०

दे० या द० से देवतागण, मा० या म० से मनुष्यगण और रा० से राक्षसगण समझें ॥ ३२७ ॥

[3]स्वगणे चोत्तमा प्रीतिः मैत्री स्यान्नरदेवयोः।
असुरामरयोर्वैरं मृत्युर्मानुषरक्षसोः ॥ ३२८ ॥

१. वि० वृ० ३ अ० ९ श्लो०। २. ज्यो० नि० १४३ पृ०।
३. ज्यो० नि० १४३ पृ० २ श्लो०।

वर कन्या का एक गण होने पर उत्तम प्रीति, मनुष्य, देवता में मैत्री, राक्षस, देवता में शत्रुता और राक्षस मनुष्य गण होने पर मृत्यु होती है ॥ ३२८ ॥

ग्रंथांतर से प्रेम ज्ञान

नारदः—

[1]दंपत्योर्जन्मभे चैकगणे प्रीतिरनेकधा ।
मध्यमा देवमर्त्यानां राक्षसानां तयोर्मृतिः ॥ ३२९ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि स्त्री, पुरुष के जन्मकालीन नक्षत्र वश दोनों के गण एक होने पर अनेक रीति से प्रेम, देवता मनुष्य गण होने मध्यम प्रीति, देवता, राक्षस व मनुष्य राक्षस दोनों के गण होने पर मृत्यु होती है ॥ ३२९ ॥

कश्यपः—

[2]स्वगणे चोत्तमा प्रीतिर्मध्यमाऽमरमर्त्ययोः ।
मर्त्यराक्षसयोर्वैरममरासुरयोरपि ॥ ३३० ॥

ऋषि कश्यप ने बताया है कि अपने गण में अर्थात् एक गण दोनों का होने पर उत्तम प्रेम, मनुष्य, देवता होने पर मध्यम, मनुष्य, राक्षस तथा देव राक्षस गण वर कन्या के होने पर शत्रुता होती है ॥ ३३० ॥

[3]शार्ङ्गीये—

रक्षोगणः पुमान् स्याच्चेत्कन्या भवति मानवी ।
केपीच्छन्ति तदोद्वाहं व्यस्तं कोपीह नेच्छति ॥ ३३१ ॥

शार्ङ्गीय में कहा है कि मेलापक में वर राक्षस गण और कन्या मनुष्य गण की प्राप्त हो तो किसी-किसी के मत में विवाह उचित माना जाता है। इसके विपरीत अर्थात् वर मानव गण व कन्या राक्षस गण की हो तो किसी के भी मत में परिणय उचित नहीं होता है ॥ ३३१ ॥

[4]अन्यच्च—

रक्षोगणो यदा नारी नरो नरगणो भवेत् ।
तदोद्वाहो न कर्तव्यो यस्माद्वैधव्यदो ध्रुवम् ॥ ३३२ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि मेलापक में यदि राक्षस गण की कन्या व मनुष्य गण का वर प्राप्त हो तो विवाह नहीं करना चाहिये, क्योंकि इस प्रकार के में अवश्य मृत्यु होती है ॥ ३३२ ॥

देवगणा यदा कन्या रक्षोगणसंभवो वरो भवति ।
दम्पत्योः समता स्यात्परस्परप्रीतिरित्येके ॥ ३३३ ॥

---

१. मु० चि० ६ प्र० ३० श्लो० पी० टी० । २. मु० चि० ६ प्र० ३० पी० टी० ।
३. मु. चि. ६ प्र. ३० श्लो. पी. टी. । ४. ज्यो. नि. १४३ पृ. ३२ श्लो. ।

जब कि मेलापक में देवता गण की कन्या और राक्षस गण का पुरुष होता है तो दोनों में समानता व पारस्परिक प्रेम होता है ऐसा किसी एक का कथन है ॥ ३३३ ॥

[1]वरस्तीव्रगणो वापि कन्या च नृगणा भवेत् ।
दुष्टकूटे गुणाढ्येपि तत्र मृत्युर्न संशयः ॥ ३३४ ॥

वर के तीव्र (राक्षस) गण होने पर कन्या मनुष्य गण की व दुष्टकूट गुणों से अधिक मिलने पर भी इसमें निश्चय ही मृत्यु होती है ॥ ३३४-३३५ ॥

लल्लः—
सम्बन्धो निजयोनौ नृपमित्रकलत्र पूर्वशस्तः ।
वध्यां नरामराणां मध्यमां नररक्षसां किंचित् ॥ ३३५ ॥

राजा, मित्र और स्त्री (विवाह) के विषय में स्वयोनि (दे० दे०, म० म०, रा० रा०) में उत्तम, मनुष्य-देवता में मध्यम और मनुष्य-राक्षस में अधम सम्बन्ध माना जाता है ॥ ३३५ ॥

गण चक्र

वधूगुणाः / वरगुणाः	देव	मनुष्य	राक्षस
देव	६	५	१
मनुष्य	६	६	१
राक्षस	१	०	६

नाडी चक्र

वधूगुणाः / वरगुणाः	आदि	मध्य	अंत्य
आदि	२	८	८
मध्य	८	०	८
अंत्य	८	८	०

१. ज्यो. नि. २४३ पृ. ४ श्लो. ।

अस्यापवादः—

उक्त का अपवाद

केशवः—

[1]रक्षोगणो यदि नरो नृगणा कुमारो सद्राशिकूटखगमैत्रिभयोनिशुद्धिः।
यद्यस्ति तत्र शुभदं करपीडनं च वामभ्रुवां खलु यदा नहि नाडिवेधः ॥३३६॥

आचार्य केशव ने कहा है कि जब मेलापक में राक्षस गण का वर, कन्या मनुष्य गण की हो तथा शुभ राशि कूट ग्रह मैत्री योनि शुद्धि और नाडीवेध का अभाव होने पर कन्या का विवाह शुभ होता है ॥ ३३६ ॥

[2]सद्भकूटं योनिशुद्धिग्रहसख्यं गुणत्रयम्।
एष्वेकतमसद्भावे नारी रक्षोगणा शुभा ॥ ३३७ ॥

जब कि मेलापक में शुभ कूट, योनि शुद्धि, ग्रह मैत्री में से एक भी शुभ हो तो कन्या के राक्षस गण का दोष नहीं होता है ॥ ३३७ ॥

गर्गः—

[3]ग्रहमैत्रिञ्च राशिश्च विद्यते नियतं यदि।
न गणाभावजनितं दूषणं स्याद्विरोधदम् ॥ ३३८ ॥

जब कि मेलापक में ग्रह मैत्री व भकूट की शुद्धि होती है तो गणजन्य दोष अशुभ नहीं होता है ॥ ३३८ ॥

अत्रिः—

[4]राशीशयोः सुहृद्भावे मित्रत्वे चांशनाथयोः।
गणादिदोषेऽप्युद्वाहः पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम् ॥ ३३९ ॥

ऋषि अत्रि ने बताया है कि जब राशीशों में या राशिस्थ नवांश के स्वामियों में मित्रता प्राप्त होती है तो अशुभ गणादि होने पर भी विवाह करने पर पुत्र पौत्रादि की वृद्धि होती है ॥ ३३९ ॥

शौनकः—

[5]वर्गवैरं योनिवैरं गणवैरं नृदूरकम्।
दुष्टकूटफलं सर्वं ग्रहमैत्र्याद्विनश्यति ॥ ३४० ॥

ऋषि शौनक ने कहा है कि वर्ग वैर, योनिवैर, गणवैर, नृदूर और अशुभ कूट इन सब का दोष ग्रहमैत्री होने पर नष्ट होता है ॥ ३४० ॥

---

१. ज्यो. नि. १४३ पृ. ५ श्लो. वराहपटल के नाम से उद्धृत है।
२. ज्यो. नि. १४३ पृ. ६ श्लो.। ३. मु. चि. ६ पृ० ३० श्लो० पी० टी०।
४. मु० चि० ६ पृ० ३० श्लो० पी०टी०। ५. ज्यो० नि० १४७ पृ० २ श्लो०।

मनुरपि—

[1]ग्रहमैत्री च रज्जुश्च यदि नाडी तयोः पृथक् ।
विवाहः शुभदः कन्या राक्षसी वा नरो नरः ॥ ३४१ ॥

ऋषि मनु ने भी बताया है कि ग्रहमैत्री, रज्जु शुद्धि और वर कन्या की नाडी अलग-अलग हो तो कन्या राक्षस गण की एवं वर मनुष्य गण का होने पर भी विवाह शुभ फलदायी होता है ॥ ३४१ ॥

नक्षत्र वश विशेष परिहार

मुहूर्तकल्पद्रुमे—

कृत्तिका रोहिणी स्वाती मघा चोत्तरफाल्गुनी ।
पूर्वाषाढोत्तराषाढे न क्वचिद्गणदोषदे ॥ ३४२ ॥

मुहूर्त कल्पद्रुम ग्रन्थ में बताया है कि कृत्तिका, रोहिणी, स्वाती, मघा, उत्तरा फाल्गुनी, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा नक्षत्र होने पर कहीं-कहीं पर गण दोष जन्य आपत्ति नहीं होती है ॥ ३४२ ॥

गण परिस्थिति वश गुण सङ्ख्या का ज्ञान

दैवज्ञमनोहरे—

[2]षड्गुणा गणसादृश्ये पंच स्युः सुरमानुषे ।
नार्या देवो नरः पुंसश्चत्वारो वा गुणास्त्रयः ॥ ३४३ ॥
[3]देवराक्षसयोः शून्यं तथैव नररक्षसोः ।
पुंसो रक्षोगणो यत्र नार्या देवोथ वा नरः ॥ ३४४ ॥
[4]गुणौ द्वौ क्रमतश्चैको गुणो ग्राह्योन्यथा नहि ॥ ३४५ ॥

दैवज्ञ मनोहर नाम के ग्रन्थ में बताया है कि वर कन्या का एक गण होने पर ६ गुण, देव, मानुष गण में ५ गुण, कन्या का देव और वर का मानुष गण में ४ या ३ गुण, देव राक्षस गण में गुण का अभाव तथा मनुष्य राक्षस में शून्य गुण, पुरुष राक्षस गण एवं स्त्री देव वा मानुष गण की होने पर २ दो १ एक क्रम से गुण होता है। इसके विपरीत में गुणाभाव रहता है ॥ ३४३-३४५ ॥

मार्तंडेप—

[5]ना देवो मनुजा वधूरिहरसास्तद्वैपरीत्ये शराः
षट् साम्येस्रपपूरुषः सुरवधूरत्रैक कोन्यत्र खम् ॥ ३४६ ॥

मुहूर्त मार्तण्ड में भी बताया है कि वर का देवगण व कन्या का मानुष गण होने पर ६ गुण और इसके विपरीत वर का मनुष्य गण एवं कन्या का देवगण होने पर ५

---

१. मु० चि० ३० श्लो० पी० टी० । २. मु० चि० ३० श्लो० पी० टी० ।
३ मु० चि० ३० श्लो० पी० टी० । ४. मु० चि० ३० श्लो० पी० टी० ।
५. मु० मा० ४ प्र० ११ श्लो० ।

गुण, गण की समानता में अर्थात् दोनों (वर-कन्या) का एक गण होने पर ६ गुण, दैत्य गण पुरुष तथा देवगण स्त्री होने पर १ एक गुण उक्त के विपरीत में शून्य गुण होता है ॥ ३४६ ॥

अथ भकूटविचारः—

अब आगे मेलापक में भकूट किस प्रकार से शुभ या अशुभ होता है, इसे बताते हैं।

भकूट विचार

[1]एकराशौ महाप्रीतिश्चतुर्थदशमे सुखम्।
तृतीयैकादशे वित्तं सुप्रजा समसप्तके ॥ ३४७ ॥

मेलापक में दोनों (वर-कन्या) की एक राशि होने पर प्रगाढ प्रेम, चतुर्थ-दशम में सुख, तृतीय-एकादश में धन लाभ और सम सप्तक में सुन्दर सतान होती है ॥ ३४७ ॥

ग्रन्थान्तर से राशिवश फल

संहिताप्रदीपे—

सौभाग्यपुत्रधनलाभकृदेकराशौ प्रीत्यर्थं भोगसुखदः समसप्तकेषु।
त्र्याये चतुर्थदशमेपि च राशिकूटे प्रीत्यर्थसौख्यकुलवृद्धिकरो विवाहः ॥३४८॥

संहिता प्रदीप नामक ग्रन्थ में कहा है कि दोनों (कन्या-पुरुष) की एक राशि मेलापक में होने से शुभभाग्य, पुत्र व धन का लाभ, सम सप्तक में भोग व सुख की प्राप्ति, तृतीय एकादश एवं चतुर्थ दशम में भी प्रेम, धन, सुख और कुल की वृद्धि होती है ॥ ३४८ ॥

त्र्यायं चतुर्थम्बरमेकराशि सद्राशिकूटं समसप्तकं यत्।
तत्प्रीतिपुत्रार्थकरं विलोक्यं न किंचिदत्रेति वदंति केचित् ॥ ३४९ ॥

तृतीय-एकादश, चतुर्थ-दशम, एक राशि और सम सप्तक शुभ राशिकूट होता है। इसमें प्रेम, पुत्र व धन की वृद्धि होने से यहाँ पर कुछ लोग कुछ भी नहीं कहते अर्थात् विवाह होना बताते हैं ॥ ३४९ ॥

ज्योतिषतत्त्वे—

एकराशौ च दंपत्योः शुभं स्यात्समसप्तके।
चतुर्थदशमे चैव तृयीयैकादशे तथा ॥ ३५० ॥

ज्योतिषतत्त्व में कहा है कि वर-कन्या की एक राशि होने पर व सम सप्तक, चतुर्थ-दशम, तृतीय-एकादश में शुभ फल होता है ॥ ३५० ॥

अशुभ राशि कूट

षट्काष्टके मृतिर्ज्ञेया पंचमे त्वनपत्यता।
नैस्वं द्विर्द्वादशेन्येषु दंपत्योः प्रीतिरुत्तमा ॥ ३५१ ॥

---

१. ज्यो० नि० १४४ पृ० २५ श्लो०।

छै-आठ में मृत्यु, पंचम-नवम में संतान का अभाव और द्वितीय द्वादश राशि वर कन्या की होने पर धन का अभाव एवं अन्य स्थिति में उत्तम प्रेम होता है ॥ ३५१ ॥

श्रीपतिः—

षष्ठाष्टमे मृत्युरपत्यहानिः पाणिग्रहे स्यान्नवपंचमे च ।
नैस्वं धने द्वादशके परे तु प्रज्ञा निरेका हिबुके वरस्य ॥ ३५२ ॥

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि वर-कन्या की राशि छटे-आठवें में होने से मृत्यु, नवम-पंचम में संतान का अभाव, द्वितीय-द्वादश में निर्धनता व अन्य ४ में बुद्धि होती है ॥ ३५२ ॥

संहिताप्रदीपे—

षडष्टके द्वेषवियोगकारी भवेदपुत्रस्त्वशुचिस्त्रिकोणे ।
द्विर्द्वादशे निर्धनता व्ययश्च नाडीसमाजे मरणाय नूनम् ॥ ३५३ ॥

संहिता प्रदीप नाम के ग्रन्थ में कहा है कि ६।८ राशि में शत्रुता, वियोग, ५।९ में अपुत्रता, अशुद्धता, २।१२ में दरिद्रता व व्यय और एक नाडी में होने पर निश्चय ही मृत्यु होती है ॥ ३५३ ॥

लल्लः—

मरणं नाडियोगे कलहः षट्काष्टके विपत्तिर्वा ।
अनपत्यता त्रिकोणे द्विर्द्वादशके च दारिद्रम् ॥ ३५४ ॥

आचार्य लल्ल ने कहा है कि वर-कन्या की नाडीयोग में अर्थात् एक नाडी होने पर मरण, ६।८ में लड़ाई या विपत्ति, ९।५ में अनपत्यता और २।१२ राशि होने से निर्धनता होती है ॥ ३५४ ॥

चण्डेश्वरः—

अपि त्रिकोणेल्पजना च नारी द्विर्द्वादशे वै विधवा कुमारी ।
षट्काष्टके मृत्युभयं प्रकारी वैगुण्यतारा मरणं करोति ॥ ३५५ ॥

आचार्य चण्डेश्वर ने कहा है कि ९।५ में कन्या अल्प सन्तान वाली, २।१२ में कन्या विधवा, ६।८ में मरण भय, गुणहीन तारा मरण करने वाली होती है ॥ ३५५ ॥

[1]निर्धनत्वं वियोगो वा मेले द्विर्द्वादशे भवेत् ।
त्रिकोणे त्वनपत्यत्वमपमृत्युः षडष्टके ॥ ३५६ ॥

जब कि मेलापक में नर-स्त्री की २।१२ राशि होती है तो निर्धन या वियोग, ९।५ होने पर सन्तान का अभाव, ६।८ होने पर अपमृत्यु होती है ॥ ३५६ ॥

विशेष फल

पंचमे नवमे विधवा सधवा नव पंचमे ।
चतुर्थे दशमे वंध्या पुत्रिणी दश चतुर्थके ॥ ३५७ ॥

---

१. ज्यो० नि० १४४ पृ० २४ श्लो० ।

तृतीयैकादशे दुःखी सुखी चैकादशत्रिके ।
द्विर्द्वादशे च दुःखी स्यात्सुखी च द्वादशद्विके ॥ ३५८ ॥
षडष्टमे च मृत्यु स्याद्दीर्घायुश्चाष्टषष्ठके ।
कन्या राशितो वरश्रेष्ठः कन्या श्रेष्टा वरांतके ॥ ३५९ ॥

मेलापक में वर की राशि से कन्या की राशि नवमी व कन्या की राशि से वर की राशि पाँचवी होने पर कन्या विधवा और इसके विपरीत में अर्थात् कन्या की राशि से वर की राशि नवीं और वर राशि से कन्या राशि पाँचवीं होने पर सधवा कन्या होती है ।

इसी प्रकार ४।१० में वन्ध्या व १०।४ में पुत्रिणी, ३।११ में दुःखी, ११।३ में सुखी, २।१२ में दुःखी, १२।२ में सुखी, ६।८ में मरण और ८।६ में दीर्घायुष्य होता है। कन्या राशि से वर की राशि श्रेष्ठ शुभ और वर की राशि से कन्या की राशि उत्तम होने पर मरण होता है ॥ ३५७–३५९ ॥

[1]यदि कन्याष्टमे भर्ता भर्तुः षष्ठे च कन्यका ।
षट्काष्टकं विजानीयाद्वर्जितं त्रिदशैरपि ॥ ३६० ॥

कूटचक्रम्—

	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं	मी.
मेष	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०
वृष.	७	७	०	७	७	०	७	७	०	०	७	७
मि.		७	७	०	७	७	०	०	७	०	७	७
कर्क	७	०	७	७	०	७	७	०	०	७	०	०
सिंह	०	७	०	७	७	०	७	७	०	०	७	०
कन्या	०	०	७	०	७	७	०	७	७	०	०	७
तुला	७	०	०	७	०	७	७	०	७	७	०	०
वृ.	०	७	०	०	७	०	७	७	०	७	७	०
धन	०	०	७	०	०	७	०	७	७	०	७	७
मकर	७	०	०	७	०	०	७	०	७	७	०	७
कुंभ	७	७	०	०	७	०	०	७	०	७	७	७
मीन	०	७	७	०	०	७	०	०	७	०	७	७

जब कि मेलापक में कन्या की राशि से वर की राशि अष्टम और वर की राशि से कन्या की छठी राशि होती है तो इसे षडाष्टक कहते हैं । इसका देवों ने भी त्याग किया है ॥ ३६० ॥

१. बृ० ज्यो० सा० १७७ पृ० ।

अथ वैरषट्काष्टकम्—

अब शत्रुता को देने वाला जो षडष्टक दोष होता है, उसे अनेक ग्रन्थों के वाक्यों से बताते हैं।

अशुभ षडष्टक ज्ञान

[1]नारदः—

वैरषट्काष्टकं मेषकन्ययोर्घटमीनयोः।
चापोक्षयोर्नृयुक्कीटभयोर्घटकुलीरयोः ॥ ३६१ ॥
पञ्चास्यमृगयोर्जन्मराशेः प्रोक्तेऽशुभप्रदः ॥ ३६२ ॥

ऋषि नारद ने कहा है कि मेष-कन्या, तुला-मीन, धनु-वृष, मिथुन-वृश्चिक, कुम्भ-कर्क, सिंह-मकर यह अशुभ भकूट होता है ॥ ३६१–३६२ ॥

ग्रंथान्तर से

राजमार्तण्डे—

मकरसकेशरिमेषयुवत्यातुलधरमीनकुलीरघटेषु ।
धनवृषवृश्चिकमन्मथगामीमरणकरास्तु षडाष्टकयोगाः ॥ ३६३ ॥

राजमार्तण्ड नाम के ग्रन्थ में कहा है कि सिंह-मकर, मेष-कन्या, तुला-मीन, कुम्भ-कर्क, धनु-वृष, मिथुन-वृश्चिक का षडाष्टक मरणकर्ता होता है ॥ ३६३ ॥

अशुभ षडाष्टक का परिहार

अस्यापवादः—

वराहः—

षडाष्टकेपि भवनाधिपमित्रभाव-
मैकाधिपत्यमवलोक्य वरस्य राशिम्।
कार्यो विवाहसमयः शुभकृत्स उक्त
स्तारा भवेद्यदि परस्परतो विशुद्धिः ॥ ३६४ ॥

वराह ने बताया है कि वर कन्या की राशियों में एकाधिपत्यता वा मित्रता होने पर षडाष्टक में भी दोनों की तारा शुद्धि होने पर विवाह करने पर शुभता है ॥३६४॥

गर्गः—

[2]ग्रहमैत्रं शुभा तारा राशिवश्यं त्रिभिः शुभम्।
षडष्टकं बुधाः प्राहुर्द्वाभ्यां द्वयर्कत्रिकोणकम् ॥ ३६५ ॥

गर्गाचार्य जी ने कहा है कि ग्रह मित्रता, शुभ तारा, शुभ वश्य होने पर अर्थात् इन तीनों की प्राप्ति में षडाष्टक व दो की लब्धि में २।१२ व ९।५ होने पर भी विद्वान् लोग शुभ फल कहे हैं ॥ ३६५ ॥

---

१. मु० चि० ६ प्र० ३२ श्लो० पी० टी०। २. ज्यो० नि० १४५ पृ० ३२ श्लो०।

प्रीति षडाष्टक ज्ञान

अथ मित्रषट्काष्टकम्—

[1]जगन्मोहने—

मित्रषट्काष्टकं कीटमेषयोर्वृषजूकयोः ।
कर्किचापभयोर्मीनसिंहयोर्मृगयुग्मयोः ॥ ३६६ ॥
कन्यकाकुम्भयोरन्यत्प्रयत्नादिह वर्जयेत् ॥ ३६७ ॥

जगन्मोहन नाम के ग्रन्थ में कहा है कि वृश्चिक-मेष, वृष-तुला, कर्क-धनु, मीन-सिंह, मकर-मिथुन और कन्या-कुम्भ प्रीति षडाष्टक होता है । इसके विपरीत होने पर यत्न से त्यागना चाहिये ॥ ३६६–३६७ ॥

राजमार्तण्डे—

जलचरयुग्मसकेशरिमीनाघटयुवती च सवृश्चिकमेषाः ।
वृषभत्तौलिककार्मुककीटाः सुतधनप्रीतिषडष्टकयोगाः ॥ ३६८ ॥

राजमार्तण्ड नाम के ग्रन्थ में कहा है कि मकर-मिथुन, मीन-सिंह, कन्या-कुम्भ, वृश्चिक-मेष, वृष-तुला, कर्क-धनु, षडाष्टक प्रीति, धन व पुत्र को देने वाला होता है ॥ ३६८ ॥

विशेष अपवाद

बृहस्पतिः

वश्यभावे तथान्योन्यं ताराशुद्ध्या परस्परम् ।
न चेत्षष्ठाष्टमो दोषस्तदा षष्ठाष्टमः शुभः ॥ ३६९ ॥

बृहस्पति जी ने कहा है कि वश्य शुद्धि व दोनों की तारा शुद्धि होने पर छठे, आठवें का दोष नहीं होता है । उक्त स्थिति में शुभ होता है ॥ ३६९ ॥

समर्क्षात्कन्यकाराशेः षष्ठं च वरभं शुभम् ।
विषमात्कन्यकाराशिरन्ध्रस्थं वरभं शुभम् ।

कन्या की सम राशि से वर की छठी राशि शुभ होती है और कन्या की विषम राशि से आठवीं वर की राशि शुभ होती ॥

अशुभ नवम पञ्चम

अथा शुभनवात्मजम्—

चण्डेश्वरः—

मेषे च चापे मकरे वृषे च कुम्भे च युग्मे झषकर्कटे च ।
कुम्भे तुलायां झषकीटयोश्च शत्रुत्रिकोणे बहु दुःखहानिः ॥ ३७० ॥

आचार्य चण्डेश्वर ने कहा है कि मेष-धनु, मकर-वृष, कुम्भ-मिथुन, मीन-कर्क,

---

१. मु० चि० ६ प्र० ३२ श्लो० पी० टी० ।

कुम्भ-तुला, मीन-वृश्चिक यह शत्रु नवम पञ्च राशियाँ अधिक दुःख व हानिकारक होती हैं ॥ ३७० ॥

शुभ नवम पञ्चम राशि

मेषे च सिंहे वृषभे च कन्ये युग्मे घटे वृश्चिककर्कटे च ।
सिंहे च चापे मकरे युवत्या मित्रत्रिकोणं बहुपुत्रलाभः ॥ ३७१ ॥

मेष-सिंह, वृष-कन्या, मिथुन-कुम्भ, वृश्चिक-कर्क, सिंह-धनु, मकर-कन्या यह मित्र त्रिकोण होता है । इसमें विवाह करने पर अधिक पुत्र लाभ होता है ॥ ३७१ ॥

शारङ्गीये शुक्रः —
[1]मीनालिभ्यां युते कीटे कुम्भे मिथुनसंयुते ।
मकरे कन्यकायुक्ते न कुर्यान्नवपञ्चकम् ॥ ३७२ ॥

शारंगीय में शुक्र ने कहा है कि मीन व वृश्चिक से युक्त कर्क, कुम्भ-मिथुन, मकर-कन्या इनमें विवाह नहीं करना चाहिये ॥ ३७२ ॥

ज्योतिःप्रकाशे—
[2]पुंसो गृहात्सुतगृहे सुतहा च कन्या
धर्मे स्थिता सुतवती पतिवल्लभा च ॥ ३७३ ॥

ज्योतिःप्रकाश नामक ग्रन्थ में कहा है कि पुरुष राशि से पाँचवीं राशि कन्या की पुत्र नाश करने वाली और नवीं राशि पुत्रवती व पति वल्लभा करने वाली होती है ॥ ३७३ ॥

अशुभ द्विर्द्वादश ज्ञान

अथाशुभद्विर्द्वादशम्—

चण्डेश्वरः—
कन्याहरी कीटतुलाधरौ वा चापे मृगे वा झषगे च कुम्भे ।
कुलीरयुग्मे वृषभे च मेषे द्विर्द्वादशे वै निधनं करोति ॥ ३७४ ॥

आचार्य चण्डेश्वर ने कहा है कि कन्या-सिंह, वृश्चिक-तुला, मकर-धनु, मीन-कुम्भ, कर्क-मिथुन, वृष-मेष यह द्विर्द्वादश मरण कारक होता है ॥ ३७४ ॥

शुभ द्विर्द्वादश ज्ञान

चापे फणीन्द्रे घटभे मृगे च अजे जले सिंहकुलीरके च ।
कन्यातुलायां वृषभेषु युग्मे द्विद्वार्दशे चाथ करोति वृद्धिम् ॥ ३७५ ॥

आचार्य चण्डेश्वर का कहना है कि धनु-वृश्चिक, कुम्भ-मकर, मेष-मीन, सिंह-कर्क, तुला-कन्या, मिथुन-वृष ये द्विर्द्वादश शुभ धन वृद्धि कारक होते हैं ॥ ३७५ ॥

---

१. मु० चि० ६ प्र० ३२ श्लो० पी० टी० ।
२. मु० चि० ६ प्र० ३१ श्लो० पी० टी० ।

जगन्मोहने कश्यपवसिष्ठौ—

द्विर्द्वादशे शुभं प्रोक्तं मीनादौ युग्मराशिषु ।
मेषादौ युग्मराशौ तु निर्धनत्वं न संशयः ॥ ३७६ ॥

जगन्मोहन नाम के ग्रन्थ में कश्यप और वसिष्ठ जी ने बताया है कि मीनादि दो राशियों में द्विर्द्वादश शुभ और मेषादि दो राशियों में द्विर्द्वादश का दोष होता है इसमें निश्चय ही निर्धनता होती है ॥ ३७६ ॥

मीनादि युग्म का फल

आयुष्यसम्पत्सुतभोगसम्पत्पुत्रार्थसम्पत्पतिसौख्यसम्पत् ।
सौभाग्यसम्पद्धनधान्यवृद्धिर्झषादियुग्मे क्रमतः फलानि ॥ ३७७ ॥

मीन-मेष में आयुष्य, वृष-मिथुन में सम्पत्ति, कर्क-सिंह में पुत्र, भोग सम्पत्ति, कन्या-तुला में पुत्रार्थ सम्पत्ति, वृश्चिक-धनु में पति सुखार्थ धन, मकर-कुम्भ में सौभाग्य, सम्पत्ति और धनधान्य की वृद्धि होती है ॥ ३७७ ॥

मेषादि २ राशियों का अशुभ फल

अजादियुग्मे क्रमतः फलानि वैधव्यमृत्युर्वधबन्धनानि ।
वियोगसन्तापमतीवदुःखं वसिष्ठगर्गप्रमुखैः स्मृतानि ॥ ३७८ ॥

मेषादि दो दो राशियाँ क्रम से वैधव्य, मृत्यु, वध बन्धन, वियोग संताप, अधिक दुःख देने वाली अशुभ होती हैं ॥ ३७८ ॥

समादि होने पर फल

सिंहः कुलीरेण मृगेण कुम्भस्तौलिःस्त्रिया चापधरेण कीटः ।
वैशारिणोजे च वृषेण युग्मं द्विर्द्वादशे भूरिधनप्रदाः स्युः ॥ ३७९ ॥

कर्क-सिंह, मकर-कुम्भ, कन्या-तुला, वृश्चिक-धनु, मीन-मेष, वृष-मिथुन यह द्विर्द्वादश अधिक धन देने वाला होता है ॥ ३७९ ॥

विशेष बात

द्विर्द्वादशे धनगृहे धनहा च कन्या
रिःफे स्थिता धनवती पतिवल्लभा च ॥ ३८० ॥

मेलापक में वर की राशि से दूसरी राशि कन्या की होने पर धन नाश और बारहवीं होने से स्त्री धनवती व पतिवल्लभा होती है ॥ ३८० ॥

गुण विभाजन

[1]मार्तण्डेपि—

दुःकूटे यदि योनिमैत्रमबला दूरं तदाम्भोधयः
नो चेत्खं त्वनयोर्यदेकमिहभूर्भाघ्र्यैक्यके खं गुणाः ।
सत्कूटे वरदूरता भरियुता षड्भिन्नराश्यैकभे
पञ्चान्यत्र सुकूटके च गिरयोरिति (?) ॥ ३८१ ॥

१. मु० मा० ४ प्र० १२ श्लो० ।

मुहूर्त मार्तण्ड में कहा है कि अशुभ कूट होने पर यदि योनि मित्रता तथा स्त्री दूर तारा हो तो चार गुण होता है। यदि स्त्रीदूर व योनि मित्रता न हो तो शून्य, उक्त दोनों में एक के होने पर एक, एक नक्षत्र, एक चरण में शून्य, शुभ कूट व वर का नक्षत्र दूर व दोनों का योनि वैर होने पर ६ गुण, मित्र राशि, एक नक्षत्रमें पाँच, इससे अन्य स्थिति में शुभ कूट में सात गुण होते हैं ॥ ३८१ ॥

अशुभ चतुर्थ दशम ज्ञान

चतुर्थदशमम्—

तुला मृगेणाथ वृषेण सिंहो मेषेण कीटो मिथुनेन मीनः।
चापेन कन्या घटभेन चालिर्दौर्भाग्यदैन्ये दश तुर्यकेऽस्मिन् ॥ ३८२ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि तुला-मकर, वृष-सिंह, मेष-कर्क, मिथुन-मीन, धनु-कन्या कुम्भ-मीन ये चतुर्थ-दशम दुर्भाग्य व हीनता को देने वाले होते है ॥ ३८२ ॥

दूषित समसप्तक ज्ञान

समसप्तकम्—

मृगः कुलीरेण घटेन सिंहो वैरप्रदः स्यात्समसप्तकोयम् ॥ ३८३ ॥

मकर-कर्क, और कुम्भ-सिंह इस समसप्तक में परस्पर शत्रुता होती है ॥ ३८३ ॥

अन्य:—

मकरे कर्कटे चैव कुम्भे सिंहे तथैव च।
यदि स्यात्सप्तमेन्योन्यं वैधव्यं तत्र निर्दिशेत् ॥ ३८४ ॥

मकर-कर्क, कुम्भ-सिंह में अर्थात् इस समसप्तक में वैधव्यता होने से त्याज्य होता है ॥ ३८४ ॥

योगके सप्तके मेषतुले युग्महयी तथा।
सिंहे घटौ सदा वर्ज्यौ मृतिं तत्राब्रवीच्छिवः ॥ ३८५ ॥

मेष-तुला, मिथुन-धनु, सिंह-कुम्भ सप्तक का सर्वदा शुभ कामना के लिये त्यागना क्यों कि इसमें मृत्यु होती है, ऐसा भगवान् शिवजी का कहना है ॥ ३८५ ॥

समसप्तक की शुभता

समसप्तके विवाहे भवति सखित्वं शुभं चैव।
एकादशे तृतीये कुलवृद्धिर्भवति चाशु नियमेन ॥ ३८६ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि समसप्तक में विवाह करने पर मित्रता शुभ होती है। और एकादश-तृतीय में नियम पूर्वक कुल की वृद्धि होती है ॥ ३८६ ॥

समसप्तके समग्रहणाद्विषमसप्तके दोषः ॥ ३८७ ॥

समसप्तक में सम ग्रहण से विषमसप्तक का दोषदायी होना स्वाभाविक सिद्ध होता है ॥ ३८७ ॥

भकूट परिहार
अथ परिहारः—

[1]राशिनाथे विरुद्धेपि मित्रत्वे चांशनाथयोः।
विवाहं कारयेद्धीमान् दंपत्योः सौख्यवर्द्धनम् ॥ ३८८ ॥

मेलापक विचार में राशि स्वामियों के विरुद्ध होने पर भी जब कि नवांश स्वामियों में मित्रता होती है तो बुद्धिमान् को विवाह करना चाहिये, क्योंकि इस स्थिति में पारस्परिक प्रेम की वृद्धि होती है ॥ ३८८ ॥

जगन्मोहने—

[2]राशिनाथे विरुद्धेपि सबलावंशकाधिकौ।
तत्तन्मैत्रेपि कर्तव्यं दम्पत्योः सुखमिच्छता ॥ ३८९ ॥

जगन्मोहन नाम के ग्रन्थ में कहा है कि मेलापक में राशिस्वामियों के विपरीत होने पर भी जब राशिनवांश अधिक बलशाली व परस्पर में मित्र हो तो सुख की इच्छा करने वालों को विवाह करना चाहिये ॥ ३८९ ॥

अन्यच्च—

राशिनाथेपि नेष्टत्वे बलिष्ठे अंशकाधिपौ।
विवाहस्तत्र कर्तव्यो दम्पत्योः सुखमिच्छता ॥ ३९० ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि राशि अधिपों के नेष्ट होने पर जब दोनों के नवांशेश बली होते हैं तो वर-कन्या के सुखार्थी को विवाह करना चाहिये ॥ ३९० ॥

[3]अत्रिः—

राशीशयोः सुहृद्भावे मित्रत्वे चांशनाथयोः।
गणादिदौष्ट्येप्युद्वाहः पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम् ॥ ३९१ ॥
राशिमैत्रे शुभे लब्धे ग्रहमैत्रीं न चिन्तयेत् ॥ ३९२ ॥

ऋषि अत्रि ने कहा है कि राशीशों में वा नवांश स्वामियों में मैत्री होने पर गणादि अशुभता में भी विवाह करने पर पुत्र, पौत्रादि की वृद्धि होती है व राशि मित्रता शुभ प्राप्ति में ग्रह मैत्री का विचार नहीं करना चाहिये ॥ ३९१–३९२ ॥

अथ नाडिविचारः—

अब आगे 'अष्ट कूट समुदाय' में नाडी कूट का महत्त्व शीर्षस्थ होता है। अन्य कूटों की अशुभता तो स्वीकार्य होती है, परन्तु नाडी की शुद्धि सर्वदा अपेक्षित होती है। इसलिये अब आगे इसी का विवेचन भिन्न-भिन्न ग्रन्थों के वाक्य से करते हैं।

---

१. मु० चि० ६ प्र० ३२ श्लो० पी० टी०।
२. मु० चि० ६ प्र० ३२ श्लो० पी० टी०।
३. मु० चि० ६ प्र० ३३ श्लो० पी० टी०।

नाडीकूट का महत्त्व

गर्गः—

[1]नाडीकूटं तु संग्राह्यं कूटानां तु शिरोमणिम् ।
ब्रह्मणा कन्यकाकण्ठसूत्रत्वेन विनिर्गते ।। ३९३ ।।

आचार्य गर्ग ने कहा है कि मेलापक में शुभ नाडी का ग्रहण करके ही मेलापक उचित होता है, क्योंकि ब्रह्माजी ने कन्या के कण्ठसूत्र की तरह इसका निर्माण किया है अर्थात् जैसे विवाह में मंगलसूत्र आवश्यक है, वैसे ही नाडीकूट भी ।। ३९३ ।।

विशेष—पीयूषधारा टीका में 'सूत्रत्वेन विनिर्मितम्' यह पाठान्तर है ।। ३९३ ।।

आदि मध्य, अन्त्य नाडी के नक्षत्र और फल

[2]रामः—

ज्येष्ठारौद्रार्यमाम्भःपतिभयुगयुगं दास्रभं चैकनाडी
पुष्येन्दुत्वाष्ट्रमित्रान्तकवसुजलभं योनिबुध्न्ये च मध्या ।
वाय्वाग्नव्यालविश्वोडुयुगयुगमथो पौष्णभं चापरा स्या-
द्दम्पत्योरेकनाड्यां परिणयनप्रसन्मध्यनाड्यां हि मृत्युः ।। ३९४ ।।

ज्येष्ठा, मूल, आर्द्रा, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी-हस्त, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा और अश्विनी नक्षत्र की गणना आदि संज्ञक नाडी में होती है ।

पुष्य, मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, भरणी, धनिष्ठा, पूर्वाषाढ, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र की मध्यनाडी संज्ञा होती है ।

स्वाती, विशाखा, कृत्तिका, रोहिणी, आश्लेषा, मघा, उत्तराषाढ, श्रवण व रेवती नक्षत्र की गणना या संज्ञा अन्त्यनाडी में होती है ।

मेलापक में वर-कन्या दोनों के नक्षत्र एकनाडी में होने से विवाह अशुभ होता है । और मध्यनाडी में होने से मरणकारक होता है ।। ३९४ ।।

विशेष—प्रकाशित मु० चि० में 'ज्येष्ठार्यम्णेशनीराधिप.....' पाठान्तर है ।। ३९४ ।।

स्पष्टार्थ चक्र

नाडी	जन्म नक्षत्र								
आद्य	अश्विनी	आर्द्रा	पुनर्वसु	उत्तरा फाल्गुनी	हस्त	ज्येष्ठा	मूल	शतभिषा	पूर्वा भाद्रपद
मध्य	भरणी	मृगशिरा	पुष्य	पूर्वा फाल्गुनी	चित्रा	अनु-राधा	पूर्वा-षाढ	धनिष्ठा	उत्तरा भाद्रपद
अन्त्य	कृत्तिका	रोहिणी	श्लेषा	मघा	स्वाती	विशाखा	उत्तरा-षाढ	श्रवण	रेवती

१. मु० चि० ६ प्र० ३४ श्लो० पी० टी० । २. मु० चि० ६ प्र० ३४ श्लो० ।

कन्या नक्षत्र के पाद वश नाडी का ज्ञान

नारदः--

[1]चतुस्त्रिद्वयंघ्रिभोत्थायाः कन्यायाः क्रमशोश्विभात् ।
वह्निभादिन्दुभान्नाडी त्रिचतुःपञ्चपर्वसु ॥ ३९५ ॥

ऋषि नारद जी ने वताया है कि कन्या के पादवश अर्थात् कन्या का जन्म चौथे चरण में होने पर अश्विनी से, तीसरे चरण में होने पर कृत्तिका से और दूसरे में होने से मृगशिरा से नाडियों की गणना करनी चाहिये । अर्थात् यदि कन्या का जन्मर्क्ष त्रिपाद में होने पर कृत्तिका से चार अंगुलियों में चतुःपर्वगणना (कनिष्ठिका-अनामिका, मध्यमा-तर्जनी पर) करनी चाहिये ।

इसी प्रकार कन्या का जन्मर्क्ष द्विपाद संज्ञक होने पर पाँच अंगुलियों में (कनिष्ठिका, अनामिका, मध्यमा, तर्जनी, अंगुष्ठ) में गणना करने से पञ्चपर्व गणना क्रम होता है ॥ ३९५ ॥

स्पष्टार्थ चतुर्थपर्व गणना चक्र

कनिष्ठिका	कृत्तिका	मघा	पू० फा०	ज्येष्ठा	मूल	पू० भा०	उ०फा०
अनामिका	रोहिणी	श्लेषा	उ० फा०	अनु०	पू०षा०	शतभि०	रेवती
मध्यमा	मृग०	पुष्य	हस्त	विशा०	उ०षा०	धनि०	अश्वि
तर्जनी	आर्द्रा	पुनर्व०	चित्रा	स्वाती	अभि०	श्रवण	भरणी

स्पष्टार्थ पञ्चपर्व गणना चक्र

पञ्चपर्व	आरोह	अवरोह	आरोह	अवरोह	आरोह	अवरोह
कनिष्ठिका	मृगशिरा	हस्त	चित्रा	श्रवण	धनिष्ठा	रोहिणी
अनामिका	आर्द्रा	उ०फा०	स्वाती	उ०षा०	शतभिषा	कृत्तिका
मध्यमा	पुनर्वसु	पू०फा०	विशाखा	पू०षा०	पू०भा०	भरणी
तर्जनी	पुष्य	मघा	अनु०	मूल	उ०भा०	अश्विनी
अंगुष्ठ	श्लेषा		ज्येष्ठा		रेवती	

४ चरण जन्मर्क्ष कन्या का होने पर गणना

[2]गर्गः--

चतुष्पात्कन्यकार्क्षं गणयेदश्विभादिकम् ।
त्रिभं सव्यापसव्येन भिन्नं पर्व शुभावहम् ॥ ३९६ ॥

आचार्य गर्ग ने वताया है जव मेलापक में कन्या जन्मर्क्ष चौथे चरण में होता है तो

१. मु० चि० ६ प्र० ३४ श्लो० पी० टी० ।
२. मु० चि० ६ प्र० ३४ श्लो० पी० टी० ।

अश्विनी से तीन तीन नक्षत्र सव्य व अपसव्य गणना करके देखना कि यदि एक पर्व में दोनों के नक्षत्र न हों तो शुभ फल होता है ॥ ३९६ ॥

तृतीय चरण वश गणना

[1]कन्यकर्क्षं त्रिपाच्चेत्स्याद्गणयेत्कृत्तिकादिकम् ।
चतुर्भिःपर्वभिस्तद्वदभिजित्तारकान्वितम् ॥ ३९७ ॥

यदि मेलापक (वर-कन्या) में कन्या का जन्म नक्षत्र के तृतीय चरण में हो तो कृत्तिका से चार पर्वों में अभिजित् के साथ गणना करनी चाहिये ॥ ३९७ ॥

द्वितीय चरण वश गणना

[2]कन्यकर्क्षं द्विपाच्चेत्स्याद्गणयेत्सौम्यभादिकम् ।
पञ्चभिस्त्ववरोहे तु पञ्चमाङ्गुलिवर्जयेत् ॥ ३९८ ॥

जब मेलापक में कन्या का जन्म, नक्षत्र के दूसरे चरण में मिलता है तो मृगशिरा से पाँच पर्वों में गणना करना, इसमें अवरोह के समय अंगुष्ठ का त्याग करना चाहिये ॥ ३९८ ॥

तीन नाडियों में नक्षत्र वश फल

[3]वराहः—
आद्यैकनाडी कुरुते वियोगं मध्याख्यनाड्यामुभयोर्विनाशनम् ।
अन्त्ये च वैधव्यमतीवदुःखं तस्माच्च तिस्रः परिवर्जनीयाः ॥३९९॥

आचार्य वराह ने कहा है कि दोनों (वर-कन्या) के नक्षत्र आद्य नाडी में होने पर वियोग, मध्य नाडी में दोनों का विनाश और अन्त्यनाडी में वर कन्या के नक्षत्र होने पर वैधव्यता व अधिक दुःख होता है। इसलिये तीनों का त्याग करना चाहिये ॥३९९॥

[4]वसिष्ठः—
सा मध्यनाडी पुरुषं निहन्ति तत्पार्श्वनाडी खलु कन्यकां तु ।
आसन्नपर्यायसमागता चेद्वर्षेण साप्यन्तरिता त्रिवर्षैः ॥४००॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि वर-कन्या के मध्य नाडी में नक्षत्र होने पर पुरुष का विनाश और समीप की में कन्या का नाश होता है। और आसन्न पर्यायगत (अर्थात् अश्विनी आर्द्रा या रोहिणी श्लेषा) में एक वर्ष में तथा एक नाडी में दोनों के दूर होने पर तीन वर्ष में फल लब्धि होती है ॥ ४०० ॥

---

१. मु० चि० ६ प्र० ३४ श्लो० पी० टी० ।
२. मु० चि० ६ प्र० ३४ श्लो० पी० टी० ।
३. मु० चि० ६ प्र० ३४ श्लो० पी० टी० ।
४. बृ० सं० ३२ अ० २०३ श्लो० ।

एक नाडी का त्याग

[1]एकनाडिवियोगश्च गुणैः सर्वैः समन्वितः ।
वर्जनीयः प्रयत्नेन दम्पत्योर्निधनप्रदः ॥ ४०१ ॥

ऋषि नारद ने कहा है कि मेलापक में दोनों का जन्म नक्षत्र एक नाडी में जब होता है तो समस्त गुणों से युक्त होने पर भी त्याग करना चाहिए ॥ ४०१ ॥

विशेष निर्णय

केचित्तु—
त्र्यङ्घ्रिभोत्पन्नकन्यायाश्चतुःपञ्चनाडीचक्रे वेधमाहुः ।
[2]वृन्दावने—
प्रमीयमाणोपि मतैर्मुनीनां त्रिद्व्यङ्घ्रिनक्षत्रभवः कुमार्याः ।
नाडी चतुःपंचतयस्य पक्षो नक्षादवीथी विषयत्वमेति ॥ ४०२ ॥

विवाह वृन्दावन में कहा है कि तृतीय, द्वितीय चरण में उत्पन्न कन्या होने पर क्रम से चार, पाँच पर्वों के आधार पर गणना करने का पक्ष विचार मार्ग के दृष्टि पथ पर अवतरित नहीं होता, क्योंकि यह विषय तो देशभेद से माना जाता है। सब जगह तीन नाडियों का ही विचार किया जाता है ॥ ४०२ ॥

पुनः गणना ज्ञान

हारीतः—
[3]त्र्यङ्घ्रिभे द्व्यङ्घ्रिभं कन्या जाताया गणयेत्क्रमात् ।
वह्निभान्दिन्दुभान्नाडीं चतुःपञ्चसु पर्वसु ॥ ४०३ ॥

ऋषि हारीत ने कहा है कि तृतीय, द्वितीय चरण में कन्या का नक्षत्र होने पर कृत्तिका व मृगशिरा से चार, पाँच पर्वों में गणना करके नाडी का विचार करना चाहिये ॥ ४०३ ॥

देश भेद से नाडी गणना ज्ञान

देशभेदेन व्यवस्थामाह—

नारदः—
[4]चतुर्नाडी त्वहल्यायां पांचाले पंच नाडिका ।
त्रिनाडी सर्वदेशेषु वर्जनीया प्रयत्नतः ॥ ४०४ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि अहल्या देश में चार नाडी, पांचाल देश में पाँच और इनसे भिन्न देशों में सब जगह तीन नाडी का विचार होता है ॥ ४०४ ॥

---

१. मु० चिं० ६ प्र० ३४ श्लो० पी० टी० । २. अ० ३ श्लोक ७ ।
३. वि० बृ० ३ अ० ७ श्लो० पी० टी० ।
४. मु० चिं० ६ प्र० ३४ श्लो० पी० टी० ।

वृद्धगर्गः—

[2]जांगले तु चतुर्माला पांचाले पंच मालिका।
त्रिमाला सर्वदेशेषु विवाहे मुनिसंमतम् ॥ ४०५ ॥

वृद्ध गर्ग ने कहा है कि जाङ्गल देश में चार, पांचाल में पाँच नाडी और अन्यत्र सर्वत्र तीन नाडियों का विचार ऋषि सम्मत है ॥ ४०५ ॥

अन्योपि—

अश्विनी जांगले प्रोक्ता बंगाले भरणी तथा।
कृत्तिका सर्वदेशेषु नाडीचक्रं विलोकयेत् ॥ ४०६ ॥

अश्विनी नक्षत्र से जाङ्गल में, भरणी से बंगाल में और सब जगह कृत्तिका से चक्र न्यास करके देखना चाहिये ॥ ४०६ ॥

देशों में उक्त का फल

मनुः—

अहिल्यायां चतुर्नाडीसंयोगः कालमृत्युदः।
एकयोगोन्यदेशेषु दुःखदारिद्र्यदोषभाक् ॥ ४०७ ॥

ऋषि मनु ने बताया है कि अहल्या देश में चार नाडी में संयोग होने पर काल मृत्यु होती है। अन्य देशों में एक योग होने पर दुःख, दरिद्रता के दोष से युक्त होते हैं ॥ ४०७ ॥

ग्रंथान्तर से तीन नाडी नक्षत्र ज्ञान

केशवः—

[3]आर्द्रार्यमेंद्रवरुणद्वयमश्विनीषु विश्वाग्निवायुफणिनां युगमंत्यभं च।
शेषाणि चेति नवकत्रयमेकजाते जन्मोडुनी वरवधूनिधनाय नाडी ॥४०८॥

आचार्य केशव ने कहा है कि आर्द्रा, उत्तरा फाल्गुनी, ज्येष्ठा व शततारका से २ दो नक्षत्र और अश्विनी की आदिनाडी, उत्तराषाढ, कृत्तिका, स्वाती, आश्लेषा से २ दो नक्षत्र व रेवती नक्षत्र की मध्य नाडी और शेष पूर्वाफाल्गुनी, चित्रा, धनिष्ठा, भरणी, मृगशिरा, पूर्वाषाढा, अनुराधा, पुष्य, उत्तरा भाद्रपदा की अन्त्यनाडी संज्ञा होती है। जब कि वर-वधू का नक्षत्र एक नाडी में होता है तो मरण कारक होने से विवाह उचित नहीं होता है ॥ ४०८ ॥

एक राशि कूटविचार

अथैकराशिकूटविचारः—

नारदः—

एकर्क्षे चैकराशौ च विवाहः प्राणहानिदः ॥ ४१९ ॥

---

२. वि० वृ० ३ अ० ७ श्लो० टी०। ३. वि० वृ० ३ अ० ६ श्लो०।

नारद ऋषि ने कहा है कि एक नक्षत्र व एक राशि वर कन्या की होने पर विवाह मरण कारक होता है ॥ ४०९ ॥

वसिष्ठः—

[1]दंपत्योर्जन्मभे चैकराशौ च निधनं तयोः ।
एकस्य च तथोद्वाहे किंचिद्भेदेपि वा नवा ॥ ४१० ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि वर-वधू का जन्म नक्षत्र व राशि एक होने पर दोनों की मृत्यु होती हैं ॥ ४१० ॥

[2]एकगृहसंभवानां भवति विवाहः सुतार्थसंपत्त्यै ।
यद्युभयोरेकर्क्षे भवति च यदा चांशको भिन्नम् ॥ ४११ ॥

मेलापक में एक राशि व एक नक्षत्र होने पर जब नवांश दोनों के भिन्न हों तो विवाह पुत्र धन, संपत्ति देने वाला होता है । अर्थात् विवाह उचित होता है ॥ ४११ ॥

जगन्मोहने—

[3]एकर्क्षे चैकराशौ च विवाहस्त्वशुभः स्मृतः ।
संकोचे तु तदा कार्यो भिन्नपादे यदा तयोः ॥ ४१२ ॥

जगन्मोहन नाम के ग्रन्थ में बताया है कि एक नक्षत्र व एक राशि वर कन्या की होने पर विवाह अशुभ होता है । संकोच से भिन्न चरण होने पर करना चाहिये ॥ ४१२ ॥

गर्गः—

[4]एकराशिं विना नाडीयोगमादौ विवर्जयेत् ।
न दोषस्त्वेकराशिस्थे भकूटेन्ये तु मृत्युदः ॥ ४१३ ॥

आचार्य गर्ग ने कहा है कि एक राशि के बिना नाडीयोग का प्रथम त्याग करना व एक राशिस्थ भकूट में दोष नहीं होता और अन्य में अर्थात् दो राशिस्थ भकूट में विवाह मृत्युकारक होता है ॥ ४१३ ॥

एक राशि भिन्न नक्षत्र कूट ज्ञान

अथैकराशिभिन्नर्क्षकूटः—

नारदः—

[5]एकराशौ पृथक् धिष्ण्ये दंपत्योः पाणिपीडनम् ।
उत्तमं मध्यमं भिन्नराश्यैकर्क्षगयोस्तयोः ॥ ४१४ ॥

---

१. मु० चि० ६ प्र० ३६ श्लो० पी० टी० तथा व सं० ३२ अ० १६ श्लो० ।
२. मु० चि० ६ प्र० ३६ श्लो० पी० टी० ।
३. मु० चि० ६ प्र० ३६ लो० पी० टी० ।
४. मु. चि. ६ प्र. ३६ श्लो. पी. टी. । ५. मु० चि० ६ प्र० ३६ श्लो० पी०टी० ।

ऋषि नारद ने कहा है कि एक राशि, भिन्न नक्षत्र वर-वधू का पाणिपीडन उत्तम और भिन्न राशि एक नक्षत्र होने पर विवाह मध्यम होता है ॥ ४१४ ॥

अत्रिः—

[1]एकराशौ पृथक् धिष्णे पृथग्राशौ तथैकभे।
एकांशेपि कृतोद्वाहः श्रेष्ठोमध्योऽधमः क्रमात् ॥ ४१५ ॥

ऋषि अत्रि ने कहा है कि एक राशि, पृथक्-पृथक् दोनों के नक्षत्र होने पर श्रेष्ठ विवाह और भिन्न-भिन्न राशि व नक्षत्र एक होने से मध्यम, एक नवांश में विवाह अधम होता है ॥ ४१५ ॥

[2]एकराशौ शुभोद्वाहः एकभांशे मृतिप्रदः।
यदि स्याद्भिन्ननक्षत्रं शुभदं शौनकोब्रवीत् ॥ ४१६ ॥

ऋषि शौनक का कहना है कि एक राशि में विवाह शुभ, एक नवांश में मरण कारक तथा भिन्न नक्षत्र होने पर शुभद होता है ॥ ४१६ ॥

वसिष्ठः—

[3]एकराशौ पृथक् धिष्णे तूत्तमं पाणिपीडनम्।
एकधिष्णे पृथग्राशौ लवैक्येपि च मृत्युदम् ॥ ४१७ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि दोनों का एक राशि, भिन्न नक्षत्र होने पर विवाह उत्तम बनता है और भिन्न राशि, एक नक्षत्र व नवांश के एक होने पर विवाह मरण-दाता होता है ॥ ४१७ ॥

गर्गः—

[4]एकराशौ द्विनक्षत्रे पुंतारा प्रथमा भवेत्।
अतीव शोभनः प्रोक्तः स्त्रीतारा चेद्विनश्यति ॥ ४१८ ॥

आचार्य गर्ग ने कहा है कि वर-वधू के एक राशि भिन्न नक्षत्र होने पर जब पुरुष की तारा प्रथम होती है तो विवाह अधिक शुभ कारक और स्त्री की पहिले होने से नाश कारक होता है ॥ ४१८ ॥

अन्यत्रापि—

[5]भवनद्वययुक्तर्क्षपूर्वं पुंसां शुभावहम्।
पश्चाद्भागं तथा स्त्रीणां व्यत्ययस्तु विनाशकृत् ॥ ४१९ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि भिन्न राशि एक नक्षत्र में पुरुष की तारा प्रथम हो तथा स्त्री तारा बाद की होने पर विवाह शुभ और इसके विपरीत में विनाश होता है ॥ ४१९ ॥

---

१. ज्यो० नि० १४३ पृ० १ श्लो०। २. ज्यो० नि० १४३ पृ०२ श्लो०।
३. व० सं० ३२ अ० ९४ श्लो० तथा सर्वैक्येऽपि च मृ.... पाठ है।
४. ज्यो० नि० १४३ पृ० ७ श्लो०। ५. ज्यो० नि० १४३ पृ० ८ श्लो०।

एक राशि व दो नक्षत्रों में भी त्याज्य नक्षत्र

अथ एकराशौ द्विनक्षत्रेपि वर्ज्यनक्षत्राण्याह--

गर्गः--

[1]एकराशौ द्विनक्षत्रे कृत्तिकाजस्य तारका।
धनिष्ठा शततारे च पुष्याश्लेषां च वर्जयेत् ॥ ४२० ॥

आचार्य गर्ग ने बताया है कि वर-कन्या की एक राशि व भिन्न नक्षत्र होने पर कृत्तिका, रोहिणी, धनिष्ठा-शततारका और पुष्य-आश्लेषा का त्याग मेलापक में करना चाहिए ॥ ४२० ॥

भिन्न राशि एक नक्षत्र में विधान

अथ पृथग्राशावेकभे प्रवृत्तिमाह---

विधिरत्ने भृगुः--

[2]रोहिण्यार्द्रामघेन्द्राग्नितिष्यश्रवणपौष्णभम् ।
उत्तरा प्रोष्ठपाच्चैव नक्षत्रैक्येपि शोभनम् ॥ ४२१ ॥

विधि रत्न में भृगुजी ने बताया है कि रोहिणी, आर्द्रा, मघा, विशाखा, पुष्य, श्रवण, रेवती, उत्तरा इनमें एक नक्षत्र में भी विवाह शुभ होता है ॥ ४२१ ॥

कालनिर्णये—

[3]विशाखिकार्द्राश्रवणप्रजेशतिष्यांततत्पूर्वमघा प्रशस्ता ।
स्त्रीपुंसतारैक्यपरिग्रहे तु शेषा विवर्ज्या इति संगिरंते ॥ ४२२ ॥

कालनिर्णय में कहा है कि विशाखा, आर्द्रा, श्रवण, रोहिणी, पुष्य, भरणी, पूर्वा भाद्रपद, मघा इनमें एक नक्षत्र में भी विवाह शुभ होता है। यदि स्त्री-पुरुष की तारा एक हो और अवशिष्ट नक्षत्र त्याज्य होते हैं ॥ ४२२ ॥

अन्यः---

[4]अजैकपान्मित्रवसुद्विदैवप्रभंजनाग्न्यर्कभुजंगमानि ।
मुकुंदजीवांतकभानि नूनं शुभानि योषिन्नरजन्मभैक्ये ॥ ४२३ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि पूर्वाभाद्रपदा, अनुराधा, धनिष्ठा, विशाखा, भरणी, कृत्तिका, हस्त, आश्लेषा, श्रवण, पुष्य, यदि स्त्री पुरुष का इनमें से एक ही नक्षत्र हो तो विवाह शुभ होता है ॥ ४२३ ॥

नाडी दोष का अभाव ज्ञान

केशवार्कः—

[5]नक्षत्रमेकं यदि भिन्नराश्योर-भिन्नराश्योर्यदि भिन्नमृक्षम् ।
प्रीतिस्तदानीं निविडा नृनार्योश्चेत्कृत्तिका रोहिणिवन्न नाडी ॥ ४२४ ॥

---

१. ज्यो० नि० १४३ पृ० ९ श्लो० तथा कृत्तिका याम्यतारके' पाठ है।
२. ज्यो० नि० १४४ पृ० १७ श्लो०। ३. ज्यो० नि० १४४ पृ० १९ श्लो०।
४. ज्यो० नि० १४४ पृ० २० श्लो०। ५. वि० वृ० ३ अ० ६ श्लो०।

आचार्य केशव ने विवाह वृन्दावन में कहा है कि मेलापक में वर-कन्या की दो राशि व एक नक्षत्र होने पर अथवा एक राशि व भिन्न नक्षत्र होने पर दोनों में परस्पर अधिक प्रीति होती है और कृत्तिका रोहिणी का दोष नहीं होता है ॥ ४२४ ॥

चतुर्थचरणस्यायमर्थः।

चेद्यदि कृत्तिका रोहिणिवत्स्यात्तदापि नाडी दोषो न स्यात्। उपलक्षणत्वाद्गणदोषोपि यथा कृत्तिकारोहिण्योः शततारकापूर्वभाद्रपदयोः नाडीदोषो गणानां च राक्षसमनुष्याणां च दोषो नास्ति।

चौथे चरण का यह अर्थ है—यदि कृत्तिका रोहिणी की तरह एक नाडी हो तो नाडी का दोष नहीं होता है। उपलक्षण से गणदोष भी कृत्तिका रोहिणी, शतभिषा पूर्वाभाद्रपदा का नाडी दोष व राक्षस मनुष्य गण का भी दोष नहीं होता है।

नाडी दोष, गण दोष का अभाव

लल्लः—

प्रीतिवित्तसुखदः करग्रहस्त्वेकराशिषु च भिन्नभं यदि।
वारुणाजपदभं भवेद्यदा नाडिदोषगणजो न विद्यते ॥ ४२५ ॥

आचार्य लल्ल ने कहा है कि यदि वर-कन्या की एक राशि और भिन्न नक्षत्र मेलापक में प्राप्त हो तो विवाह करने पर दोनों में प्रेम, धन लाभ और सुखी जीवन होता है। जब मेलापक में शतभिषा व पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र हो तो नाडीव गण का दोष नहीं होता है ॥ ४२५ ॥

[1]नाडीगणौ नैकराशौ चिन्त्यौ भिन्नभयोर्यथा।
कृत्तिकान्तकभयोर्द्वीशस्वात्योः पूभाजलेशयोः ॥ ४२६ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि वर-वधू की एक राशि व भिन्न नक्षत्र होने पर नाडी एवं गण दोष नहीं होता जैसे कृत्तिका-भरणी स्वाती-विशाखा, शतभिषा-पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र होनेपर नहीं होता है ॥ ४२६ ॥

[2]एकभे भिन्ननक्षत्रे न नाडीगणदुष्टता।
वह्निभे ब्राह्मवत्प्रीतिः शतताराजपादवत् ॥ ४२७ ॥

जब कि मेलापक में एक राशि भिन्न नक्षत्र को प्राप्त होती है तो नाडी व गण का दूषित फल नहीं होता है, क्योंकि कृत्तिका-रोहिणी. शतभिषा-पूर्वाभाद्रपद में प्रीति होती है ॥ ४२७ ॥

रत्नकोशे—

वैश्वानरद्रुहिणयोरदितीशयोश्च तद्वत्करार्यमभयोद्व्यधिपानिलेंदौ।
छागैकपाद्वरुणयोः श्रुतिवैश्वयोश्च स्याच्चेदभिन्नभवने नहि नाडिदोषः ॥४२८॥

१. ज्यो० नि० १४२ पृ० ४ श्लो०। २. ज्यो. नि. १४३ पृ. ५ श्लो.।

रत्नकोश में कहा है कि कृत्तिका-रोहिणी, आर्द्रा-पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी-हस्त, उत्तराभाद्रपद-शतभिषा, उत्तराषाढ़-श्रवण इन अभिन्न राशि नक्षत्रों में नाडीदोष नहीं होता है ॥ ४२८ ॥

उक्तंच । भृगुः—

[1]दंपत्योरेकराशिश्चेत्पृथगृक्षं यदा भवेत् ।
वसिष्ठोक्तो विवाहः स्याद्गणं नाडीं न चिंतयेत् ॥ ४२९ ॥

ऋषि भृगु ने कहा है कि वर-वधू की एक राशि व भिन्न नक्षत्र होने पर वसिष्ठोक्त विवाह शुभ होता है । इसमें गण व नाडी का विचार नहीं करना चाहिये ॥ ४२९ ॥

बृहस्पतिः—

[2]एकराशौ पृथग्धिष्णे पृथग्राशौ तथैकभे ।
गणनाडीनृदूरं च ग्रहवैरं न चिंतयेत् ॥ ४३० ॥

आचार्य बृहस्पतिजी ने बताया है कि एक राशि व भिन्न नक्षत्र या भिन्न राशि एक नक्षत्र मेलापक में होने पर गण, नाडी, नृदूर व ग्रह शत्रुता का विचार नहीं करना चाहिये ॥ ४३० ॥

गणपतिः—

[3]राश्यैके भिन्नभेप्येकभेन्यराशौ तथैकभे ।
भिन्नांघ्रौ न द्वयोर्दोषो गणनाडीभकूटजा ॥ ४३१ ॥

मुहूर्त गणपति में कहा है कि मेलापक में वर-कन्या की एक राशि व अलग-अलग नक्षत्र व भिन्न राशि या एक नक्षत्र एक राशि में चरण भेद होने पर दोनों को गण-नाडी-भकूटजन्य दोष नहीं होता है ॥ ४३१ ॥

मुहूर्ततत्त्वे—

एकराश्यभचरणामिहैकेन नाडीगणश्च ॥ ४३२ ॥

मुहूर्त तत्त्व में कहा है कि एक राशि, एक नक्षत्र दोनों का होने पर पाद का अभेद हो तो नाडी-गण दोष होता है ॥ ४३२ ॥

मार्तंडः—

[4]शेषार्था विविधा विभैकचरणे भिन्नर्क्षराश्यैककम् ।
भिन्नांघ्र्येकभमेतयोर्गणखगौ नाडीनृदूरं न च । इति ॥ ४३३ ॥

मुहूर्त मार्तण्ड में कहा है कि उपर्युक्त तृतीय-एकादश, चतुर्थ-दशम, उभय सप्तम राशि में, एक नक्षत्र में धन, पुत्र, पशु आदि की प्राप्ति होती है और एक नक्षत्र के एक

---

१. ज्यो० नि० १४३ पृ० ३ श्लो० । २. ज्यो. नि. १४३ पृ. १४ श्लो. ।
३. मु. ग. १५ प्र. ५४ श्लो. । ४. मु० मा० ४ प्र० ६ श्लो० ।

चरण में अनिष्ट फल होता है तथा भिन्न नक्षत्र एक राशि एवं एक नक्षत्र में पृथक्-पृथक् चरण में जन्म होने पर गण, ग्रहमैत्र, नाडी व नृदूर का चिन्तन नहीं करना चाहिये ॥ ४३३ ॥

राम:--

[1]राश्यैक्ये चेद्भिन्नमृक्षद्वयं स्यान्नक्षत्रैक्ये राशियुग्मं तथैव ।
नाडीदोषो नो गणानां च दोषो नक्षत्रैक्ये पादभेदे शुभं स्यात् ॥४३४॥

मुहूर्त चिन्तामणि में रामदैवज्ञ ने बताया है कि वर-कन्या की एक राशि व दो नक्षत्र होने पर तथा एक नक्षत्र में दो राशि होने पर एवं राशि नक्षत्र एक होने पर यदि चरण भेद हो तो नाडी व गण का दोष नहीं होता है ॥ ४३४ ॥

ज्योतिर्निबंधे--

[2]दंपत्योरेकराशिः स्याद्भिन्नमृक्षं यदा तदा ।
गणदोषेप्येकनाड्यां विवाहः शुभदः स्मृतः ॥ ४३५ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है स्त्री-पुरुष की जब मेलापक में एक राशि व पृथक्-पृथक् नक्षत्र हो तो गण व नाडी दोष में भी परिणय शुभ फलदाता होता है ॥ ४३५ ॥

परिहार में विशेष

रत्नकोशे--

[3]केचिन्नेच्छंति चैकांशे केचिदिच्छंति मेलकम् ।
तत्राप्यंघ्रौ घटीसाम्यं त्यजेन्नो भिन्ननाडिकम् ॥ ४३६ ॥

रत्नकोश में कहा है कि कुछ लोग एकांश में विवाह का त्याग कहते हैं और किसी के मत में विवाह होना कहा है । तब वहाँ पर एक चरण में घटी (इष्ट) की समता होने पर त्याग करना और भिन्न-भिन्न इष्ट घटी होने पर त्याग नहीं करना चाहिये ॥ ४३६ ॥

केशवार्कः--

[4]पराशरः प्राह नवांशभेदादेकर्क्षराश्योरपि सौमनस्यम् ।
एकांशकत्वेपि वसिष्ठशिष्यो नैकत्र पिंडे किल नाडिवेधः ॥ ४३७ ॥

विवाह वृन्दावन में कहा है एक राशि, एक नक्षत्र दोनों (वर-वधू) के होने पर चरण भेद होने पर पराशर ने विवाह होना उचित बताया है । अर्थात् दोनों में मित्रता होती है । तथा वसिष्ठ शिष्य के पक्ष में एक पिण्ड होने पर एक चरण में भी परस्पर सौमनस्य होना कहा है ॥ ४३७ ॥

---

१. मु० चिं० ६ प्र० ३६ श्लो० पी. टी. ।
२. ज्यो. नि. १४३ पृ. ३ श्लो. ।
३. ज्यो० नि० १४४ पृ० २४ श्लो० ।
४. वि. वृ. ३ अ. २४ श्लो. ।

नाडी दोषाभाव में दृष्टान्त

[1]नाग्निर्दहत्यात्मतनुं यथा हि द्रष्टा स्वदृष्टेर्नहि दर्शनीयः ॥ ४३८ ॥

यथा अग्नि अपने तेज को नहीं जलाती तथा दृष्टा अपनी दृष्टि को नहीं देखता वैसे ही एक पिण्ड में नाडी का दोष नहीं होता है ॥ ४३८ ॥

एक नक्षत्र एक चरण में दोष ज्ञान

अथैकर्क्षे एकपादभेदे कूटः—

[2]दंपत्योरेकनक्षत्रे भिन्नपादे शुभावहः ।
दंपत्योरेकपादे तु वर्षांते मरणं ध्रुवम् ॥ ४३९ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि वर-वधू दोनों के एक नक्षत्र व भिन्न चरण होने पर विवाह शुभ और एक चरण होने से निश्चय ही विवाह करने पर वर्षान्त में मरण होता है ॥ ४३९ ॥

एकराश्यादि में फल

एकराशी धनापत्यं सोभाग्यं प्रीतिवर्द्धनम् ।
एक ऋक्षे भवेद्दुःखमेकपादे वरक्षयः ॥ ४४० ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि एक राशि में धन, पुत्र, सौभाग्य व प्रीति की वृद्धि होती है और एक नक्षत्र में दुःख एवं एक चरण में वर का क्षय होता है ॥ ४४० ॥

एक नक्षत्र में भिन्न पाद अभिन्नपाद का फल

एकर्क्षे भिन्नपादे च विवाहः पुत्रपौत्रदः ।
एकर्क्षे चैकपादे च विवाहः प्राणहानिदः ॥ ४४१ ॥

ग्रंथान्तर में बताया है कि एक नक्षत्र में भिन्न चरण होने पर विवाह पुत्र-पौत्रादि प्रद और मेलापक में एक चरण होने से परिणय करने पर प्राण की हानि होती है ॥ ४४१ ॥

ग्रामे वा नगरे वापि राजसेवकयोस्तथा ।
एकऋक्षे भवेत्प्रीतिर्विवाहे दुःखमादिशेत् ॥ ४४२ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि ग्राम या नगर निवासी या स्वामी सेवक का एक नक्षत्र होने पर प्रीति होतो है, पर विवाह में दोनों का एक नक्षत्र होने से हानि होती है ॥ ४४२ ॥

नक्षत्र वश कुछ विशेष परिहार

अथ किंचिद्विशेषः—

ज्योतिर्षचिंतामणौ—

[3]रोहिण्यार्द्रामृगेन्द्राग्नि पुष्यश्रवणपौष्णभम् ।
अहिर्बुध्न्यर्क्षमेतेषां नाडीदोषो न विद्यते ॥ ४४३ ॥

---

१. वि. वृ. ३ अ. ५ श्लो. । २. ज्यो० नि० १४४ पृ० २१ श्लो० ।
१३, ज्यो० नि० ४ प्र० १२ श्लो० ।

ज्योतिष चिन्तामणि में कहा है कि रोहिणी, आर्द्रा, मृगशिरा, पुष्य, श्रवण, रेवती और उत्तराभाद्रपद नक्षत्र होने पर नाडी दोष नहीं होता है ।। ४४३ ।।

विवाहकुतूहले––

शुक्रे जीवे तथा सौम्ये एकराशीश्वरो यदि ।
नाडीदोषो न वक्तव्यः सर्वथा यत्नतो बुधैः ।। ४४४ ।।

विवाह कुतूहल में कहा है कि शुक्र; गुरु, बुध में से यदि अन्यतम दोनों (वर-कन्या) के राश्यधिप मेलापक में एक हो तो पण्डितों को यत्नपूर्वक नाडी दोष नहीं कहना चाहिये ।। ४४४ ।।

नाडी गुण ज्ञान

मार्तंडः––

[1]अथो नाडिभेदे गजाः ।

मुहूर्त मार्तण्ड में बताया है कि वर-वधू की पृथक्-पृथक् नाडी होने पर ८ गुण होते हैं । एक नाडी होने पर गुणाभाव होता है ।

अथ युञ्जा प्रीतिः

युञ्जाप्रीति ज्ञान (रज्जुकूट)

श्रीपतिः––

[2]षट्पौष्णतो द्वादशशंकराच्च पौरंदराद्भानि नव क्रमेण ।
पूर्वार्धमध्यापरभागयुंजि चिरंतन-ज्योतिषिकैः स्मृतानि ।। ४४५ ।।

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि रेवती से मृगशिरा तक ६ नक्षत्र पूर्व भाग संज्ञक आर्द्रा से अनुराधा तक १२ नक्षत्र मध्यभाग संज्ञक और ज्येष्ठा से उत्तराभाद्रपद तक ९ नक्षत्र परभाग संज्ञक होते हैं, ऐसा प्राचीन ज्योतिषियों ने निर्देश किया है ।। ४४५ ।।

युन्जा का फल

[3]पूर्वभागयुजिभे पतिःप्रियो योषितामपरभागयोगिनी ।
स्त्रीनृणां भवति मध्ययागिनि प्रेमनूनमुभयोः परस्परम् ।। ४४६ ।।

जब कि मेलापक में पूर्व भाग में दोनों के नक्षत्र होते हैं तो स्त्रियों का पति में विशेष प्रेम, पर भाग युन्जा में वर-वधू के नक्षत्र होने पर पुरुष को स्त्री विशेष प्यारी और मध्य भाग में दोनों के नक्षत्र होने से परस्पर प्रगाढ प्रेम होता है ।। ४४६ ।।

पुनः ग्रन्थान्तर से सफल युन्जा प्रीति ज्ञान

[4]रामोपि—

पौष्णेशशाक्राद्रससूर्यनंदा पूर्वार्द्धमध्यापरभागयुग्मम् ।
भर्ताप्रियः प्राग्युजिभे स्त्रियाः स्यान्मध्य द्वयोः प्रेमपरे प्रिया स्त्री ।। ४४७ ।।

१. वृ० ज्यो० सा० १७५ पृ० ९५ श्लो० ।
२. ज्यो. नि. १४७ पृ. १ श्लो. ।
३. ज्यो. नि. १४७ पृ. १ श्लो. ।
४. ज्यो. नि. १४७ पृ. १ श्लो. ।

राम दैवज्ञ ने बताया है कि रेवती से ६ नक्षत्र तक की पूर्व संज्ञा, आर्द्रा से १२ नक्षत्र तक की मध्यभाग संज्ञा और ज्येष्ठा से ९ नक्षत्र तक की पर भाग संज्ञा है पूर्व भाग में दोनों के नक्षत्र हों तो स्त्री का पति पर अधिक प्रेम, मध्यभाग में दोनों का परस्पर प्रेम और परभाग में पति का पत्नी पर अधिक प्रेम होता है ॥ ४४७ ॥

अथ वर्गविचारः—

अब उक्त कूटों में वर्ग का विचार कैसे किया जाता है, इसे बतातें हैं।

वर्णमाला के सम्पूर्ण अक्षरों को आठ भागों में विभक्त करके अर्थात् अ वर्ग, क वर्ग च वर्गादि जान कर उनके स्वामी वश जो शुभाशुभ होता है, उसे वर्ग विचार कहा जाता है।

वर्ग स्वामी

[1]वर्गेशास्तार्क्षमार्जारसिंहश्वव्यालमूषकाः।
मृगश्च शशकस्तत्र स्ववर्गात्पंचमो रिपुः ॥ ४४८ ॥

अ वर्ग का गरुड, क वर्ग का विडाल, च वर्ग का सिंह, ट वर्ग का श्वान, त वर्ग का सर्प, प वर्ग का मूषक, य वर्ग का मृग और श वर्ग का स्वामी मेष होता है। प्रत्येक वर्ग का अपने से पाँचवाँ जो वर्ग होता है उससे शत्रुता होती है ॥ ४४८ ॥

स्पष्टार्थ सारिणी

सं.	वर्ण	वर्ग	वैर	सं.	वर्ण	वर्ग	वैर
१.	अ,इ,उ, आदि समस्त १६	गरुड	सर्प	५.	त,थ,द,ध,न	सर्प	गरुड
२.	क,ख,ग,घ,ङ	मार्जार	मूषक	६.	प,फ,ब,भ,म	मूषक	विडाल
३.	च,छ,ज,झ,ञ	सिंह	मृग	७.	य,र,ल,व	मृग	सिंह
४.	ट,ठ,ड,ढ,ण	श्वान	मेष	८.	श,ष,स,ह	मेष	श्वान

वर दूर विचार

अथ वरदूरः—

[2]स्त्रीराशेर्वरभं दूरे कन्यादूरं शुभावहम्।
व्यस्तान्नृदूरमशुभं व्यस्तत्वात्तदपीडनम् ॥ ४४९ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है कि स्त्री की राशि से वर की राशि दूर हो तो यह स्त्री-दूर शुभ फलदाता होता है और इसके विपरीत में नृदूर अशुभ माना गया है। यदि अशुभ नृदूर में वश्य शुभ हो तो अशुभ नृदूर भी शुभ होता है ॥ ४४९ ॥

दूरत्व का फल

कन्यादूरं शुभं प्रोक्तं वरदूरं न कारयेत्।
मिथ्यैतद्भाषितं मूर्खैर्ग्रहमैत्र्या यतः शुभम् ॥ ४५० ॥

---

१. ज्यो० नि० १४६ पृ० ४५ श्लो०। २. ज्यो० नि० १४६ पृ० ४५ श्लो०।

कन्या दूर शुभ होता है और वर दूरता में विवाह नहीं करना जो मूर्खों ने कहा है वह मिथ्या ही है क्योंकि ग्रह मैत्री होने पर यह शुभ होता है ॥ ४५० ॥

कन्या दूर विचार

अथ कन्यादूरः—

कन्याया जन्मर्क्षाद्द्वादशमायनवमरन्ध्रेषु ।
वरराशिस्तत्कन्यादूरं विपर्यये पुंसाम् ॥ ४५१ ॥

जब कि कन्या की राशि से १२।११।९।८ वें वर की राशि होती है तो कन्या दूर होता है और इसके विपरीत में वर दूर होता है ॥ ४५१ ॥

नक्षत्र वश दूरता ज्ञान

नारदः—

[1]स्त्रीधिष्ण्यादाद्यनवके स्त्रीदूरमति निंदितम् ।
द्वितीये मध्यमं श्रेष्ठं तृतीयं नवमे धनम् ॥ ४५२ ॥

ऋषि नारद ने कहा है कि स्त्री के जन्म नक्षत्र से प्रथम नवक में वर का नक्षत्र होने पर कन्या दूर अधिक निन्दनीय, दूसरे नवक (१०-१८) में होने पर मध्यम और तीसरे नवक में (१९–२७) स्थित हो तो श्रेष्ठ फल होता है ॥ ४५२ ॥

विशेष बात

[2]भामिनी जन्मनक्षत्राद्द्वितीयं पतिजन्मभम् ।
न शुभं भर्तृनाशाय कथितं ब्रह्मयामले ॥ ४५३ ॥

कन्या के नक्षत्र से पति का नक्षत्र दूसरा हो तो ब्रह्मयामल में कहा है कि इसमें पति का विनाश होने से अशुभ होता है ॥ ४५३ ॥

सेवा में दूसरे नक्षत्र का फल

[3]प्रथमं सेव्यजन्मर्क्षं द्वितीयं सेवकस्य च ।
न सेवा सुस्थिरा तस्य जलबुद्बुदवत्प्रिये ॥ ४५४ ॥

जब कि पहिले सेव्य का नक्षत्र प्रथम और सेवक का नक्षत्र द्वितीय होता है तो सेवक की सेवा स्थिर नहीं होती जैसे जल में बबूलों की स्थिरता नहीं होती है ॥ ४५४ ॥

ऋण गहण में २ य नक्षत्र का फल

[4]ऋणग्राहकजन्मर्क्षं प्रथममृणदस्य भम् ।
द्वितीयमृणसम्बन्धो न कर्तव्यः कदाचन ॥ ४५५ ॥

जब कि ऋण ग्रहण कर्ता का नक्षत्र प्रथम और कर्जा देने वाले का दूसरा नक्षत्र होता है तो ऐसी परिस्थिति में ऋण सम्बन्ध कभी नहीं करना चाहिये ॥ ४५५ ॥

---

१. मु० चि० ६ प्र० ३५ श्लो० । २. मु. चि. ६ प्र. ३८ श्लो. पी. टी. ।
३. मु. चि. ६ प्र. ३८ श्लो. पी. टी. । ४. मु. चि. ६ प्र. ३८ श्लो. पी. टी. ।

ग्रामवास में २ य नक्षत्र का फल

[1]ग्रामभं प्रथमं यस्य द्वितीयं जन्मभं भवेत् ।
न ग्राह्यः सर्वथा ग्रामो यतः सर्वार्थनाशनः ॥ ४५६ ॥

जिसके जन्म नक्षत्र से निवास ग्राम का नक्षत्र दूसरा होता है तो उसमें समस्त विनाश होने के नाते निवास नहीं करना चाहिये ॥ ४५६ ॥

इसका परिहार ज्ञान

अस्यापवादः—

एकराशौ पृथग्धिष्ण्ये अंत्यांत्यौ चरणौ यदा ।
अतीव शोभनः प्रोक्तो द्वितीयस्थो न दोषकृत् ॥ ४५७ ॥

एक राशि में पृथक्-पृथक् नक्षत्र होने पर जब अन्त्य, अन्तिम चरण दोनों के हों तो अत्यन्त अच्छा फल होता है । इसलिये द्वितीयस्थ नक्षत्र का दूषित फल नहीं होता है ॥ ४५७ ॥

पुनः प्रकारान्तर से अपवाद

एकराशौ पृथगृक्षे एकर्क्षे भिन्नराशिगः ।
एकाधिपत्यमैत्रे वा द्वितीयं स्वामिभं शुभम् ॥ ४५८ ॥

दोनों की एक राशि व भिन्न-भिन्न नक्षत्र होने पर या एक नक्षत्र में भिन्न राशि में या एक स्वामित्व या राशि स्वामियों की मित्रता होने पर दूसरे नक्षत्र का दोष नहीं होता है ॥ ४५८ ॥

अब आगे कथित समस्त कूट गुणों में, मिलान करने पर प्राप्त गुणों के अनुसार उत्तमादि फल को बताते हैं ।

गुण योग चिन्तन

[2]गुणैः षोडशभिर्निन्द्यं मध्यमं विंशतिस्तथा ।
श्रेष्ठं त्रिंशद्गुणं यावत्परतस्तूत्तमोत्तमम् ॥ ४५९ ॥

वर-वधू के उक्तरीति के अनुसार गुणानयन करने पर जब सोलह गुणों की लब्धि होती है तो तुच्छ फल, २० में मध्यम और ३० तीस तक उत्तम तथा इससे आगे अधिक क्रम होने पर उत्तमोत्तम फल की प्राप्ति होती है ॥ ४५९ ॥

[3]सद्भकूट इति ज्ञेयं दुष्टकूटेथ कथ्यते ।
निन्द्यं गुणैर्विंशतिभिर्मध्यमं पंचविंशतिः ॥ ४६० ॥
[4]तत्परैः पंचभिः श्रेष्ठं ततः श्रेष्ठतरं गुणैः ॥ ४६१ ॥

उक्त फल शुभ कूट होने पर समझना और अशुभ कूट होने पर २० गुण प्राप्ति में निन्द्य फल, २५ मिलने पर मध्यम और ३० होने पर श्रेष्ठ एवं इससे भी अधिक प्राप्त होने पर श्रेष्ठ तर फल होता है ॥ ४६०–४६१ ॥

---

१. मु. चि. ६ प्र. ३८ श्लो. पी. टी. ।
२. बृ. ज्यो. सा. १८५ पृ. ११२ श्लो. तथा ज्यो. नि. १४८ पु. ।
३. ज्यो. नि. १४८ पृ. ।   ४. ज्यो. नि. १४८ पृ. ।

दूषित भकूटादि परिहार

अथ दुष्टभकूटे शान्तिः—

[1]मुहूर्तमार्तण्डे —

द्व्यर्के ताम्रसुवर्णमष्टरिपुके गोयुग्ममर्थांकके
रौप्यं कांस्यमथैकनाडियुजिगो स्वर्णादि दत्त्वोद्वहेत् ॥ ४६२ ॥

मुहूर्तमार्तण्ड में कहा है कि द्वितीय–द्वादश भकूट में तांवा, सोना दान करने पर ६।८ में दो गाय का, ९।५ में चाँदी कांसा और नाडी होने एक पर सुवर्णादि का दान करके विवाह करने पर दूषित फल की प्राप्ति नहीं होती है ॥ ४६२ ॥

ग्रन्थान्तर से परिहार

उद्वाहतत्त्वे—

[2]ताम्रं हेमधनव्यये रजतयुक्कांस्यं शरांके वृषं
गां दद्याच्च षडष्टके द्विजभुजि स्वर्णं च नाडीयुता ॥ ४६३ ॥

उद्वाहतत्त्व में कहा है कि द्विर्द्वादश दोष में तांवा व सोने का, नवम पञ्चम में चाँदी, कांसे का, षडाष्टक में बैल व गाय का और एक नाडी दोष होने पर सुवर्ण का दान करके उद्वाह उचित होता है ॥ ४६३ ॥

प्रकारान्तर से परिहार

[3]गुरुः —

दोषापनुत्तये नाड्या मृत्युंजयजपादिकम् ।
विधाय ब्राह्मणांश्चैव तर्पयेत्कांचनादिना ॥ ४६४ ॥

आचार्य गुरु ने कहा है कि नाडी दोष दूर करने के लिये मृत्युञ्जय का जप कराकर ब्राह्मणों की संतुष्टि के लिये उन्हें सुवर्ण देना चाहिये ॥ ४६४ ॥

पुनः प्रकारान्तर से वर्णादिक परिहार

[4]हिरण्मयीं दक्षिणां च दद्याद्वर्णादिकूटके ।
गावोन्नं वसनं हेमं सर्वदोषापहारकम् ॥ ४६५ ॥

वर्णादिकूट दुष्ट हों तो ब्राह्मणों को सुवर्णमयी दक्षिणा देना और समस्त दोष निवृत्ति के लिये गाय, अन्न, वस्त्र व सुवर्ण का दान करना चाहिये ॥ ४६५ ॥

ग्रन्थान्तर से भकूट का परिहार

राजमार्तण्डे—

[5]षडष्टके गोमिथुनं प्रदद्यात्कांस्यं सरौप्यं नवपंचमे च ।
देयं च वस्त्रं कनकाश्वयुक्तं द्विर्द्वादशे ब्राह्मणभोजनं च ॥ ४६६ ॥

---

१. प्र. ४ श्लो. ९ । २. मु. मा. ४ श्लो. पी. टी. ।
३. मु. चि. ६ प्र. ३४ श्लो. पी. टी. । ४. मु. चि. ६ प्र. ३४ श्लो. पी. टी. ।
५. ज्यो. नि. १४७ पृ. ।

राजमार्तण्ड में कहा है कि षडष्टक में दो गाय का, नवमपञ्चम में चाँदी व काँसे का और द्विर्द्वादश दोष में वस्त्र, सुवर्ण व घोडा का दान करके ब्राह्मण भोजन से दूषितता समाप्त होती है ॥ ४६६ ॥

[1]ज्योतिःप्रकाश—

निषिद्धमेलके शांति कृत्वा दानं यथोदितम् ।
दत्त्वोद्वाहं प्रकुर्वीत प्रशस्तं शौनकादिभिः ॥ ४६७ ॥

ज्योतिः प्रकाश में बताया है कि निषिद्ध मेलापक में शान्ति करके उक्त दान देने से शौनकादि ऋषियों ने विवाह शुभ माना है ॥ ४६७ ॥

सदलादि विचार

सदलादिविचारः—

चण्डेश्वरः—

यदि ब्रह्मा स्वयं विष्णुः पवनोथ पुरन्दरः ।
स्ववर्गं द्विगुणं कृत्वा परवर्गेण योजयेत् ॥ ४६८ ॥
चतुर्भिश्च हरेद्भागं शेषं चरणमुच्यते ।
एकेन सदलं प्रोक्तं द्वाभ्यां तु रुक्ममेव च ॥ ४६९ ॥
त्रिभिः स्वर्णं विजानीयाच्चतुर्भिस्ताम्र उच्यते ।

आचार्य चण्डेश्वर ने बताया है कि स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, पवन इन्द्र भी हो तो भी अपने वर्ग को दो से गुणा करके दूसरे की वर्ग संख्या जोड़कर उसमें चार का भाग देने से शेष वश चरण होता है। यदि एक शेष हो तो सदल, दो में रुक्म, तीन में सुवर्ण और शून्य शेष होने से ताम्रचरण होता है ॥ ४६८–४६९½ ॥

सदलादि का फल

सदले पुत्रसौभाग्यं रुक्मे लक्ष्मीः प्रकीर्तिता ॥ ४७० ॥
स्वर्णे दौर्भाग्य वै पुत्रं ताम्रे क्लेशं सदैव हि ॥ ४७१ ॥

सदल शेष में पुत्र सौभाग्य, रुक्म में लक्ष्मी, स्वर्ण में दौर्भाग्य पुत्र और ताँबे के चरण में सदा क्लेश होता है ॥ ४६९½–४७१ ॥

निश्चय दान ज्ञान

अथ निश्चयदानम्—

आदौ तातं परं पश्येत्पश्चाद्धनकुलं तथा ।
यदि तातं वरं दोषं न वित्तेन कुलेन किम् ॥ ४७२ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि प्रथम जिसको कन्या देनी हो तो वर उसके पिता को देख लेने के पश्चात् उसके धन एवं कुल को देखना चाहिये। यदि वर का पिता या वर दोष युक्त हो तो उसके धनादि से क्या मतलब अर्थात् उसे कन्या नहीं देनी चाहिये ॥४७२॥

१. ज्यो. नि. १४७ पृ.।

निश्चय के समय शुद्धि

[1]पुण्याहे च विवाहर्क्षे चित्रावस्वग्निविष्णुभे ।
लब्ध्वा चन्द्रबलं दद्यान्निश्चयं सत्यया गिरा ॥ ४७३ ॥

कन्या दान का निश्चय पवित्र दिन, विवाहोक्त नक्षत्र और चित्रा, धनिष्ठा, कृत्तिका, श्रवण नक्षत्र में चन्द्रमा के बली होने पर सत्यवाणी से देने का निश्चय करना ॥४७३॥

[2]शुभे लग्नेऽग्निसांनिध्ये स्नातां पुण्यामरोगिणीम् ।
तत्कालोपस्थिते कन्यां प्रदास्यामि सुलक्षणे ॥ ४७४ ॥

शुभ लग्न में अग्नि के सम्मुख, पवित्र रोगहीन कन्या को स्नान कराकर उस समय उपस्थित सुन्दर लक्षणों से युक्त को मैं कन्या दे रहा हूँ ॥ ४७४ ॥

उत्तमे तु कुले जाता दशदोषविवर्जिता ।
इमां कन्यां प्रदास्यामि द्विजदेवाग्निसंनिधौ ॥ ४७५ ॥

यह मेरी कन्या उत्तम कुल में उत्पन्न हुई है और दस दोषों से हीन है मैं ब्राह्मण और अग्नि के सम्मुख दे रहा हूँ ॥ ४७५ ॥

[3]यदि त्वं पतितो न स्याद्दशदोषविवर्जितः ।
तुभ्यं कन्यां प्रदास्यामि द्विजदेवाग्निसंनिधौ ॥ ४७६ ॥

यदि दस दोषों से रहित तू पतित न हो तो तेरे लिये मैं ब्राह्मण व अग्नि के सामने कन्या दे रहा हूँ ॥ ४७६ ॥

देवाश्च ऋषयो विप्राः पितरः कुलदेवताः ।
मदीयाः साक्षिणो वाचा निश्चयोऽस्मिन्महाजनाः ॥ ४७७ ॥
[4]तुभ्यं कन्यार्थिने वाचा कन्यादानप्रतिश्रुताम् ।
तन्निश्चयार्थं मद्दत्तान् स्वीकुरुष्व फलाक्षतान् ॥ ४७८ ॥
वाचा दत्ता मया कन्या पुत्रार्थे स्वीकृता त्वया ।
कन्यावलोकनविधौ निश्चितस्त्वं सुखी भव ॥ ४७९ ॥

इस मेरे वाणी से निश्चित कार्य में देवता, ऋषि, ब्राह्मण, कुल देवता बड़े लोग साक्षी हैं । हे कन्या के अर्थी तुमको वाणी से कन्या दान करता हूँ ।

उस निश्चय के लिये मेरे दिये हुए इन फल व अक्षतों को स्वीकार करो मैंने वाणी से कन्या दी है और तुमने पुत्र की इच्छा से स्वीकृति दी है अतः कन्या देखने की विधि में निश्चिन्त होकर तुम सुखी हो जाओ ॥ ४७७–४७९ ॥

ततः वरपितावचनम् ।
[5]वाचा दत्ता त्वया कन्या पुत्रार्थे स्वीकृता मया ।
वरावलोकनविधौ निश्चितस्त्वं सुखी भव ॥ ४८० ॥

---

१. ज्यो. नि. १४८ पृ. २ श्लो. । २. ज्यो. नि. १४८ पृ. ।
३. ज्यो. नि. १४८ पृ. ३ श्लो. । ४. ज्यो. नि. १४ पृ. ४ श्लो० ।
५. मु० चिं० ६ प्र० १० श्लो० पी० टी० ।

पितृतश्चैकविंशश्च मातृतश्चैकविंशतिः ।
उभौ तौ द्वे च चत्वारिंशद्वाक्प्रमाणं ददामि ते ।। ४८१ ।।

वरं विचार्य वृणुयान्नारदोक्तिमतः शृणु ।
एतत्सर्वं पुराणोक्तं तदेवात्र नियोजयेत् ।। ४८२ ।।

इसके पश्चात् वर के पिता का प्रति वचन—तुमने जो वाणी से कन्या दी है उसे मैंने वंश वृद्धि के लिये स्वीकार किया है । अतः आप वर के अन्वेषण से निश्चित होकर सुखी बनो ।

एक ओर पिता से बीस पीढ़ी, दूसरी ओर माता से २० पीढ़ी और दो स्वयं (कन्या के माता-पिता) इस प्रकार ४२ जनों के वाक्य को इस दान में प्रमाण समझो ।।

वर का विचार करके ही वरण करना चाहिये । अब नारद की उक्ति को सुनो । यह सब पुराण में प्रतिपादित विवाह में भी नियोजन करना चाहिये ।। ४८०–४८२ ।।

वरवरण मुहूर्त

अथ वरवरणम्—

व्यवहारचण्डेश्वरः—

[1]पूर्वात्रितयमाग्नेय उत्तरात्रितयं तथा ।
रोहिणी तत्र वरणे कन्याभ्रात्रा द्विजेन वा ।। ४८३ ।।

व्यवहार चण्डेश्वर में कहा है कि पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, कृत्तिका, रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा में ब्राह्मण अथवा कन्या के भाई से वरण कराना चाहिये ।। ४८३ ।।

वरस्य वरणं कुर्यात्सौम्यवारे विधोर्बले ।
शुभयोगे सुलग्ने च विवाहर्क्षे न रिक्तके ।। ४८४ ।।

वर का वरण शुभग्रह के वार में चन्द्रमा के बली होने पर, शुभ योग, सुन्दर लग्न, विवाहोक्त नक्षत्रों में रिक्ता तिथि से भिन्न तिथियों में करना चाहिये ।। ४८४ ।।

रामोपि—

[2]धरणिदेवोथवा कन्यकासोदरः शुभदिने गीतवाद्यादिभिः संयुतः ।
वरवृतिं वस्त्रयज्ञोपवीतादिना ध्रुवयुतैर्वह्निपूर्वात्रयैराचरेत् ।

मुहूर्त चिन्तामणि में कहा है कि ब्राह्मण अथवा कन्या के सहोदर भाई से शुभ दिन में गीत वाद्यादि के साथ वस्त्र. यज्ञोपवीत, फल, मिठाई से ध्रुव नक्षत्र व कृत्तिका, तीनों पूर्वा नक्षत्रों में वर का वरण कराना चाहिये ।

---

१. मु० चि० ६ प्र० ११ श्लो० पी० टी० ।
२. मु० चि० ६ प्र० ११ श्लो० ।

अन्योपि—

वरवृत्तिं शुभे काले गीतवाद्यादिभिर्युतः ।
ध्रुवभे कृत्तिका पूर्वा कुर्याद्वापि विवाहभे ॥ ४८५ ॥
[1]उपवीतं फलं पुष्पं वासांसि विविधानि च ।
देयं वराय वरणे कन्याभ्रात्रा द्विजेन वा ॥ ४८६ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि शुभ दिन में गीत वाद्यादि के साथ ध्रुव नक्षत्र या कृत्तिका या तीनों पूर्वा या विवाह में कथित नक्षत्रों में वर का वरण, यज्ञोपवीत, फल, पुष्प, अनेक प्रकार के कपड़े कन्या का भाई या ब्राह्मण से वर को दिलाकर उसका वरण करना चाहिये ॥ ४८५–४८६ ॥

कन्या वरण मुहूर्त

अथ कन्यावरणम्—

[2]पूर्वात्रयं श्रवणमित्रभवैश्वदेवहोतासवासवसमीरणदैवतेषु ।
द्राक्षाफलेक्षुकुसुमाक्षतपूर्णपाणिरश्रांतशांतहृदयो वरयेत्कुमारीम् ॥४८७॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ, पूर्वभाद्रपद, श्रवण, अनुराधा, उत्तराषाढ, कृत्तिका, धनिष्ठा, स्वाती नक्षत्र में द्राक्षा (अंगूर, मुनक्कादि) गन्ना, पुष्प अक्षतों से पूर्ण पाणि, थका हुआ न होकर व शान्त चित्त से कन्या का वरण करना चाहिये ॥ ४८७ ॥

सुखप्रबोधे सुदेवः—

वह्निर्धनिष्ठा श्रवणत्रिपूर्वा स्वात्युत्तराषाढ्यनुराधिकाभे ।
विवाहभे वापि शुभे दिनेषु कुर्याद्विवृत्तिं मदनातुरीयाम् ॥ ४८८ ॥

सुख प्रबोध में सुदेव ने बताया है कि कृत्तिका, धनिष्ठा, श्रवण, तीनों पूर्वा, स्वाती, उत्तराषाढ, अनुराधा नक्षत्र में या विवाहोक्त नक्षत्र में शुभ दिन में कन्या का वरण करना चाहिये ॥ ४८८ ॥

कश्यपः—

[3]पञ्चाङ्गशुद्धदिवसे चन्द्रताराबलान्विते ।
विवाहोक्तेषु ऋक्षेषु कुजवर्जितवासरे ॥ ४८९ ॥
[4]मासाद्यदिवसं रिक्तामष्टमीं नवमीतिथिम् ।
त्यक्त्वान्यदिवसे गंधस्रक्तांबूलफलान्वितैः ॥ ४९० ॥
[5]सह वृद्धैर्द्विजगणैर्वरयेत्कन्यकां सतीम् ॥ ४९१ ॥

---

१. मु. चि. ६ प्र. ११२. श्लो. पी. टी. । २. मु. चि. ६ प्र. १० श्लो. पी. टी. ।
३. मु० चि० ६ प्र० १० श्लो० पी० टी० । ४. मु. चि. ६ पृ० १० श्लो० पी० टी० ।
५. मु० चि० ६ पृ० ०१ श्लो० पी०टी० ।

ऋषि कश्यपजी ने बताया है कि पञ्चाङ्ग से शुद्धि दिन में चन्द्र व तारा के बली होने पर, विवाह में विहित नक्षत्रों में, भौमवार से हीन वार में, मास के आदि दिन, रिक्ता, अष्टमी को छोड़कर अन्य तिथियों में ब्राह्मण व वयोवृद्धों के साथ गन्ध, माला, ताम्बूल (पान) व फलों से कन्या का वरण करना चाहिये ॥ ४८९–४९१ ॥

रामः—

[1]वैश्वस्वातीवैष्णवपूर्वात्रयमैत्रे वस्वाग्नेयैर्वा करपीडोचितऋक्षैः ।
वस्त्रालङ्कारादिसमेतैः फलपुष्पैः संतोष्यादौ स्यादनु कन्यावरणं हि ।

मुहूर्त चिन्तामणि में कहा है कि उत्तराषाढ़, स्वाती, श्रवण, तीनों पूर्वा, अनुराधा, धनिष्ठा, कृत्तिका अथवा विवाह के नक्षत्रों में वस्त्र, अलङ्कारादि, पुष्प, फलयुक्त कन्या की प्रसन्न मुद्रा के पश्चात् कन्या का वरण करना चाहिये ॥ ४९२ ॥

विशेष—प्रकाशित मुहूर्त चिन्तामणि में 'विश्वस्वाती' पाठ है ॥ ४९२ ॥

वाणी से सम्बन्ध निश्चय करने के पश्चात् वर मरण में विशेष (संकल्प)

अथ वाग्दानोत्तरं वरमरणे विशेषः—

अद्भिर्वाचा च दत्तायां म्रियेतोर्ध्वं वरो यदि ।
न च मंत्रोपनीता स्यात्कुमारी पितुरेव सा ॥ ४६२ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि जल (संकल्प) व वाणी से कन्या देने का निश्चय करने के पश्चात् यदि वर का मरण हो जाय तो अमन्त्रक कन्या पिता की ही होती है अर्थात् उसका दूसरे वर के साथ परिणय करना चाहिये ॥ ४९२ ॥

वाग्दानानन्तर विदेश वास में विशेष

देशांतरगमने तु कात्यायनः—

वरयित्वा तु यः कश्चित्प्रवसेत्पुरुषो यदा ।
ऋत्वागमांस्त्रीनतीत्य कन्यान्यं वरयेत्पतिम् ॥ ४९३ ॥

ऋषि कात्यायन ने बताया है कि कन्या का वरण करके जो पुरुष विदेश का प्रवासी होता है तो तीन ऋतुओं को व्यतीत करके कन्या के लिए दूसरे पति का वरण करना चाहिये ॥ ४९३ ॥

पुनः विशेष

याज्ञवल्क्यः—

दत्तामपि हरेत्पूर्वाच्छ्रेयांश्च वर आव्रजेत् ॥ ४९४ ॥

वसिष्ठः—

कुलशीलविहीनस्य षंढादिपतितस्य च ।
अपस्मारी विधर्मस्य रोगिणां वेषधारिणाम् ॥ ४९५ ॥
दत्तामपि हरेत्कन्यां सगोत्रोढां तथैव च ॥ ४९६ ॥

---

१. मु० चि० ६ प्र० १० श्लो० ।

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि कुल व शील से रहित, नपुंसकादि, पतित, मिर्गी के रोगी, विधर्मी, रोगी, वेशधारी को कन्या देकर भी वापिस करना तथा सगोत्रोढा को भी वापिस करना ॥ २९५-२९६ ॥

अथ विवाहे वाग्दानानन्तरं कुलमध्ये कस्यचिन्मरणप्राप्ते विचारः—

अब आगे विवाह में सम्बन्ध पक्का होने पर यदि कुल में किसी की मृत्यु हो जाय तो क्या करना चाहिये, इसे बताते हैं।

किसी के मरण में विचार

स्मृतिचन्द्रिकायाम्—

[1]कृते वाङ्निश्चये पश्चान्मृत्युर्भवति गोत्रिणः।
तदा न मङ्गलं कार्यं नारीवैधव्यदं ध्रुवम् ॥ ४९७ ॥

स्मृतिचन्द्रिका में कहा है कि विवाह का वाणी से निश्चय होने पर यदि कुल में किसी व्यक्ति का मरण हो जाय तो विवाह नहीं करना, क्योंकि उक्त स्थिति में विवाह करने पर स्त्री निश्चय ही विधवा होती है ॥ ४९७ ॥

विशेष—'येऽपिस्यान्मृत्युर्मर्त्यस्य गो' यह ज्योतिर्निबन्ध में पाठ है ॥ ४९७ ॥

मेधातिथिः

[2]वधूवरार्थं घटिते सुनिश्चिते वरस्य गेहेप्यथ कन्यकायाः।
मृत्युर्यदि स्यान्मनुजस्य कस्यचित्तदा न कार्यं खलु मङ्गलं बुधैः ॥४९८॥

ऋषि मेधातिथि ने कहा है कि जब वर-वधू के विवाह की पूर्ण तैयारी हो जाय और विवाह से पूर्व किसी सगोत्र व्यक्ति का निधन वर या कन्या पक्ष में समागत हो तो विवाह नहीं करना चाहिये ॥ ४९८ ॥

विशेष—ज्यो० नि० 'मृतिर्भवेत्तन्मनुजस्य' यह पाठ है ॥ ४९८ ॥

गर्गः—

[3]कृते तु निश्चये पश्चान्मृत्युर्भवति कस्यचित्।
तदा न मङ्गलं कुर्यात्कृते वैधव्यमाप्नुयात् ॥ ४९९ ॥

आचार्य गर्ग ने बताया है कि विवाह का निश्चय होने के पश्चात् यदि किसी की कुल में मृत्यु हो जाय तो विवाह नहीं करना और करने पर वैधव्यता प्राप्त होती है ॥ ४९९ ॥

विशेष—'कृतेऽपि मृत्युर्भर्त्यस्य' यह ज्यो० नि० में है ॥ ४९९ ॥

प्रतिकूलता ज्ञान

[4]पुरुषत्रयपर्यन्तं प्रतिकूलं सगोत्रिणाम्।
प्रवेशानिर्गमौ तद्वत्तथामुण्डनमण्डने ॥ ५०० ॥

---

१. मु. चि. ६ प्र० १७ श्लो. पी. टी. तथा ज्यो. नि. १६२ पृ०।
२. ज्यो. नि. १६२ पृ. २ श्लो.। ३. ज्यो. नि. १६२ पृ. १ श्लो.।
४. मु. चि. ६ प्र० १७ श्लो. पी. टी।

अपने गोत्र का प्रतिकूल (निषिद्धिता) तीन पुरुष पर्यन्त होता है। प्रवेश निर्गम अर्थात् वधू प्रवेश के पश्चात् पुत्री की विदा तथा विवाह के पश्चात् चौल संस्कार ६ मास तक नहीं करना चाहिये ॥ ५०० ॥

प्रतिकूलता होने पर करने का विधान

[1]माण्डव्यः—

अन्येषां तु सपिण्डानामाशौचं माससम्मितम्।
तदन्ते शान्तिकं कृत्वा ततो लग्नं विधीयते ॥ ५०१ ॥

ऋषि माण्डव्य ने बताया है कि अन्य सपिण्ड (सात पुरुष तक) लोगों का तो १ एक मास तक अशौच होता है। इसलिए एक मास के पश्चात् शान्ति करके विवाह आदि करना चाहिये ॥ ५०१ ॥

किसके मरण में अधिक विघ्न

शौनकः—

[2]वरवध्वोः पिता माता पितृव्यश्च सहोदरः।
एतेषां प्रतिकूलं चेन्महाविघ्नप्रदं भवेत् ॥ ५०२ ॥

ऋषि शौनक ने कहा है कि वाग्दान के पीछे वर-वधू के पिता, माता, चाचा, सहोदर को यदि मरण प्राप्त हो तो अधिक विघ्न देनेवाला होता है ॥ ५०२ ॥

प्रतिकूल पुरुष

[3]पितापितामहश्चैव माता वापि पितामही।
पितृव्यस्त्रीसुतो भ्राता भगिनी वा विवाहिता ॥ ५०३ ॥
[4]एभिरेव विपन्नैश्च प्रतिकूलं बुधैः स्मृतम्।
अन्यैरपि विपन्नैश्च केचिदूचुर्न तद्भवेत् ॥ ५०४ ॥

ऋषि शौनकजी का कहना है कि पिता, बाबा, माता, दादी, चाची, पुत्र, भ्राता या विवाहित बहिनमें से किसी की मृत्यु होने पर प्रतिकूलता विद्वानों ने बतलायी है और इनसे अन्यों के विपन्न होने पर किसी के मत में प्रतिकूलता नहीं होती है ॥ ५०३–५०४ ॥

प्रतिकूल में निषेध

[5]माण्डव्यः—

वाग्दानानन्तरं यत्र कुलयोः कस्यचिन्मृतिः।
तदा संवत्सरादूर्ध्वं विवाहः शुभदो भवेत् ॥ ५०५ ॥

ऋषि माण्डव्य ने बताया है कि वाग्दानान्तर यदि वर या वधू पक्ष में किसी की मृत्यु हो जाय तो एक वर्ष के पश्चात् विवाह करना शुभ होता है ॥ ५०५ ॥

---

१. मु. चि. ६ प्र० १७ श्लो० पी० टी०। २. मु० चि० ६ प्र० १७ श्लो० पी० टी०। ३. मु० चि० ६ प्र० १७ श्लो० पी० टी०। ४. मु० चि० ६ प्र० १७ श्लो० पी०टी०। ५. मु० चि० ६ प्र० १७ श्लो० पी० टी०।

अशौच ज्ञान

[1]पितुराशौचमब्दं स्यात्तदर्द्धं मातुरेव च।
मासत्रयं च भार्यायात्तदर्धं भ्रातृपुत्रयोः ॥ ५०६ ॥

स्मृति रत्नावली में कहा है कि विवाह निश्चय होने पर यदि पिता की मृत्यु हो जाय तो एक वर्ष का अशौच और माता के मरण में छः मास, भार्या के मरण में तीन मास एवं भाई व पुत्र के मरने पर डेढ़ मास तक अशुद्धि अर्थात् अशौच होता है ॥ ५०६ ॥

विशेष—ज्यो० नि० में 'पितुरब्दमिहाशौचं तदर्धं मातुरेवच। मासत्रयं तु भार्यायास्तदर्धंभ्रा.....' यह पाठ शुद्ध है ॥ ५०६ ॥

प्रकारान्तर से निषेध

दैवज्ञमनोहरे—

[2]प्रतिकूले सपिण्डस्य मासमेकं विवर्जयेत्।
विवाहस्तु ततः पश्चात्तयोरेव विधीयते ॥ ५०७ ॥

दैवज्ञ मनोहर नामक ग्रन्थ में बताया है कि विवाह से पूर्व योजना बनने पर अर्थात् पूर्ण तैयारी होने पर यदि सपिण्ड में किसी का मरण हो जाय तो एक मास तक विवाह नहीं करना इसके बाद दोनों का करना चाहिये ॥ ५०७ ॥

प्रतिकूल दोष का अभाव

[3]दुर्भिक्षे राष्ट्रभङ्गे च पित्रोर्वा प्राणसंशये।
प्रौढायामपि कन्यायां प्रतिकूलं न दुष्यति ॥ ५०८ ॥

दुर्भिक्ष, राष्ट्रभंग या माता पिता के मरने का संदेह हो तथा कन्या प्रौढा हो तो प्रतिकूलता का दोष नहीं होता है ॥ ५०८ ॥

मेधातिथिः—

दीर्घरोगाभिभूतस्य दूरदेशस्थितस्य च।
उदासवर्तिनश्चैव प्रतिकूलं न विद्यते ॥ ५०९ ॥

ऋषि मेधातिथि का कहना है कि अधिक काल तक रोग से पीड़ित या दूर देश स्थित या उदासीन के मरण होने पर प्रतिकूलता का दोष नहीं होता है ॥ ५०९ ॥

---

१. मु० चि० ६ प्र० १७ श्लो०।
२. ज्यो. नि. १६३ पृ. १३ श्ला०।.
३. मु० चि० ६ प्र० १७ श्लो० पी० टी० तथा ज्यो. नि. १६३ पृ. १७ श्लो.।

[1]सङ्कटे समनुप्राप्ते याज्ञवल्क्येन योगिना।
शान्तिरुक्ता गणेशस्य कृत्वा तां शुभमाचरेत् ॥ ५१० ॥

ऋषि याज्ञवल्क्य ने कहा है कि विवाह में संकट प्राप्त होने पर गणेश की शान्ति करके विवाह करना चाहिए ॥ ५१० ॥

शान्ति न करने पर फल

[2]अकृत्वा शान्तिकं यस्तु निषेधे सति दारुणे।
यः करोति शुभं तावद्विघ्नं तस्य पदे पदे ॥ ५११ ॥

जो कि कठिन निषेध में शान्ति न करके विवाह करता है तो उसको पद-पद पर विघ्नों की प्राप्ति होती है ॥ ५११ ॥

प्रातिकूल्य में करने का विधान

ज्योतिःप्रकाशे—

[3]प्रतिकूलेपि कर्तव्यो विवाहो मासमन्तरा।
शान्तिं विधाय गां दद्याद्वाग्दानादि चरेद्बुधः ॥ ५१२ ॥

ज्योतिः प्रकाश ग्रन्थ में बताया है कि यदि वरण हो गया तो प्रतिकूलता में भी विवाह एक मास के बाद गणेश शान्ति करके करना चाहिए ॥ ५१२ ॥

शीघ्र शुद्धता का कथन

याज्ञवल्क्यः —

दाने विवाहे यज्ञे च संग्रामे देशविप्लवे।
आपद्यपि च कष्टानां सद्यः शौचं विधीयते ॥ ५१३ ॥

ऋषि याज्ञवल्क्य का कहना है कि दान, विवाह, यज्ञ, संग्राम, देश विप्लव, आपत्ति व कष्ट में शीघ्र शुद्धता होती है ॥ ५१३ ॥

दोषाभाव कथन

बृहस्पतिः—

विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरामृतसूतके।
पूर्वं सङ्कल्पितेर्थेषु न दोषः परिकीर्तितः ॥ ५१४ ॥

आचार्य बृहस्पति ने बताया है कि विवाह, यज्ञ, उत्सव, पूर्व संकल्पित कार्यों के मध्य में मरण होने पर दोष नहीं होता है ॥ ५१४ ॥

---

१. मु० चिं० ६ प्र० १९ श्लो० पी० टी० व ज्यो० नि० १६३ पृ० १९ श्लो०।
२. मु० चिं० ६ प्र० १७ श्लो० पी० टी० तथा ज्यो० नि० १६३ पृ. २० श्लो०।
३. ज्यो० नि० १६३ पृ० १२ श्लो० तथा मु० चिं० ६ प्र० १७ श्लो० पी० टी०।

प्रारम्भ होने पर दोष का अभाव

षट्त्रिंशन्मते—

विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरामृतसूतके।
परैरन्नं प्रदातव्यं भोक्तव्यं च द्विजोत्तमैः ॥ ५१५ ॥

षट्त्रिंशन्मत में कहा है कि विवाह, उत्सव और यज्ञ के बीच में मृत सूतक प्राप्त होने पर दूसरों से प्राप्त अन्न का ब्राह्मणों को भोग करना चाहिए ॥ ५१५ ॥

व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे।
प्रारब्धं सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम् ॥ ५१६ ॥

व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम, पूजा, जप का प्रारम्भ होने पर सूतक नहीं प्राप्त होता है। और इनका आरम्भ नहीं होने पर सूतक की प्राप्ति होती है ॥ ५१६ ॥

प्रारम्भ का ज्ञान उन्होंने बताया है

प्रारम्भश्च तेनैवोक्तः।

[1]प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः।
नान्दीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया ॥ १७ ॥

यज्ञ में वरण होने पर, व्रत, उत्सव में संकल्प होने पर, विवाह में नान्दीमुख श्राद्ध होने पर और श्राद्ध में पाक क्रिया होने पर आरम्भ माना जाता है ॥ ५१७ ॥

नान्दी श्राद्ध का विधान

रामाण्डारभाष्ये शुद्धिविवेकेप्येवमेव। नान्दीमुखविधिश्चावश्यकत्वे अधिक उक्तः।

रामाण्डार भाष्य व शुद्धि विवेक में भी ऐसा ही कहा है। नान्दीमुख श्राद्ध विधि आवश्यकता में अधिक कही गई है ॥

[2]एकविंशत्यहर्यज्ञे विवाहे दशवासराः।
त्रिषट्चौलोपनयने नान्दीश्राद्धो विधीयते ॥ ५१८ ॥

संकट होने पर यज्ञ में इक्कीस दिन और विवाह में दस दिन पूर्व, चौल में तीन दिन और यज्ञोपवीत में ६ दिन पहिले नान्दीमुख श्राद्ध होता है ॥ ५१८ ॥

विशेष कथन

[3]विष्णुः—

अनारब्धविशुद्ध्यर्थं कुष्माण्डैर्जुहुयाद्घृतम्।
गां दद्यात्पञ्चगव्याशी ततः शुद्ध्यति सूतकी ॥ १९ ॥

अनारम्भ में सूतक प्राप्त होने पर कूष्माण्ड व घृत से हवन करके, गाय का दान देकर पञ्चगव्य भक्षण करने पर सूतकी की शुद्धि होती है ॥ ५१९ ॥

---

१. ज्यो० नि० १६३ पृ० ६ श्लो० तथा मु० भा० टी०।

२. ज्यो० नि० १६३ पृ० ७ श्लो० तथा मु० भा० टी०।

३. ज्यो० नि० १६३ पृ० ४ श्लो०।

अथ रवीज्यचन्द्रबलम्—

अब आगे विवाह में सूर्य, गुरु व चन्द्र कब बली अर्थात् गोचरीय शुभ होता है इसे बताते हैं।

नारदः—

[1]विवाहे बलमावश्यं दम्पत्योर्गुरुसूर्ययोः।
तत्पूजा यत्नतः कार्या दुर्बलप्रदयोस्तयोः॥ ५२०॥

ऋषि नारद ने बताया है कि विवाह में वर-वधू का गुरु सूर्य बल आवश्यक होता है। इसलिए दोनों का निर्बल गुरु-सूर्य होने पर यत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिए ॥५२०॥

[2]गर्गः—

स्त्रीणां गुरुबलं श्रेष्ठं पुरुषाणां रवेर्बलम्।
तयोश्चन्द्रबलं श्रेष्ठमिति गर्गेण निश्चितम्॥ ५२१॥

विवाह में स्त्रियों का गुरुबल व पुरुषों का सूर्यबल श्रेष्ठ होता है तथा दोनों का चन्द्रबल उत्तम होता है। ऐसा गर्गाचार्य ने निश्चित किया है॥ ५२१॥

दम्पत्योर्बलमावश्यं विवाहे चिन्तयेद्बुधः।
रविश्चन्द्रसुरेज्यानामित्युक्तं त्रिबलं शुभम्॥ ५२२॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि विवाह में गुरु, सूर्य, चन्द्र इन तीनों का शुभ बल विचार करके आदेश करना चाहिये॥ ५२२॥

[3]वसिष्ठः—

यत्रार्कगुर्वोरपि नैधनान्त्यजन्मादिदुःस्थानगयोर्द्वयोर्वा।
एकस्य पूजामपि तत्र कृत्वा पाणिग्रहं कार्यमतः सुसम्यक्॥ ५२३॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि जिस विवाह मुहूर्त में सूर्य व गुरु भी ६।१२।१ दूषित स्थान में हों तो दोनों की या एक ग्रह की सम्यक् पूजा करने पर ही पाणिग्रहण करना चाहिए॥ ५२३॥

वराहः—

गोचरशुद्धयात्विन्दुं कन्याया यत्नतः शुभं वीक्ष्य।
तिग्मकिरणं च पुंसः शेषैरबलैरपि विवाहः स्यात्॥

आचार्य वराह ने कहा है कि गोचरीय चन्द्रमा कन्या का शुभ तथा पुरुष का सूर्य शुभ देखकर अन्य के निर्बल होने पर भी विवाह करना चाहिए॥ ५२४॥

१. ज्यो० नि० १५० पृ० १ श्लो०।

२. ज्यो. नि. १५० पृ. २ श्लो. तथा ज्यो० सा० ११२ पृ०।

३. व० सं० ३२ अ० ३३ श्लो०।

पुनः तीनों (सूर्य, चन्द्र, गुरु) की शुद्धि से विवाह

सुरगुरुबलमबलानां पुरुषाणां तीक्ष्णरश्मिबलमेव ।
चन्द्रबलं दम्पत्योरवलोक्य विशोधयेल्लग्नम् ।। ५२४ ।।

ग्रन्थान्तर में बताया है कि कन्या का गुरुबल, वर का सूर्यबल और दोनों का चन्द्र-बल देखकर विवाह की लग्न का निर्णय विद्वान् को करना चाहिए ।। ५२४ ।।

अथ रविबलम् —

राजमार्तण्डे—

जन्मनि भानौ विधवा पतिसुतयुक्ता भवत्युपचयर्क्षे ।
शेषगृहर्क्षे कन्यानाशः शोकातुरा नूनम् ।। ५२५ ।।

राजमार्तण्ड में कहा है कि जन्म की राशि में सूर्य के रहने पर वर-वधू का विवाह करने पर कन्या विधवा होती है और उपचय (३।६।१०।११) राशि में सूर्य के होने पर विवाह में पति व पुत्र से युक्त तथा शेष राशियों में होने पर कन्या अवश्य शोक से पीड़ित होकर नष्ट होती है ।। ५२५ ।।

मुहूर्तगणपतौ—

चतुर्थे चाष्टमे चैव द्वादशस्थे दिवाकरे ।
वरः पञ्चत्वमाप्नोति कृते पाणिग्रहोत्सवे ।। ५२६ ।।

मुहूर्तगणपति कहा है कि जन्म राशि से ४।८।१२ राशिस्थ सूर्य में पाणिग्रहण करने पर वर की मृत्यु होती है ।। ५२६ ।।

पूज्यस्थान

जन्मस्थिते द्वितीये च पञ्चमे सप्तमेपि वा ।
नवमे भास्करे पूजां कुर्यात्पाणिग्रहोत्सवे ।। ५२७ ।।

जन्म राशि से १।२।५।७।९ राशि में सूर्य के रहने पर सूर्य की पूजा करने पर विवाह मुहूर्त शुभ होता है ।। ५२७ ।।

सूर्य शुभ स्थान

तृतीयश्चैव षष्ठश्च दशमैकादशस्थितः ।
रविः शुभो निगदितो वरस्यैव करग्रहे ।। ५२८ ।।

जन्म राशि से तीसरी, छठी, दशमी या ग्यारहवीं राशि में सूर्य के होने पर विवाह शुभ होता है ।। ५२८ ।।

अन्यः गर्गः—

सूर्यस्त्रिदशमारिस्थस्तथैकादशगः शुभः ।
चतुरष्टान्त्यगोऽनिष्टः शेषस्थानेषु मध्यमः ।। ५२९ ।।

गर्गजी ने बताया है कि जन्म राशि से ३।१०।६।११ राशि में सूर्य विवाह मुहूर्त में शुभ, ४।८।१२ में अशुभ और शेष राशियों में मध्यम होता है ।। ५२९ ।।

कन्या राशि से १२ रा० में सूर्य का फल

चण्डेश्वरः—

बन्ध्या वित्तविवर्जिता प्रमुदिता दौर्भाग्यदुःखातुरा
स्वल्पापत्यवती पतिप्रियतमा बन्धुच्युता बन्धकी।
निःस्वा सौख्यसमन्विता सुतधनप्रीत्यान्विता निःसुखा
व्यूढा च क्रमशः सहस्रकिरणे जन्मादि राशिस्थिते ॥ ५३० ॥

आचार्य चण्डेश्वर ने कहा है कि जन्म राशिस्थ सूर्य में कन्या वन्ध्या, दूसरी राशि में सूर्य के होने पर धन से रहित, तीसरी में प्रसन्नचित्त, चौथी में दूषित भाग्यवाली व दुःखों से पीडित, पाँचवीं में अल्प पुत्र वाली, छठीं में पति की प्यारी, सातवीं में बान्धवों से बहिष्कृत, आठवीं में व्यभिचारिणी, नवीं में धनहीन, दशवीं में सुख से युक्त, ग्यारहवीं में सुख, धन, प्रेम से युक्त और जन्म राशि से बारहवीं राशि में सूर्य के रहने पर विवाह मुहूर्त में कन्या सुख से रहित व विधवा होती है ॥ ५३० ॥

विशेष

द्वितीयपुत्रांकगतः प्रभाकरस्त्रयोदशाहात्परतः शुभप्रदः।
न सप्तजन्मव्ययबन्धुरन्ध्रगः करोति पुंसामपि तादृशं फलम् ॥ ५३१ ॥

जन्म राशि से दूसरी, पाँचवीं, नवीं राशि में सूर्य तेरह दिन के पश्चात् विवाह मुहूर्त में शुभ होता है और ७।१।१२।४।८ राशि में उक्त फल (शुभ) दायी नहीं होता है ॥ ५३१ ॥

गर्गः—

अनिष्टस्थानगे सूर्ये शुभराशिः पुरो भवेत्।
त्रयोदशदिनं त्यक्त्वा शेषस्थं शुभमादिशेत् ॥ ५३२ ॥
अशुभस्थानगे सूर्ये दद्याद्धेनुं सदक्षिणाम् ॥ ५३३ ॥

गर्गाचार्य ने कहा है कि अनिष्ट राशि में सूर्य तेरह दिन के बाद आगे के दिनों में शुभ होता है। अशुभ स्थान में सूर्य के रहने पर दक्षिणा के साथ गाय का दान देना चाहिये ॥ ५३२–५३३ ॥

सूर्य शान्ति

अथादित्यशांतिः[1]—

ब्राह्मणस्योपनयने नानुकूलो भवेद्रविः।
तस्य शांति प्रवक्ष्यामि मंत्रौषधिविधानतः ॥ ५३४ ॥
अत्रोपनयनग्रहणेन विवाहादीनामप्युपलक्षणम्।
उपनयनात्पूर्वेद्युः कृत्वा पुण्याहवाचनम् ॥ ५३५ ॥
गृहस्येशानदिग्भागे गोमयेनोपलेपयेत्।
कुंकुमेनोल्लिखेत्पद्ममष्टपत्रं सकेसरम् ॥ ५३६ ॥

---

१. ज्यो० नि० १५१ पृ० १–८ श्लो०।

सुवर्णेन रविं कृत्वा द्विभुजं पद्मधारणम् ।
कृत्वाज्यभागपर्यन्तं तन्त्रं कृत्वानुपूर्ववत् ॥ ५३७ ॥
स्वशाखोक्तविधानेन आचार्यो होममाचरेत् ।
आकृष्णेनेति मन्त्रेण समिदाज्यचरूञ्जुहेत् ॥ ५३८ ॥
अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा ।
तिलव्रीहींश्च हुत्वाथ होमशेषं समापयेत् ॥ ५३९ ॥
दारपुत्रसमेतस्य अभिषेकं समाचरेत् ।
कुंभाभिमन्त्रणोक्तश्च समुद्रज्येष्ठमन्त्रकैः ॥ ५४० ॥
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्यादन्येभ्यश्च स्वशक्तितः ।
प्रतिमां वस्त्रकुंभं च आचार्याय प्रदापयेत् ॥ ५४१ ॥
एवं यः कुरुते सूर्यः सर्वदोषं विनश्यति ॥ ५४२ ॥

ऋषि शौनक कहते हैं कि मैं अब ब्राह्मण के यज्ञोपवीतादि संस्कार में सूर्य के अनुकूल न होने पर मन्त्र, औषधि से विधि पूर्वक सूर्य की शान्ति को कहता हूँ ॥ ५३४ ॥

यहाँ उपनयन उपलक्षण मात्र होने से विवाहादि में भी अशुभ सूर्य की शान्ति करनी चाहिये, ऐसा कहा गया है ।

यज्ञोपवीत संस्कार से प्रथम दिन में पुण्याह वाचन करा कर अपने घर की ईशान दिशा में गोबर से लिपवाकर रोली से केसर के साथ आठ पत्रों से युक्त कमल बनाने के पश्चात् कमलधारी दो हाथों से युक्त सोने का सूर्य बनवाकर स्थापित करना । पुनः पूजा के अनन्तर अनुक्रम से आज्यभाग पर्यन्त विधि करके अपनी (यजमान) शाखा के विधान से आचार्य को समिधा, घी, चरु से 'आकृष्णेन' इस मन्त्र से हवन के अनन्तर १००८ या १०८ तिल, चावल से आहुति देकर होम शेष का समापन करना । पुनः स्त्री-पुरुष का समुद्रज्येष्ठा आदि मन्त्रों से अभिषेक कराकर ऋत्विजों को दक्षिणा देना तथा ब्राह्मणों को यथाशक्ति दक्षिणा देकर प्रतिमा, वस्त्र व घट को आचार्य को देना चाहिये । इस रीति से जो सूर्य की पूजा करता है, उसके समस्त दोषों का विनाश होता है ॥ ५३४–५४२ ॥

विशेष—ज्योतिर्निबन्ध में ४२ वाँ श्लोक 'एवं यः पूजयेत्सूर्यं सर्वदोषो विनश्यति' पाठ है ॥ ९३४–५४२ ॥

चन्द्रबल ज्ञान

अथ चन्द्रबलम्—

फलप्रदीपे—

स्त्रीणां चन्द्रबलं ग्राह्यं ताराबलसमन्वितम् ।
नाधिकारो नराणां च विवाहे गर्भशोधने ॥ ५४३ ॥

फलप्रदीप में कहा है कि तारावल के साथ स्त्रियों का चन्द्र वल ग्रहण करना चाहिये और विवाह व गर्भशोधन में पुरषो का चन्द्रवल आवश्यक नहीं होता है ।। ५४३ ।।

[१]केशवार्कः—

चन्द्रमस्युपचयात्परिच्युते चारुगोचरचरैः परैरपि ।
कर्तुरायति शुभं सभङ्गुरं निर्दिशन्त्यसितशौनकादयः ।। ५४४ ।।

आचार्य केशवार्क ने वताया है कि उपचय (३।६।१०।११) स्थान से रहित स्थानों में चन्द्रमा के रहने पर और अन्य ग्रहों के वली होने पर भी विवाह मुहूर्त के बाद आने वाले दिनों में वर का विनाश होता है, ऐसा असित, शौनक आदि मुनियों का कहना है ।। ५४४ ।।

चण्डेश्वरः—

इष्टर्क्षगः सुरगुरुः शुभदो यथैव प्रायेण गोचरवशाच्छुभकृत्तथेन्दुः ।
पक्षे सिते भवति जीवनिरीक्षितो वा प्राहुर्वसिष्ठभृगुगौतमगर्गपूर्वाः ।। ५४५ ।।

आचार्य चण्डेश्वर ने कहा है कि जिस प्रकार अभीष्ट राशि में गुरु शुभ फल देने वाला होता है, उसी प्रकार चन्द्रमा गोचर से शुभ फलप्रद होता है अथवा शुक्ल पक्ष में गुरु से दृष्ट शुभ होता है, ऐसा वसिष्ठ, भृगु, गौतम, गर्ग आदि मुनियों ने प्रतिपादित किया है ।। ५४५ ।।

पुनः शुभाशुभ गोचरीय चन्द्रमा

विवाहपटले—

द्यूनजन्मारिपुलाभखत्रिगैश्चन्द्रमाः शुभफलप्रदस्तथा ।
स्वात्मजान्त्यमृतिवन्धुधर्मगैर्विध्यते न विविधैर्ग्रहैर्यदि ।। ५४६ ।।

विवाह पटल में वर्णित है कि ७।१।६।११।१०।३ राशि में चन्द्रमा शुभ फलदायी होता है और २।५।१२।८।४।९ राशियों में अनेक ग्रहों से विद्ध न होने पर शुभ होता है ।। ५४६ ।।

अत्रिः—

चन्द्रो द्विपञ्चनवमेषु शुभः प्रदिष्टः शुक्लेऽथ कष्टफलदः खलु कृष्णपक्षे ।
तुर्येष्टमे व्ययगतोऽपि नरस्य नाशं कुर्यात्सचेच्छुभमिहोच्चनिजर्क्षपूर्णः ।। ५४७ ।।

ऋषि अत्रि ने वताया है कि शुक्ल पक्ष में २।५।९ राशियों में चन्द्रमा शुभ और कृष्ण पक्ष में कष्ट फल देनेवाला होता है तथा ४।८।१२ राशि में वर का नाशक किन्तु उच्च, अपनी राशि में पूर्ण होने पर शुभ होता है ।। ५४७ ।।

स्वर्क्षे स्वोच्चेऽथ मित्रर्क्षे पूर्णे वा रजनीपतिः ।
गोचरे शुभमादत्ते निद्योऽप्यावश्यके विधौ ।। ५४८ ।।

---

[१]२. वि० वृ० ६ अ० ४ श्लो० ।

उच्च राशि, अपनी राशि या मित्र राशि में पूर्ण चन्द्रमा गोचरीय निन्द्य चन्द्रमा आवश्यकता होने पर शुभ होता है ।। ५४८ ।।

चन्द्र शान्ति ज्ञान

अथ चन्द्रशांतिः—

गर्गः —

घृतं कलशोपरि वस्त्रैः युक्तां प्रतिमां रजतघटितां च नैवेद्यादि च होमं च कार्यं तत्राभिषेचनम् ।

घट के ऊपर चाँदी से बनी हुई चन्द्रमा की प्रतिमा को स्थापित करके सफेद वस्त्र व घी से युक्त करके पूजन के पश्चात् नैवेद्य धराकर होम करना तथा पीछे कलश के जल से अभिषेक करना चाहिये ।

घात चन्द्रमा का विचार

अथ घातचन्द्रविचारः—

श्रीपतिः—

एकपञ्चनवयुग्मषट्दशत्रीणि सप्त चतुरष्टलाभगः ।
द्वादशाजसहितो हि राशितो घातचन्द्र इति कीर्तितो बुधैः ।। ५४९ ।।

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि मेष राशिवाले को मेष का चन्द्रमा, वृष राशि वाले को कन्या राशिस्थ, मिथुन को कुम्भ का, कर्क को सिंह का, सिंह को मकर का, कन्या को मिथुन का, तुला को धनु का, वृश्चिक को वृष का, धनु को मीन का, मकर को सिंह का, कुम्भ को धनु का और मीन राशि वाले को कुम्भ राशि का चन्द्रमा घात चन्द्रमा होता है ।। ५४९ ।।

नारदोपि —

भूबाणनवह्स्ताश्च रसो दिग्वह्निशैलजाः ।
वेदावसुशिवादित्या घातचन्द्रो यथा क्रमात् ।। ५५० ।।

ऋषि नारदजी ने भी बताया है कि मेष राशि को प्रथम राशि का, वृष को पाँचवीं राशि का, मिथुन को नवीं राशि का, कर्क राशि को दूसरी राशि का, सिंह को छठी का, कन्या को दसवीं का, तुला को तीसरी का, वृश्चिक को सातवीं का, धनु को चौथी का, मकर को आठवीं का, कुम्भ को ग्यारहवीं का और मीन वाले को बारहवीं राशि का चन्द्रमा घात होता है ।। ५५० ।।

घात चन्द्रमा का त्याग व ग्रहण

यात्रायां शुभकार्येषु घातचन्द्रं विवर्जयेत् ।
विवाहे सर्वमाङ्गल्ये चौलादौ व्रतबंधने ।। ५५१ ।।
घातचन्द्रो नैव चिंत्य इति पाराशरोब्रवीत् ।। ५५२ ।।

यात्रा व शुभ कार्यों में घात चन्द्रमा का त्याग करना, किन्तु विवाह, समस्त माङ्गलिक कार्य, चौलादि व यज्ञोपवीत में घात चन्द्रमा का विचार नहीं करना, ऐसा पाराशर ऋषि का मत है ॥ ५५१-५५२ ॥

घात चन्द्रमा का अग्राह्यत्व

ज्योतिर्निबंधेपि --

विवाहचौलव्रतबंधयज्ञे महाभिषेके च तथैव राज्ञाम् ।
सीमन्तयात्रासु तथैव जाते नो चिन्तनीयः खलु घातचन्द्रः ॥ ५५३ ॥

ज्योतिर्निवन्ध में कहा है कि विवाह, चौल, यज्ञोपवीत, यज्ञ, राजाओं के राज्याभिषेक, सीमन्त व यात्रा में घात चन्द्रमा का विचार नहीं करना चाहिये ॥ ५५३ ॥

उद्वाहकाले व्रतबंधने च सीमन्तयात्रा च तथा निषेके ।
वास्तुप्रवेशे च जलाशये च नो चिंतनीयः खलुः घातचन्द्रः ॥ ५५४ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि विवाह समय, व्रतवन्ध, सीमन्त यात्रा, निषेक, वास्तुप्रवेश और जलाशय निर्माण में घात चन्द्रमा विचारणीय नहीं होता है ॥ ५५४ ॥

गुरुबल ज्ञान

अथ गुरुबलम् —

दुश्चिक्यजन्मांबरशत्रुसंस्थः पूजामभीष्टयत्यमरेशपूज्यः ।
पातालरंध्रव्ययराशिसंस्थः शुभप्रदः स्यान्न स पूजितोपि ॥ ५५५ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि स्वराशि से ३।१।१०।६ राशिस्थ गुरु पूजा से शुभ और ४।८।१२ राशिस्थ गुरु पूजा करने पर भी शुभ फलदायी नहीं होता है ॥ ५५५ ॥

बंधौ तृतीये रिपुसंस्थिते च इच्छन्ति पूजां दशमे गुरौ च ।
न पूज्यमिच्छन्ति चतुर्थगे च न द्वादशे चाष्टमगे च जीवे ॥ ५५६ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि स्वराशि से गुरु का वन्धु, तृतीय षष्ठस्थ और दशम में गुरु की पूजा करने पर शुभ तथा ४।८।१२ राशिस्थ गुरु की पूजा करने पर भी शुभता। नहीं होती है ॥ ५५६ ॥

पुनः ग्रन्थान्तर से गुरु का शुभाशुभत्व

गर्गः—

द्विपञ्चसप्तनंदेशस्थितो जीवः शुभप्रदः ।
द्विजानां मेखलावंधे कन्यकायाः करग्रहे ॥ ५५७ ॥

आचार्य गुरु ने कहा है कि स्वराशि से २।५।७।९ में गुरु ब्राह्मणों के यज्ञोपवीत व कन्या के विवाह में श्रेष्ठ होता है ॥ ५५७ ॥

पूजित व त्याज्य गुरु

जन्मत्रिदशमादिस्थः पूजया शुभदो गुरुः ।
विवाहेथ चतुर्थाष्टद्वादशेथ मृतिप्रदः ॥ ५५८ ॥

अपनी राशि से १।३।१० राशि में पूजा से शुभदायी होता है और ४।८।१२ राशि में मरण प्रद होता है ।। ५५८ ।।

वसिष्ठः—

द्वादशदशमचतुर्थे जन्मनि षष्ठाष्टमे तृतीये च ।
प्राप्ते पाणिग्रहणे जीवे वैधव्यमाप्नोति ।। ५५९ ।।

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि अपनी राशि से १२।१०।४।१।६।८।३ राशि में गुरु के होने पर विवाह में वैधव्यता होती है ।। ५५९ ।।

विवाहपटले—

द्वादशे निधने तुर्ये देवाचार्यगतो यदा ।
पूजया तत्र कर्तव्यो विवाहे प्राणनाशनम् ।। ५६० ।।

विवाह पटल में कहा है कि अपनी राशि से बारहवीं, आठवीं, चौथी राशि में गुरु के रहने पर पूजा करके विवाह करना चाहिये अन्यथा प्राणों का नाश होता है ।। ५६० ।।

शुभ व पूजित गुरु के स्थान

एकादशस्थे नव पंचमे वा यामित्रसंस्थे च गुरौ हि सिद्धे ।
आद्ये तृतीये दशमे च षष्ठे गुरौ हि वांच्छंति शुभाय पूजा ।। ५६१ ।।

अपनी राशि से ग्यारहवीं, नवों, पाँचवीं या सातवीं राशि में गुरु शुभ होता है। तथा अपनी राशि, तीसरी, दशवीं और छटी राशि में गुरु की स्थिति होने पर विवाहादि में पूजा करने से शुभता होती है ।। ५६१ ।।

सिंहस्थ गुरु में विशेष

माहेश्वरः—

अशुभैस्त्रिषडायसंस्थितैः शुभखेटैः सुतधर्मकेंद्रगैः ।
यदि चोपचये गुरौ सिते हरिजस्थे वरयेत्कुमारिकाम् ।। ५६२ ।।

आचार्य माहेश्वर ने बताया है कि ३।६।११ में पापग्रह और ५।९।१।४।७।१० में शुभग्रह तथा उपचय में सिंहस्थ गुरु शुक्र के रहने पर कुमारी का विवाह या वरण करना चाहिये ।। ५६२ ।।

स्वराशि से १२ राशियों में गुरु का फल

देवलः—

नष्टात्मजा धनवती विधवा कुशीला पुत्रान्विता हतधना सुभगा विपुत्रा ।
स्वामिप्रिया विगतपुत्रधना धनाढ्या वंध्या भवेत्सुरगुरौ क्रमतो विवाहे ।।५३३।।

ऋषि देवल ने बताया है कि स्वराशि में गुरु के रहने पर कन्या की शादी करने से कन्या नष्ट संतान वाली, दूसरी राशि में धनवती, तीसरी में विधवा, चौथी में शील से

रहित, पांचवीं में पुत्र से युक्त, छठी में नष्ट धनवाली, सातवीं में सुभगा, आठवीं में पुत्र से रहित, नवी में पतिप्रिया, दशवीं में पुत्र धन से रहित, ग्यारवीं में धन से संपन्न और स्वराशि से बारहवीं राशि में गुरु के रहने पर कन्या वन्ध्या होती है ।। ५६३ ।।

फलप्रदीपे—

विपुत्रा धनैः संयुता दुर्भगा च पतिद्वेषभावार्थपुत्रादियुक्ता ।
संपत्तियुक्ताभाग्ययुक्तेशहीना सदा धर्मिणो निर्धनाढ्याथ वंध्या ।।५६४।।

फल प्रदीप में बताया है कि स्वराशि में गुरु की स्थितिवश विवाह में कन्या पुत्र से रहित, दूसरी राशि में धन से युक्त, तीसरी में दुर्भगा, चौथी में पति से शत्रु भाव माननेवाली, पाँचवी में धन पुत्र से युक्त, छठी में सम्पत्तिशालिनी. सातवीं में भाग्यशालिनी, आठवीं में पति से हीन, नवीं में पतिव्रता, दशवीं में निर्धन, ग्यारहवीं में आढ्य (धनवती) और बारहवीं राशि में गुरु के रहने पर परिणय मुहूर्त में कन्या वन्ध्या होती है ।। ५६४ ।।

अशुभ गुरु में दान वस्तु

हाटकं वसनं पीतं दद्याद्दुष्टे बृहस्पतौ ।। ५६५ ।।

गोचरीय गुरु की अशुभता में सुवर्ण और पीले वस्त्रादि दान करना चाहिये ।।५६५।।

गोचरीय अशुभ गुरु का परिहार

अथापवादः—

चण्डेश्वरः—

स्वोच्चे गुरुः स्वभवने भवनेथ मित्रे मित्रांशकेः स्वभवनोच्चगतांशके वा ।
कर्मांत्यजन्मनिधनारिचतुस्त्रये वा पुत्रार्थसौख्यपतिवृद्धिकरो विवाहे ।।५६६।।

आचार्य चण्डेश्वर ने बताया है कि अपनीं उच्चराशि (कर्क) या स्वराशि (धनु-मीन) या मित्र राशि या मित्रराशि नवांश या स्वराशि नवांश या उच्चराशि के नवांश में दशवीं वा बारहवीं वा स्वराशि वा छठी वा चौथी वा तीसरी राशि में होने पर विवाह में गुरु कन्या को पुत्र, धन, सुख से वृद्धि करने वाला होता है ।। ५६६ ।।

पुनः ग्रन्थान्तर से परिहार

उच्चस्थः स्वगृही सुहृद्भवनगो वाचस्पतिर्नित्यशः
पूर्णायुर्विविधार्थसौख्यजनको जन्माष्टगो वा भवेत् ।
नीचस्थोऽरिगृही दिवाकरकरच्छायानुगामी सदा
इष्टोनिष्टफलं ददाति नियतं वैधव्यपुत्रापदम् ।। ५६७ ।।

ग्रन्थान्तर में कहा है कि उच्चस्थ, स्वगृही, मित्र राशिस्थ गुरु अपनी राशि से १ या ८ राशि में सदा पूर्णायु व अनेक सुख, धन का दाता होता है। और नीच राशिस्थ, या शत्रु राशिस्थ या अस्त गुरु गोचरीय शुभ होने पर भी दूषित फलदाता तथा वैधव्यता और पुत्र को आपत्तिकर्ता होता है ।। ५६७ ।।

पुनः परिहार कथन

बृहस्पतिः—

झषचापकुलीरस्थो जीवोप्यशुभगोचरः।
अतिशोभनतां दद्याद्विवाहोपनयादिषु ॥ ५६८ ॥

आचार्य बृहस्पति ने बताया है कि मीन, धनु, कर्क में गोचरीय अशुभ गुरु भी विवाह, यज्ञोपवीतादि में अधिक शुभप्रद होता है ॥ ५६८ ॥

अन्योपि—

निधनद्वादशतुर्यगते गुरौ तदपि नैव शुभो हितपूजने।
धनुरजावलिसिंहकुमारिकागुरुरपूज्य शुभो झषकर्कटे ॥ ५६९ ॥

किसी आचार्य का कहना है कि ८।१२।४ में गोचरीय गुरु पूजा करने पर भी शुभप्रद नहीं होता है धनु, मेष तथा सिंह, कन्या में पूजा करने पर शुभ होता है और मीन एवं कर्क में सदा शुभ होता है ॥ ५६९ ॥

अतिचारी व वक्री में शुद्धता

गर्गः—

चारोतिचारे वक्रे वा तस्मिन्भे संस्थिते गुरुः।
शुद्धिं दद्यात्स्वतंत्रेण योषितां पाणिपीडने ॥ ५७० ।

गर्गाचार्यजी का कहना है कि चारवश गोचरीय गुरु अतिचारी या वक्री हो तो उस राशि में स्त्रियों को स्वतन्त्रता वश विवाह मुहूर्त में शुद्धि प्रदान करता है ॥ ५७० ॥

विशेष

त्रिकोणजायाधनलाभराशौ वक्रातिचारेण गुरुः प्रयातः।
यदा तदा प्राह शुभं विलग्ने हिताय पाणिग्रहणं वसिष्ठः ॥ ५७१ ॥

५।९।७।२।११ राशि में गोचरीय गुरु जब अतिचारी या वक्री होता है तो वसिष्ठ ऋषि का कहना है कि इस प्रकार की विवाह लग्न में पाणिग्रहण शुभ फल दाता होता है ॥ ५७१ ॥

वसिष्ठमाण्डव्यपराशरात्रिगर्गाँगिराव्यासकुलस्य वाक्यम्।
वक्रातिचारे सुरराजमंत्री यत्रागतस्तत्र फलं ददाति ॥ ५७२ ॥

वसिष्ठ, माण्डव्य, पराशर, अत्रि, गर्ग, अङ्गिरा, व्यास ऋषि का कहना है कि वक्री व अतिचारी गुरु जिस राशि में होता है तो उसी राशि का फल देता है ॥ ५७२ ॥

गुरु शान्ति

अथ गुरुशान्तिः—

शौनकः—

कन्यकोद्वाहकाले तु आनुकूल्यं न विद्यते।
ब्राह्मणस्योपनयने गुर्विधिरुदाहृतः ॥ ५७३ ॥

ऋषि शौनक ने बताया है कि कन्या के विवाह समय में या ब्राह्मण के यज्ञोपवीत में यदि गुरु की शुद्धि नहीं प्राप्त हो तो आगे कही हुई विधि से कार्य करके शुभकर्म करना चाहिये ॥ ५७३ ॥

विधिज्ञान

सौवर्णेन गुरुं कृत्वा पीतवस्त्रेण वेष्टयेत् ।
ईशाने धवलं कुंभं धान्योपरि विधाय च ॥ ५७४ ॥
दमनं मधुपुष्पं च तथा पालाशसर्षपान् ।
मांजिष्ठगुडूच्यपामार्गा विडंवी शंखिनी वचा ॥ ५७५ ॥
सहदेवी हरिक्रांता सर्वोषधिशतावरी ।
कृत्वाज्यभागपर्यंतं स्वशाखोक्तविधानतः ॥ ५७६ ॥
यथोक्तमंडलेभ्यर्च्य पीतपुष्पाक्षतादिभिः ।
देवपूजोत्तरे काले ततः कुंभानुमंत्रणम् ॥ ५७७ ॥
अश्वत्थसमिधश्चाज्यं पायसं सर्पिषान्वितम् ।
यवव्रीहितिलाः साज्या मंत्रेणैव वृहस्पतेः ॥ ५७८ ॥
अष्टोत्तरशतं सर्वंहोमशेषं समापयेत् ।
दारपुत्रसमेतस्य अभिषेकं समाचरेत् ॥ ५७९ ॥
कुंभाभिमंत्रणोक्तैश्च समुद्रज्येष्ठमंत्रतः ।
प्रतिमां कुंभवस्त्रं च आचार्याय प्रदापयेत् ॥ ५८० ।
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाच्छुभदः स्यान्न संशयः ॥ ५८१ ॥

सुवर्ण की गुरु मूर्ति वनवाकर उसे पीले वस्त्र से परिवेष्ठित कर ईशान कोण में सफेद कलश को धान्यों के ऊपर रखकर उस पर गुरु की प्रतिमा विराजमान करके दमन, मधुपुष्प, पीली सरसों, माञ्जिष्ठ, गुडूची, अपामार्ग, विडम्वी, शङ्खिनी, वचा, सहदेवी, हरिक्रान्ता, शतावरी सर्वोषधि को एकत्रित करके अपनी शाखा के अनुसार उक्त कलश का पीले पुष्प व पती अक्षतादि से पूजन करके आज्य भाग तक कर्म करना जब गुरु देव की पूजा हो जाय तो इसके पश्चात् कलश का अभिमन्त्रण करके पीपल की समिधा, घी, खीर, पीली सरसों से मिश्रित जौ, चावल तिल में घी मिलाकर गुरु के मन्त्र से उक्त साकल्य से १०८ आहुति देकर होम शेष को समाप्त करना चाहिये। इसके वाद स्त्री पुत्र सहित का कलशस्थ जल से समुद्र जेष्ठादि मंत्रों से अभिषेक करके प्रतिमा व कलश को आचार्य को देकर ब्राह्मणों को भोजन कराने से निश्चय ही अशुभता का नाश होकर शुभ होता है ॥ ५७४–५८१ ॥

अष्टवर्गशोधन

अथाष्टवर्गशोधनम्—

विवाहवृन्दावने—

'योषितां गुरुपतंगगोचरैः शोभनो निगदितः करग्रहे ।
अष्टवर्गविधिना तदत्यये सूर्यशुद्धिरपरे नृणां जगुः ॥ ५८२ ॥

विवाह वृन्दावन में कहा है कि स्त्रियों के गुरु व सूर्य को गोचरीय शुभ होने पर विवाह में शुभता होती है और गोचर से दोनों के अशुभ होने पर अष्टक वर्ग शुद्धि से विवाह मुहूर्त शुद्ध होता है । अन्यों के मत में वर की सूर्य शुद्धि होने पर विवाह करना अर्थात् गोचर में सूर्य शुद्धि का अभाव हो तो अष्टक वर्ग की शुभता में विवाह करना उचित होता है ॥ ५८२ ॥

विशेष—प्रकाशित विवाह वृन्दावन में 'पतङ्गगोचरे शोभने शुभकरः करग्रहः' पाठ है ॥ ५८२ ॥

विशेष

यथोदये चंद्रमसः प्रकाशो दिगंगनानां मुखकैरवस्य ।
तथाष्टवर्गग्रहलग्नशुद्धौ कार्यस्य पुंसां भवतीह शुद्धिः ॥ ५८३ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि जैसे चन्द्रमा के उदय से स्त्रियों के मुख कमल का प्रकाश होता है वैसे ही अष्टक वर्ग से ग्रह लग्न की शुद्धि होने पर पुरुषों के कार्य की शुद्धि होती है । अर्थात् पुरुष के अष्टक वर्ग शुद्ध होने पर विवाह करना चाहिये ॥ ५८३ ॥

अभावतो गोचरशोभनानां शुद्धि वदेद्भागुरिरष्टवर्गात् ।
वैधव्यकन्याक्षयहेतुयोगो जीवोष्टवर्गस्य वदेन्न शुद्धिम् ॥ ५८४ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि विवाह के मुहूर्त में गोचरीय शुद्धि का अभाव होने पर अष्टक वर्ग शुद्धि का ग्रहण करना चाहिये । ऐसा भागुरि ऋषि का मत है तथा गुरु की शुद्धि विवाह में अष्टक वर्ग से होने न पर पाणिग्रहण करने से वैधव्यता व कन्या के क्षय का योग होता है ॥ ५८४ ॥.

संहितासारे—

अष्टवर्गे शुभैः श्रीमान्कर्म कुर्यान्नभश्चरैः ।
गोचरस्थैस्तदप्राप्तौ तदप्राप्तौ च वेधगैः ॥ ५८५ ॥

संहिता सार नामक ग्रन्थ में बताया है कि ग्रहों को अष्टक वर्ग से शुभ होने पर कार्य करना और अष्टक वर्ग से शुभता न मिलने पर गोचर की शुभता में तथा गोचरीय शुभत्व की अप्राप्ति में वेध की शुद्धि वश काम करना चाहिये ॥ ५८५ ॥

---

१. अ० १० श्लो० ५ ।

पुनः बलाबल ज्ञान

मरीचिः—

आदावष्टकवर्गः शोध्यो विज्ञैस्तदप्राप्तौ ।
गोचरबलं विचिन्त्यं तदभावे वामवेधजं वीर्यम् ।। ५८६ ।।

ऋषि मरीचि ने बताया है कि प्रथम अष्टक वर्ग की शुद्धि से, इसके अभाव में गोचर में गोचरीय बल तथा इसके अभाव में वामवेध जनित बल का ग्रहण करके कार्य करना चाहिये ।। ५८६ ।।

विवाह में मास शुद्धि ज्ञान

अथ विवाहे मासशुद्धिः—

मासाब्दशुद्धि ग्रहतारकाणां सर्वेषु देशेषु वदंति तज्ज्ञाः ।। ५८७ ।।

विवाह के मुहूर्त में समस्त देशों में ग्रह, नक्षत्रों, मास व वर्ष की शुद्धि होने पर विवाह होता है ऐसा पंडित लोग कहते हैं ।। ५८७ ।।

विष्णुशयन में निषेध

नारदः—

अप्रबुद्धे हृषीकेशे यावत्तावन्न मंगलम् ।
उत्सवे वासुदवस्य मंगले नान्यमङ्गलम् ।। ५८८ ।।

ऋषि नारद ने बताया है विष्णु भगवान् जब तक शयन करते हैं तब तक विवाहादि उत्सव नहीं करना और भगवान् वासुदेव के उत्सव में अन्य मङ्गल काम नहीं करना चाहिये ।। ५८८ ।।

वराहः—

हरौ प्रसुप्ते न च दक्षिणायने न चैत्रमासे न च तिष्यसंज्ञिके ।
तिथावारिक्ते शशिनि क्षयं गते रवींदुभौमार्किदिनेषु ना शुभम् ।। ५८९ ।।

आचार्य वराह ने बताया है कि विष्णुशयन, दक्षिणायन, चैत्रमास, पुष्य नक्षत्र, अशून्य तिथि, क्षीण चन्द्रमा, सूर्य, चन्द्र, मंगल, शनिवार में शुभ काम नहीं करना चाहिये ।। ५८९ ।।

विवाह में इष्टमास

कश्यपः—

उत्तरायणगे सूर्ये मीनं चैत्रं च वर्जयेत् ।
अजगोद्वंद्वकुंभालीमृगराशिगते रवौ ।। ५९० ।।

ऋषि कश्यप ने बताया है कि उत्तरायण में चैत्र मास में मीन के सूर्य को छोड़कर मेष, वृष, मिथुन, कुम्भ, वृश्चिक और मकर राशिगत सूर्य में विवाह होता है ।।५९०।।

विवाह में वर्ण परक ऋतु

श्रीधरीये—

शरद्वसंतश्च शुभोग्रजानां ग्रीष्मश्च राजन्यविशोः प्रशस्तः ।
शूद्रस्य वर्षा शिशिरोऽखिलस्य लोकस्य पाणिग्रहणे प्रदिष्टः ॥ ५९१ ॥

श्रीधरीय ग्रन्थ में कहा है कि शरद-वसन्त में ब्राह्मणों का, ग्रीष्म ऋतु में क्षत्रिय वैश्यों का, वर्षा में शूद्रों का और शिशिर ऋतु में समस्त संसार का विवाह कहा गया है ॥ ५९१ ॥

[1]केशवः—

प्रावृट् वसंतोर्जसहःकरग्रहे परैरुदारैर्नतु हारि तन्मतम् ।
रवेरवैसारिणमुत्तरायणं पुरंध्रिपाणिग्रहणे परायणम् ॥ ५९२ ॥

आचार्य केशव ने कहा है कि वर्षा, वसन्त, कार्तिक, मार्गशीर्ष में जिन लोगों ने विवाह का मुहूर्त बताया है उनका कथन सुन्दर नहीं है । क्योंकि उत्तरायण में चैत्र में मीन के सूर्य को छोड़कर स्त्रियों का पाणिग्रहण मुहूर्त सर्वसम्मत पक्ष है ॥ ५९२ ॥

कश्यपः—

आरभ्यार्द्रोदयाद्भानोर्दशर्क्षेषु न कारयेत् ।
सुरस्थापनमुद्वाहं यज्ञापनयनं क्वचित् ॥ ५९३ ॥

ऋषि कश्यप ने बताया है कि आर्द्रा में सूर्य के उदय से दस नक्षत्रों में सूर्य के रहने पर देवस्थापन, उद्वाह (विवाह) यज्ञ, उपनयन कभी नहीं करना चाहिये ॥ ५९३ ॥

विशेष निषेध

अन्यच्च—

आर्द्रोदयादूर्ध्वमिनस्य कार्यं नक्षत्रवृन्दे दशके कदाचित् ।
मासोक्तकर्मेतरमङ्गलाद्यं कुर्यान्न सुप्तेपि तथा मुरारौ ॥ ५९४ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि सूर्य के आर्द्रा में उदय होने पर आगे के दस नक्षत्रों में तथा हरिशयन में मास जन्म कर्म को छोड़कर इतर मंगल कार्य नहीं करना चाहिये ॥५९४॥

आर्द्रादि दस नक्षत्र में विवाह का निषेध

वशिष्ठः—

आर्द्रादिके स्वातिविरामकाले नक्षत्रवृन्दे दशके तथैव ।
विवाहचौलव्रतबंधनाद्यं सुरप्रतिष्ठां च न कार्यमेतत् ॥ ५९५ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि आर्द्रा नक्षत्र से स्वाती नक्षत्र की समाप्ति तक दस नक्षत्रों में सूर्य के रहने पर विवाह, चौल, यज्ञोपवीतादि व देव प्रतिष्ठा कार्य नहीं करना चाहिये ॥ ५९५ ॥

---

१. वि० वृ० १ अ० ५ श्लो० ।

न कदाचिद्दशर्क्षेषु भानोरार्द्राप्रवेशनात् ।
विवाहं देवतानां च प्रतिष्ठां चोपनायनम् ॥ ५९६ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि सूर्य के आर्द्रा में प्रविष्ट होने से दस नक्षत्रों में सूर्य स्थिति-वश विवाह, देवप्रतिष्ठा और व्रतबन्ध नहीं करना चाहिये ॥ ५९६ ॥

विवाह में निषिद्ध मास

श्रीपतिः—

नाषाढप्रभृतिचतुष्टये विवाहो नो पौषे नच मधुसंज्ञके विधेयः ।
नैवास्तं गतवति भार्गवे न जीवे वृद्धत्वे न खलु तयोर्न बालभावे ॥ ५९७ ॥

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि आषाढादि (आषाढ़, सावन, भादों, आश्विन) चार मासों में तथा पौष-चैत्र मास में और गुरु, शुक्र के अस्त या वृद्ध या बाल होने पर विवाह नहीं करना चाहिये ॥ ५९७ ॥

विवाह में अभीष्ट मास

वसिष्ठः—

दिनाधिपे मेषवृषालिभनृयुग्मनक्राख्यघटर्क्षसंस्थे ।
माघद्वये माधवशुक्रयोश्च मुख्योथवा कार्तिकमार्गयोश्च ॥ ५९८ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि मेष, वृष, वृश्चिक, कुम्भ, मिथुन, मकर के सूर्य में, माघ, फाल्गुन, वैशाख, जेठ मास में अथवा कार्तिक-अगहन में विवाह मुहूर्त मुख्य होता है ॥ ५९८ ॥

उत्तम-मध्यमादि मास

नारदः—

माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासाः शुभप्रदाः ।
मध्यमः कार्तिको मार्गशीर्षो वै निंदिता परे ॥ ५९९ ॥

नारदजी ने बताया है कि विवाह के मुहूर्त में माघ, फागुन, वैशाख, जेठ मास शुभोत्तम और कार्तिक, अगहन मध्यम तथा अवशिष्ट निन्दित मास होते हैं ॥ ५९९ ॥

ग्रन्थान्तर से कुछ विशिष्ट मास

अद्भुतसागरे—

पौषचैत्रापरार्द्धं स्याच्छुभं सूर्ये मृगाजगे ।
आद्यात्त्र्यंशः शुचेः श्रेष्ठो मिथुनस्थे मृगीदृशाम् ॥ ६०० ॥

अद्भुत सागर में कहा है कि पौष-चैत्र का उत्तरार्द्ध, मकर व मेष के सूर्य में तथा आषाढ के तीन अंश में अर्थात् १० दिन तक मिथुनस्थ सूर्य में शुभ होता है ॥ ६०० ॥

पौषोत्तरार्द्धमुदितं तपने मृगस्थे चैत्रोत्तरार्द्धमजगे तरणौ तथैव ।
आद्यं शुचेर्दशदिनं मिथुनस्थितेऽर्के पाणिग्रहं निगदितं मुनिभिः शिवाय ॥ ६०१ ॥

ग्रन्यान्तर में कहा है कि पौष मास के उत्तरार्ध में मकर का सूर्य होने पर, चैत्र के उत्तरार्ध में मेषस्थ सूर्य और मिथुन के सूर्य में आषाढ मास के प्रथम दस दिनों में विवाह करना कल्याण के लिए होता है ॥ ६०१ ॥

भरद्वाजः—

माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठाषाढामृगाह्वयाः ।
षडेते पूजिता मासाश्चतुर्वर्णस्य सर्वदा ॥ ६०२ ॥

ऋषि भारद्वाज ने बताया है कि माघ, फागुन, वैशाख, जेठ, आषाढ और मार्गशीर्ष ये ६ मास चारों वर्ण के लिए विवाह में श्रेष्ठ होते हैं ॥ ६०२ ॥

ग्रन्यान्तर से अभीष्ट मास व त्याज्य काल

श्रीपतिः—

मेषोक्षवैणिकमृगाननकुंभसंस्थे प्रद्योतने करतलग्रहणं प्रशस्तम् ।
गीर्वाणमंत्रिणि मृगेन्द्रमधिष्ठितेन मासाधिकेन त्रिदिनस्पृशिनावमेन ॥ ६०३ ॥

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि मेष, वृष, मिथुन, मकर व कुम्भ राशि में सूर्य के रहने पर विवाह शुभ होता है और सिंहस्थ गुरु, अधिक मास, क्षय, वृद्धि तिथि में नहीं करना चाहिये ॥ ६०३ ॥

सिंह, धनु, मीन सूर्य में निषेध

गार्ग्यः—

मीने धनुषि सिंहे च स्थिते सप्ततुरंगमे ।
क्षौरमन्नं न कुर्वीत विवाहं गृहकर्म च ॥ ६०४ ॥

ऋषि गार्ग्य ने कहा है कि मीन, धनु, सिंह राशिस्थ सूर्य में क्षौर, अन्न प्राशन, विवाह और घर सम्बन्धी काम नहीं करना चाहिये ॥ ६०४ ॥

मासवश फल

दैवज्ञवल्लभे—

फाल्गुने तपसि मासि माधवे शुक्रनाम्नि धनपुत्रतो भवेत् ।
सोपरैः सुखसुतार्थमानंदः कार्तिके सहसि च प्रकीर्तितः ॥ ६०५ ॥

दैवज्ञवल्लभ में कहा है कि माघ, फाल्गुन, वैशाख, जेठ में विवाह करने पर पुत्र व धनलब्धि और कार्तिक-अगहन में पुत्र, धन, सम्मान की प्राप्ति होती है ॥ ६०५ ॥

प्रत्येक मास में विवाह का फल

राजमार्तंडः—

आषाढे धनधान्यभोगरहिता नष्टप्रजा श्रावणे
वेश्या भाद्रपदेश्विने च मरणं रोगार्तिदा कार्तिके ।
पौषे प्रेतवतो वियोगबलहा चैत्रे मदोन्मानिनी
अन्येष्वेव विवाहिता सुतवती नारी समृद्धा भवेत् ॥ ६०६ ॥

राजमार्तण्ड नामक ग्रन्थ में कहा है कि आषाढ में विवाह करने पर धन-धान्य, भोग का अभाव, सावन में सन्तान नाश, भादों में वेश्या, क्वार में मरण, कार्तिक में रोग पीड़ा, पौष में कन्या प्रेतिनी, वियोगिन, बल नष्ट करने वाली, चैत्र में मदोन्मत्त और इनसे बचे हुए मासों में विवाह करने से कन्या पुत्रों से युक्त धनधान्य, सुवर्णादि से युक्त होती है ॥ ६०६ ॥

अन्य:—

माघे मासि भवत्यूढा कन्या सौभाग्यसंयुता ।
फाल्गुनोढा भवेत्साध्वी वैशाखे पुत्रिणी भवेत् ॥ ६०७ ॥
ज्येष्ठेति धनिनी प्रोक्ता आषाढे सुखभाजना ।
मार्गशीर्षे भवेच्छुद्धा पुत्रपौत्रधनान्विता ॥ ६०८ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि माघ मास में कन्या का विवाह करने पर सौभाग्य से युत, फागुन में पतिव्रता, वैशाख में पुत्रों वाली, जेठ में अधिक धनवाली, आषाढ में सुखी और अगहन में विवाह करने पर कन्या पुत्र-पौत्र तथा धन से युक्त होती है ॥ ६०७–६०८ ॥

सूर्य की स्थिति से मास

श्रीधरीये—

पौषे च कुर्यान्मकरस्थितेर्के चैत्रे भवेन्मेषगते यदि स्यात् ।
प्रशस्तमाषाढगते विवाहं वदंति गर्गा मिथुनस्थितेर्के ॥ ६०९ ॥

श्रीधरीय ग्रन्थ में कहा है कि पौष में मकरस्थ सूर्य, चैत्र में मेषस्थ और आषाढ में मिथुन राशि में सूर्य के रहने पर विवाह करना चाहिये, ऐसा गर्गादिकों ने कहा है ॥ ६०९ ॥

ज्योतिर्विदाभरणे—

उदन्वतो रोधसि कापिलाख्यं भूमंडलं योजनषट्कमानम् ।
रेवामहीमध्यगमार्यराशेरर्के विवाहो विहितोतिभद्रः ॥६१०॥

ज्योतिर्विदाभरण में कहा है कि समुद्र तट से ६ योजन तक भूभाग कापिल संज्ञक है। इससे रेवा नदी के किनारे तक की भूमि में श्रेष्ठ राशिस्थ सूर्य में विवाह अति सुन्दर होता है ॥ ६१० ॥

कार्तिक में विशेष शुभता

अथ कार्तिकमासे विवाहशुद्धिः ।

अग्रतः पृष्ठतो वापि कार्तिक्यां दिनपंचके ।
पाणिग्रहश्च कर्तव्यो न दोषो दक्षिणो भवेत् ॥ ६११ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि कार्तिकी पूर्णिमा में पाँच दिन पूर्व व आगे के पाँच दिनों में विवाह करना चाहिये । इसमें दक्षिणायन का दोष नहीं होता है ॥ ६११ ॥

पुनः पूर्वोक्त का कथन

दिवसाः पंच पूर्वं हि निर्गमे पंचवासराः ।
कारयेल्लग्नमेतेषु धनधान्ययुतो भवेत् ।। ६१२ ।।

ग्रन्थान्तर में बताया है कि कार्तिकी पूर्णिमा से पाँच दिन पहिले और पाँच दिन बाद तक विवाह करने से कन्या-वर धन-धान्य से युक्त होते हैं ।। ६१२ ।।

शौनकादिमुनयस्त्रिपुष्करे कार्तिकीकनकरग्रहं शुभम् ।
कीर्तयंति धनपुत्रसौख्यदं दीर्घमायुरमतेति ता ध्रुवम् ।। ६१३ ।।

शौनकादि ऋषियों ने त्रिपुष्कर योग में व कार्तिकी पूर्णिमा में विवाह करना शुभ माना है और इसमें विवाह करने से धन, पुत्र व सुख की प्राप्ति होकर निश्चय ही दीर्घायु होती है ।। ६१३ ।।

पद्मयोनिरपि कार्तिकमासाद्यत्र तत्र कृतदारसंग्रहः ।
सृष्टिकर्तुररि वांच्छितं फलं नात्र विष्टिकुलकादि चिंतयेत् ।। ६१४ ।।

भगवान् विष्णु ने भी कार्तिक मास में ही जहाँ-तहाँ स्त्रियों का संग्रह किया था तथा ब्रह्माजी ने भी कार्तिक मास में अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है, ऐसा माना है । इसमें भद्रा कुलकादि का विचार नहीं करना, ऐसा जानना चाहिये ।। ६१४ ।।

ब्रह्मविष्णुशिववासवादिभिर्दत्तशोभनवराहकार्तिकी ।
तत्र पाणितलपाणिने कृते पुत्रपौत्रमिति भार्गवोब्रवीत् ।। ६१५ ।।

कार्तिकी पूर्णिमा में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, वराह व देवताओं ने विवाह करने पर पुत्र-पौत्र की लब्धि की है, ऐसा भार्गवजी ने कहा है ।। ६१५ ।।

कार्तिकी में दोषों का विनाश

भार्गवामरगुरोरदर्शने पुष्टदोषपरिपीडिते दिने ।
कार्तिकी सकलदोषनाशिनी कारयेत्करतलं ग्रहं बुधैः ।। ६१६ ।।

ग्रन्थान्तर में कहा है कि गुरु-शुक्र के अस्त होने पर व अधिक दोषों से परिपीड़ित होने पर भी कार्तिकी पूर्णिमा के दिन विवाह करने पर समस्त दोषों का अभाव होता है, ऐसा विद्वानों काप क्ष है ।। ६१६ ।।

कार्तिकी में गोचरादि शुद्धि का अभाव

ज्योतिर्विदाभरणे—
परिपंथितनूलयस्थमिन्दुंपरिहायांगविवाहकामभद्रम् ।
उपरागमुखेन्यदोषजले कुरु पाणिग्रहणं च कार्तिकीनम् ।। ६१७ ।।
इति ऋषिगणैर्विशेषनोतिर्गदिता वा परिणत्यनेहसीष्टां ।
उदितान्प्रतिदेशकालभेदनखिलोर्व्यामुदितानुकार्तिकीनम् ।। ६१८ ।।

४।८।१२ चन्द्र को छोड़कर उपरागादि प्रमुख दोष न हों तो, कार्तिकी पौर्णिमा को विवाह करना चाहिये, ऐसी उचित नीति विवाह के विषय में देश, काल भेद से सम्पूर्ण पृथ्वी के लिये ऋषि गणों ने प्रतिपादित की है ।। ६१७–६१८ ।।

नैव गोचरविधिं न चाष्टकं शोधयेन्न बलशुक्रजीवयोः ।
तारकाशशभृतोर्बलं नभं नैव लग्नविधिमत्र चिन्तयेत् ।। ६१९ ।।

कार्तिकी पूर्णिमा में गोचर-अष्टक वर्ग की शुद्धि, गुरु-शुक्र, तारा-चन्द्र-नक्षत्र बल और लग्न विधि का चिन्तन करना आवश्यक नहीं होता है ।। ६१९ ।।

नष्टे शुक्रे तथा जीवे परागे चंद्रसूर्ययोः ।
केशवोत्थितदेवानां विवाहः पुष्करे स्मृतः ।। ६२० ।।

शुक्र व गुरु के अस्त होने पर, सूर्य, चन्द्रमा के ग्रहण में भी केशव भगवान् के जागने पर पुष्कर योग में विवाह प्रशस्त होता है ।। ६२० ।।

कार्तिकी में घटिका लग्न की अनावश्यकता

कार्तिक्यां घटिकालग्नं कुर्यादज्ञानतोपि यः ।
कर्ता कारयिता चोभौ स शापः सकलैः सुरैः ।। ६२१ ।।

जो कोई अज्ञान से कार्तिकी पूर्णिमा में घटिका लग्नवश विवाह करता व कराता है, वे दोनों समस्त देवों से शापित होते हैं ।। ६२१ ।।

कार्तिकी पूर्णिमा में गोधूलि लग्न का विधान

कुर्याद्गोधूलिकं लग्नं कार्तिक्यां दिनपंच च ।
सर्वदोषापहं प्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।। ६२२ ।।

कार्तिकी पूर्णिमा के पूर्व व पश्चात् पाँच दिन तक गोधूलि लग्न में समस्त दोषों का अभाव होता है ऐसा तत्त्व वेत्ता ऋषियों का कथन है ।। ६२२ ।।

गोधूलि वेला का ज्ञान

दिनानि भुंक्ते निशि चागमे च यत्रार्द्धदृश्यं रविबिंबभागम् ।
तत्रैव पुण्यं शुभदं च नित्यं गोधूलिवेलां मुनयो वदंति ।। ६२३ ।।

ग्रन्थान्तर में कहा है कि दिन की समाप्ति और रात्रि के आगमन पर जब सूर्य का बिम्ब आधा दृश्य रहता है तब ही पुण्य व शुभद नित्य गोधूलि लग्न होती है ऐसा मुनियों का कहना है ।। ६२३ ।।

पुष्कर योग में विवाह स्थान

इक्षुसान्निध्य आरामे प्रसिद्धे देवकीर्तिते ।
नदीतडागे गोष्ठे वा विवाहः पुष्करे स्मृतः ।। ६२४ ।।

पुष्कर योग में नदी या तालाब के तट पर, गन्ना के समीप या बगीचा या प्रसिद्ध-स्थल या देवस्थान में विवाह शुभ होता है ।। ६२४ ।।

देश स्थिति वश विवाह मास

ज्योतिःप्रकाशे—

भृगौ सुकच्छे च तथा विवाहे वलक्षपक्षे नभसो दशम्याम् ।
पद्मे यथा कार्तिकपौर्णिमायां देशस्थितिः स्याच्छुभदः तथैव ॥ ६२५ ॥

ज्योतिः प्रकाश नाम के ग्रन्थ में कहा है जैसे भगवान् दामोदर का विवाह कार्तिक के महिने में होता है वैसे ही कच्छ देश में भृगु पर्वत के तालाव के तट पर श्रावण मास शुक्ल पक्ष की दशमी के दिन विवाह शुभ होता है ॥ ६२५ ॥

पक्ष शुद्धि ज्ञान

अथ पक्षशुद्धिः—

बृहस्पतिः—

पूर्वपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चांत्यत्रिकं विना ।
विष्टिरिक्ता विवर्ज्याः स्युः शोभनास्तिथयः शुभाः ॥ ६२६ ॥

आचार्य बृहस्पति ने कहा है कि विवाह में पूर्व (शुक्ल) पक्ष शुभ और कृष्ण पक्ष का अन्तिम तृतीय भाग छोड़कर शुभ होता है । विष्टि व रिक्ता का त्याग कर शुभ तिथि विवाह में शुभ दायक होती हैं ॥ ६२६ ॥

विवाहे शुभता कृष्णे चतुर्थी न कदाचन ॥ ६२७ ॥

विवाह में कृष्ण पक्ष की चतुर्थी में कभी शुभता नहीं होती है ॥ ६२७ ॥

पक्षवश फल

नारदः—

शुक्ले तु सुभगा मान्या कृष्णपक्षे मृतप्रजा ॥ ६२८ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि शुक्ल पक्ष में विवाह होने से कन्या सुभगा व सम्मानित और कृष्ण पक्ष में मृत संतान वाली होती है ॥ ६२८ ॥

ग्रन्थान्तर से शुभाशुभ पक्ष

चण्डेश्वरः—

श्रेष्ठं पक्षमुशन्ति शुक्लमसितस्याद्यत्रिभागं तथा
रिक्तां प्राप्ततिथिं तथात्वयनयोः सन्धिं च शेषाः शुभाः ।
आग्नेयग्रहवासरेषु कलहः प्रीतिश्च सत्सूत्तमा
केचित्स्थैर्यमुशंति सौरिदिवसे चन्द्रे च सापत्न्यकम् ॥ ६२९ ॥

आचार्य चण्डेश्वर ने बताया है कि विवाह में शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष का आद्य त्रिभाग श्रेष्ठ होता है तथा इनमें रिक्ता तिथि व अयन सन्धि के दिन प्राप्त तिथि अशुभ और अवशिष्ट शुभ तिथि होती हैं । सूर्य मंगल शनिवार में कलह एवं शुभग्रह के वारों में उत्तम प्रीति होती है । किसी आचार्य के मत में शनिवार में स्थिरता तथा चन्द्रवार में सौतेला भाव होता है ॥ ६२९ ॥

तिथि शुद्धि ज्ञान

अथ तिथिशुद्धिः—

वसिष्ठः—

शुक्लद्वितीया दिन एव कृष्णे पक्षे दशम्यंशगताः प्रशस्ताः।
तास्वष्टमी स्कन्दगणेशदुर्गा चतुर्दशी चापि तिथिर्विवर्ज्याः ॥ ६३० ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि शुक्ल पक्ष की द्वितीया दिन से और कृष्ण पक्ष की दशमी तक विवाह शुभ होता है। इनमें अष्टमी, षष्ठी, चतुर्थी, नवमी, चौदस का त्याग करना चाहिये ॥ ६३० ॥

चतुर्दशीं चतुर्थीं च नवमीं च विवर्जयेत्।
एतासु विधवा कन्या भवत्यासु विवाहिता ॥ ६३१ ॥

चौदस, चतुर्थी और नवमी में विवाह नहीं करना चाहिये क्योंकि करने पर विवाहित कन्या विधवा होती है ॥ ६३१ ॥

प्रत्येक तिथि में विवाह का फल

भारद्वाजः—

प्रतिपद्दुःखजननी द्वितीया प्रीतिवर्द्धिनी।
सौभाग्यदात्री तृतीया च चतुर्थी धननाशिनी ॥ ६३२ ॥
पंचम्यां सुखवित्तानि षष्ठी विघ्नप्रदायिनी।
विद्याशीलसुखाप्तिः स्यात्सप्तम्यामफलाष्टमी ॥ ६३३ ॥
नवमी शोकफलदा आनन्दो दशमीदिने।
सुखमेकादशी ज्ञेया सफला द्वादशी स्मृता ॥ ६३४ ॥
मानपुत्रा त्रयोदशी चतुर्दशी तु दोषदा।
फलं बहुविधं नित्यं पंचदश्यां विशेषतः ॥ ६३५ ॥

ऋषि भारद्वाज ने कहा है कि विवाह में प्रतिपदा दुःखों को पैदा करने वाली, द्वितीया प्रेम बढ़ाने वाली, तृतीया सौभाग्य शालिनी, चौथ धन देने वाली, पंचमी सुख धनदात्री, षष्ठी विघ्न प्रदा, सप्तमी विद्या, शील सुख की प्राप्ति कराने वाली, अष्टमी फल रहित, नवमी शोक फल देने वाली, दशमी आनन्ददात्री, एकादशी सुखिनी, द्वादशी फलदा, तेरस सम्मान व पुत्र से युक्त, चौदस दोष देने वाली, पूर्णिमा विविध फल दायिका होती है ॥ ६३२–६३५ ॥

अमावास्या व अन्य योग में होने का फल

अमायां चैव रिक्तायां करणे विष्टिसंज्ञके।
यः करोति विवाहं च शीघ्रं याति यमालयम् ॥ ६३६ ॥

जो कि अमावास्या, रिक्ता, भद्रा में विवाह करता है उसका मरण होता है ॥ ६३६ ॥

विवाह में त्याज्य

अत्रापि कृष्णपक्षस्य दशम्याद्ये विवाहिता ।। ६३७ ।।

यहाँ पर भी कृष्ण पक्ष की दशमी से आगे के भाग का त्याग करना चाहिये ।। ६३७ ।।

नारदः—

मासान्ते पंचदिवसा त्यजेद्रिक्तावमाष्टमी ।
विष्टिं च परिघस्यार्द्धं व्यतीपातं सवैधृतिम् ।। ६३८ ।।

ऋषि नारद ने कहा है कि मास के अन्तिम पाँच दिन, रिक्ता, अष्टमी, भद्रा परिघ का आधा, व्यतीपात और वैधृति का त्याग करना चाहिये ।। ६३८ ।।

प्रकारान्तर से शुभाशुभत्व

पंचदश्यष्टमी रिक्ता वर्ज्याश्चान्याःशुभावहाः ।
केचित्कृष्णाष्टमीं प्राहुर्विवाहेषु वयोत्यये ।। ६३९ ।।

ग्रन्थान्तर में कहा है कि पूर्णिमा, अष्टमी, रिक्ता तिथियों को छोड़कर अन्य तिथियाँ शुभ होती है। किसी २ के पक्ष में कृष्णाष्टमी में अधिक वय विवाह करनाउ चित माना है ।। ६३९ ।।

ग्रन्थान्तर से विशेष

चण्डेश्वरः—

दुष्टस्य पूर्वमपहाय तिथेर्द्धभागं
विष्टिप्रदुष्टमपनष्टविधुं तिथिं च ।
शेषाः शुभा निगदिता अशुभास्तथान्ये
पूर्वोक्तमत्र सकलं हि विचिन्तनीयम् ।। ६४० ।।

आचार्य चण्डेश्वर ने कहा है कि दूषित तिथि का प्रथम अर्ध भाग असत् भद्रा, क्षयेन्दु, क्षया तिथि को छोड़कर, शेष शुभ है तथा अवशिष्ट अशुभ इन सबका चिन्तन करना चाहिये ।। ६४० ।।

विवाह में वार शुद्धि ज्ञान

अथ वारशुद्धिः—

गुरुशुक्रवुधेंदूनां दिनेषु सुभगा भवेत् ।
सूर्यार्किभूमिवाराणां दिनेषु कुलटा भवेत् ।। ६४१ ।।

ग्रन्थान्तर में बताया है कि गुरु, शुक्र, बुध, सोमवार में विवाह होने से कन्या भाग्यशालिनी और सूर्य, शनि, भौम वार में वेश्या होती है ।। ६४१ ।।

ग्रन्थान्तर से

वसिष्ठः—

वाराः प्रशस्ताः शुभखेचराणां सूर्यार्किवारौ खलु मध्यमौ तौ ।
त्याज्यः सदा भूमिसुतस्य वारः कामार्कतिथ्योरपि तौ प्रदोषौ ।। ६४२ ।।

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि विवाह में शुभग्रहों के वार शुभ, सूर्य, शनि, मध्यम तथा मङ्गलवार का सदा एवं ७।१२ तिथियों का भी त्याग प्रदोष होने के नाते करना चाहिये ॥ ६४२ ॥

विवाह में शुभवार

गुरुशुक्रेन्दुपुत्राणां दिनेषु परिणीयते ।
या कन्या सा भवेन्नित्यं भर्तुचिश्त्तानुवर्तिनी ॥ ६४३ ॥

जिस कन्या का विवाह गुरु या शुक्र या बुधवार में होता है वह अपने पति के चित्त के अनुकूल चलने वाली होती है ॥ ६४३ ॥

विवाह में दूषित वार

अर्कार्किभौमवाराणां दिनेषु कलहप्रिया ।
सापत्न्यं समवाप्नोति तुषारकरवासरे ॥ ६४४ ॥

सूर्य या शनि या भौमवार में विवाह होने से कन्या कलह में प्रीति करने वाली और सोमवार में होने पर सौतेला भाव प्राप्त करने वाली होती है ॥ ६४४ ॥

सातों वारों में विवाह का फल

सूर्यदिने कृतविधवां विधवां वा वदन्त्यन्ये ।
मासात्परं च शशिनः संयुक्ता सौख्यसंपर्कात् ॥ ६४५ ॥
वांधवविभवविहीना दुष्टचरित्रा च वासरे कौजे ।
सौभाग्या शीलयुक्ता बोधे दिवसे च षोडशभिः ॥ ६४६ ॥
धनसौख्यपुत्रपौत्रा वर्द्धन्ते वत्सरद्वये जीवे ।
शुक्रदिने पतिदयितां सुखधनयुक्ता तु वत्सरद्वितीये ॥ ६४७ ॥
पंचभिरब्दैर्विगतैर्धनरहिता दुर्भगा सौरिः ।
मासैः पंचभिरथवा तेषां कालेन फलपाकः ॥ ६४८ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि सूर्यवार में विवाह होने पर कृत विधवा या विधवा अन्य विद्वान् कहते हैं । चन्द्रवार में होने से एक मास के पश्चात् संपर्क से सुखी, भौमवार में ऐश्वर्य से हीन व दूषित चरित्रवाली, बुधवार में सुन्दर भाग्यवाली व शीलवती सोलह दिन के अनन्तर, गुरुवार में दो वर्ष में परिवार में धन सुख. पुत्र पौत्र की वृद्धि करने वाली, शुक्रवार में पति की प्यारी और दो वर्ष में सुखधन से युक्त, शनिवार में विवाह होने पर पाँच वर्ष के बाद धन से रहित दुर्भगा अथवा पाँच मास के अनन्तर समय से फल की प्राप्ति होती है ॥ ६४५–६४८ ॥

शनिवार में विशेष

रिक्ता शनिदिने चेत्स्यात्स्थिरा पतिगृहे तदा ।
चन्द्रस्य च दिनेप्येवं किन्तु सापत्न्यमाप्नुयात् ॥ ६४९ ॥

यदि विवाह के दिन शनिवार में रिक्ता तिथि होती है तो पति के घर में स्थिर तथा चन्द्रवार में स्थिर तो होती है किन्तु शत्रु भाव मानने वाली होती है ॥ ६४९ ॥

ग्रन्थान्तर से विशेष

विधिरत्ने व्यासः—

शनैश्चरदिने प्राप्ते यदा रिक्ता तिथिर्भवेत् ।
तस्मिन्विवाहिता कन्या पतिसम्पत्तिवर्द्धिनी ॥ ६५० ॥

विधिरत्न में व्यास ने कहा है कि विवाह में जब शनिवार में रिक्ता तिथि होती है तो विवाहित कन्या पति संपत्ति को बढ़ाने वाली होती हैं ॥ ६५० ॥

नक्षत्र शुद्धि ज्ञान

अथ नक्षत्रशुद्धिः—

बृहस्पतिः—

सौम्यपित्र्यर्क्षहस्तां च मैत्रं नैर्ऋतिवायवः ।
त्रीण्युत्तराणि पौष्णं च रोहिणी शोभनप्रदा ॥ ६५१ ॥
अन्याः सर्वा विवर्ज्याः स्युस्ताराः परिणये सदा ॥ ६५२ ॥

आचार्य बृहस्पतिजी ने बताया है कि मृगशिरा, मघा, हस्त, अनुराधा, मूल, स्वाती, तीनों उत्तरा रेवती और रोहिणी नक्षत्र में विवाह करने पर शुभ प्राप्ति होती है और अन्यों का सदा त्याग करना चाहिये ॥ ६५१–६५२ ॥

वसिष्ठः—

स्वाती मघायां निर्ऋतौ ध्रुवान्त्यमित्रेन्दुहस्तेषु च कन्यकायाम् ।
पाणिग्रहस्त्विष्टफलप्रदः स्यादसिद्धभेष्वेव गुणान्वितानाम् ॥ ६५३ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि स्वाती, मघा, मूल, ध्रुव संज्ञक, रेवती, अनुराधा, मृगशिरा, और हस्त नक्षत्र में कन्या का परिणय इष्ट फलदायक होता है और गुणियों का इनसे भिन्न नक्षत्रों में ही करना चाहिये ॥ ६५३ ॥

नारदः—

पौष्णधात्र्युत्तरामैत्रमरुच्चन्द्रार्कपित्र्यभैः ।
समूलभैरप्रसिद्धस्तैः स्त्रीकरग्रह इष्यते ॥ ६५४ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि रेवती, रोहिणी, ३ उत्तरा, अनुराधा, स्वाती, मृगशिरा, हस्त, मघा, मूल में विवाह इष्ट होता ॥ ६५४ ॥

पुनः ग्रन्थान्तर से फल के साथ नक्षत्र

राजमार्तण्डे—

हस्तोत्तरास्वातिमघानुराधा प्राज्ञेशपौष्णेन्दवनैर्ऋतेषु ।
पुत्रार्थसौभाग्यसुखानि कन्या प्राप्नोति शेषेषु च भर्तृशोकम् ॥ ६५५ ॥

राजमार्तण्ड नाम के ग्रन्थ में कहा है कि हस्त, उत्तरा, स्वाती, मघा, अनुराधा, रेवती, मृगशिरा, मूल में विवाह होने पर कन्या पुत्र, धन, सौभाग्य व सुख को प्राप्त करने वाली और अवशिष्ट नक्षत्रों में पति शोक से युक्त होती है ।। ६५५ ।।

विवाह में अभीष्ट नक्षत्र

श्रीपतिः—

मूलमैत्रमृगरोहिणीकरैः पौष्णमारुतमघोत्तरान्वितैः ।
निर्विधानि उडुभिर्मृगीदृशां पाणिपीडनविधिर्विधीयते ।। ६५६ ।।

आचार्य श्रीपति जी ने बताया है कि मूल, अनुराधा, मृगशिरा, रोहिणी, हस्त, रेवती, स्वाती, मघा, तीनों उत्तरा में कन्या का पाणिपीडन करना चाहिये ।। ६५६ ।।

चण्डेश्वरः—

मृगशिरसि मघायां हस्तमैत्रोत्तरासु स्वशनिर्ऋतिपूषाब्रह्मदेवेषु चोढा ।
बहुतरसुखदाशीर्वित्तसौभाग्ययुक्ता जनयति परितोषं कन्यका बांधवानाम् ।।६५७।।

आचार्य चण्डेश्वर ने कहा है कि मृगशिरा, मघा, हस्त, अनुराधा, तीनों उत्तरा, स्वाती, शतभिषा, मूल, पूर्वाषाढ, रोहिणी में विवाह करने पर कन्या अधिक सुख देने वाली, आशीष-धन सौभाग्य से युक्त और बान्धवों को संतोष देने वाली होती है ।। ६५७ ।।

शुभ कन्या और मुहूर्त

माहेश्वरः—

या स्यात्पक्षभुजंगभीषणनदीवृक्षर्क्षसंज्ञोज्झिता
कान्ता रोगविवर्जिता कपिलदृक् कांता च तामुद्वहेत् ।
माघे फाल्गुनसंयुते सहसि च ज्येष्ठे च वैशाखिके
मूलब्राह्मयमघांत्यमैत्ररविभस्वात्युत्तरा सैंदवे ।। ६५८ ।।

आचार्य माहेश्वर ने बताया है कि जो स्त्री–पक्ष–सर्प, भीषण नदी, वृक्ष, नक्षत्र संज्ञा से रहित, रोगहीन, कञ्जे नेत्र वाली हो उसका माघ, फागुन, अगहन, जेठ, वैशाख मास, मूल, रोहिणी, मघा, रेवती, अनुराधा, हस्त, स्वाती, तीनों उत्तरा और मृगशिरा में विवाह करना चाहिये ।। ६५८ ।।

विवाह में अशुभ नक्षत्र

गर्गः—

मघायाः प्रथमे पादे मूलस्य प्रथमे तथा ।
रेवत्याश्च चतुर्थांशे विवाहः प्राणनाशनः ।। ६५९ ।।

आचार्य गर्ग ने बताया है कि मघा व मूल के प्रथम चरण और रेवती के चौथे चरण में विवाह होने पर मृत्युकारक होता है ।। ६५९ ।।

पूर्वात्रिये विशाखाया आर्द्राद्ये भचतुष्टये ।
ऊढा चाशु भवेद्वंध्या विधवा वित्तवर्जिता ॥ ६६० ॥

तीनों पूर्वा, विशाखा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, श्लेषा में विवाह करने पर कन्या वन्ध्या, विधवा व धन से रहित होती है ॥ ६६० ॥

गुरुः—
आर्द्रापुनर्वसौ पुष्ये सार्पे वोढा भवेद्वधूः ।
विधवा स्वल्पकालेन विवाहसमयात्परम् ॥ ६६१ ॥

आचार्य गुरु ने बताया है कि आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, श्लेषा नक्षत्र में विवाह होने पर कन्या विवाह के अल्प समय बाद में विधवा होती है ॥ ६६१ ॥

विशेष

भगर्क्षं सर्वसौभाग्यकरं स्त्रीणां विशेषतः ।
कुतस्तर्हि वराहाद्यैर्गर्हितं पाणिपीडने ॥ ६६२ ॥

आचार्य गुरु ने कहा है कि विशेषकर स्त्रियों को पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र समस्त सौभाग्य देने वाला होता है तथापि गर्गादि मुनियों ने किस कारण से विवाह में निन्दित बताया है ॥ ६६२ ॥

पुष्य में अशुभता

ज्योतिःप्रकाशे—
कीर्तितो मुनिभिः सर्वैः पुष्यः सर्वार्थसाधकः ।
इति सत्यपि चोद्वाहे निन्दितः केन हेतुना ॥ ६६३ ॥

ज्योतिःप्रकाश नामक ग्रन्थ में कहा है कि समस्त ऋषियों ने पुष्य नक्षत्र को समस्त शुभ कार्यों की सिद्धि करने वाला कहा है तो भी विवाह में किस कारण निन्दित बताया गया है ॥ ६६३ ॥

कालिदासोपि—
समस्तकर्मोचितकालपुष्यो दुष्यो विवाहे मदमूर्च्छितत्वात् ।
सहस्रपत्रप्रसवेन तस्मादिहापि मुक्तो भुवि लोकसंघैः ॥ ६६४ ॥

आचार्य कालिदास जी ने भी बताया है कि पुष्य नक्षत्र समस्त कार्यों में उचित होकर भी विवाह में दूषित होता है क्योंकि ब्रह्मा जी की इसमें शादी होने पर वे पथभ्रष्ट हुए थे । अतः संसार में इसका विवाह में त्याग होता है ॥ ६६४ ॥

पूर्वा फाल्गुनी व पुष्य की अशुभता

अनयोरुत्तरं वृन्दावने—
प्राचेतसः प्राह शुभं भगर्क्षं सीता तदूढा न सुखं सिषेवे ।
पुष्यस्तु पुष्यत्यतिकाममेव प्रजापतेराप स शापमस्मात्[1] ॥ ६६५ ॥

---

१. वि. वृ. १ अ. ५ श्लो. ।

विवाहवृन्दावन में कहा है कि मुनि प्राचेतस ने विवाह में पूर्वाफाल्गुनी को शुभ माना है किन्तु सीताजी का विवाह इसमें होने से वनवास होने के नाते विवाह में यह अशुभ माना गया है। इसी प्रकार ब्रह्माजी का पुष्य में विवाह हुआ था और शम्भु विवाह के समय पार्वती के सौन्दर्य को देखकर ब्रह्मा विचलित हुए अतः विवाह में इसका त्याग होता है ॥ ६६५ ॥

चिन्तामणौ—

आश्लेषा च मघापूर्वा चित्राश्रवणरेवती।
एतानि षट्ऋक्षाणि पंगुत्वं च विनिर्दिशेत् ॥ ६६६ ॥

चिन्तामणि नामक ग्रन्थ में बताया है कि आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, चित्रा, श्रवण, रेवती इन ६ नक्षत्रों में विवाह होने पर पङ्गुत्व होता है ॥ ६६६ ॥

योगशुद्धि ज्ञान

अथ योगशुद्धिः—

व्यतीपाते ध्रुवं मृत्युर्गण्डान्ते बहुरोगिणी।
विद्युदग्निभवेद्वज्रे शूले प्राप्य तनुग्रही ॥ ६६७ ॥
वैधृतौ मरणं दास्यं विष्कंभे कामचारिणी।
वीर्यहीनोतिगण्डे स्याद्व्याघाते हन्यते सुतः ॥ ६६८ ॥
परिघस्य भवेद्दासो मद्यमांसरतस्सदा।
एतानि नवयोगानि देवता परिवर्जयेत् ॥ ६६९ ॥

व्यतीपात योग में विवाह होने पर निश्चय मृत्यु, गण्डान्त में अधिक रोगिणी कन्या, वज्रयोग में बिजली गिरने का या अग्निभय, शूल में फांसी, वैधृति में मरण या दासीभाव, विष्कम्भ में व्यभिचारिणी, अतिगण्ड में पराक्रम की हीनता, व्याघात में पुत्र मरण, परिघ में शराब मांस में आसक्त दासी होती है। इन ९ योगों का देवता भी त्याग करते हैं ॥ ६६७–६६९ ॥

पुनः ग्रन्थान्तर से अशुभ योग

श्रीपतिः—

कुलच्छेदो व्यतीपाते परिघे स्वामिघातिनी।
वैधृते विधवा नारी विषदाहोतिगण्डके ॥ ६७० ॥
व्याघाते व्याधिसंघातः शोकार्ता हर्षणे तथा।
शूले च व्रणशूलं स्याद्गण्डे रोगभयं तथा ॥ ६७१ ॥
विष्कंभेप्यहिदंशः स्याद्वज्रके मरणं भवेत्।
एते वै दारुणाः सर्वे दश योगाः प्रकीर्तिताः ॥ ६७२ ॥

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि व्यतीपात योग में विवाह होने पर वंश का नाश, परिघ में पति को मारने वाली, वैधृति में विधवा, अतिगण्ड में विषदाह, व्याघात में

व्याधि संघात, हर्षण में शोक से पीडित, शूल में घाव से दुःखी, गण्ड में रोग भय, विष्कम्भ में सर्प से डसना और वज्र में मृत्यु होती है। ये दस योग विवाह में दूषित कहे गये हैं ।। ६७०–६७२ ।।

विवाह मे करण शुद्धि ज्ञान

अथ करणशुद्धिः –

विष्टयां च मरणं नित्यं सुभगा षट्स्वपि चरे करणे ।
ध्रुवकरणैः शकुनाद्यैः पाणिग्रहणे ध्रुवं मृत्युः ।। ६७३ ।।

ग्रन्थान्तर में कहा है कि विष्टिकरण में विवाह होने पर मरण और अन्य ६ चर करणों में कन्या सुभगा और शकुनादि स्थिर करणों में निश्चय ही मृत्यु होती है ।।६७३।।

बृहस्पतिः—
विवाहे करणाः सर्वे शोभना विष्टिवर्जिताः ।। ६७४ ।।

आचार्य वृहस्पति ने वताया है कि विवाह में विष्टिकरण को छोड़कर अन्य करण शुभफल देने वाले होते हैं ।। ६७४ ।।

विवाह में लग्न शुद्धि का ज्ञान

अथ विवाहलग्नशुद्धिः—

बृहस्पतिः—
जारसक्ता क्रिये लग्ने वृत्तिभ्रष्टा वृषोदये ।
कुलद्वये शुभा प्रोक्ता तथा च जितुमोदये ।। ६७५ ।।
नृशंसा कुलटा कर्के सिंहे वंध्या सकृत्प्रसूः ।
पतिश्वशुरयोः प्रीता कन्यायां सुरतप्रिया ।। ६७६ ।।
तुलोदये धनाढ्या स्याद्वृश्चिके नित्यमास्थिता ।
कुलटा चापपूर्वार्द्धे प्रौढा चाति सती परे ।। ६७७ ।।
परशक्त्या मृगे कुम्भे मीने दुश्चारिणी द्वयोः ।
बलिनो राशयः सर्वे यथा प्रोक्तफला सदा ।। ६७८ ।।

आचार्य वृहस्पतिजी ने वताया है कि मेष लग्न में विवाह होने पर व्यभिचार में आसक्त, वृष में जीविका से भ्रष्ट, मिथुन में दोनों कुलों में शुभ करने वाली, कर्क में नृशंसा व कुलटा, सिंह में एक वार सन्तान उत्पन्न करके वन्ध्या, कन्या में सुन्दर रति की इच्छा वाली और पति व श्वसुर की प्यारी, तुला में धन से युक्त, वृश्चिक में नित्य अस्थिर, धनु के पूर्वार्ध में कुलटा और उत्तरार्ध में अधिक सती, मकर में दूसरे में आसक्त और कुम्भ मीन लग्न में कन्या का विवाह होने पर व्यभिचारिणी होती है। ये पूर्वोक्त फल वली लग्न होने पर अवश्य होता है ।। ६७५–६७८ ।।

गौतमोपि—

क्रूपेः कुमारिष्वनुरक्तचित्ता विहीनवित्ता गवि गोव्रता च।
कुलद्वयानंदकरी न युग्मे कुलीरलग्ने कुलटा नृशंसा ॥ ६७९ ॥
हरौ प्रसूता सकृताः श्रियायुः पतिप्रिया च श्वशुरस्य षष्ठे।
रूपाभिमानार्थवती तुलाधरे तथालिनी क्रंदति नित्यमस्थिरा ॥ ६८० ॥
धनुषि कुलटा तत्पूर्वोर्द्धे सतीत्यपरे जगुः।
मृगझषघटेष्वन्यासक्ता जरामुपगच्छति ॥ ६८१ ॥

ऋषि गौतम ने बताया है कि मेष लग्न में विवाह होने पर कन्या कुमारियों में अनुरक्त, वृष लग्न में धन से हीन व गाय की सेवा करने वाली, मिथुन में दोनों कुलों को नहीं आनन्द देने वाली, कर्क में घृणित व कुलटा (वेश्या) सिंह में पुण्यवती व धन आयु से युक्त, कन्या में श्वसुर व पति की प्रिया, तुला में रूपवती, अभिमान व धन से युक्त, वृश्चिक में अस्थिर, नित्य क्रन्दन करने वाली, धनु के पूर्वार्ध में कुलटा और उत्तरार्ध में सती, मकर-मीन-कुम्भ लग्न में कन्या दूसरों में आसक्ति रखकर बूढी होने वाली होती है ॥ ६७९–६८१ ॥

तिथ्यादि के बल का ज्ञान

बृहस्पतिः—

तिथ्यास्तु बलवान्करणः करणाब्दलवान्दिनः।
दिनाद्दक्षो बलाढ्यः स्यात्सर्वथानुदयोबली ॥ ६८२ ॥
एवं बलोत्क्रमो ज्ञेयो गुणदोषविमिश्रिते।
एवं सर्वत्र विज्ञेयो विवाहे तु विशिष्यते ॥ ६८३ ॥
सर्वेषां बलमुक्तं तु पूर्वं विषयतः क्रमात्।
तथा बलं समादेश्यो लग्नस्थगुणदोषयोः ॥ ६८४ ॥

आचार्य बृहस्पति ने बताया है कि तिथि से बली करण, करण से वार, वार से नक्षत्र और सर्वथा लग्न बली होता है। इस प्रकार से गुण दोष मिश्रित होने पर उत्क्रम बल जानना चाहिये। विवाह में विशेषतः लग्न का बली होना आवश्यक होता है। प्रथम समस्तों का फल विषय क्रम से वर्णित है उसे जानकर लग्नस्थ गुण दोष का ज्ञान करके बली लग्न में विवाह करना चाहिये ॥ ६८२–६८४ ॥

विवाह में अंश (नवांश) शुद्धि ज्ञान

अथांशशुद्धिः—

भुंक्ते पुरुषतृतीयं पाणिग्रहणे क्रियांशके कन्या।
कामयते वृषभे गौरपि कामातुराभर्त्रनुजान् ॥ ६८५ ॥
स्वकुलद्वयकरी विदाहिता सा तृतीयांशे।
श्रद्धेन त्यक्त्वा पतिं विचरति कुलीरगे अन्यदेशस्तु ॥ ६८६ ॥

पैतृककुलानुरक्ता सिंहांशोद्वाहिता कन्या।
धनसौभाग्यसमृद्धा भर्तृरताथ कन्यायाम् ॥ ६८७ ॥

अत्यर्थपुत्रवती सुभगा साध्वी तुलांशके साध्वी।
रोदनशीलातीववृश्चिकभागे प्रिया भर्तुः ॥ ६८८ ॥

धनुरंशके सुवृद्धि भर्तारं भृत्यवद्भजति नारी।
मृगभागे पुरुषाणां न याति तृप्तिं सुप्रसिद्धापि ॥ ६८९ ॥

व्यभिचरति कुंभभागे वितते यज्ञेपि दीक्षिता नारी।
सौभाग्यवती चपला प्रहसितवदनापि मीनांशे ॥ ६९० ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि मेष के नवांश में शादी होने पर कन्या तीन पुरुषों को भोगने वाली, वृष के नवांश में गाय भी काम से पीडित होकर पति के अनुजों की इच्छा करने वाली, मिथुन के नवांश में श्रद्धा से दोनों कुलों के काम करने वाली, कर्क नवांश में पति का त्याग कर अन्य देश में विचरने वाली, सिंह के नवांश में पिता के कुल में आसक्त, कन्या के नवांश में धन सौभाग्य से पति में अनुरक्त, तुला के नवांश में अधिक पुत्रों से युत सुभगा, साध्वी, वृश्चिक के नवांश में साध्वी, अधिक रुदन करने वाली पति की प्यारी, धनु के नवांश में पति की वृद्धि करने वाली तथा सेवक की तरह पति के अनुकूल, मकर के नवांश में सुप्रसिद्ध भी पुरुषों को न तृप्त करने वाली, कुम्भ के नवांश में विशाल यज्ञ में दीक्षित होने पर भी व्यभिचारिणी और मीन के नवांश में विवाह होने पर कन्या सौभाग्यवती व हँसमुख होकर भी चपल होती है ॥६८५-६९०॥

विवाह में ग्रन्थान्तर से १२ राशियों के नवांश का फल

वसिष्ठोपि—

द्विभर्तृका मेषनवांशके स्याद्वृषांशके सा पशुशीलयुक्ता।
धनान्विता पुत्रवती तृतीये कुलीरकांशे कुलटाप्यजस्रम् ॥ ६९१ ॥

सिंहांशके सा पितृमंदिरस्था कन्यांशके वित्तयुता सुशीला।
तुलांशके सर्वगुणास्पदा सा कीटांशके वित्ततरा विशीला ॥ ६९२ ॥

चापांशकाद्ये धनिनि द्वितीये भागेन्यसक्ता मलिना गदाढ्या।
निस्वा मृगांशे विगुणा घटांशे विभर्तृका योगरता विशीर्णा ॥ ६९३ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने भी कहा है कि लग्नस्थ मेष के नवांश में जिस कन्या का विवाह होता है वह दो पति वाली, वृष के नवांश में पशु समान शील स्वभाववाली, मिथुन के नवांश में धन से युक्त पुत्रवती, कर्क के नवांश में निरन्तर वेश्या, सिंह के नवांश में पिता के घर में रहनेवाली, कन्या के नवांश में धन से युक्त सुशील, तुला के नवांश में समस्त गुणों की खान, वृश्चिक के नवांश में अधिक धनवाली, सुशील, धनु के आदि के अर्ध

नवांश में धनिनी, उत्तरार्ध नवांश में अन्य पुरुष में आसक्त, दूषित व रोग से युक्त, मकर के नवांश में दरिद्रिणी, गुणों से हीन, कुम्भ के नवांश में पति से रहित, योग क्रिया में आसक्त, विशीर्ण होती है ।। ६९१–६९३ ।।

तस्मात्सदा चोक्तनवांशकेषु कुर्याद्विवाहं गुणसंप्रवृद्धयै ।
नवांशदोषः सकलं गुणौघं लग्नोत्थसौम्यग्रहसंभवं च ।। ६९४ ।।

ध्रुवं निहंतीव वृकाजसंज्ञषड्वर्गजं सौम्यवियच्चराणाम् ।। ६९५ ।।

इसलिए उक्तों में से शुभ नवांश ज्ञात कर गुणों की वृद्धि के लिए उनमें विवह करना चाहिए। क्योंकि नवांश दोष समस्त गुण समुदाय व लग्नस्थ शुभ ग्रह से उत्पन्न शुभ तथा शुभ ग्रहों के षड्वर्ग जन्य फल को ऐसे ही नाश करता है जैसे भेड़िया, बकरी समुदाय का ।। ६९४–६९५ ।।

ग्रन्थान्तर से शुभ नवांश

नारदः—

तुलामिथुनकन्यांशधनुराद्यर्द्धसंयुता ।
एते नवांशाः शुभदाः यदि नात्यशका खलु ।। ६९६ ।।

ऋषि नारद ने बताया है कि तुला, मिथुन, कन्या, धनु के अर्ध नवांश विवाह लग्न में शुभ होते हैं, जब कि अन्तिम नवांश न हों ।। ६९६ ।।

विवाह में मीन नवांश का फल

शौनकः—

सुन्दरो सौभाग्यवती प्रहसितवदना च मीनांशे ।। ६९७ ।।

ऋषि शौनक ने कहा है कि मीन के नवांश में कन्या का विवाह होने पर वह सौभाग्यवती व हास्य युक्त मुखवाली होती है ।। ६९७ ।।

अन्तिम नवांश का परिहार

कश्यपः—

अंत्यांशका अपि श्रेष्ठा यदि वर्गोत्तमाह्वयाः ।
अनुक्तांशास्तु न ग्राह्या यतस्ते कुनवांशकाः ।। ६९८ ।।

ऋषि कश्यप ने बताया है कि जो कि अन्तिम नवांश वर्गोत्तम राशि का हो तो वह उत्तम होता है और अनुक्तों का त्याग दूषित होने के कारण करना चाहिये ।। ६९८ ।।

शुभ नवांश ज्ञान

श्रीपतिः—

कोदंडतौलिमिथुनप्रमदानवांशे प्राप्नोति सौख्यमतुलं दयिता च भर्तुः ।
शेषेषु सत्स्वपि तथा च्यवनोज्झिता च चापेधिके भवति कृच्छ्वदंति केचित् ।।६९९।।

आचार्य श्रीपति जी ने बताया है कि धनु, तुला, मिथुन, कन्या के नवांश में विवाह होने पर कन्या अतुल सुखों से संपन्न व पति की प्यारी और अवशिष्टों में त्यक्त तथा धनु के उत्तरार्ध में पुण्य करनेवाली होती है, ऐसा किसी का पक्ष है ॥ ६९९ ॥

इष्ट लग्न ज्ञान

तथाच—

कन्यानृयुग्मं च वणिग्विलग्ने स्थिते विवाहे शुभमादधाति ।
लब्धग्रहाणां बलमन्यभेपि देयस्तु तज्ज्ञैर्द्विपदांश एव ॥ ७०० ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि विवाह में प्राप्त ग्रहों का बल कन्या, मिथुन, तुला के लग्न में शुभ होता है । अन्य राशि में द्विपदांश का ज्ञान करके लग्न का आदेश देना चाहिये ॥ ७०० ॥

अन्तिम नवांश का परिहार

वसिष्ठः—

वर्गोत्तमविनान्त्यांशो विवाहे न शुभप्रदः ।
वर्गोत्तमश्चेदंत्यांशः पुत्रपौत्रादिवृद्धिदः ॥ ७०१ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि वर्गोत्तम नवांश के बिना विवाह में अन्तिम नवांश त्याज्य होता है । और यदि अन्तिम नवांश वर्गोत्तम का हो तो विवाह करने पर पुत्र, पौत्र आदि की वृद्धि होती है ॥ ७०१ ॥

चरत्रय दोष का त्याग

केशवार्कः —

[1]चरलवं चरवेश्मगमुत्सृजेन्मृगतुलाधरगे मृगलक्ष्मणि ।
युवतिरत्र भवेत्कृतकौतुकामदनवत्यनवत्यजनोन्मुखी ॥ ७०२ ॥

आचार्य केशव ने बताया है कि चरलग्न विवाह में चरराशि लग्नस्थ चर नवांश का मकर, तुला राशिस्थ चन्द्रमा के होने पर त्याग करना चाहिये । क्योंकि उक्त स्थिति में विवाह होने पर कन्या पति को छोड़कर पर पुरुष गामिनी होती है ॥ ७०२ ॥

जन्मकालिक ग्रह से दोष

[2]अशुभकृत्खलगः खलु योंशको जनुरनेहसिनेहसितास्तगे ।
तनुगतेपि शिवं युवयोषितो बलवतो लवतो न भयं क्वचित् ॥ ७०३ ॥

विवाह वृन्दावन में कहा है कि वरवधू के जन्माङ्ग में दुष्टकारी पाप ग्रह जिस नवांश में हो वह नवांश विवाह के समय लग्न या चन्द्रगत हो तो अशुभकारी होता है । किन्तु उक्त बली नवांश होने पर कभी-कभी भय की प्राप्ति नहीं होती है ॥७०३॥

---

१. वि. वृ. ४ अ. १७ श्लो. ।
२. वि० वृ० ४ अ० १९ श्लो० ।

[1]अनुजनुर्मृतिगो मृतिपश्च यः सतनुगस्तनुगे न शिवं क्वचित् ।
इति विविक्तिरियं फलदा सदा स इह सिद्धयति चेत्समयः स्फुटः ।।७०४।।

विवाह वृन्दावन में बताया है कि वर वधू के जन्म लग्न से जो ग्रह अष्टम में होता है तथा जन्म लग्न से अष्टमेश ग्रह यदि विवाह के समय लग्न में स्थित होता है तो कभी-कभी शुभ नहीं होता है। यह स्थिति सदा फल देने वाली उसी हालत में होती है कि जब जन्मकाल व विवाहकाल की घटियों में समानता होती है ॥ ७०४ ॥

विवाह में दस दोषों के नाम

अथ विवाहे दशदोषाः—

[2]वेधं च लत्ता च तथा च पातः खार्जूरवेधो दशयोगचक्रम् ।
युतिश्च यामित्र उपग्रहाश्च बाणाख्यवज्रे च दशैव दोषाः ।।७०५।।

ग्रन्थान्तर में बताया है कि वेध १, लत्ता २, पात ३, खार्जूर ४, दसयोग चक्र ५ युति ६, यामित्र ७, उपग्रह ८, बाण ९ और व्रज्र १० ये दस दोष होते हैं ॥ ७०५ ॥

विवाह में १८ दोष का ज्ञान

अथाष्टादशदोषाः—

यद्वेधः पातलत्तागृहमिनमुडुक्रूरवारो ग्रहाणां
जन्मर्क्षं विष्टिरर्द्धं प्रहरककुलिको मृत्युगेंदौ रिपुस्थो ।
कर्को घंटो यमस्य प्रगतशशिवलं दुष्टयोगोर्गलाख्यो
दग्धा चाहश्च गर्गप्रमुखमुनिवरैस्त्यज्यतेष्टादशोयम् ॥ ७०६ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि वेध १, पात २, लत्ता ३, उपग्रह ४, क्रूरवार ५ जन्मर्क्ष ६, विष्टि ७, अर्धयाम ८, कुलिक ९, अष्टमस्थ चन्द्र, १०, षष्ठस्थ चन्द्र ११, कर्कलग्न १२ यमघण्ट १३, क्षीण चन्द्र १४, दुष्ट योग १५, अर्गला १६, दग्धा तिथि १७, दग्ध दिन १८ ये दोष गर्गादि मुनियों ने विवाह में त्यागने योग्य कहे हैं ॥ ७०६ ॥

विवाह में २१ दोषों का ज्ञान

अथ एकविंशतिदोषाः—

नारदः—

[3]एकविंशतिदोषाणां नामरूपफलानि च ।
पितामहोक्तं संवीक्ष्य तानि वक्ष्ये समासतः ॥ ७०७ ॥

ऋषि नारद जी कहते हैं कि मैं पितामहोक्त दोषों को देखकर २१ दोषों के नाम व स्वरूप को क्रम से यहाँ कह रहा हूँ ॥ ७०७ ॥

---

१. वि० वृ० ४ अ० २० श्लो० ।
२. मु० चि० ६ प्र० ३६ श्लो० पी०टी० ।
३. मु० चि० ६ प्र० ३६ श्लो० पी० टी० ।

[1]पंचांगशुद्धिरहितो दोषस्त्वाद्यः प्रकीर्तितः ।
उदयास्तशुद्धिहीनो द्वितीयः सूर्यसंक्रमः ॥ ७०८ ॥
तृतीयः पापषड्वर्गो भृगुः षष्ठः कुजोष्टमः ।
गंडांतकर्तरीरिःफषडष्टेन्दुश्च संग्रहः ॥ ७०९ ॥
दंपत्योरष्टमं लग्नं राशिविषघटी तथा ।
दुर्मुहूर्तो वारदोषो खार्जूरिकसमांघ्रिभम् ॥ ७१० ॥
ग्रहणोत्पातभं क्रूरविद्धर्क्षं क्रूरसंयुतम् ।
कुनवांशो महापातो वैधृतिश्चैकविंशतिः ॥ ७११ ॥

प्रथम पञ्चाङ्ग शुद्धि रहित १ दोष, उदयास्त शुद्धि २, सूर्यसंक्रान्ति दिन ३, पापग्रहों का षड्वर्ग ४, विवाह लग्न में षष्ठस्थ शुक्र ५, अष्टमस्थ भौम ६, त्रिविध गण्डान्त ७, कर्तरी ८, ६।८।१२ में चन्द्रमा ९, लग्नस्थ चन्द्र व पापग्रह १०, वरवधू की राशि से अष्टमलग्न ११, विषघटी १२, दुष्टमुहूर्त १३, वारदोष १४, लत्ता १५, ग्रहण नक्षत्र १६, उत्पात नक्षत्र १७, पापग्रह वेधित नक्षत्र १८, पापग्रह युक्त नक्षत्र १९, पापांश २० और क्रान्तिसाम्य २१ ये विवाह में महादोष होते है ॥७०८–७११॥

२१ दोषों में शुभ कार्य का निषेध

वसिष्ठः—

[2]एकविंशन्महादोषास्त्वेते ब्रह्ममुखोदिताः ।
[3]कदाचिन्नैव सोदंति गुणानां कोटिकोटिभिः ॥ ७१२ ॥
तस्मादेतेषु दोषेषु कदाचिन्नाचरेच्छुभम् ।

ऋषिवसिष्ट ने बताया है कि ये २१ दोष ब्रह्मा के मुख से कहे हुए हैं । इनके रहने पर कोटिशः गुण होने पर भी मनुष्य कभी सुखी नहीं होता इसलिये इनकी सत्ता में कभी भी माङ्गलिक कार्य नहीं करना चाहिये ॥ ७१२½ ॥

विवाहादि में फल

[4]विवाहे विधवा नारी मरणं व्रतबन्धने ॥ ७१३ ॥
ग्रामनाशः प्रतिष्ठायां सोमन्ते गर्भनाशनम् ।
[5]नवान्नभोजने मृत्युः कृषौ तत्फलनाशनम् ॥ ७१४ ॥
कर्तुर्नाशो गृहारंभे प्रवेशे पतिनाशनम् ।
[6]यात्रायां कर्तृनाशः स्याद्युद्धे याने विशेषतः ॥ ७१५ ॥
लभ्यते सुमहापुण्यमेषु श्राद्धादिकर्मभिः ॥ ७१६ ॥

---

१. मु० चिं० ६ प्र० ३६ श्लो० पी० टी०। ज्यो० नि० ६९ पृ० तथा ज्यो० सा० १२५ पृ० ५०८–५११ = १–४ श्लो० ।
२. व. सं. ४२ अ. १०७ श्लो. । ३. व. सं. ४२ अ. १०८ श्लो. ।
४. व. सं. ४२ अ. १०९ श्लो. । ५. व. सं. ४२ अ. ११० श्लो. ।
६. व. सं. ४२ अ. १११ श्लो. ।

विवाह में उक्त दोष होने से कन्या विधवा, व्रतबन्ध में वटु का मरण, प्रतिष्ठा में गाँव का नाश, सीमन्त में गर्भपतन, अन्न प्राशन में मृत्यु, कृषि में फल का नाश, गृहारम्भ में कर्ता का विनाश, प्रवेश में पति का, यात्रा में कर्ता तथा युद्ध व यान में विशेष कर जाने वाले का नाश होता है। और श्राद्धादि कार्य में बड़ा पुण्य होता है ॥ ७१२३/४–७१६ ॥

समस्त देशों में त्याज्य दोष

[1]पंचांगदोषो रविसंक्रमश्च ससंग्रहः कर्तरिकांशदोषाः ।
चन्द्रारिरिष्फाष्टमपापवर्गः कुजाष्टमस्थो भृगुः षट्कसंस्थः ॥ ७१७ ॥
[2]गण्डांतखर्जूरिकवारदोषो विषाख्यनाड्योष्टमलग्नराशिः ।
[3]अकालवृष्टिः कुमुहूर्तदोषो महाव्यतीपातकवैधृतोत्यः ॥ ७१८ ॥
लग्नास्तशुद्धिर्ग्रहणर्क्षजातः पापर्क्षविद्धर्क्षसमुद्भवा ये ।
[4]उत्पातभाख्या महदाख्यदोषाः सर्वेषु देशेषु सदा विवर्ज्याः ॥ ७१९ ॥

पञ्चाङ्ग दोष, सूर्य संक्रान्ति, संग्रह, कर्तरी, नवांश, ६।१२।८ में स्थित चन्द्रमा, पापवर्ग, अष्टमस्थ भौम, षष्ठ में शुक्र, गण्डान्त, खार्जूर, वार दोष (कुलादिक) विषनाडी, अष्टम लग्न राशि, अकाल वृष्टि, दुष्टमुहूर्त, महाव्यतीपात, वैधृति, यामित्र, ग्रहण-पाप-वेध नक्षत्र और उत्पात नामक योग इन बड़े दोषों का समस्त देशों में सदा त्याग करना चाहिये ॥ ७१७–७१९ ॥

बृहन्नारदीये—
महादोषा इमे त्याज्याः सर्वदेशेषु सर्वदा ।
न निवारयितुं शक्या गुणोत्तरशतैरपि ॥ ७२० ॥

बृहन्नारदीय में कहा है कि इन महादोषों का सर्वदा समस्त देशों में त्याग करना चाहिये क्योंकि शतादिगुण होने पर भी इनका दूरीकरण असंभव होता है ॥ ७२० ॥

८४ दोषों का ज्ञान

अथ चतुरशीतिदोषाः—

आदौ सुरगुरोरस्तं बालवृद्धस्य सूतकम् ।
देवानां शयनं चैव शुक्रास्तं शुक्रसूतकम् ॥ ७२१ ॥
चन्द्रास्तसूतके चैव क्षयमासाधिमासजौ ।
सिंहेज्यो मकरेज्यश्च वक्रातीचारयोर्गुरुः ॥ ७२२ ॥
लुप्तसंवत्सरश्चैव गुर्वादित्यस्तथैव च ।
सूर्यचन्द्रेज्यताराणां दुष्टस्थानस्य दूषणम् ॥ ७२३ ॥

---

१. व. सं. ३२ अ. २१ श्लो. । २. व. सं. ३२ अ. २२ श्लो. ।
३. व. सं. ३२ अ. २३ श्लो. । ४. व. सं. ३२ अ. २४ श्लो. ।

वर्षमासादिदोषश्च ऋक्षं दग्धादि दूषितम् ।
संक्रांतिक्रूरहोराश्च क्रूरवारोथ वैधृतिः ॥ ७२४ ॥
परिघार्द्धं व्यतीपातो गण्डांतस्त्रिविधस्तथा ।
उत्पातर्क्षं च पर्वर्क्षं दग्धा विष्टिश्च कर्तरी ।
लत्तापातं तथा वेधं यामित्रं युतिदूषणम् ।
एकार्गलं दशायोगं वज्रं च बाणपंचकम् ॥ ७२५ ॥
उपग्रहं क्रान्तिसाम्यं कुलिकं कालकंटको ।
उत्पातमृत्युकाणाश्च क्रकचग्रहजन्मभम् ॥ ७२६ ॥
यमघंटोर्द्धयामं च संवर्तः कुलिकस्तथा ।
क्रूरवर्गःषडष्टेन्दुर्लग्नेशो रिपुमृत्युगः ॥ ७२७ ॥
मासतिथ्यधिसंधिश्च नक्षत्रविषनाडिका ।
लग्नेशास्तादिदोषश्च तथा भंगदकुंडली ॥ ७२८ ॥
अंधकुब्जादिदोषश्च रिक्तावृद्धिक्षयातिथिः ।
जन्ममासादिदोषश्च जन्मर्क्षादष्टमं च भम् ॥ ७२९ ॥
एकोदरभवोद्वाहं तथा पर्वस्य सूतकम् ।
क्रूरग्रहयुतं लग्नं घातचन्द्रस्तथैव च ॥ ७३० ॥
दंपत्योर्जन्मलग्नेशेऽस्तंगते सति दूषणम् ।
एतान्दोषान्परित्यज्य विवाहं प्रकरोति यः ॥ ७३१ ॥
सुखसौभाग्यमाप्नोति आयुर्वृद्धियशो ध्रुवम् ॥ ७३२ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि गुरु का अस्त, बाल, वृद्ध, देवशयन, शुक्रास्त व बाल, वृद्धत्व, चन्द्रास्त सूतक, क्षयमास, अधिक मास, सिंहस्थ गुरु, मकरस्थ गुरु, वक्रीगुरु, अतिचारी गुरु, लुप्तसंवत्, गुर्वादित्य, सूर्य, चन्द्र और गुरु के दूषित स्थान, वर्ष, मासादिदोष, दग्धादि नक्षत्र, संक्रान्ति, क्रूर होरा, क्रूरवार, वैधृति, परिघार्ध, व्यतीपात, त्रिविधगण्डान्त, उत्पातनक्षत्र, पर्वनक्षत्र, दग्धातिथि, भद्रा, कर्तरी, लत्ता, पात, वेध, यामित्र, युति, एकार्गल, दशायोग, वज्रयोग, बाणपंचक, उपग्रह, क्रान्तिसाम्य, कुलिक, काल, कण्टक, उत्पात-मृत्यु-काण योग, क्रचकग्रह, जन्म, नक्षत्र, यमघंट यामार्ध, संवर्त, कुलिक योग, पापषड्वर्ग, ६।८ में चन्द्रमा, ६।८ में लग्नेश, माससन्धि, तिथिसन्धि, नक्षत्रसंधि, विषनाडी, अस्तलग्नेश, भगदकुण्डली, अंध, कुब्जादिदोष, रिक्तातिथि, वृद्धि तिथि, क्षयातिथि, जन्म मासादिदोष, जन्मराशि से अष्टमराशिलग्न, एकोदरभवोद्वाह, पर्व का सूतक, क्रूरग्रह से युक्त लग्न, घात चन्द्र, वर वधू की जन्मलग्न का स्वामी अस्त होने पर इन समस्त दोषों का विवाह में जो त्याग करता है वह सुख, सौभाग्य, आयु वृद्धि व निश्चय ही यश को पाने वाला होता है ॥ ७२१-७३२ ॥

पञ्चशलाका चक्रनिर्माण विधि

अथ पंचशलाका ।

श्रीपतिः—

ऊर्ध्वा रेखाः पंच तिर्यक् स्थिताश्च द्वे द्वे रेखे कोणयोरत्र चक्रे ।
अग्रे धिष्णं शंभुकोणे द्वितीये नाड्यां न्यस्येद्वान्यतः साभिजिच्च ।। ७३३ ।।

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि पांच रेखा ऊर्ध्व और पाँच रेखा तिरछी बनाकर दो दो रेखा कोण में निर्माण करके ईशान कोण की द्वितीय रेखा पर कृत्तिका नक्षत्र को स्थापित करके प्रदक्षिण क्रम से साभिजित् नक्षत्रों को स्थापित करने से पञ्चशलाका चक्र बनता है ।। ७३३ ।।

अभिजित् नक्षत्र का ज्ञान

अंत्यः पादो वैश्वदेवाह्वयस्य विष्णोर्धिषणस्याद्यनाड्यश्चतस्रः ।
प्रोक्ता भुक्तिः साभिजित्संज्ञकस्य तत्स्थे खेटे रोहिणीनां च वेधः ।। ७३४ ।।

उत्तराषाढनक्षत्र का अन्तिम चरण और श्रवण नक्षत्र की आदि की चार घटी अभिजित् नक्षत्र का भोग होता है। अभिजित् नक्षत्र में ग्रह रहने पर रोहिणी को वेधित करता है ।। ७३४ ।।

पुनः ग्रन्थान्तर से पञ्चशलाका चक्र निर्माण

[1]विवाहवृन्दावने—

याम्योत्तराप्रागपराश्च पञ्च द्वे द्वे च रेखे रचयेद्विदिक्षु ।
विदिग्द्वितीयार्गलिताग्नितारः सहाभिजित्तत्रभवेद्भवर्गः ।। ७३५ ।।

विवाह वृन्दावन में बताया है कि पाँच रेखा याम्योत्तर व पाँच पूर्वापर बनाकर दो दो रेखा कोणों में बनाने के पश्चात् ईशान कोण की द्वितीय में कृत्तिका नक्षत्र का न्यास करके प्रदक्षिण क्रम से अभिजित् के साथ नक्षत्रों का न्यास करने पर उक्त चक्र तैयार होता है ।। ७३५ ।।

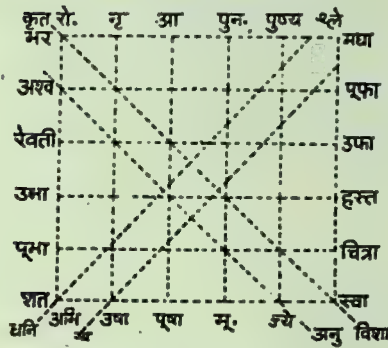
उक्त चक्र में नक्षत्रों का वेध

मूलादित्योः श्रवणमघयोः सौम्यविश्वाद्वयोश्च
पौष्णार्यम्णोर्वरुणमरुतोर्मैत्रयाम्यर्क्षयोश्च ।
अहिर्बुध्न्याभिधरविभयो रोहिणी साभिजिच्च
वेधोयं वै मुनिभिरुदितः पाणिसम्बन्धकाले ।। ७३६ ।।

पञ्चशलाका चक्र में मूल-पुनर्वसु, श्रवण-मघा, मृगशिरा-उत्तराषाढ, रेवती-उत्तरा फाल्गुनी, शतभिषा-स्वाती, अनुराधा-भरणी, उत्तराभाद्रपद-हस्त, रोहिणी-अभिजित् में वेध होता है ऐसा विवाह में मुनियों ने कहा है ।। ७३६ ।।

१. अ. १ श्लो. ६ ।

स्पष्टार्थं पञ्चशलाका चक्र



ग्रन्थान्तर से वेधित नक्षत्र

[1]चिन्तामणौ रामः—

वेधोन्योन्यमसौ विरिच्यभिजितोर्याम्यानुराधर्क्षयो -
र्विश्वेंदोर्हरिपित्र्ययोर्ग्रहकृतो हस्तोत्तराभाद्रयोः ।
स्वातीवारुणयोर्भवेन्निर्ऋतिभादित्योस्तथा फांत्ययोः
खेटे तत्र गते तुरीयचरणाद्योर्वा तृतीयद्वयोः ॥ ७३७ ॥

मुहूर्तचिन्तामणि में बताया है कि रोहिणी-अभिजित्, भरणी-अनुराधा, उत्तराषाढ़-मृगशिरा, श्रवण-मघा, हस्त-उत्तराभाद्रपद, स्वाती-शतभिषा, मूल-पुनर्वसु, उत्तरा फाल्गुनी-रेवती नक्षत्रों का परस्पर ग्रह कृत वेध होता है। जैसे भरणी नक्षत्र पर कोई ग्रह हो तो उसका अनुराधा पर और अनुराधास्थ ग्रह का भरणी पर वेध होता है। समग्र ग्रह वेध की अपेक्षा ग्रह जिस नक्षत्र के चरण पर हो अर्थात् चौथें चरण में होने पर प्रथम चरण वेधित और दूसरे चरण में हो तो तीसरे चरण पर वेध होता है।।८३७।।

सप्तशलाका चक्र न्यास

अथ सप्तशलाका—

राजमार्तण्डे—

पूर्वे कुबेरे वरुणे च याम्ये दिङ्मण्डले सप्त भवंति रेखाः ।
ताभिर्मुनींद्रा विदितार्थसिद्धा वदन्ति ते सप्तशलाकचक्रम् ॥ ७३८ ॥

राजमार्तण्ड नामक ग्रन्थ में बताया है कि सात रेखा पूर्व-पश्चिम और सात रेखा उत्तर दक्षिण स्थापित करके ईशान कोण की तरफ से पूर्व की प्रथम रेखा में कृत्तिका नक्षत्र को स्थापित करने के पश्चात् प्रदक्षिण क्रम से अभिजित् के साथ अन्य नक्षत्रों का न्यास करने से ज्ञातार्थ सिद्धि के लिये सप्तशलाका चक्र मुनियों ने वर्णित किया है।।७३८।।

---

१. प्र. ६ श्लो. २६ ।

स्पष्टार्थ सप्तशलाका चक्र

कृत. रो मृ आर्द्रा पुन पु श्ले

भर — मघा
अश्वि — पूफा
रेवती — उफा
उभा — हस्त
पूभा — चित्रा
शत — स्वा
धनि — विशा

श्र अभि उषा पूषा मू. ज्ये. अनु.

अभिजित् नक्षत्र का ज्ञान

[1]वृन्दावने—

वैश्वदैवतचतुर्लवः श्रवः पञ्चभूलव इहाभिजिन्मितिः।
अन्यपः परिणयादयंव्यधः सप्तरेखवलये विलोक्यते ॥ ७३९ ॥

विवाह वृन्दावन में कहा है कि उत्तराषाढ का चौथा पाद और श्रवण नक्षण का प्रथम पन्द्रहवाँ हिस्सा अभिजित् नक्षत्र का मान होता है। परिणय (विवाह) को छोड़ कर अन्य व्रतवन्धनादि शुभ कार्यों में सतशलाका चक्र से वेध का अवलोकन करना चाहिये ॥ ७३९ ॥

सप्तशलाका चक्र में वेधित नक्षत्र

रामः—

[2]शाक्रेज्ये शतभानिले जलशिवे पौष्णार्यमर्क्षेवसु-
द्वीशे वैश्वसुधांशभे हृयभगे सार्पानुराधे मिथः।
हस्तोर्पातिमभे विधातृविधिभे मूलादितित्वाष्ट्रभे-
जांघ्रो याम्यमघे कृशानुहरिभे विद्धेऽद्रिरेखे मिथः ॥ ७४० ॥

मुहूर्तचिन्तामणि में रामदैवज्ञ ने बताया है कि ज्येष्ठा-पुष्य, शतभिषा-स्वाती, पूर्वाषाढ-आर्द्रा, रेवती-उत्तराफाल्गुनी, धनिष्ठा-विशाखा, उत्तराषाढ-मृगशिरा, अश्विनी-पूर्वाफाल्गुनी, आश्लेषा-अनुराधा, हस्त-उत्तराभाद्रपद, रोहिणी-अभिजित्, मूल-पुनर्वसु, चित्रा-पूर्वाभाद्रपद, भरणी-मघा और कृत्तिका-श्रवण इन दो दो नक्षत्रों का परस्पर ग्रह कृत वेध होता है ॥ ७४० ॥

सप्तशालाका चक से वेध देखने के कार्य

चक्रे सप्तशलाकाख्ये स वेधः सर्वकर्मसु।
चिंतनीयो विवाहे तु पंचरेखासमुद्भवे ॥ ७४१ ॥

१. वि वृ. १ अ. ८ श्लो.। २. मु. चिं० ६ प्र. ५७ श्लो.।

समस्त शुभ कार्यों में सप्तशलाका चक्र से वेध का अवलोकन करना तथा विवाह में पञ्चशालका चक्र से वेध का विचार करना चाहिये ॥ ७४१ ॥

अभिजित् गणना का अभाव

लांगले कमठे चक्रे फणिचक्रे त्रिनाडिके।
अभिजिद्गणना नास्ति चक्रे खार्जूरिके तथा ॥ ७४२ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि लाङ्गल, कमठ त्रिनाडी, फणि चक्र और खार्जूरिक चक्र में अभिजित् की गणना नहीं होती है ॥ ७४२ ॥

ताराया ग्रहचक्रे च संघाते लोहपातके।
अभिजिद्गणना नास्ति लाते पाते च कंटके ॥ ७४३ ॥

तारा के ग्रह चक्र, लोहपातक, संघात चक्र, लत्ता, पात चक्र में अभिजित् की गणना न्यास करने में नहीं होती है ॥ ७४३ ॥

उक्त चक्रों से शुभकार्यों में वेध विधान

लल्लः—

कुमारीवरणे दाने विवाहे स्त्रीप्रवेशने।
वेधोयं पंचरेखाख्योन्यत्र सप्तशलाकके ॥ ७४४ ॥

आचार्य लल्ल ने बताया है कि कन्या वरण, दान, विवाह, स्त्रीप्रवेश सम्बन्धी कार्यों में पञ्चशलाका चक्र से और इसके भिन्न कामों में सप्तशालका चक्र से वेध का अवलोकन करना चाहिये ॥ ७४४ ॥

[1]वसिष्ठः—

पंचशलाकाचक्रे पाणिग्रहणे भवेधविधिरुक्तः।
शस्तः शुभमित्रकृतः सप्तशलाकाज इतरत्र ॥ ७४५ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि विवाह में वेधित नक्षत्र का ज्ञान पञ्चशलाका चक्र से करना तथा अन्य शुभ कामों में सप्तशलाका चक्र से करना चाहिये। शुभ व मित्र ग्रह से वेध शुभ माना गया है ॥ ७४५ ॥

[2]श्रीपतिः—

वधूप्रवेशने दाने वरणे पाणिपीडने।
वेधः पंचशलाकाख्योऽन्यत्र सप्तशलाककः ॥ ७४६ ॥

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि वधू प्रवेश, दान, वरण और विवाह में वेधित नक्षत्र का ज्ञान पंचशलाका चक्र से और इसके इतरत्र शुभ कामों में सप्तशलाका चक्र से वेध का ज्ञान करना चाहिये ॥ ७४६ ॥

१. व० सं० १४ अ० १०३ श्लो०।
२. मु० चि० ६ प्र० ५४ श्लो० पी० टी०।

प्रत्येक ग्रह के वेध का फल

वेधफलं फलप्रदीपे—
अर्कवेधे च वैधव्यं चन्द्रवेधे वियोगिनी।
पुत्रशोकातुरा भौमे बुधे शोकाकुला भवेत् ॥ ७४७ ॥
गुरौ वन्ध्या विजानीयात् शुक्रे स्याद्व्यभिचारिणी।
मृतवत्सा शनौ ज्ञेया राहौ च कुलटा भवेत् ॥ ७४८ ॥
केतुवेधे सर्वनाशो एवं वेधस्य लक्षणम् ॥ ७४९ ॥

फल प्रदीप नाम के ग्रन्थ में बताया है कि सूर्य से वेधित नक्षत्र होने पर कन्या विधवा, चन्द्र से वियोगिनी, भौम से पुत्र के शोक से दुःखी, बुध से शोकाकुल, गुरु से वन्ध्या, शुक्र से व्यभिचारिणी, शनि से मृतवत्सा, राहु से कुलटा और केतु से विद्ध होने पर सर्वनाश होता है ॥ ७४७–७४९ ॥

विवाह में विद्ध चन्द्र का फल

यस्मिन् शशी पञ्चशलाकभिन्नः पापैरपापैरथवा विवाहे।
तेनैव वस्त्रेण विरोदमाना श्मशानभूमिं प्रमदा प्रयाति ॥ ७५० ॥

आचार्य गर्ग ने बताया है कि जिस विवाह में पंचशलाका चक्र से चन्द्रमा पापग्रह या शुभग्रह से विद्ध होता है तो कन्या उसी वस्त्र से रुदन करती हुई श्मशानभूमि को जाती है ॥ ७५० ॥

विशेष—यह श्लोक मु० चिं० विवाह प्रकरण के ५५ श्लोक की टीका में दीपिका के नाम से उद्धृत है। तथा 'यस्याः शशी सप्तशला······। उद्वाहवस्त्रेण तु संवृताङ्गी श्मशानभूमिं रुदती प्रयाति' यह पाठान्तर है ॥ ७५० ॥

वेध का फल

[1]भोजः—
विद्धे सप्तशलाकाख्ये विधवा लग्नवासरा।
पुनर्यात्यचिरान्नारीमुखाग्नौ मुखचन्द्रिकाम् ॥ ७५१ ॥

राजा भोज ने बताया है कि सप्तशलाका चक्र में वेध होने पर लग्न राशि तुल्य वर्ष या नक्षत्र तुल्य वर्ष में कन्या विधवा होती है ॥ ७५१ ॥

अथ नक्षत्रवेधः—

[2]विवाहवृन्दावने—
तस्मिन्नभिन्नाग्रगतं भिनत्ति ग्रहो विवाहर्क्षमशेषमेव।
स्त्रीपुंसयोरायुरसौम्यवेधः सौम्यव्यधो हंति सुखानि शश्वत् ॥ ७५२ ॥

---

१. मु० चिं० ६ प्र० ५५ श्लो० पी० टी०।
२. अ० १ श्लो० ७।

विवाह वृन्दावन में बताया है कि पंचशलाका चक्र में जिस रेखा में ग्रह होता है वह उस रेखा के अग्रगत विवाह के समस्त नक्षत्र को वेधित करता है। अशुभ ग्रह से विद्ध होने पर वर वधू की आयु का नाश और शुभग्रह से वेध होने पर अनवरत सुखों का विनाश होता है ॥ ७५२ ॥

शुभाशुभ ग्रह वेध ज्ञान

नारदः—

[1]पाद एव शुभैर्विद्धमशुभेनैव कृच्छ्रभम्।
क्रूरविद्धे युतं धिष्णं निषिद्धं नैव पादतः ॥ ७·३ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि उक्त चक्र में शुभग्रह से नक्षत्र का चरण और अशुभ ग्रह से समस्त नक्षत्र वेधित होता है। क्रूरग्रह से विद्ध नक्षत्र का पाद (चरण) निषिद्ध नहीं होता है। किन्तु पूरा नक्षत्र विवाह में निषिद्ध होता है ॥ ७५३ ॥

वेध में विशेष

[2]लल्लः—

हैमेन लोहदण्डेन तुल्यं दुःखं हि ताडनात्।
तथैव सदसद्विद्धोऽशुभो दोषस्तयोः समः ॥ ७५४ ॥

आचार्य लल्ल ने बताया है कि जैसे सोने की या लोहे की लकड़ी से मारने पर दुःख बराबर होता है वैसे ही शुभाशुभ से विद्ध होने पर भी समान दोष होता है ॥ ७५४ ॥

[3]संहिताप्रदीपे—

तत्रैकरेखास्थितखेचरं यद्विद्धं तदाहुर्द्युचरेण धिष्णम्।
केचिद्द्विचिन्वन्ति हि पादवेधं समस्तमेवाशुभमाहुरन्ये ॥ ७५५ ॥

संहिता प्रदीप नाम के ग्रन्थ में बताया है कि उक्त चक्र में एक रेखास्थित ग्रह से जो नक्षत्र का वेध होता है वह किसी के मत में पाद वेध और अन्यों के मत में समस्त नक्षत्र का वेध होना कहा गया है ॥ ७५५ ॥

उदाहरण द्वारा समस्त का त्याग

[4]यथा शरेणावयवैकदेशे विद्धो नरो न क्षमतामुपैति।
तथैव धिष्ण्यं द्युचरेण विद्धं न शोभनं शोभनकर्मणि स्यात् ॥५५६॥

जैसे शरीर का एक अवयव बाण से छेदित होने पर मनुष्य विकल हो जाता है वैसे ही नक्षत्र का चरण विद्ध होने पर शुभ कार्य में नक्षत्र शुभ नहीं होता है ॥७५६॥

---

१. मु० चि० ६ प्र० ५४ श्लो० पी० टी०।
२. ज्यो० नि० ४४ पृ० २ श्लो०। ३. ज्यो० नि० ४४ पृ० ८ श्लो०।
४. ज्यो० नि० ४५ पृ० ९ श्लो०।

[1]पटस्य देशे द्युचरेपि दग्धः पटो हि यद्वदिति तत्प्रसिद्धिः।
तथैव पादोपि नभश्चरेण विद्धे भवेद्विद्धमशेषमेव ॥ ५५७ ॥

जैसे वस्त्र के एक देश में आग लगने पर पूरा वस्त्र जला हुआ कहलाता है उसी प्रकार ग्रह से नक्षत्र का चरण विद्ध होने पर भी समस्त नक्षत्र विद्ध होता है ॥ ७५७ ॥

विशेष–ज्योतिर्निबन्ध में 'परस्य देशेऽल्पतरेऽपि दग्धे दग्धः' यह पाठान्तर है ॥७५७॥

[2]नक्षत्रवेधे यदि पादवेधस्तदांघ्रिवेधे घटिकासु वेधः।
नाडीव्यधे स्याद्विघटीषु वेधं भानां तदा क्वापि न चास्ति वेधः ॥५५८॥

नक्षत्र वेध में यदि चरण का वेध, चरण वेध में घटिका का और घटिका के वेध में यदि पलों का वेध कहा गया है। इसलिये नक्षत्रों का कहीं वेध नहीं होता है ॥ ७५८ ॥

पुनः उदाहरण द्वारा समस्त का त्याग

वसिष्ठः—

[3]तक्षकविषाग्निदग्धो न नरो म्रियते किमेकदेशेपि।
तं मृतधिष्ण्यं निखिलं मृतभे चक्रतमृत्युरेव ॥ ५५९ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि जैसे सर्प-जहर या अग्नि से मनुष्य का एक देश दग्ध होने पर क्या मरण नहीं होता है ? किन्तु होता ही है। अतः पाद वेध होने पर भी वह समस्त नक्षत्र मृत संज्ञक होता है। मृत नक्षत्र में शुभ काम करने पर मृत्यु होती है ॥ ७५९ ॥

विशेष—वसिष्ठ संहिता में 'मृतभे च कृतं मृत्युमेवैति' यह पाठ शुद्ध है ॥ ७५९ ॥

[4]निहितं त्रिविधोत्पातैः क्रूराकान्तं च विद्धभं त्वखिलम्।
त्याज्यं तच्छुभकर्मणि न पादतः पादधिष्णं च ॥ ७६० ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि तीन प्रकार के उत्पात से हत, क्रूर ग्रह के साथ व वेधित नक्षत्र का संपूर्ण का शुभ कार्य में त्याग करना चाहिये, न कि पाद से चरण का वेध होने पर चरण का त्याग करना चाहिये ॥ ७६० ॥

पाद वेध में विशेष

[5]पादे विद्धे चेदनिष्टं भवेद्भं तत्संयोगाद्राशिरेखाःशुभाः स्यात्।
तेनाप्येवं योगतो राशिचक्रं मांगल्यं तत्कर्म कार्यं कथं स्यात् ॥७६१॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि चरण वेध होने पर वह नक्षत्र अनिष्ट होता है तथा उसके संयोगवश राशि भी अशुभ होती है किन्तु संयोग से ही माङ्गलिक राशि चक्र उस कार्य के लिये किसी भी प्रकार शुभ नहीं होता है ॥ ७६१ ॥

---

१. ज्यो० नि० ४५ पृ० १० श्लो०। २. ज्यो० नि० ४५ पृ० ११ श्लो०।
३. व० सं० १४ अ० १०५ श्लो०। ४. व० सं० १४ अ० १०४ श्लो०।
५. ज्यो० नि० ४५ पृ० १३ श्लो०।

[1]नक्षत्रे यो दोषं निहन्ति राशि न संचरते हेतुम् ।
तत्पुत्रपेयगरलं पित्रादीनां न हन्यते तद्वत् ।। ७६२ ।।

नक्षत्र का जो दोष नाशक कारण होता है वह कारण राशि में नहीं घटता जैसे पुत्र के जहर पीने पर वह विष पिता की मृत्यु करने वाला नहीं होता है ।। ७६२ ।।

पापवेध होने पर समस्त का त्याग

कश्यपः —
[2]क्रूरविद्धं च यद्धिष्ण्यं क्रूराकान्तं च कृत्स्नभम् ।
मणिहेममयं हर्म्यं भूताक्रान्तमिव त्यजेत् ।। ७६३ ।।

ऋषि कश्यप ने बताया है कि जो नक्षत्र पापग्रह से विद्ध या पापग्रह के साथ होता है उसका समस्त का त्याग करना चाहिये । जैसे मणि सुवर्ण मय घर को भूतों के निवास होने पर मनुष्य त्याग करता है ।। ७६३ ।।

[3]अत्रैवमृक्षं सदसद्ग्रहेण विद्धेन्नशस्तं सकलं तु यावत् ।
प्रागुक्तसंख्यार्द्धहिमांशुभागात्ततो विचिंत्यः खलु पादवेधः ।।७६४।।

इस प्रकार शुभ पापग्रह से विद्ध होने पर समस्त नक्षत्र शुभ नहीं होता है यदि उक्त नक्षत्र चन्द्र से अर्द्ध भुक्त हो गया हो तो चरण वेध का विचार करके आदेश देना चाहिये ।। ७६४ ।।

लल्लः—
पुरुषश्च दृष्टिपादा यद्वल्लक्षं भिनत्ति धानुष्कः ।
समपादगतश्चैवं वेधे नांघ्रि प्रदूषयति ।। ७६५ ।।

जिस प्रकार धनुषधारी पुरुष अपनी दृष्टि के वश लक्ष को वेधित कर देता है उसी प्रकार समान चरण होने पर वेध में चरण दूषित नहीं होता है ।। ७६५ ।।

वसिष्ठः—
[4]पादएव न शुभः शुभग्रहैर्विद्ध इत्यखिलशास्त्रसंमतम् ।
क्रूरविद्धयुतभं न शोभनं शोभनेषु सकलं न पादतः ।। ७६६ ।।

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि शुभग्रह से विद्ध चरण शुभ नहीं होता है ऐसा समस्त शास्त्रों के मत में है और पापग्रह से विद्ध व पापग्रह से युक्त नक्षत्र मांगलिक कार्य में समस्त शुभ नहीं होता, न कि चरण अशुभ होता है ।। ७६६ ।।

---

१. व सं० १४ अ० १०५ श्लो० ।
२. मु० चि० ६ प्र० ५४ श्लो० पी० टी० ।
३. ज्यो० नि० ४५ पृ० १४ श्लो० ।
४. व० सं० ३२ अ० ७५ श्लो० ।

पादवेध ज्ञान

अथ पादवेधः—

नारदः—

अखिलर्क्षं पञ्चगव्यं सुराविन्दुयुतं यथा ।
पाद एव शुभैर्विद्धमशुभे नैव कृच्छ्रभम् ।। ७६७ ।।

ऋषि नारदजी ने बताया है कि जैसे पंचगव्य में एक बूंद शराब की मिलने पर समस्त पंचगव्य का त्याग होता है वैसे पापग्रह से विद्ध समस्त नक्षत्र का और शुभग्रह से विद्ध होने पर चरण का त्याग करना चाहिये ।। ७६७ ।।

केशवार्कः—

[1]क्षतार्दिते दिग्धशरार्दितस्य शस्तं मृगस्यामिषमेव मन्ये ।
क्रूरांघ्रिवेधाय पदं वदन्ति तेनैव तेषां निजपक्षहानिः ।।७६८।।

विवाह वृन्दावन में कहा है कि यथा जहर मिश्रित बाण से विद्ध हिरण का क्षत से भिन्न मांस शुभ होता है इसी प्रकार पापग्रह से वेधित पाद ही अशुभ होता है । ऐसा कहने पर उनके पक्ष की ही हानि होती है ।। ७६८ ।।

दृष्टान्त द्वारा पादवेध में दूषण

[2]विश्लेषमायाति यथांशुभिः स्वै रणे शरेणैकदिशि क्षतोपि ।
तथांघ्रिवेधादपि तारकाणां क्रूरस्य नश्येद्बलरूपसंपत् ।। ७६९ ।।

विवाह वृन्दावन में कहा है कि जैसे हिरण एक स्थान में ही बाण से वेधित होकर प्राण का त्याग कर देता है उसी प्रकार पापग्रह से चरण वेध होने पर समस्त का त्याग करना चाहिये ।। ७६९ ।।

पाप विद्ध समस्त नक्षत्र का त्याग

कश्यपः—

[3]क्रूरविद्धं युतं धिष्णं निखिलं नैव पादतः ।
अन्यैरपि गुणैर्युक्तं सर्वदोषविवर्जितम् ।। ७७० ।।
त्यजेदनर्घमाणिक्यं कलहोपहतं यथा ।। ७७१ ।।

ऋषि कश्यप ने बताया है कि पापग्रह से युक्त व विद्ध समस्त दोषों से रहित तथा अन्य गुणों से युक्त होने पर भी समस्त नक्षत्र का त्याग करना न कि चरण का त्याग करना चाहिये । जैसे कलह से नष्ट बहुमूल्य माणिक्य का त्याग किया जाता है ।। ७७०–७७१ ।।

---

१. वि० वृ० १ अ० १८ श्लो० ।
२. वि० वृ० १ अ० १९ श्लो० ।
३. मु० चि० ६ प्र० ५६ श्लो० पी० टी० ।

पाद वेध ज्ञान

दीपिकायाम्—

आद्यपादस्थिते खेटे चतुर्थं संप्रदुष्यति।
द्वितीयस्थे तृतीयं तु विपरीतमतोन्यथा॥ ७७२॥

दीपिका नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि जब ग्रह प्रथम चरण में स्थित होता है तो चौथे चरण को तथा दूसरे पाद में तीसरे चरण को दूषित करता है। इसके विपर्यय में दूषण नहीं होता है॥ ७७२॥

वृन्दावनेपि—

[1]स किलवेधविधिर्द्वितृतीययोश्चरणयोर्मिथ आदि चतुर्थयोः।
अशुभविद्धमशेषमुडुं त्यजेच्चरणगं शुभवेधमसंपदि॥ ७७३॥

विवाह वृन्दावन में कहा है कि दूसरे तीसरे चरण व प्रथम चतुर्थ चरण में वेध होता है। अर्थात् प्रथम चरण में ग्रह होने पर चौथे को और दूसरे में स्थित होने पर तीसरे चरण को वेधित करता है। पाप ग्रह से नक्षत्र विद्ध होने पर समस्त का त्याग करना और शुभग्रह से विद्ध होने पर चरण का त्याग करना चाहिये॥ ७७३॥

[2]छिद्येत शाखा यदि चेद्द्रुमस्यभवेत्तदानीं किमशेषनाशनम्।
एवं स एवाशुभदो ग्रहेण यो विध्यतेन्ये चरणाः शुभाः स्युः॥ ७७४॥

यदि वृक्ष की कोई शाखा काट दी जाये तो क्या समस्त का नाश होता है, अपि तु नहीं। इसी प्रकार ग्रह से वेधित नक्षत्र का जो चरण होता है वही अशुभ होता है और अन्य चरण शुभ होते हैं॥ ७७४॥

वैद्यनाथः—

[3]वेधमाद्यंतयोरंत्योरन्योन्यं द्वितृतीययोः।
क्रूरैरपि त्यजेत्पादं केचिदूचुर्मर्हषयः॥ ७७५॥

आचार्य वैद्यनाथ ने बताया है कि प्रथम-चतुर्थ, द्वितीय-तृतीय चरणों का परस्पर में वेध होता है। किसी आचार्य के मत में पाप ग्रह का भी वेध होने पर चरण का ही त्याग अभीष्ट माना गया है॥ ७७५॥

वसिष्ठः—

[4]विषप्रदग्धेन हतस्य पत्रिणा मृगस्य मांसं शुभदं क्षताद्दते।
तथैव पादो न शुभोऽवशिष्टा पादाः शुभाश्चेति पितामहेन॥ ७७६॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि जैसे विष (जहर) मिश्रित बाण से हत हिरन का क्षत स्थान से भिन्न मांस शुभ दायक होता है वैसे ही ग्रह से विद्ध नक्षत्र का चरण ही अशुभ होता है और अन्य चरण शुभ होते हैं॥ ७७६॥

---

१. वि० वृ० १ अ० ९ श्लो०। २. ज्यो० नि० ४५ पृ० १२ श्लो०।
३. ज्यो० नि० ४४ पृ० ६ श्लो०। ४. व० सं० ३२ अ० ७२ श्लो०।

रत्नकोशे—

[1]विषप्रदग्धेन हृतस्य पत्रिणा मृगस्य मांसं शुभदं क्षताद्दते।
यथा तथात्राप्युडुपादएव त्याज्यं तदन्यत्त्रितयं शुभावहम् ॥ ७७७ ॥

रत्नकोश नामक ग्रन्थ में बताया है कि जैसे जहर लगे हुए बाण से हत हिरन का मांस बाण से भिन्न स्थान का शुभ होता है वैसे ही ग्रह से वेधित जो नक्षत्र का चरण होता है वह अशुभ और अन्य चरण शुभ होते हैं ॥ ७७७ ॥

विशेष—ज्योतिर्निबन्ध में श्लोक का उत्तरार्ध 'यथा तथाऽत्राप्युडुपाद एव प्रदूषितोऽन्यत्त्रितयंशुभावहम्' है ॥ ७७७ ॥

राजमार्तंडे –

[2]यस्मिन्पादे ग्रहस्तिष्ठेत् शुभो वा यदि वाशुभः।
तेनांघ्रिणा भपादो यो विद्धो नेष्टोऽपरे शुभाः ॥ ७७८ ॥

राजमार्तण्डनामक ग्रन्थ में बताया है कि जिस चरण में शुभ या पाप ग्रह होता है उस चरण से नक्षत्र का जो पाद वेधित होता है वह अशुभ और चरण शुभ होतें हैं ॥ ७७८ ॥

वेध में विशेष

[3]यथा शरेणावयवैकभिन्नो नरः क्षमः स्यात्पटुरौषधैः स्यात्।
हित्वा तमेवावयवं तथेंदुभोगाच्छुभं भं चरणस्तु दुष्टः ॥ ७७९ ॥

जैसे बाण से शरीर का एक अवयव भग्न होने पर मनुष्य उस अवयव का त्याग करके अच्छी दवा से स्वस्थ हो जाता है उसी प्रकार दुष्ट चरण का जब चन्द्रमा भोग कर लेता है तो वह भी शुभ हो जाता है ॥ ७७९ ॥

[4]धिष्ण्ये शुभेन द्युचरेण विद्धे विद्धस्तु पादः परिवर्जनीयः।
शेषं शुभं विद्धमतेंदुभोगं समस्तमेवाशुभखेटविद्धम् ॥ ७८० ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि शुभग्रह से नक्षत्र का जो चरण वेधित होता है उस चरण का त्याग करना चाहिये और शेष चरण शुभ होते हैं। तथा विद्धचरण का जब चन्द्रभोग करता है तब शुभ होता है। एवं अशुभग्रह से वेध हो तो समस्त का त्याग करना चाहिये ॥ ७८० ॥

क्रूरैरपि त्यजेत्पादं केचिदूचुर्मनीषिणः ॥ ७८१ ॥

किसी के मत में पापग्रह वेध में भी चरण का त्याग माना गया है ॥ ७८१ ॥

वसिष्ठः—

धिष्ण्यं शुभग्रहैर्विद्धं पादमात्रं परित्यजेत्।
क्रूरैस्तु सकलं त्याज्यमिति वेधादिनिर्णयः ॥ ७८२ ॥

---

१. ज्यो० नि० ४५ पृ० १८ श्लो०। २. ज्यो० नि० ४५ पृ० १९ श्लो०।
३. ज्यो० नि० ४५ पृ० १५ श्लो०। ४. ज्यो० नि० ४५ पृ० १६ श्लो०।

ऋषि वसिष्ट ने बताया है कि शुभग्रह से नक्षत्र का वेध होने पर चरण मात्र का शुभ कार्य में त्याग करना और पाप ग्रह से वेधित होने पर समस्त नक्षत्र का त्याग करना चाहिये ॥ ७८२ ॥

वेध का परिहार

अथ वेधे परिहारवाक्यम्—

वृहस्पतिः—
संग्रहे प्रोक्तनक्षत्रे विवाहो नैव शोभनः ।
राशिभेदेन दोषः स्यादेकतारास्वपि ग्रहाः ॥ ७८३ ॥

वेधित नक्षत्र का विवाह में उपयोग शुभ नहीं होता है और राशि भेद होने पर तथा एक तारा होने पर भी दोष नहीं होता है ॥ ७८३ ॥

मार्तंडे—
[1]लग्नेशे भवगेऽथवा शशिनि सद्दृष्टे शुभे वांगगे
होरायां च शुभस्य वा व्यधभयं नास्तीति पूर्वे जगुः ॥ ७८४ ॥

मुहूर्तमार्तण्ड में कहा है कि जब लग्नेश एकादश भाव में विवाह की लग्न में होता है तब अथवा चन्द्रमा शुभ ग्रह से दृष्ट होने पर, या शुभ ग्रह लग्न में होने पर अथवा शुभ ग्रह की होरा होने पर वेध का दोष नहीं होता है ॥ ७८४ ॥

वसिष्ठः—
[2]लग्ने शुभे सौम्ययुतेक्षितो वा लग्नाधिनाथो भवगस्तथा वा ।
कालाख्यहोरा च तथा शुभस्य भवेद्विदोषस्य तथा विभंगः ॥ ७८५ ॥

'ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि विवाह लग्न शुभ ग्रह की होने पर या लग्न में सौम्य ग्रह या शुभ ग्रह की दृष्टि होने पर या लग्नेश ग्यारहवें भाव में हो या शुभ ग्रह की काल होरा होने पर वेध दोष का नाश होता है ॥ ७८५ ॥

उद्वाहतत्त्वे—
[3]सद्युक्दृक्तनुगे शुभे व्यधभयं नो वायगे लग्नपे
होरायां च शुभस्य वा शशिनि सद्दृष्टेपि चार्येरुडोः ॥ ७८६ ॥

उद्वाहतत्त्व में बताया है कि विवाह लग्न शुभ ग्रह से दृष्ट या युत होने पर या शुभ राशि में या लग्नेश ग्यारहवें भाव में होने पर या शुभ की होरा में या चन्द्रमा शुभ ग्रह से दृष्ट होने पर वेध का भय अर्थात् दोष नहीं होता है ॥ ७८६ ॥

---

१. मु० मा० ४ प्र० १६ श्लो० ।
२. मु० मा० ४ प्र० १६ श्लो० टी० ।
३. मु० मा० ४ प्र० १६ श्लो० टी० ।

लत्ता दोष का विचार

अथ लत्ताविचारः—

श्रीपतिः—

ऋक्षं द्वादशमुष्णरश्मिरवनीसूनुस्तृतीयं गुरुः
षष्ठंचाष्टममर्कजस्य परतो हंति स्फुटं लत्तया।
पश्चात्सप्तर्ममिदुजश्च नवमं राहुः सितः पंचमं
द्वाविंशं परिपूर्णमूर्तिरुडुपः संताडयेन्नेतरः॥ ७८७॥

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि सूर्य जिस नक्षत्र पर होता है उससे आगे के १२वें नक्षत्र पर, मंगल ३ तीसरे पर, गुरु ६ छटे पर और शनि आठवें नक्षत्र पर लत्ता दोष कारक होता है। बुध जिस नक्षत्र पर होता है उससे पीछे के सातवें नक्षत्र पर, राहु नवें पर, शुक्र ५ पाँचवें पर और पूर्णचन्द्रमा २२वें पीछे के नक्षत्र पर लत्ता दोष कारक होता है।

राहु सदा वक्री रहने के कारण नवें आगे पर दोष कारक होता है, यह विशेष समझना चाहिये॥ ७८७॥

विवाहवृन्दावने—

[1]रविनखैर्मितमर्कविधुंतुदौ मुनिभिरिंदुरखंडलमंडलः।
हुतवहाकृतिषट्जिनदंतिभिःक्षितिसुतादभिलत्तपतिग्रहः॥ ८८८॥

विवाह वृन्दावन में बताया है कि सूर्य १२वें पर, राहु २० बीसवें पर, पूर्ण चन्द्रमा ७ सातवें पर और ३।२२।६।२४।८ पर भौमादिक ग्रह क्रम से आगे के नक्षत्रों पर लत्ता दोष कारक होता है॥ ७८८॥

प्रत्येक ग्रह को लत्ता का फल

वसिष्ठः—

[2]रविलत्ता वित्तहरी नित्यं कौजी विनिर्दिशेन्मरणम्।
चांद्री नाशं कुर्याद् बौधी नाशं वदत्येव॥ ८८९॥
सौरी मरणं कथयति बंधुविनाशं बृहस्पतेर्लत्ता।
मरणं लत्ता राहोः कार्यविनाशं भृगोर्वदति॥ ७२०॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि सूर्य की लत्ता वित्त को हरने वाली, मंगल की मरण कारक, चन्द्र व बुध की नाश करने वाली, शनि की मृत्यु कारक, गुरु की बन्धु नाशक, राहु की मरण कारक और शुक्र की कार्य का नाश करने वाली लत्ता होती है॥ ७८९-७९०॥

विशेष—ये पद्य पीयूष धारा में वराह के नाम से उद्धृत हैं॥ ७८९-७९०॥

१. अ० १ श्लो० ११। २. वि० वृ० १ अ० १२ श्लो०।

लत्ता में विशेष

[1]केशवार्कः—

इति सतिद्युसदामभिलत्तने यदनुलत्तममुक्तमृषिव्रजैः।
तदुडुपश्चिमपूर्वविभागयोरनधिकाधिकदोषविवक्षया॥ ७९१॥

पूर्वाचार्यों ने ४ ग्रहों की पीछे और चार ग्रहों की आगे के नक्षत्रों पर लत्ता का वर्णन किया है उसमें यह कारण है कि ग्रहनक्षत्र प्राङ्मुख होते हैं अतः आगे की लत्ता नक्षत्र के पीछे लगती है और पश्चात् प्रेरित लत्ता नक्षत्र के आगे के भाग में होती है। आगे की लत्ता से नक्षत्र के पूर्वार्ध में अधिक दोष और उत्तरार्ध में अल्प, एवं पीछे की लत्ता से पूर्वार्ध में अल्प तथा नक्षत्र के उत्तरार्द्ध मे अधिक दोष होता है। इसलिये पीछे लत्ता दोष होना महर्षियों ने कहा है। विवाह वृन्दावनकार के मत में लातित नक्षत्र का संपूर्ण भाग दोष का होता है अतः सम्मुख लत्ता का ही प्रतिपादन किया है॥७९१॥

लत्ता का फल

[2]उडुनि निर्दलिते शुभलत्तया न फलमस्तु बलस्य गलत्तया।
अशुभलत्तितलत्तितदूढयोर्धनसुतानसुतापकरं परम्॥ ७९२॥

विवाह वृन्दावन में बताया है कि शुभ ग्रह से नक्षत्र को लातित होने पर उस नक्षत्र का शुभ फल निर्बल होने के नाते नहीं होता है। पाप ग्रह से लत्ता दोष होने पर उसमें विवाह करने पर वरवधू की अन्तरात्मा संतप्त और धन-पुत्र का विनाश होता है॥ ७९२॥

केचित्तु पापलत्तां वर्जयंति।

किन्हीं आचार्यों के मत में पापलत्ता का त्यागना बताया है।

त्रिविक्रमः—

नक्षत्रं द्वादशं भानुस्तृतीयं क्षितिनंदनः।
नखसंख्यं तमो हंति लत्तया शनिरष्टमम्॥ ७९३॥

आचार्य त्रिविक्रम ने कहा है कि सूर्य १२ बारवें को, भौम तीसरे को, राहु २० बीसवें को और शनि आठवें नक्षत्र को लात से नष्ट करता है॥ ७९३॥

लत्ता का अपवाद

अथ लत्ताया अपवादः—

सौराष्ट्रशाल्वदेशेषु लातितं च विवर्जयेत्॥ ७९४॥

सौराष्ट्र व शाल्व देश में लत्ता का त्याग करना चाहिये॥ ७९४॥

लत्ता मालवके देशे पातं कौशलके तथा।
एकार्गलं तु काश्मीरे वेधं सर्वत्र वर्जयेत्॥ ७९१॥

१. मु० चिं० ६ प्र० ५९ श्लो० पी० टी०।
२. वि० वृ० १ अ० १३ श्लो०।

लत्ता का मालव देश में, पात का कौशल में, एकार्गल का काश्मीर में और वेध का सब जगह त्याग करना चाहिये ॥ ७९५ ॥

स्पष्टार्थं लत्ता सारिणी

ग्रह नक्षत्र	उद्वाहर्क्ष	रो.	मृ.	म.	उ.फा.	ह.	स्वा.	अनु.	मूल	उ.षा.	उ.भा.	रे.
१७वें	सू.	पू.षा.	उ.षा.	उ.भा.	अश्वि.	भ.	रो.	आर्द्रा	पुष्य	म.	स्वा.	वि.
२२वें	चं.	पू.भा.	उ.भा.	रो.	आर्द्रा	पुन.	श्ले.	पू.फा.	ह.	स्वा.	पू.षा.	उ.षा.
२६वें	मं.	भ.	कृ.	पुष्य	म.	पू.फा.	ह.	स्वा.	अनु.	मृ.	श.	पू.भा.
७वें	बुध	म.	पू.फा.	वि.	ज्ये.	मू.	उ.षा.	धनि.	पू भा.	रे.	मृग.	आ.
२३वें	गुरु	उ.भा.	रे.	मृ.	पुन.	पुष्य	म.	उ.फा.	चि.	वि.	उ.षा.	श्र,
५वें	शुक्र	पुष्य	श्ले.	चि.	वि.	अनु.	मू.	उ.षा.	ध.	पू.भा.	कृ.	रो.
२१वें	शनि	शत.	पू.भा.	कृ.	मृ.	आर्द्रा	पुष्य	म.	उ.फा.	चि.	मू.	पू.षा.
९वें	राहु	उ.फा.	ह.	ज्ये.	पू.षा.	उ.भा.	ध.	पू भा.	रे.	भ,	पुन.	पुष्य

उदाहरणार्थ—यदि अनुराधा नक्षत्र में विवाह हो तो सूर्यादि अष्ट ग्रह क्रमशः आर्द्रा, पूफा०, स्वाती, धनिष्ठा, उ० फा०, उ० षा०, म०, पू० भा०, पर अवस्थित होने पर लत्ता दोष होता है।

पात विचार

अथ पातविचारः—

श्रीपतिः—
सूर्याधिष्ठितभाद्भुजंगपितृभस्त्वाष्ट्रेषु मैत्रश्रुतौ
पौष्णे च क्रमशोऽश्विभाद्गणनया शीतांशुना संयुते।
धिष्ण्ये तावतिथौ पतत्यवितथं चण्डीशचण्डायुधं
तस्मिन्नात्महृतेच्छुभिर्निजाहृति कार्यं न कार्यं बुधैः॥ ७९६ ॥

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि सूर्य जिस नक्षत्र में हो उससे श्लेषा, मघा, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, रेवती तक गिनने पर जो संख्या हो वहाँ अश्विनी से गिनने पर यदि उक्त नक्षत्र तक संख्या मिले तो पात दोष होता है। इसमें शुभ की कामना करने वाले को शुभ काम नहीं करना चाहिये ॥ ७९६ ॥

नारदः—
[1]सूर्यभात्सार्पपित्र्यांतात्त्वाष्ट्रमित्रोडुविष्णुभे।
संख्या या दिनभे तावदाश्विभात्पातदुष्टभम्॥ ७९७॥

१. मु० चि० ६ प्र० ५८ श्लो० पी०टी०।

ऋषि नारद ने बताया है कि सूर्य नक्षत्र से श्लेषा, मघा, रेवती, स्वाती, अनुराधा, श्रवण तक गिनने पर जो संख्या हो वही यदि उक्त नक्षत्र तक अश्विनी से गिनने पर हो तो पात दोष होता है ।। ७९७ ।।

वसिष्ठः—

[1]रविभादहिपित्रमित्रत्वाष्ट्रभहरिपौष्णभेषु गणितेषु ।
अश्विभभादींदुयुते तावति वैपरीत्ति गणनया पातः ।। ७९८ ।।

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि सूर्य नक्षत्र से श्लेषा, मघा, अनुराधा, स्वाती, श्रवण, रेवती तक गिनने पर जो संख्या हो वही अश्विनी से भी गिनने पर हो तो पात दोष होता है ।। ७९८ ।।

त्रिविक्रमः—

[2]साध्यहर्षणशूलानां वैधृतिव्यतिपातयोः ।
यद्भूगंडस्य चान्ते स्यात्तत्पातेन निपातितम् ।। ७९९ ।।

आचार्य त्रिविक्रम ने बताया है कि साध्य, हर्षण, शूल, वैधृति, व्यतीपात व गंड के अन्त में जो विवाह नक्षत्र हो, वह नक्षत्र पात के द्वारा कलंकित होकर विवाह के लिये निषिद्ध हो जाता है ।। ७९९ ।।

केशवः—

[3]यदंतगंहर्षणसाध्यशूलगण्डव्यतीपातकवैधृतीनाम् ।
तथैव चन्द्रोडुनि चंडमैशमस्त्रं पतेन्मंगलमंगलक्ष्म ।। ८०० ।।

विवाह वृन्दावन में कहा है कि हर्षण, साध्य, शूल, गण्ड, व्यतीपात, वैधृति योग के अन्त में जो विवाह का नक्षत्र होता है उस पर चण्डीश का अस्त्र गिरने से पात दोष होता है ।। ८०० ।।

नक्षत्रेषु यदि एतद्योगस्य समाप्तिर्भवति तदा पातदोष इत्यर्थः ।
अयमपि पातदोषश्चण्डीशचण्डायुधाह्वयो ज्ञेयः ।
अखिले मंगलेऽपि वर्ज्यो यस्माद्विनाशदः कर्तुः ।। ८०१ ।।

यदि विवाह के नक्षत्र पर उक्त योग की समाप्ति होती है तो पात दोष होता है । यह पात दोष चण्डीशचण्डायुध नाम का होता है । इसका समस्त मांगलिक कार्यों में त्याग करना चाहिये । क्योंकि कर्ता का यह विनाशक होता है ।। ८०१ ।।

पात का त्याग

पावकः पवनश्चैव विकारी कलहप्रियः ।
मृत्युकारो क्षयंकारी षडेतत् पातदूषणम् ।। ८०२ ।।

---

१. मु० चि० ६ प्र० ५८ श्लो० पी०टी० । २. मु० चि० ६ प्र० ५८ श्लो० पी०टी० ।
३. वि० वृ० १ अ० २० श्लो० ।

पावक, पवन, विकारी, कलहप्रिय, मृत्युकारी, क्षयकारी ये ६ पात के दूषण होते हैं ॥ ८०२ ॥

पातेन पतितो ब्रह्मा पातेन पतितो हरिः।
पातेन पतितो रुद्रस्तस्मात्पातं विवर्जयेत् ॥ ८०३ ॥

पात से ब्रह्मा और हरि भी पतित हुए एवं पात से ही रुद्र पतित हुए थे अतः पात का त्याग करना चाहिये ॥ ८०३ ॥

देश विशेष में त्याग

चित्रांगते पातविचित्रदेशे मैत्रे मघा मालवके निषिद्धः।
पौष्णश्रुती चोत्तरदेशजातः सर्वत्र वर्ज्यश्च भुजंगपातः ॥ ८०४ ॥

विचित्र देश में चित्रागत पात, मालवक में अनुराधा, मघा, उत्तर देश में रेवती श्रवण और सब जगह श्लेषा का पात निषिद्ध होता है ॥ ८०४ ॥

क्रान्तिसाम्य ज्ञान

अथक्रांतिसाम्यम्—

ऊर्ध्वा त्रीणि अधो त्रीणि मध्ये मीनं प्रदापयेत्।
सूर्यचन्द्रमसोर्योगे क्रांतिसाम्यमुदाहृतम् ॥ ८०५ ॥

तीन उर्ध्वाधर व तीन याम्योत्तर रेखा वनाकर मध्य की रेखा में मीन राशि लिखकर अन्य अन्य राशियों को लिखने पर चक्र वनता है। इसमें एक रेखा में सूर्य चन्द्र के रहने पर क्रान्तिसाम्य दोष होता है ॥ ८०५ ॥

रामः—

[1]पंचास्याजौ गोमृगौ तौलिकुंभौ कन्यामीनौ कर्क्यली चापयुग्मे।
तत्रान्योन्यं चन्द्रभान्वोर्निरुक्तं क्रांत्योः साम्यं नो शुभं मंगलेषु ॥ ८०६ ॥

मुहूर्त चिन्तामणि में कहा है कि सिंह मेष, वृष-मकर, तुला-कुम्भ, कन्या-मीन, कर्क-वृश्चिक और धनु मिथुन इन दो-दो राशियों में एक में सूर्य हो दूसरी में चन्द्रमा हो तो 'क्रान्तिसाम्य' नामक दोष होता है। यथा सिंह में सूर्य और मेष में चन्द्रमा या सिंह में चन्द्रमा और मेष में सूर्य हो तो ऐसी स्थितियों में गणित गोल सिद्ध सूर्य और चन्द्रमा की तुल्य क्रान्तियाँ होने से क्रान्तिसाम्य नामक दोष हो जाता है। शुभ कार्यों में क्रान्तिसाम्य दोष शुभ नहीं होता है ॥ ८०६

क्रान्तिसाम्य में विवाह होने पर मरण

ऐंद्रस्यांते ध्रुवं मध्ये व्यतीपातस्य संभवः।
क्रांतिसाम्यकृतोद्वाहो न जीवति कदाचन ॥ ८०७ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि ऐन्द्र के अन्त में व ध्रुव के मध्य में व्यतीपात का संभव होता है। अतः क्रान्तिसाम्य में विवाह करने पर जीवन नहीं होता है ॥ ८०७ ॥

---

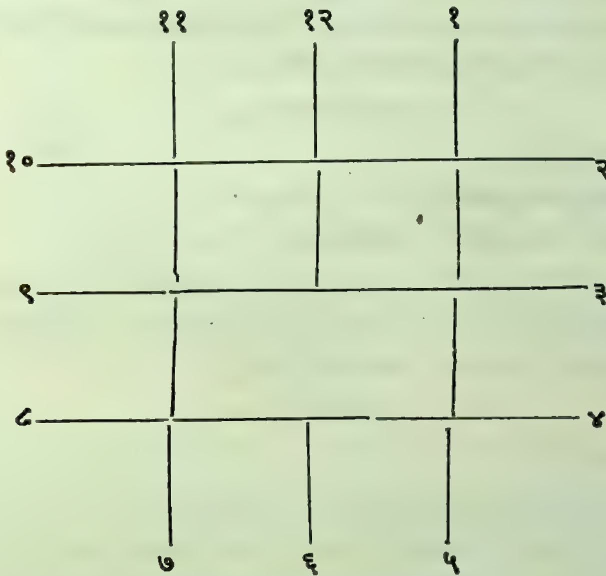
१. मु० चि० ६ प्र० ६१ श्लो०।

क्रान्तिसाम्य जन्म

दिनकरहिमरश्म्योर्दृष्टिसंपातजन्मा भवति विकलमूर्तिः कोपि रौद्रो मनुष्यः ।
पतति भवनमध्ये मङ्गलानां विनष्टयैज्वंलनकपिलदृष्ट्या निर्दहंति जगंति ॥८०८॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि सूर्य चन्द्र की दृष्टिपात से किसी विकल मूर्ति भयानक मनुष्य का जन्म हुआ था। वह संसार में मंगलों के विनाश के लिये अग्नि समान कपिल दृष्टि से जगत का विध्वंस करता है ॥ ८०८ ॥

स्पष्टार्थ चक्र



क्रान्तिसाम्य में जीवन का अभाव

विवाहपटले—
शस्त्राहतोग्निदग्धो वा नागदष्टोपि जीवति ।
क्रांतिसाम्यकृतोद्वाहो न जीवति कदाचन ॥ ८०९ ॥

विवाह पटल में बताया है कि शस्त्र से हत, अग्नि से जला और सर्प से दंशित भी जीवन प्राप्त करता है और क्रान्तिसाम्य में विवाह करने पर जीवन का अभाव होता है ॥ ८०९ ॥

क्रान्तिसाम्य में निषेध

[1]वैधृतिव्यतिपातौ यौ क्रांतिसाम्येर्कचन्द्रयोः ।
सत्कर्मारंभणं तत्र व्यसनं मरणं विदुः ॥ ८१० ॥

१. अ० ११ श्लो० ३ ।

अर्क चन्द्रमा के क्रान्तिसाम्य में वैधृति, व्यतीपात होने पर शुभ काम का आरम्भ व्यसन व मरणदायी होता है ॥ ८१० ॥

गतागतादि पात का फल

मार्तंडे—

[1]एष्यो धनं क्षपयति व्यतिपातयोगो मृत्युं ददाति न चिरादथ वर्तमानः ।
संतापशोकगदविघ्नभयान्यतीते तस्माद्दिनत्रयमपि प्रजहीत विद्वान् ॥८११॥

मार्तण्ड में बताया है कि एष्य व्यतिपात धन का विनाशक, वर्तमान व्यतीपात शीघ्र मृत्युदाता और अतीत होने पर संताप, शोक, रोग और विघ्न भयदाता होता है। अतः तीनों दिन का शुभ कार्य में त्याग करना चाहिये ॥ ८११ ॥

पातोत्पत्ति व फल

[2]सूर्यसिद्धांते—

तुल्यांशुजालसंपर्कात्तयोस्तु प्रवहाहतः ।
तादृक् क्रोधोद्भवो वह्निर्लोकाभावाय जायते ॥ ८१२ ॥

सूर्य सिद्धान्त में कहा है कि तुल्य क्रान्ति सूर्य चन्द्रमा की होने पर समान किरण समूह संयोग से परस्पर प्रचण्ड दीप्ति से उत्पन्न अग्नि स्वरूप पात प्रवह वायु से प्रज्वलित व प्रक्षिप्त प्राणियों के अमंगल के लिये उत्पन्न हुआ है ॥ ८१२ ॥

पुनः पात का फल

वसिष्ठः—

[3]शास्त्रात्समानीतमहातिपातः स वैधृतो हंति वधूवरं च ।
त्रिसप्तवारानिव जामदग्न्य क्रोधोचिरात् क्षात्रकुलं समस्तम् ॥ ८१३ ॥

शास्त्र से समागत महातिपात वैधृति वह वरवधू का नाशक होता है। जैसे परशुराम जी के क्रोध से २१ बार भूमि क्षत्रियों से शून्य हुई थी ॥ ८१३ ॥

पात का जन्म व फल

[4]खरकरतुहिनांशोर्दृष्टिसंपातजन्माऽस्त्वनलमयशरीरः सूद्गिरन्नग्निसंघान् ।
भुवि पतति जनानां मंगले ध्वंसनाय गुणगणशतसंघैरप्यवार्योग्निकोपः ॥८१४॥

सूर्य चन्द्रमा की दृष्टिसंपात से जन्म पाने वाला पात अग्निमय देहधारी भूमि में अग्नि पतित करता हुआ मनुष्यों के मंगलों का नाश करने वाला होता है। इसका क्रोध सैकड़ों गुणों से भी दूर नहीं होता है ॥ ८१४ ॥

---

१. ज्यो० नि० ७६ पृ० २ श्लो० । २. ज्यो० नि० ७६ पृ० ३ श्लो० ।
३. व. सं. ३२ अ. ९४ श्लो. । ४. ज्यो. नि. ७६ पृ. ४ श्लो. ।

पुनःपात का जन्म

दिनकरतनुमार्गं यावदन्वेति चन्द्रो
मुनिभिरभिहितोसौ पातकालस्तु तावत् ।
उपनयनविवाहादौ न शस्तोतिपुण्यो
यमनियमविधाने सूर्यतुल्योपमः स्यात् ॥ ८१५ ॥

जब कि सूर्य के मार्ग में चन्द्रमा पीछे से आता है तो मुनियों ने इसे पात के नाम से कहा है। इसमें उपनयन विवाहादि प्रशस्त नहीं होते हैं। युग के नियम विधान में यह सूर्य के समान उपमा वाला होता है ॥ ८१५ ॥

एकार्गलखार्जूरि योग

अथ एकार्गलखार्जूरियोगः—

संहिताप्रदीपे—

[1]त्यजंति केचित्तिथिमृक्षमेके वारं तथा पातविदुष्टमन्ये ।
मांगल्यकार्येषु न शोभनं स्याद्दिनत्रयं केचिदपि ब्रुवंति ॥ ८१६ ॥

संहिता प्रदीप में कहा है कि किसी के मत में तिथि, किसी के मत में नक्षत्र और किसी के मत में वार एवं अन्यों के मत में दुष्ट पात का त्याग अभीष्ट माना है। और किसी के मत में तीनों दिन मंगल कार्यों में वर्जित होते हैं ॥ ८१६ ॥

विशेष

[2]विषप्रदग्धेन हतस्य पत्रिणा मृगस्य मांसं शुभदं क्षताहते ।
यथा तथैव व्यतिपातयोगे क्षणोत्र दुष्टो न तिथिर्न वासरः ॥ ८१७ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि त्याग में जहर से लिप्त जैसे बाण से मरे हुए हिरन का मांस भग्न स्थान से अतिरिक्त शुभदायी होता है। वैसे ही व्यतिपात का क्षण अशुभ होता है न कि तिथि व वार अशुभ होता है ॥ ८१७ ॥

दोषाभाव ज्ञान

केशवः—

[3]त्रिभागशेषे ध्रुवनाम्नि चन्द्रे त्र्यंशे गते संप्रति संभवोस्य ।
मानार्द्धयोगाधिकमिंदुभान्वोः क्रांत्यंतरं चेन्न तदैप दोषः ॥ ८१८ ॥

विवाह वृन्दावन में कहा है कि ध्रुव नाम के योग का तृतीयांश बचने पर तथा ऐन्द्र योग का तृतीयांश व्यतीत होनेपर इसका सम्भव होता है। सूर्यचन्द्र का क्रान्त्यन्तर जब मानैक्य खण्ड योग से अधिक होने पर दोष नहीं होता है ॥ ८१८ ॥

---

१. ज्यो. नि. ७६ पृ. ५ श्लो. । २. वि. वृ. १ अ. २४ श्लो. ।
३. मु. चि. ६ प्र. ६२ श्लो. पी. टी. ।

एकार्गलखार्जूर चक्र न्यास

अथैकार्गलखार्जूरः ।

श्रीपतिः—

एका मूर्ध्नि गता त्रयोदश तथा तिर्यग्गताः स्थापयेद्
रेखा चक्रमिदं बुधैरभिहितं खार्जूरिकं तत्र तु ।
व्याघातादिषु मूर्ध्निभं तु कथितं तत्रैकरेखास्थयोः
सूर्याचन्द्रमसोर्मिथो निगदितो दृक्पात एकार्गलः ॥ ८१९ ॥

आचार्य श्रीपतिजी ने बताया है कि एक रेखा मध्य में शीर्षस्थ बनाकर १३ तेरह रेखा याम्योत्तर बनाने से खार्जूर चक्र बनता है । इसमें व्याघातादि वश शीर्षस्थ रेखा पर युक्त नक्षत्र का स्थापन करके तिरछी रेखाओं में सूर्य-चन्द्र के दृक्पात से एकार्गल दोष होता है ॥ ८१९ ॥

पुनः भिन्न ग्रन्थ वश चक्र

वसिष्ठः—

[1]रेखामेकामूर्ध्वगां षट् च सप्त तिर्यक्कृत्वाप्यत्र खार्जूरचक्रे ।
तिर्यग्रेखासंस्थयोश्चन्द्रभान्वोर्दृक्संपातो दोष एकार्गलाख्यः ॥ ८२० ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि एक ऊर्ध्वग रेखा बनाकर १३ तिरछी रेखा बनाने से खार्जूर चक्र बनता है । इसमें एक रेखा में सूर्य चन्द्रमा का दृष्टि योग होने से एकार्गल दोष होता है ॥ ८२० ॥

योगवश शीर्षस्थ नक्षत्र

[2]अन्त्यातिगण्डपरिघव्यतिपातपूर्वव्याघातगण्डवरशूलमहाशनीषु ।
चित्रानुराधपितृपन्नगदस्रभेषु सादित्यमूलशशिसूरिषु मूर्ध्नि भेषु ॥८२१॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि वैधृति योग में शीर्षस्थान में चित्रा, अतिगण्ड में अनुराधा, परिघ में मघा, व्यतीपात में आश्लेषा, विष्कम्भ में अश्विनी, व्याघात में पुनर्वसु, गण्ड में मूल, शूल में मृगशिरा और वज्र योग होने पर शीर्ष स्थान में पुष्य को स्थापित करके सूर्य चन्द्र दृष्टि से दोष का निर्णय करना चाहिये ॥ ८२१ ॥

एकार्गल योग ज्ञान

त्रिविक्रमः—

[3]विरुद्धनामयोगेषु साभिजिद्विषमर्क्षगः ।
अर्कादिदुस्तदा योगो निंद्य एकार्गलाभिधः ॥ ८२२ ॥

आचार्य त्रिविक्रम ने बताया है कि विरुद्ध नाम के योगों में अभिजित् के साथ सूर्य के नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र विषम राशिस्थ होने पर निन्दनीय एकार्गल योग होता है ॥ ८२२ ॥

१. मु. चि. ६ प्र. ६२ श्लो. पी. टी. । २. मु. चि. ६ प्र. ६२ श्लो. पी. टी. ।
२. मु. चि. ६ प्र. ६२ श्लो. पी. टी. ।

नारदस्त्वभिजिद्वर्जितं चक्रमाह ।

नारदजी ने अभिजित् को छोड़कर चक्र न्यास किया है ।

अभिजित् वर्जित एकार्गल चक्र

[1]लिखेदूर्ध्वंगतामेकां तिर्यग्रेखां त्रयोदश ।
तत्र खार्जूरिके चक्रे कथितं मूर्ध्नि भान्यसेत् ॥ ८२३ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि एक रेखा ऊर्ध्वंग बनाकर १३ तरह रेखा तिर्यञ्च लिखने से एकार्गल चक्र बनता है । इसमें योगों के वश से शीर्षस्थ नक्षत्र का विचार करके नक्षत्रों का न्यास आगे कथित रीति से करना चाहिये ॥ ८२३ ॥

योगवश शीर्षस्थ नक्षत्र ज्ञान

[2]व्याघातशूलपरिघपातपूर्वेषु सस्त्वपि ।
गण्डातिगण्डकुलिशवैधृत्या सहितेषु च ॥ ८२४ ॥

[3]अदितीन्दुमघाह्याद्यमूलमैत्र्येंत्यमानि च ।
ज्ञेयानि सहचित्राणि मूर्ध्नि भानि यथा क्रमम् ॥ ८२५ ॥

व्याघात योग में पुनर्वसु, शूल में मृगशिरा, परिघ में मघा, विष्कुम्भ में अश्विनी, गण्ड में मूल, अतिगण्ड में अनुराधा, वज्र में पुष्य, वैधृति योग होने पर चित्रा नक्षत्र शीर्ष रेखा में स्थापित करना चाहिये ॥ ८२४–८२५ ॥

[4]भान्येकरेखास्थितयोः सूर्याचन्द्रमसोर्मिथः ।
एकार्गलो दृष्टिपाताच्चाभिजिद्वर्जितानि वै ॥ ८२६ ॥

एक रेखा में चन्द्र सूर्य के होने पर दृष्टिपात से अभिजित् को छोड़कर एकार्गल चक्र होता है ॥ ८२६ ॥

स्पष्टार्थ योगवश नक्षत्र सारणी

विष्कंभ	अतिगण्ड	शूल	गण्ड	व्याघात	वज्र	व्यतीपात	परिघ	वैधृति	योगनाम
अश्विनी	अनुराधा	मृगशिरा	मूल	पुनर्वसु	पुष्य	आश्लेषा	मघा	चित्रा	शीर्षनक्षत्र

१. मु. चि. ६ प्र. ६२ श्लो. पी. टी. ।
२. मु. चि. ६ प्र. ६२ श्लो. पी. टी. ।
३. मु. चि. ६ प्र. ६० श्लो. पी. टी. ।
४. वि. वृ. १ अ. १५ श्लो.

अनुराधा शीर्ष स्थान

वि०	ज्ये०
स्वा०	मू०
चि०	पू०षा०
ह०	उ०षा०
उ०फा०	श्र०
पू०फा०	ध०
म०	श०
श्ले०	पू०भा०
पु०	उ०भा०
पुन०	रे०
आ०	अ०
मृ०	भ०
रो०	कृ०

अन्य ने भी अभिजित् का त्याग

कश्यपेनापि—

एकार्गलो दृष्टिपातश्चाभिजिद्रहितानि वै ॥ ८२७ ॥

ऋषि कश्यप ने बताया है कि सूर्य-चन्द्र के पारस्परिक दृष्टि से एकार्गल दोष होता है। इसमें अभिजित् का त्याग करना चाहिये ॥ ८२७ ॥

शीर्षभ व एकार्गल का फल

केशवार्कः—

[1]शीर्षभं भवति रूपसंयुतं दुष्टयोगमितिरर्द्धिता सती।
शेषिणी यदि च सार्द्धं।वश्वयुक् मंगलं गलति सार्गले विधौ ॥ ८२८ ॥

विवाह वृन्दावन में कहा है कि दूषित योग संख्या में १ एक जोड़कर आधा करने से यदि शेषिणी होती है तो इसमें १३।३० जोड़ने पर शीर्षभ होता है। दुष्टयोग व्याघात, शूल, परिघ, व्यतीपात, विष्कम्भ, गण्ड, अतिगण्ड, वज्र व वैधृति होते हैं। यहाँ व्याघात संख्या १३ है। इसमें १ एक जोड़ने पर १४ व आधा करने से ५।३१ हुआ, यह शेषिणी है। अतः ५।३० + १३।३० = १९ यह शीर्षभ हुआ। सार्गल चन्द्रमा के होने पर मुहूर्त में मंगल का विनाश होता है ॥ ८२८ ॥

एकार्गल में परमत ज्ञान

त्यक्त्वा गतैष्यस्य परेतु हेतुमुह्यंति नक्षत्रमशेषमेव।
एकार्गलस्यैव हि सा च भंगी संध्यागतं यद्गलहस्तयंति ॥ ८२९ ॥

विवाह वृन्दावन में कहा है कि आचार्य श्रीपत्यादि तुल्य गम्यगत में ऐष्य मंगल का कारण छोड़कर एकार्गल से विद्ध समस्त नक्षत्र का त्याग करते हैं, क्योंकि सन्ध्या में उदित समस्त नक्षत्र का परित्याग होता है। यही युक्ति यहाँ पर है ॥८२९॥

१. वि. १ अ. १६ श्लो.।

खार्जूर का त्याग

विवाहे प्रथमे क्षौरे सोमंते कर्णवेधने ।
व्रतेऽन्नप्राशने चैव खार्जूरं परिवर्जयेत् ॥ ८३० ॥

विवाह, प्रथम क्षौर, सीमन्त, कर्णवेध, यज्ञोपवीत, अन्नप्राशन में खार्जूर दोष का त्याग करना चाहिये ॥ ८३० ॥

दसयोग दोष ज्ञान

अथ दशयोगविचारः—

अश्विन्यादि रविर्यत्र अश्विन्यादि शशी तथा ।
द्वयोर्योगो हृते ऋक्षे शेषे स्यादपि तद्दश ॥ ८३१ ॥
शून्यं रूपोथ वेदर्तुदशरुद्रतिथिर्धृतिः ।
एकोनविंशविंशश्च दश योगाः प्रकीर्तिताः ॥ ८३२ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि आश्विन्यादि में जिस नक्षत्र में सूर्य तथा चन्द्रमा हों, उन दोनों नक्षत्रों (सूर्यस्थ-चन्द्रस्थ) की संख्या को जोड़कर २७ का भाग देने से जो शेष बचे, वह शेष दस संख्या के ०।१।४।६।१०।११।१५।१९।२० पठित इन अंकों में जिस दिन इनमें से कोई अंक उपलब्ध हो तो उस दिन को दस दोष संज्ञक दिन कहा जाता है ॥ ८३१–८३२ ॥

शून्यादि शेषाङ्कों का ज्ञान

वायुमेघाग्निभूपालवह्निमृत्युक्रमात्फलम् ।
रोगं वज्रं तथा कष्टं हानिश्च दशयोगके ॥ ८३३ ॥

यदि २७ का भाग देने पर ० शून्य बचे तो वायुभय, १ में मेघ, ४ में अग्नि, ६ में राजा, १० में अग्नि, ११ में मृत्यु, १५ में रोग, १८ में वज्र, १९ में कष्ट और २० शेष में दस योग में हानि होती है ॥ ८३३ ॥

ग्रन्थान्तर से दसयोग ज्ञान

फलप्रदीपे—

अश्विन्यादित एव यत्र सविता यच्चेष्टमृक्षं
तयोर्योगात्खैककृतर्तुदिग्भवतिथिर्धृत्योनविंशेन्नखाः ।
उद्वाहे दशयोगके प्रकथितं वायुर्जलाद्वह्नितो
राज्ञश्चौरमृतेर्गदाश्च कलहात्कष्टार्थहानेर्भयम् ॥ ८३३ ॥

फलप्रदीप में कहा है कि अश्विन्यादि में सूर्य के नक्षत्र की व चन्द्रमा के नक्षत्र की संख्या को जोड़कर २७ का भाग देने पर ०।१।४।६।१०।११।१५। १८।१९।२० शेष बचे तो दस योग दोष उस दिन होता है । विवाह के दिन उक्त दोष होने पर ० शेष में वायु, १ में वर्षा, ४ में अग्नि, ६ में राज, १० में चोरभय, ११ में मृत्यु, १५ में रोग, १८ में कलह, १९ में कष्ट और २० शेष में धन का क्षय होता है ॥ ८३३ ॥

दस योग दोष का त्याग

[1]विवाहादौ प्रतिष्ठायां व्रते पुंसवने तथा।
कर्णवेधे तु चूडायां दशयोगं विवर्जयेत् ॥ ८३४ ॥

विवाहादि, प्रतिष्ठा, यज्ञोपवीत, पुंसवन, कर्णवेध और चूडा में दशयोग दोष का त्याग करना चाहिये ॥ ८३४ ॥

दस योग दोष का परिहार

अस्यापवादमाह—

भरद्वाजः—

[2]गुरौ लग्नाधिपे शुक्रे सवीर्ये लग्नकेंद्रगे।
दशयोगा विनश्यंति यथाग्नौ तूलराशयः ॥ ८३५ ॥

ऋषि भरद्वाज ने बताया है कि लग्नेश गुरु के होने पर व वली शुक्र लग्न से केन्द्र में होने से, जैसे रुई को अग्नि नष्ट कर देती है वैसे ही इस योग दोष नष्ट होता है ॥ ८३५ ॥

व्यासोपि—

[3]शुक्रेण गुरुणा वापि संयुतं दृष्टमेव च।
दशयोगसमायुक्तमपि लग्नं शुभावहम् ॥ ८३६ ॥

ऋषि व्यासजी ने बताया है कि जब मांगलिक लग्न शुक्र या गुरु से दृष्ट या युक्त होता है तो दस योग दोष से युक्त भी लग्न शुभ फलदायी होता ॥ ८३६ ॥

सङ्ग्रह दोष ज्ञान

अथ युतिदोषः—

नारदः—

[4]शशांके ग्रहसंयुक्ते दोषः संग्रहकारकः।
तस्मिन्संग्रहदोषे तु विवाहं नैव कारयेत् ॥ ८३७ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि चन्द्रमा जब किसी ग्रह के साथ संचरण करता है तो संग्रह नाम का दोष होता है। इसमें विवाह नहीं करना चाहिये ॥ ८३७ ॥

युति दोष ज्ञान

विवाहपटले—

यस्मिन्भवने चन्द्रस्तस्मिन्यदि जायते ग्रहः कश्चित्।
युतिरिति दोषस्तु तदा शुभयुक्तः केचिदिच्छंति ॥ ८३८ ॥

---

१. मु. चि ६ प्र. ७१ श्लो. पी. टी.। २. मु. चि. ६ प्र ७१ श्लो. पी. टी.
३. मु. चि. ६ प्र. ७१ श्लो. पी. टी.। ४. मु. चि. ६ प्र. ४५ श्लो. पी. टी।

विवाह पदल में बताया है कि जिस राशि में चन्द्रमा हो और अन्य कोई भी ग्रह उसी राशि में जब होता है तो युति नाम का दोष होता है। इसमें शुभ ग्रह से युति किसी आचार्य के मत में शुभ मानी गई है ॥ ८३८ ॥

स्थिति विशेष में भी मरण

स्वक्षेत्रगः स्वोच्चगो वा मित्रक्षेत्रगतोपि वा।
पापग्रहयुतश्चंद्रः करोति मरणं तयोः ॥ ८३९ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया गया है कि ग्रह जब अपनी राशि या उच्चराशि या मित्र की राशि में भी पापग्रह से चन्द्रमा के युक्त होने पर वर वधू का मरण कर्ता होता है ॥ ८३९ ॥

प्रत्येक ग्रह की युति का फल

वसिष्ठः—

[1]दारिद्र्यं रविणा कुजेन मरणं सौम्येन नष्टप्रजा
दौर्भाग्यं गुरुणा सितेन सहिते चन्द्रेण सापत्न्यकम्।
प्रव्रज्यार्कसुतेन सेंदुजगुरौ वांच्छंति केचिच्छुभं
व्याधेर्मृत्युरसद्ग्रहैः शशियुते दीर्घप्रवासी शुभैः ॥ ८४० ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि चन्द्रमा, सूर्य के साथ होने पर दरिद्रता, भौम से मृत्यु, बुध से नष्ट संतान वाला, गुरु से भाग्यहीनता, शुक्र से सौतेला भाव या शत्रुता, शनि से चन्द्रमा का योग होने पर संन्यास होता है। किसी २ के मत में बुध, या गुरु से युक्त होने शुभ माना गया है। पापग्रह से युत चन्द्रमा के होने पर व्याधि (रोग) और मृत्यु तथा शुभ ग्रह के साथ में लम्बा प्रवास लेता है ॥ ८४० ॥

पुनः ग्रन्थान्तर से युति फल

[2]भूपाद्भयं रिपुभयं व्यसनं प्रवासं वित्तक्षयं विदरणं च शुभक्रियासु।
कर्तुः करोति शशभृत्क्रमशोर्कपूर्वैरेकग्रहैः सह विशन्नुडुमेकराशौ ॥७४१॥

बताया है कि चन्द्रमा सूर्य से मिलने पर राजभय, भौम से शत्रु का भय, बुध से व्यसन, गुरु से प्रवास, शुक्र से धन का नाश, शनि से सहयोग होने पर समस्त कार्यों का विनाश होता है। उक्त स्थिति चन्द्रमा के साथ किसी ग्रह के रहने पर होती है ॥८४१॥

युति में विवाह का फल

यस्मिन्नृक्षः स्थितः खेटस्तदृक्षं युतिसंज्ञकम्।
तस्मिन्विवाहिता कन्या पुंश्चली जायते ध्रुवम् ॥ ८४२ ॥

जिस राशि में ग्रह होता है उसमें चन्द्रमा के जाने पर युति दोष होता है। इसमें विवाहिता कन्या निश्चय व्यभिचारिणी होती है ॥ ८४२ ॥

---

१. व. सं. ३२ अ. ४२ श्लो.। २. ज्यो नि. ७२ पृ. २२ श्लो.।

अन्य रीति से ग्रहों की युति का फल

श्रीपतिः—

स्वर्भानुमित्रासितभौमशुक्रैस्तुषाररश्मिः सहितोऽङ्गनानाम् ।
दौर्भाग्यवैधव्यभयानि धत्ते शुभं यदंभोलिभृदीज्यविद्भ्याम् ॥ ८४३ ॥

आचार्य श्रीपतिजी ने वताया है कि राहु, सूर्य, शनि, भौम वा शुक्र से चन्द्रमा के युक्त होने पर विवाह में कन्याओं को भाग्य हीनता वैधव्यतादि भय और गुरु, बुध के युत होने पर शुभ होता है ॥ ८४३ ॥

राहु केतु का फल

चण्डेश्वरः —

युतियामित्रगो नित्यं राहुकेतू फलप्रदौ ।
व्यासशौनकयोर्वाक्यमस्मिन्नर्थे च लिख्यते ॥ ८४४ ॥

आचार्य चण्डेश्वर ने वताया है कि युति व यामित्र में राहु केतु सदा फल दाता होते हैं । इस अर्थ में मैं व्यास शौनक ऋषियों के वाक्य को लिख रहे हैं ॥ ८४४ ॥

सूर्य व भौम से युक्त चन्द्रमा का फल

भास्करयुते चन्द्रे भवति धनैर्वजिता दुराचारा ।
भौमे साहसयुक्ता गात्रच्छेदं समाप्नोति ।
स्वसुतयुते रजनीको सत्यवती धर्मशीला स्यात् ।
सुरगुरुणा पतिदयिता सधना नियता च पुत्रिणी साध्वी ॥ ८४५ ॥

जब चन्द्रमा सूर्य से युक्त होने पर विवाह होता है तो कन्या धन से रहित, दूषित आचरण करने वाली और भौम से युत होने पर साहसी व शरीर में छिद्र पाने वाली होती है

चन्द्रमा जव बुध के साथ होने पर विवाह में कन्या सत्य बोलने वाली व धर्म में आस्था रखने और गुरु के साथ में पति का कृपा भाजन, नित्य धनी, पुत्रिणी व साध्वी होती है ॥ ८४५ ॥

बुध व गुरु से युक्त चन्द्रमा का फल

शुक्रे विपन्नशीला नित्यं वशगा च सापत्न्याः ।
सौरेण युता विधवां प्रव्रज्यां वा करोति विगतभया ॥ ८४६ ॥

चन्द्रमा शुक्र की राशि में होने पर विवाह में कन्या प्रतिदिन विपत्ति पानेवाली वशवर्तिनी व सौतेला भाव रखने वाली और शनि के साथ होने पर विधवा, भय से हीन व संन्यासिन होती है ॥ ८४६ ॥

शुक्र व शनि से युक्त चन्द्रमा का फल

राहुसमेते चन्द्रे प्राप्ते पाणिग्रहणं तु या ।
परपुरुषसक्तहृदया नीचैरपि याति संसर्गम् ॥ ८४७ ॥

जब चन्द्रमा राहु से युक्त होता है और उसी मे विवाह करने पर कन्या दूसरे पुरुष में आसक्ति रखने वाली और नीचों के संसर्ग में भी रहने वाली होती है ॥ ८४७ ॥

केतु से युक्त चन्द्रमा का फल

केतुयुते हिमरश्मौ कन्यापाणिग्रहणं तु या गच्छेत् ।
धारयति सा सुतीव्रं नृकपालं सोमसिद्धांतवित् ॥ ८४८ ॥

जब चन्द्रमा केतु के साथ होने पर विवाह होता है तो कन्या सोम सिद्धान्त की ज्ञाता, सुतीव्र मनुष्य की खोपड़ी को धारण करने वाली होती है ॥ ८४८ ॥

ज्योतिर्निबन्धे —
[1]एकस्मिन्नपि धिष्ण्ये भिन्ने राशौ खलग्रहे शशिनि ।
तच्चंद्रर्क्षे कुर्याद्विवाहयात्रादिकं सर्वम् ॥ ८४९ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है कि एक ही नक्षत्र में पृथक् राशि में पापग्रह के साथ चन्द्रमा होने पर उस चन्द्र नक्षत्र में विवाह व यात्रादि सब कुछ करना चाहिये ॥८४९॥

एक नक्षत्र, भिन्न राशि में युति का फल

गुरुरपि —
संग्रहे प्रोक्तनक्षत्रे विवाहो नैव शोभनः ।
राशिभेदे न दोषः स्यादेकतारास्वपि ग्रहः ॥ ८५० ॥

बृहस्पतिजी ने भी बताया है कि उक्त नक्षत्र में चन्द्रमा किसी ग्रह के साथ होने पर विवाह शुभ नहीं होता है और राशि भेद (अलग) से एकतारा में भी दोष का अभाव होता है ॥ ८५० ॥

युति दोष का अपवाद

नारदः—
स्वक्षेत्रगः स्वोच्चगो वा मित्रक्षेत्रगतो विधुः ।
युतिदोषाय न भवेद्दंपत्योः श्रेयसे तदा ॥ ८५१ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि अपनी राशि या उच्च राशि या मित्रग्रह की राशि में चन्द्रमा के होने पर युति दोष नहीं होता है तथा वर-वधू का कल्याण करने वाला होता है ॥ ८५१ ॥

कश्यपोपि—
तुंगमित्रस्वराशिस्थशुभयुक्तः शुभप्रदः ।
एवंविधः क्रूरयुतः संपूर्णफलदः शशी ॥ ८५२ ॥

---

१. पृ. ७३ श्लो. ४ ।

ऋषि कश्यप जी ने भी कहा है कि उच्च-मित्र-स्वराशि में शुभग्रह की युति शुभ-प्रद और इसी प्रकार क्रूर ग्रह की युति संपूर्ण फल देने वाली होती है ॥ ८५२ ॥

पुनः परिहार का ज्ञान

वर्गोत्तमगतश्चंद्रः स्वोच्चे वा मित्रराशिगः ।
युतिदोषश्च न भवेद्दंपत्योः श्रेयसी सदा ॥ ८५३ ॥

अपनी वर्गोत्तम राशि में चन्द्र या उच्च या मित्र राशि में युति दोष नहीं होता अपितु शुभ फल के लिये होता है ॥ ८५३ ॥

यामित्र दोषज्ञान

अथ यामित्रदोषः—

नारदः—
लग्नाद्वा शशिभाद्वापि यामित्रं सप्तमं स्मृतम् ।
क्रूरग्रहयुतं तत्र यत्नतः परिवर्जयेत् ॥ ८५४ ॥

ऋषि नारदजी ने बताया है कि लग्न से या चन्द्रमा से सप्तम स्थान यामित्र संज्ञक होता है । उसमें अर्थात् विवाह लग्न से वा वैवाहिक चन्द्रमा से सप्तम स्थान पापग्रह से युक्त हो तो यत्न से त्याग करना चाहिये ॥ ८५४ ॥

[1]क्रूरो वा यदि वा सौम्यो लग्नाच्चन्द्राच्च खेचरः ।
एकोपि यदि यामित्रे समांशे शोकदो भवेत् ॥ ८५५ ॥

विवाह लग्न या चन्द्रमा से सप्तम के समांश में एक भी क्रूर ग्रह या शुभ ग्रह होता है तो शोकप्रद होता है ॥ ८५५ ॥

राजमार्तंडे—
सौरारजीवबुधराहुरविश्च शुक्रः केतुश्च सप्तमगृहं शशिनश्च लग्नात् ।
वैधव्यबंधनवधक्षयपुत्रनाशव्याधिप्रवासमरणानि यथाक्रमेण ॥८५६॥

राजमार्तण्ड में बताया है कि शनि, भौम, गुरु, बुध, राहु, सूर्य, शुक्र, केतु, विवाह लग्न से या चन्द्रमा से सातवें स्थान में होने पर यथाक्रम वैधव्यता, बन्धन, वध, क्षय, पुत्रनाश, व्याधि, प्रवास और मरण होता है ॥ ८५६ ॥

यामित्रस्थ सूर्यादि ग्रहों का फल

भूपालवल्लभे—
[2]चन्द्रात्सप्तमराशिगे दिनकरे त्यक्ता धनैः कन्यका
भौमेन प्रमदा प्रयाति मरणं सौरेण वंध्या सरुक् ।
जीवः शुक्रशशांकजाः शुभकराः केचिद्वदन्ति क्रमात्
भर्तुः प्रोज्झितदीक्षितास्तभवने नित्यं प्रवासान्विता ॥ ८५७ ॥

---

१. ज्यो० नि० १५३ पृ० २ श्लो० । २. मु० चि० ६ प्र० ६५ श्लो० पी० टी० ।

भूपाल वल्लभ में वताया है कि चन्द्रमा से सातवें स्थान में सूर्य के रहने पर कन्या धन से रहित, भौम के होने पर कन्या का मरण, शनि से रोगिणी व वन्ध्या कन्या होती है और गुरु, शुक्र, बुध के सप्तमस्थ होने पर किसी के मत में शुभ तथा पति से त्यक्त, दीक्षित (संन्यासिनी) एवं नित्य प्रवास में रत होती है ॥ ८५७ ॥

चण्डेश्वरः –

[1]पापात्सप्तमगः शशी यदि भवेत्पापेन वा संयुतो
यत्नेनापि विवर्जयेन्मतिमता दोषोपि संकथ्यते ।
यात्रायां विपदा गृहेषु मरणं क्षौरे च रोगो महा-
नुद्वाहे विधवा व्रते च मरणं शूलं च पुंस्कर्मणि ॥ ८५८ ॥

आचार्य चण्डेश्वर ने वताया है कि पापग्रह से सातवें स्थान में चन्द्रमा के होने पर या पापग्रह से संयुत होने पर बुद्धिमान व्यक्ति को यत्न से त्याग करना, क्योंकि ऐसी स्थिति में दोष भी होता है । जैसे यात्रा में विपत्ति, गृहकार्य में मरण, क्षौर में बड़ा रोग, विवाह में वैधव्य, यज्ञोपवीत में मृत्यु और पुंसवन में शूल होता है ॥ ८५८ ॥

अशुभ चन्द्रमा का ज्ञान

पापग्रहेण संयुक्तः पापयामित्रसंभवः ।
पापद्वयस्य मध्यस्थः शुभोप्यशुभदः शशी ॥ ८५९ ॥

पापग्रह से युत या पापग्रह से सप्तमस्थ और पापग्रह के मध्य में शुभ चन्द्रमा भी अशुभ होता है ॥ ८५९ ॥

कर्तरी लक्षण, जामित्र फल ज्ञान

केशवः—

[2]खलकृता तनुरोहिणिमित्रयोर्दुरधुरा विधवां कुरुते वधूम् ।
श्रुतिशरांशमिते स्मरभे तयोर्गृहमपुण्यमपुण्यमिव त्यजेत् ॥८६०॥

विवाह वृन्दावन में कहा है कि लग्न या चन्द्रमा से दूसरे व बारहवें स्थान में पाप ग्रह के होने पर पाप ग्रह कृत दुरधरा योग होता है वह यहाँ कर्तरी के नाम से प्रसिद्ध है । यह कर्तरी कन्या को विधवा बनाती है । तथा लग्न या चन्द्रमा से ५४वें नवांश में पाप ग्रह की सत्ता होने पर उस पापग्रह का पातक की तरह दूर से त्याग करना चाहिये ॥ ८६० ॥

विशेष

क्रूरस्य भाद्वीतरमृक्षमेवर्मानिष्टमित्येव विशेषवादः ।
पापाच्चतुःपंचलवेषु चान्द्रं यामित्रमस्मात्खलु पर्यणंसीत् ॥ ८६१ ॥

---

१. मु० चि० ६ प्र० ६५ श्लो० पी० टी० में लल्ल के नाम से उद्धृत है ।
२. वि० वृ० ५ अ० ७ श्लो० ।

क्रूर ग्रह से ६ राशि के अन्तर पर जो नक्षत्र होता है वह अनिष्ट फल देने वाला होता है। पाप ग्रह से ५४वें अंश में चन्द्रमा के होने पर यामित्र दोष होता है ॥८६१॥

विवाह लग्न या चन्द्रमा से सप्तमस्थ ग्रहों का फल

पतिं त्यक्त्वा सूर्ये शशिनि किरणात्सप्तमगते
महीजेऽन्यासक्ता हिमकरसुते भर्तृनिरता।
गुरौ नारी साध्वी भवति च सपत्न्या भृगुसुते
सुतैर्हीना दीना दिनकरसुतेऽजाद्युनगते ॥ ८६२ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि चन्द्रमा से सप्तम स्थान में सूर्य के होने पर कन्या पति का त्याग करने वाली, भौम के होने पर दूसरे पुरुष में आसक्त, बुध की स्थिति से पति में अनुरक्त, गुरु से साध्वी, शुक्र से अन्य स्रोतोंवाली और चन्द्रमा से सातवें स्थान में शनि के रहने पर पुत्र से हीन और दीन होती है ॥ ८६२ ॥

लग्नात् कलत्रे रजनीकराद्वा ऋक्षांतऋक्षे यदि सप्तमेपि।
ग्रहो विवाहे ह्यशुभः शुभो वा तदा सुवैधव्यमुशन्त्यवश्यम् ॥ ८६३ ॥

लग्न अथवा चन्द्रमा से सप्तम में ऋक्ष के अन्त में भी शुभ व अशुभ ग्रह होने पर अवश्य ही कन्या विधवा होती है ॥ ८६३ ॥

चण्डेश्वरः—
शशिनः सप्तमसंस्थे दिवसकरे शीलवर्जिता कन्या।
भौमे पतिघातकरी शशितनये वल्लभा भर्तुः ॥ ८६४ ॥
सुरमन्त्रिणि सुतसहिता दैत्यगुरौ शोभना साध्वी।
रवितनये भर्तृहा कुलटा सा बन्धकी वा स्यात् ॥ ८६५ ॥
राहौ भर्तुरनिष्टा केतौ वंशक्षयाय निर्दिष्टः।
लग्नात्सप्तमगो पापश्चन्द्रात् सप्तमगोपि वा।
लग्नस्थाच्चन्द्रसंस्थाद्वा व्याधिवैधव्यकारकाः ॥ ८६६ ॥

आचार्य चण्डेश्वर ने बताया है कि चन्द्रमा से सातवें स्थान में सूर्य के होने पर कन्या शील से हीन, भौम से पति को मारने वाली, बुध से पति की प्यारी, गुरु से पुत्र से युक्त, शुक्र से सुन्दर साध्वी, शनि से पति की हत्या करने वाली, व्यभिचारिणी, बँधकी, राहु से पति का अनिष्ट करने वाली और केतु के होने पर वंश का क्षय करने वाली होती है। लग्न से या चन्द्रमा से सप्तम में पापग्रह या लग्न में या चन्द्रमा के साथ पापग्रह होने पर रोग व वैधव्यता होती है ॥ ८६४-८६६ ॥

यामित्र दोष की अप्रशंसा

विवाहपटले—
यामित्रं न प्रशंसन्ति गर्गगालवकश्यपाः।
यामित्रे चाङ्गिराश्रेष्ठश्चन्द्रशुक्रबुधास्तथा ॥ ८६७ ॥
तस्माच्चन्द्राच्च लग्नाच्च यामित्रं परिवर्जयेत्।
सौराररवयो वर्ज्याः सप्तमस्थाः प्रयत्नतः ॥ ८६८ ॥

विवाह पटल में कहा है कि गर्ग, गालव व गौतम ऋषि यामित्र की प्रशंसा नहीं करते हैं। किन्तु अङ्गिरा ऋषि सप्तम में चन्द्र, शुक्र, बुध को शुभ श्रेष्ठ बताते हैं ॥८६७॥

इसलिये लग्न व चन्द्रमा से यामित्र का और सप्तमस्थ शनि, मंगल, सूर्य का भी त्याग करना चाहिये ॥ ८६८ ॥

यामित्र दोष का त्याग

दीपिकायाम्—

रविमन्दकुजाक्रान्तमृगाङ्कात्सप्तमं त्यजेत् ।
विवाहयात्रा चूडासु गृहकर्मप्रवेशने ॥ ८६९ ॥

दीपिका में कहा है कि चन्द्रमा से सातवाँ स्थान सूर्य या शनि या मंगल से युक्त होने पर विवाह, यात्रा, चौल, घर कार्य या गृह प्रवेश में त्याग करना चाहिये ॥८६९॥

यामित्र दोष का परिहार

अथ यामित्रापवादः—

[1]अत्रिः—

यामित्रगो यदि भवेदुशना बुधो वा
गीर्वाणनाथसचिवः सितपक्षचन्द्रः ।
कन्याविवाहसमये शुभमामनन्ति
मन्वत्रिनारदवसिष्ठपराशराद्याः ॥ ८७० ॥

ऋषि अत्रि ने बताया है कि सातवें स्थान में यदि शुक्र वा बुध या गुरु या शुक्ल पक्षीय चन्द्रमा विवाह लग्न से हो तो मनु, अत्रि, नारद, वसिष्ठ, पराशरादि मुनि शुभ होने की घोषणा करते हैं ॥ ८७० ॥

मनुशाण्डिल्यमाण्डव्यभारद्वाजात्रिगौतमाः ।
यामित्रे तु प्रशंसन्ति बुधजीवोशनाः शुभाः ॥ ८७१ ॥

मनु, शाण्डिल्य, माण्डव्य, भारद्वाज, अत्रि, गौतम ऋषि गण विवाह लग्न से सातवें स्थान में बुध, गुरु, शुक्र की सत्ता को शुभ बताते हैं ॥ ८७१ ॥

वसिष्ठः—

[2]लग्नात्त्रिकोणसहजायगतश्च चान्द्रं
यामित्रदोषमशुभं भृगुराशु हन्यात् ।
धीधर्मकंटकगतस्फुरदंशुजालो
जीवोतिदुष्टफलहानिकरः सशेतिः (?) ॥ ८७२ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि लग्न से ५।९।३।११ में शुक्र शीघ्र ही अशुभ चान्द्र यामित्र को नष्ट करने वाला और ५।९।१।४।७।१० में परिपूर्ण किरणों से युक्त गुरु अत्यन्त दूषित फल की हानि करने वाला होता है ॥ ८७२ ॥

---

१. ज्यो नि० १५३ पृ० ५ श्लो० ।   २. ज्यो० नि० १५३ पृ० ६ श्लो० ।

मित्रेक्षितोऽथ भवने शुभवीक्षितो वा
मित्राश्रितोथ भवने सुहृदंशके वा।
यामित्रदोषमपहृत्य सुखं करोति
चन्द्रः समीहितफलं च ददाति पुंसाम् ॥ ८७३ ॥

जब कि चन्द्रमा मित्र ग्रह से वा शुभ ग्रह से दृष्ट वा मित्र की राशि में या मित्र ग्रह के नवांश में होता है तो यामित्र दोष का नाश करके अभीष्ट सुखकारी होता है ॥ ८७३ ॥

ज्योतिःसागरे—
मित्रालये मित्रसमीक्षितो वा मित्रांशके मित्रसमाश्रितो वा।
क्रूरग्रहादस्तगतोपि सोमः समीहितार्थं वितरेन्नराणाम् ॥ ८७४ ॥

ज्योतिः सागर में बताया है कि मित्र के घर में या मित्र से दृष्ट या मित्र ग्रह के नवांश में या मित्र ग्रह के साथ क्रूर ग्रह से युक्त सप्तम में भी चन्द्रमा अभीप्सित अर्थ को देने वाला होता हैं ॥ ८७४ ॥

राजमार्तण्डः—
[1]तुङ्गत्रिकोणभवने भवने निजे वा
सौम्याधिमित्रगृहगोपि तदीक्षितो वा।
यामित्रवेधजनितान्विनिहत्य दोषान्
दोषाकरः सुखमनेकविधं विधत्ते ॥ ८७५ ॥

राजमार्तंड में बताया है कि अपनी उच्च राशि या मूल त्रिकोण राशि या अपनी राशि या शुभ राशि या अधिमित्र की राशि या अधिमित्र ग्रह से दृष्ट चन्द्रमा यामित्र, वेध जनित समस्त दोषों का विनाश करके अनेक प्रकार के सुख को देनेवाला होता है ॥ ८७५ ॥

व्यवहारोच्चये—
[2]स्वोच्चेथवा स्वभवने स्फुरदंशुजालः
सौम्यालये हितगृहे शुभवर्गगो वा।
यामित्रकादि परिसंचितदोषराशिं
हित्वा ददाति बहुशः सुखमेव चन्द्रः ॥ ८७६ ॥

व्यवहारोच्चय में कहा है कि अपनी उच्चराशि या स्वराशि या परिपूर्ण किरणों से युक्त शुभग्रह की राशि या मित्र राशि या शुभ ग्रह के वर्ग में चन्द्रमा यामित्रादि परिसंचित दोष राशि का विनाश करके अधिकतर सुख को ही देनेवाला होता है ॥८७६॥

---

१. मु० चि० ६ प्र० ६५ श्लो० पी० टी०।
२. मु० चि० ६ प्र० ६५ श्लो० पी० टी०।

कालखण्डे वात्स्यायनः—

[1]गुरुश्चन्द्रश्च यामित्रे तिष्ठेद्यदि बलान्वितः।
धनसौभाग्यपुत्रांश्च लभते नात्र संशयः ॥ ८७७ ॥

काल खण्ड में वात्स्यायन ऋषि ने बताया है कि बलवान् गुरु चन्द्रमा सातवें स्थित होता है तो निःसन्देह धन, सौभाग्य व पुत्रों को देने वाला होता है ॥ ८७७ ॥

मणिमुक्ताप्रवालैश्च सुवर्णाभरणैः शुभैः।
शोभिता तु सदा तिष्ठेद्गुरुणापि निरीक्षिते ॥ ८७८ ॥
सा तु भर्तुः प्रिया नित्यं बुधे चन्द्रस्य सप्तमे ॥ ८७९ ॥

यदि सातवें चन्द्रमा गुरु से दृष्ट हो तो कन्या मणि, मोती, मूंगा व सोने के गहनों से सदा सुशोभित होती है ॥ ८७८ ॥

यदि बुध, चन्द्रमा से युक्त सप्तम में हो तो कन्या पति की नित्य प्यारी होती है ॥ ८७९ ॥

भुजबलः—

स्त्रीणां विवाहे तु बलैरुपेता पत्युः प्रणाशं विहगा विदध्युः।
त्यक्त्वा बुधं दैत्यगुरुं गुरुं च निशाकरादस्तगृहं प्रपन्नाः ॥ ८८० ॥

भुजबल ने कहा है कि चन्द्रमा से सातवें स्थान में बुध, गुरु, शुक्र को छोड़कर बली ग्रहों की सत्ता से पति का विनाश होता है ॥ ८८० ॥

देश विशेष से परिहार

देशविशेषेण परिहारः—

[2]विवाहपटले—

लत्ता मालवके देशे पातः कोसलके तथा।
एकार्गलं तु काश्मीरे वेधं सर्वत्र वर्जयेत् ॥ ८८१ ॥

विवाह पटल में कहा है कि मालवा देश में लत्ता का, कोसल देश में पात का, काश्मीर में एकार्गल का दोष होता है और वेध का दोष सब जगह होता है ॥ ८८१ ॥

वराहः—

[3]युतिर्दोषो भवेद्गौडे यामित्रस्य च यामुने।
वेधदोषस्तु विन्ध्याख्यदेशे नान्येषु केचन ॥ ८८२ ॥

आचार्य वराह ने बताया है कि गौड़ देश में युति का यामुन देश में यामित्र का और विन्ध्य देश में वेध का दोष होता है और अन्य देशों में नहीं होता ऐसा किसी का मत है ॥ ८८२ ॥

---

१. मु० चि० ६ प्र० ६५ श्लो० पी० टी०।
२. मु० चि० ६ प्र० ६७ श्लो० पी० टी०।
३. मु० चि० ६ प्र० ६७ श्लो० पी० टी०।

उपग्रह दोष ज्ञान

अथोपग्रहः—

श्रीपतिः—

भूकम्पः सप्तमर्क्षे भवति सवितृभात्पञ्चमे विद्युदुल्का
शूलं चैवाष्टसंख्येऽशनिरिति दशमे केतुरष्टादशे तु।
दण्डस्त्रिपञ्चसंख्ये स नव दशमिते नूनमुल्का प्रदिष्टा
धिष्ण्ये द्विःसप्तसंख्ये मुनिभिरभिहितश्चात्र निर्घातपातः ॥ ८८३ ॥

आचार्य श्रीपतिजी ने बताया है कि सूर्य नक्षत्र से सातवें नक्षत्र में चन्द्र हो तो भूकंप, पांचवें में चन्द्रमा हो तो विजली गिरना, आठवें में शूल, दशवें में अशनि, अठारहवें में केतु, ३।५ में दण्ड, ९।१० में उल्का और २।७ में चन्द्रमा के होने पर निर्घात का पतन होता है ॥ ८८३ ॥

भादेकविंशतिमिताः कथितास्तु मोह-
निर्घातकम्पकुलिशाः परिवेषयुक्ताः।
एष्विन्दुगेषु न शुभं खलु कर्म कार्यं
सिद्धिं प्रयान्ति दहनानि विषातिशाठ्यम् ॥ ८८४ ॥

२१वें नक्षत्र में मोह, २२वें में निर्घात, २३वें में भूकंप, २४वें में वज्र और पच्चीसवें नक्षत्र में चन्द्रमा के होने पर परिवेष होता है। इसलिये इन उक्त चन्द्र नक्षत्रों में शुभ कार्य नहीं करना चाहिये और अग्नि, विष, अतिशाठ्य कर्मों की इनमें सिद्धि होती है ॥ ८८४ ॥

पुनः उपग्रह दोष ज्ञान

[1]भूकम्पः सूर्यभात्सप्तमर्क्षे विद्युच्च पञ्चमे।
शूलोऽष्टमे च नवमेऽशनिरष्टादशे ततः ॥ ८८५ ॥
केतुः पञ्चदशे दण्डं चोल्का एकोनविंशतिः।
निर्घातः पातसंज्ञं च ज्ञेयः स नवपञ्चमे ॥ ८८६ ॥
मोहनिर्घातकम्पश्च कुलिशं परिवेषकम्।
विज्ञेयाश्चैकविंशाख्यादारभ्य च यथाक्रमम् ॥ ८८७ ॥
चन्द्रयुक्तेऽशुभेष्वेषु शुभकर्म न कारयेत् ॥ ८८८ ॥

सूर्य के नक्षत्र से सातवें नक्षत्र में चन्द्रमा के होने पर भूकम्प, पाचवें में विद्युत्, ८वें में शूल, नवें में अशनि, १८वें में केतु, १५ वें में दण्ड, १९वें में उल्का, ९।५ में निर्घात पात, २१वें में मोह, २२वें में निर्घात, २३वें में कम्प, २४वें में वज्र और २५वें नक्षत्र में सूर्य के नक्षत्र से चन्द्रमा के होने पर परिवेष होता है। अतः उक्त चन्द्र नक्षत्रों में मांगलिक कार्य नहीं करना चाहिये ॥ ८८५–८८८ ॥

---

१. मु० चिं० ६ प्र० ६३ श्लो० पी० टी०।

ग्रन्थान्तर से उपग्रह दोष

विवाहपटले—

सूर्यभात्पञ्चमे ऋक्षं ज्ञेयं विद्युन्मुखाभिधम् ।
शूलं चाष्टमगं प्रोक्तं सन्निपातं चतुर्दशम् ॥ ८८९ ॥
केतुरष्टादशं प्रोक्तमुल्का चैकोनविंशतिः ।
द्वाविंशतिर्भूमिकम्पस्त्रयोविंशति वज्रकम् ॥ ८९० ॥
निर्घातस्तु चतुर्विशं उल्का चाष्ट उपग्रहाः ।

विवाहपटल में कहा है कि सूर्य के नक्षत्र से पाँचवें नक्षत्र की विद्युत् संज्ञा, आठवें की शूल, चौदहवें की सन्निपात, अठाहरवें की केतु, १९वें की उल्का, २२वें की भूमिकम्प, २३वें की वज्र, २४वें की निर्घात संज्ञा होती है। ये आठ उल्का उपग्रह मानी गई हैं ॥८८९-८९०½॥

इनका फल

विद्युत्पुत्रविनाशं च शूलं निर्दहते पतिम् ॥ ८९१ ॥
सम्यक् दृश्यदिनेऽशनिपातं पत्युर्विनाशं सदेवरे केतुः ।
द्रव्यविनाशं चोल्का परपुरुषरता करोति वज्राख्या ॥ ८९२ ॥
कम्पःस्थानविनाशं कुलसंहारश्च निर्घाते ॥ ८९३ ॥

विद्युत् पुत्र का विनाश करने वाली, शूल पति को नष्ट करने वाला, अशनिपात पति का विनाशक, केतु देवर को नष्ट करने वाला, उल्का धन का नाश करने वाली, वज्र पर पुरुष में आसक्ति करने वाला, भूकम्प स्थान को नष्ट करने वाला और निर्घात में कुल का संहार होता है ॥ ८९१–८९३ ॥

फलप्रदीपे—

विद्युत्पुत्रविनाशिनी विधवता शूलेऽशनिर्बन्धुहा
निर्घातेऽपि च कम्पते च नितरां कम्पे च केतौ क्षतिः ।
वज्रे वा परिवेषकेऽन्यनिरता निर्घातपाते मृति-
र्दण्डोल्का विगते भवेद्विधननी चैवं फलं संस्मृतम् ॥ ८९४ ॥
उपग्रहहतं धिष्ण्यं दम्पत्योरेकनाशनम् ॥ ८९५ ॥

फलप्रदीप में कहा है कि विद्युत्, पुत्र का नाश करने वाली, शूल में विधवा, अशनि में बान्धवों को नष्ट करने वाली, निर्घात व भूकम्प में निरन्तर भय से काँपने वाली, केतु में क्षति, वज्र वा परिवेष में अन्य में आसक्त, निर्घातपात में मृत्यु और दण्ड में कन्या धन से हीन होती है। उपग्रह से हत नक्षत्र वर-वधू में से एक का नाशक होता है ॥ ८९४–८९५ ॥

लत्ता आदि दोष का फल

चण्डेश्वरः—

लाते दरिद्री बहुदुःखपातो वेधे च वंध्या युतिपुंश्चली च ।
यामित्रदोषे अनपत्यता च पाणिग्रहे पंच भवन्तिदोषा ॥ ८९६ ॥

आचार्य चण्डेश्वर ने बताया है कि लत्ता में दरिद्री, पात में अधिक दुःख, वेध में वन्ध्या, युति में व्यभिचारिणी, यामित्र दोष में अनपत्यता ये विवाह में पाँच बड़े दोष होते हैं ।। ८९६ ।।

इसका परिहार ज्ञान

अथास्य परिहारः—

गर्गः—

[1]पूर्वाह्णे ग्रहदोषः स्यादपराह्णे तु मोहजः ।
उल्कायामर्धरात्रे तु कंपोहोरात्रदूषकः ।। ८९७ ।।

आचार्य गर्ग ने बताया है कि पूर्वाह्ण में ग्रह दोष, अपराह्ण में मोह जनित, अर्धरात्र में उल्का का और कंप का दोष १ एक दिन रात का होता है ।। ८९७ ।।

[2]कंपोल्कादंडमोहानां स्वरमासदशर्तवः ।
आदितो घटिकास्तेषु वर्जनीयाः परे शुभाः ।। ८९८ ।।

कम्प, उल्का, दण्ड, मोह की क्रम से ७।१२।१०।६ आदि की घटियों का त्याग करके आगे की घटियों में शुभ होता है ।।८९८ ।।

उपग्रह दोष का परिहार

कश्यपः —

[3]बाह्लिके कुरुदेशे च वर्जयेद्भमुपग्रहम् ।। ८९९ ।।

ऋषि कश्यप ने बताया है कि वाल्हीक व कुरु देश में उपग्रह नक्षत्र का शुभ कामों में त्याग करना चाहिये ।। ८९९ ।।

वाण विचार

अथ बाणविचारः—

मार्तंडः—

रविभुक्तांशकान्नन्दैर्भजेच्छेषं तु पंचकम् ।
वसुनेत्राब्धिषट्चन्द्रैर्विवाहे पंचकं त्यजेत् ।। ९०० ।।
रोगाग्निनृपचौरं च मृत्युदं लग्नपंचकम् ।। ९०१ ।।

मार्तण्ड में बताया है कि जिस दिन बाण का विचार करना हो उस दिन सूर्य संक्रान्ति के भुक्त अंशों में नौ का भाग देने पर ८ शेष में रोग, २ में अग्नि, ४ में राज, ६ में चोर और १ शेष में मृत्युवाण होता है ।। ९००—९०१ ।।

भिन्न प्रकार से वाण का आनयन

फलप्रदीपे—

[4]गततिथियुतलग्नं पंचधा कर्मभूमौ तिथिरविदशनागांभोधिभिर्युक्क्रमेण ।
नवहृत इषुशेषे शोभने वर्जनीयः रुगनलनृपचौरं मृत्युदं पंचकं स्यात् ।।९०२।।

---

१. ज्यो. नि. ४८ पृ. २ श्लो. । २. ज्यो. नि. ४८ पृ. ३ श्लो. ।
३. मु. चि. ६ प्र. ६३ श्लो. पी. टी. । ४. ज्यो. नि. ७७ पृ. १ श्लो. ।

फलप्रदीप में बताया है कि जिस दिन बाण जानने की इच्छा हो उस दिन शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से गत तिथि संख्या जानकर उसमें लग्न को जोड़ देने के बाद ५ स्थानों में स्थापित करके १५।१२।१०।८।४ को जोड़कर ९ का भाग देने पर प्रथम स्थान में ५ शेष हो तो रोग बाण, दूसरे में अग्निबाण, तीसरे में राज, चौथे में चोर और पाँचवें स्थान में ५ शेष मिलने पर मृत्युवाण होता है। इनका शुभ कार्यों में त्याग करना चाहिये ॥ ९०२ ॥

विवाहप्रदीपे—

धार्या तिथिः सूर्यदशाष्टवेदाः संक्रांतितो भुक्तदिनैश्च युक्ताः।
ग्रहैर्विभक्ता यदि पंचकं स्याद्रोगादिवह्निर्नृपचोरमृत्युः ॥९०३॥

विवाह प्रदीप में बताया गया है कि सूर्य की संक्रान्ति से भुक्त अंश जानकर उन्हें ५ स्थानों में स्थापित करके क्रम से १५।१२।१०।८।४ को जोड़कर ९ का भाग देने पर प्रथम स्थान में ५ शेष होने पर रोग, दूसरे में ५ शेष हो तो अग्नि, तीसरे में राज, चौथे में चोर और ५ वें स्थान में ५ शेष मिले तो मृत्युबाण होता है ॥ ९०३ ॥

वार वश बाण त्याग

[1]रवौ रोगं कुजे वह्निः शनौ च नृपपंचगम्।
वर्ज्यं पुनः कुजे चौरं बुधवारे च मृत्युदम् ॥ ९०४ ॥

रविवार में रोग का, मंगलवार में अग्नि का, शनिवार में राज का, पुनः मंगल में चोर का, बुधवार में मृत्युवाण का त्याग करना चाहिये ॥ ९०४ ॥

[2]रोगं चौरं त्यजेद्रात्रौ दिवा राजाग्निपंचकम्।
उभयोः संध्ययोर्मृत्युमन्यकाले न निंदितम् ॥ ९०५ ॥

रोग व चोर का रात में, राज व अग्नि का दिन में और दोनों सन्ध्याओं में मृत्युवाण का त्याग करना और अन्य समय में निन्दित निन्दित नहीं होता है ॥९०५॥

रोगं मृत्युं सदा त्याज्यं संध्ययोर्वह्निकं जनैः।
तत्रापि यत्र लग्नं चेद्‌बलाढ्यं तत्र निष्फलम् ॥ ९०६ ॥

रोग व मृत्युवाण का सदा और अग्नि का सन्ध्याओं में त्याग करना चाहिए तथा लग्न के बली होने पर बाण निष्फल होता है ॥ ९०६ ॥

[3]नृपाख्यं नृपसेवायां गृहगोपाग्निपंचकम्।
याने चौरं व्रते रोगं त्यजेन्मृत्युं करग्रहे ॥ ९०७ ॥

राजकीय सेवा में राजबाण का, घर के आच्छादन में अग्नि बाण का, यात्रा में चोर बाण का, व्रत में रोग बाण का, विवाह में मृत्यु बाण का त्याग करना चाहिये ॥९०७॥

१. मु. चि. ६ प्र. ७४ श्लो. पी. टी.। २. मु. चि. ६ प्र. ७४ श्लो. पी. टी.।
३. ज्यो. नि. ७८ पृ. ६ श्लो.।

गृहगोपेऽग्निकं त्याज्यं विवाहे मृत्युपञ्चकम् ।
नृपसेवा व्रते याने नृपचौरहरं क्रमात् ॥ ९०८ ॥

घर के ढकने में अग्नि का, विवाह में मृत्यु का, राजकीय सेवा में राज का, व्रत में चोर का और यात्रा में मृत्युवाण का त्याग करना चाहिये ॥ ९०८ ॥

वास्तुराजवल्लभे—
व्रतोद्वाहे गमे सेव्यां गृहस्याच्छादनेपि च ।
रोगं मृत्युहरं राज्यमग्निबाणं यथाक्रमम् ॥ ९०९ ॥

वास्तुराजवल्लभ में बताया है कि व्रतवन्ध में रोगबाण का, विवाह में मृत्यु का, यात्रा में चोर बाण का, राजकीय सेवा में राज बाण का और गृहाच्छादन में अग्नि बाण का त्याग करना चाहिये ॥ ९०९ ॥

यात्रायां चौरबाणं तु व्रते रोगं त्यजेद्बुधः ।
विवाहे मृत्युबाणं च नृपाख्यं नृपसेवया ॥ ९१० ॥
गृहस्याच्छादने वह्नि वर्जयेत्सर्वदा बुधः ॥ ९११ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि यात्रा में चोर बाण, व्रत में रोग का, विवाह में मृत्यु का, राजकीय सेवा में नृप का और गृहाच्छादन में सदा बुद्धिमान् को अग्नि बाण का त्याग करना चाहिये ॥ ९१०–९११ ॥

बाण का आनयन

निबंधसारे—
ये गता दिनसंक्रांतौ लग्नमात्रेण संयुतम् ।
नवभिश्च हरेद्भागं शेषं पंचक उच्यते ॥ ९१२ ॥
एके मृत्युर्द्वये वह्निश्चतुर्थे नृपपंचकम् ।
षष्ठे चौरोऽष्टमे रोगं पंचाद्रिनवमे शुभम् ॥ ९१३ ॥

निबन्धसार में कहा है कि जिस दिन बाण का आनयन करना हो, उस दिन सूर्य की संक्रान्ति के जितने अंश मुक्त हुए हों, उनमें लग्न को जोड़कर ९ का भाग देने पर एक शेष में मृत्यु, दो में अग्नि, चार में नृपवाण, ६ में चोर, ८ में रोग बाण होता है। तथा ५।७।९ शेष में शुभ होता है ॥ ९१२–९१३ ॥

वार वश बाण की अशुभता

नार्कारवारे यदि रोगपंचकं सोमेषु राज्यं क्षितिजे च वह्निः ।
बुधेषु मृत्युः सुरमंत्रिचौरे नाशोभनं अन्यदिने शुभश्च ॥९१४॥

सूर्य और भौमवार में रोगबाण, सोमवार में नृप, मंगल में अग्नि, बुध में मृत्यु, गुरुवार में चोर बाण शुभ नहीं होता है और अन्य वारों में शुभ होता है ॥ ९१४ ॥

लत्तादि का विनाश

लत्तां हंति रविस्तथार्कतनयः पातं कुजो वेधजं
यामित्रं च सुखोदितं भृगुसुतो युक्तस्तथोपग्रहान् ।
राहुश्चार्गलकं निहंति च बुधो दग्धं तथा पंचकं
सोमं पापभवं च कालकुलिका रेखाप्रदः सर्वदा ॥ ९१५ ॥

बली सूर्य लत्ता का, शनि पात का, मंगल वेध जन्य दोष का, सुखोदित शुक्र यामित्र व उपग्रह का, राहु एकार्गल का, बुध दग्ध का, सोम पापजन्य काल कुलिक का और रेखा प्रदग्रह समस्त दोषों का विनाशक होता है ॥ ९१५ ॥

देशवश परिहार

अपवादः—

सौराष्ट्रशाल्वदेशेषु लातितं च विवर्जयेत् ।
कलिंगवङ्गदेशेषु पातितं भमुपग्रहम् ।
बाह्लिके कुरुदेशे वा अन्यदेशे न दूषणम् ॥ ९१६ ॥

सौराष्ट्र व शाल्व में लत्ता का, कलिङ्ग व वङ्गाल में पात का व वाल्हीक व कुरु देश में उपग्रह दोष का त्याग करना चाहिये । अन्य देश में दोष नहीं होता है ॥९१६॥

लत्ता मागधमंडले प्रियतमे पातं तथा कोशले
गौरी सुन्दरि पाणिपीडनविधौ चैकार्गलं वर्जितम् ।
सर्वत्रापि विनाशनं प्रकुरुते धीराश्च वेधो बली
यामित्रं किल मध्यदेशविषये कुब्जे युतिर्दोषकः ॥ ९१७ ॥

मागध मण्डल में लत्ता का, कोशल में पात का, विवाह में एकार्गल का त्याग करना चाहिये । सर्वत्र वेध का, मध्य देश में यामित्र का और कान्यकुब्ज में युति दोष का त्याग करना चाहिये ॥ ९१७ ॥

विवाह में वज्रपञ्चक ज्ञान

अथ विवाहे वज्रपंचकम्—

[1]तिथिवारं च नक्षत्रं नवभिश्च समन्वितम् ।
सप्तभिस्तु हरेद्भागं शेषांके फलमादिशेत् ॥ ९१८ ॥
त्रिशेषे तु जलं विद्यात् पंचशेषे प्रभंजनः ।
सप्तशेषे वज्रपातो ज्ञेयं वज्रस्य लक्षणम् ॥ ९१९ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि तिथि, वार, नक्षत्र संख्या में ९ जोड़कर सात का भाग देने से ३ शेष में जल, ५ में वायु, ७ शेष में वज्रपात होता है । यह वज्र का लक्षण होता है ॥ ९१८–९१९ ॥

---

१. मु. चि. ६ प्र. ७८ श्लो. पी. टी. ।

पुनः ग्रन्थान्तर से ज्ञान

अन्यः—

सूर्यात्पंचदशं ऋक्षं अष्टादशं च राहुणा।
त्रयोविंशति केतुश्च चतुर्विंशति भूसुतः ॥ ९२० ॥
पंचविंशतिमंदश्च विवाहे वज्रपंचकम् ॥ ९२१ ॥

अन्य आचार्य ने बताया है कि सूर्य के नक्षत्र से १५ वाँ सूर्य का १८वाँ राहु का, २३वाँ केतु का, २४वाँ भौम का और २५वाँ शनि का विवाह में वज्रपंचक होता है ॥ ९२०–९२१ ॥

इसका फल

अस्य फलम्—

व्याधिः सूर्येग्निराहौ च केतौ नृपभयं तथा।
भौमे चौरभयं विद्यान्मरणं च शनैश्चरे ॥ ९२२ ॥

सूर्य में व्याधि, राहु में अग्नि, केतु में राजभय, भौम में चोर भय और शनि के नक्षत्र में मृत्यु होती है ॥ ९२२ ॥

पुनः वज्रपञ्चक का ज्ञान

निबंधे—

यद्दिने पाणिग्रहणीया तिथिवारसमन्वितः।
गृहं च योजयेत्प्राप्ते मुनिर्भिर्भागमाहरेत् ॥ ९२३ ॥
जले त्रीणि पंचमे वायुः शून्ये मृत्युसमाचरेत्।
शेषाश्च शुभदाः प्रोक्ता उक्ताश्च पूर्वसूरिभिः ॥ ९२४ ॥

जिस दिन विवाह हो उस दिन की तिथि, वार संख्या में ९ जोड़कर ७ का भाग देने से तीन शेष में जल, पाँच में वायु, शून्य में मृत्यु होती है और अवशिष्ट शेष शुभ होते हैं। ऐसा पूर्वाचार्यों ने कहा है ॥ ९२३–९२४ ॥

दम्पति का अलग पञ्चक भाव

अथ दंपत्योः पृथक् पंचकभावः।

निबंधे—

दंपत्योर्नामनक्षत्रं तत्रादौ गुणितं क्रमात्।
नक्षत्रैकं विवाहैकं दिनयुक्तं प्रकल्पयेत् ॥ ९२५ ॥
गुणितं पंच बाणादौ कन्या कन्यां वरं वरम् ॥ ९२६ ॥
स्वनामऋक्षं दिनऋक्षकं च संक्रांतिमादौ दिनयोजिता च।
शरैर्विमिश्रं नवभिश्च भागं वरं वरं पश्यति कन्यका च ॥ ९२७ ॥

निबन्ध में बताया है कि वर, कन्या की नाम नक्षत्र संख्या में विवाह नक्षत्र संख्या व दिन संख्या को जोड़कर पाँच से गुणा करने पर कन्या का अल्प व वर का अधिक उत्तम होता है। वा वर व स्त्री की नाम नक्षत्र संख्या में विवाह नक्षत्र संख्या और संक्रान्ति के गत अंश व ५ जोड़कर ९ का भाग देने से शेष ५ न होने पर कन्या व वर परस्पर प्रेम से देखते हैं ॥ ९२५–९२७ ॥

उदयास्त शुद्धि

अथोदयास्तशुद्धिः—

वसिष्ठः—

[1]इष्टोदयांशो निजपत्यदृष्टे वरस्य मृत्युस्तनुसंयुते च।
अस्तांशकेप्येवमदृष्टयुक्ते स्वस्वामिना नाशमुपैति कन्या ॥ ९२८ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि लग्न का नवांश यदि अपने पति से अदृष्ट हो तो वर की मृत्यु तथा अस्तांशक लग्न में अपने स्वामियों से अदृष्ट, अयुक्त हो तो कन्या की मृत्यु होती है ॥ ९२८ ॥

नारदः—

[2]लग्नलग्नांशकौ स्वस्वपतिना वीक्षितौ युतौ।
न चेद्वान्योन्यपतिना शुभमित्रेण वा तथा ॥ ९२९ ॥
वरस्य मृत्युः स्यात्ताभ्यां सप्तसप्तोदयांशके।
एवं तौ वीक्षितयुतौ मृत्युर्वध्वाः करग्रहे ॥ ९३० ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि लग्न व लग्न का नवांश अपने स्वामियों से दृष्ट व युक्त न हों वा अन्योन्य पति से या शुभ यामित्र ग्रहों से दृष्ट न हों तो वर की मृत्यु और सप्तम व सप्तमस्थ नवांश आपस में परस्पर दृष्ट या युत हों तो कन्या की मृत्यु होती है ॥ ९२९–९३० ॥

वराहः—

[3]शुद्धिस्त्विह स्यान्न यदोदयांशो लग्ने न चास्तांशमुपैति सिद्धिम्।
तदा सुहृत्सौम्यनिरीक्षितो यः शुभाय स स्यात्प्रवदंति संतः ॥९३१॥

आचार्य वराह ने बताया है कि जब लग्न का नवांश लग्न में या सातवें भाव में प्राप्त होता है तो शुद्धि नहीं होती है यदि मित्र या शुभ ग्रह से दृष्ट होता है तो शुभ होता है ऐसा विद्वानों का कथन है ॥ ९३१ ॥

त्रिधा शुद्धि ज्ञान

कश्यपः—

[4]राश्यंशौ मित्रसौम्येन वीक्षितौ वाप्यसंयुतौ।
उदयास्तांशयोः शुद्धिस्त्रिविधा मंगलप्रदा ॥ ९३२ ॥

---

१. मु. चि. ६ प्र. ७६ श्लो. पी. टी.। २. मु. चि. ६ प्र. ७७ श्लो. पी. टी.।
३. मु. चि. ६ प्र. ७८ श्लो. पी. टी.। ४. मु. चि. ६ प्र. ७८ श्लो. पी. टी.।

ऋषि कश्यप ने बताया है कि लग्नस्थ व सप्तमस्थ नवांशेश अपने मित्र या शुभग्रह से दृष्ट वा अयुक्त हों तो मंगलदायिनी तीन प्रकार की शुद्धि होती है ॥ ९३२ ॥

पुनः उदयास्त शुद्धि

श्रीपतिः —

उदयगतनवांशः स्वेशदृष्टो युतो वा
न भवति यदि मृत्युः स्यात्तदानीं वरस्य।
परिणयसमये चैवमस्तोदयांशः
स्वपतिसहितदृष्ट्या मृत्युकारी च बध्वा ॥ ९३३ ॥

आचार्य श्रीपतिजी ने बताया है कि विवाह लग्नस्थ नवांश अपने स्वामी से दृष्ट वा युक्त न होने पर वर का मरण और इसी प्रकार विवाह समय की लग्न से सप्तमस्थ नवांश अपने स्वामी से अदृष्ट या अयुक्त होने पर कन्या का मरण होता है ॥ ९३३ ॥

लल्लः —

लग्नाधिमित्रलग्नं पश्यति चेत्तदा तदंशको दृष्टः।
तस्यांशकस्य पत्या यत्र क्वचिन्न स्थितेनापि ॥ ९३४ ॥

आचार्य लल्ल ने बताया है कि लग्नाधिमित्र लग्न को उसका नवांशेश देखता हो तथा उस नवांशेश से जहाँ कहीं भी स्थिर होकर दृष्ट न हो तो उक्त फल होता है ॥ ९३४ ॥

सूर्य संक्रान्ति दोष ज्ञान

अथ सूर्यसंक्रमणाख्यदोषः—

शौनकः —

[1]अयनद्वये समूढा भर्तारं नाभिनंदते नारी।
विषुवद्द्वयेपि विधवा षडशीतिमुखे च सा म्रियते ॥ ९३५ ॥
विष्णुपदेषु जीविता कन्या विकलेंद्रिया व्यतीपाते।
वैधृतिविष्ट्योर्भ्रष्टा सुभगा शेषेषु करणेषु ॥ ९३६ ॥

ऋषि शौनक ने बताया है कि दोनों अयनों (दक्षिण कर्क, उत्तर मकर) की सूर्य संक्रान्ति में विवाह करने पर कन्या पति की प्रशंसा न करने वाली, विषुवद्वय में विधवा, षडशीति में मरण पाने वाली, विष्णु पद में जीवित, व्यतीपात में इन्द्रियों से विफल, वैधृति व भद्रा में भ्रष्ट और शेष करणों में सुभगा होती है ॥ ९३५-९३६ ॥

समस्त ग्रहों की संक्रान्ति घटी का त्याग

सर्वग्रहाणां संक्रांतिघटीवर्ज्यम्।

[2]उक्तं च रामदैवज्ञेन—

देवद्वयंकर्तवोष्टाष्टौ नाड्योंका खनृपाः क्रमात्।
वर्ज्याः संक्रमणेर्कादेः प्रायोर्कस्यातिनिंदिताः ॥ ९३७ ॥

---

१. मु. चि. ६ प्र. ७९ श्लो. पी. टी.। २. मु. चि. ६ प्र. ८० श्लो.।

मुहूर्तचिन्तामणि में बताया है कि सूर्य संक्रान्ति की पूर्वापर की ३३ घटी, चन्द्र संक्रान्ति की पूर्वापर की २ घटी, मंगल की ९, बुध की ६, गुरु की ८८, शुक्र की ९ और शनि की पूर्वापर की १६० घटियों का शुभ कर्म में त्याग करना चाहिये ॥९३७॥

अन्ध, बधिर, पंगु राशि ज्ञान

अथपंग्वन्धादिलग्नम्—

वसिष्ठः—

[1]मेषादेरन्धकं षट्कं चत्वारो वधिराः स्मृताः ।
द्वौ पंगू चेति विज्ञेयावित्येतद्राशिलक्षणम् ॥ ९३८ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि मेष से ६ राशि (कन्या) तक अर्थात् मेष-वृष-मिथुन-कर्क-सिंह कन्या की अन्ध संज्ञा, तुला-वृश्चिक-धनु-मकर की बधिर संज्ञा और कुंभ मीन की पंगु संज्ञा होती है ॥ ९३८ ॥

दिवान्ध-रात्र्यन्ध राशि

मेषो वृषो मृगेंद्रश्च दिवसेंधाः प्रकीर्तिताः ।
नृयुक्कर्कटकन्याश्च रात्रावंधाः प्रकीर्तिताः ॥ ९३९ ॥

मेष-वृष सिंह राशि दिन में, मिथुन-कर्क-कन्या राशि रात्रि में अन्ध होती है॥९३९॥

बधिर राशि ज्ञान

तुला च वृश्चिकश्चैव दिवसे बधिरौ तथा ।
धनुश्च मकरश्चैव बधिरौ निशि कीर्तितौ ॥ ९४० ॥

तुला-वृश्चिक दिन में और धनु-मकर राशि रात्रि में बधिर होती है ॥९४०॥

पंगु राशि ज्ञान

कुंभमीनौ च पंगू द्वौ दिवारात्रौ यथाक्रमम् ॥ ९४१ ॥

कुम्भ राशि दिन में और मीन राशि रात में पंगु होती है ॥ ९४१ ॥

इसका परिहार

अथास्य परिहारः—

वसिष्ठः—

मासशून्याह्वयास्तारा राशयो बधिरादयः ।
स्वामिजीवबुधैर्दृष्टा मुक्ता वा नैव दोषदाः ॥ ९४२ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि मास शून्य तारा और बधिरादि राशियों का दोष, अपने स्वामी या गुरु या बुध से दृष्ट या युक्त होने पर नहीं होता है ॥ ९४२ ॥

---

१. मु. चि. ६ प्र. ८० श्लो. पी. टी. ।

पुनः परिहार ज्ञान

कश्यपः—

काणपंग्वन्धबधिरा मासशून्याश्च राशयः।
[1]काणान्धा बधिरोद्भूता दग्धलग्नतिथेर्भवाः ।। ९४३ ।।
ते दोषा नाशमायान्ति केन्द्रसंस्थे शुभग्रहे ।। ९४४ ।।

ऋषि कश्यप ने बताया है कि काण, पंगु, अन्ध, बधिर राशि, मास शून्य राशि, काणान्ध, बधिरोद्भूत, दग्धलग्न तिथि जन्य दोष का केन्द्र में शुभ ग्रह के रहने पर विनाश होता है ।। ९४३-९४४ ।।

अब्द आदिदोषों का परिहार

रामः—

[2]अब्दायनर्तुतिथिमासभपक्षदग्धाः
तिथ्यन्धकाणबधिराङ्गमुखाश्च दोषाः।
नश्यन्ति विद्गुरुसितेष्विह केन्द्रकोणे
तद्वच्च पापविधुयुक्तनवांशदोषः ।। ९४५ ।।

जब कि मांगलिक लग्न से बुध, गुरु, शुक्र केन्द्र में या त्रिकोण में होते हैं तो वर्ष, अयन, ऋतु, तिथि, मास, नक्षत्र, पक्ष (तेरह दिनात्मक) दग्धतिथि, अन्ध, काण, बधिरादिक सभी दोष दूर हो जाते हैं तथा पापग्रह और चन्द्रमा से युक्त लग्न व लग्न नवांश दोष का भी विनाश होता है ।। ९४५ ।।

पुनः अपवाद ज्ञान

बृहस्पतिः—

केन्द्रत्रिकोणयोः सौम्यः बलवांश्च स्ववर्गगः।
मासशून्यकृतं दोषं राशिशून्यांश्च नाशयेत् ।। ९४६ ।।

गुरु बृहस्पति ने बताया है कि केन्द्र या त्रिकोण में बली शुभ ग्रह अपने वर्ग में स्थित होने पर मास शून्य व राशि शून्य दोष का विनाश करता है ।। ९४६ ।।

अष्टम लग्न राशि दोष ज्ञान

अथाष्टमलग्नराशिदोषः—

नारदः—

[3]दम्पत्योरष्टमं लग्नं त्वष्टमो राशिरेव च।
यदि लग्नगतः सोपि दम्पत्योर्निधनप्रदः ।। ९४७ ।।

ऋषि नारदजी ने बताया है कि वर-कन्या की जन्म राशि से आठवीं राशि लग्न में विवाह मरण प्रद होता है ।। ९४७ ।।

---

१. मु. चि. ६ प्र. ८९ श्लो. पी. टी.। २. मु. चि. ६ प्र. ८९ श्लो.।
३. मु. चि. ६ प्र. ४६ श्लो. पी. टी.।

स राशिः शुभयुक्तोपि लग्नं वा शुभसंयुतम् ।
लग्नं विवर्जयेद्यत्नात्तदंशाश्च तदीश्वराः ॥ ९४८ ॥

यदि वह राशि शुभ से युक्त हो तो भी या लग्न शुभ ग्रह से युक्त हो तो भी उसका उसके नवांश व अधिप का त्याग करना चाहिये ॥ ९४८ ॥

पराशरः—
संत्यजेन्नैधनं लग्नं दम्पत्योर्जन्मलग्नतः ।
निधनेशश्च यत्रास्ति तं राशिं वर्जयेत्सुधीः ॥ ९४९ ॥

ऋषि पराशर ने बताया है कि वर वधू की जन्मलग्न से आठवीं राशि लग्न का तथा अष्टमेश जिस राशि में हो उस राशि की लग्न का विवाह में त्याग करना चाहिये ॥ ९४९ ॥

जन्मराश्यंशतो वापि जन्मलग्नांशतोपि वा ।
अष्टमौ राशिलग्नांशौ त्याज्यौ शुभफलेप्सुभिः ॥ ९५० ॥

जन्म राशि नवांश से वा जन्मलग्न के नवांश से अष्टम राशि लग्न व नवांश राशि लग्न का शुभ की इच्छा करने वाले को त्याग करना चाहिये ॥९५०॥

गर्गः—
लग्नादि नैधने त्याज्यं बलयुक्तं यदा भवेत् ।
बलहीनं च न त्याज्यमुक्तदोषसमर्थतः ॥ ९५१ ॥

आचार्य गर्ग ने बताया है कि जन्म लग्न से अष्टम राशि लग्न बली हो तो त्याग करना चाहिये ॥ ९५१ ॥

कश्यपः—
दम्पत्योरष्टमे लग्ने राशौ वापि तदंशके ।
तदीशे वा लग्नगते तयोर्मृत्युर्न संशयः ॥ ९५२ ॥

ऋषि कश्यप ने बताया है कि दम्पति के अष्टम लग्न व राशि वा उसके नवांश की लग्न का वा नवांश लग्नगत हो तो दोनों की निःसंदेह मृत्यु होती है ॥ ९५२ ॥

अंश शुद्धि ज्ञान

[1]केशवः—
जननलग्नभयोर्मृतिराशितुर्मृतिगतस्य च राशिनवांशकाः ।
तनुगता यदि तत्तनुसे वधूरतिलका तिलकाय जलाञ्जलिः ॥ ९५३ ॥

विवाह वृन्दावन में कहा है कि जन्मलग्न व जन्म राशि से अष्टम स्थान के स्वामी ग्रह या कोई ग्रह स्थित हो तो इनमें से एक का नवांश यदि विवाह लग्न में हो तो कन्या विधवा होती है ॥ ९५३ ॥

---

१. वि. वृ. ४ अ. १५ श्लो. ।

अष्टम लग्न का त्याग

[1]सगुणं चाष्टमं लग्नं त्याज्यमंशं तथाष्टमम् ।
जन्मभाज्जन्मलग्नाच्च मृत्युदं लग्नमष्टमम् ॥ ९५४ ॥

गुणों से युक्त होने पर भी अष्टम लग्न व नवांश का त्याग करना चाहिये । क्योंकि जन्म राशि व जन्मलग्न से अष्टम राशि मृत्यु दाता होती है ॥ ९५४ ॥

विशेष—ज्योतिर्निबन्ध में 'जन्मर्क्षजन्मलग्नाभ्यां रन्ध्रेशावष्टमौ च यौ' यह श्लोक का उत्तरार्ध है ॥ ९५४ ॥

अशुभ लग्न

लग्नाधिनाथश्च नवांशनाथः षष्ठाष्टमश्चाथ विवाहकाले ।
स्वप्नेपि नो पश्यति चात्मनः सुखं विर्चाचतं कज्जलकुङ्कुमेन ॥९५५॥

विवाह लग्न का स्वामी व नवांशेश जब ६।८ में होते हैं तो काले कुकुम से विशेष चर्चित होने के नाते स्वप्न में भी आत्मा को सुखी नहीं देखता है ॥ ९५५ ॥

फलप्रदीपे—
त्यजन्ति वै नैधनभं तथान्ये तदंशकं चोभयमेव चान्ये ।
तस्मात्स्वजन्मर्क्षविलग्नयोश्च लग्नांशगौ नैधनगौ विवर्ज्यौ ॥९५६॥

फलप्रदीप में कहा है कि कोई आचार्य अष्टमलग्न का और कोई अष्टमस्थ नवांश का व कोई दोनों का त्याग बताते है । इसलिये जन्मलग्न व जन्म राशि से अष्टम लग्न व अंश का त्याग करना चाहिये ॥ ९५६ ॥

यस्याष्टलग्ने तदधीश्वरे वा राशौ तदीशेथ विलग्नगे वा ।
स मृत्युमाप्नोति तदा मनोजस्त्रिनेत्रभालाङ्ककवह्निनैव ॥ ९५७ ॥

जिसके अष्टमलग्न में वा अष्टमेश राशि में वा उसका स्वामी लग्न में होता है तो वह जैसे महादेवजी के तीसरे नेत्र रूपी अग्नि से कामदेव की मृत्यु हुई थी वैसे ही मृत्यु पाने वाला होता है ॥ ९५७ ॥

अष्टम लग्न का त्याग

केशवः—
जन्मोदयर्क्षान्निधनं विलग्नं तदीश्वरेणोपगतोथ वा स्यात् ।
कृते विवाहोभयमृत्युकारी त्रातुं विधातापि न तं समर्थः ॥९५८॥

आचार्य केशव ने बताया है कि जन्म लग्न से आठवीं लग्न वा अष्टमेश भी लग्न में होने पर विवाह में वर वधू की मृत्यु होती है जिसे ब्रह्मा भी रोकने में समर्थ नहीं होता है ॥ ९५८ ॥

---

१. ज्यो. नि. १५ १५४ पृ. २ श्लो. ।

जन्मकालिक ग्रहवश दोष का ज्ञान

[1]अनुजनुर्मृतिगो मृतिपश्च यः
स तनुगस्तनुते न शिवं क्वचित्।
इति विविक्तिरियं फलदा सदा
स इह सिद्धचति चेत्समयः स्फुटः ॥ ९५९ ॥

विवाह वृन्दावन में बताया है कि जन्माङ्ग से आठवें जो राशि व अष्टमेश हो वह यदि विवाह की लग्न में हो तो कभी भी शुभदायक नहीं होता है। यह विचार जन्म-कालीन स्थिति से होने के नाते सर्वदा फलदायी होता है। यह तभी सिद्ध होता है जब जन्मकाल व विवाह काल समान घटियों में होता है ॥ ९५९ ॥

इसका परिहार

अथास्य परिहारमाह—

कश्यपः—
जन्मेशाष्टमलग्नेशौ मिथो मित्रे व्यवस्थितौ।
जन्मराश्योष्टमर्क्षोत्थदोषो नश्यति भावतः ॥ ९६० ॥

ऋषि कश्यपजी ने बताया है कि जन्म राशि व जन्म लग्न से अष्टम राशि के स्वामियों में मित्रता होने पर अष्टम जन्य दोष का भावना से विनाश होता है ॥९६०॥

अष्टम लग्न का दोष व परिहार

[2]केशवः—
व्यलिवृषं जननर्क्षविलग्नयोर्भवनमष्टममभ्युदितं त्यजेत्।
स हि पुलस्त्यमतेन तदीशता तनुसमेति समेति न दूषणम् ॥९६१॥

विवाह वृन्दावन में कहा है कि जन्म राशि व जन्म लग्न से आठवीं राशि का विवाह लग्न में वृश्चिक वृष को छोड़कर त्याग करना चाहिये। क्योंकि जो कि इनका स्वामी होगा, वहीं अष्टम का अधिप होता है। इसलिये पुलस्त्य ऋषि के मत में दोषाभाव होता है ॥ ९६१ ॥

अष्टम लग्न दोष परिहार

[3]झषकुलीरवृषालिमृगाङ्गना जननराशिविलग्नगृहाष्टमः।
शुभफला भृगुणा कथितास्तयोरधिपतिः सुहृदो हि परस्परम् ॥९६२॥

मीन, कर्क, वृष, वृश्चिक, मकर, कन्या राशि जन्म राशि व जन्मलग्न से अष्टम होने पर मित्र होने के कारण शुभफल दाता होती है ॥ ९६२ ॥

---

१. वि. वृ. ४ अ. २० श्लो.।
२. वि. वृ. ४ अ. १६ श्लो.।
३. वि. वृ. ४ अ १६ श्लो. टी. तथा मु. चिं. ६ प्र. ४७ श्लो. पी. टी.।

गुरुः—

[1]लग्नादष्टमराशीशः केन्द्रगः शुभवीक्षितः ।
यद्यष्टमगतस्योक्तदोषमाशु व्यपोहति ।। ९६३ ।।

गुरु ने बताया है कि जब कि जन्म लग्न से अष्टम राशि का स्वामी केन्द्र में शुभ ग्रह से दृष्ट होता है तो अष्टम जन्य दोष का शीघ्र विनाश करता है ।। ९६३ ।।

[2]जन्मेशाष्टमराशीशे मिथो मित्रे यदा तदा ।
अष्टमर्क्षोत्थसम्भूतो दोषो नश्यति भावतः ।। ९६४ ।।

जब कि जन्म राशीश व अष्टम राशीश दोनों मित्र होते हैं तो भाव से अष्टम राशि जन्य दोष का विनाश होता है ।। ९६४ ।।

जन्मेशमृत्युराशीशौ मिथो मित्रे यदा तदा ।
जन्माष्टमर्क्षे चन्द्रस्य दोषो भङ्गत्वमाव्रजेत् ।। ९६५ ।।

जबकि जन्म राशीश और मृत्यु राशीश परस्पर में मित्र होते हैं तो जन्म से आठवीं राशि में चन्द्र के दोष का भङ्ग होता है ।। ९६५ ।।

[3]रन्ध्रेशः स्वशुभांशस्थः तुङ्गस्वक्षेत्रमित्रगः ।
अष्टमस्थानदोषो हि विनश्यति न संशयः ।। ९६६ ।।

जबकि अष्टमेश शुभग्रह के नवांश में या उच्चराशि या स्वराशि या मित्र की राशि में होता है तो निश्चय ही अष्टम स्थानस्थ दोष का विनाश होता है ।। ९६६ ।।

अयं निषेधो जन्मेशरन्ध्रेशौ वैरिणौ यदा ।
परस्परं तौ मित्रे चेत्तदा दुष्टफलं न हि ।। ९६७ ।।

यह निषेध जन्म राशीश व रन्ध्रेश के शत्रु होने पर होता है और परस्पर दोनों मित्र होने पर दूषित फल का अभाव होता है ।। ९६७ ।।

अष्टम लग्न दोष व परिहार

[4]रामः—

जन्मलग्नभयोर्मृत्युः राशौ नेष्टः करग्रहः ।
एकाधिपत्ये राशीशे मैत्रे वा नैव दोषकृत् ।। ९६८ ।।

मुहूर्तचिन्तामणि में बताया है कि वर-वधू की जन्मराशि व जन्मलग्न से आठवीं राशि लग्न में विवाह शुभ नहीं होता किन्तु जन्म लग्न व जन्म राशि का स्वामी ग्रह ही वैवाहिक लग्न का भी अधिपति हो वा दोनों में मित्रता हो तो अष्टम लग्न का दोष नहीं होता है ।। ९६८ ।।

---

१. मु. चि. ६ प्र. ४७ श्लो. पी. टी. । २. मु. चि. ६ प्र. ४६ श्लो. पी. टी. ।
३. मु. चि. ६ प्र. ४७ श्लो. पी. टी. । ४. मु. चि. ६ प्र. ४६ श्लो. ।

वसिष्ठः—

न दोषोष्टमलग्नस्य यदि जन्मेशरन्ध्रगो।
सुहृदौ चेत्तदा कार्यं मङ्गलं मुनयो विदुः ॥ ९६९ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि यदि जन्मेश व रन्ध्रग ग्रह दोनों मित्र हों तो अष्टम लग्न का दोष नहीं होता, इसलिये मांगलिक कार्य करना चाहिये ॥ ९६९ ॥

मुहूर्तदर्पणे—

स्वकीयजन्माष्टमराशिमैत्र्यां न चापि जन्माष्टमराशिदोषः।
जन्मेशकर्मेश्वरमित्रभावः क्षिणोति वैनाशिकदोषमुत्थम् ॥ ९७० ॥

मुहूर्त दर्पण में बताया है कि स्वजन्म राशि व अष्टम में परस्पर मित्रता होने पर अष्टम राशि लग्न का दोष नहीं होता और जन्म राशीश व दशमेश आपस में मित्र हों तो उत्थित वैनाशिक दोष का क्षय होता है ॥ ९७० ॥

चतुर्थ द्वादश राशि दोष

अथ चतुर्थद्वादशराशिदोषः—

कश्यपः—

[1]तथैव द्वादशे लग्ने तदंशे वा तदीश्वरे।
विवाहलग्नगे नैस्व नित्यं स्यात्कलहन्द्वयोः ॥ ९७१ ॥

ऋषि कश्यपजी ने बताया है कि जन्म राशि, जन्म लग्न से १२वीं राशि बारहवें की नवांश राशि या बारहवें भाव का स्वामी जब विवाह लग्न में होता है तो वर-वधू निर्धन व परस्पर में प्रतिदिन कलह करने वाले होते हैं ॥ ९७१ ॥

[2]नारदेनापि—

दम्पत्योर्द्वादशं लग्नं राशिर्वा यदि लग्नगः।
अर्थहानिर्भवेत्तस्मात्तदंशस्वामिनं त्यजेत् ॥ ९७२ ॥

ऋषि नारदजी ने भी बताया है कि वर-वधू की द्वादश लग्न व द्वादश राशि विवाह की लग्न होने पर धन की हानि होती है। अतः उसकी नवांश राशि स्वामी को लग्नस्थ होने पर त्यागना चाहिये ॥ ९७२ ॥

पुनः द्वादश राशि व अष्टम राशि लग्न दोष

लल्लः—

दम्पत्योर्द्वादशमे लग्नं नेष्टं तथाष्टमे च गृहे।
लग्नेन्द्वोः स्थानाभ्यां धनापहं जीवितक्षयकृत् ॥ ९७३ ॥

आचार्य लल्ल ने कहा है कि वर-वधू के लग्न व चन्द्र स्थान से बारहवीं राशि व आठवीं राशि लग्न में विवाह होने पर धन का हरण व जीवन का क्षय होता है ॥९७३॥

---

१. मु. चि. ६ प्र. ४८ श्लो. पी. टी.। २. मु. चि. ४८ श्लो. पी. टी.।

[1]केशवः—

सुखग्रहं सुखसुहृत्तनुजन्मनोरवलता सबलैः सुखकर्तृभिः ।
अपि तयोर्व्ययभं व्ययभं भवेद्विगतबाधनका धनकारिणः ॥ ९७४ ॥

विवाह वृन्दावन में बताया है कि जन्म लग्न व जन्म राशि से चौथी राशि विवाह लग्न में सुख कारक ग्रह निर्बल होने पर सुख का नाश होता है । इसी प्रकार बारहवीं राशि लग्न में विवाह होने पर धनदाता ग्रहों के अदूषित रहने पर व्यय का नाश होता हैं ॥ ९७४ ॥

सुखघ्नं तुर्यमुद्वाहे द्वादशं वित्तनाशकृत् ।
चतुर्थं सगुणं ज्ञेयं द्वादशं च गुणाधिकम् ॥ ९७५ ॥

ग्रंथान्तर में बताया है कि वर-वधू की लग्न व राशि से चौथी राशि विवाह लग्न होने पर सुख का और बारहवीं होने पर धन का नाश होता है । गुणों से युक्त चौथी और अधिक गुणों से युक्त बारहवीं राशि विवाह में उचित होती है ॥ ९७५ ॥

चौथी-बारहवीं का विधान

गुरुः—

चतुर्थं द्वादशं लग्नं शस्तं यदि गुणान्वितम् ।
अष्टमं तु न कर्तव्यं यदि सर्वगुणान्वितम् ॥ ९७६ ॥

गुरु ने बताया है कि गुणों से युक्त होने पर चौथी बारहवीं राशि विवाह लग्न में शुभ होती हैं और समस्त गुणों से युक्त भी आठवीं राशि का त्याग करना चाहिये ॥ ९७६ ॥

अथ ग्रहाणां भावफलम्—

अब आगे ग्रहों के भावस्थ फल को बताते हैं ।

१२ भावों में सूर्य का फल

शौनकः—

लग्नस्थेर्के विधवा संवत्सरेष्टमे भवति ।
विपुलकनकादि युक्ता षष्ठेब्दे निर्धना धनगे ॥ ९७७ ॥
बन्धुजनेभ्यः पूजां त्रिंशद्वर्षाणि सहजे त्वर्के ।
बन्धुवियुक्ता कन्या यावज्जीवं हिबुकसंस्थे ॥ ९७८ ॥
पञ्चमसंस्थे च रवौ त्रयोदशेब्दे त्वपत्यसंयोगः ।
प्राप्नोति धनं षष्ठे अब्दादूर्ध्वं सुतांश्चैव ॥ ९७९ ॥
संवत्सरेण विधवा सप्तमराशौ दिवाकरः कुरुते ।
दम्पत्योः सहमरणं निधनेर्केब्दसप्तत्यात् ॥ ९८० ॥

---

1. वि. वृ. ४ अ. १८ श्लो. ।

नवमे त्वधर्मयुक्ता त्रयोदशाब्दानि कन्यका भवति ।
यावज्जीवति कन्या दशमस्थेऽर्के विकर्मकरी ॥ ९८१ ॥
आवृत्योर्धनयुक्ता त्र्यब्दादूर्ध्वं तथायगः सविता ।
संवत्सरे व्यतीते वामाङ्गरुजा व्ययस्थेऽर्के ॥ ९८२ ॥

ऋषि शौनकजी ने बताया है कि विवाह की लग्न में सूर्य के रहने पर आठवें वर्ष में कन्या विधवा, दूसरे भाव में होने पर अधिक सुवर्णादि युक्त तथा छटे वर्ष में निर्धन, तीसरे भाव में सूर्य की स्थिति से बान्धवों से ३० वर्ष तक पूजित होने वाली, चतुर्थस्थ सूर्य में जीवन पर्यन्त बन्धुओं से अलग रहने वाली, पाँचवें में होने पर तेरहवें वर्ष पुत्र प्राप्ति करने वाली, छटे में धन पाने वाली और एक वर्ष के बाद सन्तान से युक्त होने वाली, सातवें में सूर्य की सत्ता से एकवर्ष में विधवा, आठवें में सत्तरवें वर्ष में पति के साथ मृत्यु पाने वाली, नवें में तेरह वर्ष तक अधर्म से युक्त, दसवें में जीवन पर्यन्त कार्य से हीन, ग्यारहवें में वृत्ति से धन युक्त तथा तीन वर्ष के पश्चात् स्वतः लाभ से युक्त और विवाह की लग्न से बारहवें भाव में सूर्य के होने पर एक वर्ष के बाद बायें अङ्ग में रोग से युक्त होने वाली होती है ॥ ९७७–९८२ ॥

विवाह लग्न से १२ भावों में चन्द्रमा का फल

लग्नस्थो हिमरश्मिर्मृत्युं कुर्यात्त्रयोदशे मासे ।
अब्दाद्धनसौभाग्यं करोति चन्द्रो धने नार्याः ॥ ९८३ ॥
चन्द्रस्तृतीयराशौ सौभाग्यकरस्तु यावदायुष्यम् ।
बन्धुश्वशुरवियुक्तां चतुर्थसंस्थः शशी त्वब्दात् ॥ ९८४ ॥
अब्दादेकं तनयं ततः परं न प्रसूयते सुतगे ।
अब्दचतुष्कान्मृत्युर्दम्पत्योः षष्ठगे चन्द्रे ॥ ९८५ ॥
कन्यास्तिस्रो जनयति सापत्न्यं चैव सप्तमे शशिनि ।
मासत्रयेण विधवां निधनस्थश्चन्द्रमाः कुरुते ॥ ९८६ ॥
जनयति षट् पुत्रान्नवमस्थे शशिनि सप्तमं पुत्रम् ।
भुक्त्वा द्वादश चाब्दात् दशमसंस्थे त्यजति कन्याम् ॥ ९८७ ॥
लग्नादेकादशः कन्यामिन्दुर्धनागमं कुरुते ।
उद्धृत्य खादति धनं चन्द्रे व्ययसंस्थिते वर्षात् ॥ ९८८ ॥

जबकि विवाह लग्न में चन्द्रमा होता है तो तेरहवें मास में मृत्यु, दूसरे में चन्द्रमा के होने पर एक वर्ष के बाद धन-सौभाग्य प्राप्त करने वाली, तीसरे में जीवन पर्यन्त सौभाग्यवाली रहने वाली, चौथे में एकवर्ष के अनन्तर बान्धव व श्वसुर से वियुक्त, पाँचवें में एकवर्ष के बाद पुत्रलब्धि फिर प्रसवाभाव, छठे में चार वर्ष के पश्चात् दोनों की मृत्यु, सातवें में तीन कन्या का जन्म व सौतेलाभाव, आठवें में चन्द्रमा तीन मास में विधवा बनने वाली, नवें में ६, ७ पुत्रों को पैदा करने वाली, दसवें भाव में बारह

वर्ष तक कन्या का उपभोग करके छोड़ने वाला, ग्यारहवें में धनागम करने वाला और बारहवें भाव में विवाह लग्न से चन्द्रमा एक वर्ष के पश्चात् उखाड़ कर धन को खाने वाला होता है ॥ ९८३–९८८ ॥

१२ भावों में मंगल का फल

भौमे सद्यो विधवां लग्नस्थोब्देन सौम्यदृग्योगात् ।
दशरात्रादग्निभयं द्वितीयमब्दान्नृपभयं च ॥ ९८९ ॥
सहजस्थो भूमिसुतः सौभाग्यकरस्तु यावदायुष्यम् ।
बंधुजनवियोगं हिबुकस्थोंगारकोब्देन ॥ ९९० ॥
भौमः पंचमराशौ व्ययस्थिति पुत्रवर्जितां कुरुते ।
संवत्सरेण विपुलं धनागमं शत्रुसंक्षयश्च ॥ ९९१ ॥
यामित्रगतः कन्यामुपजातकभगिनीं कुजेब्देन ।
भौमस्त्रयोदशाब्दान् निधनस्थः पुत्रवर्जितां कुरुते ॥ ९९२ ।
अब्दात्पतिविभ्रष्टां नवमस्थोंगारकः पराभिरताम् ।
सा कन्या मतियुक्ता दशमस्थः पंचमे वर्षे ॥ ९९३ ॥
मणिकांचनरत्नाढ्यामेकादशगः कुजेब्दषट्केन ।
हंति मासत्रितयात्करोति महतो व्यये भौमः ॥ ९९४ ॥

विवाह लग्न में शुभ दृष्ट या युक्त भौम के होने पर शीघ्र १ वर्ष में कन्या विधवा, दूसरे भाव में दस रात में अग्नि भय, दूसरे वर्ष से राजभय, तीसरे में यावत् जीवन सौभाग्यकर्ता, चौथे में भौम एक वर्ष में बान्धव वियोगकारी, पाँचवें में व्यय करानेवाला व पुत्र से हीन, छटे में एक वर्ष में विपुलधनागम कर्ता व शत्रुक्षयकारी, सातवें में एक वर्ष में उपजातक भगिनी कन्या को करने वाला, आठवें में १३ वर्ष तक पुत्र से हीन बनानेवाला, नवें में एकवर्ष में पति से भ्रष्ट होकर दूसरे में आसक्ति करनेवाली, दसवें में कन्या पाँचवें वर्ष में मति से युक्त, ग्यारहवें में ६ वर्ष के भीतर मणि, सुवर्ण, रत्नों से आढ्य और बारहवें भाव में भौम विवाह लग्न में तीसरे मास में अधिक व्ययकारी होता है ॥ ९८९–९९४ ॥

१२ भावों में बुध का फल

लग्नस्थः शशितनयः सौभाग्यसुखप्रदोत्यचिरात् ।
पश्यति सुतानति सुतान् द्वितीयसंस्थितेन चान्द्रेण ॥ ९९५ ॥
पत्युः सहोदराणां सहजस्थोपि प्रियां बुधः कुरुते ।
तुर्यस्थे शुभदो ददाति बोधो पंचमे शुभदोपि सदा ॥ ९९६ ॥
षष्ठः षड्भिर्मासैरसपत्नीं कन्यकां कुरुते ॥ ९९७ ॥
सप्तमगः सप्ताब्दान्भर्तासिरो भजति यथा कन्याम् ।
मासत्रयेण कन्यां निधनस्थो याति पंचत्वम् ॥ ९९८ ॥

एकादशभिर्वर्षैर्नवमस्थस्तपसि संस्थिता कुरुते ।
कन्या समुद्धतकुहकां दशमस्थो वर्षे विंशत्या ॥ ९९९ ॥
साध्वी सौभाग्यवती बहुप्रजामायगः करोति बुधः ।
व्ययगृहगतः स एव कन्या प्रवर्ज्यतां द्वादशे वर्षे ॥ १००० ॥

विवाह लग्न में बुध के होने पर एक वर्ष में सौभाग्य व सुख की प्राप्ति, दूसरे में पुत्र पौत्रों को देखने वाला, तीसरे में पति के सहोदरों की प्रिया, चौथे में शुभदाता, पाँचवें में भी शुभप्रद, छटे में कन्या ६ मास में शत्रुता से रहित, सातवें में बुध पति शत्रुभाव को प्राप्त कर कन्या को देखने वाला, आठवें में तीन मास में भरण करने वाला, नवें में ग्यारहवें वर्ष के बाद तपस्विनी बनाने वाला, दसवें में बीसवें वर्ष में समुद्धत कुहका, ग्यारहवें में साध्वी, सौभाग्यवती व अधिक संतानवाली और विवाह लग्न से बारहवें भाव में बुध, बारहवें वर्ष में कन्या को त्यागने वाला करता है ॥९९५-१०००॥

विवाह लग्न व दूसरे भाव में गुरु का फल

लग्नस्थे देवगुरौ मनोरमां सुप्रजां प्रियां पत्युः ।
धनगे गुरौ धनाढ्यां मृतेप्यनुयाति भर्तारम् ॥ १००१ ॥

विवाह की लग्न में गुरु के होने पर कन्या पति की प्यारी, मनोरम, अच्छी संतान वाली, दूसरे भाव में होने पर धन से संपन्न और मरने के बाद पुनः पति के पीछे अनुगमन करने वाली होती है ॥ १००१ ॥

तीसरे, चौथे भाव में गुरु का फल

बंधुश्वशुरकुलाभ्यां धनहानिकरस्तृतीयगो मासात् ।
बंधुजनस्य पुंसां कन्यामब्देन हिबुकस्थः ॥ १००२ ॥

तीसरे भाव में गुरु के होने पर एक मास में बान्धव व श्वसुर कुल से धन हानि करने वाला, चौथे में बान्धव पुरुषों के वशीभूत एक वर्ष में करने वाला होता है ॥ १००२ ॥

पाँचवें, छटे भाव में गुरु का फल

जनयत्यष्टौ पुत्रान्पंचमराशौ व्ययस्थिते जीवे ।
उभयकुलानंदकरीं करोति न चिराद्गुरुः षष्ठः ॥ १००३ ॥

पाँचवें भाव में गुरु के होने पर आठ पुत्रों को पैदा करने वाली और छटे भाव में शीघ्र ही पिता-पति कुल को आनन्द देने वाली होती है ॥ १००३ ॥

सातवें, आठवें भाव में गुरु का फल

शीलचरित्रोपेतां करोति पत्युः कलत्रगो द्वेष्यम् ।
दंपत्योर्निधनस्थः सप्ताब्दाद्वियोगकरः ॥ १००४ ॥

सातवें भाव में गुरु के होने पर कन्या शील चरित्र से युक्त, पति से द्वेष करने वाली और आठवें में गुरु के होने पर सात वर्ष के बाद वियोग कराने वाला होता है ॥ १००४ ॥

नवें, दसवें भाव में गुरु का फल

पितृदेवार्चनरतामत्यन्तपतिप्रियां गुरुर्नवमे ।
दशमे गुरौ कलाज्ञां योगैः संपन्मंगलानां च ॥ १००५ ॥

नवें भाव में गुरु के रहने पर कन्या पितृ-देवता के पूजन में आसक्त और अत्यन्त पति की प्यारी व दसवें में कला की जानकार और योग क्रिया व मांगलिक कार्य से युक्त होती है ॥ १००५ ॥

ग्यारहवें व बारहवें भाव में गुरु का फल

श्वशुरपतिसहोदराणामतिप्रियामायगो गुरुः कुरुते ।
शौचाचारभ्रष्टमधर्मयुक्तां गुरुर्व्ययगः ॥ १००६ ॥

विवाह लग्न से ग्यारहवें भाव में गुरु के रहने पर कन्या श्वसुर-पति सहोदरों की अधिक प्यारी और बारहवें में गुरु होने पर पवित्रता-आचार से भ्रष्ट होकर अधर्म से युक्त होने वाली होती है ॥ १००६ ॥

लग्न में व द्वितीय में शुक्र का फल

लग्नस्थेनोशनसा दुर्लभमाप्नोति चैव पत्नीत्वम् ।
मान्या धनगे शुक्रे कृपणत्वं प्राप्नुयान्नारी ॥ १००७ ॥

विवाह लग्न में शुक्र के होने पर कन्या पत्नी भाव की दुर्लभता पाने वाली, दूसरे में शुक्र कन्या को सम्मानित करने वाला व लोभिन बनाने वाला होता है ॥ १००७ ॥

तीसरे, चौथे भाव में शुक्र का फल

दुश्चिक्यगते कन्यां त्र्यब्दाद्भर्तुः कनीयसा भजते ।
हिबुकस्थेऽब्दचतुष्काद्बांधवगोत्रार्थलाभकारी ॥ १००८ ॥

तीसरे भाव में शुक्र के रहने पर तीन वर्ष बाद कन्या को पति का छोटा भाई उपभोग करने वाला, चौथे भाव में चार वर्ष के पश्चात् बान्धव गोत्रियों से धन लाभ कराने वाला होता है ॥ १००८ ॥

पांचवें, छटे भाव में शुक्र का फल

बहुपुत्रां नाल्पधनां पंचमगो भार्गवः करोत्यलसाम् ।
दंपत्योर्वैरकरः षष्ठस्तु भवेत्त्रिभिर्वर्षैः ॥ १००९ ॥

विवाह लग्न से पांचवें भाव में शुक्र के रहने पर कन्या अधिक पुत्र व धन से युक्त, आलसिन और छटे भाव में शुक्र की स्थिति से कन्या तीन वर्ष के बाद पति से वैर भाव व पति पत्नी में शत्रुता होती है ॥ १००९ ॥

सातवें-आठवें भाव में शुक्र का फल

यामित्रगतो वेश्यां त्र्यब्दादतिदुर्भगां करोति भृगुपुत्रः ।
पंचत्वं नयति भृगुर्निधनस्थः सप्तभिर्वर्षैः ॥ १०१० ॥

सातवें भाव में शुक्र के होने पर कन्या तीन वर्ष के पश्चात् वेश्या और भाग्यहीन व आठवें में शुक्र सातवें वर्ष में मृत्यु करने वाला होता है ॥१०१० ॥

नवें-दसवें भाव में शुक्र का फल

नवमस्थः षण्मासात्सौभाग्यसुखप्रदो भवत्युशनाः।
वर्षद्वयेन दशमगः कुलसुतधनभोगवृद्धिकरः॥ १०११॥

नवें भाव में शुक्र के रहने पर कन्या ६ मास के पश्चात् सौभाग्य व सुख से युक्त होने वाली व दसवें भाव में शुक्र दो वर्ष में कुल-सुत-धन भोग की वृद्धि करने वाला होता है॥ १०११॥

ग्यारहवें-बारहवे में शुक्र का फल

आयगतो दशरात्रात्सौभाग्यसुखप्रदो विनिर्दिष्टः।
व्ययगः स एव दृष्टः सौभाग्यसुतार्थधनहरः॥ १०१२॥

ग्यारहवें भाव में शुक्र दस दिन के बाद सौभाग्य-सुख देने वाला और बारहवें भाव में शुक्र विवाह लग्न से होने पर सौभाग्य, सुत, धन का हरण करने वाला होता है॥ १०१२॥

विवाह लग्न व उससे दूसरे भाव में शनि का फल

कामयति नीचवर्णो लग्नस्थे रविसुते बहून्पुरुषान्।
धनगे धनैर्वियुक्तां पंचभिरब्दैर्विवर्णतनुः॥ ९०१३॥

जबकि विवाह की लग्न में शनि होता है तो कन्या नीच जाति के बहुत पुरुषों की कामना करने वाली व धन भाव में शनि के होने पर धन से रहित व पाँच वर्ष में वर्ण से हीन शरीर वाली होती है॥ १०१३॥

तीसरे, चौथे में शनि का फल

धनधान्यापत्यपशून्पंचमसंवत्सरात्तृतीयस्थः।
अल्पपयस्वी कन्याप्रसवान्म्रियेत हिबुकसंस्थः॥ १०१४॥

विवाह लग्न से तीसरे भाव में शनि की स्थिति से पाँचवे वर्ष से धन, धान्य, पुत्र व पशुओं की प्राप्ति व चौथे में होने पर अल्प दूध से युक्त व कन्या संतान को नष्ट करने वाली होती है॥ १०१४॥

पाँचवे, छटे भाव में शनि का फल

एकादशभिरब्दैस्त्रिकोणगेर्किः करोति हृद्रोगम्।
षष्ठः षड्भिर्मासैरसपत्नीकन्यकां कुरुते॥ १०१५॥

विवाह लग्न में पाँचवें भाव में शनि के होने पर ग्यारहवें वर्ष में हृदय रोग और छटे भाव में शनि ६ मास में कन्या को शत्रुता से रहित करने वाला होता है॥१०१५॥

सातवें, आठवें भाव में शनि का फल

सप्तमगे कन्यायां पतंति गर्भात्विमेकशोर्कसुते।
निधनगतोर्किः कुर्यादामरणादामयवियुक्ताम्॥ १०१६॥

विवाह लग्न से सातवें भाव में शनि के होने पर अनेक बार गर्भपात होता है। आठवें में शनि से मरण पर्यन्त रोगों से रहित होती है ॥ १०१६ ॥

नवें, दसवें भाव में शनि का फल

उपवासव्रतनियमैर्विवर्जितां नवगः करोति शनिः।
पापां कर्मणि दशमे षष्ठेऽब्दे कन्यकां धनैर्युक्ताम् ॥ १०१७ ॥

विवाह लग्न से नवें भाव में शनि के होने पर उपवास, व्रत नियमों से शून्य और दसवें में शनि धन से युक्त पापिन बनाने वाला होता है ॥ १०१७ ॥

विवाह लग्न से ग्यारहवें व बारहवें शनि का फल

आयगतोऽर्किः कन्यां त्रिवर्गयोग्यां करोति षण्मासात्।
सोमकुलेऽपि हि जातां द्वादशे मद्यपां कुरुते ॥ १०१८ ॥

विवाह लग्न से ग्यारहवें भाव में शनि के होने पर कन्या को ६ मास में त्रिवर्ग साधन के अनुरूप बनाने वाला और बारहवें भाव में शनि सोम (चन्द्र) कुल में भी उत्पन्न कन्या को शराब पीने वाली बनाता है ॥ १०१८ ॥

राहु का फल

शनिवद्विधुन्तुदस्य ज्ञेयं सदसदतिफलम्।
पश्योद्वाहविलग्नाच्छुभाशुभं कन्यकासु निर्देश्यम् ॥ १०१९ ॥

शनि के समान राहु का भी शुभ अशुभ फल विवाह लग्न से देखकर आदेश करना चाहिये ॥ १०१९ ॥

स्थिति वश विशेष

अधिरिपुनीचर्क्षगताभावफलं घ्नंति शत्रुसंदृष्टाः।
कालादिबलसंमृद्धास्तदेव संबन्धयत्याशु ॥ १०२० ॥

अधिशत्रु व नीच राशि में शत्रु ग्रह से दृष्ट भाव फल का विनाश तथा कालादि बल से समृद्ध शीघ्र ही भाव फल का नाश करने वाला होता है ॥ १०२० ॥

पंचभिरिष्टैरिष्टं पुष्टमनिष्टैरनिष्टमादेश्यम्।
स्थानादिबलसमृद्धिश्चतुर्भिरथवोच्यते यवनैः ॥ १०२१ ॥

स्थानादि बल से युक्त चार या पाँच ग्रह इष्ट (शुभ) होने पर अभीष्ट की पुष्टि व चार या पाँच दूषित होने पर अनिष्ट होता है, ऐसा यवनाचार्यों ने कहा है ॥ १०२१ ॥

अंश शुद्धि ज्ञान

अथांशशुद्धिः—

भुंक्ते पुरुषत्रितयं पाणिग्रहणे क्रियांशके कन्या।
कामयते वृषभे गौरिव कामातुरा भर्त्रनुजान् ॥ १०२२ ॥
स्वकुलद्वयवृद्धिकरी विवाहिता स्यात्तृतीयांशे।
अर्द्धेन त्यक्त्वा पतिं विचरति कुलीरगेऽन्यदेशस्तु ॥ १०२३ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि विवाह की लग्न में मेष का नवांश होने पर कन्या तीन पुरुषों को भोगने वाली, वृष के नवांश में गाय की तरह कामातुर होकर पति के अनुज (देवर) की इच्छा करने वाली, मिथुन के नवांश में पति-पिता दोनों के कुल की वृद्धि करने वाली तथा कर्क का नवांश होने पर श्रद्धा से पति को छोड़कर अन्य देश में जाकर रहने वाली होती है ॥ १०२२–१०२३ ॥

नन्दादियोग ज्ञान

अथ नंदादियोगाः—

विवाहपटले वराहः—

नन्दो भद्रो जीवो जीमूतः स्थावरो जयो विजयः।
व्यालो रसातलमुखः क्षयस्तथांन्धोंयो विवाहगणः॥ १०२४॥

विवाह पटल में वराह ने बताया है कि नन्द, जीव, जीमूत, स्थावर, जय, विजय, व्याल, रसातलमुख, क्षय, अन्ध अन्त्य यह विवाह गण होता है॥ १०२४॥

लग्नस्थ ग्रहवश उक्त गण ज्ञान

चकारादंत्यसंज्ञापि—

सौम्ये लग्ने नन्दः शुक्रे भद्रस्तथा गुरौ जीवः।
आद्यंतौ जीमूतःस्थावर इति मध्यमांत्याभ्याम्॥ १०२५॥
बुधशुक्राभ्यां तु जयः सर्वैर्विजयो भवत्युदयसस्थैः।
दिनकरयोगाद्व्यालो भौमेन रसातलः क्षयः शनिना॥ १०२६॥
तमसा तमीभिर्युक्ता भवति हि केता कृतांतश्च॥ १०२७॥

विवाहपटल में कहा है कि लग्न में बुध होने पर नन्द, शुक्र से भद्र, गुरु से जीव, बुध-गुरु से जीमूत, शुक्र गुरु से स्थावर, बुध-शुक्र से जय, तीनों (बुध-गुरु-शुक्र) लग्न में होने पर विजय, सूर्य से व्याल, भौम से रसातल, शनि सेक्षय, राहु से अंधेरे से युक्त और केतु से मरण व अन्त्य गण होता है॥ १०२५–१०२७॥

इनके फल

अथैषां फलानि—

त्रिषु नंदादिषु राज्ञी चतुर्षु वा ततः परम्।
महादेवी व्यालायेषु पंचसु विधवा शोच्या दरिद्रा च॥ १०२८॥

तीन नन्दादि में रानी, आगे के चार में महादेवी, फिर पाँच व्यालादि में विधवा, शोच्या, दरिद्रा कन्या होती है॥ १०२८॥

रेखा (शुभ) प्रद ग्रहों का ज्ञान

[1]रामः। अथ रेखादातृग्रहाः—

त्र्यायाष्टषट् सुखारविकेतुतमोर्कपुत्रास्त्र्यायारिगः क्षितिसुतो द्विगुणायगोब्जः।
सप्तव्ययाष्टरहितो ज्ञगुरूसितोष्टत्रिद्यूनषट्व्ययगृहान्परिहृत्य शस्तः॥ १०२९॥

---

१. मु. चि. ६ प्र. ८५ श्लो०।

मुहूर्तचिन्तामणि में बताया है कि विवाह लग्न से ३।११।८।६ स्थानों में सूर्य केतु, राहु, शनि शुभप्रद होते हैं। ३।६।११ स्थानों में भौम, २।३।११ में चन्द्रमा, शुभ फल दाता होता है। लग्न से बुध गुरु ७।८।१२ स्थानों में अशुभ व अन्य स्थानों में शुभ तथा शुक्र लग्न से ८।३।७।६।१२ स्थानों में अशुभ तथा १।२।४।५।९।१०।११ स्थानों में शुभ प्रद होता है ।। १०२९ ।।

ग्रन्थान्तर से शुभ प्रद स्थान

अन्यच्च –

निधनारित्रिलाभस्था अर्कार्किशिखिराहवः ।
लाभत्रिशत्रुगो भौमो द्वित्रिलाभगतः शशी ।। १०३० ।।
द्यूनाष्टांत्य विना सौम्यो सप्ताष्टांत्यं विना गुरुः ।
अस्ताष्टारिव्ययं हित्वा शुक्रो रेखाप्रदः शुभः ।। १०३१ ।।

विवाह लग्न से ८।६।३।११ में सूर्य, शनि, केतु, राहु शुभ प्रद, ११।३।६ में भौम, २।३।११ में चन्द्रमा, ७।८।१२ को छोड़कर १।२।३।४।५।६।९।१०।११ में बुध गुरु, ७।८।६।१२ को छोड़कर शेष स्थानों में शुक्र शुभ फल दायी होता है ।।१०३०–१०३१।।

लग्न विशोपक ज्ञान

अथ लग्नविंशोपकाः—

[1]वराहः—

रवौ सार्द्धत्रयो भागाश्चन्द्रे पंच गुरोस्त्रयः ।
द्वौ शुक्रे द्वौ बुधे चैव प्रोक्ता ह्येते विंशोपकाः ।। १०३२ ।।
मदे भौमे तथा राहौ सार्द्धं प्रत्येकमुच्यते ।
बलाबलवशादेवं विज्ञातव्या विंशोपकाः ।। १०३३ ।।

आचार्य वराह ने बताया है कि सूर्य का पूर्ण विंशोयक ३½, चन्द्रमा का ५, गुरु का ३ तीन, २ शुक्र का २ बुध का और शनि, भौम, राहु का १½, १½ होता है। बलाबल के आधार पर विंशोपक बल का ज्ञान करना चाहिये ।। १०३२–१०३३ ।।

कर्तरी दोष का लक्षण

अथ कर्तरियोगलक्षणम्—

[2]वसिष्ठः—

लग्नस्य पृष्ठाग्रगयोरसाध्वोः सा कर्तरी स्यादृजुवक्रगत्योः ।
तावेव शीघ्रौ यदि वक्रचारैः न कर्तरी चेति पितामहोक्तिः ।। १०३४ ।।

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि विवाह लग्न से पीछे व आगे अर्थात् १२ वें व दूसरे में मार्गी वक्री ग्रह होने पर कर्तरी दोष होता है तथा २,१२ वें में शीघ्रगामी वा वक्री ग्रह होने पर कर्तरी दोष नहीं होता है। ऐसा पितामह ने कहा है ।। १०३४ ।।

१. मु. चि. ६ प्र. ९० श्लो. पी. टी. । २. बृ. सं. ३२ अ. ४३ श्लो. ।

दूषित लग्न व चन्द्र में निषेध

ज्योतिःसागरे—

पापमध्यगते चन्द्रे पापसंसर्गगेपि वा ।
शुभकर्म न कर्तव्यं तथा लग्ने कदाचन ॥ १०३५ ॥

ज्योतिः सागर में बताया है कि विवाह लग्न में चन्द्रमा पापग्रह के मध्य में या पापग्रह से युक्त या दृष्ट होने पर, इसी प्रकार लग्न के रहने पर कभी भी शुभ काम नहीं करना चाहिये ॥ १०३५ ॥

घोर कर्तरी ज्ञान

[1]व्यये मार्गगतिः क्रूरो वक्री क्रूरो धने यदि ।
तौ च लग्नांशतुल्यौ चेत्तदा घोराख्यकर्तरी ॥ १०३६ ॥

विवाह लग्न से १२ बारहवें भाव में मार्गगतिक अशुभ ग्रह और दूसरे भाव में वक्री क्रूर ग्रह होने पर उन दोनों के लग्न के तुल्य अंश हों तो घोर कर्तरी दोष होता है ॥ १०३६ ॥

महाविघ्नप्रद कर्तरी

महाविघ्नप्रदा ज्ञेया विवर्ज्या शुभकर्मसु ।
क्रूरयोः कर्तरी नेष्टा महाविघ्नप्रदा ध्रुवम् ॥ १०३७ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि क्रूर ग्रहों से कर्तरी दोष होने पर महाविघ्नदायी होने के नाते शुभ कार्यों में इसका त्याग करना चाहिये क्योंकि यह बड़े विघ्न को देने वाली होती है ॥ १०३७ ॥

शुभ व मध्यम कर्तरी ज्ञान

सौम्ययोः शुभदा ज्ञेया मध्यमा पापसौम्ययोः ॥ १०३८ ॥

दो शुभ ग्रहों के बीच में कर्तरी शुभप्रद और पाप-शुभ के बीच में मध्यम होती है ॥ १०३८ ॥

भङ्गप्रद यात्रा

वसिष्ठः—

कर्तरीदूषिते लग्ने चन्द्रे वापि षडष्टगे ।
यातुर्भंगप्रदा यात्रा लग्ने बहुगुणान्विते ॥ १०३९ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि कर्तरी से दूषित लग्न वा ६।८ में चन्द्रमा के होने पर अधिक गुण से युक्त लग्न होने पर भी गमन कर्ता की यात्रा भङ्गप्रद होती है ॥ १०३९ ॥

---

१. ज्यो. नि. ७२ पृ. ४ श्लो. ।

ग्रन्थान्तर से कर्तरी दोष

रामदैवज्ञः—

लग्नात्पापावृजुनृजुव्ययार्थस्थौ यदा तदा ।
कर्तरी नाम सा ज्ञेया दुःखदारिद्र्यशोकदा[1] ॥ १०४० ॥

मुहूर्तचिन्तामणि में बताया है कि लग्न से दूसरे भाव में वक्री पापग्रह और बारहवें में मार्गगतिक पाप ग्रह होने पर कर्तरी दोष होता है। यह मृत्यु, दरिद्रता व शोक को देने वाला होता है ॥ १०४० ॥

गुरुः—

वक्री चारो यदा पापो द्वितीये द्वादशे स्थितः ।
तदा कर्तरियोगः स्यान्महादोषो विलग्नतः ॥ १०४१ ॥

गुरु जी ने बताया है कि वक्री व मार्गी पापग्रह विवाह लग्न से दूसरे व बारहवें में होने पर महा दोषदायी कर्तरी दोष होता है ॥ १०४१ ॥

क्रूर के बीच में लग्न व चन्द्र का त्याग

क्रूरमध्यगतं लग्नं चन्द्रं च वर्जयेन्मतिमान् ।
परिणयने वनितानां शतगुणामपि मृत्यवे पुसाम् ॥ १०४२ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि क्रूर ग्रहों के मध्य में लग्न व चन्द्रमा होने पर बुद्धिमान् को इसका त्याग करना चाहिये। विवाह में स्त्रियों के सौ गुण हों तो भी पुरुष की उक्त योग में मृत्यु होती है ॥ १०४२ ॥

कर्तरी का त्याग

नारदः—

कर्तरीदोषपुष्टं यल्लग्नं तत्परिवर्जयेत् ।
अपि सौम्यग्रहैर्युक्तं गुणैः सर्वैः समन्वितम् ॥ १०४३ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि कर्तरी दोष से युक्त लग्न का समस्त गुणों से युक्त होने पर तथा शुभग्रह से युक्त होने पर भी त्याग करना चाहिये ॥ १०४३ ॥

इसका परिहार

अथास्य भङ्गः—

कश्यपः—

[2]पापयोः कर्तरीकर्त्रोः शत्रुनीचग्रहस्थयोः ।
यदा चास्तगयोर्वापि कर्तरी नैव दोषदा ॥ १०४४ ॥

ऋषि कश्यप ने बताया है कि कर्तरी कारक पापग्रह शत्रु वा नीच राशिस्थ हों या अस्त हों तो कर्तरी दोष देने वाली नहीं होती है ॥ १०४४ ॥

---

१. मु. चि. ६ प्र. ४२ श्लो. । २. ज्यो. नि. ७२ पृ. ९ श्लो. ।

[1]गर्गः—

क्रूरकर्तरिसंयुक्तं लग्नं चन्द्रं च न त्यजेत् ।
केन्द्रत्रिकोणसंस्थश्चेद्गुरुभार्गववित्सु च ॥ १०४५ ॥

आचार्य गर्ग ने बताया है कि क्रूर ग्रह की कर्तरी से युक्त लग्न व चन्द्रमा का त्याग १।४।७।१०।५।९ में गुरु, बुध, शुक्र हों तो नहीं करना चाहिये ॥ १०४५ ॥

अन्यच्च—

त्रिकोणकेन्द्रगे गुरौ त्रिलाभगे रविर्यदा ।
तदा न कर्तरी भवेदगस्त्यबादरायणाः ॥ १०४६ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि ५।९।१।४।७।१० में गुरु व ३।११ में सूर्य के होने पर कर्तरी का दोष नहीं होता है । ऐसा अगस्त्य, बादरायण ऋषि का मत है ॥ १०४६ ॥

[2]कश्यपः—

चन्द्रस्य कर्तरी तत्स्याच्छुभदृष्ट्या न दोषदा ॥ १०४७ ॥

ऋषि कश्यप ने बताया है कि चन्द्रमा की कर्तरी शुभ दृष्टि से दोषप्रद नहीं होती है ॥ १०४७ ॥

[3]क्रूरद्वयस्यान्तरगे विलग्ने मृतिप्रदं चन्द्रमसं च रोगदम् ।
शुभैर्धनस्थैरथवान्त्यगे गुरौ न कर्तरी स्यादिति भार्गवोब्रवीत् ॥१०४८॥

दो क्रूर ग्रह के मध्य में विवाह लग्न होने पर मृत्यु और चन्द्रमा के रहने पर रोग होता है तथा दूसरे में शुभ ग्रह व बारहवें में गुरु के होने पर कर्तरी दोष नहीं होता है ऐसा भार्गव ऋषि का कथन है ॥ १०४८ ॥

[4]नहि कर्तरिजो दोषो सौम्ययोर्यदि जायते ।
शुभग्रहयुतं लग्नं क्रूरयोर्नास्ति कर्तरी ॥ १०४९ ॥

दो शुभ ग्रहों के मध्य में लग्न के होने पर तथा लग्न में शुभग्रह की स्थिति होने पर पापग्रह जन्य कर्तरी का दोष नहीं होता है ॥ १०४९ ॥

ग्रहों के जन्म नक्षत्रों का दोष

अथ ग्रहाणां जन्मर्क्षदोषः—

विवाहपटले—

ग्रहाणां जन्मऋक्षेषु विवाहं नैव कारयेत् ।
विवाहेषु च वैधव्यं प्रस्थाने मरणं ध्रुवम् ॥ १०५० ॥
विद्यारम्भे च मूर्खत्वं कृषिवाणिज्यनिष्फलम् ।

---

१. ज्यो. नि. ७२ पृ. ७२ पृ. ७ श्लो. । २. मु. चिं. ६ पृ. ४२ श्लो. पी. टी. ।
३. ज्यो. नि. ७१ पृ. २ श्लो. । ४. ज्यो. नि. ७२ पृ. ८ श्लो. ।

विवाह पटल में बताया है कि ग्रहों के जन्म नक्षत्रों में विवाह नहीं करना चाहिये। करने पर विवाह में वैधव्यता, यात्रा में मृत्यु, विद्यारम्भ में मूर्खता, खेती व व्यापार में फल-हीनता होती है ॥ १०५० ॥

भरणी भानुना चैव सोमे चित्रा तथैव च ॥ १०५१ ॥
कुजे च उत्तराषाढा धनिष्ठा चन्द्रजाऽशुभा।
गुरौ चोत्तरफल्गुन्योः शुक्रे ज्येष्ठा प्रकीर्तिताः ॥ १०५२ ॥
रेवती सूर्यपुत्रेण जन्म ऋक्षाणि वर्जयेत् ॥ १०५३ ॥

सूर्यवार में भरणी, चन्द्र में चित्रा, भौम में उत्तराषाढ, बुध में धनिष्ठा, गुरु में उत्तरा फाल्गुनी, शुक्र में ज्येष्ठा और शनिवार में रेवती का त्याग करना चाहिये ॥ १०५१-१०५३ ॥

दोषप्रद शकुन

अकालजाश्च नीहारविद्युदुत्पाताभ्रसम्भवाः।
परिवेषः प्रतिसूर्यशक्रचापध्वजादयः ॥ १०५४ ॥
दोषप्रदा मङ्गलेषु कालजाश्चेन्न दोषदाः ॥ १०५५ ॥

असमय में नीहार, बिजली, उत्पात, मेघ, परिवेष, प्रतिसूर्य, इन्द्रधनुष, केतु का उदय मंगल कार्य में दोष दायी होता है और कालज होने पर उक्त चिह्न दोषप्रद नहीं होते है ॥ १०५४-१०५५ ॥

मर्मादि वेध ज्ञान

अथ मर्मादिवेधः—

विवाहपटले—
मर्मकण्टकवेधं च शल्यं छिद्रं यो न जानाति।
नार्हति विवाहदीक्षालग्नं दातुं स दैवज्ञः ॥ १०५६ ॥

विवाह पटल में बताया है कि मर्म, कंटक वेध, शल्य, छिद्र को जो ज्योतिषी नहीं जानता है वह विवाह व दीक्षा की लग्न बताने में अयोग्य होता है ॥ १०५६ ॥

क्रूरैस्तनुगैर्मर्म पञ्चमनवमैश्च कण्टको भवति।
दशमचतुर्थे शल्यं यामित्रे भवति ते छिद्रम् ॥ १०५७ ॥

लग्न में क्रूरग्रह होने पर मर्म, पाँचवें, नवें में कंटक, चौथे, दसवें में शल्य और सातवें में पापग्रह होने पर छिद्रवेध होता है ॥ १०५७ ॥

मर्मादि वेध फल

मर्मणि वेधे मरणं कण्टकवेधे कुलक्षयं भवति।
शल्यं नृपतेः शत्रुः यामित्रं पुत्रं नाशयति ॥ १०५८ ॥

मर्मवेध में मृत्यु, कंटकवेध में कुल का क्षय, शल्य में राजा का और छिद्र में पुत्र का विनाश होता है ॥ १०५८ ॥

ग्रहस्थिति से सास, श्वसुरादि ज्ञान

अथ ग्रहवशाच्छ्वशुरादि विचारः—

[1]शौनकः—

श्वशुरोर्कः सितः श्वश्रूः स्त्रीणामस्तपतिः पतिः ।
एभिरुच्चोपगैरेषां शुभं नीचादिगैरसत् ॥ १०५९ ॥

ऋषि शौनक ने बताया है कि सूर्य श्वसुर, शुक्र सास, सप्तमेश पति होता है। इनके उच्चादि में होने से श्वसुरादि का शुभ और नीचादि में रहने पर अशुभ फल होता है ॥ १०५९ ॥

ग्रहवश शरीरादि ज्ञान

विवाहपटले—

शिरः सूर्यः शशिर्गात्रः गुरुर्जीवो त्वचा भृगुः ।
भौमेऽस्थीनि समं प्रोक्तं लग्नात्पञ्च प्रशस्यन्ते ॥ १०६० ॥

विवाह पटल में बताया है कि सूर्य मस्तक, चन्द्रमा शरीर, गुरु जीव, शुक्र खाल और भौम हड्डी का स्वामी ग्रह होता है। ये लग्न से पाँचों शुभ होने पर शुभ होता है ॥ १०६० ॥

इनका फल

शिरोविहीना पतिना निहन्ति गात्रैर्विहीना भय रोगपीडा ।
तेजोविहीना मरणं उभौ च त्वचा विहीना करणं प्रजासु ॥१०६१॥
अस्थ्ना विहीना भवतीह वन्ध्या तं लग्नमेव परिवर्जनीया ॥१०६२॥

मस्तक से हीन कन्या पति को मारने वाली, शरीर से हीन भय व रोग से दुःखी, दोनों से हीन निस्तेज, खाल से हीन संतान को नष्ट करने वाली और हड्डी से रहित कन्या वन्ध्या होती है। इसलिये उक्त दोष से दूषित लग्न का त्याग करना चाहिये ॥ १०६१-१०६२ ॥

ग्रहवश विचारणीय

[2]शार्ङ्गीये—

सूर्यात्पतिः स्त्री च विधोस्तथाराद्वित्तं सुतो ज्ञाच्च सुखं गुरोस्तु ।
धर्मः सितादर्कसुताच्च वेश्म ब्रूयात्समुद्वाहविधौ स्वयुक्त्या ॥१०६३॥

शार्ङ्गीय में बताया है कि सूर्य से पति, चन्द्रमा से स्त्री, मंगल से धन, बुध से सुख, गुरु से पुत्र, शुक्र से धर्म और शनि से घर का सुख जानकर विवाह समय से उक्त ग्रह शुभ परिस्थिति में होने पर आदेश करना चाहिये ॥ १०६३ ॥

एतैर्नीचस्थितैः शत्रुगतैर्वैवाहिकं न सत् ।
स्वगृहोच्चत्रिकोणस्थैः शुभमेषां यथोदितम् ॥ १०६४ ॥

---

१. मु. चि. ६ प्र. ९१ श्लो. पी. टी. । २. मु. चि. ६ प्र. ९१ श्लो. पी. टी. ।

उक्त ग्रहों के नीच, शत्रु राशि में होने पर विवाह शुभ नहीं होता है और उच्च या त्रिकोण या स्वराशि आदि में स्थिति वश उक्त शुभ फल होता है ।। १०६४ ।।

लग्न भंग योग ज्ञान

अथ लग्नभङ्गदग्रहाः—

[1]रामः—

व्यये शनिः खेऽवनिजस्तृतीये भृगुस्तनौ चन्द्रखला न शस्ताः ।
लग्नेट्कविग्लौश्च रिपौ मृतौग्लौर्लग्नेट्शुभाराश्च मदे च सर्वे ।।१०६५।।

मुहूर्तचितामणि ग्रन्थ में बताया है कि विवाह की लग्न से बारहवें में शनि, दसवें में मंगल, तीसरे में शुक्र, चन्द्रमा और क्रूर ग्रह लग्न में अशुभ होते हैं ।

लग्नेश, शुक्र, चन्द्रमा छठे भाव में तथा चन्द्रमा, लग्नेश, शुभग्रह और भौम आठवें भाव में तथा समस्त ग्रह, सातवें में शुभ नहीं होते हैं ।। १०६५ ।।

आठवें में भौम का दोष

[2]नारदः—

कुजाष्टमो महान् दोषो लग्नादष्टमगे कुजे ।
शुभत्रययुतं लग्नं त्यजेत तुङ्गगे यदि ।। १०६६ ।।

ऋषि नारद ने बताया है कि विवाह लग्न से आठवें में भौम की सत्ता से कुजाष्टम नाम का बड़ा दोष होता है । यदि उक्त स्थिति में तीन शुभ ग्रह से युत लग्न उच्च में हो तो भी त्यागना चाहिये ।। १०६६ ।।

ग्रन्थान्तर से त्याज्य

त्रिविक्रमः—

त्याज्या लग्नेऽब्धयो मन्दात्षष्ठे शुक्रेन्दुलग्नपाः ।
रन्ध्रे चन्द्रादयः पञ्च सर्वेऽस्तेऽब्जगुरू समौ ।। १०६७ ।।

आचार्य त्रिविक्रम ने बताया है कि शनि से ४ व छठे में शुक्र, चन्द्र व लग्नेश का और आठवें में चन्द्र आदि पांच व सातवें में समस्त ग्रहों का त्याग करना एवं सातवें में चन्द्र गुरु समान फल वाले होते हैं ।। १०६७ ।।

भङ्गद ग्रहों का परिहार

अथ भङ्गदग्रहाणामपवादमाह—

[3]नीचराशिगते शुक्रे शत्रुक्षेत्रगतेपि वा ।
भृगुषट्के स्थितो दोषो नास्ति तत्र न संशयः ।। १०६८ ।।

जबकि विवाह लग्न से नीच राशि या शत्रु राशि में शुक्र छठे भाव में होता है तो दोषदायी नहीं होता है । इसमें संशय नहीं करना चाहिये ।। १०६८ ।।

---

१. मु. चि. ६ पृ. ८४ श्लो. । २. मु. चि. ६ पृ. ८४ श्लो. पी. टी. ।
३. मु. चि. ८६ श्लो. पी. टी. ।

भङ्गद भौम का परिहार

[1]अस्तगे नीचगे भौमे शत्रुक्षेत्रगतेपि वा ।
कुजाष्टमोद्भवो दोषो न किञ्चिदपि विद्यते ।। १०६९ ।।

जब कि भौम नीच राशि या अस्त राशि में या शत्रु राशि में आठवें भाव में होता है तो अष्टमभौम जन्य दोष जरा भी नहीं होता है ।। १०६९ ।।

भङ्गद चन्द्र का परिहार

[2]नीचराशिगते चन्द्रे नीचांशकगतेपि वा ।
चन्द्रे षष्ठाष्टरिःफस्थे दोषो नास्ति न संशयः ।। १०७० ।।

जब कि चन्द्रमा नीच या नीच के नवांश में ६।८।१२वें भाव में होता है तो निश्चय ही दूषित फल का अभाव होता है ।। १०७० ।।

भङ्गद शुक्र का परिहार

कश्यपः—

नीचगे तु तुरीये वा शत्रुक्षेत्रगतेपि वा ।
भृगुषष्ठोद्भवो दोषो नास्तीत्यत्र न संशयः ।। १०७१ ।।

ऋषि कश्यपजी ने बताया है कि शुक्र विवाह लग्न से चौथे में नीच राशि या शत्रु राशि में हो तो भृगुषष्ठोद्भव दोष निःसंदेह नहीं होता है ।। १०७१ ।।

संग्रह चन्द्र दोष का परिहार

गुरुः स्वकीयवर्गस्थो बलवान्कण्टकाश्रितः ।
पश्यन् सग्रहशीतांशुं तद्दोषं विलयं नयेत् ।। १०७२ ।।

जब कि गुरु अपने वर्ग से बली विवाह लग्न से १।४।७।१० में होता है तो संग्रह चन्द्र का दोष समाप्त हो जाता है ।। १०७२ ।।

पुनः भङ्गद ग्रह दोष परिहार

शत्रुनीचर्क्षगो शुक्रो न दोषोस्त्र्यरिसंस्थितः ।
नाशुभश्चाष्टमो भौमः शत्रुनीचास्तगो यदि ।। १०७३ ।।

जब कि शुक्र तीसरे या छठे भाव में शत्रु राशि या नीच राशि में होता है तो भाव जन्य दोष का अभाव और आठवें में भौम शत्रु राशि या नीच राशि में हो या अस्त हो तो अष्टम भौम से उत्पन्न दोष का अभाव होता है ।। १०७३ ।।

भङ्गद चन्द्र दोष का परिहार

नीचो नीचांशगश्चन्द्रो नाशुभोष्टारिरिःफगः ।
लग्ने बली गुरुः शुक्रश्चन्द्रो वा शुभवर्गगः ।। १०७४ ।।
शुभदृष्टे निहंत्येव दोषं रिःफारिचन्द्रजः ।। १०७५ ।।

---

१. मु. चि. ६ पृ. ८६ श्लो. पी. टी. । २. मु. चि. ८६ श्लो. पी. टी. ।

जब कि चन्द्रमा आठवें या छठे या बारहवें भाव में नीच राशि या नीच राशि के नवांश में होता है तो अशुभ फलदाता नहीं होता है या लग्न में बली गुरु या शुक्र या चन्द्रमा शुभग्रह के वर्ग में शुभग्रह से दृष्ट होने पर चन्द्रमा १२।६ आदि जन्य दोष प्रदान करने में असमर्थ होता है ॥ १०७४-१०७५ ॥

अथ विवाहे अब्दाद्यनेकदोषाणामपवादमाह—

अब आगे विवाह में अब्दादि अनेक दोषों के परिहार को बताते हैं।

विविध दोषापवाद

कश्यपः—

[1]अब्दायनर्तुमासोत्थाः पक्षतिथ्यर्क्षसम्भवाः।
ते सर्वे नाशमायांति केन्द्रसंस्थे शुभग्रहे ॥ १०७६ ॥

ऋषि कश्यप ने बताया है कि वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि और नक्षत्र से उत्पन्न होने वाले दोष की १।४।७।१० में शुभग्रह होने पर नष्ट होते हैं ॥ १०७६ ॥

यमकंटक दोषापवाद

गुरुः—

त्रिकोणकण्टके वापि शुभस्तिष्ठेद्बलान्वितः।
यमकण्टकदोषोपि नात्र स्याच्चन्द्रलग्नयोः ॥ १०७७ ॥

गुरु जी ने बताया है कि ५।९।१।४।७।१० में बली शुभग्रह के होने पर लग्न व चन्द्रमा का और यमकंटक दोष का भी अभाव होता है ॥ १०७७ ॥

शुभकर्मरते चन्द्रे शुभांशे शुभवीक्षिते।
यमकण्टकसम्भूते दोषो नैवात्र विद्यते ॥ १०७८ ॥

शुभ कर्म में आसक्त चन्द्रमा शुभग्रह के नवांश में शुभ ग्रह से दृष्ट होने पर यमकंटक से उत्पन्न दोष का अभाव होता है ॥ १०७८ ॥

अन्यः—

[2]गुरुरेकोपि केन्द्रस्थः शुक्रो वा यदि वा बुधः।
हरेः स्मृतिर्यथा हन्ति तद्वद्दोषा न कालजाः ॥ १०७९ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि केन्द्र में शुक्र, बुध, गुरु में से एक के भी रहने पर काल से उत्पन्न समस्त दोष नष्ट होते हैं। जैसे भगवान् विष्णु का स्मरण समस्त विपत्तियों का नाशक होता है। कहा है 'हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्' ॥१०७९ ॥

[3]लत्तोपग्रहचण्डीशचन्द्रयामित्रसम्भवाः।
तत्केन्द्रगो गुरुर्हन्ति सुपर्णः पन्नगानिव ॥ १०८० ॥

लत्ता, उपग्रह, चण्डीश, चन्द्र, जामित्र जन्य दोषों का विनाश केन्द्र में गुरु के रहने पर ऐसे ही होता है जैसे गरुड़ सूर्यों का विनाश करता है ॥ १०८० ॥

---

१. मु. चि. ६ प्र. ८७ श्लो. पी. टी.। २. ज्यो. नि. ८० पृ. २३ श्लो.।
३. मु. चि. ६ प्र. ८७ श्लो. पी. टी.।

[1]संहिताप्रदीपे—

सचन्द्रराशेरशुभो नवांशः प्रोक्तः सपापोपि विलग्नसंस्थः।
त्रिकोणकेंद्रेषु गुरुः सितोपि यदा तदासावशुभोपि शस्तः॥ १०८१॥

सग्रह चन्द्र राशि से जो अशुभ नवांश कहा गया है वह भी पापग्रह के साथ लग्न में हो व केन्द्र या त्रिकोण में गुरु या शुक्र हो तो यह अशुभ भी शुभ होता है॥ १०८१॥

[2]नारदः—

उक्तानुक्ताश्च ये दोषास्तान्निहन्ति बली गुरुः।
केन्द्रसंस्थास्थितो वापि पन्नगान् गरुडो यथा॥ १०८२॥

ऋषि नारद जी ने बताया है कि उक्त, अनुक्त (बिना कहा हुआ) समस्त दोषों का बलवान् गुरु केन्द्र में होने पर ऐसे नाश होता है, जैसे गरुड़ जी सर्पों का विनाश करते हैं॥ १०८२॥

[3]कश्यपः—

काव्यो गुरुर्वा सौम्यो वा यदा केन्द्रत्रिकोणगाः।
नाशयंत्यखिलान् दोषान् पापानिव हरिस्मृतिः॥ १०८३॥

ऋषि कश्यप जी ने बताया है कि लग्न से केन्द्र या त्रिकोण में शुक्र या गुरु या बुध के होने पर समस्त दोषों का ऐसे विनाश होता है जैसे भगवान् विष्णु के स्मरण से पापों का ध्वंस होता है॥ १०८३॥

[4]वसिष्ठः—

ये लग्नदोषाः कुनवांशदोषाः पापैः कृता दृष्टिनिपातदोषाः।
लग्ने गुरुस्तान्विमलीकरोति फलं यथांभः कतकद्रुमस्य॥ १०८४॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि लग्न दोष, कुत्सित नवांश, पापजन्य, दृष्टि दोष को लग्नस्थ गुरु विमल करता है जैसे गन्दे जल को रीठा शुद्ध करता है॥ १०८४॥

लग्न जन्य दोषों का परिहार

पापोपि लग्नाधिपतिस्त्रिषष्ठलाभस्थितः स्थानबलाधिकश्च।
लग्नोत्थदोषान्निखिलान्निहंति पापानि यद्वत्परमाक्षरज्ञः॥ १०८५॥

लग्नेश पाप ग्रह भी ३।६।११ में स्थान बल से अधिक बली होकर स्थित हो तो लग्नोत्थ समस्त दोषों का विनाश उसी तरह करता है जैसे परम अक्षर का ज्ञाता पापों का नाश करता है॥ १०८५॥

---

१. मु. चि. ६ प्र. ८७ श्लो. पी. टी.। २. मु. चि. ६ प्र. ८८ श्लो. पी. टी.।
३. मु. चि. ६ प्र. ८८ श्लो. पी. टी.। ४. मु. चि. ६ प्र. ८८ श्लो. पी. टी.।

पुनः भङ्गद दोष का अपवाद

[1]तथाच —

यत्रैकादशगे सूर्ये दोषा नाशं ययुस्तदा ।
स्मरणादेव रुद्रस्य पापं जन्मशतोद्भवम् ॥ १०८६ ॥

जिस विवाह लग्न से सूर्य, ग्यारहवें भाव में होता है तो दोषों का विनाश ऐसे होता है जैसे भगवान् शंकर का स्मरण करने से सौ जन्म में उत्पन्न पापों का विनाश होता है ॥ १०८६ ॥

[2]कश्यपः—

वर्गोत्तमगते लग्ने वर्गदोषालयं ययुः ।
चन्द्रे चोपचये वापि ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥ १०८७ ॥

ऋषि कश्यप ने बताया है कि वर्गोत्तम में लग्न के रहने पर या ३।६।११ में लग्न से चन्द्रमा के होने पर दोषों का ऐसे अभाव होता है, जैसे गर्मी में बरसाती नदियों का अभाव हो जाता है ॥ १०८७ ॥

विविध दोषापवाद

[3]मुहूर्तलग्नषड्वर्गकुनवांशग्रहोद्भवाः ।
ये दोषास्तान्निहन्त्येव यत्रैकादशगः शशी ॥ १०८८ ॥

लग्न से चन्द्रमा के ग्यारहवें होने पर मुहूर्त, लग्न, षड्वर्ग और दूषित नवांश स्थित ग्रह जन्य दोष का नाश होता है ॥ १०८८ ॥

[4]लग्नाद्दुःस्थानगे व्योमचरोत्थं दोषसंचयम् ।
शुभः केंद्रगतो हंति दावाग्निर्विपिनं यथा ॥ १०८९ ॥

लग्न से दूषित स्थान में स्थित ग्रह जन्य दोष समुदाय का विनाश शुभ ग्रह के केन्द्र में रहने पर ऐसे होता है, जैसे दावानल से वन का नाश होता है ॥ १०८९ ॥

[5]नारदः—

दोषाणां च शतं हंति बलवान्केंद्रगो बुधः ।
अपहाय द्युनं शुक्रो द्विगुणं लक्षमंगिराः ॥ १०९० ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि केन्द्र में बली बुध के रहने पर सौ दोषों का और सातवें को छोड़ कर शेष केन्द्रों में बलवान् शुक्र की स्थिति से दो सौ दोषों का तथा बलवान् बृहस्पति से लाख दोषों का विनाश होता है ॥ १०९० ॥

[6]लग्नेट् लग्नांशनाथो वा आयगः केन्द्रगोपि वा ।
राशिं निहन्ति दोषाणामिंधनानीव पावकः ॥ १०९१ ॥

---

१. मु. चि. ६ प्र. ८८ श्लो. पी. टी. । २. मु. चि. ६ प्र. ८८ श्लो. पी. टी. ।
३. मु. चि. ६ प्र. ८८ श्लो. पी. टी. । ४. मु. चि. ६ प्र. ८८ श्लो. पी. टी. ।
५. मु. चि. ६ प्र. ८९ श्लो. पी. टी. । ६. मु० चि० ६ प्र० ८९ श्लो० पी० टी० ।

लग्नेश या लग्नांश स्वामी ग्यारहवें या केन्द्र में होने पर दोष राशियों का ऐसे विनाश होता है, जैसे अग्नि इँधन का विनाश करती है ॥ १०९१ ॥

एकोपि केन्द्रगः सौम्यः सकलं दोषसंचयम् ।
विनाशयति घर्मांशुरुदितं तिमिरं यथा ॥ १०९२ ॥

जब कि एक भी बली शुभग्रह केन्द्र में होता है तो समस्त दोष समुदाय का विनाश ऐसे ही होता है, जैसे सूर्योदय से अन्धकार का विनाश होता है ॥ १०९२ ॥

शुभग्रहःस्वोच्चसंस्थो लग्नं पश्यति चेद्यदा ।
तदा दोषालयं यान्ति ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥ १०९३ ॥

जब कि शुभग्रह स्व उच्चराशि में होकर लग्न को देखता है तो गर्मी में बरसाती नदियों की तरह दोषों का अभाव होता है ॥ १०९३ ॥

सकल दोष परिहार

एकोपि सौम्यः खचरः त्वधिमित्रगृहस्थितिम् ।
आलोकयति चेल्लग्नं सर्वदोषविनाशकृत् ॥ १०९४ ॥

जब कि एक भी शुभग्रह अधिमित्रस्थ राशि में लग्न को देखता है तो समस्त दोषों का विनाश करने वाला होता है ॥ १०९४ ॥

अत्रिः—

यस्मिन्विवाहे गुरुशुक्रसौम्याः केन्द्रस्थिताः पुत्रधनस्थिता वा ।
समस्तदोषान्विनिहन्ति चन्द्रः शुभं च तस्मिन्धनसंस्थितो वा ॥ १०९५ ॥

ऋषि अत्रि ने बताया है कि जिस विवाह लग्न में गुरु, शुक्र, बुध केन्द्र में हो या दूसरे पाँचवें में हो व धन में चन्द्रमा हो तो समस्त दोषों का नाश होने के पश्चात् शुभ होता है ॥ १०९५ ॥

स्ववर्गकेन्द्रेषु गतेऽमरेज्ये बलेन युक्ते शुभवीक्षिते च ।
सितेथवा शीतमयूखपुत्रे नश्यन्ति दोषाः सकला विवाहे ॥ १०९६ ॥

जिस विवाह लग्न में अपने वर्ग में केन्द्र में बली गुरु या शुक्र या बुध शुभ ग्रह से दृष्ट होता है तो समस्त दोषों का विनाश होता है ॥ १०९६ ॥

रत्नमालायाम्—

दोषाणां शतमपि हन्ति सोमपुत्रः केन्द्रस्थो द्युनमपहाय दृश्यमूर्तिः ।
दैत्येज्यो द्विगुणमिदं पुनर्बलीयानाचार्यः शमयति लक्षमप्यवश्यम् ॥ १०९७ ॥

रत्नमाला में कहा है कि विवाह लग्न से १।४।७।१० में बुध के रहने पर सौ और ७ वें को छोड़कर भिन्न केन्द्रों में शुक्र की स्थिति से दो सौ और गुरु के केन्द्र में रहने पर एक लाख दोषों का विनाश होता है ॥ १०९७ ॥

रात्रौ चन्द्रे दिवा सूर्ये लग्नमेकादशस्तथा ।
शतकोटिदुरितं हन्ति यथा चक्रेण माधवः ॥ १०९८ ॥

दिन में चन्द्रमा, रात्रि में सूर्य लग्न से ग्यारहवें भाव में होने पर सौ करोड़ पापों का नाश होता है। जैसे माधव के चक्र से दुष्कृत का नाश होता है ॥ १०९८ ॥

दूषित योग में त्याज्य घटी

अर्द्धप्रहरपूर्वार्द्धे मध्ये तु यमघण्टके।
कुलिकांत्यघटी त्याज्या शेषेषु शुभमाचरेत् ॥ १०९९ ॥

अर्द्धप्रहर की पूर्वार्ध की, यमघंटक में मध्य की और कुलिक योग की अन्त्य घटी त्याज्य होती है और शेषों में शुभ का आचरण करना चाहिए ॥ १०९९ ॥

गोधूलि प्रशंसा

अथ गोधूलिप्रशंसा—

भागुरिः—

[1]गोपैर्यष्ट्या हतानां खुरपुटदलिता याति धूलिर्दिनान्ते
सोद्वाहे सुन्दरीणां विविधधनसुतारोग्यसौभाग्यदात्री।
तस्मिन्काले न ऋक्षं न च तिथिकरणं नैव लग्नं न योगाः
ख्याताः पुंसां सुखार्थं शमयति दुरितान्युत्थितं गौरजः स्युः ॥ ११०० ॥

ऋषि भागुरि ने बताया है कि दिनान्त के नजदीक समय में ग्वालों के द्वारा अपनी लकड़ी से ताडित गायों के खुरों से खण्डित धूलि सुन्दरियों के विवाह में अत्यधिक धन, पुत्र, आरोग्य और सौभाग्य को करने वाली होती है। उस गोधूलि समय में नक्षत्र, तिथि, करण, लग्न व योग का कुछ भी विचार नहीं करना चाहिये। पुरुषों के सुख के लिये वह काल कहा गया है तथा गायों के खुरों से उत्पन्न यह धूलि सब दुष्कृतों का नाश करने वाली होती है ॥ ११०० ॥

विशेष—यह श्लोक पीयूष धारा में भी भागुरि के नाम से उपलब्ध है तथा वृहत्संहिता में भी है ॥ ११०० ॥

गोधूलि का अन्य विधान

लल्लः—

[2]लग्नं यदा नास्ति विशुद्धमन्यद्गोधूलिकं साधु तदा वदन्ति।
लग्ने विशुद्धे सति वीर्ययुक्ते गोधूलिकं नैव फलं वदन्ति ॥ ११०१ ॥

[3]शुभाशुभयुतं सर्वराशेर्दोषं च निन्दितम्।
विवाहलग्नवच्छेषं गोधूलिं प्राह भागुरिः ॥ ११०२ ॥

आचार्य ल्लल ने बताया है कि जब विशुद्ध लग्न की अप्राप्ति हो तो गोधूलि में विवाह करना चाहिये और वली शुद्ध लग्न मिलने पर गोधूलि का फल नहीं होता

१. मु० चि० ६ प्र० ९७ श्लो० पी० टी० तथा वृ० सं० ८३ अ० १३ श्लो०।
२. मु० चि० ६ प्र० ९७ श्लो० पी० टी०। ३. मु० चि० ६ प्र० ९७ श्लो० पी० टी०।

है। शुभाशुभ से युत और शेष निन्दित समस्त राशियों के दोष विवाह लग्न की तरह गोधूलि में भी विचार करना चाहिये ॥ ११०१-११०२ ॥

गोधूलि में पाँच का त्याग

किंच—

[1]कुलिकं क्रांतिसाम्यं च मूर्तौ षष्ठाष्टमः शशी।
पंचगोधूलिके त्याज्या अन्यदोषाः शुभावहाः ॥ ११०३ ॥

दैवज्ञ मनोहर में बताया है कि कुलिक, क्रान्ति साम्य और १।६।८ में चन्द्रमा इन पाँचों का गोधूलि लग्न में त्याग करना चाहिये और अन्य दोष शुभावह होते हैं ॥ ११०३ ॥

गोधूलि के अधिकारी

नारदः—

[2]प्राच्यानां तु कलिगानां मुख्यं गोधूलिकं स्मृतम्।
गांधर्वादिविवाहेषु वैश्योद्वाहेषु योजयेत् ॥ ११०४ ॥

प्राच्य देशीय व कलिङ्ग वासियों में मुख्य गोधूलि लग्न होती है तथा गान्धर्वादि व बनियों के विवाह में इसकी योजना करनी चाहिये ॥ ११०४ ॥

गोधूलि की आवश्यकता

[3]घटी लग्नं यदा नास्ति तदा गोधूलिकं शुभम्।
शूद्रादीनां शुभं प्राहुर्न द्विजानां कदाचन ॥ ११०५ ॥

दैवज्ञमनोहर में बताया है कि जब घटी लग्न मिलने में अभाव हो तो गोधूलि में विवाह शुभ होता है। और शूद्रों को गोधूलि शुभ व ब्राह्मणों का इसमें विवाह नहीं करना चाहिये ॥११०५ ॥

[4]महादोषान् परित्यज्य प्रोक्तधिष्ण्यादिकेषु च।
कारयेद्गोरजो यावत्तावल्लग्नं शुभावहम् ॥ ११०६ ॥

महादोषों को छोड़कर प्रोक्त नक्षत्रों में जब तक आकाश में धूलि रहे तब तक गोधूलि लग्न शुभावह होती है ॥ ११०६ ॥

सर्ववर्णों के लिये गोधूलि

[5]लग्नशुद्धिर्यदा नास्ति कन्या यौवनशालिनी।
तदा वै सर्ववर्णानां लग्नं गोधूलिकं शुभम् ॥ ११०७ ॥

जबकि लग्न शुद्धि का अभाव हो तथा कन्या यौवन शालिनी हो तो समस्त वर्णों के लिये गोधूलि शुभावह होती है ॥ ११०७ ॥

---

१. मु. चि. ६ प्र. ९७ श्लो. पी. टी.। २. मु. चि. ६ प्र. ९७ श्लो. पी. टी.।
३. मु. चि. ६ प्र. ९७ श्लो. पी. टी.। ४. मु. चि. ६ प्र. ९७ श्लो. पी. टी.।
५. मु. चि. ६ प्र. ९७ श्लो. पी. टी.।

विप्रादि के लिये गोधूलि

[1]भूपालवल्लभे—

विप्रेषु घटिकालाभे दातव्यं गोरजो बुधैः।
संकीर्णे गोरजः शस्तं परेषु द्वितयं शुभम्॥ १०८॥

भूपालवल्लभ में कहा है कि ब्राह्मण के विवाह में घटिका लग्न की अप्राप्ति हो तो गोधूलि में तथा संकीर्ण जाति में गोधूलि शुभ और अन्य जातियों में दोनों शुभ होती हैं॥ ११०८॥

गोधूलि समय

केचित्—

[2]यावद्दिनान्ते दिशि पश्चिमायां पश्येत्तृतीयं रविबिंबभागम्।
तस्मात्परं नाडिकयुग्ममेके गोधूलिकालं मुनयो वदन्ति॥ ११०९॥

किसी के मत में दिन के अन्त में पश्चिम दिशा में जब तक सूर्य बिम्ब का तृतीय भाग दृष्टिगोचर होता है तब तक तथा किसी के मत में दिनान्त में २ घटी गोधूलि रहती है। ऐसा ऋषि लोगों का कहना है॥ ११०९॥

गोधूलि में त्याज्य

ज्योतिः[3] संहितासारे —

षष्ठाष्टमे मूर्तिगते शशांके गोधूलिके मृत्युमुपैति कन्या।
कुजेऽष्टमे मूर्तिगतेथवास्ते वरस्य नाशं प्रवदन्ति सन्तः॥ १११०॥

ज्योतिःसंहितासार में कहा है कि गोधूलि के समय छठे या आठवें या लग्न में चन्द्रमा के रहने पर कन्या मृत्यु को प्राप्त करती है तथा आठवें या लग्न या सातवें में चन्द्र स्थिति से पुरुष का विनाश होता है॥ १११०॥

प्रकारान्तर से त्याज्य

अन्योपि—

[4]षष्ठाष्टमे चन्द्रजजीवक्षोणीसुतेऽस्तगे वा भृगुनन्दने वा।
मूर्तौ च चन्द्रे नियमेन मृत्युर्गोधूलिकं स्यादिह वर्जनीयम्॥ ११११॥

अन्य ने भी बताया है कि ६।८ या ७ में बुध वा गुरु वा मंगल वा शुक्र के रहने पर और लग्न में चन्द्र स्थिति होने पर नियम से मृत्यु होती है। अतः इस प्रकार की गोधूलि का त्याग करना चाहिये॥ ११११॥

---

१. मु० चि० ६ प्र० ९७ श्लो० पी० टी०।
२. मु० चि० ६ प्र० ९७ श्लो० पी० टी०।
३. मु० चि० ६ प्र० ९९ श्लो० पी० टी०।
४. मु० चि० ६ प्र० ९९ श्लो० पी० टी०।

अन्यच्च—

धिष्ण्यं क्रूरयुतं त्याज्यं मूर्तौ षष्ठाष्टमः शशी।
गोरजस्तत्प्रशंसन्ति सन्तः शनिदिनं विना॥ १११२॥

पापग्रह से युक्त नक्षत्र व लग्न या छठे या आठवें में चन्द्रमा का गोधूलि में त्याग करना चाहिये। शनिवार को छोड़कर गोधूलि की विद्वान् जन प्रशंसा करते हैं॥ १११२॥

चन्द्र भङ्गद दोष परिहार

केशवार्कः—

[1]गोधूलिकेपि विधुमष्टमषष्ठमूर्ति यन्मोचयन्ति तदयं स्वरुचिप्रपंचः।
पंचांगशुद्धिमयमेव विवाहधिष्ण्ये यस्मादिदं सततमस्तगते पतंगे॥ १११३॥

विवाह वृन्दावन में बताया है कि छठे, आठवें व लग्न में चन्द्रस्थितिवश लग्न का भङ्ग बतलाने वालों का अपनी इच्छा का ही विचार है। गोधूलि लग्न में केवल पञ्चाङ्ग शुद्धिमय काल की ही अपेक्षा होती है न कि लग्न शुद्धि की क्योंकि इसमें सप्तमस्थ सूर्य होने से महान् दोष रहने पर भी इसका विधान है, अतः छठे, आठवें चन्द्रमा का दोष नहीं होता है॥ १११३॥

गोधूलि का ज्ञान

संहितासारे—

यत्रैकादशगश्चन्द्रो द्वितीये वा तृतीयगः[2]।
गोधूलिका सविज्ञेया शेषा धूलिरिति स्मृता॥ १११४॥

जिस लग्न में ग्यारहवें या दूसरे या तीसरे भाव में चन्द्रमा होता है वह गोधूलि और अन्य धूलि होती है॥ १११४॥

गोधूलि में विशेष

अन्यच्च—

तिथिवारेंदुनक्षत्रं लग्नं तारादयो ग्रहाः।
नानिष्टदाः परिणये गोधूलिसमये सति॥ १११५॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि तिथि, वार, चन्द्र, नक्षत्र, लग्न, तारादि ग्रह गोधूलि लग्न में विवाह होने पर दूषित फलदायी नहीं होते हैं॥ १११५॥

राजमार्तण्डः—

ऋक्षे शुभेपि शशिनि प्रतिकूलभेपि
पापेष्वपि क्षितिसुतोपि विलग्नगोपि।
गोधूलियोगमपरे परिकीर्तयन्ति
स्त्रीणामपत्यपतिसौख्यवहं विवाहे॥ १११६॥

---

१. वि० वृ० ९ अ० ४ श्लो०। २. मु. चि ६ प्र. ९९ श्लो. पी. टी.।

राजमार्तण्ड में बताया है कि शुभ नक्षत्र में भी, प्रतिकूल चन्द्र राशि में भी, लग्न में भौम के रहने पर भी गोधूलि लग्न में अन्य आचार्य स्त्रियों का पुत्र, पति आदि के लिए सुखदायी होना बताते हैं ॥ १११६ ॥

अन्योपि—

यामित्रं न विचिन्तयेद्ग्रहयुतं लग्नं नवांशं तथा
नो वेधो न कुवारकं न हिमगो लग्नं च भौमान्वितः ।
होरायां च नवांशकं न च खगा मूर्त्यादिभावस्थिताः
हित्वा वर्जतनूषडाष्टमगते गोधूलिकं शस्यते ॥ १११७ ॥

ग्रहयुत, लग्न, यामित्र नवांश, वेध, कुलकादि, लग्नस्थ चन्द्र, भौमयुत लग्न, होरा, नवांश, लग्नादि भावस्थ ग्रह फल का गोधूलि में विचार नहीं करना इसमें लग्न या ६ या ८ में चन्द्रमा का अभाव अपेक्षित होता है ॥ १११७ ॥

भङ्गद चन्द्र का परिहार

[1]नांशो न लग्नमिह दृष्टयुतं स्वभर्त्रा
नार्कारसौरतमसापिच संगभंगः ।
किं चंद्रचारभयमेकमिहास्तु किंचि-
न्नात्र प्रमाणवचनं किमपि श्रुतं नः ॥ १११८ ॥

विवाह वृन्दावन में बताया है कि नवांश व लग्न अपने स्वामी से दृष्ट या युत न हों तथा सूर्य, भौम, शनि या राहु के योग से लग्न भङ्ग न हो एवं केवल षष्ठ, अष्टम में चन्द्र होने पर एक दोष दाता नहीं होता और ६।८ में स्थित चन्द्रमा का दोष मुनि वाक्यों की सम्मति के अभाव में नहीं होता है ॥ १११८ ॥

वारवश आवश्यकता

[2]सार्कं शनौ विरविचित्रशिखण्डिसूनौ
तत्केवलं कुलिक यामदलोपलम्भात् ।
प्रायेण शंकरभुवामशुभर्क्षपक्ष-
क्रूरक्षणेषु शुभकृत्करपीडनं स्यात् ॥ १११९ ॥

शनिवार के दिन सूर्य के दृष्टिगोचर रहने, गुरुवार में सूर्यास्त के पश्चात् गोधूलि में विवाह करना चाहिये। क्योंकि शनिवार में रात्रि के प्रथम मुहूर्त में कुलिक और गुरुवार में अष्टम मुहूर्त में यामार्ध होने से त्याग होता है। प्रायः संकर जाति में अशुभ नक्षत्र, पक्ष, क्रूर क्षण में विवाह शुभ होता है ॥ १११९ ॥

---

१. वि० वृ० ९ अ० ५ श्लो० ।
२. वि० वृ० ९ अ० ६ श्लो० ।

वारवश त्याग काल

[१]मन्दवारे न कर्तव्यं बुधैर्लग्नं निशामुखे।
गुरोर्वारे न कर्तव्यं सार्कं संध्यासु लग्नकम् ॥ ११२० ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि शनिवार के दिन रात्रि के प्रारम्भ में और गुरुवार के दिन सूर्य सत्ता में गोधूलि लग्न में विवाह नहीं करना चाहिये ॥ ११२० ॥

शनिवारे लग्नं सार्कं ग्राह्यं गुरुवारे अस्तमिते रवौ ग्राह्यम् ॥ ११२१ ॥

शनिवार में सूर्य के रहते और गुरुवार में सूर्यास्त के पश्चात् गोधूलि में विवाह करना चाहिये ॥ ११२१ ॥

गोधूलि लग्न की प्रशस्तता

उक्तं च—

क्षीणं चन्द्रं देवपूज्यार्किवारौ विष्टं क्रूरोपेतभानिष्टयोगात्।
संक्रान्तिं च प्रोक्तशेषेषु शस्तं सूर्ये चास्ते याति गोधूलिकाख्याम् ॥ ११२२ ॥

कहा है कि क्षीणचन्द्र, गुरु, शनिवार, भद्रा, क्रूरयुत नक्षत्र, संक्रान्ति और अनिष्ट योग को छोड़कर शेष काल में सूर्यास्त के पश्चात् गोधूलि लग्न शुभ होती है ॥११२२॥

गोधूलि काल

[२]अत्रोभयत्र घटिका दलमिष्टमाहुर्ग्राह्यस्तदम्बरमणेरपि सार्द्धबिंबम्।
एकार्गलानियतये तपनार्द्धबिंबवेलाव्यवस्थितिरियं रचयांबभूव ॥ ११२३ ॥

गोधूलि लग्न सूर्य के अर्धास्त से पहिले और बाद में अभीष्ट आधी घटी समय होता है। इसलिये अर्ध विम्बास्त काल का ग्रहण नहीं करना चाहिये। यह तो तपनार्ध वेला व्यवस्थिति काल की अर्गला नियति के लिये मुनियों ने बनाई है ॥ ११२३ ॥

शौनकः—

[३]दिनान्ते सूर्यबिंबार्द्धात्पूर्वमेव घटीदलम्।
एकार्गला च वेलेयं विवाहे पुत्रपौत्रदम् ॥ ११२४ ॥

ऋषि शौनक ने बताया है कि दिनान्त में सूर्य बिम्ब के अर्ध अस्त से पूर्व आधी घटी एकार्गला वेला पुत्र व पौत्र को देने वाली होती है ॥ ११२४ ॥

त्रिविधा गोधूलि

[४]गोधूलिं त्रिविधा वदन्ति मुनयो नारीविवाहादिषु
हेमन्ते शिशिरे प्रयाति मृदुतां पिण्डीकृते भास्करे।
ग्रीष्मे चार्द्धमिते सर्वसमये भानौ गते दृश्यतां
सूर्ये चास्तमुपागते भगवती प्रावृट् शरत्कालयोः ॥ ११२५ ॥

---

१. मु. चि. ६ प्र. ९९ श्लो पी. टी.। २. ज्यो नि. १५६ पृ. ४ श्लो.।
३. ज्यो. नि. १५६ पृ. ८ श्लो.। ४. मु. चि. ६ प्र. ९८ श्लो. पी. टी.।

मुनियों ने त्रिविधा गोधूलि का विवेचन किया है हेमन्त व शिशिर ऋतु में स्त्री-विवाहादि में अस्त के समय मृदु, गोल, सूर्य के होने पर १, ग्रीष्म ऋतु में सब दिन अर्धास्त सूर्य के होने पर २ और वर्षा, शरद् ऋतु में सूर्य के अस्त होने के पश्चात् गोधूलि ३ समय होता है ॥ ११२५ ॥

गोधूलि की विशेषता

नास्मिन्ग्रहा न तिथयो न च विष्टिवारा
ऋक्षाणि नैव जनयन्ति कदापि दोषम् ।
अव्याहतः सततमेव विवाहकाले
यात्रासु चायमुदितो भृगुजेन दोषः ॥ ११२६ ॥

इस गोधूलि लग्न में ग्रह, तिथि, वार, भद्रा, नक्षत्र कभी भी दोष को नहीं उत्पन्न करते यह विवाह में अव्याहत काल होता है किन्तु भार्गव ने यात्रा में गोधूलि को दूषित बताया है ॥ ११२६ ॥

यामित्रं न विचितयेद्ग्रहकृतं लब्धाच्छशांकात्तथा
नो वेधं न कुवासरं नहि गतं नो गामिभं पापभैः ।
नो होरा न नवांशकं नहि खगान्मूर्त्यादिभावस्थितान्
हित्वा चन्द्रमसं षडष्टमगतं गोधूलिकं शस्यते ॥ ११२७ ॥

इस गोधूलि में ग्रहकृत तथा लब्ध चन्द्र से यामित्र की चिन्ता, वेध, कुवार, पाप से भुक्त व भोग्य नक्षत्र, होरा, नवांश एवं अष्टमस्थ ग्रहों का विचार ६।८ में चन्द्रमा को छोड़कर नहीं करना चाहिये ॥ ११२७ ॥

यावत्कुंकुमरक्तचन्दननिभो नास्तं गते भास्करे
यावच्चोडुगणो नभस्तलगतो नो दृश्यते रश्मिभिः ।
यावद्गोखुरघातचूर्णितरजो विस्तोर्यते चांबरे
तावत्सर्वजनस्य मंगलविधौ गोधूलिकं शस्यते ॥ ११२८ ॥

जब कुंकुम तुल्य लाल कान्तिवाला सूर्य अस्त न हो व आकाश में अपनी किरणों से युक्त नक्षत्र न हों एवं गायों के खुरों से हत चूर्णितधूलि आकाश में फैलती हो वह गोधूलि समय समस्त जन की मंगल विधि में शुभ होता है ॥ ११२८ ॥

शुभ गोधूलि

अस्तक्ष्माधरमुष्णधाम्नि गतवत्यस्पष्टतारागणे
सन्ध्यारागविवर्जिताऽपरदिशा श्रीविष्णुनोद्वाहिता ।
तावन्नैव तिथिर्न योगमशुभं लग्नेन्दुताराबलं
कालोयं कथितः पुराणमुनिभिर्गोधूलिकाख्यः शुभः ॥ ११२९ ॥

जबकि अस्तक्षितिज में सूर्य होता है और तारागण अस्पष्ट होते हैं तथा पश्चिम दिशा सन्ध्या राग से रहित होती है, इसमें विष्णु भगवान् का विवाह हुआ था । तब

तक के समय में तिथि, योग, लग्न, इन्दु, तारावल का दोष गोधूलि में नहीं होता है। मुनियों ने इसे शुभ कहा है ॥ ११२९ ॥

मासवश गोधूलि का फल

मार्गे गोधूलियोगे प्रभवति विधवा माघमासे तथैव
पुत्रायुर्धनयौवनेन सहिता कुम्भस्थिते भास्करे।
वैशाखे सुखदा प्रजाधनवता ज्येष्ठे पतेर्मानदा
आषाढे धनधान्यपुत्रबहुला पाणिग्रहे कन्यका ॥ ११३० ॥

मार्गशीर्ष व माघ मास में गोधूलि लग्न में विवाह करने पर कन्या विधवा, कुम्भ के सूर्य में पुत्र, आयु, धन, यौवन से युक्त, वैशाख में सुखी, प्रजा, धनवती, जेठ में पति से सम्मान पाने वाली और आषाढ में कन्या धन, धान्य व अधिक पुत्र से युत होती है ॥ ११३० ॥

संकीर्ण जाति के विवाह में नियत काल विशेष

अथ संकीर्णजातीनां विवाहे नियतं कालविशेषम्—

शार्ङ्गीये—

कृष्णे पक्षे भानुभौमार्कजानां वारे योगे चापि धिष्णे निषिद्धे।
संकीर्णानां दारकर्मप्रशस्तं प्रीत्यर्थायुः प्राप्तये शौनकाद्याः ॥ ११३१ ॥

शार्ङ्गीय में बताया है कि कृष्णपक्ष, सूर्य, मंगल, शनिवार, निषिद्ध योग व नक्षत्र में भी संकीर्ण जाति का विवाह प्रीति, धन, आयु प्राप्ति के लिये शौनकादि ऋषियों ने शुभ कहा है ॥ ११३१ ॥

[1]केशवार्कः—

प्रायेण शंकरभवामशुभर्क्षपक्षक्रूरक्षणेषु शुभकृत्करपीडनं स्यात् ॥ ११३२ ॥

विवाह वृन्दावन में कहा है कि प्रायः संकर जाति का विवाह अशुभ नक्षत्र, कृष्ण पक्ष, क्रूर क्षण में शुभ करने वाला होता है ॥ ११३२ ॥

द्वितीय विवाह का समय

अथ द्वितीयविवाहकालः

संग्रहे—

प्रमदामृतिवासरादितः पुनरुद्वाहवरस्य (?)
विषमे युगवत्सरे शुभो युगले वापि मृतिप्रदो भवेत्।

संग्रह में बताया है कि स्त्री के मरने के पश्चात् पुनः विवाह विषम युग वर्ष में शुभ और सम वर्ष में मरण देने वाला होता है।

---

१. वि० वृ० ९ अ० ५ श्लो०।

तीसरे विवाह का समय

अथ तृतीयविवाहकाल:

मात्स्ये निषेधः—

उद्वाह इति सिद्धयर्थं तृतीयां न कदाचन।
मोहादज्ञानतो वापि यदि गच्छेत्तु मानुषीम् ॥ ११३३ ॥
न पश्यत्येव संदेहो गर्गस्य वचनं तथा ॥ ११३४ ॥

मात्स्य में कहा है कि उद्वाह सिद्धि के लिये तृतीय पत्नी से विवाह नहीं करना चाहिये। यदि कोई मोह व अज्ञान से तृतीय मानुषी से विवाह करता है तो उसे भोग पायेगा या नहीं इसमें संदेह है। ऐसा गर्ग का वचन है ॥ ११३३–११३४ ॥

संग्रहे—

तृतीया यदि चोद्वाहे तर्हि सा विधवा भवेत्।
चतुर्थादि विवाहार्थं तृतीयेऽर्कं समुद्वहेत् ॥ ११३५ ॥

संग्रह में कहा है कि यदि विवाहित स्त्री तीसरी होती है तो वह विधवा होती है। अतः तीसरी मानुषी से विवाह को चौथा बनाने के लिये तीसरा विवाह अर्क, पीपल आदि से विवाह कर लेना चाहिये ॥ ११३५ ॥

पुनर्भू विवाह काल

अथ पुनर्भूविवाहकालः—

ज्योतिर्निबंधे[1]—

न शुक्रास्तादिकं चिंत्यं शुद्धिवेधादिकं तथा।
पुनर्भुवासंवरणे न मासं तिथिशोधनम् ॥ ११३६ ॥

ज्योतिर्निवन्ध में कहा है कि शुक्र का अस्तादि, शुद्धि, वेध, मास, तिथि शुद्धि का विचार पुनर्भू विवाह में नहीं करना चाहिये ॥ ११३६ ॥

मुहूर्तमुक्तावल्याम्—

हस्तादिपंचकतुरंगनिभं धनिष्ठा मार्तंडमंगलगुरौ भृगुवासरेषु।
नंदा च भद्रजयपूर्णवृषालिकुंभे सिंहे सुखं भवति पुत्रपुनर्ग्रहं च ॥ ११३७ ॥

मुहूर्त मुक्तावली में बताया है कि हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, अश्विनी, धनिष्ठा नक्षत्र, सूर्य, मंगल, गुरु, शुक्रवार, नन्दा, भद्रा, जया, पूर्णा तिथि, वृष, वृश्चिक, कुम्भ, सिंह लग्न में पुनर्भू विवाह सुख करने वाला होता है ॥ ११३७ ॥

यवन विवाह समय

अथ यवनविवाहकालः—

अस्तंगते वा गुरुभार्गवानां सिंहस्थिते वा ह्यधिमासकेपि।
शुक्रेन्दुसूर्येज्यबलावरिष्टं विवाहलग्नं यवना वदंति ॥ ११३८ ॥

---

१. ज्यो० नि० १५७ पृ० २ श्लो०।

गुरु, शुक्र के अस्त होने पर या सिंहस्थ गुरु में वा अधिक मास में भी शुक्र, चन्द्र, सूर्य, गुरु के बली होने पर विवाह लग्न यवनों ने अरिष्ट कहा है ॥ ११३८ ॥

शुक्र दोष का अभाव

शुक्रो दैत्यगुरुस्तस्मान्म्लेच्छा दैत्या इव स्मृताः ।
भूभृद्गमविवाहादौ शुक्रदोषो न विद्यते ॥ ११३९ ॥

शुक्र दैत्यों का गुरु होता है और म्लेच्छ दैत्य होते हैं । अतः उन्हें राजदरवार गमन और विवाहादि में शुक्र का दोष नहीं होता है ॥ ११३९ ॥

ये पूर्वदेवाः कथिताः पृथिव्यां तेषां गुरुः शुक्र इहोपदिष्टम् ।
म्लेच्छस्य लोके यवनादिवर्यैः शुक्रस्य दोषस्तत एव नोक्तम् ॥ ११४० ॥

भूमि पर जो पहिले देवता कहे हैं उनका गुरु शुक्र होता है । अतः म्लेच्छ लोक में यवनादि आचार्यों ने शुक्र दोष का अभाव बताया है ॥ ११४० ॥

विवाह से पूर्व दिनों के कृत्यों के शुभ समय

अथ विवाहतः प्राक्कर्तव्यकर्मणां दिनशुद्धिः—

[1]शार्ङ्गीये —
दलनकंडनमंडनवेदिका गृहसुमार्जनवारकमंडपाः ।
करतलग्रहमध्यगतागतं तदखिलं विदधीत विवाहभे ॥ ११४१ ॥

शार्ङ्गीय में बताया है कि दलन (गेहूँ आदि पिसाना) कण्डन (मूसल से चावल शुद्धि करण) मण्डन, वेदी, घर में सफेदी रोगन आदि, वारक मङ्गल कलश, मण्डप, विवाह के मध्य में गतागत समस्त कार्य विवाह के नक्षत्र में करना चाहिये ॥ ११४१ ॥

विवाहकृत्यं निखिलं विवाहभे विलोकयेन्नात्र बलं हिमद्युतेः ।
नवत्रिषष्ठेह्नि विवाहपूर्वतो न वर्णको मंडपतैलमंगलम् ॥ ११४२ ॥

विवाह का सब काम विवाह के नक्षत्रों में करना चाहिये । इसमें चन्द्रबल का अवलोकन नहीं करना और ३।६।९ दिन में विवाह से पहिले कूटना पीसना, मंडप, तैल माङ्गलिक कार्य नहीं करने चाहिये ॥ ११४२ ॥

दलन, कण्डनादि में त्याज्य नक्षत्र

[2]दैवज्ञमनोहरे—
चित्रा विशाखा शततारकाश्विज्येष्ठाभरण्यौ शिवभाच्चतुष्टयम् ।
हित्वा प्रशस्तं फलतैलवेदिका प्रदाननं कंडनमंडपादिकम् ॥११४३॥

दैवज्ञ मनोहर में बताया है कि चित्रा, विशाखा, शतभिषा, अश्विनी, ज्येष्ठा, भरणी, आर्द्रा से चार नक्षत्रों को छोड़कर फलदान, तैल, वेदी, कण्डन और मण्डपादि अन्य नक्षत्रों में शुभ होता है ॥ ११४३ ॥

---

१. मु० चिं० ६ प्र० ९४ श्लो० पी०टी० । २. मु० चिं० ६ प्र० ९४ श्लो० पी०टी० ।

वंलनादि का विधान

हेमाद्रौ व्यासः—

कंडनदलनयवारकमंडपमृद्वेदिवर्णकाद्यखिलम् ।

तत्संबंधिगतागतमृक्षे वैवाहिके कुर्यात् ॥ ११४४ ॥

हेमाद्रि में व्यास ने बताया कि अन्नों का पीसना, शुद्धिकरण, मंगल कलश, मण्डप, मिट्टी की वेदी वर्णादि समस्त काम विवाह के नक्षत्रों में करना चाहिये ॥ ११४४ ॥

[1]निबंधे—

दलनं कंडनं चैव व्यजनं मोदकानि च ।

यवारमंडपौ वेदी कुंकुमं वर्णकं तथा ॥ ११४५ ॥

कार्यं विवाहांगमिदं विवाहभैर्युंजंति नात्रेंदुबलाबलं बुधाः ।

षष्ठे तृतीये नवमेह्नि लग्नतः पूर्वं न वर्णो न यवारमंडपौ ॥ ११४६ ॥

निबन्ध में कहा है कि दलन, कण्डन, व्यञ्जन, लड्डू, मङ्गल कलश, मण्डप, वेदी, घर की पोताई का काम विवाह का अङ्ग होने के नाते विवाह के नक्षत्र में करना चाहिये। इसमें चन्द्र बल का विचार नहीं करना ऐसा विद्वान् लोग बताते हैं। विवाह लग्न से ३। ६। ९ दिन पूर्व वर्ण, मंगल कलश व मण्डप नहीं बनवाना चाहिये ॥ ११४५-११४६ ॥

कन्यादानं गणेशार्चा कर्मारंभं कुसुंभकम् ।

मंडपं वर्णकाद्यं च सर्वं कुर्याद्विवाहभे ॥ ११४७ ॥

कन्यादान, गणेश पूजा, कर्मारम्भ, कुसुम्भक, मण्डप, वर्णकादि समस्त काम विवाहोक्त नक्षत्र में करना चाहिये ॥ ११४७ ॥

तेल लगाने की संख्या

अथ विवाहे तिलतैलादि लापनम्—

[2]रामः—

मेषादिराशिजवधूवरयोर्बटोश्च तैलादिलापनविधौ कथिता हि संख्या ।

शैला दिशा शरदिगक्षनगाद्रिवाणवाणोक्षवाणगिरयो मुनिभिस्तु केश्चित् ॥११४८॥

किसी ऋषि ने मेष आदि १२ राशियों के वर, वधू, बटु के क्रम से तेल लगाने की संख्या ७।१०।५।१०।५।७।७।५।५।५।५।७ बार की कही है। अर्थात् मेष राशि वर, वधू, बटु को सातबार, वृष को १०वार इत्यादि आगे भी जानना चाहिये ॥ ११४८ ॥

[3]गणपतिः—

मेषादिराशिजातानां कुर्यात्तैलादिलापनम् ।

शैलदिग्वाणसप्तांग इषुपंचेषवः शराः ॥ ११४९ ॥

वाणशैलास्त्रयश्चैव क्रमात्कश्चिदितीरितम् ॥ ११५० ॥

---

१. ज्यो० नि० १५८ पृ० । २. मु० चि० ६ प्र० १०८ श्लो० ।

३. मु० ग० १५ प्र० २६७ श्लो० ।

मुहूर्त गणपति में बताया है कि मेषादि राशि वालों के क्रम से तेल लगाने की संख्या ७।१०।५।७।६।५।५।५।५।५।७।३वार की किसी आचार्य ने कही है ॥११४९-५०॥

काञ्जिका धारण

अथ कांजिकाधारणम्—

शार्ङ्गीये—
मूलेंद्ररुद्रश्रवणार्कपौष्णविश्वेशचित्रानलरेवती च ।
संस्थापनं कांजिककंटिकाया वारे रविर्भूमिसुतस्य शस्तम् ॥ ११५१ ॥

शार्ङ्गीय में कहा है कि मूल, आर्द्रा, मृगशिरा, श्रवण, हस्त, रेवती नक्षत्र रवि, मङ्गलवार में काञ्जिक कण्टिका का स्थापन शुभ होता है ॥ ११५१ ॥

वेदी निर्माण काल

अथ वेदिनिर्माणम्—

[1]केशवार्कः—
वेदिकां विरचयेद्यथातथं स्यादियं प्रविशतस्तु दक्षिणे ।
स्युर्जनाश्रययवोप्तिवर्णिकाः षड्भवत्रिदिवसेषु नाग्रतः ॥ ११५२ ॥

विवाह वृन्दावन में कहा है कि वेदी का निर्माण घर में प्रवेश करने पर दक्षिण होना चाहिये व मण्डप, अंकुरार्पण, वर्णिका विवाह लग्न से पूर्व ३।६।९ दिन में नहीं करना चाहिये ॥ ११५२ ॥

वेदिका लक्षण

अथ वेदिकालक्षणम्—

[2]नारदः—
हस्तोच्छ्रितां चतुर्हस्तैश्चतुरस्रां समंततः ।
स्तंभैश्चतुर्भिः सुश्लक्ष्णैर्वामभागे स्वसद्मनः ॥
समंडपां चतुर्दिक्षु सोपानैरुपशोभिताम् ।
प्रागुदक्प्रवणां रंभास्तंभहंसशुकादिभिः ॥ ११५३ ॥
विचित्रितां चित्रकुंभैश्चित्रितैस्तोरणांकुरैः ।
एवंविधां समारोहेन्मिथुनं साग्निवेदिकाम् ॥ ११५४ ॥

ऋषि नारदजी ने बताया है कि १ हाथ ऊँची, ४ हाथ चौड़ी व ४ हाथ लम्बी अपने घर से बाँयीं तरफ वेदी मण्डप के साथ बनाना और सुन्दर चिकने चार खम्भों से सुसज्जित करके चारों दिशा में सीढ़ियों से युक्त करना चाहिये । तथा पूर्व उत्तर में ढालू करने के पश्चात् केले के खम्भे हँस, तोतादि पक्षियों से विचित्रित व अनेक रंग के कलश, ध्वजा, अङ्कुरादि सुशोभि‐ बनाने के बाद साग्नि वेदी के समीप वर कन्या को बैठाना चाहिये ॥ ११५३-११५४ ॥

विशेष—ज्योतिर्निबन्ध में 'विविधैस्तोर०' यह पाठ है ॥ ११५३-११५४ ॥

---

१. चि. वृ. १४ अ. ३१ श्लो ।
२. मु. चि. ६ प्र. ९५ श्लो. पी. टी. तथा ज्यो. नि. १५७ पृ. ।

ग्रन्थान्तर से मण्डप वेदी का ज्ञान

[1]वसिष्ठः—

षोडशारत्निकां कुर्याच्चतुर्द्वारोपशोभिताम् ।
मंडपं तोरणैर्युक्तं तत्र वेदीं प्रकल्पयेत् ॥ ११५५ ॥
अष्टहस्तं तु रचयेन्मंडपं वा द्विषट्करम् ।

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि सोलह अरत्नि [कनिष्ठा अंगुली को फैलाये हुए मुट्ठी बाँध कर हाथ से नापने का नाम] के तुल्य, चारों दरवाजों व ध्वजादि से युक्त मण्डप में वेदी की कल्पना करनी चाहिये अथवा ८ या १२ हाथ का मण्डप बनाना चाहिये ॥ ११५५ ॥

[2]सप्तर्षिमते विवाहपटले —

मंगलेषु च सर्वेषु मण्डपो गृहमानतः ।
कार्यः षोडशहस्तो वा द्विषड्ढस्तो दशात्र्धिः ॥ ११५६ ॥
स्तंभैश्चतुर्भिरेवात्र वेदी मध्ये प्रतिष्ठिता ।
शोभिता चित्रिता कुंभैःसमन्ताच्चतुर्दिशम् ॥ ११५७ ॥

विवाह पटल में बताया है कि अपने घर के माप वश (सुविधा वश) समस्त माङ्गलिक कार्यों में १६ या १२ या १० हाथ का मण्डप, चारों खम्भों से सुसज्जित करके बीच में वेदी बनाना व चारों ओर सुन्दर चित्रित कलशों से सजाना चाहिये ॥ ११५६–११५७ ॥

त्याज्य वेदी

द्वारविद्धा वलीविद्धा कूपवृक्षव्यधा तथा ।
न कार्या वेदिका तज्ज्ञैः शुभमंगलकर्मणि ॥ ११५८ ॥

द्वार से या बली अर्थात् खम्भे से या कुआँ या वृक्ष से वेधित वेदी का शुभ मांगलिक कार्य में त्याग करना चाहिये ॥ ११५८ ॥

देवोत्थापन काल

[3]नारदः—

समे तु दिवसे कुर्याद्देवकोत्थापनं विधिः ।
षष्ठं च विषमं नेष्टं मुक्त्वा पंचमसप्तमौ ॥ ११५९ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि सम दिन में छठे को छोड़कर और विषमों में ५ या ७ वें दिन में देवताओं का विसर्जन करना चाहिये ॥ ११५९ ॥

[4]रामः—

युग्मे घस्त्रे षष्ठहीने च पंच सप्ताहे स्यान्मंडपोद्वासनं सत् ॥ ११६० ॥

मुहूर्तचिन्तामणि में बताया है कि छठे दिन को छोड़कर समदिनों में और विषम दिनों में ५ या ७ वें दिन देवताओं को उठाना शुभ होता है ॥ ११६० ॥

---

१. मु. चिं. ६ प्र. ९५ श्लो. पी. टी. । २. मु. चिं. ६ प्र. ९५ श्लो. पी. टी. ।
३. मु. चिं. ६ प्र. ९५ श्लो. पी. टी. । ४. मु. चिं. ६ प्र. ९५ श्लो. ।

मण्डप में स्तम्भ स्थापना

अथ मंडपादी स्तंभनिवेशनम्—

[1]विश्वकर्मप्रकाशे—

सिंहे कन्यातुलायां भुजगपतिमुखं शंभुकोणेग्निखातं
वायव्ये स्यात्तदास्यं त्वलिधनुमकरे ईशखातं वदंति।
कुंभे मीने च मेषे निर्ऋतिदिशि मुखं वायुकोणे हि खातं
वह्नेः कोणे मुखं वै वृषमिथुनगते कर्कटे रक्षखातम् ॥ ११६१ ॥

विश्वकर्म प्रकाश में बताया है कि सिंह, कन्या, तुला में सूर्य के होने पर राहु का मुख ईशान कोण में होने से खम्भा लगाने को गढ्ढा अग्नि कोण में, वृश्चिक, धनु, मकर के में वायव्य में मुख होने से ईशान कोण में, कुम्भ, मीन, मेष में निर्ऋति कोण में मुख होने से वायव्य कोंण में और वृष, मिथुन कर्क के सूर्य होने पर अग्नि कोण में राहु का मुख होने से निर्ऋति कोण में गर्त करना चाहिए ॥ ११६१ ॥

वेदी आदि में प्रथम खात

[2]वेद्यां वृषाद्गृहे सिंहात्त्रिकं मीनात्सुरालये।
ईशानतो व्यस्तगत्या पृष्ठस्तस्य शुभावहम् ॥ ११६२ ॥

वेदी में वृष से, घर कार्य में सिंह से, देवकार्य में मीन से तीन-तीन राशि सूर्य में ईशान कोण से विलोम गति से राहु का मुख होता है। इसका पिछला हिस्सा शुभ होता है ॥ ११६२ ।

मण्डप में स्तम्भ निवेशन

[3]रामाचार्यस्तु—

सूर्येंगनासिंहघटेषु शैवे स्तंभोलिकोदण्डमृगेषु नार्यौ।
मीनाजकुंभे निर्ऋतो विवाहे स्थाप्योग्निकोणे वृषयुग्मकर्के ॥ ११६३ ॥

मुहूर्त चिन्तामणि में कहा है कि सिंह कन्या, तुला राशिस्थ सूर्य होने पर मण्डप ईशान कोण में, वृश्चिक, धनु मकर के सूर्य में वायु कोण में, कुम्भ, मीन, मेष के सूर्य में नैर्ऋत्य कोण में और वृष, मिथुन, कर्क के सूर्य में अग्नि कोण में खम्भा लगाना चाहिये ॥ ११६३ ॥

[4]गणपतिस्तु—

ईशान्यां स्थापयेत्कुंभं सिंहादि त्रिभगे रवौ।
वृश्चिकादि त्रिभे वायौ नैर्ऋत्यां कुंभतस्त्रिभे।
वर्षात्रिये तथाग्नेय्यां स्तंभखातं तथैव हि ॥ ११६४ ॥

---

१. मु चि. ६ प्र. ९६ श्लो. पी. टी.। २. मु. चि. ६ प्र. ९६ श्लो. पी. टी.।
३. मु चि. ६ प्र. ९६ श्लो.। ४. मु. ग. १५ प्र. २६९ श्लो.।

मुहूर्तगणपति में बताया है कि सिंह, कन्या, तुला के सूर्य में ईशान कोण में वृश्चिक, धनु, मकरस्थ सूर्य में वायु कोण में, कुम्भ, मीन, मेषस्थ में निर्ऋति कोण में वृष, मिथुन, कर्क के सूर्य में मण्डप में खम्भे के लिए अग्नि कोण में खात करना चाहिये ॥ ११६४ ॥

विवाहारम्भ से चतुर्थी के मध्य अशुभता

तथा च।

विवाहमारभ्य चतुर्थिमध्ये श्राद्धं दिनं दर्शदिनं यदि स्यात्।
वैधव्यमाप्नोति तदा सुकन्या जीवेत्पतिश्चेदनपत्यता स्यात् ॥ ११६५ ॥

विवाहारम्भ से चतुर्थी कर्म के बीच में यदि श्राद्ध दिन या दर्श दिन होता है तो कन्या विधवा होती है या पति के रहने पर सन्तान से रहित होती है ॥ ११६५ ॥

विवाहमध्ये यदि चेत्क्षयाहस्तया स्वमुख्याः पितरो न यांति।
व्रते विवाहे परतस्तु कुर्याच्छ्राद्धं स्वधाभिर्न तु दूषयेताम् ॥११६६॥

यदि वैवाहिक दिवसों के मध्य में क्षयाह हो तो पितर वापिस नहीं जाते अतः विवाह के पश्चात् श्राद्ध करना, न कि दूषित बनाना चाहिये ॥ ११६६ ॥

नान्दी श्राद्ध ज्ञान

अथ नांदीश्राद्धम्—

सायणीये—

नांदीश्राद्धं पिता कुर्यादाद्ये पाणिग्रहे पुनः।
अत उर्ध्वं प्रकुर्वीत स्वयमेव तु नांदिकम् ॥ ११६७ ॥

सायणीय में कहा है कि प्रथम पुत्र के विवाह में पिता को और द्वितीयादि के में तो स्वयं ही नान्दी श्राद्ध करना चाहिये ॥ ११६७ ॥

नान्दी श्राद्ध के त्याज्य

नांदीश्राद्धे कृते पश्चाद्यावन्मातृविसर्जनम्।
दर्शश्राद्धं क्षयश्राद्धं स्नानं शीतोदकेन च ॥ ११६८ ॥
अपसव्यं स्वधाकारं नित्यश्राद्धं तथैव च।
ब्रह्मयज्ञं चाध्ययनं नदीसीमादिलंघनम् ॥ ११६९ ॥
उपवासव्रतं चैव श्राद्धे भोजनमेव च।
नैव कुर्युः सपिण्डाश्च मण्डपोद्वासनावधि ॥ ११७० ॥

नान्दी श्राद्ध करने के बाद मातृ विसर्जन पर्यन्त दर्शश्राद्ध, क्षयश्राद्ध, ठण्डे पानी से स्नान, अपसव्य, स्वधाकार, नित्यश्राद्ध, ब्रह्मयज्ञ, अध्ययन, नदी व सीमा का लाँघना; उपवास, व्रत और श्राद्ध में भोजन सपिण्ड बान्धवों को जब तक मण्डप उठाने की विधि पूरी न हो जाय तब नहीं करना चाहिये ॥ ११६८-११७० ॥

मंगल में आशौचाभाव

सूतकं न विशेत्तत्र मातरो यत्र पूजिताः।
भूकम्पादेर्न दोषोस्ति वृद्धिश्राद्धे कृते सति ॥ ११७१ ॥

जहां मातृकाओं की पूजा हो जाती है वहाँ सूतक का प्रवेश नहीं होता है। वृद्धि श्राद्ध करने पर भूचाल का भी दोष नहीं होता है ॥ ११७१ ॥

विशेष

हेमाद्रिः—
वृद्धौ तीर्थे च संन्यस्ते ताते च पतिते सति।
येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं सुतः ॥ ११७२ ॥

हेमाद्रि में बताया है कि वृद्धि श्राद्ध तथा तीर्थ में पिता के संन्यास लेने या पतित होने रप जिनको पिता देता है उन्हीं को पुत्र को भी देना चाहिये ॥ ११७२ ॥

अथ विवाहकाले ऋतुमाप्तायाः कन्यायाः किं कुर्वन्तीत्याह—

विवाह के समय कन्या के ऋतुमती होने पर क्या करना चाहिये इसे अब आगे बताते हैं।

यज्ञपार्श्वः—
विवाहे वितते यज्ञे होमकाले उपस्थिते।
कन्यामृतुमतीं दृष्ट्वा कथं कुर्वंति याज्ञिकाः ॥ ११७३ ॥
स्नापयित्वा तु तां कन्यामर्चयित्वा यथाविधि।
युंजानामाहुतिं हुत्वा ततस्तन्त्रं प्रवर्तयेत् ॥ ११७४ ॥

यज्ञपार्श्व ने बताया है कि कर्तव्य विवाह, विशाल यज्ञ व होम काल के समय ऋतुमती कन्या को देखकर याज्ञिक कैसे करते हैं। उस कन्या को स्नान कराकर यथोक्त विधि से पूजन करके तथा 'युंजानों' को आहुति देकर विवाह कार्य कराना चाहिये ॥ ११७३-११७४ ॥

प्रकारान्तर से करणीय

[1]निर्णयसिन्धौ—
अलाभे सुमुहूर्तस्य रजोदोषे ह्युपस्थिते।
श्रियं सम्पूज्य विधिवत्ततो मंगलमाचरेत् ॥ ११७५ ॥

निर्णय सिन्धु में बताया है कि मंगल कार्य में कन्या के पुष्पवती होने पर अच्छे मुहूर्त की प्राप्ति न हो तो लक्ष्मीजी की विधिवत् पूजा कराने के पश्चात् माङ्गलिक कार्य कराना चाहिये ॥ ११७५ ॥

---

१. मु० चि० ५ प्र० ५८ श्लो० पी० में वाक्यसार के नाम से उद्धृत है।

माता के रंजस्वला होने पर कर्तव्य

मातृरजस्वलाविषये—

माधवीये—

प्रारम्भात्प्राक्विवाहस्य माता यदि रजस्वला ।
निवृत्तिस्तस्य कर्तव्या संहृत्य श्रुतिचोदनात् ॥ ११७६ ।

माधवीय में बताया है कि विवाह के प्रारम्भ होने से पहिले यदि माता रजस्वला होती है तो श्रुतियों की घोषणा से ऋतु की निवृत्ति करने के बाद शुभ काम करना चाहिये ॥ ११७६ ॥

[1]मेधातिथिः—

चोले च व्रतबंधे च विवाहे यज्ञकर्मणि ।
भार्या रजस्वला यस्य प्रायस्तस्य न शोभनम् ॥ ११७७ ॥

ऋषि मेधातिथि का कहना है चौल, यज्ञोपवीत, विवाह, यज्ञकार्य में जिसकी स्त्री रजोवती होती है तो उसका शुभफल नहीं होता है ॥ ११७७ ॥

वर वधू को माता पुष्पवती होने पर

वरवध्वान्यतमयोर्जननी चेद्रजस्वला ।
तस्याः शुद्धेः परं कार्यं मांगल्यं मनुरब्रवीत् ॥ ११७८ ॥

ऋषि मनु ने बताया है कि यदि वर या कन्या की माता मंगल कार्य में मासिक धर्म से युक्त होती है तो उसके शुद्ध होने के पश्चात् मांगलिक कार्य करना चाहिये ॥ ११७८ ॥

[2]वृद्धमनुः—

विवाहव्रतचूडासु माता यदि रजस्वला ।
तदा न मंगलं कार्यं शुद्धौ कार्यं शुभेप्सुभिः ॥ ११७९ ॥

वृद्ध मनुजी ने बताया है कि विवाह, व्रतबन्ध व चौल में यदि माता रजस्वला हो जाय तो कल्याण की इच्छा करने वालों को शुभ कार्य नहीं करना तथा शुद्ध होने पर करना चाहिये ॥ ११७९ ॥

गर्गः –

यस्योद्वाहादि मांगल्ये माता यदि रजस्वला ।
तदा न तत्प्रकर्तव्यमायुःक्षयकरं यतः ॥ ११८० ॥

गर्गाचार्यजी ने बताया है कि जिसके विवाहादि मंगल कार्य में यदि माता रजस्वला होती है तो शुभ काम नहीं करना, क्योंकि उक्त स्थिति में करने पर आयु का क्षय होता है ॥ ११८० ॥

---

१. मु० चि० ५ प्र० ५८ श्लो० पी० टी० ।
२. मु० चि० ५ प्र० २८ श्लो० पी० टी० ।

होने पर फल

[1]बृहस्पतिः—

वैधव्यं च विवाहे स्याज्जडत्वं व्रतबन्धने।
चूडायां च शिशोर्मृत्युर्विघ्नं यात्राप्रवेशयोः ॥ ११८१ ॥

बृहस्पतिजी ने बताया है कि विवाह में माता के रजस्वला होने पर वैधव्य, यज्ञोपवीत में मूर्खता, चौल में बालक की मृत्यु और यात्रा व प्रवेश में विघ्न होता है ॥ ११८१ ॥

[2]प्राप्तमभ्युदयं श्राद्धं पुत्रसंस्कारकर्मणि।
पत्नी रजस्वला चेत्स्यान्न कुर्यात्तत्पिता तदा ॥ ११८२ ॥

पुत्र के संस्कार कार्य में अभ्युदय श्राद्ध के प्राप्त होने पर यदि पत्नी रजस्वला हो जाय तो पिता को नान्दी श्राद्ध नहीं करना चाहिये ॥ ११८२ ॥

विशेष

विवाहोत्सवयज्ञेषु माता यदि रजस्वला।
तदा स मृत्युमाप्नोति पंचत्वं दिवसं विना ॥ ११८३ ॥

विवाह, उत्सव, यज्ञ में यदि माता रजस्वला हो जाय तो पाँच दिन के पूर्व ही मृत्यु उसकी होती है ॥ ११८३ ॥

रजो दोष में काम्य का त्याग

रजोदोषे समुत्पन्ने सूतके मृतकेपि वा।
नित्यं नैमित्तिकं कुर्यात्काम्यं कर्म न किंचन ॥ ११८४ ॥

रजो दोष के उत्पन्न होने पर, जन्म सूतक व मरणाशौच में भी नित्य, नैमित्तिक काम करना और काम्य कर्म कुछ भी नहीं करना ॥ ११८४ ॥

जीर्ण भाण्ड के विषय में

अथ जीर्णभाण्डादि –

मासषट्कं विवाहादौ व्रतप्रारम्भणे न च।
जीर्णभांडानि न त्याज्यं गृहसंमार्जनं तथा ॥ ११८५ ॥

विवाह के आदि में, यज्ञोपवीत के प्रारम्भ में ६ मास तक पुराने वर्तनों का तथा झाडूका त्याग नहीं करना चाहिये ॥ ११८५ ॥

विवाहान्तर पिण्डदान का त्याग

हेमाद्रौ—

विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्द्धं तदर्द्धकम्।
पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ ११८६ ॥

हेमाद्रि में बताया है कि विवाह, व्रतबन्ध, चूडा होने पर १ वर्ष या ६ मास या ३ मास तक पिण्डदान, मिट्टी से स्नान और तिल से तर्पण नहीं करना चाहिये ॥११८६॥

---

१. मु० चिं० ५ प्र० ५८ श्लो० पी० टी०।

२. मु० चिं० ५ प्र० ५८ श्लो० पी० टी०।

पिण्डदान का विधान

स्मृतिः—

महालये गयाश्राद्धे मातापित्रोः क्षयेहनि ।
कृतोद्वाहोपि कुर्वीत पिण्डनिर्वपणं ततः ॥ ११८७ ॥

स्मृति ग्रन्थ में बताया है कि विवाह करने पर भी महालय, गया और माता पिता के मरण दिन में पिण्डदान करना चाहिये ॥ ११८७ ॥

परिवेत्ता ज्ञान

अथ परिवेत्ता—

उद्वाहं चाग्निसंयोगे कुरुते योग्रजे स्थिते ।
परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥ ११८८ ॥
परिवित्तिः परिवेत्ता नरकं गच्छतो ध्रुवम् ॥ ११८९ ॥

अग्नि के साक्षी जो विवाह अग्रज के स्थित रहते हुए करता है वह परिवेत्ता होता है और पूर्वज परिवित्ति होता है। परिवित्ति व परिवेत्ता निश्चय ही नरक को गमन करते हैं ॥ ११८८-११८९ ॥

स्त्री उपसंवेशन

अथ स्त्रीउपसंवेशनम्—

विवाहसमयात्पश्चाच्चतुर्थे दिवसे स्त्रियाम् ।
उपसंवेशनं कुर्यात् कृत्वा होमावशेषितम् ॥ ११९० ॥

विवाह के पश्चात् चौथे दिन में होमावशेषित कार्य करके स्त्रियों का उपसंवेशन करना चाहिये ॥ ११९० ॥

निश्येव संमुहूर्तेऽस्मिन् निषेककथिते बले ।
असम्भवे तथा सर्वं विवाहवदुदीरितम् ॥ ११९१ ॥

रात में ही सुन्दर मुहूर्त में निषेक में प्रतिपादित बल में या असंभव होने पर समस्त विवाह की तरह करना चाहिये ॥ ११९१ ॥

सर्वेष्वत्र मुहूर्तेषु लक्षणान्यत्र मे शृणु ।
मुहूर्तो नित्ययोगस्य संख्यां कृत्वा यथाविधाम् ॥ ११९२ ॥
संयोज्याधोर्ध्वतः स्थानक्रमात्सर्वा अधोर्ध्वं न विशिष्यते ॥ ११९३ ॥
मुष्टियुद्धं कुजश्चैव दशनाभिर्नृपाद्भयम् ॥ ११९४ ॥
मुहूर्तफलमेते स्युः वृत्रहन्सर्वशोभनम् ॥ ११९५ ॥

समस्त मुहूर्तों के लक्षण मुझसे सुनो। नित्य योग के मुहूर्त की संखया को जानकर उसे क्रम से पीछे व आगे वाली संखया में जोड़ने पर सात से भाग देने पर नीचे ऊपर शेष नहीं होता है। तथा मुष्टि युद्ध कुत्सित व राजाओं के दांत से भय होता है। हे इन्द्र ये मुहूर्त सब शुभ दाता होते हैं ॥ ११९२-११९५ ॥

विशेष--इसे पूर्व भाग के तीसवें प्रकरण में देखें ॥ ११९२-११९५ ॥

दान विषय में

अथ दानविषये—

रात्रौ दानं न शंसन्ति विना चाभयदक्षिणाम् ।
विद्यां कन्यां द्विजश्रेष्ठ दीपमन्नं प्रतिश्रयम् ॥ ११९६ ॥

रात्रि में अभय दक्षिणा, विद्या, कन्या, दीप, अन्न, सभा के विना दान करना प्रशस्त नहीं होता है ॥ ११९६ ॥

दिन में विवाह का फल

विवाहे तु दिवाभागे कन्या स्यात्पुत्रवर्जिता ।
विवाहानलदग्धा सा नियतं स्वामिघातिनी ॥ ११९७ ॥

दिन में विवाह होने पर कन्या पुत्र से रहित, विवाहाग्नि से दग्ध और पति की हिंसा करने वाली होती है ॥ ११९७ ॥

विवाहानन्तर आषाढादि मासों में पति घर में पत्नीवास फल

ज्योतिर्निबन्धे –

[1]उद्वाहात्प्रथमे शुचौ यदि वसेद्भर्तुर्गृहे कन्यका
हन्यात्तज्जननीं क्षये निजतनुं ज्येष्ठे पतिज्येष्ठकम् ।
पौषे च श्वशुरं पतिं च मलिने चैत्रे स्वपित्रालये
तिष्ठन्ती पितरं निहन्ति न भयं तेषामभावे भवेत् ॥ ११९८ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में बताया है कि विवाह के बाद प्रथम आषाढ में यदि कन्या पति के घर में रहती है तो सास का, क्षय मास में अपना, ज्येष्ठ में पति के बड़े भाई का, पौष में श्वसुर का, अधिक में पति का विनाश करती है। और चैत में पिता के घर में रहने पर पिता का एवं इनके अभाव में निर्भय रहती है ॥ ११९८ ॥

विवाहात्प्रथमे पौषे आषाढे चाधिमासके ।
न सा भर्तुर्गृहे तिष्ठेच्चैत्रे पितृगृहे तथा ॥ ११९९ ॥

विवाह के बाद पहिले पौष, आषाढ, अधिक मास में पति के घर में और चैत में पिता के घर में नहीं रहना चाहिये ॥ ११९९ ॥

कन्या के घर भोजन का निषेध

अथ कन्यागृहे भोजननिषेधः—

आदित्यपुराणे—

अप्रजायां तु कन्यायां नाश्नीयात्तस्य वै गृहे ।
यदि भुंजति मोहाद्वा पूयाशी नरकं व्रजेत् ॥ १२०० ॥

१: मु. चि. ७ प्र. ३ श्लो. पी. टी. तथा मु. मा. ४ प्र. ४५ श्लो० ।

आदित्य पुराण में कहा है कि बिना संतानवाली कन्या के घर भोजन नहीं करना यदि मोहवश कोई करता है तो पूयाशी नाम के नरक में जाता है ।। १२०० ।।

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरंजने एकसप्ततितमं विवाहप्रकरणम् समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तात्मज ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा संगृहीत बृहद्दैवज्ञरञ्जन ग्रन्थ का इकहत्तरवाँ विवाह प्रकरण समाप्त हुआ ।। ७१ ।।

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताधिनवशुक पं० केशवदेव चतुर्वेदात्मजमुरलीधरचतुर्वेदकृता बृहद्दैवज्ञरंजनग्रन्थस्थैकसप्ततिप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्तिमगात् ।। ७१ ।।

अथ द्विसप्ततितमं वधूप्रवेशप्रकरणं प्रारभ्यते

अब आगे बहत्तरवें प्रकरण में वधू प्रवेश अर्थात् कन्या की शादी होने पर पति के घर में प्रवेश कब, किस मुहूर्त में करना चाहिये । इसे विवध ग्रन्थों के वाक्यों से बताते हैं ।

वसिष्ठः—

शुभकाले गृहप्राप्तौ वर्द्धन्ते सर्वसंपदः ।
असत्काले गृहप्राप्तौ सर्वं नाशं गृहं व्रजेत् ।। १ ।।

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि शुभ समय में पति के घर प्रवेश करने पर समस्त सम्पत्तियाँ बढ़ती हैं और अशुभ काल में सब घर के सामान का विनाश होता है ।।१।।

प्रवेश में मास

जयतुंगे—

मार्गशीर्षे तथा माघे माधवे ज्येष्ठसंज्ञके ।
सुप्रशस्ते भवेद्वेश्म प्रवेशो नवयोषिताम् ।। २ ।।

जयतुंग में कहा हैं कि अगहन, माघ, वैशाख और जेठ मास में नव वधू का पति के घर में प्रवेश कराना शुभ होता है ।। २ ।।

शुभाशुभ काल में प्रवेश का फल

[1]नारदः—

आरभ्योद्वाहदिवसात्षष्ठे वाप्यष्टमे दिने ।
वधूप्रवेशः सम्पत्त्यै दशमेथ समे दिने ।। ३ ।।

---

१. मु. चि. ७ प्र. १ श्लो. पी. टी. तथा ज्यो. नि. १६४ पृ० ।

शुभ दिन

ऋषि नारदजी ने बताया है कि विवाहारम्भ दिन से छठे, आठवें या दसवें सम दिन में नवीन स्त्री का पति के घर में प्रवेश कराना सम्पत्ति के लिए अर्थात् शुभ होता है ।। ३ ।।

सविशेष दिन

[१]संग्रहे—

विवाहमारभ्य वधूप्रवेशो युग्मे तिथौ षोडशवत्सरान्तः ।
ऊर्ध्वं ततोब्देऽयुजि पंचमांतं पुनः परस्तान्नियमो न चास्ति ।। ४ ।।

संग्रह ग्रन्थ में बताया है कि विवाह के प्रारम्भ होने से सोलह दिन के मध्य में नई बहू का सम दिन में प्रवेश कराना और इसके अनन्तर पाँच वर्ष तक विषम वर्षों में कराना चाहिये ।। ४ ।।

समवर्ष मास में प्रवेश फल

वृद्धनारदः—

[२]समे वर्षे समे मासे यदि नारी गृहं व्रजेत् ।
आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी मरणं व्रजेत् ।। ५ ।।

वृद्ध नारदजी ने बताया है कि सम वर्ष व मास में स्त्री पति के घर जाती है तो पति की आयु का हरण और स्वयं मृत्यु प्राप्त करती है ।। ५ ।।

शुभाशुभ वर्ष

प्रयोगरत्ने—

वधूप्रवेशः प्रथमे तृतीये शुभप्रदः पंचमकेथवाह्नि ।
द्वितीयके वाथ चतुर्थके वा षष्ठे वियोगामयदुःखदः स्यात् ।। ६ ।।

प्रयोगरत्न में कहा है कि प्रथम, तृतीय, पंचम वर्ष में नवोढा का पति के घर में प्रवेश शुभ और २।४।६ वर्ष में वियोग, रोग और दुःख देने वाला होता है ।।६।।

सविशेष शुभ दिन

वृद्धवसिष्ठोपि—

षष्ठाष्टमे वा दशमे दिने वा विवाहमारभ्य वधूप्रवेशः ।
पंचांगसंशुद्धिदिनं विनापि विधावसद्गोचरगेपि कार्यः ।। ७ ।।

वृद्ध वसिष्ठजी ने भी बताया है कि विवाहानन्तर छठे या आठवें या दसवें दिन पंचाङ्ग शुद्धि के अभाव में तथा चन्द्रमा के अशुभ होने पर भी वधू प्रवेश शुभ होता है ।। ७ ।।

---

१. ज्यो. नि. १६४ पृ. ४ श्लो. ।
२. ज्यो. नि. १६४ पृ. ३ श्लो. ।

शुक्र विचाराभाव

ललः —

स्वभवनपुरप्रवेशे देशानां विप्लवे तथोद्वाहे।
नववध्वा गृहगमने प्रतिशुक्रविचारणा नास्ति ॥ ८ ॥

आचार्यलल्ल ने बताया है कि नगरीय घर के प्रवेश, देश विप्लव, विवाह, नवीन बहू के घर गमन में शुक्र का विचार नहीं होता है ॥ ८ ॥

प्रकारान्तर से

एकग्रामे पुरे वापि दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे।
विवाहे तीर्थयात्रायां प्रतिशुक्रं न दुष्यति ॥ ९ ॥

एक गाँव व एक ही शहर में प्रवेश या दुर्भिक्ष, राष्ट्र उपद्रव, विवाह, तथा तीर्थ यात्रा में प्रतिशुक्र का दोष नहीं होता है ॥ ९ ॥

प्रवेश निषेध

चैत्रे पौषे हरौ सुप्ते नष्टे च गुरुभार्गवे।
पितुःस्थानस्थिता नारी न गच्छेद्भर्तृमन्दिरम् ॥ १० ॥

चैत, पौष, हरिशयन, (चातुर्मास) गुरुशुक्रास्त में पिता के घर में स्थित स्त्री को पति के घर नहीं जाना चाहिये ॥ १० ॥

ज्योतिःप्रकाशे—

नवोढायास्तु वैधव्यं यदुक्तं सम्मुखे भृगौ।
तदेवं विबुधैर्ज्ञेयं केवलं तु द्विरागमे ॥ ११ ॥

ज्योतिष्प्रकाश में कहा है कि नवोढा को जो सम्मुख शुक्र का दोष होता है वह केवल द्विरागमन में ही होता है ॥ ११ ॥

[1]कालविवेके—

न शुक्रदोषो न सुरेज्यदोषस्ताराबलं चन्द्रबलं न योज्यम्।
उद्वाहिताया नवकन्यकाया दीपोत्सवो मंगलशोभनानि ॥ १२ ॥

कालविवेक में बताया है कि शुक्रदोष, गुरु दोष, ताराबल, चन्द्रबलादि दोष दीपावली में उद्वाहित कन्या का पति के घर में प्रवेश करने पर शुभदायी होता है ॥१२॥

अस्तापवाद

[2]माण्डव्यः—

नित्ययाने गृहे जीर्णे प्राशने परिधानके।
वधूप्रवेशे मांगल्ये न मौढ्यं गुरुशुक्रयोः ॥ १३ ॥

---

१. ज्यो. नि, ८१ पृ. ७ श्लो.।

२. ज्यो. नि. ८१ पृ. १ श्लो. गर्ग के नाम उद्धृत है।

ऋषि माण्डव्य ने बताया है कि नित्य गमन, पुराना मकान, अन्न प्राशन, परिधानक और मांगलिक व वधूप्रवेश कार्य में गुरु शुक्र का अस्त दोष नहीं होता है ॥ १३ ॥

प्रवेश में शुभ दिन

[1]ज्योतिर्निबन्धे—

वधूप्रवेशनं कार्यं पंचमे सप्तमे दिने।
नवमे च शुभे वारे सुलग्ने शशि नोबले ॥ १४ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में बताया है कि पाँचवें या सातवें या नवें शुभ दिन व लग्न में चन्द्रमा के बली होने पर वधू प्रवेश करना चाहिये ॥ १४ ॥

प्रवेश में शुभ वर्ष

[2]विवाहपटले—

वधूप्रवेशः प्रथमेत्र वर्षे तथा तृतीयेप्यथ पंचमे वा।
सूर्येन्दुदेवेज्यबलेन कुर्यात्पुंसो मुनिर्गौतम आह सत्यम् ॥ १५ ॥

विवाह पटल में बताया है कि पहिले या तीसरे या पाँचवें वर्ष में सूर्य, चन्द्र, गुरु के बली होने पर वधू प्रवेश करना चाहिये, ऐसा गौतम ने कहा है ॥ १५ ॥

प्रवेश मुहूर्त

[3]भास्करव्यवहारे—

रात्रौ विवाहभे शस्तः सन्मुहूर्ते स्थिरोदये।
वधूप्रवेशो नैवात्र प्रतिशुक्राद्भयं विदुः ॥ १६ ॥

भास्कर व्यवहार में बताया है कि रात्रि में विवाहोक्त नक्षत्र, स्थिर लग्न, शुभ मुहूर्त में वधू प्रवेश करना चाहिये। इसमें प्रतिशुक्र का दोष नहीं होता ॥ १६॥

प्रवेश में विशेष

[4]ऋक्षैर्वैवाहिकैः शुद्धैर्दंपत्योश्च शुभप्रदम्।
वधूप्रवेशो नो कार्यः पंचमे ह्यकृतं यदि ॥ १७ ॥

वर वधू के लिये शुद्ध वैवाहिक नक्षत्रों में वधूप्रवेश शुभप्रद होता है और पाँच वर्ष तक न होने पर उक्त नक्षत्रों में करने की आवश्यकता नहीं होती है ॥ १७ ॥

[5]अत्र षोडश दिनातिक्रमे मासपर्यंतं विषमदिने वधूप्रवेशः कार्यः।
प्रथममासातिक्रमे वर्षपर्यंतं विषमे मासि कर्तव्यः।
तदा विषमदिननियमो नास्ति।
एवं प्रथमे वर्षे अतिक्रान्ते पंचमवर्षपर्यंतं विषमे वर्षे कर्तव्यः।
तदा विषममासनियमो नास्ति।

---

१. १६४ पृ. १ श्लो. तथा मु. मा. टी.। २. मु. चि. ७ प्र. १ श्लो. पी. टी.।
३. ज्यो. नि. १६४ पृ. ५ श्लो. तथा मु. मा. ४ प्र. ४० श्लो. टी.।
४. ज्यो. नि. १६४ पृ. ६ श्लो. तथा मु. मा. ४ प्र. श्लो. टी.।
५. मु. मा. ४ प्र. ४० श्लो. टी.।

यहाँ (इस विषय में) सोलह दिन व्यतीत होने पर प्रथम मास तक विषम दिन में वधू प्रवेश कराना चाहिये। एक मास व्यतीत होने पर एक वर्ष तक विषम मास में करना, इसमें विषम दिन का नियम नहीं है। प्रथम वर्ष का अतिक्रमण होने पर पाँच वर्ष तक विषम वर्ष में करना, इसमें विषम मास का नियम नहीं है।

[1]मार्तंडेपि—

लग्नादष्टिदिनान्तः सममुनीष्वंकेष्वयुपूर्ध्वं त्वयुग्-
द्यस्रेघ मास्यपि हायने शरमिताद्वर्षात्परं स्वेच्छया।
वैफामार्गसिते जगुः श्रुतियुगोद्वाहर्क्षचित्राश्विनी-
ज्यर्क्षैश्चानवमंदिरे निशि वधूसंवेशभंगे स्थिरे॥ १८॥

मुहूर्तमार्तण्ड में बताया है कि विवाह लग्न से १६ दिन तक समदिनों में या ५।७। ९वें दिन में और सोलह दिन के पश्चात् विषम दिन, विषम मास, विषम वर्ष में वधू प्रवेश कराना चाहिये और पाँच वर्ष के बाद अपनी इच्छा से कराना चाहिये। विलम्बित वधूप्रवेश वैशाख, फाल्गुन, मार्गशीर्ष में श्रवण, धनिष्ठा, विवाहोक्त नक्षत्र, चित्रा, अश्विनी, पुष्य नक्षत्र में जीर्ण घर में रात्रि में स्थिर लग्न में वधूप्रवेश कराना चाहिये॥ १८॥

नक्षत्रादि शुद्धि

अथ नक्षत्रादिशुद्धिः—

[2]व्यवहारतत्त्वे—

पौष्णात्कभाच्च श्रवणाच्च युग्मे हस्तत्रये मूलमघोत्तरासु।
पुष्ये च मैत्रे च वधूप्रवेशो रिक्तेतरे व्यर्ककुजे च शस्तः॥ १९॥

व्यवहार तत्त्व में कहा है कि रेवती, अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, श्रवण, धनिष्ठा, हस्त, चित्रा, स्वाती, मूल, मघा, तीनों उत्तरा, पुष्य, अनुराधा नक्षत्र में, रिक्ता तिथि व सूर्य भौमवार को छोड़कर वधूप्रवेश कराना चाहिये॥ १९॥

[3]रामः—

ध्रुवक्षिप्रमृदुश्रोत्र वसुमूलमघानिले।
वधूप्रवेशः सन्नेष्टो रिक्तारार्के बुधे परैः॥ २०॥

मुहूर्तचिंतामणि में बताया है कि रोहिणी, तीनों उत्तरा, अश्विनी, पुष्य, हस्त, चित्रा, अनुराधा, रेवती, मृगशिरा, श्रवण, धनिष्ठा, स्वाती, मूल नक्षत्र में, रिक्ता तिथि, व मंगल, सूर्यवार को छोड़कर अन्य के मत में बुधवार का त्याग करके वधूप्रवेश कराना शुभ होता है॥ २०॥

---

१. मु. मा. ४ प्र. ४० श्लो.।
२. मु. चिं. ७ प्र. २ श्लो. पी. टी।
३. मु. चिं. ७ प्र. २ श्लो.।

चतुर्थिका

अथ चतुर्थिका—

विवाहपटले—

स्वयामित्रोदये लग्ने शुभैः कार्या चतुर्थिका।
स्ववर्णसदृशा सौम्यैस्त्र्याद्यैरेकर्क्षसंस्थितैः ॥ २१ ॥

विवाह पटल में कहा है कि अपनी यामित्र राशिस्थ लग्न में अपने वर्ष के तुल्य तीन शुभग्रह एक राशि में हों तो चतुर्थिका करनी चाहिये ॥ २१ ॥

वैवाहिके भे दिवसे शुभस्याथ तिथौ शुभे।
यामित्रराशौ कन्यायां लग्ने शुभसमन्विते ॥ २२ ॥
चतुर्थिकां प्रकुर्वीत विधिदृष्टेन कर्मणा।
सज्जारोपणकाले तु कुमार्यास्तद्विचारयेत् ॥ २३ ॥

विवाह के नक्षत्र में शुभग्रह के वार में, शुभ तिथि में, यामित्रोदय राशि कन्या में शुभग्रह से युक्त लग्न में विधिदृष्ट कर्म से चतुर्थिका करनी चाहिये। कन्या के शय्यारोपण काल में इसका विचार करना चाहिये ॥ २२-२३ ॥

स्त्री सेवन का महत्त्व

याज्ञवल्क्यः—

लोकानंत्यं दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः।
यस्मात्तस्मात्स्त्रियः सेव्याः कर्तव्याश्च सुरक्षिताः ॥ २४ ॥

ऋषि याज्ञवल्क्य ने बताया है कि पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र के साथ अनन्त स्वर्ग की प्राप्ति स्त्री सेवन से होती है। अतः स्त्री सेवन व स्त्री की सुरक्षा करनी चाहिये ॥ २४ ॥

पुरुष स्त्री समागम मुहूर्त

अथ पुंस्त्रीसमागममुहूर्तः—

उत्तरात्रयरोहिण्यां पुष्ये मैत्रकरे मृगे।
चित्रास्वातीधनिष्ठासु पुंनार्योः संगमः शुभः ॥ २५ ॥
कन्यावैणिकमीनगोलिभवने केंद्रस्थिते संग्रहे
पापे विक्रमलाभवैरिसहिते द्यूने शुभे वीक्षिते।
वारे सौम्यदिनस्य योगकरणे शस्ते च रिक्ताष्टमी
राकामारहिते तिथौ शुभविधौ दारोपभोगः शुभः ॥ २६ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि तीनों उत्तरा, रोहिणी, पुष्य, अनुराधा, हस्त, मृगशिरा चित्रा, स्वाती, धनिष्ठा नक्षत्र में कन्या, तुला, मीन, वृष, वृश्चिक लग्न में केन्द्र में ग्रह होने पर, ३।६।११ में पापग्रह के रहने पर तथा सप्तम भाव शुभ ग्रह से दृष्ट होने पर, शुभग्रह के वार में, प्रशस्त योग, करण में, रिक्ता, अष्टमी, पूर्णिमा, अमावास्या तिथि को छोड़ कर, शुभचन्द्रमा में स्त्री-उपभोग शुभ होता है ॥ २५-२६ ॥

चन्द्रादि शुद्धि

ओजराशिगते चन्द्रे लग्ने पुंग्रहवीक्षिते ।
उपवीते युग्मतिथौ सुलग्ने कामयेत् स्त्रियम् ॥ २७ ॥

विषम राशिस्थ चन्द्रमा व पुरुष ग्रह से दृष्ट लग्न में, यज्ञोपवीत में वर्णित युग्म (सम) तिथियों में स्त्री सेवन करना चाहिये ॥ २७ ॥

स्त्री सम्भोग में त्याज्य

[1]गण्डान्तं त्रिविधं त्यजेन्निधनजन्मर्क्षे च मूलान्तकं
दास्रं पौष्णमघोपरागदिवसान्पातं तथा वैधृतिम् ।
पित्रोः श्राद्धदिनं दिवा च परिघाद्यर्द्धं स्वपत्नीगमे
भान्युत्पातहतानि मृत्युभवनं जन्मर्क्षतः पापभम् ॥ २८ ॥

मुहूर्तचिन्तामणि में बताया है कि तीन प्रकार के गण्डान्त, सातवीं वध तारा, जन्म नक्षत्र, मूल, भरणी, अश्विनी, रेवती, मघा नक्षत्र, ग्रहण दिन, व्यतीपात, वैधृति योग, माता, पिता का श्राद्ध दिन, सूर्योदय से सूर्यास्त तक दिन में परिघ योग का पूर्वार्ध, दिव्यान्तरिक्षभौम जन्य उत्पात से दूषित दिन, जन्म लग्न व राशि से अष्टम राशि लग्न पापग्रह से युक्त राशि या नक्षत्र का त्याग करके अपनी धर्मपत्नी के साथ सम्भोग करना चाहिये ॥ २८ ॥

वेणी गुन्थन मुहूर्त

अथ केशबन्धनम्—

वातोत्तराश्रवणशंकरवाजिमूलपुष्यादितीन्दुकरपौष्णपुरंदरेषु ।
पक्षे सिते रविनिशाकरसौम्यवारे धम्मिल्लबंधनविधिः शुभदो मृगाक्ष्याः ॥२९॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि स्वाती, तीनों उत्तरा, श्रवण, आर्द्रा, अश्विनी, मूल, पुष्य, पुनर्वसु, मृगशिरा, हस्त, रेवती और ज्येष्ठा नक्षत्र, शुक्ल पक्ष, सूर्य, सोम, बुधवार में स्त्रियों की चूडा पटिया करना शुभ होता है ॥ २९ ॥

चूडी धारण मुहूर्त

अथ चूडीधारणम्—

[2]यावद्भास्करभुक्तिभानि दिवसे धिष्ण्यानि संख्या तथा
वह्नि भूतगुणाब्धिसप्तनयनं पृथ्वीकरेंदुक्रमात् ।
सूर्यारौ कविसौम्यराहुरविजा जीवः शशी केतवः
क्रूरे हानिशुभे शुभं च कथितं चक्रे करे भूषणम् ॥ ३० ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि जिस नक्षत्र में सूर्य हो उससे दिन नक्षत्र तक साभिजित गणना करने पर, ३।५।३।४।७।२।१।२।१ तक की संख्या के क्रम से सूर्य, मंगल, शुक्र,

---

१. मु. चि. ५ प्र. ५ श्लो. । २. बृ. ज्यो. सा. १४२ पृ. ।

बुध, राहु, शनि, गुरु, चन्द्रमा, केतु स्वामी होते हैं। इनमें शुभ ग्रह स्वामित्व में चूड़ी धारण शुभ और पापग्रह के अधीश्वर दिन में पहिनना अशुभ होता है। उदाहरण— कल्पना किया कि सूर्य आर्द्रा में है और वर्तमान में हस्त है अतः आर्द्रा से गिनने पर ८ संख्या आने के कारण ३+५=८ मंगल स्वामी होने से त्याज्य एवं चित्रा नक्षत्र इष्ट दिन में स्वीकार करने पर स्वामी शुक्र वश धारण करना शुभ होता है ॥ ३० ॥

विवाह के पश्चात् मण्डपोद्वासन मुहूर्त

अथोद्वाहानंतरं मंडपोद्वासनम्—

[1]रामः—

युग्मे घस्रे षष्ठहीने च पंच सप्ताहे स्यान्मंडपोद्वासनं सत् ॥ ३१ ॥

मुहूर्तचिन्तामणि में कहा है कि छठे को छोड़कर समदिन व पाँचवें या सातवें दिन में मण्डप का विसर्जन करना चाहिये ॥ ३१ ॥

नई बहू से प्रथम भोजन बनवाने का मुहूर्त

अथ नूतनवध्वा पाककर्ममुहूर्तः—

[2]मृगोत्तरातिष्यकृशानुशाक्रे श्रुतित्रये ब्रह्मद्विदेवपौष्णे।
शुभे तिथौ व्याररवौ प्रकुर्यान्नवा वधूर्नूतनपाककर्म ॥ ३२ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि मृगशिरा, तीनों उत्तरा, पुष्य, कृत्तिका, ज्येष्ठा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, रोहिणी, विशाखा, रेवती नक्षत्र, शुभ तिथि, मंगल, रविवार को छोड़कर नई बहू को भोजन बनाना चाहिये ॥ ३२ ॥

स्थिरे लग्ने सुखे शुद्धे सप्तमे च बलान्विते।
रन्ध्रे खे रविहीने च नवोढा पाकमाचरेत् ॥ ३३ ॥

स्थिर लग्न, चौथे स्थान में ग्रहाभाव, सातवाँ बली होने पर और आठवें, दसवें सूर्य के न होने पर नवोढा को रसोई बनानी चाहिये ॥ ३३ ॥

अलङ्कार धारण मुहूर्त

अथालंकृतिधारणम्—

बादरायणः—

[3]हस्तानुराधगुरुपूषधनिष्ठयुक्ता चित्रोतरात्रयपुनर्वसुरोहिणीषु।
लग्ने स्थिरे रविसितेन्दुजजीववारे हेमादिधारणविधिः कथितो नराणाम् ॥३४॥

ऋषि बादरायण ने बताया है कि हस्त, अनुराधा, पुष्य, पूर्वाषाढा, धनिष्ठा, चित्रा, तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, रोहिणी नक्षत्र, स्थिर लग्न, सूर्य, शुक्र, बुध, गुरुवार में सोने के गहने पहिनने चाहिये ॥ ३४ ॥

---

१. मु. चि. ६ प्र. ९५ श्लो.।

२ बृ. ज्यो. सा. २२६ पृ.। ३. व. सं. १४ अ. ११२ श्लो.।

शङ्खादि धारण मुहूर्त

करादिपंचकेश्विभे सपौष्णवासवे स्मृता।
धृतिश्च शंखकांचनप्रवालरक्तवाससाम् ॥ ३५ ॥

हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, अश्विनी, रेवती, धनिष्ठा नक्षत्र में शंख, सुवर्ण, मूँगा और लाल वस्त्र धारण करना चाहिये ॥ ३५ ॥

कौसुम्भादिधारण मुहूर्त

पौष्णाश्विनी वसुकरादिषु पंचकेषु कौसुंभहेममणिविद्रुमरौप्यशंखाः।
नार्या धृताः सुतसुखार्थकरा भवन्ति ब्राह्मोत्तरादितिगुरुष्वशुभाय भर्तुः ॥३६॥

रेवती, अश्विनी, धनिष्ठा, हस्त, चित्रा. स्वाती, विशाखा, अनुराधा नक्षत्र में कौसुम्भ, सुवर्ण, मणि, मूँगा, चाँदी, शंख को स्त्री धारण करती है तो सुत (पुत्र) व सुख की प्राप्ति होती है। रोहिणी, तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, मृगशिरा में धारण करने से पति का अशुभ होता है ॥ ३६ ॥

धारण करने में निषिद्ध नक्षत्र

रोहिणी गुरुपुनर्वसुतारे या बिभर्ति नवभूषणांबरम्।
सा न योषिदवलंबते पतिं स्नानमाचरति वारुणेपि या ॥ ३७ ॥

रोहिणी, पुष्य, पुनर्वसु नक्षत्र में जो स्त्री नवीन वस्त्र धारण करती है चाहे वो वारुणी पर्व पर भी स्नान की हो तो भी स्त्री पति का अवलम्बन नहीं करती है ॥३७॥

पुनः निषिद्ध नक्षत्र

पुष्ये पुनर्वसौ चैव रोहिण्यामुत्तरात्रये।
पतिं जीवंतमिच्छंती नैव हेमादिकं स्पृशेत् ॥ ३८ ॥

पुष्य, पुनर्वसु, रोहिणी, तीनों उत्तरा में पति जीवन की इच्छा करने वाली स्त्री सुवर्णादि का स्पर्श न करे ॥ ३८ ॥

सुवर्णादिधारण मुहूर्त

[1]चित्रा विशाखा पवनानुराधावस्वश्विनीभास्कररेवतीषु।
आदित्यशुक्रेंदुजजीववारे लग्ने स्थिरे स्त्री कनकादि दध्यात् ॥ ३९ ॥

चित्रा, विशाखा, स्वाती, अनुराधा, धनिष्ठा, अश्विनी, हस्त, रेवती नक्षत्र, सूर्य, शुक्र, बुध, गुरुवार, स्थिर लग्न में स्त्री को कनकादि धारण करना चाहिये ॥ ३९ ॥

अलङ्कार धारण मुहूर्त

[2]क्षिप्रमृदुध्रुवचरभे शशिसितयोर्वासरेषु तल्लग्ने।
मुक्ताफलरजताद्यं भूषणमखिलं सवज्रकं धार्यम् ॥ ४० ॥

क्षिप्र, मृदु, ध्रुव व चर संज्ञक नक्षत्र, चन्द्रमा, शुक्रवार, तथा इन्हीं की लग्न में मोती चाँदी आदि के समस्त भूषण व हीरा का धारण करना चाहिये ॥ ४० ॥

---

१. ज्यो. नि. २२१ पृ.। २. ज्यो. नि. २२१ पृ.।

दूषित नक्षत्र में भूषण धारण

[1]लब्धं राजप्रसादेन विप्रादेशात्करग्रहे।
प्रीत्याप्तं चोत्सवे धार्यं भूषणं निद्यभादिके॥ ४१॥

राजा की कृपा से प्राप्त, ब्राह्मण के आदेश से, विवाह में, प्रीति से प्राप्त और उत्सव में निन्द्य नक्षत्र में भी अलङ्कार धारण करना चाहिये॥ ४१॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरंजने
द्विसप्ततितमं वधूप्रवेशप्रकरण समाप्तम्।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जनसंग्रह ग्रन्थ का बहत्तरवाँ वधू प्रवेश नाम का प्रकरण समाप्त हुआ॥ ७२॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधरचतुर्वेदकृता बृहद्दैवज्ञरञ्जनसंग्रहग्रन्थस्य द्विसप्ततिप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका परिपूर्णा॥ ७२॥

अथ त्रिसप्ततितमं द्विरागमनप्रकरणं प्रारभ्यते

अब आगे तिहत्तरवें प्रकरण में द्विरागमन किसे कहते हैं तथा यह कब, किस परिस्थिति में करने से शुभ तथा अशुभ फलदाता होता है, इसे बताते हैं।

द्विरागमन ज्ञान

उद्वाहसमये बाला व्रजेद्भर्तृगृहं प्रति।
पुनस्तातगृहाद्यात्रा तद्द्विरागमनं स्मृतम्॥ १॥

विवाह के पश्चात् स्त्री पति के घर जाकर अपने पिता के घर में आने पर जब दुबारा ससुराल जाती है तो इसे द्विरागमन कहते हैं॥ १॥

प्रथमादि वर्ष में द्विरागमन का फल

धनं हानिः सुखं नाशो भोगो वैरं ततः सुखम्।
प्रथमाब्दात्फलं ज्ञेयं क्रमाद्वध्वा द्विरागमे॥ २॥
श्वश्रूं हंत्यष्टमे वर्षे श्वशुरं च दशाब्दके।
संप्राप्ते द्वादशे वर्षे पतिं हंति द्विरागमे॥ ३॥

यदि प्रथम वर्ष में गौना होना होता है तो धन, दूसरे में हानि, तीसरे में सुख, चौथे में नाश, पाँचवें में भोग, छठे में शत्रुता और सातवें में सुख होता है। आठवें

1. ज्यो. नि. २२२ पृ.।

वर्ष में सास को मारने वाली, दसवें में श्वसुर का हनन करने वाली और बारहवें वर्ष में द्विरागमन होने पर बहू पति का विनाश करने वाली होती है ।।२–३।।

सरस्वत्यार्णवे—

कृते ग्रंथिबंधे समाब्दे प्रकुर्याद्भवेन्नैव दोषो विचालेहि वध्वा ।
तदाहुः परे विन्ध्यकूटादुदवस्थास्ततो दक्षिणे वर्षयुग्मं न शस्तम् ।।
समाब्ददोषो नहि विद्यते तदा ग्रंथेर्निबंधं हि भवेन्नृणां यदा ।
विन्ध्योत्तरे एव वदन्ति आर्यास्तद्दक्षिणे चाब्दसमं विवर्ज्यम् ।। ४ ।।

सरस्वत्यार्णव में कहा है कि विवाह के बाद वधू का द्विरागमन समवर्षों में करना चाहिये इसमें कोई दोष नहीं है। अन्य आचार्यों का मत है कि विन्ध्य पर्वत से उत्तर में समवर्षों में दोष नहीं होता विन्ध्य से दक्षिण के लिये समवर्ष में करना शुभ नहीं है।

जबकि विन्ध्यपर्वत के उत्तर में विवाह होता है तो समवर्ष में द्विरागमन का दोष नहीं होता है और दक्षिण में समवर्ष का त्याग करना चाहिये ।। ४ ।।

पुनः समवर्ष में दोषाभाव

ग्रंथिनिर्वंधनादूर्ध्वमब्ददोषो न विद्यते ।
विन्ध्यस्योत्तरभागेषु दक्षिणे परिवर्जयेत् ।। ५ ।।

गाँठ बँधने के बाद (विवाह के पश्चात्) विन्ध्यपर्वत से उत्तर में समवर्ष का दोष नहीं होता किन्तु विन्ध्य से दक्षिण दिशा में त्याग करना चाहिये ।। ५ ।।

मास फल

चण्डेश्वरः—

वैशाखे सुभगा प्रभूतधनिनी मार्गे च पुत्रान्विता
फाल्गुन्ये पतिवल्लभा प्रियजने नित्यं प्रिया पुत्रिणी ।
वंध्या दुर्भगनिर्धना विरहिणो सोद्वेगिता नित्यशो
नूनं देवसुतापि दुःखमतुलं प्राप्नोति मासांतरे ।। ६ ।।

आचार्य चण्डेश्वर ने बताया है कि वैशाख में द्विरागमन करने पर सुभगा व बड़ी पैसे वाली, अगहन में पुत्र से युक्त, फागुन में पति की प्यारी, प्रियजन में नित्य प्रेम करने वाली व पुत्रिणी होती है तथा अन्य मासों में वन्ध्या, दुर्भगा, धनहीन, विरहिणी, नित्य उद्वेग वाली, देवता की पुत्री होने पर भी अधिक दुःख पाने वाली होती है ।। ६ ।।

अन्यः—

आषाढे मुखरा स्वभावमुखरा वंध्या पतिद्वेषिणो
माघे भर्तृविरोधिनी सुचपला शुश्रूषया वर्जिता ।
ज्येष्ठे निर्धनता विपक्ष जननी वैशाखमार्गान्विते
मासे फाल्गुनके क्रमेण कथिताः पुत्रार्थसौख्यान्विताः ।। ७ ।।

ग्रंथान्तर में बताया है कि आषाढ में द्विरागमन करने पर मुखर, स्वभाव से मुखर, वन्ध्या व पति से शत्रुता करने वाली, माघ में पति से विरोध करने वाली, सुन्दर चपल, शुश्रूषा से हीन, जेठ में धन से हीन, शत्रु को पैदा करने वाली और वैशाख, मार्गशीर्ष, फाल्गुन में द्विरागमन करने पर क्रम से पुत्र, धन, सुख से युक्त होती है ॥ ७ ॥

ग्रहबल ज्ञान

व्यवहारचण्डेश्वरे—

गुरुभास्करयोर्वीर्ये केवलस्यैव वा रवेः ।
द्विरागमनमिच्छंति पत्युः शुद्धो तु नान्यथा ॥ ८ ॥

व्यवहार चण्डेश्वर में कहा है कि पति के गुरु व सूर्य के बली होने पर या केवल सूर्य के बली रहने पर द्विरागम्न करना चाहिये । बिना सूर्य शुद्धि के नहीं करना चाहिये ॥ ८ ॥

अशुभ चन्द्र ज्ञान

अन्यः—

जन्मराशौ यदा चन्द्रः द्वादशे च यदा भवेत् ।
द्विरागमे तु नारीणां वामनेत्रविनाशनम् ॥ ९ ॥

जबकि जन्म राशि या बारहवें में चन्द्रमा होता है तो इसमें द्विरागमन करने पर स्त्री की बायीं आँख का नाश होता है ॥ ९ ॥

द्विरागमन मुहूर्त

राजमार्तंडे—

भर्तुः शोभनगोचरे दिनपतौ नास्तं गते भार्गवे
सूर्ये कीटघटाजगे शुभदिने पक्षे च कृष्णेतरे ।
हित्वा दिग्प्रतिलोमगौ बुधसितौ लालाटिकं दिक्पतिं
चानीता गुणशालिनी नववधूर्नित्योत्सवैर्मोदते ॥ १० ॥

राजमार्तण्ड में बताया है कि पति के गोचर में शुभ सूर्य रहने पर, शुक्र के अस्त न होने पर, मेष, वृश्चिक, कुंभ के सूर्य में, शुभ दिन व शुक्ल पक्ष में, विपरीत दिशा में बुध, शुक्र के अभाव में, लालाटिक योग को छोड़कर, दिक् पति की दिशा में द्विरागमन करने पर स्त्री गुणशालिनी और नित्य के उत्सवों से प्रसन्न होती है ॥१०॥

नवोढा गमन निषेध

बादरायणः—

[1]चैत्रे पौषे हरौ सुप्ते गुरोरस्ते मलिम्लुचे ।
नवोढागमनं नैव कृते पंचत्वमाप्नुयात् ॥ ११ ॥

---

१. मु. चि. ८ प्र. १ श्लो. पी. टी. ।

ऋषि बादरायण ने बताया है कि चैत, पौषमास में, हरिशयन, गुर्वस्त, अधिक मास में नवोढा का गमन नहीं करना, करने पर मरण होता है ॥ ११ ॥

अन्योपि—

मलिम्लुचे तथा पौषे शुक्रे सन्मुखदक्षिणे ।
पितुः स्थानस्थिता नारी न गच्छेत्पतिमंदिरम् ॥ १२ ॥

ग्रंथान्तर में भी कहा है अधिक मास, पौष मास, शुक्र के सन्मुख व दाहिने रहने पर पिता के घर में स्थित स्त्री को पति के घर में नहीं जाना चाहिये ॥ १२ ॥

त्रिधा शुक्र ज्ञान

[1]राम :—

उदेति यस्यां दिशि यत्र याति गोलभ्रमाद्वाथ ककुब्भसंस्थे ।
त्रिधोच्यते सन्मुख एव शुक्रो यत्रोदितस्तां तु दिशं न यायात् ॥ १३ ॥

मुहूर्त चिन्तामणि के यात्रा प्रकरण में कहा है कि शुक्र जिस दिशा में पूर्व या पश्चिम में उदय होता है तो उस दिशा में जाने वाले को सम्मुख होता है ।

(२) उत्तर, दक्षिण गोल के क्रम से शुक्र, जिस गोल में हो उस गोलाभिमुख दिशा में यात्रा करने वाले को सम्मुख होता हैं ।

(३) कृतिकादि न्यास क्रम से जिस दिशा के नक्षत्र समुदाय में शुक्र हो उस दिशा में यात्रा करने पर शुक्र सम्मुख होता है । इसलिये तीनों प्रकार के शुक्र में यात्रा नहीं करना चाहिये ॥ १३ ॥

ज्योतिःप्रकाशे —

[2]अत्युत्सुकेषु यावत्प्राक्कपाले तु भृगुर्भवेत् ।
तावत्पाशिदिशं गच्छेत्प्राचीं प्रत्यक्स्थिते तथा ॥ १४ ॥

ज्योतिःप्रकाश में कहा है कि अत्यन्त उत्कण्ठित कार्यों में जब तक पूर्व कपाल में शुक्र हो तब तक पश्चिम दिशा में और पश्चिम कपाल में होने पर पूर्व दिशा में गमन करनी चाहिये ॥ १४ ॥

पूर्वमभ्युदिते शुक्रे यायाद्दक्षिणपश्चिमे ।
पश्चादभ्युदिते शुक्रे यायात्पूर्वोत्तरे दिशी ॥ १५ ॥

जबकि पूर्व दिशा में शुक्र का उदय होता है तो दक्षिण व पश्चिम में और पश्चिम दिशा में उदय होने पर पूर्व व पश्चिम में गमन करना शुभ होता है ॥ १५ ॥

अन्यदपि—

पूर्वस्थिते भृगौ यायान्नवोढा राक्षसेनले ।
पश्चिमस्थे भृगौ यायात्तदुदीशानवातयोः ॥ १६ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि पूर्व दिशा में शुक्र के रहने पर निर्ऋति व अग्निकोण में और पश्चिम दिशा में होने से ईशान व वायव्य कोण में गमन करना चाहिये ॥ १६ ॥

---

१. मु. चि. ११ प्र. ४० श्लो. । २. ज्यो. नि. १९७ पृ. ।

सन्मुख, दक्षिण में त्याग

बादरायणः—

[1]गुर्विण्या बालकेनापि नववध्वा द्विरागमे।
पदमेकं न गंतव्यं शुक्रे सन्मुखदक्षिणे ॥ १७ ॥

ऋषि बादरायण ने बताया है कि शुक्र के सम्मुख व दाहिने होने पर गर्भिणी, बालक व नई वधू के द्विरागमन में एक पैर भी नहीं चलना चाहिये ॥ १७ ॥

गमन का फल

[2]गर्भिणी स्त्रवते गर्भं बालस्य मरणं भवेत्।
नवा वधूर्भवेद्वंध्या शुक्रे सम्मुखदक्षिणे ॥ १८ ॥

सम्मुख, दाहिने शुक्र में गमन करने पर गर्भिणी के गर्भ का पतन, बालक का मरण और नई बहू वन्ध्या होती है ॥ १८ ॥

शुभाशुभ फल

अन्यः—

[3]पृष्ठे भृगौ पुत्रवती प्रयाणे कांतां कुलीनां सुभगां करोति!
अग्रेषु दुःखं विदधाति शुक्रो वैधव्यशोकौ खलु नास्ति चित्रम् ॥ १९ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि पीछे शुक्र रहने पर स्त्री गमन करती है तो पुत्रवती कुलीन व सुभगा और सामने शुक्रस्थ में द्विरागमन करने पर स्त्री दुःखी, विधवा व शोक से युक्त होती है। इसमें कोई विचित्रता नहीं है ॥ १९ ॥

द्विरागमन मुहूर्त

[4]ऋक्षोच्चये—

तिष्यादित्यसमीरणादितिवसुत्रीण्युत्तरायाश्विनी -
रोहिण्यः शुभदाश्च वर्षमसमं मेषालिकुंभे रविः।
कन्यामन्मथमीनगे नववधूयानं वृषे तौलिके
देवाचार्यसितेंदुसौम्यदिवसे शुद्धे गुरौ भास्करे ॥ २० ॥

ऋक्षोच्चय में बताया है कि पुष्य, हस्त, स्वाती, पुनर्वसु, धनिष्ठा, तीनों उत्तरा, अश्विनी, रोहिणी नक्षत्र, विषम वर्ष, मेष या वृश्चिक या कुम्भस्थ सूर्य, कन्या या मिथुन या वृष या तुला लग्न, गुरु, शुक्र, सोम या बुधवार में गुरु सूर्य की शुद्धि में द्विरागमन शुभ होता है ॥ २० ॥

---

१. मु. चिं. ८ प्र २ श्लो. पी. टी.।
२. मु. चिं. ८ प्र. २ श्लो. पी. टी.।
३. मु. चिं. ८ प्र. २ श्लो. पी. टी. में 'अग्रे सुखं वैविदधाति शुक्रो' पाठ है।
४. मु. चिं. ८ प्र. १ श्लो. पी. टी.।

ग्रंथान्तर से द्विरागमन मुहूर्त

राजमार्तंडे —

[1]नीहारांशुधनोत्तरादितिगुरुब्राह्म्यानुराधाश्विनी-
मूलाहस्करवारुणानिलहरीत्वाष्ट्रेषु शस्ते तिथौ।
कुंभाजालिगते रवौ शुभकरे प्राप्तोदये भार्गवे
जीवज्ञास्फुजितां दिने नववधूसद्मप्रवेशः शुभः॥ २१॥

राजमार्तण्ड में कहा है कि मृगशिरा, धनिष्ठा, आर्द्रा, तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, पुष्य, रोहिणी, अनुराधा, अश्विनी, मूल, हस्त, शतभिषा, स्वाती, श्रवण, रेवती नक्षत्र, शुभ तिथि, कुम्भ, मेष, वृश्चिकस्थ सूर्य, शुक्र के उदय में गुरु, बुध या शुक्रवार में नई बहू का घर में प्रवेश शुभ होता है॥ २१॥

दीपिकायाम्—

स्त्री शुद्धयाजघटालिसंयुतरवौ काले विशुद्धे भृगुः
संत्याज्यः प्रतिलोमगं शुभदिने यात्राप्रवेशोचिते।
त्यक्त्वा हस्तनिरंशकं प्रथमतो वध्वाः प्रवेशागमौ
कुर्यादिकपुरादिषु प्रतिभृगुर्नेच्छंति दोषं बुधाः॥ २२॥

दीपिका में बताया है कि स्त्री राशि शुद्धि से मेष, वृश्चिक या कुम्भ राशि में सूर्य के होने पर विशुद्ध समय में प्रतिलोम शुक्र का त्यागकर यात्रा प्रवेश में कथित शुभ दिन में, निरंशक (समस्त) हस्त को छोड़कर प्रथम वधू का प्रवेश व द्विरागमन करना चाहिये। उक्त कार्य में एक ही नगर में होने पर दूषित शुक्र का फल नहीं होता है॥ २२॥

भिन्न प्रकार से मुहूर्त

व्यवहारचण्डेश्वरे—

कुंभाजालिगते भानोर्निर्गमः सौम्यवासरे।
यायात्सौम्यदिने नारी नवोढा पतिमंदिरम्॥ २३॥

व्यवहार चण्डेश्वर में बताया है कि कुम्भ, मेष, वृश्चिक के सूर्य में, शुभदिन में निकल कर नवोढा को पति के घर जाना चाहिये॥ २३॥

लग्न शुद्धि

लग्नशुद्धिः—

बादरायणः—

[2]उपचयस्थानगे जीवे भृगौ केंद्रमुपागते।
शुद्धे लग्ने शुभाक्रांते गंतव्यं भर्तृमंदिरम्॥ २४॥

१. मु. चि. ८ प्र. १ श्लो. पी. टी.।
२. मु. चि. ८ प्र. २ श्लो. पी. टी.।

ऋषि बादरायण ने बताया है कि लग्न से ३।६।१०।११ में गुरु के रहने पर, केन्द्र में शुक्र की सत्तावश शुद्ध लग्न में शुभग्रह होने पर, पति के घर जाना उचित होता है ॥ २४ ॥

चतुष्टये ग्रहाः सौम्याः त्रिषडाये गताः परे।
अष्टमे शुभसंदृष्टे शुभदा च द्विरागमे ॥ २५ ॥

केन्द्र में शुभ ग्रहों की स्थिति रहने पर तथा ३।६।११ में पापग्रह के होने पर और शुभ से दृष्ट आठवाँ होने पर द्विरागमन की यात्रा अच्छा फल देने वाली होती है ॥ २५ ॥

प्रतिशुक्र परिहार

अथ प्रतिशुक्रापवादः—

तत्रैव—

[1]अस्तंगते गुरौ शुक्रे सिंहस्थे वा बृहस्पतौ।
दीपोत्सवबलेनैव कन्या भर्तृगृहं नयेत् ॥ २६ ॥

वहीं पर कहा है कि गुरु-शुक्रास्त या सिंहस्थ बृहस्पति में दीपावली बल से स्त्री को पिता के घर से ले जाना चाहिये ॥ २६ ॥

न शुक्रदोषो न सुरेज्यदोषो ताराबलं चन्द्रबलं न योज्यम्।
उद्वाहितायाः नवकन्यकाया दीपोत्सवे मंगलकृत्प्रवेशः ॥ २७ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है दीपावली में गुरु शुक्र दोष का अभाव होने से विवाहित कन्या का दीपावली में ससुराल में जाना शुभ होता है ॥ २७ ॥

शुक्रेतिचारे गुरुनष्टदृष्टो सिंहे गुरौ चैव तथाधिमासे।
याम्यायने भास्करपूर्वसंस्थे दीपोत्सवे शुद्धिकरः प्रवेशः ॥ २८ ॥

शुक्र के अतिचार, गुर्वस्त, सिंहस्थ गुरु, अधिमास, दक्षिणायन, दीपावली के उत्सव पर प्रवेश शुभ होता है ॥ २८ ॥

विशेष

व्यवहारोच्चये—

गुर्वादित्यौ विशुद्धौ स्यात्पत्युःपत्नीद्विरागमे।
व्यतीपाते च संक्रांतौ ग्रहणे वैधृतावपि ॥ २९ ॥
श्राद्धं विना शुभं नैव प्राप्तकालेपि मानवः।
अमासंक्रांतिविष्ट्यादौ प्राप्तकालेपि नाचरेत् ॥ ३० ॥

व्यवहारोच्चय में कहा है कि पति के गुरु, सूर्य शुद्ध होने पर पत्नी के द्विरागमन, व्यतीपात, संक्रान्ति ग्रहण, वैधृति में भी शुद्धि अपेक्षित होती है। अत्यावश्यक होने

१. मु. चि. ८ प्र. २ श्लो. पी. टी.।

पर विना श्राद्ध से अर्थात् मन्वादि श्राद्ध से शुभ नहीं होता है। अमावास्या भद्रादि में समय प्राप्त होने पर भी नहीं करना चाहिये ॥ २९-३० ॥

भिन्न रीति से परिहार

चण्डेश्वरः—

[1]पित्र्यागारे कुचकुसुमयोः संभवो वा यदि स्यात्
पत्युः शुद्धिर्न भवति रवेः सन्मुखो वाथ शुक्रः।
शस्ते लग्ने गुणवति तिथौ चन्द्रताराविशुद्धौ
स्त्रीणां यात्रा भवति सफला सेवितुं स्वामिसद्म ॥ ३१ ॥

आचार्य चण्डेश्वरजी ने बताया है कि पिता के घर में, कुच व पुष्पोद्गम की संभावना होने पर पति की सूर्य शुद्धि की या सम्मुख शुक्र दोष नहीं होता है।

प्रशस्त लग्न, गुणवती तिथि, चन्द्र, तारा की विशुद्धि में पति घर जाने की स्त्रियों की यात्रा फलवती होती है ॥ ३१ ॥

विशेष

पतिना नीयमानायाः पुरः शुक्रो न दोषभाक् ॥ ३२ ॥

पति के साथ स्त्री की यात्रा में सम्मुख शुक्र दोष भोगने को नहीं मिलता है ॥३२॥

गोत्रवश परिहार

बादरायणः—

[2]कश्यपेषु वसिष्ठेषु भृग्वत्र्यंगिरसेषु च।
भारद्वाजेषु वात्स्येषु प्रतिशुक्रं न दुष्यति ॥ ३३ ॥

कश्यप, वसिष्ठ, भृगु, अत्रि, अंगिरस, भारद्वाज और वत्स्य गोत्र वालों को प्रति शुक्र का दोष नहीं होता है ॥ ३३ ॥

पुनः सविशेष

माहेश्वरः—

नैतेषां प्रतिशुक्रयानमशुभं ये वत्सभृग्वंगिरो
भारद्वाजवसिष्ठकश्यपकुलोत्पन्नास्तथात्रेः कुले।
दुर्भिक्षे विषमे प्लवे प्रतिसितं न स्याद्विवाहे तथा
तीर्थानां गमने तथैकनगरे ग्रामेऽपि सौम्यस्तथा ॥ ३४ ॥

महेश्वरजी ने बताया है कि वत्स, भृगु, अंगिरा, भारद्वाज, वसिष्ठ, कश्यप और अत्रि ऋषि के कुल में उत्पन्न होने वालों के लिये तथा दुर्भिक्ष, विप्लव व विवाह में प्रतिशुक्र का दोष नहीं होता और तीर्थगमन, एकनगर और गाँव में भी शुभ होता है ॥ ३४ ॥

---

१. मु. चि. ८ प्र. ४ श्लो. पी. टी.।
२. मु. चि. ८ प्र. ४ श्लो. पी. टी.।

शुक्रान्ध ज्ञान

पराशरः—

[1]पौष्णादिवह्निभाद्यंघ्रि यावत्तिष्ठति चन्द्रमाः।
तावच्छुक्रो भवेदंधः संमुखे दक्षिणे हितम्॥ ३५॥

ऋषि पराशर ने बताया है कि रेवती के आदि से कृत्तिका के दूसरे चरण तक चन्द्रमा के रहने पर शुक्र अंधा होता है अतः सामने या दाहिने होने पर भी शुभ होता है॥ ३५॥

रामदैवज्ञोपि—

[2]यावच्चन्द्रः पूषभात्कृत्तिकाद्ये पादे शुक्रोंधो न दुष्टोऽग्रदक्षे॥ ३६॥

मुहूर्तचिंतामणि में बताया है कि रेवती के आदि से कृत्तिका के प्रथम चरण तक शुक्र अन्धा होता है अर्थात् स्वकार्य में असमर्थ होने से सामने व दाहिने होने पर दोष दायी नहीं होता है॥ ३६॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरंजने
त्रिसप्ततितमं द्विरागमनप्रकरणं समाप्तम्।

इसप्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन का तिहत्तरवाँ द्विरागमन नाम का प्रकरण समाप्त हुआ॥७३॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेव चतुर्वेदात्मजमुरलीधरचतुर्वेदकृता बृहद्दैवज्ञरञ्जनसङ्गृहग्रन्थस्य त्रिसप्ततितमप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्णा॥ ७३॥

अथ चतुःसप्ततितमं द्व्यंगप्रकरणं प्रारभ्यते

अब आगे चौहत्तरवें प्रकरण में नई बहू की पिता के घर से तीसरी बार विदाई जब होती है, इसे लोक में द्वयंग यात्रा कहते हैं, अतः विविध विचारों से इसे बताते हैं।

द्वयंग परिभाषा

जाते द्विरागमे पत्न्याः पुनः पतिगृहे गमः।
पितृगेहस्थितायाश्च स द्वयंग इह कीर्तितः॥ १॥

जब कि पत्नी की विदाई द्विरागमन होने के पश्चात् कन्या पिता के घर में कुछ समय रुककर तीसरी बार जब पति के घर जाती है तो वह यात्रा द्वयंग कहलाती है॥१॥

१. मु. चिं. ११ प्र. ४१ श्लो. पी. टी.।
२. मु. चिं. ११ प्र. ४२ श्लो.।

अन्य स्थान पर भी

वधूप्रवेशाद्गमनं तृतीयं ग्राह्यं सदा मासिकराहुरेव ।

ग्रन्थान्तर में कहा है कि वधू प्रवेश के पीछे स्त्री का ससुराल में तीसरी बार जाने पर राहु का विचार करके मुहूर्त बताना चाहिये ।

मासिक राहु ज्ञान व त्याग

अजादौ संभ्रमात्सूर्यं तत्र राहुः प्रतिष्ठितः ।
सम्मुखं दक्षिणे त्याज्यस्तृतीयगमने स्त्रियः ॥ २ ॥

मेषादि राशियों में सूर्य के भ्रमण वश उसी राशि में राहु होता है । इसका स्त्रियों के तृतीय गमन में त्याग करना चाहिये ॥ २ ॥

यद्राशिगोर्कः खलु तद्दिशायां राहुः सदा तिष्ठति मासि मासि ।
वधूप्रवेशस्तु यदा तृतीये ग्राह्यः सदा मासिक एव राहुः ॥ ३ ॥

जिस राशि दिशा में सूर्य होता है उसी दिशा में राहु मास, मास में रहता है । तीसरे वधू प्रवेश में इसका ग्रहण करना चाहिये ॥ ३ ॥

अशुभ राहु ज्ञान

यथा भृगोर्दक्षिणसम्मुखस्थः मृगीदृशीनामशुभो गमेः सदा ।
तथैव राहुः परिकल्पनीयोद्वचंगेन कार्यो भृगुजाद्विलोमम् ॥ ४ ॥

जैसे स्त्रियों के ससुराल जाने में सामने व दाहिने शुक्र अशुभ होता है । वैसे ही तृतीय यात्रा में राहु का विचार करके अर्थात् सम्मुख, दायें होने पर त्याग कर शुक्र के विपरीत करना चाहिये ॥ ४ ॥

४ दिशा में राहुफल

अग्रतो राहुर्वैधव्यं दक्षिणे सुतहा भवेत् ।
वामे पृष्ठे शुभो नित्यं तृतीयगमने स्त्रियः ॥ ५ ॥

स्त्री की तृतीय यात्रा में सम्मुख राहु होने पर विधवापन, दाहिने में पुत्र नाश और बायें व पीछे होने पर शुभ होता है ॥ ५ ॥

राहु विचार

त्रैमासिकं गृहादौ च युद्धे यामार्द्धसंभवः ।
राहुं विचार्य दैवज्ञो मासिकं द्वचंगकर्मणि ॥ ६ ॥

घर आदि में त्रैमासिक, युद्ध में यामार्द्ध और द्वचंग गमन में मासिक राहु का विचार करके दैवज्ञ को मुहूर्त बताना चाहिये ॥ ६ ॥

राहु दिशा ज्ञान

मेषोक्षयुग्मकर्केषु सत्रिकोणेषु तिष्ठति ।
राहुः पर्वादि काष्ठासु नेष्टः सन्मुखदक्षिणे ॥ ७ ॥

मेष, सिंह, धनु राशि में सूर्य के रहने पर पूर्वदिशा में, वृष, कन्या, मकर के सूर्य में दक्षिण में मिथुन, तुला, कुम्भ के सूर्य में पश्चिम दिशा में और कर्क, वृश्चिक, मीन राशि में सूर्य के होने पर राहु उत्तर में निवास करता है ।। ७ ।।

तृतीय यात्रा मुहूर्त

सुतिथौ गुणवल्लग्ने राहौ वामे च पृष्ठगे ।
यात्रोक्तमासदिवसे यायात्पतिनिकेतनम् ।। ८ ।।

शुभ तिथि, गुण से युक्त लग्न, बायें या पीछे राहु और यात्रा में वर्णित मास, दिन में पति के घर तीसरी बार जाना चाहिये ।। ८ ।।

अन्योपि—

दित्येंदुमूलार्कहरीज्यवासवे मैत्राश्विनीपौष्णशुभाकराः स्युः ।
द्वयंगे त्यजेन्मासिकराहुसन्मुखे दक्षेथ वा मंदमहोजवासरौ ।। ९ ।।

अन्य जगह पर भी कहा है कि पुनर्वसु, मृगशिरा, मूल, हस्त, श्रवण, पुष्य, धनिष्ठा, अनुराधा, अश्विनी, रेवती नक्षत्र में तीसरी बार पति निकेतन में सामने या दाहिने राहु और मंगल, शनिवार को छोड़ कर जाना चाहिये ।। ९ ।।

तीसरी यात्रा में शुभ नक्षत्र

आदित्यमृगहस्तेज्यपौष्णमैत्र्याश्विनीषु च ।
गोविन्दवसुमूलेषु द्वयंगः संपत्प्रदायकः ।। १० ।।

पुनर्वसु, मृगशिरा, हस्त, पुष्य, रेवती, अनुराधा, अश्विनी, श्रवण, धनिष्ठा, मूल नक्षत्र में द्वयंग यात्रा सम्पत्ति दाता होती है ।। १० ।।

शुभ सूर्य

धनुःकर्कटमीनेर्के सिंहे कन्यासु संस्थिते ।
भौमार्किवर्जिते वारे शुभदा द्वयंगकर्मणि ।। ११ ।।

धनु, कर्क, मीन, सिंह या कन्या के सूर्य में मंगल, शनिवार को छोड़कर द्वयंग यात्रा शुभ होती है ।। ११ ।।

द्विधा राहु ज्ञान

देवासुराणां समरे राहुर्विष्णू द्विधा कृता ।
तेनाख्यास्तस्य तमसोः द्वयंगमित्युच्यते बुधैः ।। १२ ।।

देवता व दैत्यों के युद्ध में अर्थात् अमृतपान के समय देव पंक्ति में छिपकर अमृत पान करने के समय भगवान् विष्णु ने राहु के दो भाग बनाने के नाते विद्वानों ने द्वयङ्ग इस नाम से कहा है ।। १२ ।।

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरंजने
चतुःसप्ततितमं द्वयंगप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन संग्रह ग्रन्थ का चौहत्तरवाँ द्वयंग नाम का प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ७४ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर-चतुर्वेदकृता बृहद्दैवज्ञरञ्जनसङ्ग्रहग्रन्थस्य चतुःसप्ततितमप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका परिपूर्णा ॥ ७४ ॥

अथ पञ्चसप्ततितमं स्वामिदर्शनप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे पचहत्तरवें प्रकरण में अपने स्वामी का दर्शन कब, किस क्षण में करना उचित होगा, इसे नाना ग्रन्थों के आधार पर बता रहे हैं ।

स्वामी अनुकूलता का फल

बृहस्पतिः—
स्वस्वामिनोऽनुकूलस्य दासस्यायुःश्रियौ सदा ।
वर्द्धेते वंशजस्यात्र तस्य दर्शनकालता ॥ १ ॥
शुभाशुभौ भवेतां तत्कालं वक्ष्ये शुभार्थिनाम् ।
प्रथमं तत्प्रवेशे च निर्गतानुप्रवेशने ॥ २ ॥
पुनः पुनर्दिदृक्षायां स्वामिनो भृतकस्य च ।
दर्शने शुभकाले च द्वयोः शोभनमेधते ॥ ३ ॥
भृत्यस्य भेदे काले च पूर्वकर्मणि शोभनः ।
इह कर्म मुहूर्तस्य शुभश्चेदन्यथान्यथा ॥ ४ ॥

बृहस्पतिजी ने बताया है कि अपने मालिक के अनुकूल नौकर की आयु व लक्ष्मी सदा बढ़ती है जब तक उसके वंशज दीखते हैं तब तक उसके दर्शन के काल की शुभा-शुभता होती है । शुभ और अशुभ काल कब होते हैं यह शुभ चाहने वालों के लिये कहूँगा । पहिला स्वामी के प्रवेश का काल, दूसरा निकलने के बाद पुनः प्रवेश करने में, यदि स्वामी के दर्शन की बार-बार इच्छा हो तो दोनों के लिये शुभकाल देखना चाहिये । नौकर के परिवर्तन काल में स्वामी के मुहूर्त के अनुसार शुभ होता है । ऐसी स्थिति में यदि मुहूर्त शुभ होगा तो शुभ इसके विपरीत में अशुभ फल होगा ॥ १–४ ॥

शुभाशुभ नक्षत्र

आर्द्राश्लेषा तथा ज्येष्ठा कृत्तिका भरणी तथा ।
त्रिपूर्वाश्च विनाशे वा दर्शनं स्वामिनः शुभा ॥ ५ ॥

देखने में आर्द्रा, श्लेषा, ज्येष्ठा, कृत्तिका, भरणी, तीनों पूर्वाओं को छोड़कर शेष नक्षत्र स्वामी दर्शन में शुभ होते हैं ॥ ५ ॥

अधिप देखने का मुहूर्त

भृत्यानुकूलनक्षत्रे शुभांशे शशिनि स्थिते।
विष्टिरिक्ताविवर्ज्येषु तिथिषु प्रेक्षणं शुभम् ॥ ६ ॥

नौकर के अपने अनुकूल नक्षत्र में, चन्द्रमा के शुभ नवांश में रहने पर, भद्रा, रिक्ता तिथि को छोड़कर स्वामी का दर्शन करना शुभ होता है ॥ ६ ॥

अन्य शुभ मुहूर्त

शुभवारे शुभे योगे स्थिरराशौ शुभेक्षिते।
शुभग्रहाणां लग्ने वा शुभे केन्द्रत्रिकोणगे ॥ ७ ॥
वर्गोत्तमोदये जीवबुधक्षेत्रे विशेषतः।
स्वस्वामिदर्शनं श्रेष्ठं वश्योसौ मरणान्तिकम् ॥ ८ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि शुभवार, शुभयोग, स्थिर राशि, शुभेक्षित, शुभग्रह लग्न या केन्द्र त्रिकोण में शुभग्रह स्थिति व विशेषकर गुरु या बुध की राशि वर्गोत्तम लग्न में अपने मालिक का देखना शुभ होता है और मरण पर्यन्त वशीभूत रहता है ॥ ७-८ ॥

नृप मुख दर्शन मुहूर्त

बुधांशके स्थिते सौम्ये नीचारिभवनं विना।
राज्ञस्तु वदनं दृष्ट्वा स्त्रीधनैस्तु वशी नृपः ॥ ९ ॥

नीच राशि व शत्रु राशि को छोड़कर अपने नवांश में बुध या शुभग्रह के रहने पर राजा का दर्शन करने पर राजा स्त्रीधन के साथ वश में होता है ॥ ९ ॥

दर्शन में लग्न शुद्धि

गुरौ केन्द्रे स्वतुङ्गे वा स्वर्क्षे वा शीतगौ तथा।
स्वामिदर्शनयोगोयं भृत्यस्वाम्यनुकूलतः ॥ १० ॥
शुक्रवर्जितयामित्रे गुलिकचन्द्रौ त्रिकोणगौ।
पश्यतः स्वामिनो भृत्यो यदा मरणान्तिमाव्रजेत् ॥ ११ ॥

गुरु के केन्द्र या उच्च या अपनी राशि में चन्द्रमा के रहने पर स्वामी दर्शन योग होता है। इसमें सेवक सेव्य में अनुकूलता होती है ॥ १० ॥

या शुक्र से रहित यामित्र में व गुलिक चन्द्रमा के त्रिकोण में रहने पर सेवक स्वामी परस्पर मुखावलोकन करते हैं तो दोनों का प्रेम मरण पर्यन्त रहता है ॥ ११ ॥

विप्रादि दर्शन में वार

सूर्यवारः शुभः प्रोक्तो ब्राह्मणानां च दर्शने।
भौमवारे नृपाणां तु दर्शनं जीवशोभनम् ॥ १२ ॥
मन्दवारे शुभं गच्छेद्विट्शूद्राणां तु दर्शने।
अन्यथा चेद्भवेदन्यमुभाभ्यां हि फले नृणाम् ॥ १३ ॥

ब्राह्मणों का सूर्यवार में, राजाओं का मंगलवार में और वैश्य, शूद्र के दर्शनार्थ शनिवार में जाना चाहिये। इसके विपरीत में जाने पर फल भी सुन्दर नहीं होता है ॥ १३ ॥

सेवा चक्र ज्ञान

अथ सेवाचक्रम्—

[1]तत्रैव—

सेवाचक्रे शिरः सप्त सप्त पृष्ठोदरे तथा।
पादयोः सप्तऋक्षाणि साभिजित्तु क्रमान्न्यसेत् ॥ १४ ॥
स्वामिभाद्भृत्यभं गण्यं भृत्यभात्स्वामिभं तथा।
निष्फलं पृष्ठपादस्के फलदस्तु शिरोदरे ॥ १५ ॥

एक पुरुषाकृति बनाकर उसमें सात नक्षत्र मस्तक पर, सात पीठ पर, सात पेट में और सात नक्षत्र पैरों में अभिजित् के साथ स्थापित करना चाहिये। यदि स्वामी को सेवक की आवश्यकता हो तो स्वामी के नक्षत्र से और सेवक को स्वामी की जरूरत हो तो सेवक के नक्षत्र से २८ नक्षत्रों को लिखकर देखना चाहिये। यदि पैर या पीठ पर नक्षत्र मिले तो निष्फल और मस्तक या पेट पर नक्षत्र हो तो फलद होता है ॥ १४–१५ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते संग्रहे वृहद्दैवज्ञरञ्जने पञ्चसप्ततितमं स्वामिदर्शनप्रकरणं समाप्तम्।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित वृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का पचहत्तरवाँ स्वामी दर्शन नामवाला प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ७५ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर-चतुर्वेदकृता वृहद्दैवज्ञरञ्जनग्रन्थस्य पञ्चसप्ततिप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दीटीका पूर्णा ॥७५॥

---

१. न० ज० २६६ पृ० सप्तशीर्षेसप्तपृष्ठे तथोदरे पाठान्तर है।

अथ षट्सप्ततितमं वाटिकाप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे छिहत्तरवें प्रकरण में वाटिका का निर्माण कब, कहाँ, कैसे करना चाहिये इसे बताते हैं ।

वृक्ष वाटिका लगाने का महत्त्व व दिशा

[1]वाटिका वा तडागो वा कूपो वा यदि निर्मितः ।
गृहात्पूर्वे कुवेर्यां च वारुणे शम्भुकोणके ॥ १ ॥
सदा सावित्री स भवति सदा दानं प्रयच्छति ।
सदा यज्ञं स पूज्येत यो रोपयतीहपादपान् ॥ २ ॥

जो कोई घर से पूर्व या उत्तर या पश्चिम या ईशान कोण में बगीचा अथवा तालाब या कूप (कूआ) निर्माण कराता है तो वह सदा गायत्री से युक्त अर्थात् पुरश्चरण करने वाला, सदा दान देने वाला और यज्ञ करने वाला होता है ॥ १-२ ॥

श्रेष्ठ का महत्व

[2]वरं भूमिरुहाः पञ्च नतु कोष्ठरुहा दश ।
पत्रैः पुष्पैः फलैर्मूलैः कुर्वन्ति पितृतर्पणम् ॥ ३ ॥
सर्वदा सिद्धिमाप्नोति कर्ता चेष्टफलं लभेत् ।

सुन्दर पाँच वृक्ष लगाना श्रेष्ठ है और १० मकान बनाने का महत्व नहीं होता है क्योंकि वृक्ष के पत्ता, पुष्प, फल, मूल में पितरों का तर्पण होता है ॥ ३ ॥

वृक्षारोपण करने वाला सदा सिद्धि और अभीष्ट फल को पाने वाला होता है ॥३½॥

विपरीत दिशा में लगाने का फल

आग्नेय्यां दक्षिणे वापि नैर्ऋत्ये वायुकोणके ॥ ४ ॥
धनपुत्रादिहानिश्च परलोकेऽपकीर्तिषु ।
हठान्मोहात्प्रमादाद्वा यदि कुर्याद्विशेषतः ॥ ५ ॥
तदा मृत्युमवाप्नोति नात्र सन्देहकारणात् ।
जातिभ्रष्टो दुराचारो विविधात्पुण्यकर्मणः ॥ ६ ॥

जो कोई अग्निकोण या दक्षिण या नैर्ऋत्य या वायुकोण में वाटिकादि का निर्माण कराता है तो वह धन, पुत्र की हानि से युक्त, परलोक में अपकीर्ति पाने वाला होता है, विशेष कर जिद् से या मोह या प्रमाद से यदि ऐसा करता है तो निःसंदेह मृत्यु को प्राप्त होता है और अनेक पुण्य करने पर भी जाति से भ्रष्ट, दुष्कर्मी होता है ॥३½-६॥

---

१. वृ० वा० मा० वा० नि० प्र० १५–१६ श्लो० = १–२ ।
२. वृ० वा० मा० वा० मि० १६ श्लो० टी० ।

ऋतुओं में लगाने योग्य वृक्ष

बहिः कृतो मनुष्योपि वाटिकारोपणात्सुखी ।
वसन्ते कदलीं चैव पुष्पजातिश्च पादपान् ॥ ७ ॥
तथा ग्रीष्मे वनस्थानां वर्षायां कण्टकद्रुमान् ।
शरदृतौ तथाम्रादीन् हेमन्ते शिशिरेपि च ॥ ८ ॥

जाति से निकालने पर भी वाटिकारोपण से मनुष्य सुखी होता है । वसंत ऋतु में केला व पुष्पों के पादप, गर्मी में जंगली वृक्ष, वर्षा में कांटे वाले वृक्ष तथा शरद्, हेमन्त और शिशिर ऋतु में भी आम आदि के वृक्ष लगाने चाहिये ॥ ७-८ ॥

वृक्ष लगाने का क्रम

वराहः—
[1]उत्तमं विंशतिर्हस्तं मध्यमं षोडशान्तरम् ।
स्थानात् स्थानान्तरं कार्यं वृक्षाणां द्वादशावरम् ॥ ९ ॥

आचार्य वराह ने बताया है कि एक वृक्ष बीस हाथ दूरी पर लगाना उत्तम, सोलह हाथ पर मध्यम और बारह हाथ की दूरी पर लगाना अधम होता है ॥ ९ ॥

वेध ज्ञान

शशिविद्धं गृहं कुर्याद्रविविद्धं जलाशयम् ।
हट्टो वा वाटिका वापि द्वयोर्विद्धा प्रशस्यते ॥ १० ॥

चन्द्र से विद्ध घर का, सूर्य से विद्ध जलाशय का २ दोनों से विद्ध बाजार और वाटिका का निर्माण कराना चाहिये ॥ १० ॥

वृक्षों को सींचने का प्रकार

[2]सायं प्रातश्च घर्मर्तौ शीतकाले दिनान्तरे ।
वर्षायां च भुवः शोषे कर्तव्या रोपितद्रुमाः ॥ ११ ॥

आचार्य वराहमिहिर ने बताया है कि वाटिका में लगाये हुए वृक्षों को ग्रीष्म ऋतु में साँझ सवेरे, शीतकाल में एक दिन बाद और वर्षा ऋतु में भूमि सूखने पर सींचना चाहिये ॥ ११ ॥

विशेष वृक्ष लगाने का फल

[3]अश्वत्थमेकं पिचुमन्दमेकं न्यग्रोधमेकं दशचिञ्चिनीकम् ।
कपित्थबिल्वामलकत्रयं च पंचाम्रवापी नरकं न पश्येत् ॥ १२ ॥

वृहत्संहिता में बताया है कि एक पीपल, एक बरगद, दश चिञ्चिनीक (इमली), कैथ, वेल व आँवले के तीन, तीन और पाँच पेड़ आम के लगाने पर मनुष्य नरक का दर्शन नहीं करता है ॥ १२ ॥

---

१. वृ० सं० ५५ अ० १२ श्लो० । २. वृ० सं० ५५ अ० ९ श्लो० ।
३. वृ० वा० वा० नि० २२-२३ = १३-१४ ।

वृक्षों की दिशा

[1]ईशाने रोपयेद्धात्रीं नैऋत्ये चिञ्चिनीद्रुमान् ।
आग्नेय्यां दाडिमं चैव वायव्ये बिल्ववृक्षकम् ।। १३ ।।
प्लक्षोत्तरं पूर्ववटं प्रशस्तं ह्युदुम्बरं दक्षिणभागके च ।
अश्वत्थवृक्षं दिशि वारुणे च मध्ये तथाम्रान्विविधप्रकारान् ।। १४ ।।

ग्रन्थान्तर में बताया है कि ईशान कोण में आंवले का, नैऋत्य कोण में चिंचिनी (इमली) का अग्नि कोण में अनार का, वायु कोण में बेल का, उत्तर में पाकड़ का, पूर्व में बरगद का, दक्षिण में गूलर का, पश्चिम में पीपल का और बीच में अनेक प्रकार के आमों के वृक्ष लगाना चाहिये ।। १३–१४ ।।

[2]प्लक्षोत्तरे प्रशस्तश्च वटः पूर्वे च शोभनः ।
उदुम्बरस्तथा याम्ये पिप्पलो वारुणे तथा ।। १५ ।।
[3]याम्यनैऋत्ययोर्मध्ये तथा जम्बूकदम्बकौ ।
पनसश्च तथाम्रश्च प्रशस्तौ शम्भुपूर्वयोः ।। १६ ।।

उत्तर में प्लक्ष (पकरिया—या पाकर) का, पूर्व में बरगद का, दक्षिण में गूलर का, पश्चिम में पीपल का, दक्षिण नैऋत्य के मध्य में जामुन, कदम्ब के, ईशान व पूर्व के बीच में कटहल व आम का वृक्ष लगाना चाहिये ।। १५–१६ ।।

बगीचे के बाहर लगाने के वृक्ष

वाटिकाया बहिः पूर्वे रोपयेद्वंशवृक्षकम् ।
उत्तरे च शमी बाह्ये पश्चिमे खदिरो बहिः ।। १७ ।।
दक्षिणे बकुलो बाह्येरिष्टनाशाय केवलम् ।

वाटिका के बाहर पूर्व में बाँस, उत्तर में छोंकरा (शमी), पश्चिम में कैंथ और दक्षिण में अरिष्ट नाश के लिये केवल मौलसरी लगाना चाहिये ।। १७–१७½ ।।

सात वाटिकाओं के नाम

आम्राणां वाटिका चैव द्वितीयाश्वत्थवाटिका ।। १८ ।।
तृतीया वटवृक्षाणां चतुर्थी प्लक्षवाटिका ।
पञ्चमी निंबवृक्षाणां षष्ठी जम्बुकवाटिका ।
चिञ्चिनीवृक्षसम्भूता सप्तमी परिकीर्तिता ।। १९ ।।

प्रथम वाटिका आमों की, दूसरी पीपल की, तीसरी बरगद की, चौथी पाकड़ की, पांचवीं नीम की, छटी जामुन की और सातवीं चिंचिनी वृक्ष की होती है ।।१७½–१९।।

---

१. वृ० वा० वा० नि० २२-२३ श्लो० पी० टी० ।
२. वृ० वा० वा० नि० २४-२९ श्लो० = १६-२१ ।
३. वृ० वा० वा० नि० ३०-३९ = २४-३१ ।

प्रशस्त वाटिका

एतासां वाटिकानां च प्रशस्ता चाम्रवाटिका ।
फलदा पुण्यदा चैव पापं संहरते ध्रुवम् ॥ २० ॥

इन सातों में आम का बगीचा शुभ, फल देने वाला, पुण्यदायी और निश्चय ही पापों को दूर करने वाला होता है ॥ २० ॥

वाटिका लगाने का महत्व

न तत्करोत्यग्निहोत्रो न पुत्रा योषितोद्भवाः ।
यत्करोति घनच्छाया पादपाः पथि रोपिताः ॥ २१ ॥

अग्निहोत्र करने से जो फल नहीं होता तथा स्त्री से उत्पन्न पुत्र जो नहीं कर सकते वह फल मार्ग में वृक्ष लगाकर छाया करने से होता है ॥ २१ ॥

[1]वराहः—

यो वाटिकां राजपथः समीपे सुष्ठां तथा कूपसमन्वितां च ।
स्वर्गे च वासं लभते मनुष्यश्चतुर्युगं सर्वसुखैरुपेतः ॥ २२ ॥

आचार्य वाराह ने बताया है कि जो व्यक्ति राजकीय मार्ग के समीप सुन्दर, कूप से युक्त वाटिका का निर्माण कराता है वह चार युग तक समस्त सुखों से युक्त होकर स्वर्गलोक में निवास प्राप्त करता है ॥ २२ ॥

वृक्षारोपण समय

[2]वराहः—

अजातशाखान् शिशिरे जातशाखान् हिमागमे ।
वर्षागमे चतुष्कन्धान्यथा दिक्प्रतिरोपयेत् ॥ २३ ॥

जिनमें शाखा न फूटी हों, ऐसे वृक्षों को शिशिर में (माघ-फाल्गुन) में, शाखा सहित वृक्षों को हेमन्त ऋतु (मार्गशीर्ष पौष) में और लम्बी शाखा वाले वृक्षों को वर्षा ऋतु में लगाना चाहिये ॥ २३ ॥

राजा की वाटिका का ज्ञान

[3]वास्तुराजवल्लभे—

वामे भागे दक्षिणे वा नृपाणां त्रेधा कार्या वाटिका क्रीडनार्थम् ।
एका द्वित्रिर्दण्डसंख्याशतं स्यान्मध्ये धारामण्डपं तोययन्त्रैः ॥ २४ ॥

वास्तुराज वल्लभ में कहा है कि राजगृह से बाईं तरफ या दाहिनी ओर राजाओं को खेलने के लिये १०० हाथ, २०० हाथ ३०० हाथ की वाटिका बनानी चाहिये। इसके मध्य में जल प्रपात मण्डप और फुहारा लगाना चाहिए ॥ २४ ॥

---

१. वृ० सं० ५५ अ० ६ श्लो० ।   २. वृ० वा० वा० नि० ३१ श्लो० ।
३. ९ अ० १८-२३ श्लो० = २४-२९ श्लो० ।

राजोपयोगी जलयन्त्र

क्षेत्रं सप्तविभागभाजितमतो भद्रं च भागत्रयं
तन्मध्ये जलवापिकाजिनपदैरेकांशतो वेष्टिता ।
स्तम्भैर्द्वादशभिश्च मध्यरचितः कोणेषु कूपान्वितः
कर्तव्यो जलयन्त्र एष विधिवद्भोगाय भूमीभुजाम् ॥ २५ ॥

जल यन्त्र बनाने के स्थान को सात-सात भाग अर्थात् ४९ भाग करके बीच में चारों ओर तीन भाग में भद्र चबूतरा और २४ भाग में जलवापिका याने हौज बनाना, सबके मध्य में एक भाग में वेदी तथा बीच में १२ खम्भों से युक्त मण्डप बनाना चाहिये । कोनों में रूपान्वित (नकासी) करना, ऐसा जलयन्त्र राजाओं के भोग के लिये बनाना चाहिये ॥ २५ ॥

बगीचे में वृक्ष

तस्यां चम्पककुन्दजातिसुमनो वेलाश्च निर्वालिका
जाती हेमसमानकेतकिरपि श्वेता तथा पाटला ।
नारिङ्गः करणी वसन्तलतिका चारक्तपुष्पादिकं
जम्बीरो बदरी च पूगमधुपा जम्बूश्च चूतद्रुमाः ॥ २६ ॥
मालूरः कदली च चंदनवटश्चाश्वत्थपथ्या शिवा
चिंचाशोककदंबनिंबतरवः खार्जूरिका दाडिमी ।
कर्पूरागरुकिंशुका हयरिपुः पुंनाग संन्निवुकी
प्रोक्ता नागलता च बीजनिभृता स्यात्तिंदुकी लांगली ॥ २७ ॥
प्राक्षैला शतपत्रिका च बकुला धत्तूरकंकोलको
सालस्तालतमालको मुनिवरौ मंदारपारिद्रुमौ ।
अन्ये भोग्यविचित्रखाद्यसकलास्ते रोपणोया बुधैः
यं प्राप्नोति च भूतले शुभतरून् तं चंपकान्वापयेत् ॥ २८ ॥
आस्थानं प्रतिसेचनाय च घटीयंत्रः सुसारो भवेत्
दोलास्त्रीतनखेलनाय रुचिरे वर्षावसंतोत्सवे ।
बालाप्रौढवधूसुमध्यवनितागानैर्मनोहारिभि-
र्ग्रीष्मे शारदकेथ शीतलजलक्रीडा शुभे मण्डपे ॥ २९ ॥

उसमें चम्पा, कुन्द, जाति (चमेली), वेला के फूलों के वृक्ष, निर्वालिका (नरमाली) जाती, पीले फूल वाली केतकी, सफेद पाटल (गुलाब), नारियल, करणी (कनेल), वसंत लतिका, लाल पुष्प, जंबीर (नीबू), बेर, सुपाड़ी, मधुप (महुआ), आम के वृक्ष, मालूर (विल्व), केला, चंदन, बरगद, पीपल, पथ्या (हरीतकी), शिवा (आंवला), इमली, अशोक, कदम्ब, नीम, खाजूरिक (खजूर), अनार, कपूर, अगर, किंशुक (ढाक), हयरिपु (सफेद कनेल), पुन्नाग (जायफल), निम्बुकी (नीबू), नागलता (नागवेल)'

बीज निभृता (बीजू नीबू), तिंदुगी (तेंदुआ), लांगली (करहारी), अंगूर, इलायची, शतपत्रिका (शतावरी), बकुला (मौलसरी), धतूरा, कंकोलक, साल, ताड़, तमाल, मन्दार (मदार), पारिजात और अन्य भोगने के उपयुक्त समस्त वृक्ष वाटिका में स्थापित करने चाहिये तथा अन्य शुभ वृक्ष भूतल पर चम्पा आदि प्राप्त हों तो उन्हें भी लगाना चाहिये। और स्थान-स्थान पर मजबूत एक घटीयन्त्र की स्थापना सिंचन के लिये एवं शरद् वर्षा बसन्त ऋतु में स्त्री समुदाय के खेलने के लिये झूला, ग्रीष्म, शरद् ऋतु में, बालिका, जवान स्त्री समुदाय के सुन्दर गानों से युक्त ठण्डे जल का शुभ मंडप जल क्रीडा के लिये बनवाना चाहिये ॥ २६–२९ ॥

वृक्षारोपण के नक्षत्र

लतागुल्मवृक्षरोपो हस्तपुष्याश्विनीध्रुवैः।
विशाखामृदुमूलाहि वरुणश्च प्रशस्यते ॥ ३० ॥

हस्त, पुष्य, अश्विनी, ध्रुवसंज्ञक, विशाखा, मृदु मूल, श्लेषा, शतभिषा नक्षत्र में वृक्ष लगाना शुभ होता है।। ३० ॥

गुरौ केंद्रे विपाके खे विधौ वारि विधूदये।
शुभयुक्तेक्षिते बंधौ सद्वारे वा शुभोदये ॥ ३१ ॥

विना पापग्रह के केन्द्र में गुरु, दसवें में चन्द्र या जलचर राशि लग्न में, धनस्थान शुभग्रह से युक्त या दृष्ट होने पर शुभग्रह के वार में या शुभग्रह की लग्न में वृक्ष लगाना चाहिये ॥ ३१ ॥

वृक्ष लगाने का मन्त्र

लतागुल्मवृक्षादिरोपणे मंत्रः—

[1]ॐ वसुधेति च सीतेति पुण्यदेति धरेति च।
नमस्ते सुभगे देवि द्रुमोयं बर्द्धतामिति ॥ ३२ ॥

हे वसुधे, हे सीते, हे पुण्य देने वाली पृथ्वी, हे सुभगे देवि तुम्हें नमस्कार है मेरे लगाये हुए वृक्ष को बड़ा करो ॥ ३२ ॥

बड़े वृक्ष लगाने का मुहूर्त

बृहस्पतिः—

[2]सोमवारयुते मूले चापलग्ने महाद्रुमान्।
स्थापयेज्जीवलग्ने च रेवत्यां गुरुवारगे ॥ ३३ ॥

बृहस्पति जी ने बताया है कि सोमवार मूल नक्षत्र धनु लग्न में या गुरुवार रेवती नक्षत्र धनु या मीन लग्न में बड़े वृक्षों को लगाना चाहिये ॥ ३३ ॥

१. बृ. वा. वा. नि. १०५ पृ.।
२. बृ. वा. वा. नि. ४० श्लो.।

केला, सुपाड़ी वृक्ष का मुहूर्त

पुनर्वस्वोश्चतुर्थांशे जीवचन्द्रौ यदोदितौ।
तदावमोचनं कार्यं कदलीक्रमुकान् तथा ॥ ३४ ॥

पुनर्वसु नक्षत्र के चौथे चरण में गुरु, चन्द्रमा के रहने पर केला सुपाड़ी के वृक्ष को लगाना चाहिये ॥ ३४ ॥

सुपाड़ी लगाने का मुहूर्त

चित्रा तृतीयपादस्थे बुधलग्ने निवापयेत्।
पूगाः पुनश्च तल्लग्ने स्थापिताः स्युर्महाफलम् ॥ ३५ ॥

चित्रा नक्षत्र के तीसरे चरण में, बुध की (३।६) लग्न में सुपाड़ी का वृक्ष लगाने पर बहुत फल होता है ॥ ३५ ॥

वृश्चिकांत्यांशगे चन्द्रे विलग्ने क्रमुकान् क्षिपेत्।
महाधनैर्महाभोगैरेधते क्षेपकः श्रिया ॥ ३६ ॥

वृश्चिक राशि के अन्तिम नवांश लग्न में चन्द्रमा के रहने पर सुपाड़ी का वृक्ष लगाने पर अन्तिम क्षण तक अधिक धन, भोग से वृद्धि प्राप्त होती है ॥ ३६ ॥

नारियल लगाने का मुहूर्त

घटस्थं पंचमे षष्ठे सिते लग्ने नियोजयेत्।
बीजानि नालिकेराणां बहुसंख्याफलाय च ॥ ३७ ॥

कुम्भ राशि पंचम में और छठे मीन में शुक्र होने पर नारियल के बीजवपन करने पर अधिक संख्या में फल आते हैं ॥ ३७ ॥

सुपाड़ी आदि लगाने का मुहूर्त

शुक्रे मीनांत्यगे लग्ने चिरकालफलाय च।
क्रमुकान्नारिकेलांश्च तालवृक्षान् विनिक्षिपेत् ॥ ३८ ॥

मीन राशिस्थ अन्त्य नवांश में लग्न में शुक्र के होने पर सुपाड़ी, नारियल और ताड़ के वृक्ष लगाने से अधिक काल तक फल होते हैं ॥ ३८ ॥

गन्ना आदि का मुहूर्त

अश्विन्यां लग्नगे चन्द्रे कृत्वा खातं कृषिः क्रमात्।
नालिकेरांस्तथेक्षूंश्च निदध्यात्पतिवृद्धये ॥ ३९ ॥

अश्विनी नक्षत्र में लग्नस्थ चन्द्र को करके क्रम से नारिकेल, गन्ना की कृषि के लिये स्वामी की वृद्धि के लिये गढ्डा करना चाहिये ॥ ३९ ॥

वृक्ष लगाने के नक्षत्र

वाराहः—
[1]ध्रुवमृदुमूलविशाखागुरुभं श्रवणस्तथाश्विनीहस्तम्।
उक्तानि दिव्यदृग्भिः पादपसंरोपणे भानि ॥ ४० ॥

१. बृ. सं. ५५ अ. ३१ श्लो.।

आचार्य वराह मिहिर ने बताया है कि तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, मूल, विशाखा, पुष्य, श्रवण, अश्विनी, हस्त नक्षत्र में दिव्य दृष्टि वाले ऋषियों ने वृक्ष लगाना शुभ कहा है ।। ४० ।।

शक्तियामलोक्त वाटिका चक्र ज्ञान

[1]शक्तियामले वाटिकाचक्रम् ।
सूर्यभाद्दिनभं यावद्वृक्षचक्रं विधीयते ।
त्रयं मूले भवेद्रोगं त्वचे त्रीणि धनागमः ।। ४१ ।।
शाखायां वेदनाशः स्यात्पत्रे युग्मं दरिद्रता ।
शीर्षे त्रीणि शुभं प्रोक्तं पूर्वे एकं तु मृत्युदा ।। ४२ ।।
याम्ये पंच सुतं नाशं पश्चिमे द्वे धनप्रदा ।
उत्तरे वेदलाभः स्यादित्युक्तं शक्तियामले ।। ४३ ।।

शक्तियामल में कहा है कि सूर्य के नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक वृक्षचक्र होता है । इसमें सूर्य नक्षत्र से तीन नक्षत्र तक मूल (जड़) में दिन नक्षत्र होने पर रोग, उसके छाल में तीन तक धनागम, पुनः चार तक शाखा में नाश, फिर दो नक्षत्र पत्ता में निर्धनता, पुनः तीन तक मस्तक में शुभ, पुनः १ पूर्व में मृत्यु, ५ दक्षिण में पुत्र नाश, २ पश्चिम में धन प्राप्ति पुनः ४ नक्षत्र उत्तर में होने पर लाभ होता है ।।४१–४३।।

स्पष्टार्थ वृक्ष चक्र

नं० सं०	अवयव	फल	नं० सं०	अवयव	फल
३	जड़	रोग			
३	छाल	धनागम	१	पूर्व	मृत्यु
४	शाखा	नाश	५	दक्षिण	पुत्रनाश
२	पत्ता	दरिद्रता	२	पश्चिम	धनप्राप्ति
३	मस्तक	शुभ	४	उत्तर	लाभ

वृक्षारोपण में मासादि

कार्तिके मार्गपौषे स्यान्माघफाल्गुनश्रेष्ठयोः ।
रिक्ता अमा द्वादशी च कुजसूर्यश्च मध्यमा ।। ४४ ।।
मंदयोगेपि नेष्टः स्यान्निर्बलश्चन्द्रतारका ।
यमाग्निशिवसार्पस्याद्विदैर्वापितृपूर्वया ।। ४५ ।।
एकराशिरवौ जीवे सिंहस्थे च गुरुस्तथा ।
अस्ते च भार्गवे जीवे वर्जयित्वा सदा बुधैः ।। ४६ ।।

१. बृ. सं. ५५ अ. १४ श्लो. ।

कातिक, अगहन, पूस, माघ, फागुन में लगाना श्रेष्ठ होता है। रिक्ता, अमावास्या, द्वादशी तिथि मंगल सूर्यवार मध्यम और शनिवार निर्बल चन्द्र व तारा अशुभ होती है। भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, श्लेषा, विशाखा, पूर्वा, एक राशि में सूर्य गुरु, सिंहस्थ गुरु और गुरु शुक्रास्त का त्याग करके लगाना चाहिये॥ ४४–४६ ॥

चक्र द्वारा शुभ रोपण विधि

तिथिवारसमायुक्तं सूर्यभादिदुभं युतम्।
नवभिस्तु हरेद्भागं शेषांके रोपणं फलम्॥ ४७॥
एके शरे त्रिफलितं निष्फलं वेदपक्षयोः।
वसौ षष्ठे भवेल्लाभो सप्तमे नवमे मृतिः॥ ४८॥

जिस दिन वृक्ष लगाना हो उस दिन की तिथि, वारसंख्या में सूर्य नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र की संख्या जोड़कर ९ का भाग देने से शेष १।३।५ में वृक्ष फलित, २।४ में फल रहित, ६।८ में लाभ और ७ या ९ शेष बचने पर मरण होता है॥ ४७–४८॥

वृक्षों में रोगोत्पत्ति का कारण

वाराहः—
[1]शीतवातातपे रोगो जायते पांडुपत्रता।
अवृद्धिश्च प्रवालानां शाखाशोषो रसश्रुतिः॥ ४९॥

आचार्य वराह ने बताया है कि अधिक ठंड, वायु और धूप लगने से वृक्षों को रोग हो जाता है, रोगी वृक्षों के पत्ते पीले पड़ जाते हैं, अंकुर नहीं बढ़ते, डालियाँ सूख जाती हैं और रस टपकने लगता है॥ ४९॥

रोगी वृक्षों की दवा

[2]चिकित्सितमथैतेषां शस्त्रेणादौ विशोधनम्।
विडंगघृतपंकाक्तान् सेचयेत्क्षीरवारिणा॥ ५०॥

इन रोगी वृक्षों की दवा करनी चाहिये। प्रथम वृक्ष का जो अङ्ग विकार से युत हो उसको शस्त्र से काट डाले फिर वायविडंग, घी, कीचड़ को मिलाकर वृक्षों पर लेप करके दूध मिश्रित जल से सींचना चाहिये॥ ५०॥

फल नाश की चिकित्सा

[3]फलनाशे कुलत्थैश्च माषैर्मुद्गैस्तिलैर्यवैः।
शृतशीतपयःसेकः फलपुष्पाभिवृद्धये॥ ५१॥

जब वृक्ष में फल न लगे तो कुलथी, उड़द, मूँग, तिल, जौ, इन सब को दूध में डाल कर औटा दे, फिर उस दूध को ठण्डा करके उससे फल, पुष्प वृद्धि के लिये सींचना चाहिये॥ ५१॥

---

१. वृ ज्यो. सा. २३२ पृ. तथा वृ. वा. वा. नि. ४१–४३ = ४१–४३।
२. वृ. सं. ५५ अ. १५ श्लो।   ३. वृ. सं. ५५ अ. १६ श्लो।

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरंजने षट्सप्ततितमं वाटिकाप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन जी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन संग्रह ग्रन्थ का छिहत्तरवाँ वाटिका नाम वाला प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ७६ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर-चतुर्वेदकृता बृहद्दैवज्ञरञ्जनसंग्रहग्रन्थस्य षट्सप्ततिप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्तिमगात् ॥ ७६ ॥

अथ सप्तसप्ततितमं कृषिप्रकरणं प्रारभ्यते

अब आगे सतहत्तरवें प्रकरण में कृषि वालों के लिए किस चीज की खेती कब करना, कब हल चलाना, किस काल में किस अन्न का बीज बोना चाहिये, इसे विविध ग्रन्थों के वाक्य से बताते हैं ।

कृषि काल कथन प्रतिज्ञा

बृहस्पतिः—
अथातः संप्रवक्ष्यामि संपूर्त्यां कृषये नृणाम् ।
क्रियाणामपि सत्कालमुहूर्ते च विशेषतः ॥ १ ॥

आचार्य बृहस्पतिजी कहते हैं कि मैं मनुष्य की खेती की क्रियाओं की पूर्ति के लिये विशेष कर मुहूर्त के शुभ समय को बताता हूँ ॥ १ ॥

खेती की प्रधानता

गृहस्थाचारधर्मस्य मूलं कृषिरुदाहृता ।
अन्येषामाश्रमाणां तु गृहस्थाश्रमतः फलम् ॥ २ ॥

गृहस्थाश्रमधर्म का मूल खेती होती है तथा अन्य आश्रमों का गृहस्थाश्रम से ही फल होता है ॥ २ ॥

तस्मात्कृषिविधानेन बीजनिर्वापणेन च ।
पुरुषार्थप्रसिद्धिः स्यादतस्तत्काल उच्यते ॥ ३ ॥

इस कारण कृषि विधान व बीज बोने से पुरुषार्थ की सिद्धि होती है अतः उसके काल को कहते हैं ॥ ३ ॥

प्रथमं संप्रवक्ष्यामि समयं कृषिकर्मणः।
शुभो वज्रिन्नृणां चैव देवानां च विशेषतः॥ ४॥
प्रकीर्णके कृषीमूले सर्वत्र प्राणिनां समा।
कृष्यभावे न संपत्स्यात्तस्मात्संप्रारभेत्कृषिम्॥ ५॥
पूर्वं सुभूप्रवेशः स्यान्निमित्तं चावलोकयेत्।

हे इन्द्र प्रथम मैं मनुष्यों तथा विशेषकर देवताओं के खेती करने के शुभ समय को बता रहा हूँ। मनुष्य प्रायः सब जगह एक ही खेती की विधि से खेती करते हैं। खेती के अभाव से संपत्ति का अभाव होता है, इसलिये खेती करनी चाहिये।

पहले सुन्दर भूमि में प्रवेश करके कारणों का अवलोकन करना चाहिये॥ ४-५½॥

भूमि प्रवेश मुहूर्त

मैत्राश्विवसुरोहिण्यां साहिर्बुध्न्यं कुजाह्निभुक्॥ ६॥

अनुराधा, अश्विनी, धनिष्ठा, रोहिणी, उत्तरा भाद्रपदा, मंगलवार में प्रवेश करना चाहिये॥ ६॥

स्वात्युत्तरे च पुष्ये च रौद्रे याम्ये च पैतृभे।
कुर्यात्प्रवेशनं भूमेः प्रथमस्वीकृतासु च॥ ७॥
एतेषु कौजः श्रेष्ठोत्र मध्यमौ बुधजीवयोः।
शेषा वारा विवर्ज्याः स्युः सोमवारे कदाचन॥ ८॥

स्वाती, उत्तरा, पुष्य, आर्द्रा, भरणी, मघा नक्षत्र में पूर्वस्वीकृत भूमि में प्रवेश करना चाहिये। तथा वारों में मंगलवार श्रेष्ठ, बुध, गुरु मध्यम विशेष स्थिति में सोमवार में और अवशिष्ट वारों प्रवेश में नहीं करना चाहिये॥ ७-८॥

प्रवेश कालीन लग्न शुद्धि

शुक्रज्ञजीवलग्ने वा राशौ चेष्टा शुभावहाः।
प्रवेशो गोनराणां च गवां संपदामिच्छताम्॥ ९॥

लग्न में शुक्र, बुध, गुरु के रहने पर या शुभावह इष्ट राशि में गायरूप सम्पत्ति की इच्छा करने वाले को गाय व मनुष्य का प्रवेश कराना चाहिये॥ ९॥

प्रवेशानन्तर कार्य

एवं प्रवेशनं कृत्वा वनच्छेदनमेव च।
दहनादिकमप्येवं कृत्वा कृषिमथारभेत्॥ १०॥

शुभ भूमि में प्रवेश करके वहाँ के जंगलों को काटकर अग्नि से ईंधन को जलाकर, राख होने के पश्चात् उस भूमि में खेती करनी चाहिये॥ १०॥

खेती में श्रेष्ठ नक्षत्र

रोहिण्यादित्यमूलाश्विपौष्णहस्तोत्तरात्रयम् ।
मृगवस्वानुराधाश्च कृषिकर्मणि पूजिताः ॥ ११ ॥

रोहिणी, पुनर्वसु, मूल, अश्विनी, रेवती, हस्त, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, धनिष्ठा अनुराधा, नक्षत्र खेती के काम में श्रेष्ठ होते हैं ॥ ११ ॥

बीज बोने योग्य भूमि

अथ वज्रिन्प्रवक्ष्यामि बीजनिर्वापणाय च ।
कालः सर्वामराणां च नराणां च हितेभयोः ॥ १२ ॥

हे इन्द्र अब मैं समस्त, देव, मनुष्यों के बीज बोने के शुभ समय को बता रहा हूँ । जब जिस भूमि की ऋतु हो तब उसमें बीज बोना चाहिये । विशेष कर बीजों का वपन भूमि के ऋतु विशेष में होता है । जिस बीज का जो समय भूमि की ऋतु में कहा है, उसी समय में उस बीज का वपन शुभ होता है ॥ १२ ॥

यदा स्यादार्तवो भूमेस्तदा बीजानि वापयेत् ।
बीजानां तु विशेषेग धरार्तवविशेषतः ॥ १३ ॥
यस्य बीजस्य यः कालो भूमेरार्तवसंभवः ।
तस्मिन्काले तु तद्बीजं शुभं निर्वापयेद्बुधः ॥ १४ ॥

जब जब भूमि का ऋतुकाल हो तब बीज बोने चाहिये क्योंकि बीजों का भूमि के ऋतुकाल के साथ विशेष सम्बन्ध होता है, जिस बीज के लिये भूमि का जो ऋतुकाल उचित हो उसे उस काल में जानकार व्यक्ति बोवे ॥ १३–१४ ॥

समस्त बीज जाति वपन

ज्येष्ठाख्ये मासि मूलाख्ये आषाढे च विशेषतः ।
सर्वेषां बीजजातीनां धरायामार्तवो भवेत् ॥ १५ ॥

जेठ मास, मूल में या आषाढ़ मास में सब तरह के बीजों का वपन भूमि में करना चाहिये क्योंकि यह पृथ्वी का आर्तवकाल है ॥ १५ ॥

बीज बोने के १४ नक्षत्र

वारुणं वैष्णवं स्वातीपुष्ये सार्पोत्तरात्रयः ।
रोहिणीमूलमैत्राश्च हस्तपूषाभगास्तथा ॥ १६ ॥
चतुर्दशैताः तारास्युर्बीजनिर्वापने तथा ।
वासवादित्यसौम्याश्वितारा: स्युर्मध्यमावहाः ॥ १७ ॥
अन्याश्च नव ताराः स्युर्वर्ज्या बीजनिवापने ।
वर्ज्येष्वपि च योगेषु शुभं स्याद्बीजवापने ॥ १८ ॥

शतभिषा १, श्रवण २, स्वाती ३, पुष्य ४, आश्लेषा ५, तीनों उत्तरा ८, रोहिणी ९, मूल १०, अनुराधा ११, हस्त १२, पूर्वाषाढा १३, पूर्वाफाल्गुनी १४ ये

तारा (नक्षत्र) बीज बोने में श्रेष्ठ, धनिष्ठा, पुनर्वसु, मृगशिरा, अश्विनी मध्यम और अन्य ९ तारा बीज वपन में वर्जित होती है। वर्जनीय नक्षत्रों में भी शुभ योगों में बीज बोना शुभ होता है ॥ १६-१८ ॥

उत्तम-मध्यम त्याज्य तिथि

ओजाश्च तिथयः श्रेष्ठाः पक्षयोरुभयोरपि।
प्रथमां नवमीं युग्मामभावास्यां च वर्जयेत् ॥ १९ ॥
द्वितीया दशमी षष्ठी मध्यमास्तिथयः परे।
वर्ज्यास्युस्तिथयो युग्मा बीजनिर्वापणे बुधैः ॥ २० ॥

दोनों पक्षों की विषम तिथियों में प्रतिपदा, नवमी को तथा सम तिथियों में अमावास्या का त्याग करके श्रेष्ठ, द्वितीया, दशमी, षष्ठी तिथि मध्यम और अन्य सम तिथि बीज बोने में त्याज्य होती हैं ॥ १९-२० ॥

शुभवार

चन्द्रज्ञजीवशुक्राणां वारा वर्गादयः शुभाः।
उदयांशदृशश्चैषां वर्ज्यर्क्षेष्वपि शोभनाः ॥ २१ ॥
अर्कारार्कजयातृणां वारा वार्गांशकादयः।
उदयाश्च दशाश्चैव प्रोक्तर्क्षेष्वपि वर्जिताः ॥ २२ ॥

चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्रवार व इनके वर्ग शुभ होते हैं। तथा इनकी लग्नांश पर दृष्टि होने पर वर्जित कार्यों में भी शुभता आती है ॥ २१-२२ ॥

सूर्य, भौम, शनि के वार, वर्ग, नवांश, लग्न, दशा उक्त नक्षत्रों में वर्जित होता है ॥ २२ ॥

श्रेष्ठ मध्यम, त्याज्य लग्न

मृगगोकर्किसिंहाःस्युर्मीनश्च शुभदा सदा।
तुलामिथुनकुम्भास्युर्मध्यमा वर्जिता परे ॥ २३ ॥

मकर, वृष, कर्क, सिंह व मीन लग्न सदा अच्छा फल देने वाली तुला, मिथुन, कुम्भ मध्यम और अवशिष्ट त्याज्य होती हैं ॥ २३ ॥

लग्न शुद्धि

सहजारिभवे क्रूरा शुभा सौम्या न शोभना।
विभवे वानवे सौम्या ववर्गा बहुपादृते ॥ २४ ॥
चन्द्रो भ्रातृसुतायस्त्रोबंधुधर्मार्थगः शुभः।
अष्टमस्था ग्रहाः सर्वे नेष्टा शुक्रश्च कामगः ॥ २५ ॥

३।६।११वें भावों में पापग्रह शुभ व शुभग्रह अशुभ चन्द्रमा ३।५।११।७।४।९।२ में शुभ और सातवें शुक्र एवं आठवें में समस्त ग्रह अशुभ होते हैं ॥ २४-२५ ॥

काले बीज व काले धान बोने का मुहूर्त

आर्किवारश्च मध्यार्के बीजान् कृष्णान्प्रवापयेत् ।
शततारासु तल्लग्ने कृष्णधान्यानि वापयेत् ।। २६ ।।

मध्याह्न में सूर्य के रहने पर शनिवार में काले बीजों को और मध्याह्न में शतभिषा नक्षत्र में काले धानों का वपन करना चाहिये ।। २६ ।।

लाल बीज व शालि जाती वपन मुहूर्त

पर्यदाये गुरौ लग्ने रक्तबीजान्प्रवापयेत् ।
इंदुभे शालिजातीनां जीवलग्ने शुभावहम् ।। २७ ।।

गुरु के लग्न में रहने पर लाल बीजों का और मृगशिरा नक्षत्र में लग्न में गुरु हो तो शालि जाति के बीजों का बोना शुभावह होता है ।। २७ ।।

कोदों बोने का मुहूर्त

भौमवारे कुजे लग्ने निर्वपेत्कोद्रवान्बुधः ।
कोद्रवान्निर्वपेद्वृद्ध्यै कुजवारे यमोदये ।। २८ ।।

मंगलवार, लग्नस्थ भौम में या वृद्धि के लिये मंगलवार व शनि की राशि में या लग्नस्थ शनि में कोदों का वपन करना चाहिये ।। २८ ।।

ककुनी बोने का मुहूर्त

माहेयवारे सौम्यर्क्षे क्रियलग्ने प्रियंगवः ।
निर्वाप्या विष्टिरिक्ताभिर्वर्जितैस्तिथिभिर्युतैः ।। २९ ।।

भौमवार, सौम्य नक्षत्र, मेष लग्न में भद्रा व रिक्ता को छोड़कर अन्य तिथियों में ककुनी का वपन करना चाहिये ।। २९ ।।

मूंग बीज वपन मुहूर्त

त्वाष्ट्रभं मुद्गसंज्ञानां जीवलग्नं शुभावहम् ।
मंत्रिवारेंदुगे लग्ने बीजान्युक्तानि वापयेत् ।। ३० ।।

चित्रा नक्षत्र व ९।१२ लग्न में मूंग का और गुरुवार लग्नस्थ चन्द्रमा में उक्त बीजों का वपन करना चाहिये ।। ३० ।।

समस्त बीज बोने का मुहूर्त

हस्तपौष्णाश्विसौम्याश्च पुष्यमैत्रानिलानलाः ।
रोहिणी च प्रशस्ताः स्युः सर्वबीजनिवापने ।। ३१ ।।

हस्त, रेवती, अश्विनी, सौम्य, पुष्य, अनुराधा, कृत्तिका, स्वाती, रोहिणी नक्षत्र में समस्त बीजों का वपन शुभ होता है ।। ३१ ।।

निष्पाव तुतुक जाति बीज वपन

मूले तुतुकजातीनां जीवलग्ने शुभावहम् ।
तुलांत्यपादगे चन्द्रे विलग्नस्थेऽतिशोभनः ।। ३२ ।।

निष्पावबीजं निर्वाप्यो महाघान्यविवृद्धिदः ।

मूल नक्षत्र में जब गुरु हो तो तुलुक जाति के बीजों को बोना शुभ होता है। चन्द्रमा तुला के अन्तिम चरण में हो, लग्न में कोई ग्रह न हो तो छींटकर बोया हुआ बीज अत्यन्त धान्य वृद्धिकारक होता है ॥ ३२ ॥

वन में खेती का मुहूर्त

सितवारे युते सौम्ये शुक्रलग्ने शुभे तिथौ ॥ ३३ ॥
अरण्यांश्च कृषिं कुर्यान्निवच्छेदनपूर्वकान् ।
इक्षुशालियवमुद्गमाषकैर्भग्नशैलतिलबिल्वगव्यकैः ।
पद्मपत्रनिहितं ग्रहेक्षणान्नागयोगविहितं श्रियावहम् ॥ ३४ ॥

शुक्रवार, लग्न में बुध, शुक्र तथा शुभ तिथि हो तो नये काटे गये वृक्षोंवाले वनों में कृषि करे। ईख, शालि, जौ, मूँग, माष, तिल, बेल तथा गायों का अच्छे ग्रहों की दृष्टि होने पर या टूटे हुए पहाड़ वाली चारा भूमि पर कमल के पत्तों के दोने में रखे बीज नागयोग में बोने पर अत्यन्त श्रीवृद्धि होती है ॥ ३३–३४ ॥

नाग योग या करण क्षय

सार्पे मुहूर्ते सार्पर्क्षे करणे सार्पसंज्ञके।
संयोगो नागयोगोयमथवा करणक्षये ॥ ३५ ॥

सार्पमुहूर्त, सार्प (आश्लेषा) नक्षत्र, सार्प संज्ञक करण का संयोग होने पर नाग योग होता है। अथवा करण सार्प न होने पर भी नाग योग होता है ॥ ३५ ॥

नागभूमि में रहने का मुहूर्त

कन्याकन्यांशके जीवे लग्नस्थे विनियोजयेत् ।
भुवि नागतले स्थातुं चिरकालं यदिच्छसि ॥ ३६ ॥

दीर्घ काल तक उस भूमि में नागयोग रहे, ऐसी इच्छा हो तो कन्या राशि में कन्या के नवांश में लग्न में गुरु होने पर बीजवपन करना चाहिये ॥ ३६ ॥

तं केतुपंचमांशस्थे जीवलग्ने विनिक्षिपेत् ।
इक्षुखंडा महावृद्धयै शुभयोगेथवा समम् ॥ ३७ ॥

केतु के पञ्चमांशस्थ में, गुरु लग्न में होने पर अथवा शुभयोग में ईख का बीजवपन अत्यन्त वृद्धिकारक होता है ॥ ३७ ॥,

हल चलाने का मुहूर्त

अथ हलप्रवाहमुहूर्तः—

ज्योतिःसारे—

[1]मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु मूलभे मघाविशाखासहितेषु भेषु ।
हलप्रवाहं प्रथमं विदध्यान्नीरोगमुष्कान्वितसौरभेयैः ॥ ३८ ॥

---

१. ३३ पृ० ।

ज्योतिःसार में कहा है कि मृदु, ध्रुव, क्षिप्र, चरसंज्ञक नक्षत्रों में तथा मूल, मघा, विशाखा नक्षत्र में निरोग अण्डकोशों से युत बैलों से पहिले-पहिले हल चलाना चाहिये ।। ३८ ।।

अशुभ तिथि

[1]हंत्यष्टमी बलीवर्दान्नवमी सस्यघातिनी ।
चतुर्थी कीटजननी पशून्हंति चतुर्दशी ।। ३९ ।।

अष्टमी बैलों का, नवमी सस्यों का विनाश करती है । चौथ में कीड़ों की उत्पत्ति, चौदस तिथि में हल चलाने पर पशुओं का नाश होता है ।। ३९ ।।

अशुभ लग्न

मेषलग्ने पशून्हंति कर्कटे च जलाद्भयम् ।
सिंहेशस्य भयं प्रोक्तं तुलायां हलसंशयः ।। ४० ।।
मकरे सस्यनाशाय कुंभे चोरभयं भवेत् ।
शेषाणि शुभलग्नानि कृषिकर्म उदाहृतम् ।। ४१ ।।

मेष लग्न में हल चलाने से पशु नाश, कर्क में जल से भय, सिंह में शस्य भय, तुला में संशय, मकर में धान्य नाश और कुम्भ में चोर का भय होता है । शेष लग्न खेती के काम में शुभ होती हैं ।। ४०–४१ ।।

बीज बोने में राहु चक्र

बीजवापने राहुचक्रं श्रीपतिः—
[2]मूर्ध्नि त्रीणि गले त्रयं च जठरे धिष्णानि च द्वादश
स्यात्पुच्छे भचतुष्टयं बहिरतो भानां स्थितं पंचकम् ।
कीटं कज्जलमन्नवृद्धिरधिकानिस्तंदुलत्वं क्रमात्
स्यादीतिप्रभवं भयं च फणिभाद्बीजोप्तिकाले स्फुटम् ।। ४२ ।।

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि राहु के नक्षत्र से ३ मस्तक में, ३ गले में, १२ पेट में, ४ पूँछ में और इसके बाहर ५ नक्षत्रों में दिन नक्षत्र होने पर क्रम से कीड़ा, कज्जलता, अधिक अन्न वृद्धि, धान्य का अभाव और ईतिजन्य भय होता है ।।४२।।

धान्य रोपण मुहूर्त

रामः—
[3]द्वीशाजपान्निर्ऋतिधातृशतार्यमर्क्षे ।
सस्यस्य रोपणमिहार्किकुजौ विना सत् ।। ४३ ।।

रामदैवज्ञ ने बताया है कि विशाखा, पूर्वाभाद्रपदा, मूल, रोहिणी, शतभिषा व उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रों में धानों को पहिले बोए स्थान से अन्यत्र स्थान में रोपण करना शुभ होता है ।। ४३ ।।

---

१. ज्यो नि. २२४ पृ. । ३. ज्यो० नि० २२५ पृ० । ४. मु. चि. २ प्र. ३२ श्लो ।

धान्य रक्षार्थं पर्णशाला मुहूर्त

शस्यरक्षार्थं बृहस्पतिः—
विश्वाभक्षांशगे चन्द्रे शशिवारे विधूदये ।
रक्षार्थं सर्वसस्यानामुटजा कार्या विचक्षणैः ॥ ४४ ॥

उत्तराषाढ नक्षत्र के नवांश में चन्द्रमा के रहने पर, सोमवार, लग्नस्थ चन्द्र में समस्त धान्यों की रक्षा के लिये पर्णशाला बनवानी चाहिये ॥ ४४ ॥

मघाविष्णोश्चतुर्थांशे चाहिर्बुध्न्यस्य मध्यमे ।
रौद्रस्य प्रथमे कुर्यात्सिहचापोदये मतम् ॥ ४५ ॥

मघा, श्रवण के चौथे चरण में, उत्तरा भाद्रपद के मध्य में, आर्द्रा के प्रथम में सिंह धनुलग्न में पर्णशाला बनवानी चाहिये ॥ ४५ ॥

स्तम्भ स्थापन

सिंहचापोदये स्थाणु स्थातव्यो मृगभीतिदः ।
सस्यमध्येथवारामे रौद्रर्क्षे मध्यमांशयोः ॥ ४६ ॥

आर्द्रा नक्षत्र के मध्यमांश में सिंह या धनु लग्न में, धानों के या बगीचे के बीच में हिरन, खरगोश आदि को डराने के लिए कृत्रिम पुतला स्थापित करना चाहिये ॥४६॥

धान्य रक्षा

अदितेस्तु चतुर्थांशे चन्द्रजीवसिता यदि ।
उद्यंति चेत्तदा कुर्याद्धान्यकामी सुरक्षणः ॥ ४७ ॥

पुनर्वसु नक्षत्र के चौथे चरण में चन्द्र, गुरु, शुक्र के होने पर धान्यकामी को धान्यों की सुन्दर रक्षा का उपाय करना चाहिये ॥ ४७ ॥

रक्षा ज्ञान

खली वाली च संस्थाप्य सौम्यर्क्षे शीतगूदये ।
सोमवारयुते स्वातौ रोहिण्यां वापि पूर्ववत् ॥ ४८ ॥

मृगशिरा नक्षत्र में, लग्नस्थ चन्द्र होने पर सोमवार या स्वाती, रोहिणी में भी खली, वाली की स्थापना करनी चाहिये ॥ ४८ ॥

धान्य काटने का मुहूर्त

प्राजापत्यमघाज्येष्ठाश्लेषाया हस्तयुक्तयोः ।
अर्कीन्दुतनये लग्ने धान्यप्रच्छेदनं शुभम् ॥ ४९ ॥

रोहिणी, मघा, ज्येष्ठा, आश्लेषा, हस्त नक्षत्र में, शनि, बुध लग्नस्थ होने पर धान्य काटना शुभ होता है ॥ ४९ ॥

बाँध चलाने का मुहूर्त

याम्यवैष्णववैशाखा लग्ने कर्कटवृश्चिके ।
प्रथमं लंबनं कुर्याच्छित्रुबुद्धिविनाशने ॥ ५० ॥

भरणी, श्रवण, विशाखा नक्षत्र, कर्क या वृश्चिक लग्न में, शत्रु की बुद्धि का नाश करने के लिये प्रथम दाँय चलाना चाहिये ॥ ५० ॥

धान काटने का मुहूर्त

रामः—

[1]तीक्ष्णाजपादकरवह्निवसुश्रुतीन्दुस्वातीमघोत्तरजलांतकतक्षपुष्ये ।
मंदाररिक्तरहिते दिवसेतिशस्ता धान्यच्छिदा निगदिता स्थिरभे विलग्ने ॥५१॥

मुहूर्त चिन्तामणि में कहा है कि शनि, भौमवार तथा रिक्ता तिथियों का त्याग करके शेष वारतिथि में, कृत्तिका, मृगशिरा, तीनों उत्तरा, पूर्वाभाद्रपदा, हस्त, धनिष्ठा, श्रवण, स्वाती, पूर्वाषाढा, भरणी, चित्रा और पुष्य में से किसी एक में, २।५।८।११ लग्न में धान काटना शुभ होता है ॥ ५१ ॥

अन्न निकालने का मुहूर्त

[2]भाग्यार्यमश्रुतिमघेंद्रविधातृमूलमैत्रांत्यभेषु गदितं कणमर्दनं सत् ॥ ५२ ॥

मुहूर्त चिन्तामणि में बताया है कि पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, श्रवण, मघा, ज्येष्ठा, रोहिणी, मूल, अनुराधा या रेवती में से एक में बालों से अन्न कण निकालना चाहिये ॥ ५२ ॥

धान्य स्थिति व वृद्धि मुहूर्त

मिश्रोग्ररौद्रभुजगेंद्रविभिन्नधिष्णे कर्काजतौलिरहिते च तनौ शुभाहे ।
धान्यस्थितिः शुभकरी गदिता ध्रुवेज्यद्वीशेंद्रदास्रचरभेषु च धान्यवृद्धिः ॥५३॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि मिश्र, उग्रसंज्ञक, पुनर्वसु, आश्लेषा, ज्येष्ठा नक्षत्र से भिन्न, कर्क, मेष, तुला से रहित लग्न और शुभवार में धान्यों की स्थिति शुभ करनेवाली होती है और तीनों उत्तरा, रोहिणी, पुष्य, विशाखा, ज्येष्ठा, अश्विनी, चरसंज्ञक में धान्य वृद्धि शुभ होती है ॥ ५३ ॥

नवीन (यज्ञ) अन्न खाने की विधि

अथनवयज्ञान्नभक्षणविधिः—

नवयज्ञाधिकारस्याच्छ्यामाका व्रीहयो यवाः ।
नाश्नीयात्तानहुत्वैवमन्येष्वनियमः स्मृतः ॥ ५४ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि श्यामाक (सावाँ), चावल, जौ, नवीन अन्नों को विना हवन किये नहीं खाना चाहिये । अन्य अन्नों में ऐसा नियम नहीं है ॥ ५४ ॥

ऐक्षवः सर्वशूगाश्च नीवाराश्चणकास्तिलाः ।
अकृताग्रयणोऽश्नीयात्तेषां नोक्ता हविर्गुणाः ॥ ५५ ॥

ईख, समस्त शूग, धान्य, नीवार (तीनी, सवाँ, कोदों आदि), चना, तिलादि को विना आग्रयण के भी खाना चाहिये, क्योंकि इनमें हविष्य के गुण नहीं होते ॥ ५५ ॥

---

१. मु. चि. २ प्र. ३१ श्लो. । २. मु. चि. २ प्र. ३२ श्लो. ।

ग्रन्थान्तर से नवान्न भोजन मुहूर्त

रामः—

[1]नवान्नं स्याच्चरक्षिप्रमृदुभे सत्तनौ शुभम् ।
विनानन्दाविषघटी मधुपौषार्किभूमिजान् ॥ ५६ ॥

श्रीरामदैवज्ञ ने बताया है कि चर, क्षिप्र, मृदुसंज्ञक नक्षत्रों में शुभग्रहों से दृष्ट युत, शुभग्रह की लग्न में १।६।११ तिथि का त्याग करके अन्य तिथियों में, विष घटियों को तथा चैत, पौष मास व शनि, मंगलवार को छोड़कर शेष वारों में नवीन अन्न का खाना शुभ होता है ॥ ५६ ॥

कोल्हू चक्र

अथ कोल्हुचक्रम्—

सूर्यर्क्षाद्गिरिपुत्रकस्य तलतो भूरिक्षुकण्ठे नगा
ऊर्ध्वभ्रांतसुमिन्मये च नवकं गोस्कंधकाष्ठे त्रयम् ।
तिर्यग्भ्रान्तसुदारुके च गिरयो नष्टार्थवृद्धयाग्नि-
भीस्सौख्यं गोहृतिरिज्यकानिलकरां स्यादित्यमैत्रश्रुतौ ॥ ५७ ॥

सूर्य के नक्षत्र से एक नक्षत्र कोल्हू के तल में दिन नक्षत्र हो तो नेष्ट, इसके बाद सात नक्षत्र कण्ठ में होने पर वृद्धि, ततः ९ ढेंका में अग्नि का भय, पुनः ३ जुआ में सुख, पुनः तिरछी घूमने वाली लकड़ी में ७ सात नक्षत्रों में होने पर गोवंश का नाश तथा यही फल पुष्य, रोहिणी, स्वाती, हस्त, पुनर्वसु, अनुराधा, श्रवण में भी होता है ॥ ५७ ॥

स्पष्टार्थचक्र

तल	कंठ	ढेंका	जुआ	कतार
१	७	९	३	७
नेष्ट	वृद्धि	अग्नि	सौख्य	गोनाश

ग्रन्थान्तर से भिन्न कोल्हू चक्र ज्ञान

अथ प्रकारान्तरम् —

अन्यत्रापि —

[2]वेदद्विनेत्रभूभूतबाणहस्तरसाः क्रमात् ।
प्रथमे च भवेल्लक्ष्मी द्वितीये हानिरेव च ॥ ५८ ॥

१. मु. चि. २ प्र. ३७ श्लो ।

२. ज्यो. सा. ३२ पृ. 'हस्तत्रयं' पाठान्तर है ।

तृतीये सर्वलाभं च चतुर्थे तु क्षयं तथा।
पंचमे च भवेन्मृत्युः षष्ठस्थाने शुभं स्मृतम् ॥ ५९ ॥
सप्तमे चैव पीडा स्यादष्टमे धनधान्यदम्।
सूर्यभाद्गणयेच्चान्द्रमिक्षुयंत्रे नियोजयेत् ॥ ६० ॥

अन्य स्थान पर भी कहा है सूर्य के नक्षत्र से दिन के नक्षत्र तक ४।२।२।१।५।५।१२।६ आठ भागों में अपने नक्षत्र को जानने पर प्रथम (४) भाग में अपना दिन नक्षत्र होने पर लक्ष्मी, दूसरे में (२) हानि, तीसरे में सर्वलाभ, चौथे में क्षय, पाँचवें में मृत्यु, छठे में शुभ, सातवें में पीड़ा और आठवें (६) भाग में होने पर धन, धान्य की वृद्धि होती है ॥ ५८–६० ॥

स्पष्टार्थ चक्र

सू० न०	१	२	३	४	५	६	७	८
सं०	४	२	२	१	५	५	२	६
फल	लक्ष्मी	हानि	सर्वलाभ	क्षय	मृत्यु	शुभ	पीडा	धनधान्य

सफल कूप चक्र

अथ कूपचक्रम्—

अथाहं संप्रवक्ष्यामि कूपचक्रं समासतः।
रोहिण्यादिश्च गणयेद्यत्र तिष्ठति चन्द्रमाः ॥ ६१ ॥
अथवा सूर्यनक्षत्राद्गणयेच्च त्रिकं त्रिकम्।
मध्ये शीघ्रजलं स्वादु पूर्वे भूमिश्च खण्डकम् ॥ ६२ ॥
आग्नेय्यां सजलं प्रोक्तं याम्ये निर्जलता तथा।
नैऋते चामृतं वारि वारुण्यां शीतलं जलम् ॥ ६३ ॥
वायव्ये परिजनं हंति उत्तरे चात्तमं जलम्।
ईशाने कटुकं क्षारं भूमिरेव न संशयः ॥ ६४ ॥

अब मैं क्रम से कूप चक्र को कहता हूं। रोहिणी नक्षत्र से या सूर्य के नक्षत्र से तीन, तीन नक्षत्रों को ८ दिशा व मध्य में स्थापित करके दिन नक्षत्र तक गिनने पर जब मध्य में दिन नक्षत्र होता है तो मीठा, शीघ्र जल, पूर्व में हो तो जलाभाव, अग्निकोण में होने पर जल, दक्षिण में जलहीन, नैऋत कोण में सुन्दर पानी, पश्चिम में ठण्डा पानी वायव्य में परिजन विनाश, उत्तर में उत्तम जल और ईशान कोण में होने पर खारी कड़ुवा या जलाभाव होता है ॥ ६१–६४ ॥

कूपारम्भ के नक्षत्र

अथ कूपारंभे नक्षत्रग्रहणम्—

ज्योतिषसारे—

[1]हस्तात्तिस्रो वासवं वारुणं च शैवं पित्र्यं त्रीणि चैवोत्तराणि ।
प्राजापत्यं चापि नक्षत्रमाहुः कूपारंभे श्रेष्ठमाद्या मुनींद्राः ॥ ६५ ॥

ज्योतिषसार में कहा है कि हस्त, चित्रा, स्वाती, धनिष्ठा, शतभिषा, आर्द्रा, मघा, तीनों उत्तरा और रोहिणी नक्षत्र में कूआ का प्रारम्भ उत्तम होता है ॥ ६५ ॥

सफल तडागचक्र ज्ञान

अथ तडागचक्रम्—

[2]तडागचक्रं वक्ष्यामि यदुक्तं ब्रह्मयामले ।
सूर्यर्क्षाच्चंद्रमा यावद्गणयत्सततं बुधैः ॥ ६६ ॥
दिक्षु ऋक्षद्वयं न्यस्य मध्ये पञ्च नियोजयेत् ।
ऋक्षाणि वारिवाहे षट् फलं तत्र विचारयेत् ॥ ६७ ॥
पूर्वस्थाने भवेच्छोको आग्नेय्यां सलिलं बहु ।
दक्षिणे वारिनाशं च नैर्ऋते चामृतं जलम् ॥ ६८ ॥
पश्चिमे बहुभिर्वारि वायव्ये निर्जलं तथा ।
उत्तरे चोत्तमं वारि ईशाने कुत्सितं तथा ॥ ६९ ॥
मध्ये शीघ्रजलं प्रोक्तं वारिवाहेम्बुनाशम् ॥ ७० ॥

अब आगे मैं ब्रह्मयामल में जो कथित तडाग चक्र है, उसे कहता हूँ । गोचरी सूर्य नक्षत्र से चन्द्रमा के नक्षत्र तक गिनकर देखना चाहिये कि उसकी स्थिति कहाँ पर है । नक्षत्रों की स्थापना का प्रकार ८ दिशाओं में दो-दो नक्षत्र बीच में पाँच और मेघ (बादल) में ६ नक्षत्रों का न्यास करने पर जब पूर्व दिशा में दिन नक्षत्र (चन्द्रनक्षत्र) होता है तो तालाब बनाने पर शोक, अग्नि कोण में होने पर जलाधिक्य, दक्षिण में जल का अभाव, नैर्ऋत्य में अमृत तुल्य जल, पश्चिम में अधिक पानी, वायव्य में जल-हीनता, उत्तर में सुन्दरजल, ईशान में दूषित जल, मध्य में शीघ्र जल और मेघों में दिन नक्षत्र होने पर जल का नाश होता है ॥ ६६-७० ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मज रामदीनकृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने सप्तसप्ततितमं कृषिप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन संग्रह ग्रन्थ का कृषि नाम वाला सतहत्तरवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ७७ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेव चतुर्वेदात्मजमुरलीधर-चतुर्वेदकृता बृहद्दैवज्ञरञ्जनसंग्रहग्रन्थस्य सप्तसप्ततिप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका परिपूर्णा ॥ ७७ ॥

---

१. बृ. ज्यो. सा. २४१ पृ. । २. बृ. वा. तथा नि. १२४–१२६ श्लो. ।

अथाष्टसप्ततितमं रोगप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे अठहत्तरवें प्रकरण में रोग होनेपर उसकी शान्ति कब तक कितने दिनों में होगी तथा किस नक्षत्र में सर्प के काटने पर मृत्यु, विशिष्ट रोगों की चिकित्सा के मुहूर्त, रोग छूटने पर शुभ मुहूर्त में स्नानादि का वर्णन इसमें कह रहा हूँ ।

नक्षत्रों में साँप के काटने पर फल

बृहस्पतिसंहितायाम् —

द्विदैवत्यमघाश्लेषारोहिण्यार्द्रासु नैर्ऋते ।

बहुलायां विषैर्दंष्टो न प्राणीति कुमारतः ॥ १ ॥

बृहस्पति संहिता में बताया है कि विशाखा, मघा, आश्लेषा, रोहिणी, आर्द्रा, मूल और कृत्तिका में सर्प दंश से प्राणी की मृत्यु होती है ॥ १ ॥

अथ रोगोत्पत्तेर्दिनावधिकथनम्—

१५-२० दिन बाद सुख

मघायां विंशतिर्यावद्दिनान् जीवेच्छुभे दिने ।

ज्येष्ठे विशाखभे हस्ते रोगी मासार्द्धतः सुखी ॥ २ ॥

मघा में रोग होने पर २० दिन और ज्येष्ठा, विशाखा व हस्त में रोग होने पर १५ दिन के पश्चात् मानव सुखी होता है ॥ २ ॥

११ दिन बाद सुख

चित्रायां वैष्णवे याम्ये वारुणे सौम्यवारगे ।

रोगी एकादशाहेन सुखी स्याद्यमसादपि ॥ ३ ॥

जब कि शुभवार, चित्रा, श्रवण, भरणी या शतभिषा में रोग होता है तो यमराज के अधीन हुआ भी अर्थात् मरणासन्न भी रोगी ग्यारह दिन के बाद रोग से छुटकारा पाता है ॥ ३ ॥

७ या ९ दिन बाद रोग विमुक्ति

मूलाश्विकृत्तिकापुष्यपुनर्वसुसुखोरगाः ।

यदि रोगी नवाहाद्वा सप्ताहाद्वा सुखी भवेत् ॥ ४ ॥

जबकि मूल, अश्विनी, कृत्तिका, पुष्य, पुनर्वसु, आश्लेषा नक्षत्र में रोग का प्रारम्भ होता है तो रोगी जन ९ दिन या ७ दिन में रोग से छुट्टी पाता है ॥ ४ ॥

भिन्न प्रकार

रोहिण्युत्तरफाल्गुन्योरहिर्बुध्न्ये तथामयी ।

सप्ताहाद्वा नवाहाद्वा सुखी भवति वृत्रहन् ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! रोहिणी, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तरा भाद्रपद में रोग होने पर ७ या ९ दिन में रोग से मुक्ति होती है ॥ ५ ॥

मरण योग ज्ञान

उरगवरुणरुद्रा वासवेन्द्रत्रिपूर्वा यमबहुलयुता सा पापवारेण युक्ताः ।
तिथिषु गतवतीष्टाद्वादशोभिश्चतुर्थीसहितंमरणयोगे रोगिणो मृत्युरेव ॥६॥

आश्लेषा, शतभिषा, आर्द्रा, धनिष्ठा, ज्येष्ठा, तीनों पूर्वा, कृत्तिका, भरणी नक्षत्र पापग्रह के वार. ८।१२।४ तिथि का योग होने पर मरण योग होने से रोगी की मृत्यु होती है ॥ ६ ॥

औषधि करण

इति निगदितरोगे चास्य रोगस्य शान्त्यै
कथयति चतुरास्यः कालभिच्चौषधीनाम् ।
मरणदलनक्षारक्रोधलेपादिपान-
प्रवहदहनकर्मण्यत्र तस्योदितेषु ॥ ७ ॥
विशल्यकरणादीनामपि कालाद्विनाफलम् ॥ ८ ॥

इन कथित रोगों में उनकी शान्ति के लिए मृत्युञ्जय ब्रह्मा ने औषधियों को बनाना कहा है तथा उन्हीं उक्त नक्षत्रों में औषधियों का मारण, दलन, क्षार, क्रोध, लेपादि, पान, प्रवह, दहनादि क्रिया करनी चाहिये और विशल्यादि करण से भी शीघ्र बिना समय के फल होता है ॥ ७–८ ॥

औषधि सेवन मुहूर्त

रौद्रेषु सार्पज्वलनेषु सौम्ये स्वातित्रिपूर्वावसुरोहिणीषु ।
स्वात्याश्विहस्तादिसपौष्णमैत्रेषूक्तं चरांशे शुभमौषधीनाम् ॥ ९ ॥

आर्द्रा, आश्लेषा, कृत्तिका, मृगशिरा, स्वाती, तीनों पूर्वा, धनिष्ठा, रोहिणी में तथा स्वाती, अश्विनी, हस्त, रेवती, अनुराधा में चर राशि नवांश में औषधि सेवन शुभ होता है ॥ ९ ॥

औषधि निर्माण मुहूर्त

वारेतिशीघ्रे ग्रहसंयुतस्य रिक्तासु नन्दासु जयासु योगे ।
लग्ने चरे चन्द्रनिरीक्षिते च क्रियां विदध्यादपि चौषधीनाम् ॥ १० ॥
दर्शे वापि शुभं विद्याद्गुह्यरोगप्रशान्तये ॥ ११ ॥

ग्रह से युक्त सोमवार, रिक्ता, नन्दा, जया तिथि, चन्द्र से दृष्ट चर लग्न में तथा गुप्त रोग शान्ति के लिये अमावास्या में भी औषधि निर्माण शुभ होता है ॥१०–११॥

समस्त रोगनाशी दवा बनाने का मुहूर्त

क्षिप्रोग्रचरनक्षत्रे मेषकर्कटकोदये ।
पापग्रहदिने स्वांशे चित्रास्वात्योर्हरेस्तिथौ ॥ १२ ॥

नन्दायां स्थिरलग्ने वा कण्टके शुभसम्पदि ।
सर्वव्याधिविनाशाय विदध्यादौषधं बुधः ।। १३ ।।

क्षिप्र, चर, उग्र नक्षत्र में, मेष, कर्क लग्न में, पापग्रह के वार में, स्वनवांश में, चित्रा, स्वाती नक्षत्र, द्वादशी तिथि या नन्दा तिथि में, स्थिर लग्न में, केन्द्र में शुभग्रह की स्थिति में समस्त रोगों के प्रशमनार्थ दवा बनानी चाहिये ।। १२–१३ ।।

दवा बनाने का मुहूर्त

शुभवारे तिथीन्द्रेषु शुभांशे कर्कटे गते ।
स्वातिमैत्रयमाश्विन्यां रौद्रेपि चित्रपुष्ययोः ।। १४ ।।
औषधं व्याधिनाशाय कुर्यात्वृषकुलीरयोः ।। १५ ।।
क्षिप्रोग्रचरभे वारे सोम्यरिक्ता शुभे दिने ।। १६ ।।

शुभवार, चौदस तिथि, शुभ नवांशस्थ कर्क लग्न, स्वाती, अनुराधा, भरणी, अश्विनी, आर्द्रा, चित्रा, पुष्य नक्षत्र या वृष, कर्क लग्न, क्षिप्र, उग्र, चर संज्ञक नक्षत्र शुभग्रह के वार, सौम्य रिक्ता तिथि में दवा का निर्माण शुभदायी होता है ।।१४–१६।।

प्रमेह रोग औषधि व निर्माण मुहूर्त

अथ प्रमेहरोगः—

अष्टादशप्रमेहे तु कर्तव्या चौषधिक्रिया ।
पापवारेन्दुतिथ्यन्ते तापकान्युदये नृणाम् ।
पापदृष्टे क्रियां कुर्यादौषधं च कुरोगिणाम् ।। १७ ।।

अठारह प्रकार के प्रमेह में औषधि क्रिया करनी चाहिये और कुत्सित रोगियों का पापग्रह वार, तिथि के अन्त क्रूर लग्न में पापग्रह से दृष्ट होने पर औषधि सेवन एवं निर्माण करना चाहिये ।। १७ ।।

प्रकारान्तर से

मन्दांशे मन्दलग्ने च मन्ददृष्टियुतोदये ।
मन्दराशौ क्रियां कुर्यादौषधं च कुरोगिणाम् ।। १८ ।।

शनि नवांश, शनि लग्न, शनि से दृष्ट, युत लग्न में दूषित रोगियों की दवा बनानी या उन्हें सेवन करानी चाहिये ।। १८ ।।

राजयक्ष्मा (टी० बी०) की दवा

अथ राजयक्ष्मा—

साधारणाख्यनक्षत्रे वक्रग्रहनिरीक्षिते ।
विष्टिवर्ज्ये तिथौ कुर्यात्सत्क्रियां राजयक्ष्मणाम् ।। १९ ।।

वक्री ग्रह से दृष्ट साधारण संज्ञा वाले नक्षत्र, भद्रा से रहित तिथि में टी० बी० रोग की दवा बनानी चाहिये ।। १९ ।।

मिर्गी दवा

अपस्मारादि रोगाणामेवं शोभनदा क्रिया।
कर्तव्या प्रोक्तकालेषु मन्त्रौषधविशारदैः ॥ २० ॥

अपस्मारादि (मिर्गी) रोग में भी मन्त्र औषधि में चतुरजनों की उक्त समय में क्रिया दवा बनाना शुभ प्रद होता है ॥ २० ॥

विपरीताख्यविप्रैस्तु कर्तव्यं शुभमिच्छता।
औषधं नाडिकां वापि अमृताख्ये विषापहरि ॥ २१ ॥

शुभेच्छु को विपरीत नाम वाले ब्राह्मणों (वैद्यों, ओझाओं) द्वारा अमृत या विष हन्ता योगों में औषध सेवन या नलिका वेध करना चाहिये ॥ २१ ॥

स्नान से नीरोगता

त्र्युत्तरेषु च रोहिण्यां वायुभे चाश्विनीषु च।
चन्द्रशुक्रगुरोर्वारे स्नातो नीरोगतामियात् ॥ २२ ॥

तीनों उत्तरा, रोहिणी, स्वाती, अश्विनी नक्षत्र, चन्द्र, शुक्र, बृहस्पतिवार में रोगानन्तर स्नान से रोगी को पुनः रोग नहीं होता है ॥ २२ ॥

पौनः पुन्य श्रमाह्वय योग

शिवशक्राहियाम्याग्निमघापूर्वात्रयस्तथा।
पापवारयुता योगाः पौनःपुन्यश्रमाह्वयाः ॥ २३ ॥
एषु भैषज्यमारोग्यं स्नातो नीरोगतामियात्।
याम्याग्नेयाख्यरौद्रेषु पापवारे चरोदये ॥ २४ ॥

आर्द्रा, ज्येष्ठा, श्लेषा, भरणी, कृतिका, मघा, तीनों पूर्वा में पापग्रह के वार होने पर पौनःपुन्यश्रमाह्वय (पुनः पुनः कष्ट दायक) योग होते हैं। इनमें दवा से तथा भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, पापग्रह वार, चरलग्न में स्नान से रोग का नाश होता है ॥ २३-२४ ॥

पित्त शमनार्थ योग

नन्दायां पित्तशान्त्यर्थं भिषजेनातिना भिषक्।
प्राजापत्ये च पौष्णे च भेषजं पित्तशान्तये ॥ २५ ॥

पित्तशान्त्यर्थ नन्दा तिथि में या रोहिणी, रेवती नक्षत्र में अच्छे वैद्य की दवा शुभ करी होती हैं ॥ २५ ॥

मिर्गी रोग में दवा सेवन व निर्माण

अथापस्मारः—

श्रवणे चाहिदैवत्ये तुरगे गुरुवारुणे।
जयायां वातशान्त्यर्थं भेषजे स्नापयेच्च तम् ॥ २६ ॥
उग्रयोगेषु कर्तव्यं भैषज्यं दीर्घरोगिणाम्।
विषक्षये च गुल्मे च अपस्मारे क्षयेषु च ॥ २७ ॥

श्रवण, श्लेषा, अश्विनी, मृगशिरा, शतभिषा नक्षत्र, जया तिथि में वात शान्ति के लिये औषधि से रोगी को स्नान कराना और विष, क्षय, गुल्म, मिर्गी, राजयक्ष्मादि लम्बी बिमारी वाले की दवा उग्रयोगों में करनी चाहिये ॥ २६–२७ ॥

रोगी स्नान व दवा मुहूर्त

सिन्नेपिल्ले चरे लग्ने भैषज्यं वरमिच्छता ।
चरभे स्वांशके चन्द्रे चरराश्यंशकोदये ।
भैषज्यं रोगनाशाय स्नानं कुर्याद्विचक्षणः ॥ २८ ॥
उभयेति समं प्रोक्तं चन्द्रे चन्द्रदिवाकरौ ।
यदि युक्तैः स्थिरेणैव कर्तव्या व्याधिशान्तिदम् ॥ २९ ॥

सिन्न, पिल्ल (आँख में कीचर आना) में भलाई की इच्छा से चर लग्न, चर नक्षत्र, स्वनवांशस्थ चन्द्रमा, चर राशिस्थ नवांश लग्न में रोग शान्त्यर्थं विद्वान् को दवा एवं रोगी को स्नान कराना चाहिये ॥

द्विस्वभाव राशि में चन्द्र, सूर्य का समान फल और स्थिर राशि में युक्त होने पर रोग की शान्ति होती है ॥ २८–२९ ॥

दवा स्नान मुहूर्त

मन्दे जीवांशभे वारे रिक्तायां मन्दवारयोः ।
लग्ने रोगविनाशाय भेषजे स्नापयेच्च तम् ॥ ३० ॥
ये योगाश्चोदिता रोगास्ते योगा रोगशान्तये ।
रुगादिशान्तये चैव चोदिता मुनिसत्तमैः ॥ ३१ ॥
व्यतीपाते क्षयं दानं व्यतीपाते च रोगिणाम् ।
स्नानभैषज्ययोर्योगः शत्रूणां च प्रतिक्रिया ॥ ३२ ॥

गुरु के नवांश में, शनिवार, रिक्ता तिथि में, शनि की लग्न में रोगी को स्नान कराना चाहिये । जोकि रोग योग कथित हैं, वे रोग स्नान से नष्ट होने के लिये ऋषियों ने कहे हैं । जैसे व्यतीपात में दान अक्षय होता है, ऐसे ही व्यतीपात में रोगियों का स्नान, भैषज्य योग व शत्रुओं की प्रतिक्रिया शुभ होती है ॥ ३०–३२ ॥

वैद्य दर्शन मुहूर्त

वरुणार्द्राश्रविष्ठाः स्युः क्रियकर्क्योदये यदि ।
आरार्कशनिराहूणां भेषजं दर्शनं शुभम् ॥ ३३ ॥

शतभिषा, आर्द्रा, श्रवण नक्षत्र, मेष, कर्क लग्न, मंगल, सूर्य, शनि, राहु के दिन में वैद्य का दर्शन शुभ होता है ॥ ३३ ॥

रोग प्रतिक्रिया मुहूर्त

यदैकांशविलग्नस्थौ मन्दकेतू क्वचित्तदा ।
रोगिणो रोगनाशाय कुर्याद्रोगप्रतिक्रियाम् ॥ ३४ ॥

जबकि कभी एक नवांशस्थ लग्न में मन्द (शनि) केतु हों तो रोगी को रोग नाश के लिये प्रतिक्रिया करनी चाहिये ॥ ३४ ॥

औषधि कर्म मुहूर्त

औषधकर्म —

दैवज्ञमनोरञ्जने—

पौष्णद्वये चादितिभद्वये च हस्तत्रये च श्रवणत्रये च।
मैत्रे च मूले च मृगे च शस्तं भैषज्यकर्म प्रवदंति सन्तः ॥ ३५ ॥

दैवज्ञमनोरञ्जन में कहा है कि रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अनुराधा, मूल, मृगशिरा में औषधि कार्य करना विद्वानों ने बताया है ॥ ३५ ॥

दवा खाने का मुहूर्त

औषधभक्षणमुहूर्तः—

मूलानुराधावसुसौम्यभेषु चित्राश्विनीपुष्यमृगानिलेषु।
शनीशनारायणरेवतीषु शुभप्रदं भेषजभक्षणादि ॥ ३६ ॥

दैवज्ञमनोरंजन में कहा है कि मूल, अनुराधा, धनिष्ठा, सौम्य संज्ञक, चित्रा, अश्विनी, पुष्य, मृगशिरा, स्वाती, आर्द्रा, श्रवण, रेवती नक्षत्र, शनिवार में दवाई खाना शुभप्रद होता है ॥ ३६ ॥

प्रकारान्तर से

हस्तादितिश्रवणसोमसमीरणेषु मूलानलेन्द्रवसुतिष्ययुतेषु भेषु।
भैषज्यपानमचिरादपहृत्य रोगं कन्दर्पतुल्यवपुषं पुरुषं करोति ॥ ३७ ॥

हस्त, पुनर्वसु, श्रवण, मृगशिरा, स्वाती, मूल, कृत्तिका, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, पुष्य, नक्षत्र में दवा खाने से शीघ्र रोग का नाश होकर कामदेव के समान शरीर होता है ॥ ३७ ॥

दवा बनाने व खाने में शुभवार

भैषज्यकर्माणि च भक्षणे च रोगक्षयं वपुषि सुन्दरतां च पुष्टिम्।
कुर्वन्ति सौख्यमधिकं च दिनाधिनाथचन्द्रात्मजावनिसुतामरपूज्यवाराः ॥ ३८ ॥

रवि, बुध, मंगल, गुरुवार में दवा बनाने व खाने से रोग का विनाश, शरीर में सुन्दरता व पुष्टि (स्थौल्य-मोटापन) व अधिक सुख-सुविधा की प्राप्ति होती है ॥३८॥

अन्य स्थान पर भी दवा बनाने का मुहूर्त

अन्यत्रापि—

हस्तत्रये मृगे मूले दितियुग्मे हरित्रये।
मैत्रपौष्णद्वये कर्म भैषज्यस्य शुभं भवेत् ॥ ३९ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि हस्त, चित्रा, स्वाती, मृगशिरा, मूल, पुनर्वसु, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अनुराधा, रेवती व अश्विनी नक्षत्र में दवाई बनाने का कार्य शुभ होता है ॥ ३९ ॥

ग्रन्थान्तर से दवा खाने का मुहूर्त

मूलाश्विन्यां मृगे मैत्रे स्वात्यामिन्दुगुरी हरौ ।
चित्रान्त्ये वासवे वह्नौ भक्षयेदौषधं बुधः ॥ ४० ॥

मूल, अश्विनी, मृगशिरा, अनुराधा, स्वाती, मृगशिरा, पुष्य, श्रवण, चित्रा, रेवती, धनिष्ठा व कृत्तिका नक्षत्र में औषधि खानी चाहिये ॥ ४० ॥

हस्तादित्यां मृगे विष्णुः स्वात्यां वासवपुष्यभे ।
पिबेच्चित्रानले मूले यत्नात्तत्रौषधं बुधः ॥ ४१ ॥

हस्त, पुनर्वसु, मृगशिरा, श्रवण, स्वाती, धनिष्ठा, पुष्य, चित्रा, कृत्तिका व मूल नक्षत्र में यत्न से दवा पीनी चाहिये ॥ ४१ ॥

दवा बनाने में शुभवार

वारा निगदिताः शस्ता भैषज्यस्य च कर्मणि ।
सुरेज्यभार्गवादित्यचन्द्रा नित्यं बुधैः सदा ॥ ४२ ॥

गुरु, शुक्र, सूर्य व चन्द्रवार में दवाई सम्बन्धी कार्यों को विद्वानों ने शुभ बताया है ॥ ४२ ॥

दवा खाने में विशेष

शस्ते योगे शुभे चन्द्रे कुर्यादौषधभक्षणम् ।
नीरोगार्थी नरः शस्ते करणे न तिथिक्षये ॥ ४३ ॥

आरोग्य की इच्छावाले मनुष्य को शुभ योग व चन्द्र में, तिथि क्षय को छोड़कर शुभ करण में दवाई खानी चाहिये ॥ ४३ ॥

अशुभ तिथि व वार

चतुर्थ्यां च चतुर्दश्यां नवम्यामौषधं शुभम् ।
वारे भौमे शनौ सौम्ये भक्षयेन्नैव निश्चितम् ॥ ४४ ॥

चतुर्थी, चौदस, नवमी तिथि, मंगल, शनि, बुधवार में निश्चय ही दवा नहीं खानी चाहिये ॥ ४४ ॥

दवा खाने में शुभ तिथि व वार

पूर्णिमायां च पंचम्यां सप्तम्यामौषधं सदा ।
भक्षयेच्च त्रयोदश्यां द्वितीयादि द्वये बुधः ॥ ४५ ॥
एकादश्यां दशम्यां च वारे जीवेंदुभार्गवे ।
सादित्ये मिथुने लग्ने कन्या चापे झषे तथा ॥ ४६ ॥
शुभे युक्ते शुभदृष्टे पापग्रहविवर्जिते ।
सर्वेषामौषधानां च शस्तं भवति भक्षणम् ॥ ४७ ॥

पूर्णिमा, पंचमी, सप्तमी, तेरस, द्वितीया, तृतीया, एकादशी, दशमी तिथि, गुरु, चन्द्रमा, शुक्र व रविवार, मिथुन, कन्या, धनु, मीन लग्न में शुभ ग्रहों से दृष्ट, युत होने पर, पापग्रहों के सम्बन्ध से हीन होने पर समस्त औषधियों का खाना शुभ होता है ॥ ४५-४७ ॥

भक्षण में लग्न शुद्धि

त्रिषडेकादशे पापाः सौम्याः सर्वेषु शोभनाः ।
भक्षणेप्यौषधीनां च पुष्टिदा वृद्धिदाः सदा ॥ ४८ ॥

जबकि दवा खाने की लग्न से ३।६।११ में पापग्रह व अन्यत्र सौम्य ग्रह कहीं पर होते हैं तो भक्षण से सदा शरीर में पुष्टता बढ़ती है ॥ ४८ ॥

खेर्को जीवो भृगुर्वापि लग्नेप्यौषधभक्षणे ।
तेषां रोगा विनश्यंति सूर्येणेव तमो यथा ॥ ४९ ॥

जबकि दवा भक्षण लग्न से दसवें सूर्य या गुरु या शुक्र होता है तो दवा खाने से समस्त रोगों का ऐसे नाश होता है, जैसे सूर्य के प्रकाश से अन्धकार का ॥ ४९ ॥

प्रश्न से बाधा का ज्ञान

अथ प्रश्नाद्बाधाज्ञानमाह —
तिथिवारं च नक्षत्रं लग्नं यामं च संयुतम् ।
वसुभिश्च हरेद्भागं शेषं बाधा नियोजयेत् ॥ ५० ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि प्रश्नकालिक तिथि, वार, नक्षत्र, लग्न व याम की संख्या को जोड़ कर आठ से भाग देने पर शेष से बाधा का ज्ञान करना चाहिये ॥५०॥

हृयाग्निदेवबाधा च पितरौ नेत्रदंतिनः ।
षट्चतुर्थे भूतबाधा ग्रहाणामेकपंचके ॥ ५१ ॥

जैसे—३।७ शेष में देव, २।८ में पितर सम्बन्धी, ४।६ में भूत और १।५ शेष में ग्रहों की बाधा होती है ॥ ५१ ॥

जीवन मरण ज्ञान

भक्ता द्वादशशेषेण जीवनं मरणं फलम् ।
रामबाणरसाष्टौ च नन्दरुद्राश्च जीवति ।
एकपक्षयुगः सप्तदशभानुर्न जीवति ॥ ५२ ॥

उक्त योग में बारह का भाग देने से शेष वश अर्थात् ३।५।६।८।९।११ शेष में जीवन होता है और १।२।४।७।१०।१२ में जीवन नहीं होता है ॥ ५२ ॥

ग्रन्थान्तर से बाधा ज्ञान

अन्यच्च राजमार्तंडे—
वारर्क्षे च तिथिर्दिशा परिमितेःसंहृत्य नागैर्भजे-
ल्लब्धांकेन फलं च नागनयने दोषं पितुर्नान्यथा ।
सप्ते राममिते सुरस्य विदितं तर्के च वेदे तथा
प्रेतस्यापि च खेचरस्य विदितं चन्द्रेथ बाणेधिके ॥ ५३ ॥

राज मार्तण्ड में बताया है कि प्रश्नकालिक वार, नक्षत्र, तिथि, दिशा की संख्याओं का योग करके ८ से भाग देने पर शेष ८।२ में पितरों की, ७।३ में देवताओं की, ४।६ में प्रेत की और १।५ शेष में ग्रहों की बाधा होती है ॥ ५३ ॥

लब्धांकं त्रिगुणं तथा वसुयुतं वेदेन गुण्यं ततः
सप्तांत्येप्यधिकं यथा विधुमितं कौल्यं च दोषं वदेत् ।
ग्राम्यं वन्यभवं च राजकुलजं स्याच्छत्रुजं पंक्तिजं
शून्ये व्योमभवं तथाहि विविधोपायैश्च शान्ति लभेत् ॥ ५४ ॥

लब्धांक को तीन से गुणा करके ८ जोड़ कर पुनः ४ से गुणा करके सात का भाग देने पर १ शेष में कौल्य (कुल सम्बन्धी) दोष, दो में ग्राम्य, ३ में वन्यजनित, ४ में राजकुलोत्पन्न, ५ में शत्रु जन्य, ६ में पंक्ति से उत्पन्न और शून्य शेष में आकाश जन्य दोष होता है ॥ ५४ ॥

दोष शान्ति के उपाय

कौल्ये होमद्विजार्चनं शुभकरं ग्राम्ये चतुष्कोणके
होमं वन्यभवैस्तिथिवरभवैर्भोज्यैश्च वस्त्रेण वा ।
राज्ये तीर्थपदं तथाप्यरिकृते शक्तिक्रियादानतो
गायत्रीजपतो हि पंक्तिविषये चाकाशजो दीपितः ॥ ५५ ॥

कौल्य दोष होने पर होम व ब्राह्मण पूजन से, ग्राम्य दोष में चौकोर कुण्ड में हवन से, वन्य में १५० ब्राह्मणों को भोजन या वस्त्र देने से, राजकीय में तीर्थाटन से, शत्रु जन्य में शक्ति के अनुसार दान से, पंक्ति में गायत्री के जप से और आकाशीय दोष में दीपदान से दोष नष्ट होता है ॥ ५५ ॥

रोग विमुक्ति के बाद प्रथम स्नान मुहूर्त

अथ रोगमुक्तस्नानम् —

रामः—
[1]व्यन्त्यादितिध्रुवमघानिलसार्पधिष्णे
रिक्ते तिथौ चरतनौ विकवींदुवारे।
स्नानं रुजा विरहितस्य जनस्य शस्तं
हीने विधौ खलखगैर्भवकेन्द्रकोणे ॥ ५६ ॥

मुहूर्तचिन्तामणि में कहा है कि रेवती, पुनर्वसु, ध्रुवसंज्ञक, मघा, स्वाती और आश्लेषा नक्षत्र को छोड़ कर अवशिष्ट नक्षत्रों में, रिक्तातिथि (४।९।१४) में, चर लग्न (१।४।७।१०) में, शुक्र, चन्द्र वार का त्याग करके अन्यवारों में, हीन चन्द्रमा में, लग्न से १।४।७।९।५।१०।११ में पापग्रह के होने पर रोग हटने बाद प्रथम रोगी को नहाना चाहिये ॥ ५६ ॥

---

१. मु० चि० २ प्र० ४० श्लो० ।

स्नान न करने का मुहूर्त

अन्यदपि—

[1]इंदोर्वारे भार्गवेषु ध्रुवेषु सार्पादित्यस्वातियुक्तेषु भेषु।
पित्र्यं चांत्ये चैव कुर्यात्कदाचिन्नैव स्नानं रोगनिर्मुक्तजंतोः ।। ५७ ।।

सोम, शुक्रवार, ध्रुवसंज्ञक, आश्लेषा, पुनर्वसु, स्वाती, मघा, और रेवती नक्षत्र में रोग से मुक्त होने पर रोगी को कभी भी स्नान नहीं कराना चाहिये ।। ५७ ।।

रोग विमुक्ति के पश्चात् पहिले नहाने का मुहूर्त

आर्द्रातिष्यविशाखशक्रदहने मूलानुराधाश्विनी
पूर्वाषाढहरित्रये निगदितं चन्द्रो विहीनः शुभः।
सूर्यारार्किदिने गुरौ शुभकरे केन्द्रे च पापान्विते
रिक्तायां च तिथौ सविष्टिकरणे स्नानं हितं रोगिणाम् ।। ५८ ।।

आर्द्रा पुष्य, विशाखा, ज्येष्ठा, कृत्तिका, मूल, अनुराधा, अश्विनी, पूर्वाषाढ, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा नक्षत्र, क्षीणचन्द्र या निर्बल चन्द्रमा, सूर्य, मंगल, शनि, गुरुवार, केन्द्रस्थ पापग्रह, रिक्ता तिथि और भद्रा करण में रोगियों को रोग से मुक्त होने पर स्नान कराना शुभ होता है ।। ५८ ।।

चरे विलग्ने रविभौमवारे रिक्तातिथौ चन्द्रबले विहीने।
केंद्रत्रिकोणायगताश्च पापाः स्नानं नराणां निरुजत्वकारि ।। ५९ ।।

ग्रन्थान्तर में बताया है कि चर लग्न, रवि, मंगलवार, रिक्ता तिथि, हीन चन्द्रबल में, लग्न से केन्द्र (१।४।७।१०) त्रिकोण (५ ९) व ग्यारहवें भाव में पापग्रह के होने पर मनुष्यों को स्नान कराने पर रोग का विनाश होता है ।। ५९ ।।

वैधृतिव्यतिपाते च भद्रायां सूर्यसंक्रमे।
रोगमुक्तो नरः स्नायात्कुवारर्क्षतिथिष्वपि ।। ६० ।।

वैधृति, व्यतीपात, भद्रा, सूर्य संक्रान्ति, दूषित वार, नक्षत्र, तिथियों में भी रोग हटने पर मनुष्य को स्नान करना चाहिये ।। ६० ।।

सोमशेखरे—

चन्द्रशुद्धौ व्यतीपाते भौमार्कशनिवासरे।
व्रणमुक्तो व्याधिमुक्तो नरः स्नानं समाचरेत् ।। ६१ ।।

सोमशेखर में कहा है कि चन्द्रशुद्धि, व्यतीपात, मंगल, सूर्य, शनिवार में घाव से या रोग से मुक्त होने पर मनुष्य को नहाना चाहिये ।। ६१ ।।

---

१. मु० चि० २ प्र० ४० श्लो० पी० टी०।

रुधिर मोक्षण मुहूर्तं

अथ रुधिरमोक्षणम्—

चण्डेश्वरः—

ज्येष्ठादित्यभवासवाशिवकरौ ब्राह्मोत्तरारेवती
आग्नेया शततारकापितृयमेपूर्वात्रियं चोत्तमम् ।
विज्ञेया शुभतारकाशुभविधौ शंसंति गर्गादयः
तुंबीश्रीहितशृंगिणीजलजुकाभिः शोणितं मोक्षणम् ॥ ६२ ॥

ज्येष्ठा, पुनर्वसु, धनिष्ठा, आर्द्रा, हस्त, रोहिणी, तीनों उत्तरा, रेवती, कृत्तिका, शतभिषा, ज्येष्ठा, भरणी, तीनों पूर्वा, इन नक्षत्रों में, शुभ तारा व शुभ चन्द्रमा होने पर तुम्बी, श्रीहित, सिंगी अथवा जलजूका (जोंक) लगाकर दूषित रक्त मोक्षण करना श्रेष्ठ होता है ऐसा गर्गादि आचार्यों का मत है ॥ ६२ ॥

शिरामोक्षण मुहूर्तं

रामः—

[1]त्वष्ट्रान्मित्रकभाद्वयेंबुपलघुश्रोत्रे शिरामोक्षण
भौमार्केज्यदिने विरेकवमनाद्यं स्याद्बुधार्कि विना ॥ ६३ ॥

मुहूर्तचिन्तामणि में कहा है कि चित्रा, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, रोहिणी, मृगशिरा, शततारका (शतभिषा), लघु संज्ञक (अश्विनी, पुष्य, हस्त, अभिजित्, श्रवण) नक्षत्र, मंगल, गुरु, रविवार में रक्तवाहिनी नाडी से सूक्ष्म छिद्र द्वारा खून निकालना तथा जुलाब से टट्टी और वमन (उल्टी) आदि कराना चाहिये ॥ ६३ ॥

ज्योतिःसागरे—

[2]चित्रायुगे विधियुगे लघुषु वारुणे विष्णौ ।
बस्तिविरेचनवेधा शुभदिनतिथिचन्द्रलग्नेषु ॥ इति ॥ ६४ ॥

चित्रा, स्वाती, रोहिणी, मृगशिरा, लघुसंज्ञक, शतभिषा, श्रवण नक्षत्र, शुभवार, तिथि, चन्द्रमा, लग्न में शिरावेध, जुलाबादि देना शुभ होता है ॥ ६४ ॥

वारवश रोग होने पर रोग दिन संख्या व फल

रोगोत्पत्तौ वारफलम् ।

सूर्यवार फल

रविवार ८ दिन । फलवृक्षे बलिः कन्यकां पूजयेत् ।

रविवार में रोग होने पर ८ दिन तक रोग रहता है । इसमें फल के वृक्ष के नीचे बलिदान करके कन्या का पूजन करना चाहिये ।

---

१. मु. चि. २ प्र. ३० श्लो. ।
२. मु. चि. २ प्र. ३० श्लो. पी. टी. ।

सोमवार फल

चन्द्रवार ५ दिन । आकाशमन्त्रिणा बलिः गुग्गुलुचन्दनधूपः ।

सोमवार में रोग होने पर ५ दिन तक रोग रहता है। इसमें आकाश सचिव की बलि गूगुल, चन्दन की धूप जलानी चाहिये ।

मंगलवार फल

भौमवार १२ दिन । सप्तान्नाश्येनकन्यकां पूजयेत् पानीयपथ्यं दद्यात् ।

भौमवार में रोग होने पर १२ दिन तक रोग रहता है। इसमें सात अन्नों से श्येन कन्या की पूजा करके पानी पथ्य में देना चाहिये ।

बुधवार फल

बुधवार १७ दिन । ब्राह्मणभोजनं शांतिः कार्या !

बुधवार में रोग होने पर १७ दिन रोग की स्थिति होती है। इसमें ब्राह्मण भोजन से शान्ति होती है ।

गुरुवार फल

गुरुवार ११ दिन । कुष्ठगुग्गुलुना यवतिलसिद्धार्थमिश्रधूपः छागक्षीरेण छागमांसेन पथ्यं दद्यात् ।

गुरुवार में रोग होने पर ११ दिन रोग रहता है । इसमें कुष्ठ, गूगुल, यव, तिल व सिद्धार्थ से मिश्रित धूप, बकरी के दूध, मांस से पथ्य देना चाहिये ।

शुक्रवार फल

शुक्रवार ७ दिन । कुमारीपूजनं क्षीरशर्करापिप्पली छागमांसं कंटकारीपथ्यं दद्यात् ।

शुक्रवार में रोग होने पर ७ दिन तक रोग रहता है। इसमें दूध, चीनी, पिप्पली, बकरी मांस व भटकटैया का पथ्य देना चाहिये ।

शनिवार फल

शनिवार २३ दिन । सर्षपगुग्गुलुतिलधूपः शांतिः कार्या कुमारीभोजनम् ।

शनिवार में रोग होने पर २३ दिन तक रहता है। इसमें सरसों, गुग्गुल, तिल की धूप और शान्ति करके कन्या को भोजन कराना चाहिये ।

अथ सर्पविद्या—

अब आगे सर्प विद्या के बारे में विविध बातों को बताते हैं ।

सर्प वर्ण ज्ञान

ब्राह्मणाः श्वेतवर्णास्तु क्षत्रिया रक्तवर्णकाः ।
वैश्यास्तु पीतवर्णाः स्युः कृष्णवर्णास्तु शूद्रकाः ॥ ६५ ॥

सफेद रंग के सर्प ब्राह्मण, लाल वर्ण के सर्प ठाकुर, पीले रंग के सर्प बनिया और काले रंग के सर्प शूद्र होते हैं ॥ ६५ ॥

८ नागों के नाम

अनंतः कुलिकश्चैव वासुकिः शंखपालकः ।
तक्षकश्च महापद्मः कर्कोटः पद्म एव च ।। ६६ ।।
कुलनागाष्टकं ह्येतत्तेषां चिह्नं शिवोदितम् ।। ६७ ।।

१ अनंत, २ कुलिक, ३ वासुकि, ४ शंखपालक, ५ तक्षक, ६ महापद्म, ७ कर्कोटक व ८वाँ पद्म नामवाला नाग होता है। इनकी पहचान शिवजी ने बतायी है, उसे आगे कहते हैं ।। ६६–६७ ।।

अनन्तादि आठ सर्पों की पहचान

श्वेतपद्ममनंतस्य मूर्ध्नि पृष्ठे च दृश्यते ।
शंखं शेषस्य शिरसि वासुकेः पृष्ठ उत्पलम् ।। ६८ ।।
त्रिनेत्रांकस्तु कर्कोटस्तक्षकः शशकांकितः ।
ज्वलत्त्रिशूलचन्द्रार्धं शंखपालस्य मूर्द्धनि ।। ६९ ।।
राजवत्तु समो बिंदुर्महापद्मस्य पृष्ठतः ।
सप्तपृष्ठे च दृश्यंते सुरक्ताः पंच बिंदवः ।। ७० ।।
एवं यो वेत्ति जात्यादीन् नामचिह्नं शिवोदितम् ।
तस्य मंत्रौषधान्येव सिद्धयंते नान्यथा पुनः ।। ७१ ।।
दूरतस्तस्य सर्पाद्याः पतंति गरुडे यथा ।
कालाख्या नाम तच्चिह्नं शिवेनोक्तं यथा पुरा ।। ७२ ।।

अनन्त सर्प की पीठ व मस्तक पर सफेद कमल का, वासुकी के माथे पर शंख व पीठ पर कमल, तीन नेत्रों के चिह्न वाला कर्कोटक, शशक चिह्न वाला तक्षक, चमकता हुआ त्रिशूल तथा अर्धचन्द्र वाला शंखपाल, पीठ पर समान बिन्दु हों, वह राजवान् (राजिल), जिसके पीठ पर पाँच-पाँच लाल बिन्दु के सात चिह्न हों, वह महापद्म इस प्रकार जो शिव द्वारा कथित सर्पों की जाति, चिह्न, नामादि को जानता है, उसकी मन्त्र, औषधि सफल होती है। न जानने वाले की नहीं।

इस विद्या को जानने वाले के पास सर्प दूर से ही आ गिरते हैं, जैसे गरुड़जी के पास आते हैं। काला सर्पों के नामादि को शिवजी ने पूर्वकाल में बताया है ।।६८–७२।।

दस विध दंश ज्ञान

ज्ञेयो दशविधो दशो भुजंगानां भिषग्वरैः ।
भीतोन्मत्तः क्षुधार्तश्च, आक्रांतो विषदर्पितः ।। ७३ ।।
आहारेच्छुः सरोषश्च स्वस्थानपरिरक्षणे ।
नवमो वैरिसंधानो दशमः कालसंज्ञकः ।। ७४ ।।

श्रेष्ठ वैद्यों ने दस कारण से सर्पों का काटना बताया है यथा १ भय से या २ पागलपन या ३ भूख से दुःखी होकर या ४ आक्रान्त होने से या ५ जहर के

अहङ्कार से या ६ भोजन की इच्छा से या ७ क्रोधवश या ८ अपने स्थान की रक्षा के लिए या ९ शत्रुता से या १० कालवश से सर्प काटता है ॥ ७३-७४ ॥

स्थानवश काटने पर मरण

उद्याने जीर्णकूपे च वटशृंगाटचत्वरे।
शुष्कवृक्षे श्मशानेथ प्लक्षश्लेष्मांतशिग्रुके ॥ ७५ ॥
देवतायतनागारे तथा च शाकवृक्षके।
एषु स्थानेषु ये दष्टास्ते न जीवंति मानवाः ॥ ७६ ॥

बगीचा, पुराना कूप, चबूतरा या यज्ञीय शुद्धिभूमि, सूखे वृक्ष के नीचे या श्मशान, पकरिया के नीचे या निसोरा या लाल फूलवाले वृक्ष के नीचे, देवमन्दिर या शाकवृक्ष के पास सर्प के काटने पर मनुष्यों का मरण होता है ॥ ७५-७६ ॥

शरीरावयव में काटने का फल

भ्रूमध्ये चाधरे मूर्ध्नि जंघे नेत्रे भ्रुवोस्तथा।
ग्रीवाचिबुककंठेषु करमध्ये च तालुके ॥ ७७ ॥
स्तनयोः स्कंधयोः कुक्षौ लिंगवृषणनाभिषु।
मर्मसंधिषु सर्वत्र सर्पदष्टो न जीवति ॥

भौंहों के बीच, होठ, मस्तक, जांघ, आँख, भौंह, गर्दन, ठोड़ी, कण्ठ, हाथ, तलुवा, दोनों स्तनों व कन्धों, पेट, पोता, टूड़ी और मर्म सन्धि में सर्प के काटने पर मनुष्य का जीवन समाप्त हो जाता है ॥ ७७-७७½ ॥

वारवश फल

रवौ भौमे शनिवारे सर्पदष्टो न जीवति ॥ ७८ ॥

सूर्य, मंगल, शनिवार में सर्प के काटने पर मृत्यु होती है ॥ ७८ ॥

अशुभ नक्षत्र

अथ सर्पदष्टः—

द्विदैवत्यमघाश्लेषारोहिण्यार्द्रासु नैर्ऋते।
बहुलायां विषैर्दष्टो न प्राणिति कुमारतः ॥ ७९ ॥

विशाखा, मघा, श्लेषा, रोहिणी, आर्द्रा, मूल व पूर्वाफाल्गुनी में सर्प के काटने पर प्राण की समाप्ति होती है ॥ ७९ ॥

अशुभ तिथि

अष्टमी पंचमी पूर्णा अमावास्या चतुर्दशी ॥ ८० ॥
अशुभास्तिथयः प्रोक्ताः सर्पदष्टविनाशकाः।

अष्टमी, पंचमी, पूर्णिमा, अमावस्या और चौदस तिथि में सर्प का काटना अशुभ होता है अर्थात् इनमें मृत्यु होती है ॥ ८०½ ॥

पुनः अशुभ नक्षत्र

कृत्तिका श्रवणा मूला विशाखा भरणी तथा ॥ ८१ ॥
पूर्वास्तिस्रस्तथा चित्राश्लेषादष्टो न जीवति ।

तीनों पूर्वा, चित्रा, आश्लेषा, कृत्तिका, श्रवण, मूल, विशाखा व भरणी नक्षत्र में सर्प के डसने पर प्राणी का जीवन नहीं रहता ॥ ८०३/२–८१३/२ ॥

कालवश फल

मध्याह्ने संध्ययोश्चैव अर्द्धरात्रे निशात्यये ॥ ८२ ॥
कालवेला वारवेला सर्पदष्टो न जीवति ॥ ८३ ॥

दोपहर, दोनों सन्ध्या, आधी रात, रात्रि की समाप्ति, कालवेला, वारवेला में सांप के काटने पर जीवित नहीं रहता ॥ ८१३/२–८३ ॥

सांप के आहार का ज्ञान

सर्पस्य तालुका मध्ये दंतो योंकुशसन्निभः ।
विमुंचति विषं घोरं तेनाख्यं कालसंज्ञकः ॥ ८४ ॥

सांप के तलुवे के बीच में जो अंकुश जैसा दांत होता है, वही घनघोर जहर छोड़ता है । अतः इसका नाम काल कहा गया है ॥ ८४ ॥

नक्षत्रवश मृत्यु ज्ञान

श्रीपतिः—

यः कृत्तिकामूलमघाविशाखा सार्पांतकार्द्रासु भुजंगदष्टः ।
स वैनतेयेन सुरक्षितोपि प्राप्नोति मृत्योः सदनं मनुष्यः ॥ ८५ ॥

श्रीपतिजी ने बताया है कि जिस व्यक्ति को कृत्तिका, मूल, मघा, विशाखा, आश्लेषा, भरणी व आर्द्रा नक्षत्र में सांप काट लेता है तो उसकी गरुड़जी से रक्षित होनेपर भी निःसन्देह मृत्यु होती है ॥ ८५ ॥ ८५ ॥

दष्टाकृतिवश फल

चक्राकृतिश्च वा दंशः पक्वजंबूफलाकृतिः ।
सुनीलः श्वेतरक्तो वा त्रिदशोपि न जीवति ॥ ८६ ॥

जब कि सांप के काटने पर चक्र की सी आकृति वा पके हुए जामुन की तरह या सुन्दर नीली या सफेदी से युक्त लाल आकृति होती है तो देवता भी जीवित नहीं रह सकता ॥ ८६ ॥

वेदना दंशमूले वा नष्टदंशोथ वा भवेत् ।
तत्क्षणात्तीव्रदाहश्च सोपि कालेन भक्षितः ॥ ८७ ॥

या काटने पर दष्ट स्थान दांत के नीचे वेदना या नष्टदंश या काटने पर उसी समय तीव्र दाह हो तो वह भी काल से भक्षित होता है ॥ ८७ ॥

मरण लक्षण

सेचनादुदकेनाथ शीतलं न मुहुर्मुहुः ।
रोमांचो न भवेद्यस्य तं विद्यात्कालभक्षितम् ।। ८८ ।।

सांप के काटे हुए स्थान को जल से सींचने पर बार-बार शीतलता न हो तथा जिसके रोमांच नहीं होता है उसे भी काल भक्षित समझना चाहिये ।। ८८ ।।

स्रवेन्मूत्रपुरीषं वा हृच्छूलं छर्दिदाहकृत् ।
सानुनासिकया वाक्यं संधिभेदमथापि वा ।। ८९ ।।
ताम्राभं नेत्रयुगलमथवा कृकनीलकम् ।
वियोगो देवदष्टाख्यस्तं विद्यात्कालपार्श्वगम् ।। ९० ।।

काटने पर पेशाब या टट्टी, हृदय में दर्द या उलटी से दाह या सानुनासिक वचन या संधि भेद से युक्त वाणी या तामे के समान आँख या गिरगिट की तरह नीली आकृति हो तो देवदष्ट नाम का वियोगी समझ कर उसकी मृत्यु जाननी चाहिये ।। ८९-९० ।।

सोमं सूर्यं तथा दीप्तिं न पश्यति च तारकान् ।
दर्पणे सलिले वाथ घृततैलेथ वा मुखम् ।। ९१ ।।
न पश्येद्वीक्षमाणोपि कालदष्टो न संशयः ।
ज्ञात्वा कालमकालञ्चपश्चा द्भेषजमाचरेत् ।। ९२ ।।
सर्पदंशे विषं नास्ति कालदष्टो न जीवति ।
तस्य तत्रापि कर्तव्या चिकित्सा जीवनावधि ।। ९३ ।।
रसदिव्योषधीनां च प्रभावात्कालजिद्भवेत् ।। ९४ ।।

चन्द्रमा, सूर्य अग्नि की लौ तथा तारकाओं को जो नहीं देख पाता है तथा ऐनक या पानी या घी या तेल में मुख दीखने पर भी जो नहीं देखता है, उसे निःसंदेह काल से दंशित जानना अर्थात् उसकी मृत्यु होती है । इसलिये काल व अकाल को देख कर पीछे दवा करनी चाहिये । सांप के दांत में जहर नहीं है तो भी काल से डसा व्यक्ति जीवन पाने में असमर्थ होता है । इसलिये जीवन तक उसकी चिकित्सा करना, रस व दिव्य औषधि से काल को जीता जा सकता है ।। ९१-९४ ।।

सर्प विष औषधि ज्ञान

अथ सर्पविषौषधिकथनम्—

श्वेतापराजितामूलं देवदालीयमूलकम् ।
वारिणा पेषितं नस्यं कालदष्टेपि जीवति ।। ९५ ।।

सफेद अपराजिता, देवदालीय की जड़ को पानी से पीस कर उसके सूंघने से काल से दंशित होने पर भी जीवन होता है ।। ९५ ।।

दधिमधुनवनीतं पिप्पलीशृंगबेरं मरिचमपि च कुष्ठं चाष्टमं सैन्धवं च ।
यदि दशति सरोषस्तक्षको वासुकिर्वा यमसदनगतः स्यादानयत्तेत्क्षणेन ॥ ९६ ॥

यदि क्रोध से तक्षक या वासुकि नाग के काटने पर यमलोक में गये हुए को दही १ सहत २, माखन ३, पिप्पली ४, शृंगबेर ५, मिरिच ६, कुष्ठ ७ व सेंधानमक ८ इनको मिलाकर दिया जाय तो उसी क्षण यम लोक से मनुष्य वापिस आता है ॥९६॥

कटुकी मूषलीमूलं पीत्वा तोयैर्विषापहः ।
वृश्चिकावीरलामूलं लेपात् सर्पविषापहम् ॥ ९७ ॥

कटुकी व मूषली की जड़ जल से पीने पर जहर हटता है या वृश्चिका और वीरला जड़ से लेप करने पर जहर का दूरी करण होता है ॥ ९७ ॥

सोमराजीबीजचूर्णं सकृद्गोमूत्रभावितम् ।
चराचरविषघ्नं तं मृतसंजीवनं पिबेत् ॥ ९८ ॥

सोमराजी के बीज के चूरे को एक बार गाय के मूत्र से भावना देकर यह चराचर के विष का नाशक मृतसंजीवन पदार्थ उसे पिलाना चाहिये ॥ ९८ ॥

गोमूत्रैर्नरमूत्रैर्वा पुराणेन घृतेन वा ।
हरिद्रापानमात्रेण विषं हंति चराचरम् ॥ ९९ ॥

गाय के मूत्र या मनुष्य के मूत्र या पुराने घी से हल्दी पिलाने पर संसार का जहर दूर होता है ॥ ९९ ॥

दशवर्षात्परं सर्पिः पुराणमिति कथ्यते ।
यदि सर्पविषार्तानां सर्वस्थानगतं विषम् ।
गोक्षीरे रजनीक्वाथं पिबेत्सर्पविषापहम् ॥ १०० ॥

दस वर्ष के पश्चात् घी पुराना होता है । जब जहर समस्त स्थान में फैल जाय तो गाय के दूध में हल्दी का क्वाथ करके पिलाने पर साँप का जहर दूर हो जाता है ॥ १०० ॥

जहर हटाने की दवा

गोक्षीरे रजनी कुष्ठं क्वाथमानं विषापहम् ।
हरिद्रा कुष्ठमध्वाज्यं भुक्तं सर्वविषापहम् ॥ १०१ ॥

गाय के दूध में रजनी (हल्दी) व कुष्ठ का क्वाथ या हल्दी, कुष्ठ, सहत घी मिलाकर खिलाने से समस्त जहर का दूरीकरण होता है ॥ १०१ ॥

कटुकी जंबुमूलं वा तक्राम्लैर्वा पिबेज्जलैः ।
तत्क्षणाद्वमयेच्छीघ्रं विषयोगाद्विमुच्यते ॥ १०२ ॥

कुटकी व जामुन की जड़ या खट्टा मठा पानी में मिलाकर पिलाने से शीघ्र वमन होकर जहर से छुटकारा होता है ॥ १०२ ॥

कुंकुमालक्तकं लोध्रं शिला चैवाथ रोचना ।
गुटिकालेपनाद्धंति विषं स्थावरजंगमम् ।। १०३ ।।

कुंकुम, आलक्तक, लोध्र, मैनसिल या रोचना इनकी गुटिका का लेप करने पर स्थावर, जङ्गम सब प्रकार का जहर हटाता है ।। १०३ ।।

पिप्पलीमरिचं कुष्ठं गृहधूममनःशिलाम् ।
तालकं सर्षपाः श्वेता गवां क्षीरेण लेपयेत् ।। १०४ ।।

पीपल, मिर्च, कुष्ठ, गृहधूम, मैनसिल, तालक, सफेद सरसों को गाय के दूध में पीसकर लेप करना चाहिये ।। १०४ ।।

गुटिकांजननस्येह पानाभ्यंजनलेपनात् ।
तक्षकेणापि दष्टस्य निर्विषीकुरुते क्षणात् ।। १०५ ।।

अथवा गुटिका की हुलास, अंजन, पान, मर्दन, लेप से तक्षक नाम के साँप से डसने पर भी जहर से मुक्ति होती है ।। १०५ ।।

अपराजितमूलं तु घृतेन त्वग्गतं विषम् ।
पयसा रक्तगं हंति मांसगं कुष्ठचूर्णतः ।। १०६ ।।

अस्थिगं रजनीयुक्तं मेदगं काकुलीयुतम् ।
मज्जागं पिप्पलीयुक्तं चांडालीकंदसंयुतम् ।। १०७ ।।

शुक्रगं हंति लौहित्यं तस्माद्देयापराजिता ।
अत्यंतविषरोगार्तान् जलमध्ये विनिक्षिपेत् ।। १०८ ।।

अथवा अपराजिता की जड़ घी में मिलाकर देने से चर्मगत जहर का, दूध से मिश्रित पर खूनगत का, कुष्ठ के चूरे से मांसगत, रजनी से युक्त करने पर हड्डीस्थ, पीपल व चाण्डाली कंद से मिश्रित मज्जागत, काकुल से युत होने पर मेदागत, लौहित्य से युक्त देने पर वीर्यगत जहर का नाश होता है । इसलिये अपराजिता की जड़ खिलानी चाहिये तथा अधिक जहर से दुःखी को तालाब आदि में बैठालना चाहिये ।। १०६-१०८ ।।

एक वर्ष तक अभय

मसूरं निंबपत्राभ्यां खादेन्मेषगते रवौ ।
अब्दमेकं न भीतिः स्याद्विषार्तस्य न संशयः ।। १०९ ।।

मसूर, नीम के पत्तों के साथ मेषगत सूर्य में खाने से विष से पीड़ित व्यक्ति को एक साल तक डर नहीं होता है ।। १०९ ।।

मसूरं निंबपत्राभ्यां योत्ति मेषगते रवौ ।
अतिरोषान्वितस्तस्य तक्षकः किं करिष्यति ।। ११० ।।

जोकि मेषस्थ सूर्य में नीम के पत्तों के साथ मसूर का भक्षण करता है उसका अत्यन्त क्रोधी तक्षक भी कुछ नहीं कर सकता है ॥ ११० ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते संग्रहे बृहद्वज्ररंजने
अष्टसप्ततितमं रोगप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक ग्रन्थ का अठहत्तरवाँ रोग प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ७८ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर-चतुर्वेदकृता बृहद्वज्ररञ्जनसङ्ग्रहग्रन्थस्याष्टसप्ततितमप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका परिपूर्णा ॥ ७८ ॥

अथ एकोनाशीतितमं दीक्षाप्रकरणं प्रारभ्यते

अब आगे उन्नासीवें प्रकरण में दीक्षा किसे कहते हैं, इसका ग्रहण कब, कैसे, किसको करना, न करने से क्या होता है, इसे बताते हैं।

दीक्षा की परिभाषा

दिव्यज्ञानं यतो दद्यात्कुर्यात्पापस्य संक्षयम् ।
तस्माद्दीक्षेति सा प्रोक्ता मुनिभिस्तन्त्रवेदिभिः ॥ १ ॥

अलौकिक ज्ञान की प्राप्ति तथा जन्मान्तरों के पापों का क्षय करने के उद्देश्य से ग्रहण किया हुआ किसी देवता का मन्त्र 'दीक्षा' कहलाता है ॥ १ ॥

अदीक्षित जपादि करने का फल

जपपूजादिकं सर्वं कार्यं दीक्षान्वितं नरैः ।
अदीक्षिता ये कुर्वन्ति जपपूजादिकाः क्रियाः ॥ २ ॥
फलं नैव भवेत्तेषां शिलायामुप्तबीजवत् ॥ ३ ॥

मनुष्यों को समस्त जप, पूजादि काम दीक्षित होकर करना चाहिये। जो बिना दीक्षा ग्रहण किये जप पूजादि कार्य करता है उसका फल नहीं होता है जैसे पत्थर की शिला पर बोया हुआ बीज निष्फल होता है ॥ २–३ ॥

विप्रादि वर्ण वश दीक्षा ग्रहण में ऋतु

विप्रो वसन्ते गृह्णीयाद्ग्रीष्मे तु क्षत्रियस्य च ।
शरत्काले च वैश्यस्य शूद्रस्य शिशिरागमे ॥ ४ ॥

वसन्त ऋतु में ब्राह्मण, ग्रीष्म में क्षत्रिय, शरद में बनिया और शिशिर ऋतु में शूद्र को दीक्षा लेनी चाहिये ॥ ४ ॥

ऋतुओं में समय ज्ञान

प्रातःकाले वसन्ते च ग्रीष्मे मध्ये गते रवौ ।
संध्यायां च शरत्काले शिशिरे चार्द्धरात्रिके ॥ ५ ॥
अथवा सर्वऋतुं प्राप्य मध्याह्ने चैव शुभं भवेत् ।
शुभां शान्ति प्रवर्तन्ते पुत्रपौत्रादिकादयः ॥ ६ ॥

वसन्त ऋतु में प्रातःकाल, ग्रीष्म में मध्याह्न, शरद् में सन्ध्या और शिशिर ऋतु में आधी रात में दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये। अथवा सब ऋतुओं में मध्याह्न में दीक्षा शुभ होती है तथा पुत्र पौत्रादि शुभ शान्ति में प्रवृत्त होते हैं ॥ ५-६ ॥

१२ मासों में दीक्षा लेने का फल

चैत्रेनिष्टफलं ज्ञेयं नात्र कार्या विचारणा ।
वैशाखे क्षेत्रलाभाय ज्येष्ठे च मरणं ध्रुवम् ॥ ७ ॥
आषाढे बन्धुनाशाय श्रावणे सुखमेव च ।
दैन्यं भाद्रपदे मासि आश्विने रत्नसम्पदः ॥ ८ ॥
कार्तिके च महालक्ष्मीर्मार्गशीर्षे न सम्पदः ।
पौषे च प्राप्यते मुक्तिः माघे सम्पत्तिरुत्तमा ॥ ९ ॥
फाल्गुने सर्वकार्याणां सिद्धिर्भवति निश्चितम् ।
शुक्लपक्षे शुभादीनां कृष्णायां पञ्चमीदिनात् ॥ १० ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि चैत में दीक्षित होने पर अवश्य ही दूषित फल होता है। इसमें विचार नहीं करना चाहिये। वैशाख में भूमि लाभ, जेठ में निश्चय मृत्यु, आषाढ में बान्धव विनाश, सावन में सुख, भादों में दीनता, क्वार में रत्न सम्पत्ति, कार्तिक में प्रचुर लक्ष्मी, अगहन में सम्पत्ति का अभाव, पौष में मुक्ति, माघ में उत्तम सम्पत्ति और फागुन में दीक्षा लेने से निश्चय सिद्धि होती है। शुक्ल पक्ष में शुभ और कृष्ण पक्ष में पञ्चमी से शुभ दीक्षा होती है ॥ ७-१० ॥

प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी तिथि में दीक्षा का फल

प्रतिपद्दीक्षा द्वितीयायां न प्राप्तिः परिकीर्तिता ।
तृतीयायां च सिद्धिः स्याच्चतुर्थी सस्यसम्पदः ॥ ११ ॥

प्रतिपदा व द्वितीया में दीक्षित होने से अभीष्ट की अप्राप्ति, तृतीया में सिद्धि और चौथ में दीक्षा लेने पर सस्य (धान्य) सम्पत्ति होती है ॥ ११ ॥

पञ्चमी से अष्टमी तक फल

पञ्चमी धनवृद्धिश्च षष्ठी चैव दरिद्रता ।
सर्वसिद्धिकरा सप्ता चाष्टमी धनदायका ॥ १२ ॥

पञ्चमी में दीक्षा लेने पर धन की वृद्धि, छठ में निर्धनता, सप्तमी में समस्त सिद्धि और अष्टमी में दीक्षा लेने से धन की प्राप्ति होती है ॥ १२ ॥

नवमी से द्वादशी तक फल

नवमी वर्द्धते आयुः दशमी सुखकारिणी ।
एकादश्यां ज्ञानसिद्धिः द्वादशी मुक्तिदायिका ॥ १३ ॥

नवमी में दीक्षित होने पर आयु की वृद्धि, दशमी में सुख कारक, एकादशी में ज्ञान की सिद्धि और द्वादशी में मन्त्र लेने पर मुक्ति होती है ॥ १३ ॥

तेरस से पूर्नो तक फल

शुक्ला त्रयोदशी पुण्या धनधान्यसमाकुला ।
चतुर्दशी शुभा ज्ञेया पौर्णमासी च सिद्धिदा ॥ १४ ॥

शुक्ल तेरस में मन्त्र लेने पर पुण्य धन, धान्यादि से परिपूर्णता, चौदस में शुभ और पूर्णिमा में दीक्षा लेने पर सिद्धि होती है ॥ १४ ॥

अमा का फल

आमावास्यां भवेत्क्लेशः सर्वदा परिवर्जयेत् ।

अमावस्या में दीक्षा ग्रहण से क्लेश होता है अतः इसका सर्वदा त्याग करना चाहिये ॥ १४–१४½ ॥

दीक्षा में शुभ तिथि

द्वितीयायां तृतीयायां पञ्चमो सप्तमी तिथिः ॥ १५ ॥
दशम्यादित्रये चैव पूर्णिमायां तथैव च ।
मंत्रारंभः शुभः प्रोक्तो नान्यत्र शुभवाञ्छितः ॥ १६ ॥

द्वितीया, तृतीया, पञ्चमीं, सप्तमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी और पूर्णिमा में मन्त्र का आरम्भ शुभ होता है । इनसे भिन्न तिथियों में शुभ नहीं होता है ॥१४½–१६ ॥

दीक्षा में शुभ वार

शनौ दीक्षा सुखं प्रोक्तं गुरौ सर्वार्थसम्पदः ।
शुक्रे सोमे तथा सौख्यमन्ये चैव विवर्जयेत् ॥ १७ ॥

शनिवार में दीक्षा लेने पर सुख, गुरुवार में सब प्रकार की सम्पत्ति, शुक्र व सोमवार में सुख व अन्यों में नहीं ग्रहण करना चाहिये ॥ १७ ॥

ग्रन्थान्तर से वार फल

अन्यः—
रवौ सोमे बुधे शुक्रे गुरुवारे तथैव च ।
मन्त्रारम्भः शुभः प्रोक्तो नान्यवारे कदाचन ॥ १८ ॥

सूर्य, सोम, बुध, शुक्र, गुरुवार में दीक्षा शुभ और अन्य वारों में कभी ग्रहण नहीं करनी चाहिये ॥ १८ ॥

दीक्षा में शुभ नक्षत्र

अश्वेधातामृगश्चैव दितिपुष्ये मघात्रयम् ।
हस्तादिपञ्चकं चैव मूलादित्रितयं तथा ॥ १९ ॥
शतभिषाद्यपि चत्वारि मंत्रारंभे शुभानि वै ।

अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, मूल, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, शतभिषा, पूर्वा भाद्रपद, उत्तरा भाद्रपद, रेवती नक्षत्र में मन्त्र लेना शुभ होता है ॥ १९-१९½ ॥

शुभ योग

प्रीतिःसौभाग्ययोगश्च ध्रुवयोगस्तथैव च ॥ २० ॥
आयुष्मान् शुभःसिद्धो वा वृद्धियोगस्ततः परः ।
हर्षणश्च तथा योगो मन्त्रारम्भे प्रशस्यते ॥ २१ ॥

प्रीति, सौभाग्य, ध्रुव, आयुष्मान्, शुभ, सिद्ध, वृद्धि, हर्षण योग में मन्त्रारम्भ प्रशस्त होता है ॥ १९½-२१ ॥

शुभ करण

बवश्च बालवश्चैव तैतिलं कौलवं तथा ।
दीक्षायां शुभदानि स्युरिमानि करणानि च ॥ २२ ॥

बव, बालव, तैतिल, कौलव करण में दीक्षा ग्रहण उत्तम होता है ॥ २२ ॥

शुभ लग्न राशि

वृषसिंहधनुःकन्यामीनलग्ने शुभे विधौ ।
ताराशुद्धौ प्रकुर्वीत दीक्षाकर्म विचक्षणः ॥ २३ ॥

वृष, सिंह, धनु, कन्या, मीन लग्न में शुभ चन्द्रमा में तारा शुद्धि होने पर दीक्षा कार्य करना चाहिये ॥ २३ ॥

वृषे सिंहे च कन्यायां धनुर्मीने च लग्नके ।
चन्द्रतारानुकूलेपि कुर्याद्दीक्षां सुसाधकः ॥ २४ ॥

वृष, सिंह, कन्या, धनु, मीन लग्न, चन्द्र तारा की अनुकूलता में अच्छे साधक को दीक्षा लेनी चाहिये ॥ २४ ॥

मन्त्रवश विशेष लग्न

स्थिरं लग्नं विष्णुमन्त्रे शिवमन्त्रे चरं शुभम् ।
द्विस्वभावगतं लग्नं शक्तिमन्त्रे प्रशस्यते ॥ २५ ॥

विष्णु मन्त्रग्रहण में स्थिर लग्न, शिवदीक्षा में चर और शक्ति मन्त्रग्रहण में द्विस्वभाव लग्न शुभ होता है ॥ २५ ॥

ग्रन्थान्तर से दीक्षा मुहूर्त

मुहूर्तमुक्तावल्याम्—
मासेस्याश्विनतो हि षट्सु परतो सुश्रावणे माधवे
भद्रा पूर्णत्रयोदशो शुभतिथौ शुक्रेंदुजेंदौ गुरौ ।
रोहिण्युत्तरशाक्रशंकरमरुत्पुष्यद्विदेवाश्विनी -
विष्णुश्चन्द्रबले सुलग्नसमये प्रारम्भमन्त्रस्य च ॥ २६ ॥

मुहूर्तमुक्तावली में कहा है कि क्वार से आगे ६ मास (क्वार, कार्तिक, अगहन, पूस, माघ, फागुन) तक तथा सावन, वैशाख मास, भद्रा, पूर्णा, त्रयोदशी तिथि, शुक्र, बुध, चन्द्र, गुरुवार, रोहिणी, उत्तरा, शाक्र, आर्द्रा, स्वाती, पुष्य, विशाखा, अश्विनी, श्रवण नक्षत्र, चन्द्रबल और सुन्दर लग्न में मन्त्रग्रहण करना चाहिये ॥ २६ ॥

दीक्षा का विशेष मुहूर्त

चैत्रे रामनवम्यां च ज्येष्ठे च निर्जलादिने ।
ग्रहणे सर्वकाले च दीक्षादानं विधीयते ॥ २७ ॥

चैत की रामनवमी, जेठ की निर्जला एकादशी और ग्रहण के समस्त काल में दीक्षा दान या ग्रहण का विधान है ॥ २७ ॥

निषिद्ध काल में भी विशेष

निषिद्धसमयेपि विशेषः—
कार्तिके नवमी शुक्ला मार्गशीर्षे तृतीयका ।
पौषे च नवमी शुक्ला चैत्रे कामचतुर्दशी ॥ २८ ॥
वैशाखे त्वक्षया शस्ता ज्येष्ठे दशहरा तिथिः ।
आषाढे पञ्चमी शुक्ला श्रावणे कृष्णपञ्चमी ॥ २९ ॥

कार्तिक में शुक्ल नवमी, अगहन की तृतीया, पौष शुक्ल नवमी, चैत की काम-चौदस, वैशाख की अक्षय तृतीया, जेठ शुक्लदशमी, आषाढ़ शुक्ल पञ्चमी और सावन कृष्ण पञ्चमी मन्त्र ग्रहण में शुभ होती है ॥ २८-२९ ॥

प्रकारान्तर से

अन्यः—
चैत्रे त्रयोदशी शुक्ला वैशाखैकादशी सिता ।
ज्येष्ठे चतुर्दशी शुक्ला आषाढे नागपञ्चमी ॥ ३० ॥
श्रावणैकादशी भाद्रे रोहिणी संयुताष्टमी ।
आश्विने च महाष्टम्यां कार्तिके नवमी शुभा ॥ ३१ ॥
मार्गशीर्षे तृतीया च फाल्गुनेपि सिताष्टमी ।
एतानि देवपर्वाणि तीर्थकोटिसमानि वै ॥ ३२ ॥

चैत शुक्ल तेरस, वैशाख-शुक्ल एकादशी, जेठ शुक्ला चौदस, आषाढ़ में नाग पञ्चमी, सावन में एकादशी, भादों में रोहिणी से युक्त अष्टमी, आश्विन की महाष्टमी, कार्तिक शुक्ल नवमी, अगहन की तृतीया और फागुन सुदी अष्टमी ये देव पर्वतिथियाँ कोटि तीर्थ के समान फलवती होती हैं अर्थात् इनमें दीक्षा लेने से करोड़ों तीर्थ का पुण्य होता है ।। ३०-३२ ।।

वर्ण वश दीक्षा देने का फल

क्षत्रियो ब्राह्मणे दद्यात्कुष्ठव्याधिः प्रवर्त्तते ।
वैश्यस्तु क्षत्रिये दद्यात्क्रियाहानिः प्रजायते ।। ३३ ।।
शूद्रो वैश्याय यो दद्यात्सर्वहानिर्भवेद् ध्रुवम् ।
यतेर्दीक्षां गृही प्राप्य पुत्रपौत्रादिनाशनम् ।। ३४ ।।

यदि क्षत्री ब्राह्मण को दीक्षा देता है तो कोढ नामक रोग, वैश्य क्षत्री को देता है तो कार्य की हानि और शूद्र वैश्य को दीक्षा देता है तो निश्चय सबकी हानि होती है। तथा यति (संन्यासी) से गृहस्थ दीक्षा ग्रहण करता है तो पुत्र पौत्रादि नाश होता है ।। ३३-३४ ।।

ब्राह्मण से दीक्षा लेने का महत्व

पुत्रारोग्यं तथैश्वर्यं गृही दीक्षां च ब्राह्मणः ।
अत्र वारादिकं किंचिन्न विचार्यं विचक्षणैः ।। ३५ ।।

ब्राह्मण से गृहस्थ को दीक्षा लेने पर पुत्र, आरोग्य तथा ऐश्वर्य होता है। इसमें वारादि का विचार विद्वान् को नहीं करना चाहिये ।। ३५ ।।

दीक्षा मुहूर्त का प्राशस्त्य

मन्वन्तरासु तिथिषु युगाद्यासु तथैव च ।
रविसंक्रमणे चैव दीक्षाकर्म प्रशस्यते ।। ३६ ।।

मन्वन्तरादि, युगादि तिथि और सूर्य संक्रान्ति में दीक्षा कार्य शुभ होता है ।।३६।।

बिना मुहूर्त दीक्षा

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
तत्र लग्नादिकं किञ्चिन्न विचार्यं मनीषिभिः ।। ३७ ।।

अयन व विषुव संक्रान्ति तथा सूर्य, चन्द्रमा के ग्रहण में बिना लग्नादि का विचार किये दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये ।। ३७ ।।

दीक्षा निषेध

न कुर्याच्छाक्तिकीं दीक्षामुपरक्ते विभावसौ ।
न कुर्याद्वैष्णवीं दीक्षां यदि चन्द्रमसो ग्रहः ।। ३८ ।।

सूर्य के ग्रहण में शक्ति मन्त्र की और चन्द्रग्रहण में वैष्णवी दीक्षा का ग्रहण नहीं करना चाहिये ।। ३८ ।।

ग्रहण में विशेष

श्रीविद्यामन्त्रदीक्षा तु शस्ता सूर्यग्रहेपि च ।
दीक्षा गोपालमन्त्राणां चन्द्रस्य ग्रहणेपि च ॥ ३९ ॥
ग्रहणे च महातीर्थे न कालं च परीक्षयेत् ।

सूर्य ग्रहण में श्रीविद्या मन्त्र की और चन्द्रग्रहण में गोपाल मन्त्र की दीक्षा को ग्रहण करना चाहिये, ग्रहण और बड़े तीर्थों में दीक्षा के लिये काल की परीक्षा नहीं करनी चाहिये ॥ ३९-३९½ ॥

तिथिवार योग से विशेष मुहूर्त

अमावास्या सोमवारे भौमवारे चतुर्दशी ॥ ४० ॥
सप्तमी रविवारे च सूर्यग्रहशतैः समाः ।

सोमवार में अमावास्या, भौमवार में चौदस, रविवार में सप्तमी होने पर सैकड़ों सूर्य ग्रहण के समान फल होता है ॥ ३९½-४०½ ॥

विशेष मुहूर्त

शिष्यानाहूय गुरुणा कृपया दीयते यदि ।
तदा लग्नादिकं किंचिन्न विचार्यं कदाचन ॥ ४१ ॥

जब कि गुरु कृपा से शिष्यों को बुलाकर मन्त्र देता है तो इसमें लग्नादि का कभी विचार नहीं करना चाहिये ॥ ४१ ॥

सर्वे वारा ग्रहाः सर्वे नक्षत्राणि च राशयः ।
यस्मिन्नहनि सन्तुष्टो गुरुः सर्वे शुभावहाः ॥ ४२ ॥

जिस दिन गुरु जी महाराज परम प्रसन्न होते हैं उस दिन सब वार, ग्रह, नक्षत्र शुभावह होते हैं ॥ ४२ ॥

स्वर वश मुहूर्त

स्वरोदये—
एकनाडी स्थिता यत्र गुरुमन्त्राश्च देवताः ।
तत्र द्वयं रुजं मृत्युं क्रमेण फलमादिशेत् ॥ ४३ ॥

जहाँ (जिस दिन) गुरु, मन्त्र, देवता एक नाडी में स्थित होते हैं तो वहाँ यदि २ हों तो रोग और तीनों हों तो मृत्यु होती है ॥ ४३ ॥

दीक्षा भेद

विश्वसारतन्त्रे कलावुपदेशमात्रमुक्तम् ।
महादीक्षा तथा दीक्षा उपदेशस्तदन्तरम् ।
युगे युगे च कर्तव्या उपदेशाः कलौ युगे ॥ ४४ ॥

विश्वसार तन्त्र में बताया है कि महादीक्षा, दीक्षा व उपदेश ये तीन होते हैं। अन्य युगों में दीक्षा व महादीक्षा होती है किन्तु कलियुग में उपदेश ही करना चाहिये ॥ ४४ ॥

उपदेश की परिभाषा

चन्द्रसूर्यग्रहे तीर्थे सिद्धिक्षेत्रे शिवालये।
मन्त्रमात्रं तु कथनमुपदेशः स उच्यते ॥ ४५ ॥

चन्द्र-सूर्य ग्रहण, तीर्थ, सिद्धिक्षेत्र और शिवालय में मन्त्र मात्र का कहना उपदेश होता है ॥ ४५ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरंजने
एकोनाशीतितमं दीक्षाप्रकरणं समाप्तम्।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का उन्यासीवाँ दीक्षा नाम का प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ७९ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर-चतुर्वेदकृता बृहद्दैवज्ञरञ्जनसङ्ग्रहग्रन्थस्यैकोनाशीतिप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका समाप्तिमगात् ॥ ७९ ॥

अथाशीतितमं अग्न्याधानप्रकरणं प्रारभ्यते।

अब आगे अस्सीवें प्रकरण में अग्न्याधान अर्थात् प्रतिदिन अग्निहोत्र करने के लिये अग्नि की स्थापना करना, इसे कब करना चाहिये, इसे इस प्रकरण में विविध वाक्यों से बताते हैं।

अग्नि आधान मुहूर्त

पारस्करगृह्यसूत्रे—
[1]आवसथ्याधानं दारकाले दायाद्यकाल एकेषाम्।

पारस्कर गृह्यसूत्र में कहा है कि अग्नि का आधान विवाह के समय या भाई या पिता से जायदाद के विभाजन के समय में करना चाहिये।

अग्न्याधान के नक्षत्र

[2]अग्न्याधानं दारकाले विधेयं कैश्चित्प्रोक्तं तच्च दायादकाले।
शक्रोऽग्नेर्भे शक्रभे कृत्तिकायां सौम्ये ब्राह्मे पुष्यपौष्णोत्तरासु ॥ १ ॥

अग्न्याधान विवाह के समय करना चाहिये, किसी के मत में पिता पुत्र द्वारा जायदाद के विभाजन के समय करना चाहिये। यह इन्द्र और अग्नि देवता के नक्षत्रों में ज्येष्ठा, कृत्तिका, मृगशिरा, रोहिणी, पुष्य, रेवती तीनों उत्तरा में करना चाहिये ॥ १ ॥

१. मु. चि. ९ प्र. १ श्लो. पी. टी.। २. ज्यो. नि. १६४ पृ.।

ग्रंथान्तर से

[1]प्राजापत्ये पूषभे सद्विदैवे पुष्ये ज्येष्ठास्वैन्दवे कृत्तिकासु।
अग्न्याधानं ह्युत्तराणां त्रये च श्रेष्ठं प्रोक्तं प्राक्तनैर्गर्गमुख्यैः ॥ २ ॥

रोहिणी, पूर्वाषाढा, विशाखा, पुष्य, ज्येष्ठा, मृगशिरा, कृत्तिका, ३ उत्तरा में गर्गादि मुख्य ऋषियों ने अग्न्याधान श्रेष्ठ बताया है ॥ २ ॥

अन्यः—

रेवत्युत्तररोहिणीगुरुविधुज्येष्ठाविशाखाग्निभे
जीवे शीतकरे कुजेथ तरणे केन्द्रत्रिकोणेथ वा।
पापे चोपचयस्थिते शुभतिथौ लग्ने विधौ शोभने
कुर्यादग्निपरिग्रहं सुरगुरौ पुष्टे शुभे रात्रिपे ॥ ३ ॥

रेवती, उत्तरा ३, रोहिणी, पुष्य, मृगशिरा, ज्येष्ठा, विशाखा, कृत्तिका नक्षत्र, गुरु, चन्द्र, भौम, रविवार या इनके केन्द्र कोणस्थ उपचय में पापस्थिति, शुभ तिथि, शोभन लग्नस्थ चन्द्र, प्रबल गुरु और शुभ रात्रीश होने पर अग्नि का परिग्रह करना चाहिये ॥ ३ ॥

वृद्धगर्गः—

पुष्याग्नेयत्र्युत्तरादित्यपौष्णज्येष्ठाचित्रार्कद्विदैवेन्दुभेषु।
कुर्युर्वह्न्याधानमाद्यं वसन्तग्रीष्मान्तेष्वेव विप्रादि वर्णाः ॥ ४ ॥

वृद्ध गर्गजी ने बताया है कि पुष्य, कृत्तिका, ३ तीन उत्तरा, पुनर्वसु, रेवती, ज्येष्ठा, चित्रा, हस्त, विशाखा, मृगशिरा नक्षत्र, वसंत, ग्रीष्म ऋतु के अन्त में विप्रादि वर्णों को अग्न्याधान करना चाहिये ॥ ४ ॥

लग्न शुद्धि

कश्यपः—

[2]यस्यैवाधानलग्नस्थे चन्द्रे वा भृगुनन्दने।
उपैति तस्य जातोग्निर्निर्वाणसततं ज्वलम् ॥ ५ ॥

जिस अग्नि परिग्रह में लग्न में चन्द्रमा या शुक्र होता है तो इसमें मरण पर्यन्त अग्नि ज्वलित रहती है ॥ ५ ॥

[3]पञ्चाङ्गशुद्धिदिवसे चन्द्रताराबलान्विते।
चन्द्रे शुद्धियुते लग्ने चाष्टमोदयवर्जिते ॥ ६ ॥

पञ्चाङ्ग शुद्धि से युत दिन में, चन्द्र, तारा के बलवान होने पर, चन्द्र से शुद्ध लग्न में व अष्टम लग्न से हीन होने पर अग्न्याधान करना चाहिये ॥ ६ ॥

---

१. मु. चि. ९ प्र. १ श्लो. पी. टी।
२. मु. चि. ९ प्र. २ श्लो. पी. टी.।
३. मु. चि. ९ प्र. २ श्लो. पी. टी.।

श्रीपतिः—

[1]राशौ विलग्नेम्बुचरे घटे वा तदंशके वाप्यथ वा शशाङ्के।
आधानकाले द्विजपुङ्गवानां जातोग्निनिर्वाणमुपैति वह्निः ॥ ७ ॥

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि जलचर राशि लग्न या कुम्भ में या इनके नवांश में चन्द्रमा के रहने पर अग्न्याधान होने से जीवन पर्यन्त अग्नि रहती है ॥ ७ ॥

त्रिकोणकेन्द्रोपचयेषु सूर्ये बृहस्पतौ शीतकरे कुजे च।
शेषग्रहेषूपचयस्थितेषु धूमध्वजोत्पादनमामनन्ति ॥ ८ ॥

त्रिकोण (५।९) केन्द्र में या उपचय स्थान में सूर्य, गुरु, चन्द्र, मंगल हों तथा अन्य ग्रह उपचय में होने पर अग्न्याधान शुभ होता है ॥ ८ ॥

[2]चन्द्रे पत्नी मृत्युगे मृत्युमेति क्षिप्रं वह्न्याध्यापकः क्ष्मासुते च।
भानोः सूनौ देवपूज्ये रवौ वा रोगैर्युक्तो दुश्चिकित्स्यो द्विजेन्द्रः ॥ ९ ॥

चन्द्रमा अष्टम हो तो पत्नी की मृत्यु होती है और भौम ८ में होने पर अग्न्याधान करने से कर्ता की शीघ्र मृत्यु होती है और ८ में शनि, गुरु या सूर्य की सत्ता में अग्न्याधान करने वाला रोग से युक्त होकर कठिन चिकित्सा योग्य होता है ॥ ९ ॥

अन्य योग

[3]कुजेन्दुजीवैरिपुराशिसंस्थैः पराजितैर्नीचगृहोपगैर्वा।
असङ्गतैर्वाग्निपरिग्रहं यः करोति हास्यं विदुषां स याति ॥ १० ॥

जोकि मंगल, चन्द्रमा, गुरु के लग्न से छठे भाव में रहने पर या इनके अस्त अथवा नीच में होने पर अग्नि की स्थापना अग्निहोत्र के लिये करता है वह विद्वानों में हँसी का पात्र होता है ॥ १० ॥

सिंहस्थ गुरु में निषेध

लल्लः—

आधानपुनराधाने न कुर्यात्सिंहगे गुरौ ॥ ११ ॥

आचार्य लल्ल ने बताया है कि सिंह के गुरु में अग्न्याधान नहीं करना चाहिये ॥ ११ ॥

अग्न्याधान में शुभ मास

कारिकायाम्—

माघादि पञ्चमासेषु श्रावणे चाश्विनेथवा।
कुर्यान्मार्गोत्तमाङ्गेवा आधानं शुक्लपक्षतः ॥ १२ ॥

कारिका में बताया है कि माघादि पाँच (माघ–फागुन–चैत–वैशाख–जेठ), सावन, क्वार, अगहन मास शुक्ल पक्ष में अग्न्याधान करना चाहिये ॥ १२ ॥

---

१. मु. चि. ९ प्र. २ श्लो. पी. टी. 'न क्रे वि·····' पाठ है।
२. मु. चि. ९ प्र. २ श्लो. पी. टी.। ३. मु. चि. ९ प्र. १ श्लो. पी. टी.।

शुभ नक्षत्र

हस्तद्वये विशाखासु कृत्तिकादित्रये तथा ।
पुनर्वसुद्वये तद्वद्रेवतीषूत्तरासु च ॥ १३ ॥

हस्त, चित्रा, विशाखा, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, ३ तीनों उत्तरा नक्षत्र में अग्नि ग्रहण उत्तम होता है ॥ १३ ॥

अग्न्याधान का निषेध विधान

भौमार्कवर्जिते वारे नाधिमासे क्षये तथा ।
चन्द्रेनुकूले पूर्वाह्णे रिक्ताविष्टिविवर्जिते ॥ १४ ॥

भौम, रविवार, अधिक-क्षयमास, रिक्ता तिथि, भद्राकरण को छोड़कर चन्द्रमा के अनुकूल होने पर पूर्वाह्ण में अग्न्याधान करना चाहिये ॥ १४ ॥

अग्न्याधान का निषेध

केतुर्निर्घातभूकम्पविद्युत्स्तनितदर्शने ।
आधानं नहि कर्तव्यं सुधिया शुभमिच्छता ॥ १५ ॥

केतु, निर्घात, भूकम्प, बिजली के चमकने पर शुभ की इच्छा वाले बुद्धिमान् को अग्न्याधान नहीं करना चाहिये ॥ १५ ॥

विशेष

अर्वाक् पूर्णप्रदानाच्चेदाधाने स्त्री रजस्वला ।
तच्छुद्धौ पुनराधानं मातृपूजनपूर्वकम् ॥ १६ ॥

पूर्णाहुति होने से पूर्व यदि स्त्री रजस्वला हो जाय तो ऋतु धर्म समाप्ति के पश्चात् शुद्धि में मातृका पूजन करके पुनः अग्न्याधान करना चाहिये ॥१६॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने
अशीतितमं अग्न्याधानप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन संग्रह ग्रन्थ का अग्न्याधान नामक अस्सीवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर चतुर्वेद कृता बृहद्दैवज्ञरञ्जनसङ्ग्रहग्रन्थस्याशीतितमप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्तिमगात् ॥ ८० ॥

अथैकाशीतितमं अग्न्याहुतिप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे इक्यासीवें प्रकरण में अग्नि में आहुति कब करनी चाहिये इसे बताते हैं ।

अग्निचक्र का ज्ञान

अथाहुतिज्ञानम्—

ज्योतिःप्रकाशे—

सूर्ययुक्तात्तु नक्षत्राद्द्याद्विज्ञस्त्रयं त्रयम् ।
आदित्यश्च बुधः शुक्रः शनिश्चन्द्रः कुजस्तथा ॥ १ ॥
जीवो राहुश्च केतुश्च होमे क्रूरो न शोभनः ।

ज्योतिःप्रकाश नाम के ग्रन्थ में बताया है कि हवन के दिन सूर्य नक्षत्र से ३; ३ नक्षत्रों के स्वामी सूर्य, बुध, शुक्र, शनि, चन्द्रमा, मङ्गल, गुरु, राहु, केतु होते हैं । इन्हें चन्द्र नक्षत्र तक जान कर शुभग्रह के दिन में हवन शुभ और पापग्रह में आहुति देना शुभ नहीं होता है ॥ १–१½ ॥

स्वामी वश आहुति का फल

आदित्ये च भवेच्छोको बुधे चैव धनागमः ॥ २ ॥
शुक्रे सर्वार्थलाभः स्याच्छनौ पीडा न संशयः ।
चन्द्रे लाभं विजानीयाद्भौमे तु वधबंधनम् ॥ ३ ॥
गुरौ तु कार्यसिद्धिः स्याद्राहौ हानिर्मृतिः शिखी ॥ ४ ॥

जिस दिन का स्वामी सूर्य होता है उस दिन हवन करने पर शोक, बुध में धनागम, शुक्र में सबकी अभीष्ट प्राप्ति, शनि में निश्चय पीड़ा, चन्द्रमा में लाभ, मंगल में वध (मरण) या जेल, गुरु में कार्य सिद्धि, राहु में हानि और केतु के स्वामी होने पर मृत्यु होती है ॥ १½–४ ॥

स्पष्टार्थ सारिणी

सू० न० से	३	३	३	३	३	३	३	३	३
चं० नं० स्वा०	सूर्य	बुध	शुक्र	शनि	चंद्र	भौम	गुरु	राहु	केतु
फल	शोक	धना-गम	अभीष्ट सि०	पीड़ा	लाभ	वध बन्धन	सिद्धि	हानि	मृत्यु

निबंधसारे—

सूर्यज्ञभृगुमंदाब्जभौमेज्यागुशिखी क्रमात् ।
त्रित्रिभादर्कतो होमो दुष्टे दुष्टं शुभे शुभम् ।। ५ ।।

निवन्ध सार में बताया है कि सूर्य नक्षत्र से ३, ३ नक्षत्र के क्रम से सूर्य, बुध, शुक्र, शनि, चन्द्र, भौम, गुरु, राहु, केतु स्वामी अभीष्ट दिन में जानकर पाप ग्रह के स्वामित्व में दुष्टता और शुभग्रह के दिन आहुति से शुभ होता है ।। ५ ।।

पुनः ग्रन्थान्तर से सफल अग्नि चक्रविचार

लल्लः—

सूर्याधिष्ठितभात्त्रयं त्रयमथो दत्त्वा रविज्ञोशनः
शौरींदुक्षितिनंदनामरगुरुस्वर्भानुकेतुष्वपि ।
शोकः श्रीजननं च कार्यसुखदं रोगं धनं बंधनं
भोगं मृत्युभयं क्रमेण कथितं ज्ञात्वाग्निचक्रं बुधैः ।। ६ ।।

आचार्य लल्ल ने बताया है कि सूर्य जिस नक्षत्र में हो उससे ३, ३ नक्षत्रों का ९ जगह स्थापन करके क्रम से उनके अधिप सूर्य, बुध, शुक्र, शनि, चन्द्रमा, भौम, गुरु, राहु, केतु होते हैं । इनमें सूर्य के स्वामी होने पर हवन करने से शोक, बुध में लक्ष्मी, शुक्र में कार्य में सुख, शनि में रोग, चन्द्रमा में धन, भौम में जेल, गुरु में भोग, राहु में मृत्यु और केतु के स्वामित्व में हवन करने पर भय होता है ।। ६ ।।

अग्निवास विचार

[1]सैका तिथिर्वारयुता कृताप्ता शेषे गुणेऽभ्रे भुवि वह्निवासः ।
सौख्याय होमे शशियुग्मशेषे प्राणार्थनाशो दिवि भूतले च ।। ७ ।।

मुहूर्तचिन्तामणि में कहा है कि जिस दिन आहुति देना अभीष्ट हो उस दिन शुक्ल-पक्ष की प्रतिपदा से अभीष्ट तिथि की संख्या जान कर उसमें वार की संख्या व एक जोड़कर योग में ४ का भाग देने से यदि शून्य ० और तीन शेष बचे तो भूमि में अग्नि वास होने से हवन सुखकारी, १ में स्वर्ग में वास से प्राणनाश एवं २ शेष बचने पर पाताल में अग्नि वास होने से धन का नाश होता है ।। ७ ।।

एके स्वर्गे धनं राज्यं शून्ये भुवि सुखास्पदम् ।
द्विशेषे दोषकृद्वह्नेः पाताले वसतिः फलम् ।। ८ ।।

एक शेष में स्वर्ग में वास होने के नाते धन व राज्य, ० शून्य में भूमि में अग्नि का वास होने से सुख और २ शेष में पाताल में अग्नि की स्थिति से दूषित फल हवन करने पर होता है ।। ८ ।।

१, मु. चि. २ प्र. ३६ श्लो. ।

मनुः—

शुक्लादि तिथ्यो विधुवारयुक्ता वेदाप्तशेषे न शुभौ द्विचन्द्रौ ।
सौख्याय वेदत्रितयं सदेवं होमेग्निचक्रं मुनिभिः प्रदिष्टम् ॥ ९ ॥

ऋषि मनु ने कहा है कि शुक्लादि से तिथि संख्या जानने पर उसमें वार संख्या व १ जोड़ कर ४ चार का भाग देने पर २।१ शेष बचने पर शुभ नहीं होता और ३।४ शेष सुख के लिये होता है ऐसा ऋषियों ने बताया है ॥ ९ ॥

रत्नावल्याम् —

तिथिवारयुतिःसैका वेदभक्ते च शेषकम् ।
वह्निवासो विजानीयाद्दिवि पातालभूमिषु ॥ १० ॥

रत्नावली में कहा है कि तिथि, वार, संख्या युति में एक जोड़ कर चार का भाग देने पर शेष १।२।३।४ में क्रम से स्वर्ग, पाताल, भूमि में अग्नि का वास होता है ॥१०॥

अग्नि वास का फल

स्वर्गे नैधनमाप्नोति पाताले धननाशनम् ।
यदा भूम्यानलो वासस्तदा कर्तुः परं सुखम् ॥ ११ ॥

स्वर्ग में अग्नि का वास होने पर मृत्यु, पाताल में धन नाश और भूमि में अग्नि वास होने पर हवनकर्ता को सुख होता है ॥ ११ ॥

भिन्न प्रकार से अग्नि वास ज्ञान

चिन्तामणी—

तिथिवारसमा युक्ता पंचविंशतिमिश्रिता ।
त्रिभिश्च ह्रियते भागो शेषांकेन विचारणा ॥ १२ ॥
एकेन वसते स्वर्गे द्वाभ्यां पातालमेव च ।
पूर्णे मनुष्यलोके च वह्निर्वसति सर्वदा ॥ १३ ॥

चिन्तामणि नामक ग्रन्थ में कहा है कि तिथि वार संख्या में २५ जोड़कर तीन का भाग देने से शेष १ एक में स्वर्ग में अग्नि का वास, २ दो में पाताल में और ० शेष में मनुष्य लोक में भूमि का निवास होता है ॥ १२-१३ ॥

निवास वश फल

पाताले च भवेद्विघ्नं मर्त्यलोके सदा सुखम् ।
सदा वसति स्वर्गे च तदा हानिरुपद्रवम् ॥ १४ ॥

पाताल में अग्नि का वास होने पर विघ्न, भूमि में सदा सुख और स्वर्ग में होने से हानि व उपद्रव होते हैं ॥ १४ ॥

पुनः ग्रन्थान्तर से अग्नि चक्र

मुहूर्तदर्पणे—

वर्ग्स्वदुः सप्तयुक्तस्तिथिदिनपयुतो वेदहृच्छेषतः स्या-
देकात् स्वोयुग्मतोधो दहनजलधितो भूमितोग्नेर्निवासः ।

वित्तासूनां विनाशो वसुचयनिहतिः सौख्यवृद्धिः क्रमात्स्यु-
रेवं ज्ञेयं स्वबुद्धया नियतमिहमुत अग्निना चक्रकारे ॥ १५ ॥

मुहूर्त दर्पण में कहा है कि तिथि वार संख्या में १८+७ = २५ पच्चीस जोड़ कर ४ चार का भाग देने पर एक शेष में अग्नि का निवास स्वर्ग लोक में, दो शेष पाताल में और तीन ३, चार ४ शेष में भूमि में अग्नि का निवास होता है। स्वर्ग में निवास होने पर धन व प्राण नाश, पाताल में धन बुद्धि का विध्वंस और भूमि में निवास होने पर सुख की वृद्धि होती है ॥ १५ ॥

अग्नि चक्र को नहीं विचारना

ग्रहणोद्वाहगण्डान्ते तथा दुर्गोत्सवेपि च।
तदाग्निचक्रं नालोक्यं ग्रहशान्तौ विचारयेत् ॥ १६ ॥

ग्रहण, विवाह, गण्डान्त, और दुर्गोत्सव में अग्नि चक्र का विचार नहीं करना चाहिये किन्तु ग्रहशान्ति में विचार करना चाहिये ॥ १६ ॥

रत्नावल्यामपि —
व्रतबंधे विवाहे च नवरात्रे च नित्यके।
कुलदेवार्चने धीमान्नो कुर्यादग्निचिंतनम् ॥ १७ ॥

रत्नावली में भी कहा है कि जनेऊ, विवाह, नवरात्र, नित्य होम और कुल देवता पूजन व हवन में अग्नि चक्र का विचार नहीं करना चाहिये ॥ १७ ॥

मुहूर्तदर्पणेपि —
विवाहचूडाव्रतबंधगोचरे उत्पातशान्तिग्रहणे युगादौ।
दुर्गाविधाने सततं प्रसूतौ नैवाग्निचक्रं परिशोधनीयम् ॥ १८ ॥

मुहूर्तदर्पण में भी बताया है कि विवाह, चूड़ा (चौल-मुंडन) यज्ञोपवीत, गोचर उत्पात शान्ति, ग्रहण, युगादि, दुर्गाविधान और प्रसूति में अग्नि चक्र का परिशोधन नहीं करना चाहिये ॥ १८ ॥

विवाहे व्रतबंधे च यजने मधुसूदने।
दुर्गायां पुत्रजन्मादौ अग्निचक्रं न दृश्यते ॥ १९ ॥

विवाह, व्रतबन्ध, विष्णुपूजा, दुर्गापूजन, पुत्र के जन्मादि में अग्नि चक्र का विचार नहीं करना चाहिये ॥ १९ ॥

विचारने का विधान

दुर्गभंगे गृहे वापि विवादे शत्रुविग्रहे।
शांतिकर्म नृपक्रोधं चक्रं तत्र निरीक्षयेत् ॥ २० ॥

दुर्गभंग, गृहप्रवेशादि (वास्तुकर्म), विवाद, शत्रुविग्रह, शान्तिकर्म और नृपक्रोध में अग्निचक्र का विचार करना चाहिये ॥ २० ॥

दिग्दाहेप्यथवा घोरे ग्रस्तास्ते भूमिकंपने।
केतूनामुदये शान्तिचक्रं यत्नेन चिंतयेत् ॥ २१ ॥

दिग्दाह में अथवा घोर ग्रस्तास्त में, भूकम्प में, केतूदय में शान्तिचक्र का प्रयत्नपूर्वक विचार करे ॥ २१ ॥

अग्नि के अवयव

अथाग्नेरंगज्ञानम् —

यतः काष्ठं ततः श्रोत्रं यतो धूमोत्र नासिका।
यत्राल्पज्वलनं नेत्रं यतोंगारस्ततः शिरः ॥ २२ ॥
यत्र प्रज्वलिता ज्वाला जिह्वासौ जातवेदसः।

काठ = कान, धूम = नाक, अल्पज्वलन = आँख, अंगार = मस्तक, प्रज्वलित = जीभ ये अग्नि के अवयव होते हैं ॥ २२-२२½ ॥

इनमें हवन का फल

कर्णे होमे भवेद्व्याधिर्नेत्रेऽन्धत्वं समीरितम् ॥ २३ ॥
नासिकायां मनःपीडा मस्तके धनसंक्षयम्।
जिह्वायां सर्वसंपत्तिर्वह्निहोमे विचारयेत् ॥ २४ ॥

कान में होम करने पर रोग, आँख में अन्धापन, नाक में मानसी पीड़ा, मस्तक में धन नाश और जीभ में होम से समस्त संपत्तियों का लाभ होता है ॥ २२½-२४ ॥

तिथियों का फल

पूर्णायां पूर्णभवनं जयायां सुखवर्द्धनम्।
नन्दा च कुरुते सौख्यं रिक्ता संतापकारिणी ॥ २५ ॥

पूर्णा में पूर्ण कार्य, जया में सुख की वृद्धि, नन्दा में सुख और रिक्तातिथियों में हवन करने पर संताप होता है ॥ २५ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरंजने
एकाशीतितमं अग्न्याहुतिप्रकरणं समाप्तम्।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन संग्रह ग्रन्थ का इक्यासीवाँ अग्न्याहुति नाम का प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ८१ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर चतुर्वेदकृता बृहद्दैवज्ञरञ्जनसंग्रहग्रन्थस्यैकाशीतितमप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका परिपूर्णा ॥ ८१ ॥

अथ द्व्यशीतितमं राज्याभिषेकप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे बियासीवें प्रकरण में राजा का अभिषेक कब किस मुहूर्त में, किस स्थिति में करना चाहिये इसे विविध ग्रन्थों के वाक्य से बताते हैं ।

अभिषेक का समय

कश्यपः—

[1]अथातः संप्रवक्ष्यामि भूपानामभिषेचनम् ।
सौम्यायने सिते जीवे नास्तगे नच वृद्धगे ॥ १ ॥

ऋषि कश्यपजी बता रहे हैं कि मैं अब राजा के अभिषेक समय को बता रहा हूँ । इस कार्य को उत्तरायण में शुक्र, गुरु के अस्त न होने पर करना चाहिये ॥ १ ॥

व्यवहारचण्डेश्वरः—

भूपालस्याभिषेकार्थं कालं वक्ष्यामि तत्त्वतः ।
चन्द्रतारानुकूले तु कुर्याद्भूपालसेचनम् ।। २ ॥
दशाधिपे जन्मनि लग्नपे च बलान्विते तिग्मकरे महीसुते ।
सितेंदुजीवैः सुविशालमंडलैर्नृपाभिषेके शुभदः कृतो भवेत् ॥ ३ ॥

व्यवहारचण्डेश्वर में ग्रन्थकार बताते हैं कि मैं तत्त्व से राजाओं के अभिषेक के काल को बताता हूँ । इस कार्य को चन्द्रतारा की अनुकूलता में करना चाहिये । जब कि दशाधिप व लग्नेश जन्म राशि में हो तथा चन्द्र, भौम बली हों और विशाल मण्डलों से युक्त शुक्र, चन्द्र, गुरु हों तो अभिषेक करना शुभप्रद होता है ॥ २–३ ॥

वसिष्ठः—

[2]मूलत्रिकोणस्वगृहोच्चमित्रगृहस्थितैर्वापि तदंशसंस्थैः ।
शुभे विलग्ने सततं ग्रहेंद्रा दिशंति लक्ष्मीं विपुलां च कीर्तिम् ॥ ४ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि सब ग्रह मूलत्रिकोण, अपनी राशि, उच्चराशि या मित्र राशि में हों या इनके नवांश में हों तथा शुभ लग्न में अभिषेक करने से राजा को विपुल धन की प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥

[3]स्वनीचगैः शत्रुगृहोपगैर्वा तदंशगैर्वास्तगृहोपगैर्वा ।
पापोदये शोकभयं त्वकीर्ति दिशंति राज्ञां भृशमंबराय ॥ ५ ॥

---

१. मु. चि. १० प्र. १ श्लो. पी. टी. ।

२. व. सं. ३३ अ. २ श्लो ।

३. व. सं. ३३ अ. ३ श्लो. ।

ग्रह अपनी नीच राशि, शत्रु राशि या इनके नवांश में या अस्त हों और पापग्रह की लग्न में राज्याभिषेक करने पर शोक, भय, अपयश होता है ।। ५ ।।

[1]आधानजन्मेशदशाधिनाथरवींदुभौमेज्यसितैर्बलस्थैः ।
उत्पातदोषादिविवर्जितेषु धराधिपानामभिषेक इष्टः ।। ६ ।।

आधान लग्नेश, राशीश, दशाधिप, सूर्य, चन्द्र, मंगल, गुरु, शुक्र के बली होने पर तथा उत्पातादि दोष से रहित हों तो राजा का अभिषेक करना चाहिये ।। ६ ।।

श्रीपतिः –

[2]विलग्नजन्मेशदशाधिनाथमार्तंडधात्रीतनयैर्बलिष्ठैः ।
गुर्विंदुशुक्रैः स्फुरदंशुजालैर्महीपतीनामभिषेक इष्टः ।। ७ ।।

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि लग्नेश, राशीश, दशापति, सूर्य व भौम ये बलवान् हों तथा गुरु, चन्द्र, शुक्र अपनी स्पष्ट किरणों से युक्त हों तो राजा का अभिषेक करना चाहिये ।। ७ ।।

अभिषेक का निषिद्धकाल

चण्डेश्वरः –

[3]नाभिषेच्यो नृपश्चैत्रे नाधिमासे न भूसुते ।
न प्रसुप्ते तथाधिष्ण्ये न रिक्तायां न रात्रिषु ।। ८ ।।

चैत्र, अधिक मास, भौमवार, हरिशयन, कुनक्षत्र, रिक्ता तिथि और रात में राजा का अभिषेचन नहीं करना चाहिये ।। ८ ।।

विशेष—यह पद्य पी० टी० में 'नाभिषेकः शुभो वाच्यो नृपे चैत्रेऽधिमासके । न भूसुरे प्रसुप्ते च विष्णौ रिक्तासु रात्रिषु' पाठ है ।। ८ ।।

राजा का अभिषेक मुहूर्त

रामः—

[4]राज्याभिषेकः शुभ उत्तरायणे गुर्विन्दुशुक्रैरुदितैर्बलान्वितैः ।
भौमार्कलग्नेशदशेशजन्मपैर्नो चैत्ररिक्तारनिशामलिम्लुचे ।। ९ ।।

मुहूर्त चिन्तामणि में बताया है कि उत्तरायण, गुरु, चन्द्र, शुक्र के बली व उदित होने पर तथा भौम, सूर्य, लग्नेश, दशेश और राशीश बलवान् हों तो राजा का अभिषेक करना चाहिये और चैत मास, रिक्ता तिथि, मंगलवार रात्रि एवं अधिक मास में नहीं करना चाहिये ।। ९ ।।

---

१. व. सं. ३३ अ. १ श्लो. ।
२. मु चि. १० प्र. १ श्लो. पी. टी. ।
३. मु. चि. १० प्र. १ श्लो. पी. टी. ।
४. मु. चि. १० प्र १ श्लो. ।

वसिष्ठः—

[1]रिक्तास्वमायां बुधभौमवारे वर्ज्येषु वारेण दिनेषु चैव।
खले दिने ऋक्षनिशेशयोश्च न नैधने भे त्वभिषेक इष्टः॥ १०॥

रिक्ता, अमावास्या, भौम, बुधवार को छोड़कर तथा नक्षत्र चन्द्रमा से दूषित दिन एवं अष्टम नक्षत्र राशि का त्यागकर अभिषेक करना चाहिये॥ १०॥

विशेष—प्रकाशित वसिष्ठ संहिता व मु० चि० पी० टी० में 'भौमवार विवर्जिते वारदिनेषु कैवा खले दिने' यह पाठ है॥ १०॥

भौमवार में करने का विधान

भीमपराक्रमः—

[2]राज्याभिषेकाहवदुष्टदंतिसेतुच्छिदानां कृषिकर्मणां च।
वादं चरक्ष्मातनयस्य वारे प्रारंभसिद्धि मुनयो वदंति॥ ११॥

भीमपराक्रम में कहा है कि राजा का अभिषेक, युद्ध, दुष्ट घोड़ा, हाथी, सेतुच्छिद, खेती के काम और विवाद भौमवार में प्रारम्भ करने से सिद्ध होता है। ऐसा ऋषिजनों का कहना है॥ ११॥

विशेष—मु० चि० की पी० टी० में 'राजाभिषेको हयदुष्टदन्ति' 'वादस्य च क्ष्मातन ......' पाठ है॥ ११॥

समय की अपेक्षा का अभाव

दैवज्ञमनोहरे—

[3]मृते राजनि कालस्य नियमोत्र विधीयते।
नृपाभिषेकः कर्तव्यो दैवज्ञेन पुरोधसा॥ १२॥

दैवज्ञमनोहर में कहा है कि राजा के मरने पर काल का नियम नहीं होता है। पुरोहित दैवज्ञ को यथा समय करवाना चाहिये॥ १२॥

विशेष—पी० टी० में 'मृते राज्ञि न कालस्य नियमोऽत्र' पाठान्तर है॥ १२॥

राज्याभिषेक नक्षत्र

नक्षत्राणि—

कश्यपः—

[4]उत्तरात्रयमैत्रेंद्रधातृचंद्रकरोडुषु।
सुश्रुत्यश्वीज्यपौष्णेषु कुर्याद्राज्याभिषेचनम्॥ १३॥

ऋषि कश्यप ने बताया है कि तीनों उत्तरा, अनुराधा, ज्येष्ठा, रोहिणी, मृगशिरा, हस्त, श्रवण, अश्विनी, पुष्य और रेवती नक्षत्र में राज्याभिषेक करना चाहिये॥१३॥

---

१. मु. चि. ३३ प्र. ५ श्लो.। २. मु. चि. १० प्र. १ श्लो. पी. टी.।
३. मु. चि. १० प्र. १ श्लो. पी. टी.।
४. मु. चि. १० प्र. २ श्लो. पी. टी.।

चण्डेश्वरोपि—

[1]मैत्रं शाक्रं श्रवणः पुष्यस्त्रीण्युत्तराणि चाश्विकरैः।
पौष्णं प्राजापत्यं मृगशिर इति शोभने भगणः ॥ १४ ॥

आचार्य चण्डेश्वरजी ने बताया है कि अनुराधा, ज्येष्ठा, श्रवण, पुष्य, तीनों उत्तरा, अश्विनी, हस्त, रेवती, रोहिणी और मृगशिरा नक्षत्र में अभिषेक करना शुभ होता है ॥ १४ ॥

लग्न शुद्धि

वसिष्ठः—

[2]शीर्षोदये चोपचये गृहे वा स्वजन्मलग्नादथ लग्नगेपि।
शुभग्रहैर्युक्तनिरीक्षिते च स्थिरं पदं स्यात्सततं हि राज्ञाम् ॥ १५ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि शीर्षोदय लग्न में या लग्न या चन्द्रमा से उपचय राशि लग्न शुभग्रह से दृष्ट या युक्त होने पर राजा का अभिषेक करने पर सिंहासन सदा स्थिर होता है ॥१ ५ ॥

[3]त्रिकोणकेंद्रे त्रिधनेषु सौम्यैस्त्रिषष्ठलाभर्क्षगतैश्च पापैः।
षष्ठाष्टलग्नव्ययवर्जितेन चंद्रेण राज्ञां शुभदोभिषेकः ॥ १६ ॥

५।९।१।४।७।१०।३।२ में शुभग्रह, ३।६।११ में पापग्रह और ६।८।१।१२ में चन्द्रमा के न रहने पर राजा का अभिषेक शुभ होता है ॥ १६ ॥

[4]यस्याभिषेके पुरुहूतमंत्री लग्ने त्रिकोणे यदि वा भवेत्सः।
षष्ठः कुजः कर्मगतस्तु शुक्रः स मोदते विक्रमराजलक्ष्म्या ॥ १७ ॥

जिसके अभिषेक लग्न में गुरु त्रिकोण में, मंगल छटे और शुक्र दसवें भाव में होता है वह अपने पराक्रम व राजलक्ष्मी से प्रसन्न होता है ॥ १७ ॥

कश्यपः—

[5]त्रिलाभस्थौ सौरिसूर्यौ चतुर्थे चांबरे गुरौ।
यस्याभिषेकः क्रियते तत्र तस्य मही स्थिरा ॥ १८ ॥

ऋषि कश्यपजी ने बताया है कि जिसका अभिषेक लग्न से तीसरे, ग्यारहवें में शनि, सूर्य व चौथे या दसवें गुरु होने पर अभिषेक किया जाता है उसकी भूमि स्थिर होती है ॥ १८ ॥

श्रीपतिः—

[6]त्रिलाभसंस्थौ शशितिग्मरश्मी मेषूरणे बंधुगृहे गुरुश्च।
यस्यात्रयोगे क्रियतेऽभिषेकः संपत्स्थिरा तस्य चिरायुषः स्यात् ॥ १९ ॥

---

१. मु. चि. १० प्र. २ श्लो. पी. टी.।
२. व. सं. ३३ अ. ४ श्लो.।
३. व. सं. ३३ अ. ८ श्लो.।
४. व. सं. ३३ अ. ९ श्लो.।
५. मु. चि. १० प्र. ४ श्लो. पी. टी.।
६. मु. चि. १० प्र. ४ श्लो. पी. टी.।

आचार्य श्रीपतिजी ने बताया है कि जिसका अभिषेक लग्न से ३।१० वें सूर्य, चन्द्र और ४ या १० में गुरु की स्थिति वश होता है उसकी दीर्घायु और संपत्ति स्थिर होती है ॥ १९ ॥

वसिष्ठः—

[1]दुश्चिक्यलाभारिगता विनार्की खस्थोमरेज्यो यदि बंधुगेहे।
यस्यात्र योगे क्रियतेऽभिषेकः संपत्स्थिरा तस्य चिरायुषः स्यात् ॥ २० ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि जिसकी अभिषेक लग्न से शनि ३।११।६ स्थान को छोड़कर अन्य स्थान में होता है तथा दसवें में गुरु और चौथे में बुध होने पर अभिषेक होता है उस दीर्घायु राजा की सम्पत्ति स्थिर होती है ॥ २० ॥

सफल सिंहासन चक्र ज्ञान

अथ ज्योतिर्विदाभरणे सिंहासनचक्रम्—

[2]विरोचनाधिष्ठितभाद्भमण्डलं सिंहासनाधस्तलमध्यतो न्यसेत्।
सव्यापसव्योभयपार्श्वकोदितं तावत्तलस्थं भयुगं बलार्थहृत् ॥२१॥

अधोंशयुग्मे भचतुष्टयं वरं पश्चाद्विदिक्के तु युगे प्रमापणम्।
ताराचतुष्के भचतुष्कमिन्द्रदिग्ध्वजाश्रितं मण्डलकीर्तिवर्द्धनम् ॥२२॥

ततो भवेदासनपीठमध्यगं ताराद्वयं भीतिकरं प्रकीर्णयोः।
ज्योतिश्चतुष्कं जनयेद्धितं विभोश्चात्र श्रवांशर्क्षचतुष्टयं लयम् ॥२३॥

ताराात्रये च्छात्रविमालिसंस्थे पट्टाभिषेकान्नरदेवतः स्यात्
सम्राडतश्चेदिह चक्रवर्ती स्वराडपाये ननु छत्रयुक्स्थे ॥ २४ ॥

ज्योतिर्भिदाभरण में कहा है सूर्य जिस नक्षत्र में हो, उससे सिंहासन के नीचे तल भाग में प्रथम २ नक्षत्रों का न्यास करके पुनः वाम दक्षिण भाग में नक्षत्रों का न्यास आगे कही हुई रीति से करना चाहिये। जब सिंहासन के तल में अभिषेक नक्षत्र होता है तो राजा की सेना की क्षति, आसन के नीचे आगे के दोनों पावों में स्थित चार नक्षत्रों में हों तो शुभ श्रेष्ठता, पीछे के दोनों पावों में स्थित ४ में होने पर व्यापादन, पूर्व दिशा के ४ नक्षत्रों में होने से यश की अभिवृद्धि, आसन के मध्य में वर्तमान २ दो नक्षत्रों में होने से भय कारक, चँवरस्थ चार नक्षत्रों में शुभता, छत्र दण्डस्थ ४ नक्षत्रों में स्वामी की मृत्यु, छत्र शिखरस्थ ३ में राज्याभिषेक होने पर राजा सम्राट् अर्थात् १२ राजचक्र का स्वामी होता है। जब छत्रस्थ नक्षत्र शुभ से युक्त होने पर अभिषेक होता है तो सम्राट् चक्रवर्ती होता है ॥ २१-२४ ॥

---

१. व. सं. ३३ अ. १० श्लो.।

२. ज्यो० वि० १० अ० १४-१७ × २१-२४ श्लो०।

युवराज अभिषेक मुहूर्त

अथ युवराजाभिषेकः—

गणपतिः—

[1]युवराजाभिषेकः स्यादभिषेकोक्तमादिषु ॥ २५ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है कि राज्याभिषेक के नक्षत्र वारादि में युवराज का भी अभिषेक करना चाहिये ॥ २५ ॥

राज धर्म

राजधर्मः—

दुष्टस्य दण्डः सुजनस्य सेवा न्यायेन कोशस्य च संप्रवृद्धिः ।
अपक्षपातोर्थिषु राष्ट्ररक्षा पञ्चैव यज्ञाः कथिता नृपाणाम् ॥ २६ ॥

दुष्ट को दण्ड देना १, सज्जन की सेवा करना २, न्याय से कोष की वृद्धि करना ३, दान कार्य में पक्षपात न करना ४ और राष्ट्र की रक्षा करना ५ ये पांच राजाओं के यज्ञ होते हैं ॥ २६ ॥

गजकृत्य

अथ गजकृत्यम्—

वृहस्पतिः—

गजतुरगसमृद्धयै यच्च पुण्यं नराणां
तिथिकरणमुहूर्ते कर्म नक्षत्रवारे ।
ग्रहगतियुतयागैः सर्वमेवात्र सम्यक्-
समयमथ च वक्ष्ये रोगनाशाय शान्त्यै ॥ २७ ॥

ऋषि वृहस्पति ने कहा है कि मैं अब हाथी, घोड़ों की वृद्धि के लिये तथा उनके रोग नाशार्थ जो कर्म होता है, उसे तिथिवार नक्षत्र, ग्रहादियोगों से उत्तम समयादि समस्त को बता रहा हूँ ॥ २७ ॥

द्विरदवरकरोणां संग्रहार्थं धनार्थं
वचनगमनपूर्वो भानि वक्ष्यामि वज्रिन् ॥ २८ ॥

हे इन्द्र जिनका अर्थात् हाथी, हथिनी का मृगशिरा नक्षत्र में पूर्वार्ध परार्ध में उत्क्रम से अर्थात् पूर्वार्ध में हथिनी व परार्ध में हाथी का जन्म होता है। उनके संग्रहार्थ या धनार्थ जो गमन पहिले किया जाता है उसके मुहूर्त को बताता हूँ ॥ २८ ॥

---

१. मु० ग० १६ प्र० ७ श्लो० ।

श्रेष्ठ हाथी संग्रह दर्शन मुहूर्त

श्रवणसवितृपुष्या स्वातिपौष्णोत्तरापि
पितृवसुशक्रयोन्यामैत्रवैश्वांशकानि ।
सितगुरुशनिवारे सोमवारे च तिथ्यां
यदि दशमतृतीया सप्तमी पञ्चमी च ।
भवति शुभमुदारं दर्शनं संग्रहं वा
द्विरदवरकरीणां वैतथानां नराणाम् ॥ २९ ॥

श्रवण, पुनर्वसु, पुष्य, स्वाती, रेवती, ३ उत्तरा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, अनुराधा, उत्तराषाढ नक्षत्र, शुक्र, गुरु, शनि, सोमवार, दशमी, तृतीया, सप्तमी, पञ्चमी तिथि में श्रेष्ठ हाथियों का संग्रह व दर्शन शुभ होता है ॥ २९ ॥

हाथी के स्नान का मुहूर्त

स्नानारम्भे द्विपानामदितिहरिवसुस्वातिमैत्रोत्तराणि
त्वाष्ट्रं पौष्णं च तिष्यं पितृश्रवणतया पुष्टिभादंशुभांशे ।
रिक्तावर्जेषु सर्वेष्वपि तिथिषु तथा विष्टिवर्जेषु वारे
शुक्रेज्ञेनेन्दुजीवे स्थिरगृह उदये सौम्यलग्ने शुभं स्यात् ॥ ३० ॥

पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, स्वाती, अनुराधा, उत्तरा ३, चित्रा, रेवती, पुष्य, मघा, श्रवण नक्षत्र, बली राशि, शुभांश, रिक्ता रहित समस्ततिथि, भद्रा से हीन शुक्र, बुध, शनि, चन्द्र, गुरुवार, स्थिर राशि लग्न में शुभग्रह के रहने पर हाथियों को स्नान कराना चाहिये ॥ ३० ॥

हस्तिशाला का आरम्भ मुहूर्त

गुरौ शुभग्रहे लग्ने स्वर्गे वा स्वोच्चगे सिते ।
चन्द्रे केन्द्रत्रिकोणे वा द्विरदागारमारभेत् ॥ ३१ ॥

लग्न में गुरु या शुभ ग्रह होने पर या दसवें उच्चराशि में शुक्र की सत्तावश तथा त्रिकोण या केन्द्र में चन्द्रमा के रहने पर हाथी के घर (हस्तिशाला) बनाने का आरम्भ करना चाहिये ॥ ३१ ॥

स्वोच्चे स्वर्क्षेथवा जीवे शुक्रे वा लग्नगे विधौ ।
शुभेतरांशुगे भूयो द्विरदागारमारभेत् ॥ ३२ ॥

स्वोच्च या स्वराशि में गुरु; शुक्र के रहने पर या पाप ग्रह के नवांश में लग्नस्थ चन्द्रमा होने पर हाथी के मकान का प्रारम्भ करना चाहिये ॥ ३२ ॥

हस्तिशाला में प्रवेश का मुहूर्त

आर्द्रा ज्येष्ठोरगर्क्षैर्यमदहनयुतैः सत्रिपूर्वैः द्विवर्ज्यं
नक्षत्रे शोभनांशे शुभकरिणितया(?)विष्टिरिक्ता विवर्ज्या ।
वारे सौम्यग्रहाणां शुभसहितगृहे सन्मुहूर्ते त्रिकोणे
केन्द्रे सौम्यग्रहे वा सहपुजरि भवान्त्यायसंज्ञा यदि स्युः ॥३३॥

कालेस्मिन्नेव वज्रिन् बुधवरसदनप्रोक्तमंश प्रतिष्ठा-
युक्तं सम्यक्प्रवेशं वरकरिणवरैः सम्यगभ्यर्च्य विप्रैः ।
कृत्वाशीः स्वस्तिवाग्भिर्युतकरिसदनं संविशेद्यो नरेन्द्रः
तस्य श्र्यैश्वर्यमग्र्यमवति गजगणं वर्धते चारिनाशम् ॥ ३४ ॥

आर्द्रा, ज्येष्ठा, श्लेषा, उत्तरा फाल्गुनी, कृत्तिका, तीनों पूर्वा को छोड़ कर अन्य नक्षत्र, शुभ नवांश, भद्रा, रिक्ता को छोड़कर, शुभग्रह के वार, शुभ लग्न, शुद्ध मुहूर्त, त्रिकोण केन्द्र में शुभ ग्रह होने पर या ३।६।११।१२ में शुभ ग्रहों की स्थिति में ही विद्वानों ने अच्छे हाथी के घर में प्रवेश करना प्रतिष्ठा युक्त बताया है। जो कि राजा ब्राह्मणों का अच्छी रीति से पूजन करके उनके आशीर्वाद ग्रहण कर स्वस्तिक वाणियों के साथ घर में प्रवेश करता है उसकी लक्ष्मी ऐश्वर्य की वृद्धि और हाथी समुदाय आगे होकर शत्रु का विनाश करता है ॥ ३३-३४ ॥

गजाश्व घर प्रारम्भ व खूँटा लगाने का मुहूर्त

राहौ मन्दांशके लग्ने गजाश्वागारमारभेत् ।
आलानां च प्रवेशं च कुर्यात्तेषां विवृद्धये ॥ ३५ ॥

शनि के नवांश में लग्नस्थ राहु के होने पर हाथी, घोड़ों के मकान बनाना तथा उनकी वृद्धि के लिये खूंटा लगाना शुभ होता है ॥ ३५ ॥

पुच्छ से हीन पञ्चगव्य का निक्षेपण

केतोः मंदांशके लग्ने मुखपुच्छविवर्जिते ।
गोगजाश्वगृहे मध्ये पञ्चगव्यं विनिक्षिपेत् ॥ ३६ ॥

शनि के नवांश में लग्नस्थ मुख पुच्छ से हीन केतु होने पर गाय, हाथी, घोड़ों के घर में पञ्चगव्य का प्रक्षेपण करना चाहिये ॥ ३६ ॥

हाथी के घर में प्रवेश का मुहूर्त

शुभः केन्द्रे त्रिकोणे वा शुभर्क्षेषु शुभांशके ।
त्रिषडेकादशे पापे गजागारं प्रवेशयेत् ॥ ३७ ॥

प्रवेश लग्न से केन्द्र, त्रिकोण में शुभग्रह के होने पर या शुभ राशि, शुभ नवांश होने पर तथा ३।६।११ में पापग्रह की स्थिति में गजशाला में प्रवेश करना चाहिये ॥ ३७ ॥

तिथिनक्षत्रवारेषु शुभेषु शुभगोदये ।
त्रिधा केन्द्रशुभैर्दृष्टे द्विपागारप्रवेशनम् ॥ ३८ ॥

या शुभ तिथि, वार, नक्षत्र में शुभ राशिस्थ लग्न में और केन्द्र शुभग्रह से दृष्ट होने पर हाथी के घर में प्रवेश करना चाहिये ॥ ३८ ॥

श्रवणशशिविशाखरोहिणीपौष्णमैत्रें
गुरुनिहितशुभांशे जीवलग्ने भवेर्कः ।
यदि गुरुसितवारे शोभनाख्ये तिथौ च
द्विपसदननिवेशः शोभने चैव वज्रिन् ॥ ३९ ॥

या श्रवण, मृगशिरा, विशाखा, रोहिणी, रेवती और अनुराधा नक्षत्र में, गुरु के नवांश में, लग्नस्थ गुरु व ग्यारहवें सूर्य में, गुरु, शुक्रवार में, शुभतिथि में हाथी के घर में प्रवेश करना चाहिये ॥ ३९ ॥

हाथी के समस्त कामों का मुहूर्त

[1]ज्योतिर्विदाभरणे

लघूडुचित्रादितिमातरिश्वभैरशेषकर्माणि गदन्ति कुम्भिनः ।
चराचरर्क्षेशयुतोडुभिश्च ध्वजक्रियावारणधिष्ण्यकर्म ॥ ४० ॥

ज्योतिर्विदाभरण में कहा है कि हाथी के सब काम जैसे ध्वज क्रिया, पताकादि रोपण, अम्बरी स्थापन, लघुसंज्ञक नक्षत्र, चित्रा, पुनर्वसु, स्वाती, चर व अचर संज्ञक, आर्द्रा, पुष्य नक्षत्र में करना चाहिये ॥ ४० ॥

गजचक्र ज्ञान

सोमोद्भवस्य(?) इनयुतोडुलिखेद्भान्यन्तरे त्रीण्यनुमूर्द्धपिण्डयोः ।
तत्सन्धिनी दण्डगतं च भत्रयं भानां द्वयं तुण्डगतं हृदि त्रयम् ॥४१॥
[2]ताराचतुष्कं च ततोग्रपादयोः सदापराध्र्योर्भचतुष्टयं लिखेत् ।
चतुष्टयं लूनलतागतं करे चतुष्टयं पृष्ठगमिन्दुयोषिताम् ॥४२॥

ज्योतिर्विदाभरण में कहा है कि सूर्य के नक्षत्र से ३ तीन नक्षत्र हाथी के कन्धों के बीच में, पुनः ३ तीन सूँड़ में, फिर २ नक्षत्र मुख में, इसके बाद ३ हृदय में, पुनः आगे के ४ नक्षत्र पैरों में, फिर ४ पीछे के पैरों में, ततः ४ नक्षत्र पूँछ में, पुनः ४ नक्षत्र पीठ पर न्यास करने चाहिये ॥ ४१–४२ ॥

गजचक्र नक्षत्रों का फल

[3]शुण्डादण्डे कुम्भयोराविलोक्यं वक्त्रे तास्याच्छं हृदि व्याधिरंघ्रयोः ।
पश्चादंघ्रयोर्भीतिरस्तातिलूने पृष्ठे व्याधिः कुम्भिनो शेषकृत्ये ॥४३॥

हाथी की सूँड़ या कन्धों में चन्द्र नक्षत्र होने पर राजद्रव्य या लक्ष्मी, मुख में होने पर मृत्यु, वक्षस्थल में सुख, आगे के पैरों में रोग, पीछे के पैरों में भय, मुँह में मरण और पीठ के नक्षत्रों में चन्द्र नक्षत्र होने पर रोग होता है। इस प्रकार हाथी के समस्त कार्यों में इसका विचार करना चाहिये ॥ ४३ ॥

---

१. १० अ० ३ श्लो० ।
२. ज्यो० वि० १० अ० ३३ श्लो० ।
३. ज्यो० वि० १० अ० ३४ श्लो० ।

गजबन्ध मुहूर्त

"तिर्यग्वक्त्रैर्भैरिनैनीज्यविद्भिः कुम्भिज्योतिःशुद्धिगैर्वेह शस्तः।
धीरे लग्ने शुद्धकेन्द्रत्रिकोणे सन्नाहच्यालोपवाह्यादि बन्धः ॥४४॥

ज्योतिर्विदाभरण में कहा है कि तिर्यक मुखसंज्ञक नक्षत्र, सूर्य, शनि, गुरु, बुधवार, गजचक्र से शुद्ध नक्षत्र में तथा केन्द्र त्रिकोण शुद्धि व धीर लग्न में समान आभा वाले मद से उन्मत्त हाथी का बन्धन शुभ होता है ॥ ४४ ॥

अथ गजस्यांकुशः—

हाथी पर अंकुश प्रयोग

शुभवारे शुभे लग्ने शुभांशे शोभने तिथौ।
अङ्कुशाः करिणां योज्याः शनेर्लग्ने शनेर्दिने ॥ ४५ ॥

शुभवार, शुभलग्न, शुभनवांश, शुभतिथि में विशेषतः शनि की लग्न और शनिवार में हाथी पर अंकुश का प्रयोग करना चाहिये ॥ ४५ ॥

अथाश्वकृत्यम्—

बृहस्पतिः—

'गजतुरगसमृद्ध्यै यत्पुराणां नराणाम्'

इति ॥ ४६ ॥

तुरगजननमेवं पुंस्त्रियोरश्विनापि शतभिषजशुभांशे स्वेषु भेषु क्रमेण ॥४७॥
अथ हयवरकर्माथ प्रवक्ष्यामि वज्रिन् सकलगुणनिधिः स्याद्येन वोच्चैर्नृपाच्च।
अखिलनृपहतायाग्वायुषे सम्पदं च समरभुवि विजयायोतभेनुग्रहाय ॥४८॥

अब अश्वकृत्य (घोड़ों सम्बन्धी कार्य) कहा जाता है। जैसा कि बृहस्पति ने कहा है—'मनुष्यों की, नगरों की, हाथियों और घोड़ों की वृद्धि के लिये' आदि ॥ ४६ ॥

इसप्रकार घोड़े की उत्पत्ति अश्विनी नक्षत्र में और घोड़ी की उत्पत्ति शतभिषा नक्षत्र की उत्तम मानी जाती है ॥ ४७ ॥

हे इन्द्र ! अब श्रेष्ठ घोड़ों के लक्षणादि कहूँगा जिससे उस घोड़े का स्वामी सम्पूर्ण गुणों से युक्त और श्रेष्ठ राजा होता है सम्पूर्ण शत्रु राजाओं को परास्त करने के लिये, वाणी और सम्पत्ति के लिये, युद्धभूमि में विजय के लिये तथा श्रेष्ठजनों पर अनुग्रह के लिये ॥ ४८ ॥

घोड़ा संग्रह मुहूर्त

तिथिनक्षत्रवारेषु शुभेषु कथितेषु च।
हयसङ्ग्रहणं कुर्याद्वध्वारोहणमेव च ॥ ४९ ॥

कथित शुभ तिथि, नक्षत्र, वार में घोड़ों का संग्रह व वध्वारोहण करना चाहिये ॥ ४९ ॥

---

५. ज्यो० वि० १० अ० ३६ श्लो०।

घुड़साल का आरम्भ व प्रवेश

चरयोगेषु सर्वेषु तुरगागारमारभेत् ।
तेषां स्थानप्रवेशो च स्थिरराशो शुभेक्षिते ॥ ५० ॥

समस्त चर योगों में अश्वशाला का प्रारम्भ और शुभदृष्ट स्थिर लग्न में उसमें प्रवेश करना चाहिये ॥ ५० ॥

पापनक्षत्रसर्वेषु नक्षत्रेष्वखिलेषु च ।
शुभवारतिथिष्वेव शुभलग्ने शुभं भवेत् ॥ ५१ ॥

समस्त पाप नक्षत्रादि में प्रारम्भ किया अश्वकृत्य अशुभ और शुभवार तिथि लग्नादि में शुभ होता है ॥ ५१ ॥

हय संग्रह दर्शनादि मुहूर्त

हयानां संग्रहं कुर्याद्वान्यानां चैव संग्रहम् ।
दर्शनारोहणं कुर्याद्गृहारम्भप्रवेशनम् ॥ ५२ ॥

सब पाप नक्षत्र तथा समस्त नक्षत्रों में, शुभवार, तिथि, लग्न में घोड़ों का संग्रह तथा वन के पशुओं का भी और दर्शन, आरोहण (चढ़ना) तथा घर में प्रवेश करना शुभ होता है ॥ ५२ ॥

हय दवा मुहूर्त

मूर्द्धोदयं शुभसुहृद्युतवीक्षितं वा
श्राणाश्विनीशतभिषाशकटानिलेषु ।
सौम्ये तिथौ गुरुसितेन्दुजवारयोगे
कुर्याद्धयो भिषग औषधकर्म सर्वम् ॥ ५३ ॥

जब कि शीर्षोदय लग्न, शुभ, मित्र ग्रह से दृष्ट या युत हो तथा श्रवण, अश्विनी, शतभिषा, रोहिणी, स्वाती नक्षत्र में सौम्य तिथि में, गुरु, शुक्र, बुधवार में घोड़े की दवा का कार्य करना चाहिये ॥ ५३ ॥

लग्न शुद्धि

केन्द्रत्रिकोणके जोवे भवारिभ्रातृगे यमे ।
शुभनक्षत्रगे चन्द्रे हयकर्माखिलं शुभम् ॥ ५४ ॥

जब कि केन्द्र या कोणस्थ गुरु हो व ११।८।३ में शनि और शुभ नक्षत्र में चन्द्रमा हो तो घोड़े का सब काम करना चाहिये ॥ ५४ ॥

अश्वशाला निर्माण में लग्न

चापलग्नं शुभं प्रोक्तं हयानां वेश्मनिर्णये ।
प्रवेशलग्नगे चन्द्रे द्वितीये देवमन्त्रिणा ॥ ५५ ॥

घोड़ों के घर निर्माण में धनु लग्न शुभ और प्रवेश में लग्न में चन्द्र व दूसरे भाव में गुरु हो तो शुभ होता है ॥ ५५ ॥

अश्वकर्म मुहूर्त

[६]ज्योतिर्विदाभरणे —

दाक्षायण्युर्येन्द्रसूवान्तभान्त्यक्षिप्रार्णयोडुश्च विष्टासुघोराः।
लग्नाल्लोलान् त्र्यायकेन्द्रस्य सौम्येराजानेयाद्यश्वकर्माण्यथाहुः ॥५६॥

कालिदास ने कहा है कि चर लग्न में ३।११।१।४।७।१० में शुभ ग्रह होने पर, मृगशिरा, पुनर्वसु, स्वाती, रेवती, क्षिप्रसंज्ञक, शतभिषा, श्रवण, धनिष्ठा नक्षत्र में कुम्भी घोडाओं का काम पण्डितों ने करना बताया है ॥ ५६ ॥

नारदः—

विविष्णुचरभे क्षिप्रे मृदुभे स्थिरभेषु च।
वाजिकर्माखिलं सूर्यवारे कार्यं विशेषतः ॥ ५७ ॥

ऋषि नारदजी ने बताया है कि श्रवण रहित चर संज्ञक व क्षिप्र, मृदु, स्थिर संज्ञा वाले नक्षत्रों में व रविवार में घोड़ों का समस्त कार्य करना चाहिये ॥ ५७ ॥

भक्षण स्नान मुहूर्त

घृतान्नचणकाक्षीरतृणमुद्गादि भक्षणे।
अन्नप्राशनवद्दृश्यं स्नानं सौम्यग्रहोदये ॥ ५८ ॥

अन्न प्राशन के नक्षत्रों में घोड़े को घृत, अन्न, चना, दूध, तिनका (घास) मूंग आदि भक्षण और शुभ ग्रह की लग्न में स्नान कराना चाहिये ॥ ५८ ॥

क्षौर, दवा, गर्भाधान मुहूर्त

चौलोक्तं क्षुरकर्मादी भेषजे भेषजोदितम्।
गर्भाधानोक्तमश्वानां मैथुने तु विलोकयेत् ॥ ५९ ॥

घोड़ों के बाल कटाने में चौलोक्त, दवा में भेषजोक्त और मैथुन में गर्भाधानोक्त नक्षत्रादि का प्रयोग करना चाहिये ॥ ५९ ॥

शाला शिक्षा, भूषणादि मुहूर्त

गृहारम्भोदिते काले हयशाला विधीयते।
शिक्षाविद्योक्तकाले च भूषणं भूषणोदिते ॥ ६० ॥
चर्मकर्मादिकं कार्यं जययोगे शुभोदये।
एवं खरोष्ट्रादिकं कार्यं पूर्वाह्णे वाहनादिकम् ॥ ६१ ॥

घर बनाने में जो काल कहा है, उसमें घुड़शाल बनाना, विद्यारम्भ में कथित नक्षत्रादि में शिक्षण और अलङ्कारोक्त कथित नक्षत्रादि में भूषण, शुभ लग्न व जय योग में चमड़ा सम्बन्धी काम करना चाहिये। इसी प्रकार गधा व ऊँट सम्बन्धी काम और पूर्वोक्त में वाहनादि का कार्य शुभ होता है ॥ ६०-६१ ॥

---

६. १०अ० ३७ श्लो०।

हाथी, घोड़ा, रथ पर चढ़ने का मुहूर्त

देवज्ञमनोरञ्जने—

पौष्णाश्विनीपवनवारुणशीतरश्मिश्चित्रादितिश्रवणशक्रसुरेज्यधिष्णे ।
वारे च जीवशशिसूर्यसितेन्दुजानामारोहणं गजतुरङ्गरथेषु शस्तम् ॥६२॥

दैवज्ञमनोरञ्जन में कहा है कि रेवती, अश्विनी, स्वाती, शतभिषा, मृगशिरा, चित्रा, पुनर्वसु, श्रवण, ज्येष्ठा, पुष्य नक्षत्र, गुरु, चन्द्रमा, सूर्य, शुक्र, बुधवार में हाथी घोड़ा रथ पर चढ़ना शुभ होता है ॥ ६२ ॥

तदन्यः—

रेवतीयुगले हस्तत्रये कर्णत्रये मृगे ।
पुनर्वसुद्वये कुर्याच्छनिभौमान्यवासरे ॥ ६३ ॥
गजाश्वरथमुख्यानामारोहं च शुभे तिथौ ॥ ६४ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि रेवती, अश्विनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य नक्षत्र, शनि, मंगल से भिन्न वार और शुभ तिथि में हाथी, घोड़ा, रथ पर चढ़ना चाहिये ॥ ६३-६४ ॥

अश्व शान्ति

अथाश्वशान्तिः—

भूपतेर्यस्य संत्यश्वाः स राजा विजयी रणे ।
श्रीमान्स एव तत्तस्मात्कार्यमश्वाभिरक्षणम् ॥ ६५ ॥

जिस राजा के घोड़े होते हैं, वही युद्ध में विजय प्राप्त करता है तथा वही धनवान् होता है । इसलिये घोड़ों की रक्षा करनी चाहिये ॥ ६५ ॥

सूर्ये स्वात्यर्क्षसंपाते जायंते बहवो रुजः ।
यदा यदा रोगजनमश्वानामथवा तदा ॥ ६६ ॥
सलोकपालं रेवंतं पूजाहोमं च कारयेत् ।

जब स्वाती नक्षत्र में सूर्य होता है तो घोड़ों को अधिक रोग उत्पन्न होते हैं तो लोकपाल के साथ रेवन्त देवकी पूजा व हवन करना चाहिये ॥ ६६-६६½ ॥

स मुहूर्त पूजा विधि

भानुवारे च संक्रान्तावयने विषुवद्वये ॥ ६७ ॥
दिनक्षये व्यतीपाते द्वादश्यामश्विभेपि वा ।
ऐशान्यामष्टभिर्हस्तैश्चतुर्भिर्वाथ मंडपम् ॥ ६८ ॥
चतुर्द्वारं वितानस्रक्तोरणाद्यैरलंकृतम् ।
तन्मध्ये वेदिका तस्य पंचविंशतिमांशतः ॥ ६९ ॥
मंडपस्य बहिः कुण्डं प्राच्यां पूर्वोक्तलक्षणम् ।
वरयेत्पूर्ववद्विप्रान्स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ ७० ॥

सूर्यपुत्रं हयारूढं पंचवक्त्रं दशांबकम्।
रक्तवर्णांकुशाखड्गैरेवंतं द्विभुजं स्मरेत् ॥ ७१ ॥

रविवार, अयन, विषुव, संक्रान्ति, दिनक्षय, व्यतीपात, द्वादशी वा अश्विनी में पूँजा करना चाहिये।

घर के ईशान कोण में आठ या चार हाथ का चतुरस्र मंडप चार दरवाजों वाला बनवाकर उसे चंदोवा (चांदनी) माला, तोरणादि से सजाकर उसके बीच में २५वें भाग तुल्य वेदी बनवानी चाहिये तथा पूर्वोक्त लक्षग से युत मंडप के बाहर कुण्ड बनवाकर स्वस्तिवाचन पूर्वक ब्राह्मणों का वरण करके घोड़े पर सवार, पाँच मुख और दस आँखों वाली लाल रंग की अंकुश खड्ग से युक्त दो हाथ वाली सूर्य पुत्र रेवन्त की मूर्ति का स्मरण करना चाहिये ॥ ६६½-७१ ॥

नमस्कार पूजन मन्त्र

सूर्यपुत्र नमस्तेस्तु नमस्ते पंचवक्त्रक।
नमो गंधर्वदेवाय रेवंताय नमोनमः ॥ ७२ ॥

हे सूर्य पुत्र तुम्हें, हे पाँच मुख वाले तुम्हें प्रणाम है तथा हे गन्धर्व देव तुम्हें और रेवन्त पुरुष को नमस्कार है ॥ ७२ ॥

पूजा प्रकार

मंत्रेणानेन रेवंतं गंधवस्त्राक्षतादिभिः।
विधिवद्वेदिकामध्ये तंडुलोपरि पूजयेत् ॥ ७३ ॥
परितः स्वस्वमंत्रैस्तान् लोकपालांश्च पूजयेत्।
प्राग्वदंगजयोर्मध्ये देवं तस्य समीपतः ॥ ७४ ॥
ऋग्वेदादियजुर्वेदान्याये द्वारेषु पूर्वतः।
पूर्णकुंभान्रक्तवर्णान्गन्धवस्त्राद्यलंकृतान् ॥ ७५ ॥
द्वारे संस्थाप्य चालिंगैर्मंत्रैः कार्यं समर्चनम्।
रेवंतपूजामाचार्यः कृत्वा गृह्यविधानतः ॥ ७६ ॥
स्थापयेत्तं व्याहृतिभिस्तस्मिन्कुंडे हुताशनम्।
ततस्तत्राज्यभागांते मुख्याहुतिमतंद्रितः ॥ ७७ ॥
आग्नेयेति स्वाहेति हुत्वा घृतेनादौ प्रयत्नतः।
रेवंतपूजामंत्रेण आद्यंतप्रणवेन च ॥ ७८ ॥
पालाशसमिधाज्यान्नैः पृथगष्टोतरं शतम्।
आचार्यो जुहुयाद्व्रीहीन् तिलान्व्याहृतिभिस्ततः ॥ ७९ ॥
एकरात्रं त्रिरात्रं वा नवसप्तमथापि वा।
अनेन विधिना कुर्यादेकभक्तो जितेंद्रियः ॥ ८० ॥

जपादिपूर्वकं सम्यक् कर्ता पूर्णाहुतिं नयेत् ।
ततो मंगलघोषैश्च नैवेद्यं च समर्पयेत् ॥ ८१ ॥
ततस्तद्घृतशेषेण सहकुंभोदकेन च ।
प्रदक्षिणं व्रजेदश्वान्स प्रीतो बलिमुत्तमम् ॥ ८२ ॥
जीमूतस्येत्यनूवाकान् चतुरो दिक्षु निक्षिपेत् ।
आचार्याय ततो दद्याद्दक्षिणां गोचतुष्टयम् ॥ ८३ ॥
तदर्धं वा तदर्धं वा यथा वित्तानुसारतः ।
ब्राह्मणेभ्यो याचकेभ्य आचार्यार्द्धं प्रदापयेत् ॥ ८४ ॥
ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाच्छांतिवाचनपूर्वकम् ।
एवं यः कुरुते सम्यगश्वशांतिमनुत्तमाम् ॥ ८५ ॥
मुच्यते सर्वरोगेभ्यो वर्द्धते नात्रसंशयः ।
ऐश्वर्यं चिरलक्ष्मीं च लभते सर्वदा नृपः ॥ ८६ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन त्विमां शांतिं समाचरेत् ॥ ८७ ॥

उक्त मन्त्र द्वारा चावलों के ऊपर वेदी के मध्य में विराजमान रेवन्त देव की विधिपूर्वक गन्ध, वस्त्र, अक्षतादि से पूजा करनी चाहिये। और प्रधानदेव के चारों तरफ विराजमान लोकपालों की उनके मन्त्रों से पूजा करनी चाहिये। पूर्व की भाँति अंगजों के मध्य स्थित दरवाजों पर तथा पूर्व दिशा क्रम से ऋग्वेदादिवेत्ता द्वारपालों की स्थापना करके लालवर्ण के कलशों को गन्धवस्त्रादि से सुसज्जित करने के पश्चात् दरवाजों पर रखकर 'अलिङ्ग' मन्त्र से सुन्दर रीति से पूजा करनी चाहिये। आचार्य को रेवन्त देवता की अपने गृह्यसूत्र के विधान से करके व्याहृतियों से उस कुण्ड में अग्नि की स्थापना करने के पश्चात् चेतन्य होकर आज्य भागपर्यन्त हवन करना। प्रथम घी द्वारा 'अग्नये स्वाहेति मन्त्र से आहुति देकर पीछे रेवन्त के पूजा मन्त्र से आदि अन्त में प्रणव के साथ तथा ढाक की समिधा, घी, अन्न से अलग १०८ आहुति करनी चाहिये। आचार्य को चावल, तिल द्वारा व्याहृतियां से हवन करके पीछे एक दिन या ३ दिन या ७ सात या ९ दिन एक समय भोजन करके इन्द्रियों के संयम के साथ उक्त रीति से जपादि पूर्वक पूजन करने के बाद पूर्णाहुति देकर मंगल शब्दों के सहित नैवेद्य का समर्पण करना चाहिये।

इसके हवन से अवशिष्ट घी और कुंभ के जल से प्रदक्षिणा करने से उत्तम बलि होने के नाते वह देव प्रसन्न होता है। और जीमूत के अनुवाकों को चारों दिशा में निक्षेप करने के अनन्तर आचार्यजी को ४ या २ या १ एक गाय अपने वित्त के अनुसार देनी चाहिये। और याचक (मांगने वाला) ब्राह्मणों को आचार्य की आधी दक्षिणा देकर पीछे स्वस्तिवाचन पूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार जो अनुत्तम घोड़ों की शान्ति करता है उस राजा के घोड़ों का रोग दूर होकर उनके

स्वास्थ्य की वृद्धि होती है तथा वह ऐश्वर्य व चिरलक्ष्मी को सदा प्राप्त करता है। इसलिये समस्त प्रयत्नों से इनकी शान्ति करनी चाहिये ॥ ७३–८७ ॥

रथ कर्म मुहूर्त

अथ रथकृत्यम्—

गणपतिः —

[1]पुष्ये पुनर्वसुज्येष्ठानुराधारेवतीद्वये ।
श्रवणादित्रये हस्ततृतीये रोहिणीमृगे ॥ ८८ ॥
सार्के सौम्यदिने शस्तविलग्ने रथकर्म सत् ॥ ८९ ॥

मुहूर्त गणपति में कहा है कि पुष्य, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, रेवती, अश्विनी, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, हस्त, चित्रा, स्वाती, रोहिणी, मृगशिरा नक्षत्र, सूर्य, शुभवार, प्रशस्त लग्न में रथकार्य करना चाहिये ॥ ८८–८९ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते संग्रहे बृहद्वज्ञरंजनेद्व्यशीतितमं राज्याभिषेकप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र पं० रामदीनजी द्वारा रचित-बृहद्वज्ञरञ्जनसंग्रहग्रन्थ का राज्याभिषेक नामवाला वयासीवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥८२॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर-चतुर्वेद कृता बृहद्वज्ञरञ्जनसंग्रहग्रन्थस्य द्व्यशीतितमप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्तिमगात् ॥ ८२ ॥

अथ त्र्यशीतितमं देवप्रतिष्ठा प्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे तिरासीवें प्रकरण में विभिन्न देवताओं की प्रतिष्ठा किस काल में करनी चाहिये, इसे विविध वाक्यों से बताते हैं ।

प्रथमतः देवताघटनम् ।

प्रथमा देवता की मूर्ति वनवानी चाहिये ।

देव स्थापना मुहूर्त

देवादिप्रतिष्ठाप्रकरणं च ।

दीपिकायाम्—

[2]ध्रुवमृदुलघुवर्गे वारुणे विष्णुदेवे मरुददितिधनिष्ठे शोभने वासरे च ।
त्रिदशमदनजन्मैकादशे शीतरश्मौ विबुधसुकृतिरिष्टा नाडिनक्षत्रहीने ॥१॥

---

१. मु. ग. ११ प्र. ८४–८५ श्लो. ।

२. मु. चि. २ प्र. ६० श्लो. पी. टी. ।

दीपिका में कहा है कि ध्रुव, मृदु, लघु संज्ञक, शतभिषा, श्रवण, स्वाती, पुनर्वसु, धनिष्ठा नक्षत्र और नाडिक नक्षत्र से हीन शुभवार में लग्न से ३।१०।७।१।११ में चन्द्रमा के रहने पर देव स्थापना शुभ होती है ॥ १ ॥

नाडिनक्षत्राणि – वैनाशिकनक्षत्राणि ।

नाडिक नक्षत्र वैनाशिक नक्षत्र को कहते हैं ।

ग्रन्थान्तर से प्रतिष्ठा मुहूर्त

वसिष्ठः —

[1]अथ प्रतिष्ठां कथयामि सम्यक् शिवस्य विष्णोस्त्वथवा परेषाम् ।
सौम्यायने देवगुरौ च शुक्रे संदृश्यमाने परिचारकाणाम् ॥ २ ॥

ऋषि वसिष्ठजी बता रहे हैं कि मैं अब सुन्दर रीति से शिव व विष्णु अथवा अन्य देवों की प्रतिष्ठा के मुहूर्त को बता रहा हूँ । प्रतिष्ठा उत्तरायण तथा शुक्र गुरु के दीखने पर करना चाहिये ॥ २ ॥

उत्तरायण विधान

गुरुरपि—

उत्तरायणगे सूर्ये प्रतिष्ठा शोभना भवेत् ।
दक्षिणायनगे भानौ प्रतिष्ठा नैव शोभना ॥ ३ ॥

बृहस्पति जी ने बताया है कि उत्तर अयन में सूर्य के रहने पर प्रतिष्ठा शुभ और दक्षिण अयन में सूर्य होने पर शुभ नहीं होती है ॥ ३ ॥

अत्र सौम्यप्रकृतीनां देवानामुत्तरायणे स्थापनमुक्त्वा
उग्रप्रकृतीनां दक्षिणायनेपि स्थापनं • कार्यम् ।

यहाँ पर सौम्य प्रकृति वाले देवों की उत्तरायण में स्थापना शुभ बताकर उग्र प्रकृति देवों की दक्षिणायन में भी करनी चाहिये ऐसा वैखानस संहिता में कहा है ॥

उग्र स्वभावी देवों की प्रतिष्ठा का मुहूर्त

तदुक्तं वैखानससंहितायाम्—

[2]मातृभैरववाराहनारसिंहत्रिविक्रमाः ।
महिषासुरहंत्री च स्थाप्या वै दक्षिणायने ॥ ४ ॥

वैखानस संहिता में कहा है कि मातृका, भैरव, वराह, नृसिंह, त्रिविक्रम और महिषासुर मर्दिनी (दुर्गा) की दक्षिणायन में प्रतिष्ठा करना चाहिये ॥ ४ ॥

[3]शैवसिद्धांतशेखरे तु—

श्रेष्ठोत्तरे प्रतिष्ठा स्यादयने मुक्तिमिच्छता ।
दक्षिणे तु मुमुक्षूणां मलमासे न सा द्वयोः ॥ ५ ॥

---

१. व. सं. ४० अ. १ श्लो. । २. मु. चि. २ प्र. ६० श्लो. पी. टी. ।
३. मु. चि. २ प्र. ६० श्लो. पी. टी. ।

शैवसिद्धान्त शेखर में बताया है कि मुक्त होने की इच्छा होने पर उत्तरायण में प्रतिष्ठा श्रेष्ठ और मुमुक्षुओं को दक्षिणायन में करनी चाहिये तथा मलमास (अधिक मास) में दोनों को नहीं करनी चाहिये ॥ ५ ॥

अत्र देवताविशेषस्य मासविशेषेण प्रतिष्ठामप्याह ।

यहाँ पर देव विशेष के मास भी अर्थात् भिन्न देव की भिन्न मासों में प्रतिष्ठा करना बताया जा रहा है ।

देव विशेषों के शुभ मास

गणपतिः—

[1]याम्यायनेपि वाराहमातृभैरववामनान् ।
महिषासुरहंत्रीं च नृसिंहं स्थापयेद्बुधः ॥ ६ ॥
श्रावणे स्थापयेल्लिंगमाश्विने जगदंबिकाम् ।
मार्गशीर्षे हरिं चैव सर्वान्पौषेपि केचन ॥ ७ ॥

मुहूर्तगणपति में बताया है कि वाराह, माता, भैरव, वामन, दुर्गा और नृसिंहजी की प्रतिष्ठा दक्षिणायन में भी शुभ होती है ।

सावन मास में शिव, क्वार में दुर्गा, अगहन में हरि और किसी के मत में पौष मास में सब की प्रतिष्ठा शुभ होती है ।

यहाँ आचार्य गणपति ने सब देवों की पौष में करना किसी के पक्ष में कहा है । अतः उसे बताते हैं ॥ ६–७ ॥

पौष में शुभ स्थापना

सार्वान् पौषेपि केचनेति गणपतिना सर्वेषां पूर्वोक्तानां पौषेपि स्थापनमिति केषांचिन्मतमाह ।

तदुक्तं बृहस्पतिना—

सर्वेषां पौषमाघौ द्वौ विबुधस्थापने शुभौ ॥ ८ ॥

बृहस्पतिजी ने बताया है कि समस्त देवों को पौष, माघ इन दो मासों में प्रतिष्ठा शुभ होती है ॥ ८ ॥

अत्र मासविशेषेषु देवानां स्थापने फलविशेषमप्याह ।

यहाँ मास विशेषों में देव स्थापन का फल भी बता रहे हैं ।

१२ मासों में प्रतिष्ठा का फल

बृहस्पतिः—

पौषे राज्यविवृद्धिः स्यान्माघे मासे तु संपदः ।
फाल्गुने द्रव्यलाभाय चैत्रे मासि श्रियावहम् ॥ ९ ॥

---

१. मु. ग. २० प्र. १२–१३ श्लो. ।

अतीवसौख्यं वैशाखे ज्येष्ठे मासे जयावहः ।
आषाढे स्थापितो देवो यजमानविनाशनः ॥ १० ॥
सौरमासेन विज्ञेया श्रावणे राज्यराष्ट्रहा ।
भाद्रपदे महीनाशं चाश्वयुज्यपि राज्यहा ॥ ११ ॥
कार्तिके शत्रुवृद्धिः स्यान्मार्गशीर्षे तथैव हि ॥ १२ ॥
सर्वेषामेव जातीनां वसंतः शोभनो भवेत् ।
विशेषादभिषिक्तस्य नृपस्य शुभदस्तथा ॥ १३ ॥

आचार्य बृहस्पति जी ने बताया है कि पौष में प्रतिष्ठा करने पर राज्य की विशेष वृद्धि, माघ में संपत्ति, फागुन में द्रव्यलाभ, चैत में श्री, वैशाख में प्रचुर सुख, जेठ में विजय, आषाढ में यजमान का नाश, सावन में राष्ट्र की हानि, भादों में भूमि विनाश, आश्विन में राज्य हानि, कार्तिक में शत्रु की वृद्धि और अगहन में देव स्थापना से शत्रु की ही वृद्धि होती है। यहाँ मास और मान से ग्रहण करना चाहिये तथा सब जाति वालों को वसंत ऋतु में प्रतिष्ठा करना शुभ होता है ॥ ९–१३ ॥

शुभ पक्ष ज्ञान

अथ पक्षः—

वसिष्ठेनोक्तः—

[१]वलक्षपक्षः शुभदः समस्तः सदैव तत्राद्यदिनं विहाय ।
अंत्यत्रिभागं परिहृत्य कृष्णपक्षोपि शस्तः खलु पक्षयोस्तु ॥ १४ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन को छोड़कर समस्त शुक्ल पक्ष में तथा कृष्ण पक्ष के अन्तिम तृतीयांश का त्यागकर कृष्ण पक्ष में प्रतिष्ठा शुभ होती है ॥ १४ ॥

शुभ तिथि ज्ञान

अथ तिथीनाह—

नारदः—

[२]यद्दिनं यस्य देवस्य तद्दिने तस्य संस्थितिः ।
द्वितीयादि द्वयोः पंचम्यादितस्तिसृषु क्रमात् ॥ १५ ॥
दशम्यादेश्चतसृषु पौर्णमास्यां विशेषतः ॥ १६ ॥

ऋषि नारदजी ने बताया है कि जिस देवता का जो दिन हो उसमें प्रतिष्ठा शुभ होती है तथा द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, तेरस और पूर्णिमा में विशेषकर प्रतिष्ठा शुभ होती है ॥ १५–१६ ॥

---

२. व. सं. ४० प्र. ४ श्लो. ।

गुरुरपि—

द्वितीया च तृतीया च पंचमी सप्तमी तथा।
त्रयोदशी च सर्वेषां शुभदा शोभने विधौ ॥ १७ ॥

बृहस्पति जी ने भी बताया है कि द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी और तेरस तिथि में शुभ चन्द्र होने पर सब देवों की प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ १७ ॥

जाति वश तिथि

अथ जातिपरत्वेन तिथोनाह तत्रैव—

ब्राह्मणानां द्वितीया च तृतीया चातिशोभना।
क्षत्रियाणां पंचमी तु सप्तमी शोभनप्रदा ॥ १८ ॥
वैश्यानां दशमी प्रोक्ता शूद्राणां च त्रयोदशी ॥ १९ ॥

बृहस्पति जी ने बताया है कि ब्राह्मणों को द्वितीया, तृतीया तिथि अत्यन्त शुभ, क्षत्रियों को पञ्चमी, सप्तमी, वैश्यों को दशमी और शूद्रों को प्रतिष्ठा में तेरस शुभ होती है ॥ १८–१९ ॥

प्रतिष्ठा में शुभवार

अथ वारानाह—

नारदः—

कुजवर्जितवारेषु कर्तुः सूर्यबलप्रदे।
चन्द्रताराबलोपेते पूर्वाह्णे शोभने दिने ॥ २० ॥

ऋषि नारद जी ने कहा है कि सूर्य, चन्द्र, तारा के बली होने पर पूर्वाह्ण, शुभ दिन में भौमवार को छोड़कर प्रतिष्ठा शुभ होती है ॥ २० ॥

प्रत्येक वार का फल

अथ प्रत्येकवारफलमाह—

[1]वसिष्ठः—

कीर्तिप्रदं क्षेमकरं कृशानुभयप्रदं वृद्धिकरं दृढं च।
लक्ष्मीकरं सुस्थिरदं त्विनादिवारेषु संस्थापनमामनन्ति ॥ २१ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि सूर्यवार में प्रतिष्ठा यश देने वाली, सोम में कल्याण करने वाली, भौमवार में अग्नि से भय देने वाली, बुधवार में वृद्धिदायिनी, गुरुवार में दृढ, शुक्रवार में लक्ष्मी प्रद और शनिवार में प्रतिष्ठा करने से सुन्दर स्थिरता होती है ॥ २१ ॥

जातिवश शुभवार

अथ बृहस्पतिना जातिपरत्वेन वारा उक्ताः।

विप्राणां शुभदौ वारौ स्थापने गुरुशुक्रयोः।
वारौ दिवाकरेन्द्वोश्च क्षत्रियाणां शुभावहौ ॥ २२ ॥

---

१. व० सं० ४० अ० ८ श्लो०।

वैश्यानां बुधवारः स्यात्तैनिल(?)स्थापने शुभः ।
मन्दवारस्तु शूद्राणां प्रतिष्ठायां शुभावहः ॥ २३ ॥

आचार्य बृहस्पतिजी ने बताया है कि गुरु, शुक्रवार ब्राह्मणों को प्रतिष्ठा में शुभदाता, सूर्य, चन्द्रवार क्षत्रियों को, बुधवार में बनियों को और शनिवार शूद्रों को प्रतिष्ठा में शुभावह होता है ॥ ३२–२३ ॥

विशेष वार

जीवशुक्रबुधानां च सर्वेषां शोभनावहाः ।
पापग्रहाणां वाराश्च बलिनः शुभदाः स्मृता ॥ २४ ॥

गुरु, शुक्र, बुधवार समस्त मनुष्यों को और पापग्रह के वार बलवान होने पर शुभ होते हैं ॥ २४ ॥

स्थापना में शुभ नक्षत्र

अथ नक्षत्राण्याह—

[1]वसिष्ठः—

हस्तत्रये मित्रहरित्रये च पौष्णद्वयादित्यसुरेज्यभेषु ।
तिस्रोत्तराधातृशशाङ्कभेषु सर्वामरस्थापनमुत्तमं स्यात् ॥ २५ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा नक्षत्र में समस्त देवताओं की प्रतिष्ठा उत्तम होती है ॥ २५ ॥

स्थापना में विशेष वार

[2]देवस्य यस्योडुतिथिप्रशस्ते संस्थापने कर्मणि वासरश्च ।
कर्तुर्दिनेशस्य बलं सदैव ग्रामाधिपो ग्रामबलं विचार्यम् ॥ २६ ॥

जिस देवता का जो नक्षत्र, तिथि वार प्रशस्त हो व कर्ता का सूर्य बली होने पर और ग्राम के स्वामी का सदा ही ग्राम बल विचार कर स्थापना का काम शुभ होता है ॥ २६ ॥

जाति वश शुभ नक्षत्र

अथ जातिपरत्वेन नक्षत्राणि—

उत्तरात्रिकपुष्याश्च ब्राह्मणानां शुभावहाः ।
श्रवणे हस्तमूले च क्षत्रिये शुभदाः स्मृताः ॥ २७ ॥
वैश्यानां स्वातिमैत्रे च पौष्णं चैव शुभावहाः ।
शूद्राणामश्विनी श्रेष्ठा तैनिलस्थापने शुभे ॥ २८ ॥

तीनों उत्तरा, पुष्य ब्राह्मणों को, श्रवण, हस्त, मूल क्षत्रियों को, स्वाती, अनुराधा, रेवती वैश्यों को और शूद्रों को देव स्थापन में अश्विनी नक्षत्र शुभ होता है ॥२७–२८॥

१. व० सं० ४० अ० ७ श्लो० ।   २. व० सं० ४० अ० ६ श्लो० ।

जाति के आधार पर शुभ करण

अथ जातिपरत्वेन करणानाह —

बृहस्पतिः—

ब्राह्मणानां शुभो प्रोक्तो करणो बवबालवौ।
ततो द्वौ क्षत्रियाणां तु ततो द्वौ वैश्यशूद्रयोः ॥ २९ ॥

आचार्य बृहस्पति जी ने बताया है कि बव, बालव ब्राह्मणों को, कौलव, तैतिल क्षत्रियों को, गर, वणिज वैश्यों व शूद्रों को शुभावह होते हैं ॥ २९ ॥

शुभ राशि ज्ञान

अथ राशि चाह—

ब्राह्मणक्षत्रियाणां च शोभनाः स्थिरराशयः।
उभयो राशयोर्वैश्यशूद्राणां शोभनाः स्मृताः ॥ ३० ॥

ब्राह्मण, क्षत्रियों को स्थिर और वैश्य शूद्र वर्ग को द्विस्वभाव राशियाँ शुभदाता होती है ॥ ३० ॥

शुभ समय ज्ञान

अथ कालमाह—

पूर्वाह्णे चोत्तमं प्रोक्तं मध्याह्ने मध्यमं बुधैः।
सायाह्ने न मया प्रोक्ता स्वगृहे चाशुभा विधो ॥ ३१ ॥

विद्वानों ने पूर्वाह्न को उत्तम, मध्याह्न को मध्यम कहा है किन्तु मेरे मनमें चन्द्रमा लग्न में या अपने घर का हो तो सायाह्न में भी प्रतिष्ठा अशुभ नहीं होती ॥ ३१ ॥

कदाचिन्निश्यपि प्रोक्ता प्रतिष्ठा या कृते युगे।
कलौ युगेऽतिदोषाय प्रतिष्ठा निशि मानवैः ॥ ३२ ॥

कभी रात में भी प्रतिष्ठा शुभ होना जो बताया गया है वह सतयुग के लिये है और कलियुग में रात में देव प्रतिष्ठा अधिक दोष दायिनी होती है ॥ ३२ ॥

प्रतिष्ठा में वर्जित समय

वसिष्ठस्तु—

[1]रिक्तामायुक्तदिनेषु निन्द्ययोगेषु वैनाशिकवर्जितेषु।
दिने महादोषविवर्जिते च शशांकताराबलसंयुतेपि ॥ ३३ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि रिक्ता तिथि, क्षय तिथि, निंद्य योग, वैनाशिक नक्षत्र में महादोष से रहित तथा चन्द्र, तारा बल से युक्त होने पर प्रतिष्ठा नहीं करना चाहिये ॥ ३३ ॥

---

१. व० सं० ४० अ० ५ श्लो०।

नारदोक्त वैनाशिकादि नक्षत्र

वैनाशिकनक्षत्राणि नारदेनोक्तानि—

[1]जन्मभाद्दशमं कर्म संघातर्क्षं च षोडशम् ।
अष्टादशं सामुदायं त्रयोविंशद्विनाशनम् ॥ ३४ ॥
मानसं पञ्चविंशर्क्षं नाचरेच्छुभमेषु तु ॥ ३५ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि जन्म के नक्षत्र से दसवाँ नक्षत्र कर्मसंज्ञक, सोलहवाँ संघात, अठारहवाँ सामुदाय, तेईसवाँ वैनाशिक और पच्चीसवाँ मानस संज्ञक होता है। इनमें शुभ होने पर भी प्रतिष्ठा नहीं करनी चाहिये ॥ ३४-३५ ॥

लग्न शुद्धि

अथ लग्नशुद्धिः—

वसिष्ठः —

[2]पञ्चांगशुद्धौ दिवसे दिनस्य पूर्वार्द्धभागे शुभदे मुहूर्ते ।
शुभग्रहे वीक्षितसंयुते वा न नैधने नैधनसिद्धिलग्ने ॥ ३६ ॥

ऋषि वसिष्ठ जी ने बताया है कि पञ्चाङ्ग से शुद्ध दिन, पूर्वार्ध (१२ बजे तक) शुभद मुहूर्त में शुभग्रह से दृष्ट युत लग्न में प्रतिष्ठा करनी चाहिये किन्तु जन्म लग्न व राशि से अष्टम होने पर नहीं करनी चाहिये ॥ ३६ ॥

ग्रन्थान्तर से लग्न शुद्धि

रत्नमालायाम्—

[3]केन्द्रत्रिकोणभवमूर्तिषु सद्गृहेषु
चन्द्रार्कभौमशनिषु त्रिषडायगेषु ।
सान्निध्यमेति नियतं प्रतिमासु देवः
कर्तुः सुतार्थसुखसम्पदरोगता च ॥ ३७ ॥

रत्नमाला में कहा है कि केन्द्र, त्रिकोण में शुभ ग्रह और ३।६।११ वें चन्द्र, सूर्य, भौम, शनि की स्थिति में प्रतिष्ठा करने पर अवश्य मूर्ति में देवता का सान्निध्य होता है और प्रतिष्ठा करने वाले को पुत्र, धन, सुख, सम्पत्ति व नीरोगता होती है ॥ ३७ ॥

समस्त दोष नाशक योग

गुरुः—

शुक्रः स्थितांशे राशेर्वा केन्द्रोपचयगे विधौ ।
देवप्रतिष्ठा जालेत्र दोषाः सर्वे शमं ययुः ॥ ३८ ॥

आचार्य बृहस्पति ने बताया है कि शुक्र की राशि या नवांश में केन्द्र या उपचय में चन्द्रमा के रहने पर देव प्रतिष्ठा विषयक समस्त दोषों का नाश होता है ॥ ३८ ॥

---

१. मु० चि० २ प्र० ६० श्लो० पी० टी० । २. व० सं० ४० अ० ९ श्लो० ।
३. मु० चि० २ प्र० ६१ श्लो० पी० टी० ।

प्रसङ्ग वश नवांश विचार

अथ प्रसङ्गान्नवांशविचारः—

वसिष्ठः—

[1]पञ्चेष्टिके जीवशशाङ्कसूर्यमुख्यग्रहैः सौम्यनवांशयुक्तैः ।
लग्ने स्थिरे चोभयराशियुक्ते नवांशके चोभयगे स्थिरे वा ॥ ३९ ॥
[2]चरोदये लग्नगते न कार्यं संस्थापनं नैव चरांशकेपि ।
चरोपि मुख्यः सकलांशकश्च सदा मृदुत्वात्सुरसंनिवेशे ॥ ४० ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि मुख्य गुरु, चन्द्र, सूर्य आदि पाँच ग्रहों को शुभ नवांश में स्थित होने पर इष्ट स्थान में सिद्ध होने पर स्थिर लग्न या द्विस्वभाव राशि या द्विस्वभाव या स्थिर राशि के नवांश में भी करना चाहिये। तथा चर राशि, नवांश में त्याग करना चाहिये और चर राशि लग्न भी पूर्णांश होने पर शुभ होती है ॥ ३९–४० ॥

शुभ लग्न ज्ञान

नारदोपि—

[3]शुभलग्ने शुभांशे च कर्तुर्न निधनोदये ।
राशयः सकलाः श्रेष्ठाः शुभग्रहयुतेक्षिते ॥ ४१ ॥

ऋषि नारद जी ने भी बताया है कि शुभ लग्न, शुभांश, शुभ दृष्ट युत समस्त राशियाँ प्रतिष्ठा में श्रेष्ठ होती हैं। तथा कर्ता की राशि से आठवीं राशि में नहीं करना चाहिये ॥ ४१ ॥

लग्न दोष परिहार

अथ लग्नदोषष्वेपवादो वसिष्ठेन उक्तः—

[4]एकोपि जीवो बलवान् तनुस्थः सितोपि सौम्योप्यथवा बली चेत् ।
दोषानशेषान्विनिहन्ति सद्यः स्कन्दो यथा तारकदैत्यवृन्दम् ॥४२॥

ऋषि वसिष्ठ ने कहा है कि लग्न में गुरु, शुक्र, बुध में से एक भी बली स्थित होने पर शीघ्र ही समस्त दोषों का विनाश होता है, जैसे स्कन्द तारक असुर समुदाय को नष्ट करता है ॥ ४२ ॥

पुनः ग्रन्थान्तर से भिन्न परिहार

नारदः—

[5]गुणाधिकतरे लग्ने दोषेत्यल्पतरे यदि ।
सुराणां स्थापनं तत्र कर्तुरिष्टार्थसिद्धिदम् ॥ ४३ ॥

---

१. व० सं० ४० अ० १० श्लो० । २. व० सं० ४० अ० ११ श्लो० ।
३. मु० चि० २ प्र० ६१ श्लो० पी० टी० । ४. व० सं० ४० अ० २० श्लो० ।
५. ज्यो० नि० २१८ पृ० २५ श्लो० ।

ऋषि नारद जी ने बताया है कि लग्न में गुणाधिक्य होने पर यदि अल्प दोष हो तो भी कर्ता के अभीष्ट अर्थ की सिद्धि होती है ॥ ४३ ॥

स्थापना लग्न से द्वादश भावों का शुभाशुभ फल

वसिष्ठः—

[1]सूर्येंदुभौमार्क्यहिकेतवश्च लग्नस्थिता नैधनदाश्च कर्तुः ।
सौम्यग्रहा लग्नगताः सदा ते त्वायुर्धनारोग्यकराश्च नूनम् ॥ ४४ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि लग्न में सूर्य, चन्द्र, भौम, राहु व केतु मरणदाता और शुभ ग्रह लग्नस्थ होने पर अवश्य सदा आयु, धन आरोग्य कर्ता होते हैं ॥ ४४ ॥

[2]लग्नाद्द्वितीये शुभखेचरेन्द्राश्चन्द्रश्च पुत्रार्थशुभप्रदाः स्युः ।
तत्रैव पापाः प्रतिपक्षदुःखशोकप्रदा व्याधिकराः सदैव ॥ ४५ ॥

स्थापना लग्न से दूसरे भाव में शुभ ग्रह व चन्द्रमा, पुत्र, धनदाता शुभप्रद और वहीं अर्थात द्वितीय भाव में ही पापग्रह शत्रु, दुःख, शोकदाता एवं सदा ही रोग करने वाले होते हैं ॥ ४५ ॥

असौम्यसौम्याः सहजे सुखस्थाचंद्रश्च पापो न सुखप्रदाः स्युः ।
आनन्ददाः पञ्चमगाश्च सौम्या विधुश्च पाप रिपुभीतिदाः स्युः ॥४६॥

तीसरे में शुभ ग्रह अशुभ, चौथे में चन्द्रमा व पाप ग्रह सुख का अभाव करने वाले, पाँचवें भाव में पाप ग्रह शत्रु भय कर्ता और शुभग्रह व चन्द्रमा आनन्द देने वाले होते हैं ॥ ४६ ॥

विशेष—प्रकाशित वसिष्ठ संहिता में—

असौम्यसौम्या हिमदीधितिश्च तृतीयगा लाभगतानितान्तम् । चतुर्थगा लाभकराश्च सौम्याश्चन्द्रश्च पापा विमुखप्रदाः स्युः ॥ १ ॥

अर्थ—लग्न से तृतीय में शुभ, पाप ग्रह तथा चन्द्रमा लाभदायी और चौथे में शुभ ग्रह व चन्द्रमा प्राप्ति कराने वाले एवं पाप ग्रह सुख से रहित कर्ता होते हैं ॥ ४६ ॥

यह पाठ उचित है ।

शत्रुस्थिताः शत्रुविनाशदाः स्युः क्रूराः सचन्द्राभयदास्तु सौम्याः ।
द्यूनस्थिताः सेन्दुशुभा दिशन्ति लाभं परे प्रीतिपराः सदैव ॥४७॥

स्थापना लग्न से छठे भाव में पाप ग्रह शत्रुओं का नाश करने वाले और शुभग्रह व चन्द्रमा शत्रु से भय कराने वाले, सातवें में चन्द्र व शुभग्रह लाभदायी और पाप ग्रह ही प्रीति दाता सदा होते हैं ॥ ४७ ॥

---

१. व० सं० ४० अ० १२ श्लो० ।
२. व सं० ४० अ० १३ श्लो० ।

सर्वे ग्रहा नैधनदास्त्वजस्रं सौम्या असौम्याः खलु मृत्युसंस्थाः ॥४८॥

स्थापना लग्न से आठवें भाव में शुभाशुभ समस्त ग्रह निरन्तर मरण दाता होते हैं ॥ ४८ ॥

[1]नवमस्थानगाः सौम्याः सेन्दवो विजयप्रदाः ।
असौम्याः स्थापने तत्र दुःखशोकभयप्रदाः ॥ ४९ ॥

नवें भाव में शुभग्रह व चन्द्रमा विजय दाता और पाप ग्रह स्थापना में दुःख, शोक भयप्रद होते हैं ॥ ४९ ॥

[2]दशमस्थानगाश्चन्द्रसहिताः शुभखेचराः ।
अर्थलाभकराःपापा व्याधिशत्रुभयप्रदाः ॥ ५० ॥

दसवें स्थान में चन्द्रमा और शुभ ग्रह धन लाभ कराने वाले और पाप ग्रह रोग, शत्रु और भय कारक होते हैं ॥ ५० ॥

[3]लाभस्थानगताः सर्वे खेचरा बहुलाभदाः ।
व्ययदा व्ययगाः पापाः सेन्दवः शोकदाः शुभाः ॥ ५१ ॥

ग्यारहवें भाव में समस्त ग्रह अधिक लाभ कराने वाले और बारहवें भाव में चन्द्र व पाप ग्रह व्यय कर्ता और शुभ ग्रह शोक देने वाले होते हैं ॥ ५१ ॥

गुण दोष तारतम्य

वृहस्पतिः—
दोषाध्याये प्रतिष्ठाये दोषास्तेत्र विरोधदाः ।
गुणाध्यायोदिता येत्र यथालाभं गुणाः शुभाः ॥ ५२ ॥

आचार्य वृहस्पति जी ने बताया है कि दोष निरूपण अध्याय में जिन दोषों को बताया है वे दोष यहाँ पर विरोध देने वाले और गुणवर्णनाध्याय में जिन गुणों को कहा गया है वे वहाँ पर शुभ एवं यथेच्छित लाभदायक होते हैं ॥ ५२ ॥

दोषाणामपवादेषु सत्सु दोषा न सन्ति हि ।
अपवादापविद्धा ये दोषास्तानत्र चिन्तयेत् ॥ ५३ ॥

जबकि दोषों के अपवाद वाक्य मिलते हैं तो दोष नहीं होते और परिहार वाक्यों से रहित दोषों का यहाँ विचार करना चाहिये ॥ ५३ ॥

एते लिङ्गप्रतिष्ठायां शङ्कराकारभेदजे ।
रविभेदेषु सर्वेषु प्रतिष्ठाकाल ईरितः ॥ ५४ ॥

इन गुण, दोषों का शंकर आकृति निर्माण, लिङ्ग प्रतिष्ठा. समस्त सूर्य भेद अर्थात् १२ आकृति की प्रतिष्ठा के समय विचारना चाहिये ॥ ५४ ॥

---

१. व० सं० ४० अ० १७ श्लो० । २. व सं० ४० अ० १८ श्लो० ।
३. व० सं० ४० अ० १९ श्लो० ।

विष्णुभेदेषु सर्वेषु समानं सुरसत्तमः।
दुर्गाया गणनाथादिभेदेष्वेवं समं भवेत् ॥ ५५ ॥

समस्त विष्णु मूर्तियों में तथा देवी, गणनाथादि भेद में भी समान काल होता है ॥ ५५ ॥

गणेशजी की प्रतिष्ठा में शुभ तिथि आदि

चतुर्दशी चतुर्थी च चित्रा ज्येष्ठा च शोभना।
गणेशस्य प्रतिष्ठायां सूर्यवारांशकादयः ॥ ५६ ॥

चौदस, चतुर्थी तिथि, चित्रा, ज्येष्ठा नक्षत्र और सूर्य का वार व लग्नस्थ नवांश गणेश की प्रतिष्ठा में विशेष शुभ होता है ॥ ५६ ॥

देवी प्रतिष्ठा मुहूर्त

नवमी कृत्तिका चित्रा दुर्गायास्तु विशेषतः।
प्रतिष्ठायां समुद्दिष्टा मन्दवारांशकोदयाः ॥ ५७ ॥

नवमी तिथि कृत्तिका, चित्रा नक्षत्र, शनिवार, लग्नस्थ शनि नवांश देवी प्रतिष्ठा में विशेष शुभ होता है ॥ ५७ ॥

अथ देवताविशेषेण मुहूर्तविशेषः विष्णुस्थापनं च—

अब आगे देव विशेषों के विशेष मुहूर्त को बताते हैं।

कृष्ण प्रतिष्ठा मुहूर्त

[1]ज्योतिर्विदाभरणे—

रिक्ताशिवापक्षतिदर्शमुक्तैर्लघुध्रुवादित्यमृगांत्यमैत्रैः।
सकर्णयुग्मैर्गुरुसौम्यवारे नरोदये स्थापनमिष्टमस्य ॥ ५८ ॥

ज्योतिर्विदाभरण में कहा है कि रिक्ता (४।९।१४) भद्रा, शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा और अमावास्या को छोड़कर अन्य तिथि में लघु, ध्रुवसंज्ञक, पुनर्वसु, मृगशिरा, रेवती, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा नक्षत्र में गुरु, बुधवार में पुरुष संज्ञक लग्न में कृष्ण या नारायण की प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ ५८ ॥

शिव प्रतिष्ठा मुहूर्त

अथ शिवस्थापनम्—

[2]संस्थापके (येत्) स्थाणुमिहाभिजिच्छ्रवाभूतेशमाचार्यहिमांशुभीरुभिः।
ऐनोनजीवद्युषुभूभुवि क्वचित् व्यमाकुयोगेजितुमोदयेऽनिशम् ॥ ५९ ॥

अभिजित्, श्रवण, आर्द्रा, पुष्य, मृगशिरा तारा नक्षत्र, में शनि, सूर्य, गुरुवार में कभी भौमवार में भी अमा, कुयोग का त्यागकर निरन्तर मिथुन लग्न में महादेव जी की प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ ५९ ॥

१. १७ प्र० २९ श्लो०।
२. ज्यो० वि० १७ प्र० ३० श्लो०।

ब्रह्मा प्रतिष्ठा मुहूर्त

अथब्रह्मास्थापनम्—

[1]तिष्याभिजित्तामरसोदयाजभैर्विकर्तनाचार्यविदामहर्गतैः ।
संस्थापितोऽजस्तनुते चतुर्विधं नियोजयेद्वर्गफलं व्ययोगकैः ॥६०॥

पुष्य, अभिजित्, श्रवण, रोहिणी नक्षत्र, सूर्य, गुरु, बुधवार में कुयोग हीन योग में ब्रह्मा की प्रतिष्ठा करने पर धर्मादि चतुर्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥ ६० ॥

शक्तिगण प्रतिष्ठा मुहूर्त

अथ शक्तिगणप्रतिष्ठा—

[2]रुरूत्तमांगे शिवभे शिफायां श्रुतौ शये शक्तिगणप्रतिष्ठा ।
शस्ता रवावांगिरसेयमेता शस्त्रांगनाजित्मविसारलग्ने ॥ ६१ ॥

मृगशिरा, आर्द्रा, मूल, श्रवण, हस्त नक्षत्र में रवि, गुरु, शनिवार में, धनु, कन्या, मिथुन, मीन लग्न में शक्तिगण की प्रतिष्ठा शुभ होती है ॥ ६१ ॥

अथ बलरामादिसूर्यप्रतिष्ठा—

[3]नृभोदये पाण्यभिजिच्छ्रवासु वा बलाननोपेंद्रगणान्प्रतिष्ठयेत् ।
शुभे दिनेऽषु च भाग्यरेवती मित्रार्यमर्क्षेषु रविं रवौ हरौ ॥ ६२ ॥

नर संज्ञक लग्न, हस्त, अभिजित्, श्रवण नक्षत्र में बलरामादि विष्णु के गणों की और पूर्वाफाल्गुनी, रेवती, अनुराधा, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में, सूर्य वार में, सिंह लग्न में सूर्य की प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ ६२ ॥

गुहादि शिवगण प्रतिष्ठा मुहूर्त

अथ गुहादिशिवगणप्रतिष्ठा —

पौष्णार्द्रयोरंशुसितांशुजन्मनां वारेषु वा गांघ्रियुगेऽसृजि क्वचित् ।
[4]गुहाखुयानादिपिनाकभृद्गणानास्थापयेद्युग्ममरंधमोदये ॥ ६३ ॥

रेवती, आर्द्रा नक्षत्र, शनि, शुक्र सूर्यवार या कभी पूर्वा भाद्रपदा, उत्तराभाद्रपद में मंगलवार में मिथुन, वृश्चिक लग्न में कार्तिकेय, गणेश आदि शिवगण की प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ ६३ ॥

---

१. ज्यो० वि० १७ प्र० ३१ श्लो० ।

२. ज्यो० वि० १७ प्र० ३२ श्लो० ।

३. ज्यो० वि० १७ प्र० ३३ श्लो० ।

४. ज्यो० वि० १७ प्र० ३४ श्लो० ।

हनुमान मरुद्गण स्थापन मुहूर्त

अथ हनुमान्–मरुद्गण–स्थापनम् —

[1]महाबलक्षश्रुतिशैवदोर्भगं संस्थापनं हृद्यतरं हनूमतः ।
प्रभाकरादित्रिदिनेषु वा गुरौ स्थिरोदयेऽत्रैव मरुद्गणस्य च ॥ ६४ ॥

स्वाती, श्रवण, आर्द्रा, हस्त नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र, मंगलवार में हनुमान् जी की वा गुरुवार, स्थिर लग्न में मरुद्गण की प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ ६४ ॥

सप्तर्षि प्रतिष्ठा मुहूर्त

अथ सप्तर्षिप्रतिष्ठा—

[2]सप्तर्षिसंस्थोडुषु संप्रतिष्ठामृषिव्रजस्याहुरजेज्यभेवा ।
जीवाह्नि वा जीवगृहोदयेषु सत्केंद्रे क्वचित्सोमदिनेषु संतः ॥ ६५ ॥

सप्तर्षियों की सप्तर्षि नक्षत्र में या श्रवण, पुष्य नक्षत्र में, गुरुवार में, गुरु राशि (९।१२) लग्न में, केन्द्र में शुभग्रह के रहने पर, कभी सोमवार में भी प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ ६५ ॥

लोकपाल, यक्ष गण स्थापना मुहूर्त

अथ लोकपालयक्षगणस्थापनम् —

[3]सरोहिणेयाहनि वासवर्क्षे संस्थापयेद्योषिति लोकपालान् ।
सितत्र्यहःशैवशिखासु शस्ता चरे च यक्षादिगणप्रतिष्ठा ॥ ६६ ॥

धनिष्ठा नक्षत्र में, बुधवार, कन्या लग्न में लोकपालों की तथा शुक्र, शनि, सूर्यवार, आर्द्रा, मूल, नक्षत्र, चर लग्न में यक्षादिगण की प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ ६६ ॥

सर्वसुर प्रतिष्ठा मुहूर्त

[4]न्यंकूत्तमांगश्रुतितिष्यहस्तैरब्जार्ययोः सर्वसुरप्रतिष्ठा ।
अर्हा सभूषैरपदोषदोषैर्जीवेक्षिते वारणवैरिलग्ने ॥ ६७ ॥

मृगशिरा, श्रवण, पुष्य, हस्त, नक्षत्र में, सुयोग में, कुयोग के अभाव में, सोम, गुरुवार में, सिंह लग्न में गुरु से दृष्ट होने पर समस्त देवताओं की प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ ६७ ॥

पितृगण प्रतिष्ठा मुहूर्त

[5]मघाशतानन्दभसौम्यशार्ङ्गिभिः संस्थापितः पितृगणः प्रजाश्रियै ।
शूरौषधीशामरवंद्यवासरैररिक्ता विमुक्तेव्यंलिधीरभोदये ॥ ६८ ॥

---

१. ज्यो० वि० १७ प्र० ३५ श्लो० । २. ज्यो० वि० १७ प्र० ३६ श्लो० ।
३. ज्यो० वि० १७ प्र० ३७ श्लो० । ४. ज्यो० वि० १७ प्र० ३८ श्लो० ।
५. ज्यो० वि० १७ प्र० ३९ श्लो० ।

मघा, रोहिणी, मृगशिरा, श्रवण नक्षत्र में, सूर्य, चन्द्र गुरुवार में, वृश्चिक का त्याग करके स्थिर लग्न में पितृ गण की स्थापना करने से सन्तान व लक्ष्मी की वृद्धि होती है ॥ ६८ ॥

जैन प्रतिमा स्थापन मुहूर्त

[1]चैत्येथ जैनप्रतिमास्थलं न्यसेच्चरे चरर्क्षोजयवत्यनेहसि ।
जयासु पूर्णासु बुधे सिते विधौ क्वचिच्च चित्राश्विनभेपि वारे ॥ ६९ ॥

जैन मूर्ति की प्रतिमा को, चैत मास, चर नक्षत्र लग्न व वार में, जया, पूर्णा तिथि में वा सूर्य वार में भी व चित्रा, अश्विनी में प्रतिष्ठा करना शुभ होता है ॥ ६९ ॥

देव प्रतिष्ठा में दोष

अथामरप्रतिष्ठायां दोषानाह—

वसिष्ठः—

[2]हंत्यर्थहीनं त्वमरप्रतिष्ठा कर्तारमृत्विग्वरविप्रमुख्यम् ।
मंत्रविहीनात्वथ कर्तृभार्यां यदा तदा लक्षणहानितश्च ॥ ७० ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि धन से हीन देव प्रतिष्ठा में कर्ता का, मंत्र से हीन में ऋत्विक् श्रेष्ठ ब्राह्मण का और जब लक्षण हानि हो तो कर्ता (यजमान) की पत्नी का नाश होता है ॥ ७० ॥

नारदोपि—

हंत्यर्थहीने कर्तारं मंत्रहीने तु ऋत्विजम् ।
शिल्पिनं लक्षणैर्हीने न प्रतिष्ठासमो रिपुः ॥ ७१ ॥

ऋषि नारदजी ने भी कहा है कि धन हीन प्रतिष्ठा कर्ता का, मन्त्र हीन ऋत्विज का और लक्षण से रहित प्रतिष्ठा शिल्पी का नाश करती है । प्रतिष्ठा के समान कोई शत्रु नहीं होता है ॥ ७१ ॥

भग्न देवपूजा विधान

विषमस्थानमाश्रित्य भग्नं यत्स्थापितं परैः ।
तत्र स्थानस्थिता देवा भग्नाः पूज्याः फलप्रदाः ॥ ७२ ॥

यदि किसी विषम स्थान पर दूसरों द्वारा प्रतिष्ठा की गयी देवमूर्ति भग्न हो जाती है तो उस भग्न देवता की पूजा भी फल देनेवाली होती है ॥ ७२ ॥

स्थापना में देव मुख दिशा ज्ञान

वास्तुराजवल्लभे—

ब्रह्माविष्णुशिवेंद्रभास्करगुहाः पूर्वापरास्याः शुभाः
प्रोक्तौ सर्वदिशामुखौ शिवजिनौ विष्णुर्विधाता तथा ।

---

१. ज्यो० वि० १७ प्र० ४० श्लो० । २. व० सं० ४० अ० २१ श्लो० ।

चामुण्डाग्रहमातरो धनपतिर्द्वौ भ्रातरो भैरवो
देवोदक्षिणदिङ्मुखः कपिवरो नैऋंत्यवक्रो भवेत् ॥ ७३ ॥

वास्तुराजवल्लभ में बताया है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, सूर्य, कार्त्तिकेय का प्रतिष्ठा में पूर्व या पश्चिम दिशा में मुख, शिव, जिन, विष्णु, ब्रह्मा का सब दिशाओं में, चामुण्डा (देवी), ग्रह, मातृका, दोनों शीतला, भैरव का दक्षिण दिशा में और हनुमानजी को नैऋंत्य मुख करके स्थापना करनी चाहिये ॥ ७३ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरंजने
त्र्यशीतितमं देवप्रतिष्ठाप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन जी द्वारा रचित वृहद्दैवज्ञरञ्जन संग्रह ग्रन्थ का तिरासीवाँ देव प्रतिष्ठा नामक प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ८३ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज मुरलीधर-चतुर्वेदकृता वृहद्दैवज्ञरञ्जनसंग्रहग्रन्थस्य त्र्यशीतिप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्णा ॥ ८३ ॥

अथ चतुरशीतितमं जलप्रतिष्ठाप्रकरणं प्रारभ्यते

अब आगे चौरासीवें प्रकरण में जल की प्रतिष्ठा के विषय में बताते हैं।

जल प्रतिष्ठा मुहूर्त

दीपिकायाम् -

[1]मार्तंडेन्दूडुशुद्धौ मुरजिदशयने माघषट्कस्य शुक्रे
मूलाषाढोत्तराश्विश्रवणगुरुकरे पौष्णशक्राजचान्द्रे ।
मैत्रे ब्राह्मे च पूर्णा मदनरवितिथौ सद्वितीयातृतीये
कार्या तोयप्रतिष्ठा ज्ञगुरुसितदिने कालशुद्धे सुलग्ने ॥ १ ॥

दीपिका में बताया है कि सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र शुद्धि, हरिशयन को छोड़ कर, माघादि ६ मास, शुक्ल पक्ष, मूल, उत्तराषाढ, अश्विनी, श्रवण, पुष्य, हस्त, रेवती, ज्येष्ठा,

---

१. मु० चिं० २ प्र० ६० श्लो० पी० टी० ।

रोहिणी, मृगशिरा, अनुराधा, नक्षत्र. पूर्णा, सप्तमी, द्वादशी, द्वितीया, तृतीया तिथि, बुध, गुरु, शुक्रवार और सुन्दर लग्न में जल कूपतडागादि की प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ १ ॥

ग्रन्थान्तर से

तथाच गर्गः—

[1]देवतारामवाप्यादिप्रतिष्ठामुत्तरायणे ।
माघादिपंचमासेषु कृष्णे त्वापंचमीदिनम् ॥ २ ॥

जैसा कि गर्गाचार्यजी ने कहा है कि देवता, बगीचा, वापी आदि की उत्तरायण, माघादि पाँच मासों में शुक्ल पक्ष में और कृष्ण में पंचमी तक प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥२ ॥

दक्षिणे त्वयने कुर्वन्न तत्फलमवाप्नुयात् ।
यदा तु दक्षिणायन एव जलस्थितिसंभवस्तदा न कालनियमः ।
तत्र सलिलंकारणमिति भविष्यत्पुराणे ।

एव दक्षिणायन में प्रतिष्ठा करने पर प्रतिष्ठा का फल नहीं होता है ।

जब जहाँ दक्षिणायन में ही जल का सम्भव हो तो वहाँ काल का नियम नहीं होता है । वहाँ जल ही कारण माना गया है, ऐसा भविष्य पुराण में वर्णित है ।

मास ज्ञान

मासस्तु तत्रैव—

तस्मिन्सलिलसंपूर्णे कार्तिके च विशेषतः ।
तडागस्य विधिः कार्यः स्थिरनक्षत्रयोगतः ॥ ३ ॥

मास के विषय में भी गर्गजी ने कहा है—उस जगह जल सम्पूर्ण होने पर विशेषकर कार्तिक मास में तालाब की प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

अग्नि पुराणोक्त संक्रान्ति भेद से फल भेद ज्ञान

अग्निपुराणे संक्रांतिभेदेन फलभेदोभ्यधायि—

वापीकूपतडागानां तस्मिन्काले विधिः स्मृतः ।
कर्कटे पुत्रलाभश्च सौख्यं तु मकरे भवेत् ॥ ४ ॥
मीने यशोर्थलाभश्च कुम्भे च सुबहूदकम् ।
वृषे च मिथुने वृद्धिर्वृश्चिके च जलं भवेत् ॥ ५ ॥
पितृतृप्तिश्च कन्यायां तुलायां शाश्वती गतिः ।
सिंहे मेषे धनुर्लग्ने लक्ष्मीश्च द्विज गच्छति ॥ ६ ॥

अग्निपुराण के अनुसार वापी, कुआँ, तालाबादि का कर्क के सूर्य में प्रतिष्ठा करने पर पुत्रलाभ, मकर के सूर्य में सुख, मीन के सूर्य में यश व धनलाभ, कुम्भ में अधिक

---

१. मु० चि० २ प्र० ६० श्लो० पी० टी० ।

जल, वृश्चिक, वृष व मिथुन में जलवृद्धि, कन्या में पितरों की तृप्ति, तुला में सद्गति और सिंह, मेष, धनु लग्न में हे विप्र लक्ष्मीजी चली जाती हैं ॥ ४–६ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरंजने चतुरशीतितमं जलप्रतिष्ठाप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन संग्रह ग्रन्थ का चौरासीवाँ जल-प्रतिष्ठा नामक प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ८४ ॥

इति श्री मथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवाभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज मुरलीधरचतुर्वेदकृता बृहद्दैवज्ञरञ्जन संग्रहग्रन्थस्य चतुरशीतिप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्तिमगात् ॥ ८४ ॥

अथ पञ्चाशीतितमं यात्राप्रकरणं प्रारभ्यते

अब आगे पचासीवें प्रकरण में देशान्तर गमन कब, किस काल में करना चाहिये और किस समय नहीं करना चाहिये तथा अशुभ समय में आवश्यक होने पर क्या करके यात्रा करनी चाहिये। इसे विविध ग्रन्थों की उक्तियों से समझाते हैं।

यात्रा समय

अथ यात्राकालः—

बृहस्पतिः—

अथातः संप्रवक्ष्यामि यात्रायाः कालमुत्तमम् ।
यात्राविलग्नतो नृणां शुभाशुभसमन्वयः ॥ १ ॥
तस्मात्सम्यक्परीक्ष्यैव यात्रा कार्या नृपोत्तमैः ।
योगे धराधिपाः कुर्युः यात्रा राज्याभिवृद्धये ॥ २ ॥

आचार्य वृहस्पतिजी कह रहे हैं कि मैं अब यात्रा के उत्तम समय को बता रहा हूँ, क्योंकि मनुष्यों को यात्रा की लग्न से शुभ, अशुभ का समन्वय होता है। इसलिए उत्तम राजाओं को अच्छी रीति से काल का परीक्षण करके ही यात्रा करनी चाहिये। राजा को अपने राज्य की अभिवृद्धि के लिए यात्रा के योगों में यात्रा करनी चाहिये ॥ १–२ ॥

मासादि शुद्धिवश फल

मासशुद्धौ सुखं भोगो धनारोग्यं च सत्तिथौ ।
कार्यसिद्धिः सुनक्षत्रे करणे शोभनं धनम् ॥ ३ ॥

शुभे वारे सर्वसंपत्सौमनस्यं शुभे क्षणे।
इष्टावाप्तिः शुभे योगे वाञ्छिताप्तिः शुभे विधौ ॥ ४ ॥
लग्ने शस्ते महानंदः स्वेशवीर्ये समुन्नतिः।
लग्नसंग्रहवीर्ये स्युः सर्वे समुदिता गुणाः ॥ ५ ॥

देशान्तर गमन में मास शुद्धि होने पर सुख भोग, शुभ तिथि में धन व आरोग्य, सुन्दर नक्षत्र में कार्यसिद्धि, शुभ करण में शोभन धन, शुभवार में समस्त सम्पत्ति, अच्छे क्षण में सौमनस्यता, शुभ योग में अभीष्ट की प्राप्ति, शुभ चन्द्र में वाञ्छित लाभ, प्रशस्त लग्न में बड़ा आनन्द, राशीश बलवान हो तो अच्छी उन्नति और लग्न के पूर्ण बली होने पर यात्रा में समस्त गुणों का उदय होता है ॥ ३–५ ॥

रत्नावल्याम्—

[१]तिथिशुद्धौ भवेत्सिद्धिः करणे च सुखं धनम्।
नक्षत्रे च मुहूर्ते च यातुः सौख्यं धनागमम् ॥ ६ ॥
[२]वारेण सौमनस्यं शुभेन चन्द्रेण मित्रसंप्राप्तिः।
सर्वे गुणाः समुदिता लग्नेनैकेन लभ्यंते ॥ ७ ॥

रत्नावली नामक ग्रन्थ में बताया है कि यात्रा में तिथि की शुद्धि होने पर सिद्धि, करण शुभ में सुख, धनागम, नक्षत्र व मुहूर्त शुभ में यात्राकर्ता को सुख और धन की लब्धि, शुभवार में सौमनस्यता, शुभ चन्द्र में मित्रलब्धि और केवल लग्न के बली होने पर परदेश जाने से समस्त गुणों का उदय होता है ॥ ६–७ ॥

योगयात्रायाम् –

आरोग्यमृक्षेण धनं क्षणेन कार्यस्य सिद्धिस्तिथिना शुभेन।
लग्ने शुभे चाध्वनि सिद्धिमाहुः प्रायः शुभानि क्षणदाकरेण ॥ ८ ॥

योगयात्रा में बताया है कि शुभ नक्षत्र में यात्रा करने पर निरोगता, शुभ क्षण में धनाप्ति, शुभ तिथि में कार्य की सिद्धि और शुभ लग्न में अन्य देश गमन करने से मार्ग में सिद्धि व चन्द्रमा शुभ होने से प्राय: क्षण शुभ व्यतीत होते हैं ॥ ८ ॥

तिथ्यादि में बली निर्णय

बृहस्पतिः—

तिथ्या तु बलवान्करणः करणाद्बलवान्दिनः।
दिनाद्दक्षो बलाढ्यः स्यात्सर्वथानुदयो बली ॥ ९ ॥

आचार्य बृहस्पतिजी का कहना है कि तिथि से करण, करण से वार, वार से नक्षत्र और नक्षत्र से सर्वथा लग्न बली होता है ॥ ९ ॥

---

१. ज्यो० नि० १८६ पृ० ३५ श्लो०।
२. ज्यो० नि० १८६ पृ० ३६ श्लो०।

यात्रा में धननाशक योग

योगयात्रायाम् —
उत्पातपापग्रहपीडिते भे ये यांति भूरिग्रहसंयुते च।
ते पूर्ववित्तान्यपि नाशयंति धातुप्रसक्ता इव वातकेंद्राः ।। १० ।।

योगयात्रा में कहा है कि जो लोग उत्पात व पापग्रह से पीड़ित नक्षत्र में यात्रा करते हैं तथा अधिक ग्रहों का एक राशि में संयोग होने पर देशान्तर जाते हैं, वे अपने पहिले धन का उसी प्रकार विध्वंस करते हैं जैसे धातु प्रसक्त वात केन्द्र का विनाश होता है ।। १० ।।

यात्रा में अशुभ योग

[1]क्रांतिसाम्ये भवेन्मृत्युः कुलिके च महद्भयम् ।
यामार्द्धे सति शोकः स्याद्भद्रायां भंगमादिशेत् ।। ११ ।।
[2]व्यसनं मरणं वापि व्यतीपाते च वैधृतौ ।
दिनक्षये द्युवृद्धौ च संक्रमे च पराभवः ।। १२ ।।

क्रान्ति साम्य में यात्रा करने पर मृत्यु, कुलिक में बड़ा भय, यामार्द्ध में शोक, भद्रा में भग्नता, व्यतीपात, वैधृति में व्यसन या मरण, तिथि क्षय, वृद्धि में तथा संक्रान्ति में अन्य देश गमन करने पर पराजय होता है ।। ११-१२ ।।

क्रूर युतादि में फल

[3]हानिः क्रूरयुते भे च भयं दग्धे च धूमिते ।
यातुश्चंद्रबलाभावे यात्रा शस्ताप्यनर्थदा ।। १३ ।।

पापग्रह से युक्त नक्षत्र में यात्रा करने पर हानि, दग्ध, धूमित नक्षत्र में भय और जाने वाले के निर्बल चन्द्र होने पर प्रशस्त यात्रा भी अनर्थ देनेवाली होती है ।। १३ ।।

सूतकादि में फल

कलहः सूतिकाशौचे रोगः स्याद्राहुसूतके ।
तिथिदोषे न संतुष्टिर्वारदोषे मनश्चलम् ।। १४ ।।

जननाशौच में यात्रा से कलह, राहुसूतक में रोग, अशुभ तिथि में असन्तोष और दूषित वार में परदेश जाने पर मन अस्थिर होता है ।। १४ ।।

यात्रा में अवश्य निषिद्ध निमित्त

रामः—
[4]व्रतबंधनदैवतप्रतिष्ठाकरपीडोत्सवसूतिकासमाप्तौ ।
न कदापि चलेदकालविद्युद्घनवर्षातुहिनेपि सप्तरात्रम् ।। १५ ।।

---

१. ज्यो० नि० १८६ पृ० २७ श्लो० । २. ज्यो० १८६ पृ० २८ श्लो० ।
३. ज्यो० नि० १८६ पृ० २९ श्लो० । ४. मु० चिं० ११ प्र० ७६ श्लो० ।

रामदैवज्ञ ने अपने मुहूर्तचिन्तामणि नामक ग्रन्थ में बताया है कि यज्ञोपवीत, देव प्रतिष्ठा, विवाह, होलकादि उत्सव और द्विविध आशौच की समाप्ति के विना कदापि यात्रा नहीं करना। तथा असमय में विजली के चमकने पर, विना गर्जना से वर्षा, हिमपात होने पर सात दिन तक यात्रा नहीं करनी चाहिये ॥ १५ ॥

उद्वाहे व्रतबंधे च प्रतिष्ठायां महोत्सवे।
असमाप्ते न गंतव्यं मृतके सूतकेपि च ॥ १६ ॥

विवाह, जनेऊ, देव प्रतिष्ठा, दीपावली आदि उत्सव तथा मृत सूतक में विना समाप्ति किये गमन नहीं करना चाहिये ॥ १६ ॥

शुभयोग में यात्रा का विधान

हारीतः—
यत्किंचिच्छुभदं कर्म क्रियते च मनोषिभिः।
तत्सर्वं शुभयोगेन कार्यं यात्रा विशेषतः ॥ १७ ॥

ऋषि हारीत ने बताया है कि विद्वान् लोग जो भी कार्य करते हैं वह शुभयोग में ही करते हैं और विशेष कर यात्रा तो शुभ योग में ही करनी चाहिये ॥ १७ ॥

यात्रा में त्याज्य

त्याज्यप्रकरणे ये दोषाः प्रोक्तास्तांश्च विवर्जयेत्।
भद्रा याने परित्याज्या क्षणाश्च निंदिताह्वयाः ॥ १८ ॥

जिन दोषों का त्याज्य प्रकरण में वर्णन किया है उनका, भद्रा का और दूषित क्षणों का देशान्तर गमन में त्याग करना चाहिये ॥ १८ ॥

घुणाक्षरन्यास से फल

श्रीपतिः—
[1]यात्राभिधानं कथयाम्यथातः सर्वैरुपेतस्य गुणैर्जिगीषोः।
अतर्किते जन्मनि तस्य याने फलाप्तिरुक्ता घुणवर्णतुल्याः ॥ १९ ॥

आचार्य श्रीपतिजी ने बताया है कि मैं अब यात्रा की इच्छा वालों के लिये समस्त गुणों से युक्त विधान को कहता हूं। जिसकी जन्म की राशि अज्ञात होती है उनकी यात्रा में भी घुणाक्षर न्याय से फल लब्धि होती ही है ॥ १९ ॥

[1]अज्ञातजन्मनोप्यन्यैर्यानं योज्यमिति स्मृतम्।
प्रश्नोदयनिमित्ताद्यैर्विज्ञाते सदसत्फले ॥ २० ॥

अन्य आचार्यों ने जन्म राशि अज्ञात होने पर प्रश्न के समय शकुन वश शुभाशुभ यात्रा का फल वताने को कहा है ॥ २० ॥

---

१. ज्यो० नि० १८३ पृ० ३ श्लो०।

१. ज्यो. नि. १८३ पृ. ६ श्लो.।

शत्रु नाशक योग

[1]जन्मराशिरुतजन्मविलग्नं तत्पती उदयगौ यदि शस्तः।
त्र्यायकर्मरिपुभान्वितताभ्यां शत्रुसंक्षयमवेहि तदानीम् ॥ २१ ॥

जिस यात्रा की लग्न में जानेवाले की जन्म राशि व जन्म लग्न का स्वामी हो या ये दो ३।११।१०।६ भाव में हों तो शत्रु का क्षय जानना चाहिये ॥ २१ ॥

[2]इदमप्यरिसंभवं यदास्ते हिबुके वा विजयस्तथापि यातुः।
शिरसोदयमेति यश्च राशिर्जयकृत्सोप्युदये तथेष्टवर्गः ॥ २२ ॥

तथा यह भी है कि वे ७ या चौथे में हों तो भी जाने वाले की विजय है और जो शीर्षोदय राशि में यात्रा करता है तथा लग्न में अभीष्ट वर्ग हो तो शुभ यात्रा होती है ॥ २२ ॥

चर, स्थिर राशि यात्रा फल

[3]करोति राशिर्गमनं फलं च चरे विलग्ने शुभदृष्टियुक्ते।
स्थिरोदये स्याद्गमनं न यातुः शुभाशुभैर्दृष्ट्युतेत्र वाच्यम् ॥ २३ ॥

जब कि प्रश्न वेला में चर राशि लग्न शुभ ग्रह से दृष्ट युत हो तो यात्रा अवश्य शुभ होती है तथा फल भी उत्तम होता है। स्थिर लग्न शुभाशुभ से दृष्ट युत होने पर जाने वाले की यात्रा नहीं होती है ॥ २३ ॥

द्विस्वभाव राशिफल

[4]द्विमूर्तिराशी उदयं प्रपन्ने क्रूरग्रहैर्युक्तनिरीक्षिते च।
प्रयाति यद्यप्यबुधस्तदानीं निवर्तनं शत्रुजनाभिभूतः ॥ २४ ॥

जब कि प्रश्न के समय द्विस्वभाव राशि लग्न पाप ग्रह से युत दृष्ट प्राप्त होती है तो जाने वाला मूर्ख शत्रुओं से पीड़ित होकर लौटता है। ऐसा समझना चाहिये ॥२४॥

विजय योग

लग्नोपेतौ जीवचंद्रौ प्रयाणे षष्ठे यातौ भौममंदौ जयः स्यात्।
तद्वल्लाभे सौम्यशुक्रौ च जीवे कर्मण्यर्के वांछितार्थस्य सिद्धिः ॥ २५ ॥

यात्रा लग्न में गुरु, चन्द्र व छठे भाव में मंगल, शनि होने पर विजय तथा ग्यारहवें बुध, शुक्र, गुरु, १० में सूर्य होने पर अभीष्ट की सिद्धि होती है ॥ २५ ॥

अन्य जय योग

[5]मनोरमा भूर्यदि पृच्छतः स्यान्मांगल्यवस्तुश्रुतिदर्शने स्तः।
यद्यादरात्पृच्छति च ग्रहज्ञं तदादिशेदस्ति जयस्तवेति ॥ २६ ॥

---

१. ज्यो. नि. १८३ पृ. ११ श्लो.। २. ज्यो. नि. १८३ पृ. १२ श्लो.।
३. ज्यो. नि. १८३ पृ. १३ श्लो.। ४. ज्यो नि. १८३ पृ. १४ श्लो.।
५. मु. चि. ११ पृ. ४ श्लो. पी. टी.।

सुन्दर भूमि में यदि प्रश्नकर्ता के पूछने पर मांगलिक वस्तुओं का दर्शन होवें तथा आदर से प्रश्न हो तो ज्योतिषी को विजय का आदेश देना चाहिये ॥ २६ ॥

मनोरमा भूमि लक्षण

मधुरफलकुसुमक्षीरद्रुमसलिलधेनुविश्रमणात् ।
चरणमुखा या भूमिर्मनोरमा सा विनिर्दिष्टा ॥ २७ ॥

मीठे फल, पुष्प क्षीरी वृक्ष, जल व गाय के चरण से विप्लावित भूमि मनोरमा भूमि होती है ॥ २७ ॥

शुक्र विचार

अथ शुक्रविचार:—

स्वल्पेऽपि नार्थः प्रतिशुक्रयाने यियासतां सिद्धिमुपेति नूनम् ।
कामं व्रजेद्वा प्रतिशुक्रमस्ते गते तु यायाद्विजगीषुरत्र ॥ २८ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि प्रति शुक्र में गमन करने पर जाने वालों को अल्प भी अर्थ की सिद्धि नहीं होती है । यदि प्रतिशुक्र या शुक्रास्त में यात्रा करना आवश्यक हो तो गौ या ब्राह्मण को आगे करके जाना चाहिये ॥ २८ ॥

नष्ट अस्त शुक्र यात्रा

न राजते भूरिगुणान्वितापि व्यर्थव्ययस्य क्षितिपस्य यात्रा ।
शुक्रे प्रनष्टे धनदर्पितस्य विवाहयात्रेव जरार्दितस्य ॥ २९ ॥

धन के घमण्ड से व्यर्थ व्यय करने वाला राजा यदि शुभ लग्नादि में भी शुक्रास्त या प्रतिशुक्र में यात्रा करता है तो वह व्यर्थ होती है जैसे जरार्दित (बुढ़ापे से दुःखी) व्यक्ति की बारात उसके लिये कष्ट कारक होती है ॥ २९ ॥

नष्ट सेना योग

[1]प्रतिशुक्रं प्रतिवुधं प्रत्यंगारकमेव च ।
बलेन शक्रतुल्योऽपि हतसैन्यो निवर्तते ॥ ३० ॥

जो कि राजा सामने शुक्र या बुध या मंगल के होने पर यात्रा करता है चाहे वह इन्द्र समान पराक्रमी हो तो भी सेना नष्ट करके वापिस आता है ॥ ३० ॥

यात्रा निषेध

गर्गः –
वक्रे नीचे पुरस्थे वास्तंगते विबले सति ।
नैव यात्रां नृपः कुर्यात्तद्वत्सोमसुतेऽपि वा ॥ ३१ ॥

गर्गाचार्यजी ने बताया है कि शुक्र के वक्र, नीच, पुरस्थ वा अस्त या निर्बल होनेपर राजा को यात्रा नहीं करनी चाहिये ऐसे ही बुध के वक्रादि होने पर भी ॥ ३१ ॥

---

१. व. सं. ३७ अ० ९५ श्लो. ।

पराजय योग

श्रीपतिः—

नीचगे ग्रहजिते प्रतिलोमे भार्गवे कलुषितेस्तगतेपि वा।
प्रस्थितो नरपतिः प्रबलोपि क्षिप्रमेव वशमेति रिपूणाम् ॥ ३२ ॥

आचार्य श्रीपति जी ने बताया है कि नीचस्थ, ग्रह से पराजित, वक्र, पीड़ित या अस्त शुक्र में प्रबल भी राजा गमन करता है तो शीघ्र ही शत्रुओं के वशीभूत होता है ॥ ३२ ॥

एवंविधेप्यस्फुजिति प्रयायाद् बुधो यदि स्यादनुकूलवर्ती।
प्रतींदुजं भूमिपतेर्गतस्य नान्ये ग्रहास्त्राणविधौ समर्थाः ॥ ३३ ॥

इस प्रकार के अर्थात् उक्त शुक्र होने पर भी जब बुध अनुकूल हो तो यात्रा करनी चाहिये। और बुध सम्मुख होने पर राजा के गमन में अन्य ग्रह रक्षा करने में समर्थ नहीं होते हैं ॥ ३३ ॥

त्रिविध शुक्र का सम्मुखत्व

उदयति दिशि यस्यां याति यत्र भ्रमाद्वा
विचरति च भचक्रे येषु दिग्द्वारभेषु।
त्रिविधमिह सितस्य प्रोच्यते सन्मुखत्वं
मुनिभिरुदय एव त्यज्यते तत्प्रयत्नात् ॥ ३४ ॥

जिस दिशा में शुक्र उदित होता है, जिसमें भ्रमण करता है और राशि चक्र के जिस द्वार नक्षत्र में रहता है ये ३ प्रकार का शुक्र का सन्मुखत्व होता है। इसमें जिस दिशा में उदय होता है उसी का यात्रा में त्याग करना चाहिये ॥ ३४ ॥

त्याज्य दिशा

लग्नप्राच्यादितश्चक्रेपसव्यभ्रमणक्रमात्।
यत्र स्थाने स्थितः शुक्रः तां दिशं परिवर्जयेत् ॥ ३५ ॥

लग्न को पूर्व दिशा मानकर वाम भ्रमण से चक्र की कल्पना करके जिस दिशा में शुक्र हो उसका त्याग करना चाहिये ॥ ३५ ॥

प्रतिशुक्राशनिपृष्ठिहितादिगधः कुरुते नृपतिगमने भवतः।
मदिरामुदिता मदनाकुलिता प्रमदेव कुलापरवेश्मगताः ॥ ३६ ॥

सम्मुख शुक्र, पीछे शनि और अशुभ दिशा में गमन करने पर शराब से उन्मत्त, काम से पीडित जैसे कुल स्त्री दूसरे के घर चली जाती हैं उसी प्रकार गमन का फल होता है ॥ ३६ ॥

क. ज्यो. नि. १९६ पृ. २ श्लो.।

भङ्ग, रोग देने वाली यात्रा

वसिष्ठ:—

[1]शुक्रे चास्तं गते यत्र चन्द्रे चास्तमुपागते।
तयोर्वृद्धे च बाल्ये च सा यात्रा भंगरोगदा ॥ ३७ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि शुक्र व चन्द्र के अस्त बाल्य या वृद्ध काल में देशान्तर गमन करने पर भङ्गता और रोग की लब्धि होती है ॥ ३७ ॥

श्रेष्ठ, मध्य, लम्बी यात्रा

गर्ग:—

[2]श्रेष्ठा सिंहाजचापेऽर्के मध्या ज्ञाक्युंशनो भगे।
मीनकर्कालिगे दीर्घा मार्गेऽर्कः पृष्ठगः शुभः ॥ ३८ ॥

गर्गाचार्य ने बताया है कि सिंह, मेष, धनु के सूर्य में श्रेष्ठ, मिथुन, कन्या, मकर, कुंभ, वृष, तुला के सूर्य में मध्यम, मीन, कर्क, वृश्चिक के सूर्य में लम्बी यात्रा होती है। यात्रा में पीछे सूर्य रहने पर शुभ होता है ॥ ३८ ॥

ग्रन्थान्तर से श्रेष्ठादि यात्रा

वराहः—

[3]यात्राजसिंहतुरगोपगते वरिष्ठा मध्या शनैश्चरबुधाशनसां गृहेषु।
भानौ कुलीरझषवृश्चिकगे विहीना शस्तेति देवलमतऽध्वनिपृष्ठतार्कः ॥३९॥

आचार्य वराह ने बताया है कि मेष, सिंह, धनु के सूर्य में यात्रा उत्तम, मकर, कुम्भ, मिथुन, कन्या, तुला, वृषस्थ सूर्य में मध्यम और कर्क, मीन वृश्चिक के सूर्य में अधम यात्रा होती है। देवल ऋषि के मत में गमन के समय सूर्य पीछे शुभ होता है ॥ ३९ ॥

विजय काल

लल्ल:—

[4]अथ भवति विजयसमयश्चैत्रे ज्येष्ठे च मार्गशीर्षे च।
सद्योरिव्यसनेऽपि च महीपतेः शक्तियुक्तस्य ॥ ४० ॥

आचार्य लल्ल ने बताया है कि चैत, जेठ, अगहन में शक्ति संपन्न राजा की शत्रु नाशक यात्रा में शीघ्र ही विजय होती है ॥ ४० ॥

---

१. व. सं. ३७ अ. ८७ श्लो.।

२. ज्यो. नि. १८५ पृ.।

३. मु. चि. ११ प्र. ८ श्लो. पी. टी.।

४. ज्यो. नि. १८५ पृ. ३ श्लो.।

ग्रन्थान्तर से मास फल

रत्नकोशे—

यात्रा वैशाखमासे भवति नरपतेः कोशहस्त्यश्वलाभो
ज्येष्ठाषाढे कथंचिद्भवति यदि गमो मध्यमा कार्यसिद्धिः।
भाद्रे वा श्रावणे वा युवतिगृहगते चार्थलाभः प्रदिष्टः
कल्याणं देशवृद्धिः सितभवनगते रोगशोकौ च मार्गे ॥ ४१ ॥
मासे पौषे तु यात्रा भवति नरपतेरर्थसिद्धिप्रदात्री
माघे वा फाल्गुने वा भवति यदि गमो मध्यमा कार्यसिद्धिः।
चैत्रे कार्यप्रणाशो भवति नरपतेः शत्रुसंघस्य वृद्धिः
प्राहुः सर्वे मुनींद्राः सकलफलमिदं निष्फलं प्राहुरेके ॥ ४२ ॥

रत्नकोश में कहा है कि राजा की वैशाख में यात्रा होने पर धन, हाथी, घोड़ा का लाभ, ज्येष्ठ, आषाढ में किसी कारण से यात्रा होने पर कार्य की सिद्धि मध्यम, भादों या सावन या कन्या के सूर्य में अर्थात् आश्विन में परदेश गमन से धनलाभ, वृष, तुला के सूर्य में देश वृद्धि व कल्याण, अगहन में रोग, शोक, पौष में राजा की यात्रा होने पर अर्थ सिद्धि प्रद और माघ, फागुन में देशान्तर गमन से मध्यम कार्य सिद्धि, चैत में यदि राजा यात्रा करता है तो कार्य का नाश एवं शत्रु की वृद्धि होती है तथा किसी एक मत में चैत में फल हीन है। ये पूर्वोक्त फल श्रेष्ठ ऋषियों ने बताये हैं ॥ ४१–४२ ॥

वर्षा में गमन निषेध

कालिदासः—

[क]ईषत्तडिद्दासवतीमधिक्रियां घनांबरां शक्रधनुःकटाक्षिणीम्।
शिखिस्वनां वृत्तपयोधरां सुधीः प्रावृड्वशामेत्य न यानमिच्छति ॥४३॥

जैसे—विजली जैसे चमकीले व गाढ़े वस्त्र पहनी हुई, रंगीन कटाक्षों वाली, मधुरवाणी तथा गोल गोल स्तनों वाली होने पर भी वह स्त्री गमन के योग्य नहीं होती जो ऋतुमती हो। ऐसे ही जिस ऋतु (वर्षा) में विजली चमकती हो, आकाश मेघों से आच्छन्न हो, इन्द्रधनुष दीखते हों, मोर नाच रहे हों पयोधरों (मेघों) के झुण्ड लहरा रहे हों उसमें कौन विद्वान् गमन (यात्रा) करना चाहेगा ॥ ४३ ॥

स्वयं लसच्छाद्वलकार्द्रचीवराध्वनीभुजावंधितपांथपद्धतिः।
नवांबुदासिंचितपर्वतस्तनावनीय वर्षासु चरद्वधूसखी ॥ ४४ ॥

वर्षा काल में यह पृथ्वी स्वयं ही घुमक्कड़ वहू की तरह हो जाती है जबकि वर्षा से गीले घास इसके गीले वस्त्रों जैसे दीखते हैं। रास्ते इसकी भुजाओं की तरह फैले हैं जिनमें इसने पथिकों को पकड़ा है, और उमड़ते हुए मेघों से बरसते पानी द्वारा इसके पर्वतरूपी स्तन भीगे रहते हैं ऐसी वर्षारूप वहू के साथ कौन यात्राकरे ॥ ४४ ॥

क. ज्यो. नि. ११ प्र. ७ श्लो.।

यात्रा में वर्जित सूर्य

योगयात्रायाम्—

यात्रा नृपस्य शरदीष्टफला मधौ च छिद्रे रिपोर्न नियमोस्ति च केचिदाहुः ।
छिद्रेप्यरेर्भवति दैवयुतस्य सिद्धिः सीमान्यमामिपमिदं प्रतिभूमिपानि ॥४५॥

योगयात्रा में कहा है कि राजा को शरद और वसन्त काल में की हुई यात्रा अभीष्ट फल देने वाली होती है, कोई कहते हैं कि ऐसा कोई नियम नहीं है जब भी शत्रु को छिद्र युक्त (कमजोर) देखे तभी उस पर चढ़ाई कर दे। कमजोर शत्रु पर भी भाग्य अच्छा हो तभी सफलता मिलती है। क्योंकि उसकी सीमा से सटे अन्य राजा उसकी सहायता कर सकते हैं ॥ ४५ ॥

बादरायण:—

सिंहे धनुषि मीने च स्थिते सप्त तुरंगमे ।
यात्रोद्वाहौ गृहारंभक्षौरकार्याणि वर्जयेत् ॥ ४६ ॥

ऋषि बादरायण ने बताया है कि सिंह, धनु, मीन राशिस्थ सूर्य में यात्रा. विवाह, गृहारम्भ और क्षौर कार्य का त्याग करना चाहिये ॥ ४६ ॥

यात्रा में त्याज्य तिथि

लल्ल:—

तिथिं चतुर्थीं नवमीं चतुर्दशीं षष्ठीं कुहूं द्वादशिकां विहाय ।
अन्याः शुभाः स्युस्तिथयः प्रयाणे त्याज्या तथा योगिनिपूर्विका तिथिः ॥४७॥

आचार्य लल्ल ने कहा है कि चौथ, नवमी, चौदस, षष्ठी, अमावास्या व द्वादशी तिथि को छोड़कर अन्य तिथि यात्रा में शुभ हैं तथा शुभ तिथि के दिन अशुभ योगिनी का भी त्याग करना चाहिये ॥ ४७ ॥

शुभ तिथि ज्ञान

रत्नकोशे —

[1]एकादशी द्वितीया त्रयोदशी पूर्णिमा तृतीया च ।
श्रेष्ठा प्रतिपद्दशमी सप्तमी पंचमी याने ॥ ४८ ॥

रत्नकोश में कहा है कि एकादशी, द्वितीया, तेरस, पूर्णिमा, तृतीया, प्रतिपदा, दशमी, सप्तमी एवं पञ्चमी तिथि यात्रा में श्रेष्ठ होती है ॥ ४८ ॥

ख. ज्यो. वि. ११ प्र. ८ श्लो. ।

१. ज्यो. नि. १८५ पृ. ।

ग्रन्थान्तर से शुभाशुभ तिथि

बृहस्पतिः—

[1]सर्वासु तिथयः शस्ताः शुक्ले त्वाद्यत्रिकं विना।
कृष्णे चांत्यत्रिकं चैव षष्ठीं रिक्तां च वर्जयेत् ॥ ४९ ॥

आचार्य बृहस्पति जी ने बताया है कि शुक्ल पक्ष का आद्य तृतीयांश और कृष्ण पक्षीय अन्तिम तीसरा भाग, षष्ठी और रिक्ता तिथियों को छोड़कर अन्य तिथियों में यात्रा शुभ होती है ॥ ४९ ॥

योगयात्रायामपि—

तिथिं चतुर्थीं नवमीं चतुर्दशीं विहाय विष्टि करणं च गच्छतः।
भवंति चामीकरवाजिवारणी चतुर्थिपूर्वास्तु तदाप्तिवारणाः ॥ ५० ॥

योगयात्रा में भी कहा है कि चौथ, नवमी, चौदस, भद्रा तथा करण को छोड़कर यात्रा करने पर यात्रा करने वाले को सुवर्ण, घोड़े, हाथी की प्राप्ति होती है और चतुर्थी आदि में उनकी हानि होती है ॥ ५० ॥

तिथि दोष का परिहार

अथ तिथिदोहदम्—

रामः—

[2]पक्षादितोर्कदलतंडुलवारिसर्पिःश्राणा हविष्यमपि हेमजलं त्वपूपम्।
भुक्त्वा व्रजेद्रुचकमंबु च धेनुमूत्रं यावान्नपायसगुडान् रुधिरं च मुद्गान् ॥५१॥

मुहूर्तचिन्तामणि में बताया है कि प्रतिपदा के दिन आक का पत्ता, द्वितीया में चावल जल (माँड़), तृतीया में घी, चौथ में इमली, पञ्चमी में मूंग, छट्ठ में सुवर्ण प्रक्षालित जल, सप्तमी में मालपुआ, अष्टमी में बिजौरा, नवमी में जल, दशमी में गोमूत्र, एकादशी में जौ, द्वादशी में खीर, तेरस में गुड़, चौदस में खून और पञ्चदशी के दिन मूंग का भक्षण या दर्शन या स्पर्श करके यात्रा करने से तिथि दोष नहीं रहता ॥ ५१ ॥

स्पष्टार्थ चक्र

१	२	३	४	५	६	७	८	९
आकपत्ता	चावल का जल	घी	इमली	मूंग	सुवर्णजल	मालपुआ	बिजौरा	शुद्धजल
१०	११	१२	१३	१४	१५	३०	तिथि भक्ष्य	
गोमूत्र	जौ	खीर	गुड़	रुधिर	मूंग	सर्वदा त्याग		

१. ज्यो. नि. १८५ पृ.।
२. मु. चिं. ११ प्र. ८५ श्लो.।

योगिनी

लल्लः—

[1]पूउ आनैदपावाई दिक्षु प्रतिपदादितः।
योगिनी सन्मुखे त्याज्या द्यूते वादे रणे गमे ॥ ५२ ॥

आचार्य लल्ल ने बताया है कि प्रतिपदादि से पूर्व, उत्तर, अग्निकोण, नैऋत्य कोण, दक्षिण, पश्चिम, वायव्य, ईशान कोण में तिथि क्रम से दिशाओं में योगिनी निवास होता है। जुआ, विवाद, युद्ध, यात्रा में सन्मुख योगिनी का त्याग करना चाहिये ॥५२॥

अन्यत्रापि—

प्रतिपन्नवमी पूर्वे द्वितीया दश चोत्तरे।
तृतीयैकादशी वह्नौ चतुर्द्वादशि नैऋते ॥ ५३ ॥
पंचत्रयोदशी याम्ये षष्ठी भूतश्च पश्चिमे।
सप्तमी पूर्णवायव्ये अमावास्याष्टमी शिवे ॥ ५४ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि प्रतिपदा, नवमी तिथि में पूर्वदिशा में योगिनी निवास, द्वितीया, दशमी में उत्तर में, तृतीया, एकादशी में अग्नि कोण में, चतुर्थी, द्वादशी में नैऋत्यकोण में, पञ्चमी, तेरस में दक्षिण में, षष्ठी, चौदस में पश्चिम में, सप्तमी, पूर्णिमा में वायव्य में और अमावास्या व अष्टमी तिथि में योगिनी ईशान कोण में होती है ॥ ५३–५४ ॥

स्पष्टार्थ चक्र

पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	दिशा
१।९	३।११	५।१३	४।१२	६।१४	१।१५	२।१०	८।३०	तिथि

अन्यः

शतमखेंदुहुताशनरक्षसां यमजलेशसमीरणशूलिनाम्।
दिवि भुवि क्रमशः परिवर्तते सिततिथिप्रथमादिषु योगिनी ॥ ५५ ॥

पूर्व, उत्तर, अग्नि, नैऋत्य दक्षिण, पश्चिम, वायव्य और ईशान दिशाओं में शुक्ल पक्ष की प्रतिपदादि से योगिनी जाननी चाहिये ॥ ५५ ॥

योगिनी फल

योगिनी सुखदा वामे पृष्ठे वांछितदायिनी।
दक्षिणे धनहंत्री च सन्मुखे मरणप्रदा ॥ ५६ ॥

यात्रा में बायीं तरफ योगिनी होने पर सुख, पीछे होने पर मनोरथ की सिद्धि, दाहिनी ओर होने पर धन नाश और सन्मुख योगिनी में जाने वाले का नाश होता है ॥ ५६ ॥

१. ज्यो. नि. १८६ पृ. ३३ श्लो.।

तिथियों में काल गति

निऋतिवारुणवायुधनाधिपेश्वरशचीपतिवह्नियमेषु च ।
प्रतिपदादिषु कालगतिर्भवत्यशुभदा खलु सन्मुखवामगा ॥ ५७ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ईशान, पूर्व, अग्नि, दक्षिण दिशाओं में प्रतिपदादि तिथियों में काल गति होती है। यह यात्रा के समय सामने व बांये अशुभ दायिनी होती है ॥ ५७ ॥

सूर्यवार में यात्रा का फल

बृहस्पतिः—
सूर्यवारे प्रयातस्य यात्रा योगं विना विभोः ।
वायुरोगभवा पीडा कफपित्तोद्भवा तथा ॥ ५८ ॥

रविवार में विना योग के यात्रा करने पर वायु रोग जन्य तथा कफ, पित्त से उत्पन्न पीड़ा होती है ॥ ५८ ॥

सोमवार में यात्रा का फल

शक्ति हानिं च प्राप्नोतिनिशानाथ दिने गतः ।
विषाग्निशस्त्रतो घातैः पीडयते पैत्तिकामयैः ॥ ५९ ॥

विना योग के सोमवार में प्रयाण करने पर शक्ति हानि, जहर, अग्नि, शस्त्र से घात और पित्त रोग से पीड़ा होती है ॥ ५९ ॥

भौम बुधवार में यात्रा का फल

कुजवारे प्रयाता यो धनान्गंतासृगामयैः ।
बुध्वा स्वमंत्रशक्त्या वा जयेच्छत्रून् धनं लभेत् ।
यशसा वाहनादेश्च बुधवार गतोन्वहे ॥ ६० ॥

मंगलवार में यात्रा करने पर धनप्राप्ति और रक्तविकार होते हैं अथवा अपनी मन्त्र शक्ति से शत्रु को हराकर धन प्राप्त करता है, बुधवार में यात्रा करने से यश पूर्वक वाहनादि की प्राप्ति होती है ॥ ६० ॥

गुरुवार में यात्रा का फल

धनान्गंते धरादींश्च श्रियोन्यानाप्नुयाद्गुरौ ।
धनधान्यसमृद्धि च सर्वकार्याणि सिद्धिदम् ॥ ६१ ॥

गुरुवार में यात्रा करने पर धन-भूमि और शत्रु की संपत्ति प्राप्त होती है। धनधान्य की समृद्धि और सब कामों की सिद्धि होती है ॥ ६१ ॥

शुक्रवार में यात्रा का फल

वरस्त्रियो धनं कीर्तिविजयं मानसं सुखम् ।
शुक्रवारे गतो यात्रां लब्ध्वा जयमवाप्नुयात् ॥ ६२ ॥

शुक्रवार में यात्रा करने पर श्रेष्ठ स्त्री, धन, यश, विजय, मानसिक सुख प्राप्त होता है ॥ ६२ ॥

शनिवार में यात्रा का फल

युद्धे निर्जितत्तां गत्वा मृत्युबंधाय चाव्रजेत् ।
धनबन्धुविनाशश्च मंदवारे गतो नृपः ॥ ६३ ॥

शनिवार में गमन करने पर राजा युद्ध में निर्जित होकर धन व बान्धवों को नष्ट करके मृत्यु, बन्धन को प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥

ग्रन्थान्तर में वारों में गमन का फल

गर्गः —
गमनेर्कादयो वाराः क्रमेण कुर्वते फलम् ।
नैस्वं धनागमं रोगं धनं जयश्रियं वधम् ॥ ६४ ॥

गर्गाचार्यजी ने बताया है कि सूर्यादि वारों में गमन करने पर क्रम से निर्धनता, धनागम, रोग, धन, जय, लक्ष्मी व वध फल होता है ॥ ६४ ॥

वार वश पूर्वादि गमन में निषेध

श्रीपतिः—
शुक्रादित्यदिने न वारुणदिशं न ज्ञे कुजे चोत्तरां
मंदेन्द्वोश्च दिने न शक्रककुभं याम्यां गुरौ न व्रजेत् ।
शूलानीति विलंघ्य यांति मनुजा ये वीतसौख्याशया
भ्रष्टाशाः पुनरापतंति यदि ते शक्रेण तुल्या अपि ॥ ६५ ॥

आचार्य श्रीपतिजी ने बताया है कि शुक्र, रविवार के दिन पश्चिम दिशा में, मंगल, बुधवार में उत्तर, शनि व सोमवार में पूर्व और गुरुवार के दिन दक्षिण दिशा में गमन नहीं करना चाहिये । इन दिक् शूलों का उलंघन करके जो लोग इनमें यात्रा करते हैं, वे असुविधा या असुख से आशा का त्याग कर लौटते हैं चाहें वे लोग इन्द्र के समान भी हों ॥ ६५ ॥

दिशा शूल

दैवज्ञवल्लभे—
[1]चन्द्रे मंदे न च प्राचीं न गच्छेद्दक्षिणां गुरौ ।
न प्रतीचीं रवौ शुक्रे बुधे भौमे न चोत्तराम् ॥ ६६ ॥

दैवज्ञवल्लभ में बताया है कि सोम व शनिवार के दिन पूर्व की, गुरुवार के दिन दक्षिण की, सूर्य, शुक्रवार के दिन पश्चिम की और मंगलवार व बुधवार की दिन उत्तर दिशा में यात्रा नहीं करनी चाहिये ॥ ६६ ॥

स्पष्टार्थ चक्र

वार	सूर्य	चन्द्र	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
दिशा	पश्चिम	पूर्व	उत्तर	उत्तर	दक्षिण	पश्चिम	पूर्व

१. ज्यो. नि. १८५ पृ. १५ श्लो. ।

कोण शूल ज्ञान

गर्गः—

नाग्निकोणे गुरौ चन्द्रे नैर्ऋत्ये नार्कशुक्रयोः।
मारुते न कुजे गच्छेदीशाने न कुजार्कजे ॥ ६७ ॥

आचार्य गर्गजी ने बताया है कि गुरु, सोमवार के दिन अग्नि कोण में, शुक्र, सूर्यवार में नैर्ऋत्य कोण में, भौमवार में वायव्य कोण में और शनि बुध में ईशान कोण में यात्रा नहीं करनी चाहिये ॥ ६७ ॥

स्पष्टार्थ चक्र

कोण	अग्नि	नैर्ऋत्य	वायव्य	ईशान
वार	चन्द्र, गुरु	सूर्य, शुक्र	मंगल	शनि, बुध

कालवास ज्ञान

भृगुः

रवौ कुबेरे शशिवायुभागे भौमे प्रतीचीं बुधनैर्ऋते च।
याम्यां गुरौ वह्निदिशास्तु शुक्रे शनौ च कालो निवसेच्च पूर्वे ॥६८॥

ऋषि भृगुजी ने बताया है कि रविवार के दिन उत्तर, सोमवार के दिन वायुकोण, मंगलवार के दिन पश्चिम, बुधवार के दिन नैर्ऋत्य कोण, गुरुवार के दिन दक्षिण, शुक्रवार के दिन अग्नि कोण और शनिवार के दिन पूर्व में काल का वास होता है ॥ ६८ ॥

स्पष्टार्थ चक्र

वार	रवि	सोम	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
कालवास	उत्तर	वायव्य	पश्चिम	नैर्ऋत्य	दक्षिण	आग्नेय	पूर्व

दिशाओं में लाभप्रद वार

प्राच्यां याने कुजे लाभो मंदेन्द्वोर्दक्षिणे सुखम्।
ज्ञे गुरौ पश्चिमे सिद्धिः शुक्रेऽर्के चोत्तरे शुभम् ॥ ६९ ॥

मंगलवार के दिन पूर्व दिशा में गमन करने पर लाभ, शनि, सोमवार में दक्षिण में जाने से सुख, बुध, गुरुवार में पश्चिम जाने पर सिद्धि और शुक्र, रविवार में उत्तर दिशा में यात्रा करने पर शुभ होता है ॥ ६९ ॥

स्पष्टार्थ चक्र

वार	भौम	शनि चंद्र	बुध, गुरु	शुक्र, रवि
दिशा	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
फल	लाभ	सुख	सिद्धि	शुभ

पशु गमन में निषेध

बुधवारो निषिद्धः स्यात्पशूनां गमने बुधैः ।
शुक्रवारे तथा स्त्रीणां योजनायाः परं सदा ॥ ७० ॥

यदि एक योजन (चार कोस) से दूर की यात्रा करनी हो तो विद्वानों ने पशु यात्रा में बुधवार का निषेध किया है तथा स्त्रियों की यात्रा का शुक्रवार में त्याग करना चाहिये ॥ ७० ॥

वार दोहद (वार शूल परिहार)

अथ वारदोहदम्—

बृहस्पतिः—
[1]सूर्यवारे घृतं प्राश्य सोमवारे पयस्तथा ।
गुडमंगारवारे च बुधवारे तिलानपि ॥ ७१ ॥
गुरुवारे दधि प्राश्य शुक्रवारे यवानपि ।
माषान्भुक्त्वा शनेर्वारे शूलदोषोपशान्तये ॥ ७२ ॥

आचार्य बृहस्पतिजी ने बताया है कि सूर्य वार के दिन घी खाकर, सोमवार के दिन दूध पीकर, मंगलवार के दिन गुड़ खाकर, बुधवार के दिन तिल, गुरुवार के दिन दही खाकर, शुक्रवार के दिन जौ और शनिवार के दिन उड़द का भक्षण करके जाने पर वार शूल का दोष नहीं होता है ॥ ७१–७२ ॥

स्पष्टार्थ चक्र

७ वार	सूर्य	चन्द्र	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
भक्ष्य पदार्थ	घी	दूध	गुड़	तिल	दही	जौ	उड़द

प्रकारान्तर से वार शूल अपवाद

[2]प्रियंवदं रवेर्वारे शय्यामध्युष्य शीतगोः ।
[3]मृदं धृत्वा धरासूनोर्वारे बौधे तु रुद्रधृक् ॥ ७३ ॥
[4]भस्मभृज्जीववारे च क्षिप्त्वा यष्टिर्भृगोर्दिने ।
कलद्रो मंदवारे च यातुः तत्त्वान्यमी क्रमात् ॥ ७४ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि रविवार के दिन मीठा बोल कर, सोमवार में खाट पर बैठकर, भीमवार के दिन मिट्टी धारण करके, बुधवार में रुद्र (अक्ष माला) धारण

१. मु. चि. ११ प्र. १० श्लो. पी. टी. में तथा ज्यो. नि. पृ. सं. १८७ में 'शूले गच्छन् न दोषकृत्' ।
२. ज्यो. नि. १८७ पृ. ११
३. 'गयावृत्तो धरासूनोर्वारे ज्ञस्य तु हारधृक्' ज्यो. नि. में है ।
४. 'छित्त्वा' ज्यो. नि. में है ।

करके, गुरुवार में भस्म धारण करके, शुक्रवार के दिन लकड़ी छोड़कर यात्रा करनी चाहिये और शनिवार के दिन यात्रा करने पर कलह होता है ॥ ७३–७४ ॥

स्पष्टार्थ चक्र

वार	सूर्य	चन्द्र	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
धारण वस्तु	मीठा वचन	खाट पर स्थित होकर	मिट्टी	अक्ष माला	भस्म	लकड़ त्याग	कलह

पुनः वार शूल का प्रकारान्तर से परिहार

अर्कादौ धारयेद्याने कुंकुमं चन्दनं मृदम् ।
यवान्दधिघृतं तैलं वारशूलापनुत्तये ॥ ७५ ॥

सूर्य वार के दिन रोली धारण करके, सोमवार में चन्दन, मंगलवार में मिट्टी, बुध में जौ, गुरु में दही, शुक्र में घी और शनिवार को तेल लगाकर यात्रा करने से वार शूल का दोष नहीं होता है ॥ ७५ ॥

तांबूलं चन्दनं मृच्च पुष्पं दधि घृतं तिलाः ।
वारशूलहराण्यर्काद्दानाद्धारणतोदनात् ॥ ७६ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि रविवार के दिन पान, सोमवार के दिन चन्दन, मंगलवार के दिन मिट्टी, बुधवार के दिन पुष्प, गुरुवार में दधि (दही), शुक्रवार में घी और शनिवार के दिन तिल का दान या धारण या अशन करने पर वार शूल के दोष का दूरी करण होता है ॥ ७६ ॥

स्पष्टार्थ चक्र

वार	सूर्य	चन्द्र	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
दान धारण अशन	पान	चन्दन	मिट्टी	पुष्प	दही	घी	तिल

वार शूल में घटिकाओं का त्याग

सोमे मंदे विंशतिः पूर्वनाड्यो भौमे सौम्ये चोत्तरे षोडशेषु ।
अर्के शुक्रे पश्चिमे भानुसंख्या याम्ये अष्टौ अंगिरा वारदोषाः ॥ ७७ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि सोम, शनिवार में पूर्वदिशा गमन में प्रथम २० घटी का, मंगल, बुधवार में उत्तर यात्रा में १६ घटी का, सूर्य शुक्रवार में पश्चिम जाने में १२ घटीका और गुरुवार में दक्षिण यात्रा में आठ घटी का त्याग करने से वार दोष नहीं होता है ॥ ७७ ॥

स्पष्टार्थ चक्र

वार	सूर्य	सोम	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
दिशा	पश्चिम	पूर्व	उत्तर	उत्तर	दक्षिण	पश्चिम	पूर्व
घटी	१२	२०	१६	१६	८	१२	२०

पुनः अपवाद

रवौ नीलं बुधे पीतं कृष्णवर्णं शनैश्चरे।
श्वेतं गुरौ भृगौ भौमे रक्तं सोमे च चित्रकम् ॥ ७८ ॥
नित्ययोगोद्भवाश्चैव नक्षत्रतिथिवारजाः।
शुभाशुभं ग्रहोत्थाश्च सर्वे दोषाः शमं ययुः ॥ ७९ ॥

रविवार के दिन नील वस्तु, बुध में पीला, शनि में काली, गुरु में सफेद, शुक्र, भौमवार में लाल और सोमवार के दिन चित्रित वस्तु का दान या धारण करने से नक्षत्र, तिथिवार जन्य व नित्ययोगोद्भव, तथा ग्रहों से उत्पन्न समस्त दोषों का शमन होता है ॥ ७८–७९ ॥

होरा कथन

अथ होराकथनम्—

[१]वारात्षष्ठस्य षष्ठस्य होरा सार्द्धद्विनाडिका।
अर्कशुक्रौ बुधचन्द्रौ मन्दो जीवो धरासुतः ॥ ८० ॥

स्वकीयवार से छठे, छठे वार की होरा होती है। एक होरा ढाई घटी की होती है। उनका सूर्य, शुक्र, बुध, चन्द्र, शनि गुरु, मंगलवार के क्रम से होता है। अर्थात् रविवार के दिन प्रथम सूर्य की, दूसरी शुक्र की, तीसरी बुध की, चौथी चन्द्रमा की, पाँचवी शनि की, छठी गुरु की और सातवीं मंगल की पुनः इसी क्रम से सूर्यादि की होरा होती है ॥ ८० ॥

सूर्य होरा गमन में लक्षण

[२]सूर्यस्य होरे रजकीसुवस्त्रं कुमारिका विप्रचतुष्टयं च।
काकत्रयं द्वौ नकुलौ तथैव चाषस्तथैको वृषभस्तु गौश्च ॥ ८१ ॥

सूर्य की होरा में यात्रा करने से मार्ग में धोबिन, सुन्दर वस्त्र, कन्या, चार ब्राह्मण, तीन कौवा, दो चाष, १ बैल, १ गाय ये शकुन (दीखना) शुभ होते हैं ॥ ८१ ॥

चन्द्र होरा गमन में लक्षण

[३]चंद्रस्य होरे द्विजयुग्मकाकभेरीमृदंगानकुलः खरोष्ट्रौ।
हरिश्च गामेषशुनस्तथैव पुष्पाणि नारी द्वयमेव मार्गे ॥ ८२ ॥

१. ज्यो. सा. १७४ पृ.। २. ज्यो. सा. १७४ पृ.।
३. ज्यो. सा. १७५ पृ. ५–१० श्लो. =८२–८७ श्लो.।

चन्द्रमा की होरा में यात्रा करने से मार्ग में दो ब्राह्मण, कौआ, नगाड़ा, मृदंग, नेवला, गधा, ऊँट, घोड़ा, गाय, मेंढा, कुत्ता, फूल और दो स्त्री शुभ सूचक होते हैं।।८२।।

मंगल होरा गमन में लक्षण

मार्जारयुद्धं कलहः कुटुंबे रजस्वला स्त्रीर्भवनस्य दाहः।
नपुंसकः स्वत्रितयं द्विजश्च नग्नो विमुक्तो धरणी सुतस्य ।। ८३ ।।

भौम की होरा में यात्रा करने पर मार्ग में बिल्लियों की लड़ाई, पारवारिक कलह, रजस्वला स्त्री, जलता हुआ मकान, नपुंसक, तीन कुत्ता, नंगा ब्राह्मण ये लक्षण दीखते हैं ।। ८३ ।।

बुध होरा गमन में लक्षण

बुधस्य होरे शकुनश्च सर्वः स्त्रीपुत्रयुक्ता कलशस्तु पूर्णः।
सुचातकश्चाजगजो कुमारः पुष्पाणि नारी खलु दर्पणश्च ।। ८४ ।।

बुध की होरा में यात्रा करने पर मार्ग में पुत्र युक्त स्त्री, पानी से भरा घड़ा, चातक पक्षी, चाष, हाथी, बालक, फूल, स्त्री, दर्पण में वस्तु शुभ सूचक दृष्टि पथ पर आती है ।। ८४ ।।

गुरु होरा गमन में लक्षण

गुरोर्द्विजातिर्गणिका च धेनुस्त्रीबालयुक्ता सजला घटश्च।
ऊर्णा च काको गणिका बकश्च हंसस्यराजाबहवस्तु वैश्याः ।। ८५ ।।

गुरु की होरा में यात्रा करने पर मार्ग में ब्राह्मण, रंडी, गाय, पुत्र युक्त स्त्री, भरा हुआ घड़ा, न्यौरा, बगुला, हंसराजा और अधिक बनिया में से किसी का शुभ दर्शन अवश्य होता है ।। ८५ ।।

शुक्र होरा गमन में लक्षण

शुक्रस्य होरे गणको द्विजेन्द्रः काकत्रिकं वाथ नपुंसको वा।
मद्यं हि मांसं गणिका च धेनुर्धान्यं च शूद्रत्रितयं च वैश्यः ।। ८६ ।।

शुक्र की होरा में यात्रा करने पर मार्ग में ब्राह्मण, वेश्या, ३ काक, नपुंसक, मद्य, मांस, ज्योतिषी, गौ, धान्य, तीन शूद्र तथा वैश्य मिलते हैं ।। ८६ ।।

शनि होरा में लक्षण

पतंगसूनोर्यवनश्च नग्नो रजस्वला स्त्रीमृतकस्तथैव।
पिशाचगृध्रौ विधवा च वह्निर्नपुंसकश्चाथ युवा प्रचंडः ।। ८७ ।।

शनि की होरा में यात्रा करने पर मार्ग में नग्न (बन) यवन, रजस्वला, प्रेत, पिशाच, गोध, विधवा, अग्नि, नपुंसक, जवान और प्रचंड पुरुष प्राप्त होते हैं ।। ८७ ।।

विशेष—कार्य विशेषों में जिनका उपयोग होता है, ऐसा यहाँ न होने पर प्रेमी पाठकों के विनोदार्थ उसे बताना अनुपयुक्त न होगा। अतः 'गुर्विवाहे गमने च शुक्रो, सौम्ये बुधः सर्वकार्येषुचन्द्रः। कौजे युद्धं राजसेवा रवौ च चन्द्रे वित्तं चेति होरा क्रमादवै' ।। ८७ ।।

सर्वदिग्गमन शुभ नक्षत्र

अथ यात्रानक्षत्राणि—

बृहस्पतिः—

[1]पुष्याश्विहस्तमैत्राणि पौष्णवैष्णवसौम्यभम् ।
वासवं सर्वदिक्ष्वासु यात्रायां शोभनान्यमी ॥ ८८ ॥

आचार्य बृहस्पतिजी ने बताया है कि पुष्य, अश्विनी, हस्त, अनुराधा, रेवती, श्रवण, मृगशिरा और धनिष्ठा नक्षत्र में समस्त दिशाओं में यात्रा शुभ होती है ॥ ८८ ॥

यात्रा में घातक नक्षत्र

[2]पूर्वासु त्रिषु याम्यर्क्षे ज्येष्ठायां रौद्रभोरगे ।
सर्वाशासु गते यात्रां प्राणहानिर्भविष्यति ॥ ८९ ॥

तीनों पूर्वा, भरणी, ज्येष्ठा और आर्द्रा नक्षत्र में समस्त दिशाओं में गमन करने में प्राण की हानि (मृत्यु) होती है ॥ ८९ ॥

यात्रा के श्रेष्ठ नक्षत्र

श्रीपतिः—

[3]हस्तेंदुमैत्रश्रवणाश्वितिष्यपौष्णश्रविष्ठाश्च पुनर्वसुश्च ।
श्रेष्ठानि धिष्णानि नवप्रयाणे त्यक्त्वा त्रिपञ्चादिमसप्ततारा: ॥ ९० ॥

आचार्य श्रीपतिजी ने बताया है कि हस्त, मृगशिरा, अनुराधा, श्रवण, अश्विनी, पुष्य, रेवती व पुनर्वसु नक्षत्र ३।५।१।७ तारा संज्ञकों को छोड़कर यात्रा में उत्तम होते हैं ॥ ९० ॥

यात्रा में अनिष्ट, एवं नेष्ट नक्षत्र

चित्राविशाखानलयाम्यसार्पवायव्यपित्रेश्वरदैवतानि ।
यात्रास्वनिष्टान्यपराणि भानि स्मृतानि नेष्टानि न निन्दितानि ॥ ९१ ॥

चित्रा, विशाखा, कृत्तिका, भरणी, आश्लेषा, स्वाती, मघा, नक्षत्र यात्रा में अनिष्ट और अवशिष्ट नक्षत्र न दूषित व नेष्ट होते हैं ॥ ९१ ॥

ग्रन्थान्तर से श्रेष्ठ नक्षत्र

गर्ग:—

श्रेष्ठं प्रयाणमश्विन्यां स्याद्धनिष्ठानुराधयोः ।
पुष्ये पुनर्वसौ हस्ते रेवत्यां श्रवणे मृगे ॥ ९२ ॥

गर्गाचार्यजी ने बताया है कि अश्विनी, धनिष्ठा, अनुराधा, पुष्य, पुनर्वसु, हस्त, रेवती, श्रवण व मृगशिरा में गमन करना उत्तम होता है ॥ ९२ ॥

---

१. मु. चि. ११ प्र. ३५ श्लो. पी. टी. ।
२. मु. चि. ११ प्र. ९ श्लो. पी. टी. ।
३. ज्यो. नि. १८५ पृ. १२ श्लो. ।

यात्रा में नेष्ट नक्षत्र

नेष्टं प्रयाणमादिष्टं रोहिण्यामुत्तरात्रयम् ।
ज्येष्ठाशतभिषक्मूलं पूर्वासु त्रिविधासु च ।। ९३ ।।

रोहिणी, तीनों उत्तरा, ज्येष्ठा, शतभिषा, मूल और तीनों पूर्वा में यात्रा नेष्ट होती है ।। ९३ ।।

दूषित ८ नक्षत्र

कृतप्रयाणमष्टासु न कदाचिन्निवर्तते ।
चित्रात्रयमघाश्लेषा तथार्द्राभरणीद्वयम् ।। ९४ ।।

चित्रा, स्वाती, विशाखा, मघा, आश्लेषा, आर्द्रा, भरणी, कृत्तिका इन आठों में यात्रा करने वाला वापिस नहीं आता है ।। ९५ ।।

यात्रा में शुभाशुभ नक्षत्र

दैवज्ञवल्लभे—
[1]आर्द्राविशाखाबहुला च याम्यचित्रामघास्वातिभुजंगमानि ।
प्रोक्तानि याने न शुभप्रदानि शेषाणि श्रेष्ठानि न निन्दितानि ।। ९५ ।।

दैवज्ञवल्लभ नामक ग्रन्थ में बताया है कि आर्द्रा, विशाखा, उत्तरा फाल्गुनी, भरणी, चित्रा, मघा, स्वाती व आश्लेषा नक्षत्र में यात्रा अशुभ और शेष नक्षत्रों में श्रेष्ठ है निन्दित नहीं होती है ।। ९५ ।।

समस्त दिशा व काल में गमन नक्षत्र

[2]पुष्ये मैत्रे करेश्विन्यां सर्वाशागमनं शुभम् ।
सर्वकाले हिता यात्रा हस्ते पुष्ये मृगे श्रुतौ ।। ९६ ।।

पुष्य, अनुराधा, हस्त, अश्विनी नक्षत्र में सब दिशाओं में यात्रा शुभ होती है । हस्त, पुष्य, मृगशिरा व श्रवण नक्षत्र में सब समय यात्रा शुभप्रद होती है ।। ९६ ।।

दिशावश उत्तमादि नक्षत्र

बृहस्पतिः—
उत्तमं पुष्यभं प्राच्यां मध्यमं सौम्यदैवतम् ।
उत्तमं मध्यमं याम्यां हस्तत्वाष्ट्रक्रमादुभौ ।। ९७ ।।
उत्तमंमध्यमे याने वायव्यां विष्णुमैत्रभे ।
वैष्णवं मध्यमं चोदगुत्तमे वासवाश्विभे ।। ९८ ।।

आचार्य बृहस्पतिजी ने बताया है कि पूर्व दिग्गमन में पुष्य उत्तम व मृगशिरा मध्यम, दक्षिण की यात्रा में हस्त उत्तम और चित्रा मध्यम, वायव्य में श्रवण उत्तम, अनुराधा मध्यम और उत्तरदिशा में श्रवण मध्यम और धनिष्ठा अश्विनी उत्तम होते हैं ।। ९७–९८ ।।

---

१. ज्यो. नि. १८५ पृ. १३ श्लो. । २. ज्यो. नि. १८५ पृ. ।

वार, नक्षत्र योग से शूल

दैवज्ञवल्लभे—

[1]शूलं ज्येष्ठेंदुमंदा प्राक्प्रत्यक्ब्राह्मचर्कभार्गवाः ।
याम्ये वसुपंचांघष्णेज्याज्ञारार्यमभमुत्तरे ॥ ९९ ॥

दैवज्ञवल्लभ में बताया है कि ज्येष्ठा नक्षत्र, सोम, शनिवार में पूर्व जाने में शूल दोष, रोहिणी, सूर्य, शुक्रवार में पश्चिमदिशा में, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती नक्षत्र गुरुवार में दक्षिण में और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र; मंगल, बुधवार में उत्तरदिशा में शूल दोष होता है ॥ ९९ ॥

दिग्दण्डशूलादि में यात्रा का फल

वृहस्पतिः—

तव दिङ्मुखगो ज्येष्ठा नक्षत्रे बंधनं ययौ ।
बलिर्विजिदिशां दंडैः शूले यात्रा फलं फलात् ॥ १०० ॥
अजैकपादि याम्याशां पातोश्वातिलसं मुरः ।
त्वया नमुचिरप्येवं रोहिण्यां वारुणीं गतः ॥ १०१ ॥
अर्यम्णो सोमदिग्यातः शंबरोऽयाद्यमालयम् ।
एवं दिग्दंड्शूलोत्थप्रतिलोमगते फलम् ॥ १०२ ॥

आचार्य वृहस्पतिजी ने बताया है कि हे इन्द्र आपकी दिशा (पूर्व) में ज्येष्ठा नक्षत्र में गमन करने पर राजा वलि का राज चिह्नों के साथ बन्धन को प्राप्त हुआ। पूर्वा भाद्रपद नक्षत्र में दक्षिण की यात्रा में मुरदैत्य का घोड़ा से गिर कर मरण हुआ, तुमने रोहिणी नक्षत्र में पश्चिम दिशा में गमन करने पर नमुचि को और उत्तर दिशा में उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में गमन करने पर शम्बर का वध किया । इस लिये दिग्शूल दण्डशूल व प्रतिलोम दोष में यात्रा का फल होता है ।। १००–१०२ ॥

पूर्व दिशा की यात्रा में त्याज्य

गर्गस्तु—

प्राचीश्रवणशक्राभ्यां प्रतिपन्नवमी तथा ।
शनिसोमौ तथा प्रोक्तौ पूर्वस्यां दिशि वर्जयेत् ॥ १०३ ॥

गर्गाचार्यजी ने बताया है कि श्रवण, ज्येष्ठा नक्षत्र, प्रतिपदा नवमी तिथि, शनि और सोमवार के दिन पूर्व दिशा में यात्रा नहीं करनी चाहिये ॥ १०३ ॥

दक्षिण की यात्रा में त्याज्य

पूर्वभाद्रपदमश्विन्यां पञ्चमी च त्रयोदशी ।
गुरुपंचधनिष्ठायां याम्यां दिशि च वर्जयेत् ॥ १०४ ॥

---

१. मु. चि. ११ प्र. ३५ श्लो. पी. टी. ।

पूर्वाभाद्रपद, अश्विनी नक्षत्र, पञ्चमी, तेरस तिथि, धनिष्ठा से पाँच नक्षत्र व गुरुवार में दक्षिण दिशा में गमन नहीं करना चाहिये ॥ १०४ ॥

पश्चिम दिशा गमन में वर्जित

रोहिणीषु तथा पुष्यः षष्ठी चैव चतुर्दशी।
शुक्रार्कभौमवाराश्च पश्चिमां दिशि वर्जयेत् ॥ १०५ ॥

रोहिणी, पुष्य नक्षत्र, षष्ठी, चौदस तिथि, शुक्र, रवि, भौम में पश्चिम दिशा में यात्रा नहीं करनी चाहिये ॥ १०५ ॥

उत्तर दिशा में निषिद्ध वारादि

द्वितीया दशमी चैव हस्ते चोत्तरफाल्गुनी।
बुधभौमार्कवारेषु उत्तरां दिशि वर्जयेत् ॥ १०६ ॥

द्वितीया, दशमी तिथि, हस्त, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र, बुध, मंगल और सूर्यवार में उत्तर की दिशा में यात्रा नहीं करनी चाहिये ॥ १०६ ॥

पूर्वदिक् शुभ यात्रा मुहूर्त

दिनकरमृगपुष्यो रोहिणी सूर्यशुक्रे मृगपतिधनुमेषे पूर्वभागे प्रशस्ता।
यदि चलति कदाचित्कार्यसिद्धि मनोज्ञं नशति सकलशत्रुप्राप्तये दीर्घलक्ष्मीः ॥१०७॥

हस्त, मृगशिरा, पुष्य, रोहिणी नक्षत्र, रवि, शुक्रवार, सिंह, धनु, मेष लग्न में पूर्व दिशा की यात्रा शुभ होती है। यदि उक्त योग में कदाचित् यात्रा हो तो सुन्दर कार्यसिद्धि तथा समस्त शत्रुओं को जीतने से उसकी लक्ष्मी अटाटूट रहती है ॥१०७॥

दक्षिण दिग्गमन शुभ मुहूर्त

अदितिविविधतिष्ये अश्विनीयाम्यभागे
मकरवृषभकन्याभौमवारे प्रशस्तः।
यदि चलति कदाचिद्दक्षिणे दिग्विभागे
भवति विबुधलोकप्राप्तये दीर्घलक्ष्मीः ॥ १०८ ॥

पुनर्वसु, अनेक विध पुष्य, अश्विनी, भरणी नक्षत्र, मकर, वृष, कन्या लग्न व भौमवार में दक्षिण दिशा की यात्रा करने पर देवलोक प्राप्त्यर्थ दीर्घलक्ष्मी होती है ॥१०८॥

पश्चिम दिशा की यात्रा का शुभ मुहूर्त

सुरपतिहरिमूले पूर्वभाद्रा धनिष्ठा
रविसुतशशिवारे मन्मथे तौलिकुंभे।
यदि चलति कदाचित्पश्चिमे दिग्विभागे
विलसति खलु लक्ष्मीः पङ्कजः षट्पदेन ॥ १०९ ॥

ज्येष्ठा, श्रवण, मूल, पूर्वाभाद्रपद, धनिष्ठा नक्षत्र, शनि, सोमवार, मिथुन, तुला व कुम्भ लग्न में पश्चिम दिशा में यात्रा करने पर जैसे कमल पर भ्रमर विलास करता है, उसी प्रकार यात्रा में लक्ष्मी यथेष्ट प्राप्त होती है ॥ १०९ ॥

उत्तर दिशा की यात्रा का मुहूर्त

तुरगवरुणपुष्याः पूर्वभाद्राधनिष्ठा
अलि किटझषलग्ने जीववारे शुभं स्यात् ।
यदि चलति नरेंद्रो उत्तरे दिग्विभागे
भवति विबुधलोकप्राप्तये तत्प्रशस्तम् ॥ ११० ॥

अश्विनी, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, धनिष्ठा नक्षत्र, वृश्चिक कर्क, मीन लग्न और गुरुवार में उत्तर दिशा की यात्रा यदि देवलोक की प्राप्ति के लिए राजा करता है तो उसकी प्राप्ति होती है ॥ ११० ॥

नक्षत्रों में प्रथम दिन षष्ठांश त्याग

बृहस्पतिः—
त्रिपूत्तरेषु रोहिण्यां विशाखासु विवर्जयेत् ।
अहोरात्रपडंशानां प्रथमांशं परं शुभम् ॥ १११ ॥

आचार्य बृहस्पतिजी ने बताया है कि तीनों उत्तरा, रोहिणी, विशाखा नक्षत्रों में दिन के प्रथम छठे अंश का त्याग कर आगे के अंशों में यात्रा शुभ होती है ॥ १११ ॥

दिन २, ३ षष्ठांश के बिना शुभ नक्षत्र

ज्येष्ठामूलोरगार्द्रासु द्वितीयांशं विना शुभम् ।
स्वात्यश्विनीषु पुष्येषु तृतीयांशं विना शुभम् ॥ ११२ ॥

ज्येष्ठा, मूल, आश्लेषा, आर्द्रा नक्षत्र में दिन के दूसरे षष्ठांश को छोड़कर और स्वाती, अश्विनी पुष्य नक्षत्र में तीसरे षष्ठांश का त्याग कर यात्रा शुभ होतो है ॥११२॥

४, ५, ६ षष्ठांश के बिना शुभ नक्षत्र

पौष्णमैत्रेंदुभे त्वाष्ट्रतुर्यांशेन विना शुभम् ।
पूर्वात्रिके च पैत्रे च याम्यांशं पंचमं विना ॥ ११३ ॥
शेषेषु भेषु षष्ठांशे विनाहः शोभनो भवेत् ॥ ११४ ॥

रेवती, अनुराधा, मृगशिरा व चित्रा नक्षत्र में ४ चौथे, तीनों पूर्वा, मघा, भरणी नक्षत्र में पाँचवें और अवशिष्ट नक्षत्रों में दिन के छठे षष्ठांश का त्याग करके यात्रा शुभ होती है ॥ ११३–११४ ॥

काल शूल ज्ञान

[1]व्यासः—
ध्रुवैर्मिश्रैर्न पूर्वाह्ने वासरोर्द्धं न तीक्ष्णभैः ।
नापराह्ने तथा क्षिप्रैर्वदंति गमनं शुभम् ॥ ११५ ॥
मृदुभिर्न रजन्यादौ निशामध्ये च नोग्रभैः ।
न चरैः शर्वरीशेषे कुर्वीत गमनं सुधीः ॥ ११६ ॥

१. ज्यो० नि० १८५ पृ० २० श्लो० ।

ऋषि व्यासजी ने बताया है कि ध्रुव व मिश्रसंज्ञक नक्षत्रों में पूर्वाह्न में, तीक्ष्ण संज्ञावालों में मध्याह्न में, क्षिप्र संज्ञक में अपराह्न में, मृदु संज्ञकों में रात्रि प्रारम्भ के आदि भाग में, उग्र संज्ञक में आधी रात में और चर संज्ञकों में रात के शेष भाग में यात्रा करना पण्डितों ने शुभ नहीं माना है ॥ ११५–११६ ॥

स्पष्टार्थ काल शूलचक्र

नक्षत्र	कृ० रो० ३ उत्तरा विशाखा	आ० श्ले० ज्ये० मू०	अ० पु० ह०अभि०	मृ० चि० अ० रे०	भ० म० पू०	पु० स्वा० ध० श०
समय	पूर्वाह्न	मध्याह्न	अपराह्न	रात्रिका १ भाग	आधीरात	शेष रात

नक्षत्र दोहद (परिहार) ज्ञान

अथ नक्षत्रदोहदम्—

[1]कुल्माषास्तिलतंडुलानपि तथा माषाश्च गव्यं दधि
त्वाज्यं दुग्धमथैणमांसमपरं तस्यैव रक्तं तथा।
तद्वत्पायसमेव चाषपललं मार्गं च शाशं तथा
षाष्टिक्यं च प्रियंग्वपूपमथवा चित्रांडजान्सत्फलम् ॥ ११७ ॥

कौर्म्यं सारिकगोधिकं च पललं शाल्यं हविष्यं तथा
तद्वत्स्यात्कृशरान्नमुद्गमपि वा पिष्टं यवानां तथा।
मत्स्यान्नं खलु चित्रितान्नमथवा दध्यन्नमेवं क्रमाद्-
भक्ष्याभक्ष्यमिदं विचार्य सुधिया वक्ष्ये तथा लोकयेत् ॥ ११८ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि अश्विनी नक्षत्र में कुलथी, भरणी में तिल चावल, कृत्तिका में उड़द, रोहिणी में गव्य दही, मृगशिरा में घी, आर्द्रा में दूध, पुनर्वसु में हिरन का मांस, पुष्य में हिरन का खून, श्लेषा में खीर, मघा में नीलकण्ठ पक्षी का मांस, पूर्वाफाल्गुनी में मृगमांस, उत्तराफाल्गुनी में खरगोश का मांस, हस्त में साठी धान, चित्रा में प्रियंगु (कंगुनी), स्वाती में मालपुआ, विशाखा में पक्षी, अनुराधा में अच्छा फल, ज्येष्ठा में कछुवे का मांस, मूल में मैना का मांस, पू० षा० में गोह का मांस, उत्तराषाढ़ में शल्य पक्षी का मांस, अभिजित् में हविष्यान्न (मूंग-घी). श्रवण में खिचड़ी, धनिष्ठा में मूंग शतभिषा में जौ का चून, पूर्वाभाद्रपदा में मछली-भात, उत्तराभाद्रपद में चित्रान्न और रेवती नक्षत्र में दही-चावल खाकर अन्यथा दर्शन करके यात्रा करने पर दोष नहीं होता है ॥ ११७–११८ ॥

१. मु० चि० ११ प्र० ८१-८२ श्लो०।

स्पष्टार्थ नक्षत्र दोहद चक्र

नक्षत्र	अश्वि. १	भर. २	कृत्ति. ३	रोहि. ४	मृग. ५	आर्द्रा. ६	पुन. ७
भक्ष्यादि पदार्थ	कुलथी	तिल चावल	उड़द	गव्य दही	घी	गाय का दूध	हरिण मांस
नक्षत्र	पुष्य ८	श्लेष. ९	मघा १०	पू. फा. ११	उ. फा. १२	हस्त १३	चित्रा १४
पदार्थ	हिरन का खून	खीर	पपीहा मांस	मृग मांस	खरगोश मांस	साठी चावल	प्रियंगु
नक्षत्र	स्वाती १५	विशाखा १६	अनु. १७	ज्येष्ठा १८	मूल १९	पू. षा. २०	उ. षा. २१
पदार्थ	माल-पूआ	नाना वर्ण के पक्षी	उत्तम फल	कछुआ मांस	सारिक (मैना) मांस	गोह मांस	साही का मांस
नक्षत्र	अभि. २१	श्रवण २३	धनिष्ठा २४	शतभिषा २५	पू. भा. २६	उ. भा. २७	रेवती २८
पदार्थ	मूंग	खिचड़ी	मूंग	जौ का चून	मछली भात	चित्रान्न	दही चावल

अत्यावश्यक यात्रा मुहूर्त

बृहस्पतिः —

अत्यात्ययिकयात्रायां नित्यमेव व्रजेत्सुधीः ।[1]
अलभ्यालभ्यभक्षा ये स्मृत्वा स्पृष्टवाथ तान् क्रमात् ॥ ११९ ॥

आचार्य बृहस्पति जी ने बताया है कि अधिक आवश्यकता रोज यात्रा की होने पर प्राप्त, अप्राप्त भक्ष्यादि का स्पर्श या स्मरण करके गमन करना चाहिये ॥ ११९ ॥

दिशाजन्य दोष का परिहार

[2]आज्यं तिलोदनं मत्स्यं पयश्चापि यथाक्रमम् ।
भक्षयेद्दोहदं दिश्यमाशां पूर्वादिकां व्रजेत् ॥ १२० ॥

पूर्व दिशा की यात्रा में घी, दक्षिण में तिल, पश्चिम में भात, मछली और उत्तर की यात्रा में दूध पीकर यात्रा करने पर दिशा का दोष नहीं होता है ॥ १२० ॥

बृहस्पतिः —

आवश्यकेथ गमने दोषैः सर्वैर्युतोपि वा ।
नक्षत्रवस्तुसहिते तोये स्नात्वा यथा व्रजेत् ॥ १२१ ॥

आचार्य बृहस्पति जी ने बताया है कि गमन करना आवश्यक हो और समस्त दोष भी हों तो नक्षत्र की वस्तु के साथ जल से नहाकर यात्रा करनी चाहिये ॥ १२१ ॥

१. ज्यो० नि० १८८ पृ० । २. मु० चि० ११ प्र० ८३ श्लो० ।

पूर्व दिग्गमन स्थान वस्तु

प्रियंगुशालिसंयुक्तैस्तोयैः सिद्धार्थकैर्युतैः ।
मदयंतीयुतैः स्नात्वा दिशमैंद्रीं व्रजेन्नृपः ॥ १२२ ॥

प्रियंगु, शालि, सिद्धार्थ, मदयंती को पानी में गेर कर उस से स्नान करके पूर्वदिशा में गमन करने पर दिक्शूल दोष नहीं होता है ॥ १२२ ॥

दक्षिण दिग्गमन स्नान वस्तु

गोशृंगाच्च गिरिर्नद्यां वल्मीकाग्रात्तडागतः ।
ह्लदमृत्सहितैस्तोयैः स्नात्वा याम्यां व्रजेदथ ॥ १२३ ॥

गोशाला, पर्वत, नदी, टीला, तालाब, सरोवर की मिट्टी पानी में मिलाकर स्नान करके दक्षिण दिशा की यात्रा में दोष नहीं होता है ॥ १२३ ॥

नैऋत्य व पश्चिम की यात्रा में स्नान वस्तु

नदीकूलद्वयोत्थानमृदायुक्तांभसा नरः ।
स्नात्वा यायाद्दिशो मैत्रे नैर्ऋतीं पश्चिमां तथा ॥ १२४ ॥

नदी के दोनों तटों की मिट्टी पानी में मिलाकर स्नान करके अनुराधा में नैर्ऋत्य कोण व पश्चिम दिशा में जाने पर शूल का अभाव होता है। अतः यात्रा करनी चाहिये ॥ १२४ ॥

वायव्य व उत्तर की यात्रा में स्नान वस्तु

नदीसंगममृत्स्नात्वा वारुणा वायवे दिशी ।
यायात्स बिल्वैः श्रवणे नरैः सिद्धार्थकैर्युतः ॥ १२५ ॥

नदी, संगम की मिट्टी से स्नान करके उत्तर व वायुकोण की, तथा श्रवण में बेलपत्र व सिद्धार्थक (सरसों) से युक्त करके स्नान करके जाना चाहिये ॥ १२५ ॥

धनिष्ठा दोष दूरीकरण

श्रविष्ठा च व्रजेच्चांद्रं मधुना देवदारुणा ।
शतभिषा नृपः स्नात्वा भुक्त्वान्नंगुडसंयुतम् ॥ १२६ ॥

धनिष्ठा में देवदारु और सहत पानी में मिलाकर स्नान करके और शतभिषा में गुलगुला खाने पर दोष का अभाव होता है ॥ १२६ ॥

परिघ दंड रेखा का उल्लंघन न करना

[1]ज्योतिःप्रकाशे—

नो लंघ्या वायुवह्निस्था रेखा सप्तर्क्षकेग्निभाक् ।
यदि दिग्लग्नशुद्धिः स्यान्न दुष्टं परिघादिकम् ॥ १२७ ॥

ज्योतिःप्रकाश नामक ग्रन्थ में बताया है कि वायुकोण से अग्निकोण तक गई हुई रेखा को परिघ दंड रेखा कहते हैं। इसमें कृत्तिका नक्षत्र से सात नक्षत्र पूर्व में पुनः सात दक्षिणादि में न्यास करके उक्त रेखा का उल्लंघन नहीं करना चाहिये। जबकि दिशा की लग्न पूर्ण विशुद्ध होती है तो परिघादि का दोष नहीं होता है ॥ १२७ ॥

१. ज्यो० नि० १८५ पृ० १६ श्लो० ।

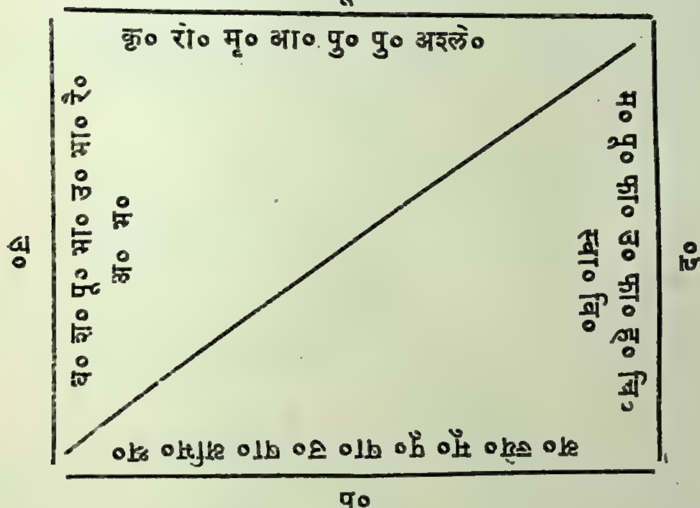
ग्रंथान्तर से परिघ दंड

[1]गर्गः—

प्रागादि सप्तसप्त स्युः कृत्तिकादीनि भानि तु।
तत्राद्यनिलदिग्रेखां पारिघाख्यं न लंघयेत् ॥ १२८ ॥

गर्गाचार्य जी ने बताया है कि पूर्वादि चारों दिशाओं में कृत्तिकादि सात सात नक्षत्रों का न्यास कर वायु कोण से अग्नि कोण तक गई हुई परिघ रेखा का यात्रा में उल्लंघन नहीं करना चाहिये ॥ १२८ ॥

स्पष्टार्थ परिघ दंड रेखा चक्र



परिघ दंड का परिहार

[2]श्रीपतिः—

प्रयोजनेष्वात्ययिकेषु भूपतिर्विलंघ्य रेखामपि पारिघीं व्रजेत्।
विहाय दिक्छूलसमाह्वयानुडून् यदि स्वदिग्लग्नविशुद्धिरिष्यते ॥ १२९ ॥

आचार्य श्रीपति जी ने बताया है कि यदि अपनी दिशा की लग्न शुद्धि उपस्थित है तो दिक् शूल नक्षत्र को छोड़कर अत्यन्त आवश्यक होने पर परिघ दंड रेखा का उलंघन करके भी यात्रा करनी चाहिये ॥ १२९ ॥

परिघ दड उल्लंघन दोषाभाव

वृहस्पतिः—

न दंडलंघने दोषो गवां स्त्रीणां विशेषतः।
वाय्वग्निदिग्गतो दंडस्तिर्यगाद्यः समाह्वयः ॥ १३० ॥

---

१. ज्यो० नि० १८५ पृ० १७ श्लो०। २. ज्यो० नि० १८५ पृ० १८ श्लो०।

विशेषकर गाय व स्त्रियों के दंड रेखा उल्लंघन में दोष नहीं होता है। वायु कोण से अग्निकोण तक गई हुई रेखा दंड रेखा होती है ॥ १३० ॥

पूर्वादि द्वारिक नक्षत्रों की शुभ गति

प्राग्द्वारिकैश्च नक्षत्रैराग्नेय्यां शोभना गतिः ।
दक्षिणस्थैश्च नैर्ऋत्यां वायव्यां वारुणैरपि ॥ १३१ ॥
ईशान्यां दिश्युदक्संस्थैर्यात्रातीव शुभप्रदा ।
दंडशूलं विहायैव यायाद्दिङ्मुखसिद्धये ॥ १३२ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि पूर्वस्थ सात नक्षत्रों में अग्निकोण की यात्रा शुभ, दक्षिणस्थ नक्षत्रों में नैऋत्यकोण की, पश्चिमस्थ नक्षत्रों में वायुकोण की उत्तरस्थ नक्षत्रों में ईशान कोण की यात्रा अत्यन्त सुविधाजनक होती है। कार्य सिद्धि के लिये अभीष्ट दिशा में दंड शूल का त्याग करके ही देशान्तर गमन शुभ होता है ॥१३१-१३२॥

विशेष

[1]गर्गः—

रवीन्द्वनलयोश्चैव नानुकूलं शुभावहम् ।
तदभावे दिवारात्रौ यायाद्यातुर्वधोऽन्यथा ॥ १३३ ॥

गर्गाचार्य जी ने कहा है कि सूर्य,चन्द्रमा की प्रतिकूलता में भी यदि सूर्य, चन्द्र अपनी दिशा के नक्षत्रों में हों तो यात्रा शुभप्रद होती है। और दोनों के एक दिशास्थ नक्षत्रों में न होने पर दिन रात की यात्रा में जाने वाले का मरण होता है ॥ १३३ ॥

श्रीपतिः—

तिग्मांशुशश्यनलयोरनुकूलमाहुर्यानं प्रशस्तमुभयोरुपपत्त्यभावे ।
यायाद्दिवानिशमसंशयमन्यथा तु यातुर्भवंति बहुधा वधबंधदोषाः ॥ १३४ ॥

आचार्य श्रीपति जी ने बताया है कि सूर्य, चन्द्रमा को एक दिशास्थ नक्षत्रों में होने पर देशान्तर गमन अनुकूल शुभ होता है और भिन्न दिशाओं में रहने पर यात्रा करने वाले को अनेक प्रकार के वध, वन्धन (जेल) दोष प्राप्त होते हैं ॥ १३४ ॥

चन्द्रार्कौ ध्रुवमुत्तरायणगतौ प्रागुत्तराशां व्रजेत्
तौ स्यातां यदि दक्षिणायनगतो याम्यां प्रतीचीं व्रजेत् ।
तौ वाभिन्नदिशांगतौ विधुरवा नक्तं दिवा स्यात् क्रमा-
दस्तं सा बहुधा भवंति विपदो यातुर्वधाय स्फुटम् ॥१३५॥

सूर्य, चन्द्रमा जब उत्तर अयन में हों तो पूर्व, उत्तर दिशा की यात्रा और दक्षिण अयन में रहने पर दक्षिण व पश्चिम दिशा में यात्रा शुभ होती है। अथवा सूर्य, चन्द्र के भिन्न दिशा में रहने पर यात्रा में अनेक प्रकार की विपत्ति और जाने वाले का मरण होता है ॥ १३५ ॥

---

१. ज्यो० नि० १८६ पृ० ३२ श्लो० ।

चन्द्र विचार

अथ चन्द्रविचारः--

योगयात्रायाम्--

गोचरेण शुभदः शशी न चेष्टवर्गपरिशोधितो न वा।
पूर्ववायुरिव पुष्यकालजो यायिनां फलविनाशकृद्भवेत् ॥ १३६ ॥

योगयात्रा में कहा है कि जब गोचर व अष्टवर्ग से चन्द्रमा शुद्ध न होने पर यात्रा होती है तो पुष्य कालीन पूर्व वायु की तरह जाने वाले के फल अर्थात् आशा पर तुषारपात होता है ॥ १३६ ॥

त्याज्य, ग्राह्य

[1]ज्योतिःप्रकाशे--

भद्राकुलिकपाताद्या दोषास्त्याज्याः प्रयत्नतः।
लब्ध्वा चन्द्रबलं युद्धे धिष्णे लग्ने गमः शुभः ॥ १३७ ॥

ज्योतिःप्रकाश नामक ग्रन्थ में कहा है कि यात्रा में यत्नपूर्वक भद्रा, कुलिक पात आदि का त्याग करना और युद्ध यात्रा में चन्द्र बल प्राप्त होने पर नक्षत्र लग्न में गमन शुभ होता है ॥ १३७ ॥

अनर्थदा यात्रा

[2]यात्राशिरोमणौ--

ऋते चन्द्रबलं पुंसां यात्रा शस्ताप्यनर्थदा।
व्याख्या गंभीरशास्त्राणां संप्रदायं विना यथा ॥ १३८ ॥

यात्रा शिरोमणि में बताया है कि पुरुषों की चन्द्रबल के विना प्रशस्त यात्रा भी अनर्थप्रद होती है जैसे सम्प्रदाय के विना गम्भीर शास्त्रों की व्याख्या अनर्थ देने वाली होती है ॥ १३८ ॥

पूर्वादि दिशाओं में चन्द्र वास

[3]भृगुः--

मेषे च सिंहे धनुपूर्वभागे वृषे च कन्या मकरे च याम्याम्।
मिथुने तुले कुंभपपश्चिमायां कर्कें च मीनेलिनि चोत्तरस्याम् ॥१३९॥

आचार्य भृगुजी ने बताया है कि मेष, सिंह, धनु राशि में चन्द्रमा का निवास पूर्वदिशा में, वृष, कन्या, मकर में दक्षिण दिशा में, मिथुन, तुला, कुम्भ में, पश्चिम में और कर्क, वृश्चिक, मीन राशि में चन्द्रमा का निवास उत्तर दिशा में होता है ॥ १३९ ॥

---

१. ज्यो० नि० १८६ पृ० २६ श्लो०।
२. ज्यो० नि० १८६ पृ० ३० श्लो०।
३. ज्यो० सा० १७८ पृ० २२ श्लो०।

चन्द्रवास फल

[1]सन्मुखे अर्थलाभाय दक्षिणे सुखसंपदः ।
पश्चिमे प्राणसंदेहो वामे चन्द्रे धनक्षयः ॥ १४० ॥

सन्मुख चन्द्र में यात्रा करने पर धन का लाभ, दाहिने में सुख, सम्पत्ति, पीछे के चन्द्रमा में मरण और बायें चन्द्रमा में यात्रा करने से धन का क्षय होता है ॥ १४० ॥

सन्मुख चन्द्रमा का फल

मांडव्यः—

[2]करणभगणदोषं वारसंक्रांतिदोषं
कुलिकतिथिजदोषं यामयामार्द्धदोषम् ।
शनिगुरुबुधदोषं राहुकेत्वादिदोषं
हरति सकलदोषं चन्द्रमाः सन्मुखस्थः ॥ १४१ ॥

ऋषि माण्डव्य ने बताया है कि करण, भगण दोष, वार, संक्रान्ति दोष, कुलिक, तिथिजनित दोष, याम. (प्रहर) यामार्द्ध दोष, शनि, बुध, गुरु दोष, राहु केत्वादि समस्त दोषों का सन्मुख चन्द्रमा यात्रा में होने पर विनाश होता है ॥ १४१ ॥

सफल त्रिविध चन्द्रज्ञान

ज्योतिर्विवरणे—

मेषाद्याश्च गता राशौ तिथ्यादौ च विमिश्रिता ।
बह्निभिस्तु हरेद्भागं त्रिविधश्चन्द्र उच्यते ॥ १४२ ॥

ज्योतिर्विवरण में बताया है कि मेषादि राशिगत चन्द्र संख्या में तिथि संख्या को जोड़ कर तीन का भाग देने से तीन प्रकार का चन्द्रमा होता है ॥ १४२ ॥

एके जलगतः सौख्ये लाभगः स्थलगोद्वयम् ।
शून्ये खे शून्यतां याति यात्राकाले विचारयेत् ॥ १४३ ॥

तीन का भाग देने से एक शेष में जलगत चन्द्रमा में सुख, दो शेष में स्थलगत में लाभ और शून्य शेष में आकाशगत चन्द्रमा होने के नाते शून्य फल होता है । इसका यात्रा में विचार करना चाहिये ॥ १४३ ॥

चन्द्रमा वर्ण व वाहन

अथ चन्द्रमावर्णवाहनम् ।

मेषे वृषे तथा सिंहे यदि चन्द्रो भवेदिति ।
तदा तु रक्तवर्णं स्याद्वाहनं कुंजरं मतम् ॥ १४४ ॥

मेष, वृष, सिंह राशिस्थ चन्द्रमा का लाल रंग और हाथी वाहन होता है ॥१४४॥

वृश्चिके च तुले कर्के यदि स्याद्रजनीकरः ।
पीतवर्णो भवेच्चन्द्रो वाहनस्तु तुरंगमः ॥ १४५ ॥

---

१. ज्यो० सा० १७८ पृ० २३ श्लो० । २. ज्यो० सा० १७८ पृ० २१ श्लो० ।

वृश्चिक, तुला, कर्क राशि में चन्द्रमा के रहने पर चन्द्रमा का पीला रंग और घोड़ा वाहन होता है ॥ १४५ ॥

कन्याधनुषि मिथुने यदि चन्द्रो भवेदिति ।
तदा च श्वेतवर्णः स्याद्वाहनो वृषभः स्मृतः ॥ १४६ ॥

कन्या, धनु, मिथुन राशि में चन्द्रमा की स्थिति से उसका सफेद वर्ण एवं बैल वाहन होता है ॥ १४६ ॥

कुंभे च मकरे मीने यदि चन्द्रो भवेदिति ।
तदा च कृष्णवर्णः स्याद्वाहनो महिषः स्मृतः ॥ १४७ ॥

कुम्भ, मकर, मीन राशि में चन्द्रमा होने पर काला वर्ण और भैंसा वाहन होता है ॥ १४७ ॥

वर्ण फल

रक्तवर्णे भवेद्युद्धं पीतवर्णे शुभं भवेत् ।
कृष्णे मृत्युं विजानीयात् श्वेतवर्णे च लाभदम् ॥ १४८ ॥

लाल वर्ण में युद्ध, पीले में शुभ, काले में मृत्यु और श्वेत वर्ण चन्द्रमा लाभदायी होता है ॥ १४८ ॥

नरवाहन विचार

अथ नरवाहनविचारः ।

जन्मभाद्दिनभं यावद्गणनीयमनुक्रमात् ।
नवभिस्तु हरेद्भागं शेषं वाहनमुच्यते ॥ १४९ ॥
खरोऽश्वौ दंतिमहिषौ जंबूकः सिंहवायसौ ।
मयूरश्च तथा हंसो वाहनं नवधा मतम् ॥ १५० ॥

जन्म के नक्षत्र से दिन नक्षत्र (यात्रा-दिन) तक गणना करके प्राप्त संख्या में ९ का भाग देने से शेषवश वाहन होते हैं ।

१ शेष में गधा, २ में घोड़ा, ३ में हाथी, ४ में भैंसा, ५ में भालू, ६ में सिंह, ७ में कौआ, ८ में मोर और ० शून्य में हंस वाहन होता है ॥ १४९-१५० ॥

वाहनों का फल

खरे च कलहं विद्यादश्वे बुद्धिर्विदेशके ।
गजे लाभं विजानीयान्महिषे व्याधिजं भयम् ॥ १५१ ॥
जंबुके च भयं घोरं सिंहे च विजयं स्मृतम् ।
काके चिन्ता विनिर्दिष्टा मयूरे सुखसंपदः ॥ १५२ ॥
हंसे जयो विजानीयाद्यात्राकाले नियोजयेत् ॥ १५३ ॥

गधा वाहन में कलह, घोड़ा में विदेश वुद्धि, हाथी में लाभ, भैंसा में रोगजनित भय, जम्बुक में घनघोर भय, सिंह में विजय, कौआ में चिन्ता, मोर में सुख, सम्पत्ति हंस में विजय होता है । इनका यात्रा के समय विचार करना चाहिये ॥ १५१-१५३ ॥

त्र्यंक मुहूर्त

बादरायणः—

[1]तिथयः पक्षगुणिताः सप्तभिर्भाजिताश्च ताः ।
स्युर्वारो वह्निगुणितो वसुभिश्चैव भाजिताः ।। १५४ ।।
चतुर्गुणानि भान्यंगभाजितानि यथा क्रमम् ।

जिस तिथि को यात्रा करनी हो, उसकी संख्या को २ से गुणा करके ७ का भाग देने पर, वार संख्या को ३ से गुणा करके ८ का भाग देने पर और नक्षत्र संख्या को ४ से गुणा कर ६ का भाग देने पर यदि तीनों स्थान पर शेष में शून्य आये तो त्र्यंक मुहूर्त नहीं है, ऐसा समझना चाहिये और तीनों जगह शेष में अंक बचे तो त्र्यंक मुहूर्त शुभ होता है ।। १५४–१५४½ ।।

तीनों का फल

पीडा स्यात्प्रथमे शून्ये मध्ये शून्ये महद्भयम् ।। १५५ ।।
अंत्ये शून्ये च मरणं त्रिशून्यरहितं शुभम् ।। १५६ ।।

यदि तिथि भाग शेष में शून्य हो तो पीड़ा, वार भाग में शून्य हो तो वड़ा भय और नक्षत्र भाग में शून्य शेष हो तो मरण और तीनों में अंक बचे तो शुभ होता है ।। १५४½–१५६ ।।

विशेष—ज्योतिषसार में 'त्र्यङ्के च विजयी भवेत्' पाठ है ।। १५४½–१५६ ।।

प्रकारान्तर से त्र्यंक मुहूर्त

गर्गः—

तिथिवारं च नक्षत्रमेकीकृत्य त्रिधा पुनः ।
संक्रांतिजन्मभं योज्यं तथा नामाक्षरान्वितम् ।। १५७ ।।
द्वित्रिवेदैश्च गुणितं सप्ताष्टरसभाजितम् ।
आदिशून्ये भवेद्धानिर्मध्यशून्ये दरिद्रता ।। १५८ ।।
त्रिशून्ये मरणं क्लेशं सर्वांके विजयी भवेत् ।। १५९ ।।

गर्गाचार्यजी ने बताया है कि यात्रा के दिन तिथि, वार व नक्षत्र की संख्या को जोड़कर पुनः संक्रान्ति, जन्म नक्षत्र और नामाक्षर की संख्या को मिलाकर तीन स्थानों में स्थापित करके २।३।४ संख्या से गुणा करके क्रम से ७।८।६ से भाग देने पर यदि ७ से भाग देने पर शून्य शेष रहे तो यात्रा में नुकसान, ८ से भाजित शेष स्थान में शून्य बचे तो दरिद्रता और अन्तिम में शून्य हो तो क्लेश, तीनों जगह शून्य आये तो मृत्यु एवं तीनों में अंक शेष रहे तो यात्रा में विजय होती है ।।१५७–१५९।।

१. ज्यो. सा. १८६ पृ. ।

पुनः भिन्न रीति से

सूर्योदयाद्गतघटीदलमिश्रिता च वारर्क्षयोगतिथयो निजभागहार्याः ।
तत्कालराजगमनाय विलोकनीयमुद्दालकेन भणितं शुभदं मुहूर्तम् ॥१६०॥

यात्राकालीन इष्ट घटी के अर्द्ध भाग में वार, नक्षत्र, योग, तिथि की संख्या को जोड़कर ७।२७।२७।३० की संख्या से भाग देकर तत्काल राजा की यात्रा के लिए शुभ मुहूर्त का ज्ञान (शून्यादि) करके आदेश करना, ऐसा उद्दालक ऋषि ने कहा है ॥ १६० ॥

अथ लग्नबलम्—

अब आगे बली लग्न कौन-कौन होते हैं, बताते हैं ।

शीर्षोदयादि में यात्रा का फल

देवज्ञवल्लभे—

[1]शीर्षोदये यातुरभीष्टसिद्धिः पृष्ठोदये वांछितकार्यनाशम् ।
यातव्यकाष्ठामुखमिष्टदं स्यादरिष्टदं दिक्प्रतिलोमलग्ने ॥१६१॥

दैवज्ञवल्लभ ग्रन्थ में बताया है कि शीर्षोदय संज्ञक राशि लग्न में यात्रा करने वाले को मनोवांछित फल की प्राप्ति और पृष्ठोदय लग्न राशि में अभीष्ट कार्य का नाश व सन्मुख दिशा में अभीष्ट सुख और दिक् विपरीत लग्न में यात्रा अरिष्ट देने वाली होती है ॥ १६१ ॥

निर्बल लग्न यात्रा फल

योगयात्रायाम्—

लग्नेन हीनान्यगुणान्वितापि प्रीतिं न यात्रा मनसः करोति ।
स्वलंकृता रूपसमन्वितापि प्रभ्रष्टशीला वनितेव पुंसः ॥१६२॥

योगयात्रा नामक ग्रन्थ में कहा है कि निर्बल व दोषों से युक्त लग्न में अन्य गुणों से युक्त भी यात्रा मन को प्रसन्न करने वाली नहीं होती है । जैसे अलंकारों से युक्त स्वरूपवती भी व्यभिचारिणी स्त्री अपने पति को प्रसन्न करने वाली नहीं होती है ॥ १६२ ॥

जन्म लग्न व राशि में यात्रा फल

लल्लः —

[2]जन्मोदये सिद्धिकरं प्रयाणं न जन्मराशेरुदये नृपस्य ।
स्थानात्तयोश्चोपचयोदयेषु शुभं फलं स्यादितरेषु नाशः ॥१६३॥

आचार्य लल्ल ने बताया है कि जन्म की लग्न में यात्रा सिद्धिप्रद और जन्म की राशि में असिद्धिप्रद तथा जन्म लग्न व राशि से उपचय राशि लग्न में शुभ फल देने वाली और अवशिष्ट राशियों में यात्रा विनाश करनेवाला होती है ॥ १६३ ॥

---

१. ज्यो. नि. १८८ पृ. १ श्लो. । २. ज्यो. नि. १८८ पृ. २ श्लो. ।

अष्टम लग्न राशि फल

[1]जन्मर्क्षलग्नाष्टमराशिलग्ने षष्ठोदये शत्रुभलग्नतो वा ।
तद्राशिनाथैरथवोदयस्थैः करोति यानं विषभक्षणं स्यात् ॥१६४॥

जन्म राशि व जन्म लग्न से आठवीं राशि लग्न में या छठे भाव से छठी राशि लग्न में अथवा उनके स्वामियों को लग्नस्थ होने पर जो यात्रा करता है. वह जहर खाने के समान फल होता है ॥ १६४ ॥

श्रीपतिः—

[2]जननसमयलग्नान्नैधने जन्मभाद्वा निजरिपुभवनाद्वा शत्रुभे लग्नयाते ।
पतिभिरथ तदीयैर्लग्नगैः पार्थिवानां गमनमथ विषं वा भक्षितं तुल्यमेव ॥१६५॥

आचार्य श्रीपति ने कहा है कि जन्म लग्न से या जन्म राशि से अथवा अपनी शत्रु राशि से छठा राशि या उनके स्वामियों को लग्न में होने पर यात्रा करना जहर का भक्षण करने के समान होता है ॥ १६५ ॥

टेढ़ा मार्गादि ज्ञान

[3]वक्रः पंथा मीनलग्नेंशके वा कार्यासिद्धिः स्यान्निवृत्तिश्च तत्र ।
नेष्टः कुंभोप्युद्गमेशे स्थितो वा लग्ने चापेंशे च नौ यानमिष्टम् ॥ १६६ ॥

मीन राशि व नवांश में मार्ग चलने (यात्रा) पर टेढ़ापन अथवा कार्य की असिद्धि तथा यात्रा से निवृत्ति, कुम्भ राशि लग्न व नवांश में यात्रा नहीं करना अथवा धनु नवांश में नाव की यात्रा शुभ होती है ॥ १६६ ॥

विशेष

गर्गः —

[4]दिवा दिनवले लग्ने रात्रौ रात्रिबले तथा ।
गंतव्यं वा चरे लग्ने शुभयुक्ते स्थिरेपि वा ॥ १६७ ॥

गर्गाचार्यजी ने बताया है दिन की यात्रा में दिन वली राशि, रात में रात्रि बली राशियों में या शुभयुक्त चर लग्न या स्थिर राशि में भी यात्रा करनी चाहिये ॥१६७॥

शुभाशुभ लग्न

दैवज्ञवल्लभे—

शुभग्रहैर्जन्मनि संयुता ये ये चार्कतः सौम्ययुता द्वितीया ।
ते राशयो लग्नगताः प्रशस्ता ये क्रूरयुक्ता न शुभावहास्ते ॥१६८॥

दैवज्ञवल्लभ में कहा है कि जन्म के समय शुभग्रह से युक्त तथा सूर्य से द्वितीय राशि शुभयुत जो राशि हो, उस राशि लग्न में यात्रा अधिक शुभदायिनी होती है और जो राशि पापग्रह से युक्त होती है, उसमें यात्रा शुभ नहीं होती है ॥ १६८ ॥

---

१. ज्यो. नि. १८८ पृ. ४ श्लो. । २. मु. चिं. ११ प्र. ४२ श्लो. पी. टी. ।
३. ज्यो. नि. १८९ पृ. ४ श्लो. । ४. ज्यो. नि. १८९ पृ. ५ श्लो. ।

[1]शस्तं न कीटालिवृषोदयेषु यानं तदंशेष्वथवा प्रयातुः।
लग्नानि शस्तानि शुभग्रहाणां यन्नौ प्रयाणं जलभोदये तत् ॥ १६९ ॥

कीट, वृश्चिक, वृष लग्न व नवांश में यात्रा अशुभ और शुभ ग्रहों की राशि लग्न में शुभ एवं जलचर राशि लग्न में नाविक यात्रा शुभ होती है ॥ १६९ ॥

वश्यावश्य

[2]चतुष्पदा द्व्यंघ्रिवशा विसिंहाः सरीसृपाश्चांबुचराश्च भक्ष्याः।
सिंहस्य वश्या विसरीसृपाः स्युरूह्यं जनोक्तं व्यवहारतोन्यत् ॥१७०॥

सिंह को छोड़ कर चार पैरों वाली जाति मनुष्य के वशीभूत होती है और सरीसृप (सर्पादि) जलचर भक्ष्य होते हैं और सर्पादि को छोड़कर सिंह के समस्त वश्य होते हैं एवं अन्य लोक व्यवहार से समझना चाहिये ॥ १७० ॥

सरीसृपादि संज्ञा वश्यादि

[3]स्थलांबुसंभूतसरीसृपाख्या भवंति वश्या बलिनां स्वकानाम्।
समा द्युसंस्था विषमा भजंते वश्या रजन्यां विषमाः समानाम् ॥ १७१॥

स्थल व जल में उत्पन्न होने वाले सरीसृप होते है उनमें लघु जीव महान् जीवों के वश्य, दिन में सम विषम के वशीभूत और रात्रि में समों के वश में विषम होते है ॥ १७१ ॥

[4]स्याद्विद्विषो जन्मगृहोदयाभ्यां लग्नेष्टमे शत्रुवधः प्रयातुः।
वधः प्रयातुस्त्वरिते प्रसूतौ रंध्रारिभे क्रूरशुभान्विते च ॥१७२॥

जन्मलग्न से छटी राशि से आठवीं लग्न में यात्रा करने पर कर्ता का शत्रु द्वारा वध तथा जन्म लग्न से ६।८ में शुभ पाप युति होने पर यात्रा से शीघ्र मरण होता है ॥ १७२ ॥

विशेष

ज्योतिः–प्रकाशे—

[5]सौम्यक्रूरेषु ये खेटास्तत्कालोपचयावहाः।
तेषां वारांशवर्गाः स्युर्याने योज्या तनावपि ॥ १७३ ॥

ज्योतिः प्रकाश ग्रन्थ में बताया है कि शुभ पाप ग्रहों में जो यात्रा की लग्न से उपचय में हो व उनके वार, नवांश, वर्ग की लग्न में समझ कर यात्रा का समय देना चाहिये ॥ १७३ ॥

---

१. ज्यो. नि. १८९ पृ. ८ श्लो. ।
२. ज्यो; नि. १८९ पृ. ९ श्लो. ।
३. ज्यो. नि. १८९ पृ. १० श्लो. ।
४. ज्यो. नि. १८९ पृ. ११ श्लो. ।
५. ज्यो. नि. १८९ पृ. १२ श्लो. ।

यात्रा में १२ भाव संज्ञा ज्ञान

श्रीपतिः—

[1]मूर्तिः कोशो धन्विनो वाहनानि मित्रं शत्रुर्मार्गं आयुर्मनश्च ।
व्यापारप्राप्तिरप्राप्तिरेनं लग्नाद्भावाद्द्वादशैते विचिन्त्याः ॥१७४॥

आचार्य श्रीपतिजी ने बताया है १ भाव = मूर्ति, २ भा० = कोश, ३ भा० = धनु, ४ भा० = सवारी, ५ भा० = मित्र, ६ भा० = शत्रु, ७ भा० = मार्ग, ८ भा० = आयु, ९ भा० = मन, १० भा० = व्यापार, ११ भा० = प्राप्ति (लाभ), १२ भा० = व्यय लग्न से इन १२ भावों का विचार करना चाहिये ॥ १७४ ॥

यात्रा लग्न से शुभाशुभ ग्रह फल

[2]घ्नंति क्रूरास्त्र्यायवर्ज्यं हि भावान्न व्यापारं निर्हतः सूर्यभौमौ ।
सौम्याः पुष्णंत्येव हित्वारिभावं शुक्रश्चास्तं मृत्युमूर्तीस्तथेंदुः ॥ १७५ ॥

लग्न से ३।११ भाव को छोड़कर शेष भावों में स्थित पापग्रह उन भावों के फल को नष्ट करते हैं, किन्तु सूर्य और मंगल कार्य का नाश नहीं करते । सौम्य ग्रह छठे भाव को छोड़कर, शुक्र सप्तम एवं चन्द्रमा लग्न और अष्टम को छोड़कर शेष भावों में स्थित होने पर उन भावों को पुष्ट करते हैं ॥ १७५ ॥

प्रशस्तादि ग्रह

ज्योतिःप्रकाशे—

[3]सर्वत्रगाः शुभाः सौम्याः पापास्त्र्यायारिकर्मगाः ।
चन्द्रो नेष्टस्तनौ रन्ध्रे याने खार्किः सितोस्तगः ॥ १७६ ॥

शुभग्रह सब भावों में, पापग्रह ३।११।६।१० में प्रशस्त होते हैं । लग्न व अष्टम में चन्द्र, १० में शनि और सातवें में शुक्र अशुभ होता है ॥ १७६ ॥

लग्नेश, अष्टमेश फल

[4]लग्नपो मृत्युपो याने रन्ध्रास्तारिव्ययोपगः ।
केप्याहुर्भयदो धर्मे शेषस्थाने यशोर्थदः ॥ १७७ ॥

यात्रा के समय लग्नेश, अष्टमेश ८।७।६।१०।९ भाव में होने पर भय प्राप्ति, शेष स्थानों में रहने पर यश, धनकी प्राप्ति होती है ऐसा किसी का कहना है ॥ १७७ ॥

यात्रा लग्न में त्याज्य ग्रह योग

[5]धनधीधर्मगं सूर्यं शुभमिच्छंति केचन ।
प्रायेण तद्वदक्रूरं प्रशस्तं सर्वगं बुधम् ॥ १७८ ॥

किसी के मत में दूसरे, पांचवें, नवें भाव में सूर्य शुभ होता है । इसी प्रकार प्रायः कर पाप ग्रह के साथ न हो तो बुध सब भावों में शुभ होता है ॥ १७८ ॥

---

१. ज्यो. नि. १८९ पृ. १३ श्लो. ।
२. ज्यो. नि. १८९ पृ. ।
३. ज्यो. नि. १८९ पृ. १५ श्लो. ।
४. ज्यो. नि. १८९ पृ. १९ श्लो. ।
५. ज्यो. नि. १८९ पृ. १६ श्लो. ।

[1]केचिदूचुर्व्यये चन्द्रं रि:फे रन्ध्रे गुरुं त्यजेत्।
षष्ठे शुक्रे च यात्रायां दिगीशे केन्द्रगे शुभम् ॥ १७९ ॥

किन्हीं का कहना है कि १२वें चन्द्र, १२वें या ८वें गुरु और छठें भाव में शुक्र का त्याग करके दिशा स्वामी ग्रह को केन्द्र में रहने पर यात्रा शुभ होती है ॥ १७९ ॥

शुभाशुभ भावस्थ ग्रह फल

[2]राजश्रीर्जयधीमानलाभारोग्यबलोदयात् ।
पुष्णंति घ्नंति सूर्याद्याः सदसद्भावगाः क्रमात् ॥ १८० ॥

१ राज्य, २ श्री, ४ जय, ३ बुद्धि, ५ सम्मान, ६ लाभ, ७ आरोग्य फल की शुभाशुभ भाव में स्थित सूर्यादि ग्रह क्रम से उक्त फल की वृद्धि (शुभभावस्थ) व विनाश करने वाले होते हैं। जैसे यात्रा लग्न में सूर्य शुभ भाव में होने पर यात्रा में राज्य की प्राप्ति और अशुभस्थ होने पर यात्रा में राज्य का विनाश होता है ॥ १८० ॥

[3]जन्मराशि त्यजेल्लग्ने तथाभं नष्टवक्रिणे।
अष्टमं तत्पतिं जन्म लग्नं लग्नेर्थदो गमः ॥ १८१ ॥

यात्रा करते समय स्वजन्म राशि व नक्षत्र, अस्त व वक्री ग्रह की राशि, अष्टम राशि तथा उसके स्वामी के लग्न में होने पर जन्म लग्न का त्याग किया जाय तो यात्रा में सिद्धि होती है ॥ १८१ ॥

मांडव्य:—

प्रसूतौ बलहीनो यो यो विरोधी दशापतेः।
सांप्रतं विबलश्चासौ लग्ने सौम्योपि नेष्टदः ॥ १८२ ॥

ऋषि माण्डव्यजी ने बताया है कि जन्म के समय बल हीन जो ग्रह तथा दशापति के विरोधी, गमन समय निर्बल ग्रह लग्न में शुभ होने पर भी अच्छा फल न देकर दूषित ही फल देता है ॥ १८२ ॥

शुभ लग्न

वसिष्ठः—

[4]सूर्याद्द्वितीयमृक्षं वेशिस्थानं प्रकीर्तितं यवनैः।
तच्चेष्टग्रहयुक्ते जन्मनि यात्रासु च सुलग्नम् ॥ १८३ ॥

ऋषि वसिष्ठजी ने बताया है कि सूर्य से २ रा स्थान यवनों ने वेशि नाम से उद्धृत किया है। वह जन्म के समय शुभग्रह से युक्त हो तो उसमें यात्रा शुभ होती है ॥ १८३ ॥

वेशि लग्न फल

वेशिर्विलग्नोपगतोयियासोर्विनापि यत्नात्कुरुते फलाप्तिम्।
शुभग्रहैर्जन्मनि संयुता ये ते राशयो लग्नगताः प्रशस्ताः ॥१८४॥

---

१. ज्यो. नि. १८९ पृ. १७ श्लो.। २. ज्यो. नि. १८९ पृ. १८ श्लो.।
३. ज्यो. नि. १८९ पृ. २१–२२ श्लो.। ४. ज्यो. नि. १९० पृ. २७ श्लो.।

वेशिलग्न में यात्रा करने पर विना प्रयास से फल की प्राप्ति होती है। तथा जन्म के समय शुभ ग्रह से युत राशि में यात्रा भी शुभ फल दायिनी होती है ॥ १८४ ॥

त्याज्य योग

अत्रिः—

लग्नाधिपे सूर्यगतेथ नीचे पराजिते शत्रुगे नैधने वा।
प्रयाति यद्यप्यथ राजयोगैः प्राप्नोति मृत्युं यवना वदंति ॥ १८५ ॥

ऋषि अत्रि ने बताया है कि लग्नेश सूर्य के साथ रहने पर, नीच या शत्रु राशि या पराजित या अष्टम रहने पर प्रयाण में मरण होता है, ऐसा यवन लोग कहते हैं ॥ १८५ ॥

[1]एकोपि केंद्रगो वक्री क्रूरः सौम्योथवा ग्रहः।
वर्गो वा तस्य लग्नस्थो भवेद्यातुर्विनाशदः ॥ १८६ ॥

एक भी केन्द्रस्थ शुभ या पाप ग्रह वक्री हो या उसका वर्ग लग्नस्थ हो तो, यात्रा करने वाले का विनाश होता है ॥ १८६ ॥

ज्योतिःप्रकाशे—

नेष्टश्चतुष्टये वक्री तद्वर्गोपि विलग्नगः।
करोति बहुधा नाशं तद्वारोपि यियासताम् ॥ १८७ ॥

ज्योतिः प्रकाश में बताया है कि वक्र ग्रह केन्द्र में व उसका वर्ग लग्न में भी अशुभ होता है तथा वक्री ग्रह के वार में भी यात्रा करने वाले का अनेक प्रकार से विनाश होता है ॥ १८७ ॥

श्रीपतिः—

[2]केन्द्रे वक्री मृतिं कुर्यात्तस्य वर्गो दिनं तथा।
सुखेस्तजन्मभेऽङ्गे च भंगः पापयुतेक्षिते ॥ १८८ ॥

आचार्य श्रीपतिजी ने बताया है कि यात्रा लग्न से केन्द्र में वक्री ग्रह के रहने पर तथा उसका लग्न में वर्ग या वार यात्रा में मृत्युदायक होता है एवं ४।७, जन्म राशि, जन्म लग्न में पापग्रह से दृष्ट युत होने पर भङ्ग होता है ॥ १८८ ॥

बादरायणः—

[3]जन्मपौ केन्द्रगौ ग्राह्यौ तयोः शत्रुविलग्नगः।
सौम्योपि नाशकृद्याने सुहृत्प्रायोपि कार्यकृत् ॥ १८९ ॥

ऋषि बादरायण ने बताया है कि जन्म राशीश, जन्म लग्नेश यात्रा में केन्द्रस्थ हों तो ग्राह्य होते हैं तथा उनसे छटे भाव में शुभ ग्रह भी यात्रा में नाश करने वाला होता है एवं वह मित्र ग्रह हो तो कार्य की सिद्धि करने वाला होता है ॥ २८९ ॥

---

१. ज्यो. नि. १९० पृ. ४१ श्लो.। २. ज्यो. नि. १९० पृ. ४२ श्लो.।
३. ज्यो. नि. १९० पृ. ४३ श्लो.।

लालाटी योग फल

अथ लालाटीयोगः—

वृद्धनारदः—

[1]दिगीश्वरो ललाटस्थो यदि वा दिग्बलान्वितः ।
वधवंधप्रदो यातुः केन्द्रगस्तु जयार्थदः ॥ १९० ॥

वृद्ध नारदजी ने बताया है कि दिशा स्वामी यदि ललाटस्थ वा दिशा बल से युक्त हो तो यात्रा करने वाले को वध (मरण) जेल देने वाला और केन्द्रस्थ दिशा स्वामी विजय व धनप्रद होता है ॥ १९० ॥

दिक् स्वामी ज्ञान

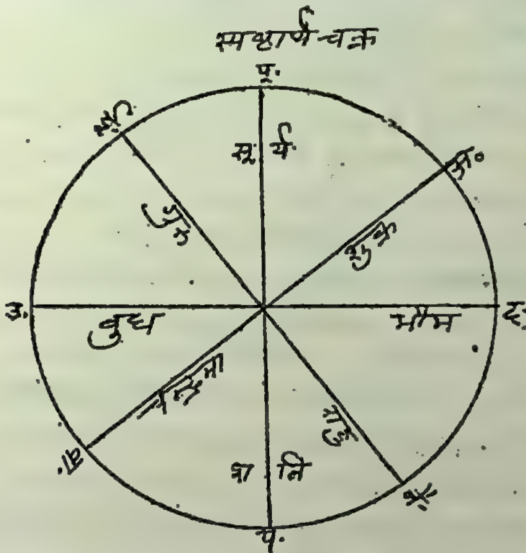
नारदः—

[2]दिशीशाः सूर्यशुक्रारराह्वर्कीन्दुज्ञसूरयः ।
दिगीश्वरे ललाटस्थे यातुर्न पुनरागमः ॥ १९१ ॥

ऋषि नारदजी ने बताया है कि पूर्वदिशा का स्वामी सूर्य, अग्निकोण का शुक्र, दक्षिण का मंगल, नैर्ऋत्य का राहु, पश्चिम का शनि, वायव्य का चन्द्रमा; उत्तर का बुध और ईशान कोण का स्वामी गुरु होता है । ललाटस्थ दिगीश्वर होने पर यात्रा करने वाला पुनः घर वापिस नहीं आता है ॥ १९१ ॥

श्रीपतिः—

दिशामधीशा रविशुक्रभौमतमोयमेंद्विन्दुजसूरयः स्युः ।
ललाटगे न प्रविशेद्दिगीशे गंतव्यमस्मिन्खलु कंटकस्थे ॥ १९२ ॥



१. ज्यो. नि. १९१ पृ. ४७ श्लो. । २. ज्यो. नि. १९१ पृ. ४८ श्लो. ।

आचार्य श्रीपतिजी ने बताया है कि पूर्वादि दिशा क्रम से सूर्य, शुक्र, मंगल, राहु, शनि, चन्द्रमा, बुध, गुरु दिशाओं के स्वामी होते हैं। इनके ललाटस्थ होने पर यात्रा से लौटना नहीं होता है और दिक् पति केन्द्रस्थ होने पर यात्रा शुभ होती है ॥ १९२ ॥

लालाटिक ग्रह

लग्ने भानुः सुतरिपुगतश्चंद्र आरो नभस्थः
पातालस्थो निशिपतिसुतः स्वत्रिगो देवमंत्री।
त्याज्यः शुक्रो व्ययभवनगतो भास्करिः सप्तमस्थो
राहुर्नित्यं नवमनिधनं स्वां दिशं वर्जयंति ॥ १९३ ॥

आचार्य वराह ने बताया है कि पूर्व दिशा की यात्रा में लग्नस्थ सूर्य, वायव्य कोण की यात्रा में यात्रा लग्न से ५।६ में चन्द्रमा, दक्षिण यात्रा में दशमस्थ भौम, उत्तर की यात्रा में ४ में बुध, ईशान यात्रा में २।३ में गुरु, अग्निकोण की यात्रा में ११।१२ में शुक्र, पश्चिम की यात्रा में सप्तमस्थ शनि और नैर्ऋत्य कोण की यात्रा में ८।९ में राहु लालाटिक योग कर्ता होता है, अतः इनका त्याग करना चाहिये ॥१९३॥

निबंधसारे--
प्राच्यां लग्नगतो ललाटग इनश्चंद्रोऽरिपुत्रोपगो
वायव्यां यमदिश्यसृग्दशमगो ज्ञोप्युत्तरस्यां सुखे।
ईशान्यां त्रिधने गुरुर्दहनदिश्यायव्ययस्थो भृगु-
र्वारुण्यां मदगोर्कजोष्टनवगो राहुस्त्यजेन्नैर्ऋतिम् ॥ १९४ ॥

निबन्धसार में कहा है कि पूर्व में लग्नस्थ सूर्य, वायव्य में ५।६ में चन्द्र, दक्षिण में दशमस्थभौम, उत्तर में ४ में बुध, ईशान में २।३ में गुरु, अग्निकोण में ११।१२ में शुक्र, पश्चिम में सप्तमस्थ शनि और नैर्ऋत्यकोण यात्रा में ८।९ में राहु का त्याग करना चाहिये ॥ १९४ ॥

लालाटिक ग्रह फल

[1]लालाटेग्निभयं करोति दिनकृत्कोशक्षयं लोहितः
शत्रूणां विजयं शशांकतनयो सेवाविमर्दं गुरुः।
मृत्युं भास्करनंदनो नरपतेर्व्याधिं तथा विप्रारा-
डेतान्येव समस्तखेचरफलान्येकः सितो यच्छति ॥ १९५ ॥

यात्रा में सूर्य लालाटिक योग कर्ता होने पर अग्निभय, मंगल से धनक्षय, बुध से शत्रु विजय, गुरु से सेवा का नाश, शनि से मृत्यु, चन्द्रमा से व्याधि (रोग) और एक शुक्र के लालाटिक योग करने पर यात्रा में सब ग्रहों का फल प्राप्त होता है ॥१९५॥

---

१. ज्यो. नि. १९१ पृ. ५२ श्लो.।

स्पष्टार्थ चक्र



लालाटिका का अपवाद

[1]रत्नावल्याम्—

यात्रा दिगीशाद्यदि पञ्चमेज्यो ग्रहो गृहे वीर्ययुतोधितिष्ठेत् ।
समुत्थिता सा कथितानि भुक्त्वा फलानि वीर्यान्नयति स्वकाष्ठाम् ॥ १९६ ॥

रत्नावली में कहा है कि दिशा स्वामी दिशा यात्रा में अर्थात् लालाटिक होने पर यदि पञ्चम भाव में बली गुरु होता है तो यात्रा में आपत्तियों का विनाश करके अपनी दिशा में बल पूर्वक ले जाता है ॥ १९६ ॥

[2]परस्परं त्रिकोणस्थौ मन्दारौ भास्करोडुपौ ।
शुक्रारौ नयतः स्वाशां विनाशोक्तं फलं बलात् ॥ १९७ ॥

जब कि यात्रा लग्न में शनि-मंगल, सूर्य-चन्द्र, शुक्र-मंगल परस्पर त्रिकोणस्थ होते हैं तो अपनी दिशा में ले जाकर अप्रत्याशित फल की प्राप्ति बल पूर्वक कराते हैं ॥१९७॥

कुछ समय में मरण योग

गर्गः—

अंशाधिपलग्नपतौ जन्मपतिश्चास्तमुपगतौ यस्य ।
यात्रासमये मरणं तस्य भवति कतिपयाहेन ॥ १९८ ॥

जिसकी यात्रा के समय नवांश व लग्न और जन्मराशि का स्वामी अस्त होते हैं तो यात्रा कर्ता का थोड़े दिनों में मरण होता है ॥ १९८ ॥

सामदंडादि ग्रह

[3]साम्नो जीवसुतौ नाथौ दण्डस्य कुजभास्करौ ।
चन्द्रो दानस्य भेदस्य राहुकेतुबुधार्कजाः ॥ १९९ ॥

साम के गुरु, शुक्र, दण्ड के मंगल, सूर्य, दान का चन्द्रमा और भेद के स्वामी ग्रह राहु, केतु, बुध व शनि होते हैं ॥ १९९ ॥

---

१. ज्यो. नि. १९१ पृ. ५५ श्लो. । २. ज्यो० नि० १९१ पृ० ५६ श्लो० ।
३. ज्यो० नि० १९१ पृ० ५७–५८ श्लो० ।

स्पष्टार्थचक्र

साम	दण्ड	दान	भेद
वृ. शु.	सू. मं.	च	बु. श. रा. के.

सामादि ग्रह फल

यान्ति सामादयः सिद्धि केन्द्रोपचयसंस्थिताः ।
स्वनाथैर्वीर्यसंयुक्तैस्तद्वारैर्वा तदंशकैः ॥ २०० ॥

सामादि ग्रह केन्द्र या उपचय में स्थित अपने वली स्वामी से युक्त होने पर, उनके वार वा नवांश में होने से यात्रा में सिद्धि होती है ॥ २०० ॥

सिद्धिप्रद यात्रा योग

माण्डव्यः—

यात्रालग्ने ग्रहः स्वोच्चे दिगीशे स्वर्क्षमित्रगे ।
तदा यातुर्भवेत् सिद्धिर्व्यत्यये व्यत्ययं फलम् ॥ २०१ ॥

ऋषि माण्डव्य ने बताया है कि यात्रा की लग्न में जब दिगीश ग्रह अपनी उच्च-राशि या अपनी राशि या मित्र की राशि में होता है तो जाने वाले को सिद्धि और इसके विपरीत में कार्य की असिद्धि होती है ॥ २०१ ॥

अब आगे गर्गोक्त बारह भावों में ग्रहफल को बताते हैं ।

लग्नस्थ ग्रहों का फल

गर्गः—

[1]लग्ने यदा स्युर्गुरुशुक्रसौम्याः सिद्धचन्ति कार्याणि च पञ्चमेह्नि ।
राज्यास्पदं वा सुखदेशलाभं मासस्य मध्ये ग्रहभावयुक्तम् ॥ २०२ ॥

गर्गाचार्य जी ने बताया है कि लग्न में गुरु, शुक्र, बुध होने पर यात्रा में पाँचवें दिन कार्य की सिद्धि; राज्य प्राप्ति या एक मास में ग्रह के अनुकूल सुख, देश व लाभ होता है ॥ २०२ ॥

दूसरे भाव में ग्रहों का फल

[2]जीवो बुधो वा भृगुनन्दनो वा स्थाने द्वितीये गमनस्य काले ।
सुवस्त्रलाभं चतुरङ्गलाभे मासस्य मध्ये च चतुर्दशेह्नि ॥ २०३ ॥

यात्रा की बेला में जब गुरु या बुध या शुक्र दूसरे स्थान में होता है तो १ मास के बीच या चौदहवें दिन अच्छे वस्त्रों का चारों ओर से लाभ होता है ॥ २०३ ॥

---

१. ज्यो० नि० १९५ पृ० २ श्लो० ।
२. ज्यो० सा० १९४ पृ० २०२ श्लो० ।

[1]क्रूरा धनस्य रविराहुभौमाः सौरिश्च केतुस्त्रिभिरेव मासैः ।
वित्तस्य नाशं च ददाति मृत्युं सत्यं हि वाक्यं मुनयो वदन्ति ॥ २०४ ॥

सूर्य, राहु, भौम, मंगल या केतु दूसरे भाव में होता है तो धन, वित्त का नाश एवं मरण होता है । यह सत्य घोषणा ऋषि लोग करते हैं ॥ २०४ ॥

तीसरे भाव में ग्रहों का फल

स्थाने तृतीये गुरुभार्गवौ च सोमस्य सूनुश्च निशांपतिश्च ।
करोति कार्यं सफलं च सर्वं पक्षद्वयेनापि दिनद्वयेन ॥ २०५ ॥

तीसरे स्थान में गुरु, शुक्र, बुध, या चन्द्रमा के होने पर यात्रा में सब कामों की सिद्धि दो पक्ष या दो दिन में होती है ॥ २०५ ॥

चौथे भाव में ग्रहों का फल

क्रूराश्चतुर्थे गमने यदा तु न स्युश्च शेषाः शुभदा हि कार्ये ।
तत्रापि दैवेन भवेच्च सिद्धिः मासत्रयेणापि दशाहमध्ये ॥ २०६ ॥

चौथे भाव में क्रूर ग्रह होने पर यात्रा में कार्य की शुभता (सिद्धि) नहीं होती है और अन्य ग्रहों के रहने पर सिद्धि होती है । वहाँ पर भी भाग्यवश तीन मास या दस दिन के भीतर सिद्धि होती है ॥ २०६ ॥

पाँचवें भाव में ग्रहों का फल

गुरुर्भृगुश्चन्द्रबुधो यदा स्याच्छुभे च लग्ने तु सुते च युक्ता ।
कुर्वीत कार्यस्य च सिद्धिमिष्टां मासद्वयेनापि वदन्ति सत्यम् ॥ २०७ ॥

यात्रा की लग्न से पाँचवें भाव में गुरु, शुक्र, चन्द्र, बुध होने पर अभीष्ट काम की दो मास में लब्धि अवश्य होती है ॥ २०७ ॥

छठे भाव में ग्रहों का फल

जीवश्च शुक्रश्च बुधश्च षष्ठे करोति यात्रां सफलां विलग्नात् ।
पक्षद्वयेनापि वदन्ति सत्यं सौम्यर्क्षसंस्थः सबलश्च चन्द्रः ॥ २०८ ॥

यात्रा की लग्न से छठे भाव में गुरु या शुक्र या बुध या शुभ राशि में बली चन्द्र होने पर दो पक्ष में फल की प्राप्ति होती है ॥ २०८ ॥

सातवें भाव में ग्रहों का फल

चेत्सप्तमस्था गुरुसौम्यसोमाः कुर्वन्ति यात्रां विजयं नृपाणाम् ।
सर्वे नृपास्तस्य भवन्ति वश्या मासद्वयेनापि च पञ्चभिर्दिनैः ॥ २०९ ॥

यात्रा की लग्न से सातवें भाव में गुरु, बुध या चन्द्रमा होने पर राजाओं की यात्रा में विजय होती है और दो मास या पाँच दिन में समस्त राजा वशीभूत होते हैं ॥२०९॥

---

१. ज्यो० सा० १९५ पृ० ४-९ श्लो० २०३-८ श्लो० ।

आठवें भाव में ग्रहों का फल

[1]क्रूराश्च सर्वे यदि लग्नकाले मृत्युस्थिता मृत्युकरा भवन्ति ।
सौम्यो गुरुर्वा भृगुनन्दनश्च दीर्घायुषं मृत्युकरश्च चन्द्रः ॥ २१० ॥

यात्रा की लग्न से आठवें भाव में सब पापग्रह व चन्द्रमा मृत्यु करने वाला और बुध या गुरु या शुक्र की सत्ता में दीर्घायु होती है ॥ २१० ॥

नवें भाव में ग्रहों का फल

धर्मस्थितो वा यदि जीवशुक्रौ सोमस्य सूनुर्यदि लग्नकाले ।
लग्ने चरे वा यदि वा स्थिरे वा कार्यस्य सिद्धिश्च भवेच्च लाभः ॥२११॥

यात्रा की लग्न से नवें भाव में गुरु, शुक्र या बुध होने पर चर लग्न या स्थिर लग्न में यात्रा करने पर कार्य की सिद्धि व लाभ होता है ॥ २११ ॥

दसवें भाव में ग्रहों का फल

कर्मस्थिताः पापखगास्तु सौम्याः कुर्वन्ति कार्यं शनिवर्जितं च ।
लग्ने चरे वा यदि वा स्थिरे वा कार्यस्य सिद्धिश्च भवेच्च लाभः ॥२१२॥
कर्मस्थिताः पापखगास्तु सौम्या कुर्वन्ति कार्यं शनिवर्जितं च ।
लग्ने चरे वा यदि वा स्थिरे च मासत्रयेणापि च चैकमासः ॥२१३॥

यात्रा की लग्न से दसवें भाव में शनि रहित पापग्रह व शुभग्रह होने पर तथा चर या स्थिर लग्न में यात्रा करने से तीन मास या एक मास में कार्य की सिद्धि व लाभ होता है ॥ २१२–२१३ ॥

ग्यारहवें भाव में ग्रहों का फल

लाभस्थितो गुरुबुधो भृगुनन्दनो वा क्रूराश्च सर्वे शशिनैव युक्ताः ।
सद्यः फलाप्तिश्च भवेद्धि यात्रा पक्षैकमध्ये दिवसत्रयेण ॥२१४॥

यात्रा की लग्न से ग्यारहवें भाव में गुरु, बुध, शुक्र, चन्द्रमा के साथ समस्त पापग्रह होने पर एक पक्ष में या तीन दिन के भीतर शीघ्र यथेष्ट वस्तु प्राप्त होती है ॥ २१४ ॥

बारहवें भाव में ग्रहों का फल

[2]पापाश्च सर्वे व्ययदा भवन्ति यात्राफलं गर्गमुनिप्रणीतम् ।
सर्वे शुभा द्वादशसंस्थिताश्च यात्रा भवेत्तत्र विचित्रलाभः ॥ २१५ ॥

यात्रा की लग्न से बारहवें भाव में समस्त पाप ग्रह खर्च करवाने वाले और सब शुभग्रह विचित्र लाभ कराने वाले होते हैं । ऐसा गर्ग मुनि का कथन है ॥ २१५ ॥

---

१. ज्यो० सा० १९७ पृ० १५ श्लो० ।
२. ज्यो० सा० १९६ पृ० १०–१४ श्लो० २१०–२१४ श्लो० ।

अथयोगयात्रायां लग्नांशविचार:—

अब आगे योगयात्रा में जो नवांश व वार फल बताया है, उसे कहते हैं।

लग्नस्थ सूर्य नवांश वारादि फल

[1]दिनकरदिवसे तथांशके वा यात्रा लग्नगते तथा रवौ।
सन्तापयति स्मरातुरं वेश्येवार्थविवर्जितं नरम् ॥ २१६ ॥

लग्नस्थ सूर्यवार, सूर्य के नवांश या लग्न में सूर्य होने पर यात्रा में संतप्त होना पड़ता है। जैसे कामातुर धनहीन पुरुष को वेश्या संतप्त करती है ॥ २१६ ॥

लग्नस्थ चन्द्र नवांश वारादि फल

[2]उदये शशिनोंशकेह्नि वा भवति गतो न चिरेण दुर्मनाः।
प्रमदामिव गतयौवनां रत्यर्थं समवाप्य कर्कशाम् ॥ २१७ ॥

सोमवार, लग्नस्थ चन्द्र के नवांश में या लग्नस्थ चन्द्र होने पर यात्रा में शीघ्र मन अप्रसन्न होता है जैसे विषय वासना की शान्ति के लिये बूढी, कर्कशा स्त्री को प्राप्त करके होता है ॥ २१७ ॥

लग्नस्थ मंगल नवांश वारादि फल

[3]भौमोदयेंशेह्नि वास्य यात्रां करोति बन्धं वधमर्थनाशनम्।
संसेविता पापपराङ्मुखेन मनोभवार्तेन पराङ्गनेव ॥ २१८ ॥

मंगलवार, लग्नस्थ भौम के नवांश में या लग्नस्थ मंगल होने पर यात्रा में जेल, मरण व धन नाश होता है। जैसे कोई पुण्यात्मा कामपीड़ित होकर परस्त्री से सम्भोग करके पछताता है ॥ २१८ ॥

लग्नस्थ बुध नवांश वारादि फल

[4]बुधस्य लग्नांशकवासरेषु यात्रा नरं पीडयति प्रकामम्।
भावानुरक्ता प्रवराङ्गनेव विदग्धचेष्टा मदनाभितप्ता ॥ २१९ ॥

बुधवार, लग्नस्थ बुध के नवांश में या लग्नस्थ बुध होने पर यात्रा में दुःख होता है। जैसे भाव में लीन, काम से पीडित, सुन्दर चेष्टावाली श्रेष्ठ स्त्री को देखकर विशेष पीड़ा होती है ॥ २१९ ॥

लग्नस्थ गुरु नवांश वारादि फल

[5]गुरोर्विलग्नांशदिनेषु यात्रा हितानुबन्धेप्सितकामदा च।
जायेव भक्ता मनसोनुकूला यथाभिवृद्धयै रतिदा हिता च ॥ २२० ॥

---

१. ज्यो० नि० १९५ पृ० १ श्लो०। २. ज्यो० सा० १९४ पृ० २०१ श्लो०।
३. ज्यो० नि० १९५ पृ० ३ श्लो०। ४. ज्यो० नि० १९५ पृ० ४२ श्लो०।
५. ज्यो० नि० १९५ पृ० ५ श्लो०।

गुरुवार, लग्नस्थ गुरु के नवांश में या लग्नस्थ गुरु होने पर यात्रा शुभ सम्बन्ध से ईप्सित कार्य की सिद्धि करने वाली होती है। जैसे मन के अनुकूल सुरति देने वाली, शुभ भक्त अपनी स्त्री समृद्धि करने वाली होती है ॥ २२० ॥

लग्नस्थ, शुक्र नवांश, वारादि फल

[1]यात्रा भृगोरंशदिनोदयेषु प्रीणाति कामैर्विविधैर्यियासुः।
विलासिनी कामवशेन यान्ति भोगैरनेकैर्मदनातुरेव ॥ २२१ ॥

शुक्रवार, लग्नस्थ शुक्र के नवांश में या लग्नस्थ शुक्र होने पर यात्रा में विविध कार्यों से प्रसन्नता होती है। जैसे काम से पीडित विलासिनी स्त्री, काम के अनेक प्रकार के भोगों से प्रसन्न होती है ॥ २२१ ॥

लग्नस्थ, शनि नवांश, वारादि फल

[2]द्युलग्नभागेषु शनेश्च यात्रा प्राणच्छिदारान्विचिनोति दोषान्।
अन्यप्रसक्ता वनितेव मोहान्निषेविता मन्मथमोहितेन ॥२२२॥

शनिवार, लग्नस्थ शनि के नवांश में या लग्नस्थ शनि के होने पर दिन की यात्रा में आत्मा को दुःखी बनाने वाले दोष प्राप्त होते हैं। जैसे काम से मोहित, दूसरे में आसक्त स्त्री का मोहवश सेवन करने पर प्राप्त होता है ॥ २२२ ॥

अथातो योगयात्रायां योगप्रशंसा—

अब आगे योग यात्रा में वर्णित योगों की प्रशंसा बताते हैं।

यात्रा में योग का महत्व

तत्र बृहस्पतिः—

[3]एवं कथितकालो यो दुर्लभो यातुरञ्जसा।
स्वल्पकालो यतस्तस्माद्योगं वक्ष्याम्यभीष्टदम् ॥ २२३ ॥

आचार्य बृहस्पतिजी ने बताया है कि इस प्रकार पूर्व कथित समय सहसा दुर्लभ होने से क्योंकि शुभकाल अल्प होता है, अतः मैं मनोरथों की सिद्धि के लिये अब योग कह रहा हूँ ॥ २२३ ॥

पुनः योग प्रशंसा

नारदः—

[4]पंचाङ्गशुद्धिरहिते दिवसेपि फलप्रदा।
यात्रा योगैर्विचित्रांस्तान्योगान्वक्ष्येधुना ततः ॥ २२४ ॥

ऋषि नारदजी ने बताया है कि पंचाङ्ग से शुद्धि रहित दिन में भी यात्रा योग वश फल देने वाली होती है। उन्हें मैं कह रहा हूँ ॥ २२४ ॥

१. ज्यो० नि० १९६ पृ० ६ श्लो०। २. ज्यो० नि० १९६ पृ० ७ श्लो०।
३. ज्यो० नि० १९८ पृ० १ श्लो०। ४. ज्यो० नि० १९८ पृ० २ श्लो०।

योग व पूर्व कथित काल के फल में निर्णय

[1]बृहस्पतिः—

योगश्च प्रोक्तकालश्च यात्रायां तौ समौ फली।
योगानत्र प्रवक्ष्यामि यथा प्रोक्ताः स्वयंभुवा ॥ २२५ ॥

आचार्य बृहस्पतिजी ने कहा है उक्त काल और विविध यात्रा के फलों में समानता होती है अतः जिस प्रकार से ब्रह्माजी ने बताया है उसी प्रकार से मैं बता रहा हूँ ॥ २२५ ॥

योग वश शुभता

श्रीपतिः—

[2]तिथौ क्षणे भे करणे च वारे योगे विलग्ने हिमगौ नृपाणाम्।
पापेपि यात्रा शुभदात्र योगैर्यतस्ततस्तान् कियतो विवक्ष्ये ॥२२६॥

आचार्य श्रीपतिजी ने कहा है—तिथि, क्षण, नक्षत्र, करण, वार, योग, लग्न, चन्द्र अशुभ होने पर भी योगों के आधार पर यात्रा शुभ होती है ॥ २२६ ॥

नृपादि में फल लब्धि

महीभृतां योगवशात्फलोदये द्विजन्मनामृक्षगुणैस्तु जायते।
स तस्करायैः शकुनप्रभावतो जनस्य शेषस्य मुहूर्तशक्तितः ॥२२७॥

राजाओं को योगवश, ब्राह्मणों को नक्षत्र के गुण पर, चोरों को शकुन वश और अवशेष जनों को मुहूर्त वश कार्य की सिद्धि होती है ॥ २२७ ॥

[3]सागरे—

योगैः फलं क्षितीशानां द्विजानां भगुणैर्भवेत्।
शकुनैश्चारचौराणामितरेषु मुहूर्ततः ॥ २२८ ॥

ज्योतिःसागर में कहा है कि राजाओं को विविध योगों से, ब्राह्मणों को नक्षत्र गुण से; चारों (गुप्तचरों) व चोरों को सगुन से व अवशिष्ट समुदाय को मुहूर्त वश यात्रा में कार्य की सिद्धि होती है ॥ २२८ ॥

बृहस्पतिः—

व्रजन्ति चरणाद्यैस्तु शकुनैः शुभतां ययुः।
मूर्खाश्च तस्कराद्याश्च क्षणवीर्यल्लिभे न वा ॥ २२९ ॥

आचार्य बृहस्पतिजी ने बताया है कि मूर्ख, व चोर शकुन वश यात्रा में शुभ अशुभ का विचार करते हैं किन्तु शकुन तो क्षणवीर्य होते हैं अतः लाभ हो भी सकता है नहीं भी ॥ २२९ ॥

---

१. ज्यो० नि० १९९ पृ० ८ श्लो०।
२. ज्यो० नि० १९८ पृ० ४ श्लो०।
३. ज्यो० नि० १९८ पृ० ७ श्लो०।

काल बल

[1]भूपालवल्लभे—

उषः प्रशस्यते गर्गः शकुनं च बृहस्पतिः ।
अङ्गिरा मन उत्साहो विप्रवाक्यं जनार्दनः ॥ २३० ॥

भूपालवल्लभ नामक ग्रन्थ में बताया है कि गर्गाचार्यजी यात्रा में ऊषा काल की प्रशंसा करते हैं, बृहस्पतिजी शकुन की, अङ्गिरा ऋषि मन के उत्साह की और जनार्दन (विष्णु) का वचन है कि ब्राह्मण के वचन से यात्रा करनी चाहिये ॥ २३० ॥

मनःशुद्धि महत्व

[2]श्रीपतिः—

निमित्तराशिरेकतो नृणां मनस्तथैकतः ।
अतो यियासतां बुधैर्मनोविशुद्धिरिष्यते ॥ २३१ ॥

आचार्य श्रीपति ने कहा है कि सारे निमित्त एक ओर हैं और मन की शुद्धि एक ओर, अतः मन शुद्ध होने पर उत्साह पूर्वक यात्रा करनी चाहिये ॥ २३१ ॥

योग का प्राधान्य

[3]यथा योगाद्विषं पथ्यं मध्वाज्यं मृत्युदं भवेत् ।
तथा योगात् फलं दद्युस्त्यक्त्वा खेटाः स्वकं फलम् ॥ २३२ ॥

जैसे संयोग वश जहर तो पथ्य हो जाता है और सहत, दही मृत्यु दाता होता है । उसी प्रकार ग्रह स्वभाववश फल न देकर योगवश फलदायक होता है ॥ २३२ ॥

[4]यथा हि योगादमृतायते विषं विषायते मध्वपि सर्पिषा समम् ।
तथा विहाय स्वफलानि खेचराः फलं प्रयच्छन्ति हि योगसम्भवम् ॥२३३॥

जैसे अचानक योग से जहर तो अमृत हो जाता है और समान सहत, घी मिलने पर संयोगवश जहर हो जाता है । इस लिये अपना फल न देकर ग्रह योग का ही फल देता है ॥ २३३ ॥

शौनकः—

[5]न तिथिर्न च नक्षत्रं न योगं नैन्दवं बलम् ।
न तारां वैधृतिं विष्टिं व्यतीपातादिकं यथा ॥ २३४ ॥
योगमेव प्रशंसन्ति वसिष्ठात्रिपराशराः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन याने योगान्विलोकयेत् ॥ २३५ ॥

---

१. ज्यो० सा० १८५ पृ० ।   २. मु० चिं० ११ प्र० ७५ श्लो० पी० टी० ।
३. ज्यो० नि० १९९ पृ० ९ श्लो० ।
४. मु० चिं० ११ प्र० ५४ श्लो० पी० टी० ।
५. मु० चिं० ११ प्र० ५४ श्लो० पी० टी० तथा
ज्यो० नि० १९९ पृ० १४-१५ श्लो० ।

ऋषि शौनकजी ने कहा है कि तिथि, नक्षत्र, योग, बलीचन्द्र, तारा, वैधृति, व्यतीपात आदि यात्रा में उतने फलप्रद नहीं होते जितने कि योग, ऐसा वसिष्ठ, पराशर ऋषियों ने योग का फल कहा है अतः मैं यात्रा के विविध योगों को कह रहा हूँ ॥२३४–२३५ ॥

शत्रु सेना विलीन योग

श्रीपतिः—

[1]यमज्ञशुक्रेज्यमहीसुतेषु त्रिबन्धुलग्नास्तरिपुस्थितेषु ।
विलीयते वैरिचमू रणाग्रे लाक्षेव वह्नौ नृपतेर्गतस्य ॥ २३६ ॥

आचार्य श्रीपतिजी ने कहा है कि शनि, बुध, शुक्र, गुरु व मंगल यात्रा की लग्न से ३।४ लग्न, सात, छै में स्थित होने पर राजा की यात्रा में शत्रु सेना का विलय होता है। जैसे अग्नि में लाख की समाप्ति होती है ॥ २३६ ॥

शत्रु सेना की अस्थिरता का योग

[2]गुरुर्लग्ने रविः षष्ठे रन्ध्रे नेन्दुश्च गच्छतः ।
यस्य यस्यारिसेनाग्रे खलमैत्रीव न स्थिरा ॥ २३७ ॥

लग्न में गुरु, छठे भाव में सूर्य होने पर एवं अष्टम में चन्द्रमा के अभाव में जिस राजा की यात्रा होती है उसके सामने शत्रु की सेना जैसे दुष्ट की मित्रता स्थिर नहीं होती है उसी प्रकार स्थिर नहीं होती है ॥ २३७ ॥

कष्ट से सिद्धि योग

योगयात्रायाम्—

[3]सौम्यैश्च पापैश्च चतुष्टयस्थैः कृच्छ्रेण संसिद्धिमुपैति कार्यम् ।
प्रयाणयानप्रतिघातवक्रैर्नदीव धात्रीधरकन्दरेषु ॥२३८॥

योग यात्रा में बताया है कि शुभ, पाप ग्रह केन्द्र में होने पर यात्रा में कष्ट से कार्य की सिद्धि होती है। जैसे पहाड़ की गुफा में नदों का निर्गम टेढ़ा मेढ़ा होता है ॥२३८॥

उत्तम योग

बृहस्पतिः—

पापश्चैकस्तृतीयस्थो लग्ने जीवोऽस्तगे बुधे ।
जलेभृगुरुपायातो योगोऽयं यातुरुत्तमः ॥ २३९ ॥

आचार्य बृहस्पतिजी ने बताया है कि तीसरे में पाप ग्रह, लग्न में गुरु, सातवें में बुध और यात्रा की लग्न से चौथे भाव में शुक्र हो तो उत्तम योग होता है ॥ २३९ ॥

---

१. मु० चि० ११ प्र० ७१ श्लो० पी० टी० ।
२. मु० चि० ११ प्र० ५७ श्लो० पी० टी० ।
३. ज्यो० नि० १९९ पृ० ३ श्लो० ।

सर्व समृद्धि प्रद योग

कुजजीवार्कशुक्रज्ञास्त्रिसुतार्थाष्टमसप्तगाः ।
यदि यात्रा शुभा यातुः सर्वसम्पत्समृद्धिदा ।। २४० ।।

मंगल, गुरु, सूर्य, शुक्र, बुध ३।५।२।८।७ में होने पर यात्रा करने वाले व्यक्ति को समस्त प्रकार की समृद्धि होती है ।। २४० ।।

शुभ यात्रा योग

गुरौ विलग्नगे केन्द्रगते लाभगतेथवा ।
चन्द्रेचाष्टमगे यातुर्यात्रा शोभनदा भवेत् ।। २४१ ।।

जब कि गुरु यात्रा की लग्न या केन्द्र या लाभ में हो और चन्द्रमा चाहे आठवें भाव में हो तो भी यात्रा सुन्दर फल वाली होती है ।। २४१ ।।

विजयप्रद यात्रा योग

केन्द्रत्रिकोणगाः सौम्यास्तृतीयायारिगाः परे ।
यदि यातुः शुभा यात्रा द्रव्यदा विजयावहा ।। २४२ ।।

केन्द्र त्रिकोण में शुभ ग्रह व तृतीय, ग्यारह, छटे में पाप ग्रह होने पर यात्रा में धन की प्राप्ति व विजय होती है ।। २४२ ।।

शुभद योग

शुभेष्वेको बली केन्द्रगतो वाथ त्रिकोणगः ।
योगोयं ब्रह्मणा प्रोक्तो यात्रायां शुभदः स्वयम् ।। २४३ ।।

शुभग्रहों में से एक भी बलवान् केन्द्र, त्रिकोण में होने पर यात्रा में शुभ होता है। ऐसा ब्रह्माजी ने स्वयं कहा है ।। २४३ ।।

यात्रा में योग, अधियोग, योगाधियोग

रामाचार्यः—

[1]एको ज्ञेज्यसितेषु पञ्चमतपःकेन्द्रेषु योगस्तदा
द्वौ चैतेष्वधियोग एव सकला योगाधियोगः स्मृतः ।
योगक्षेममथापि योगगमने क्षेमं रिपूणां वधं
तद्वत्क्षेमयशोवनीश्च लभते योगाधियोगे व्रजन् ।। २४४ ।।

रामदैवज्ञ ने मुहूर्त चिन्तामणि में बताया है कि बुध, गुरु, शुक्र इन तीनों में से एक भी ग्रह केन्द्र या त्रिकोण (१।४।७।१०।९।५) में होने पर यात्रा में योग (शुभ) होता है तथा उक्त तीनों (बुध-गुरु-शुक्र) में से दो की स्थिति केन्द्र त्रिकोण में होने पर अधियोग होता है । और बुध, गुरु, शुक्र ये तीनों ग्रह केन्द्र, त्रिकोण में रहने पर योगाधियोग होता है ।

---

१. मु. चि. ११ प्र. ७३ श्लो. ।

योग में यात्रा करने पर राजा को कुशल की लब्धि होती है अर्थात् कुशल पूर्वक घर वापिस आता है।

अधियोग में देशान्तर जाने से शत्रु का वध करके कुशल पूर्वक आगमन होता है।

योगाधियोग में यात्रा करने पर शत्रु वध और यश पूर्वक भूमिलाभ होकर कुशलता से घर आना होता है ॥ २४४ ॥

विशेष—इन योगों के विविध भेद पीयूष धारा टीका में हैं, उन्हें वहीं से समझना चाहिये ॥ २४४ ॥

सिद्ध मुहूर्त विजयादशमी

[1]इषमाससिता दशमी विजया शुभकर्मसु सिद्धिकरी कथिता।
श्रवणर्क्षयुता: सुतरां शुभदा नृपतेस्तु गमे जयसिद्धिकरी ॥ २४५ ॥

मुहूर्तचिन्तामणि में बताया है कि आश्विन (क्वार) मास शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि विजया दशमी तिथि होती है। यह तिथि समस्त शुभ कामों में सिद्धिप्रदा होती है। यदि विजया दशमी के दिन श्रवण नक्षत्र हो तो ऐसी विजया दशमी विशेष शुभ फल देने में समर्थ होतो है।

नृप यात्रा के लिए या सर्वसाधारण की यात्रा के लिए विजया दशमी विजय देने वाली और आपस में सन्धिकारक अर्थात् मित्रता देनेवाली होती है ॥ २४५ ॥

यात्रा करने से पूर्व की विधि

[2]अग्नि हुत्वा देवतं पूजयित्वा
नत्वा विप्रानर्चयित्वा दिगीशम्।
दत्त्वा दानं ब्राह्मणेभ्यो दिगीशं
ध्यात्वा चित्ते भूमिपालोऽभिगच्छेत् ॥ २४६ ॥

मुहूर्तचिन्तामणि में कहा है कि यात्रा करने से पहिले अग्नि में हवन करके, देव पूजा समाप्त कर ब्राह्मणों से नमस्कार पूर्वक आशीर्वाद ग्रहणकर, जिस दिशा की यात्रा करनी हो उस दिशा स्वामी ग्रह की विशेष रीति से अर्चना करके ब्राह्मणों को रत्न, वस्त्र, सुवर्णादि दान से संतुष्ट कर और गन्तव्य दिशा के स्वामी का ध्यान कर यात्रा करनी चाहिये ॥ २४६ ॥

गमन प्रकार

[3]उद्धृत्य प्रथमत एव दक्षिणाङ्घ्रिं द्वात्रिंशत्पदमभिगत्य दिश्ययानम्।
आरोहेत् तिलघृतहेमताम्रपात्रं दत्त्वादौ गणकवराय च प्रगच्छेत् ॥२४७॥

---

१. मु. चि. ११ प्र. ७४ श्लो.।
२. मु. चि. ११ प्र. ७५ श्लो.।
३. मु. चि. ११ प्र. ८६ श्लो.।

घर से निकलते समय प्रथम दाहिना पैर बाहर धर कर, ३ पैर चलकर दिक सम्बन्धी सवारी पर बैठ कर श्रेष्ठ ज्योतिषी को तिल. घी, सुवर्ण, तामें का वर्तन देकर यात्रा करनी चाहिये ।। २४७ ।।

भिन्न प्रकार

[1]देवज्ञं पूजयित्वा तु विदुषः प्रज्ञशक्रतः ।
प्रदक्षिणामिमां कृत्वा तिष्ठन्ध्यायेदुमापतिम् ।। २४८ ।।

ज्योतिषी का पूजन करके इन्द्र की वुद्धि से प्रदक्षिणा देकर खड़ा होकर शिवजी का ध्यान करना चाहिये ।। २४८ ।।

प्राङ्मुखस्त्रिपुरघ्नं च जपेद्विद्यां च मङ्गलम् ।
ॐकारोऽथश्रीशब्दश्च ध्रुवमाङ्गलिकेन च ।। २४९ ।।

और पूर्व दिशा की ओर मुख करके त्रिपुरघ्न विद्या का जप करने से मंगल होता है । तथा गमन समय स्थिर मांगलिक ऊँकार, श्री श्री शब्द का उच्चारण करते हुए गमन करना चाहिये ।। २४९ ।।

ग्रन्थान्तर में भी भिन्न विधि

अन्यत्रापि—

[3]वैन्यं पृथुं हैहयमर्जुनं च शाकुन्तलेयं भरतं नलं च ।
रामं च यो वै स्मरति प्रभाते यानेर्थलाभो विजयश्च सिद्धिः ।।२५०।।

वैन्य, पृथु, हैहय अर्जुन, शाकुन्तलेय भरत, नल, और रामजी का जो प्रातःकाल स्मरण करता है उसकी यात्रा में धन लाभ, विजय व सिद्धि प्राप्त होती है ।। २५० ।।

गमन के वाक्य

[3]तिथ्यादिकालावयवा विलग्नं सूर्यादिखेटाः कुलदेवताश्च ।
भूतानि विघ्नेश्वरविप्रवेशात्कुर्वन्तु कल्याणमिह प्रयाणे ।। २५१ ।।

तिथ्यादि समय के अंग, लग्न, सूर्यादि ग्रह, कुल देवता, भूत व गणेशजी विप्र (ब्राह्मण) के स्वरूप से मेरी इस यात्रा को कल्याण कारी करें, ऐसा कहना चाहिये ।। २५१ ।।

यात्रा करने के स्थान

रामः—

[4]देवगृहाद्वा गुरुसदनाद्वा स्वगृहान्मुख्यकलत्रगृहाद्वा ।
प्राश्य हविष्यं विप्रानुमतः पश्यञ्छृण्वन्मङ्गलमेयात् ।। २५२ ।।

---

१. ज्यो. नि. २०८ पृ० १४ श्लो. ।
२. ज्यो. नि. २०७ पृ. ४ श्लो. ।
३. ज्यो. नि. २०७ पृ. ५ श्लो. ।
४. मु. चि. ११ प्र. ८८ श्लो. ।

श्रीरामदैवज्ञने मुहूर्त चिन्तामणि में कहा है कि देवता के मंदिर से या गुरु के घर से या अपने घर से या मुख्य स्त्री के घर से ब्राह्मण की अनुमति से हविष्य (मुद्ग, घी, हलुआ, तस्मैं आदि) भोजन करके मंगल कार्य का अवलोकन या श्रवण करता हुआ यात्रा करे ॥ २५२ ॥

गमन प्रकार

बृहस्पतिः—

[1]पूर्वं दक्षिणमुद्धृत्य पादं यात्रां नराधिपः।
द्वात्रिंशच्च पदं गत्वा धारयेन्नृपतिः स्वयम् ॥ २५३ ॥

आचार्य बृहस्पतिजी का कहना है कि प्रथम घर से निकलने के समय दाहिना पाँव आगे निकाल कर ३२ पग चलने के बाद राजा को स्वयं शस्त्रादि धारण करना चाहिये ॥ २५३ ॥

दैवज्ञामात्यविप्राद्यैः पुरोगैः स्वजनैर्धृतः।
दृष्ट्वाष्टौ मङ्गलान्गच्छेन्नृपतेर्मंगलान् शृणु ॥ २५४ ॥

ज्योतिषी मन्त्री विप्रादि स्वजनों को आगे करके आठ मांगलिक पदार्थों को देख कर यात्रा करनी चाहिए। अब आठ मंगलों के नाम सुनो ॥ २५४ ॥

मांगलिक आठ पदार्थ

[2]पूर्णकुम्भं ध्वजं छत्रं दीपं शङ्खं च चामरम्।
अङ्कुशं शस्त्रमादित्यमष्टमङ्गलमीरितम् ॥ २५५ ॥

भरा हुआ घड़ा १, ध्वजा २, छाता ३, दीप ४, शंख ५, चामर ६, अंकुश ७ व सूर्य ८ ये आठ मांगलिक पदार्थ होते हैं ॥ २५५ ॥

पूर्वादि दिशाओं में यात्रा के वाहन (सवारी)

प्राग्यायाद्वारणे राजा रथगो दक्षिणां दिशम्।
पश्चिमां तुरगे यायादुत्तरां नरवाहनः ॥ २५६ ॥

पूर्व की यात्रा हाथी में बैठकर दक्षिण दिशा की रथ पर चढ़कर, पश्चिम में घोड़ा से व उत्तर दिशा की यात्रा होने पर नर (पुरुष) की सवारी पर जाना चाहिये ॥ २५६ ॥

विशेष

किञ्चिद्विलम्ब्य यातव्ये कार्यं निर्गमनं बुधैः।
योगे वा प्रत्यकाले वा यात्रावत्साध्यसाधना ॥ २५७ ॥

यदि कुछ विलम्ब करके जाना हो तो अच्छे योग या मुहूर्त में प्रस्थान (यात्रा के उपयोगी कोई वस्तु) यात्रा मार्ग में रख देनी चाहिये उसे लेकर जाने से भी योग या मुहूर्त का वैसा ही फल होता है जैसा यात्रा का ॥ २५७ ॥

---

१. मु. चि. ११ प्र. ८६ श्लो. पी. टी. में 'यानमारुह्य संव्रजेत्' पाठ है।
२. ज्यो. नि. २०७ पृ. ११ श्लो.।

सह यात्रा निषेध

पितापुत्रौ न गच्छेतां न गच्छेत् भ्रातरद्वयम् ।
नवस्त्रीभिर्न गतव्यं न गच्छेद्ब्राह्मणत्रयम् ॥ २५८ ॥

पिता, पुत्र, दो भाई, नौ स्त्रियाँ और तीन ब्राह्मणों को एक साथ एक घर से यात्रा नहीं करनी चाहिये ॥ २५८ ॥

प्रस्थान का कारण व पदार्थ

श्रीपतिः—

[1]अपेक्ष्य कार्यं स्वयमप्रयाणे महीभृतां निर्गममाहुरार्याः ।
छत्रायुधाद्यं मनसस्त्वभीष्टं प्रचालयेद्वै नृपतिर्जयार्थी ॥ २५९ ॥

आचार्य श्रीपतिजी ने बताया है कि किसी कार्य के कारण यात्रा में अवरोध हो तो शुभ मुहूर्त में मनोभिलषित छत्र, आयुधादि को विजय की इच्छा करने वाले राजा को यात्रा के मार्ग में भिजवा देना चाहिये ॥ २५९ ॥

दैवज्ञचिन्तामणौ —

वाहनं भूषणं शस्त्रं छत्रं सिंहासनादिकम् ।
स्वकार्यापेक्षया याने जायिकं चालयेन्नृपः ॥ २६० ॥

दैवज्ञचिन्तामणि में बताया है कि शुभ मुहूर्त के दिन कुछ कार्य विशेष के कारण यात्रा का सुअवसर न मिले तो अपने मन से सवारी, अलङ्कार, शस्त्र, छत्र सिंहासनादि अन्य स्थान में धर देना चाहिये ॥ २६० ॥

प्रस्थान की दूरी

[2]रामः—

गेहाद्गेहान्तरमपि गमस्तर्हि यात्रेति गर्गः
सीम्नः सीमान्तरमपि भृगुर्बाणविक्षेपमात्रम् ।
प्रस्थानं स्यादिति कथयतेथो भरद्वाज एवं
यात्रा कार्या वहिरिह पुरात्स्याद्वसिष्ठो ब्रवीति ॥ २६१ ॥

श्रीरामदैवज्ञ ने बताया है कि अपने घर से दूसरे के घर तक समीप में प्रस्थान वस्तु रखना गर्ग के मत में शुभ होता है ।

भृगु ऋषि के पक्ष में गाँव या नगर की सीमा से दूसरे गाँव या नगर की सीमा तक प्रस्थान स्थापित करने पर शुभ दायक होता है ।

भरद्वाज जी का कहना है कि फेकें गये बाण की दूरी तक स्थापित करना शुभ होता है ।

और वशिष्ठ ऋषि के मत में गाँव या नगर के बाहर स्थापित करना शुभ बताया गया है ॥ २६१ ॥

---

१. ज्यो. पि. २०९ पृ. २ श्लो. । २. मु. चि. ११ प्र. ९० श्लो. ।

प्रस्थान का निषेध

लल्लः—

न कुर्यात्स्वगृहे गच्छन्प्रस्थानं च कदाचन।
भूमिकामस्तु कुर्वीत गृहान्निष्क्रमदूरतः॥ २६२॥

लल्लाचार्य जी ने बताया है कि अपने घर की यात्रा में कभी भी प्रस्थान का चालन नहीं करना और भूमि की कामना हो तो घर से दूर प्रस्थान की वस्तुओं को स्थापित करना चाहिये॥ २६२॥

एक स्थान में रहने के दिन

[1]श्रीपतिः—

वसेन्न चैकत्र दश क्षितीशो दिनानि नो सप्त च मंडलीकः।
यः प्राकृतः सोपि न पंचरात्रं भद्रेण यात्रा परतः प्रयोज्या॥ २६३॥

आचार्य श्रीपति जी ने बताया है कि राजा को १० दस दिन और मण्डलीक नृप को सात दिन व प्राकृतिक (नैसर्गिक) राजा को पाँच दिन एक स्थान पर न रहकर शुभ दिन में यात्रा करनी चाहिये॥ २६३॥

भूभोग के योजन

[2]सामंततः षोडश योजनानि भुंक्ते महीं मंडलिकाभिधानः।
भूपालसंज्ञः शतयोजनानि स सार्वभौमः सकलां धरित्रीम्॥ २६४॥

सामन्तों द्वारा १६ योजन भूमि पर राज्य करनेवाला मांडलिक, १०० योजन पर भूपाल ओर समस्त पृथ्वी पर राज्य करनेवाला सार्वभौम (चक्रवर्ती) कहलाता है॥ २६४॥

दिशा वश प्रस्थान स्थिति के दिन

दिक्परत्वेन प्रस्थानस्थितिदिनज्ञानम्—

अन्यः—

सप्ताहानेव पूर्वस्यां प्रस्थानं पंच दक्षिणे।
पश्चिमे त्रीणि शस्तानि सौम्यायां तु दिनद्वयम्॥ २६५॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि पूर्व दिशा की यात्रा में ७ दिन तक, दक्षिण में पाँच दिन, पश्चिम में तीन दिन और उत्तर दिशा की यात्रा में २ दिन तक प्रस्थान रहता है॥ २६५॥

स्वयं पंचदिनं तिष्ठेद्दिनं भार्या दशांवरम्।
त्रिमंत्रिवाहनं सप्तस्वर्णं मासं द्विरायुधम्॥ २६६॥

---

१. मु० चि० ११ प्र० ९२ श्लो० पी० टी०।

२. ज्यो० नि० २१० पृ० १३ श्लो०।

प्रस्थान में यदि स्वयं जावे तो ५ दिन, स्त्री का १० दिन, वस्त्र का ३ दिन, मन्त्री या वाहन ७ दिन, सुवर्ण का १ मास और आयुध का प्रस्थान २ दिन का शुभ होता है ॥ २६५ ॥

प्रस्थान की अवधि

[१]श्रीपतिः—

एकरात्राध्युषितस्य जगुर्यात्रामत्रिगौतमच्यवनाः ।
पंचत्रिसप्तरात्राद्भूयो भद्रेण संयोज्या ॥ २६७ ॥

आचार्य श्रीपतिजी ने बताया है कि एक रात निवास करके यात्रा करना और अत्रि, गौतम, च्यवन के मत में क्रम से पाँच, तीन, सात दिन रहने के बाद पुनः यात्रा के शुभ मुहूर्त में गमन करना चाहिये ॥ २६७ ॥

प्रस्थान करने पर भी यात्रा का निषेध

अन्यः—

[२]जन्मर्क्षे चाष्टमे चन्द्रे वारे भौमे शनैश्चरे ।
प्रस्थितेपि न गन्तव्यमत्यंतं गर्हितं दिनम् ॥ २६८ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि जन्म के नक्षत्र, आठवें चन्द्र, मंगल और शनिवार के दिन में प्रस्थान करने पर भी निन्दित होने के नाते यात्रा नहीं करनी चाहिये ॥२६८॥

यात्रा में त्याज्य

[३]क्रोधक्षौररतिश्रमामिषगुडघृताश्चदुग्धाशव-
क्षाराभ्यंगभयासितांबरबमोस्तैलं कटूह्यं रसम् ।
क्षीरक्षौररतिः क्रमात्त्रिशरसप्ताहं परं तद्दिने
रोगस्त्र्यार्तवकंसितान्यतिलकं प्रस्थानकेपीति च ॥ २६९ ॥

क्रोध, हजामत, संभोग, परिश्रम, मांस, गुड, घी, दूध, शव संपर्क, क्षार पदार्थ, उबटन, भय, काले वस्त्र, तेल, कड़वे रस का और यात्रा के दिन तथा प्रस्थान के तीन दिन पूर्व दूध, पाँच दिन पूर्व क्षौर और सात दिन पहिले मैथुन करने से व स्त्री मासिक धर्म में यात्रा करने से रोग होता है। अतः इनका त्याग करना चाहिये ॥२६९॥

लक्षण वश यात्रा निषेध

श्रीपतिः—

सौदामिनीवर्षणगर्जितेषु नाकालजेषु प्रवसेन्नरेन्द्रः ।
आसप्तरात्राद्ध्रुवमद्भुतेषु दिव्यांतरिक्षक्षितिजेषु चैवम् ॥ २७० ॥

---

१. मु० चि० ११ प्र० ९२ श्लो० पी० टी० ।

२. मु० चि० ११ प्र० ९१ श्लो० पी० टी० ।

३. ज्यो० सा० १९८ पृ० ।

आचार्य श्रीपति जी ने कहा है कि असामयिक बिजली चमक कर गर्जना के साथ वर्षा होने पर तथा निश्चित अद्भुत दिव्य, अन्तरिक्ष, क्षितिज उत्पात में सात दिन तक यात्रा नहीं करनी चाहिये ॥ २७० ॥

वामस्थयात्रा में शुभ शकुन

[1]छुछुकाकभवनगोधिका रलापिंगलापिकवधूश्च पोतकी ।
सूकरी पुरुषसंज्ञिताशिवा वामतः खलु यियासतां शुभाः ॥ २७१ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि यात्रा में छुछुन्दर, कौए का घर, छिपकली या गोह, हिरनी सारस या उल्लू कोयल की पत्नी, पोतकी (पशु का बच्चा) सुहरिया और सियारनी बाँयीं ओर शुभ होती है ॥ २७१ ॥

दाहिनी ओर के शुभ शकुन

[2]ऋक्षो भासः छिक्करो वानरश्च श्रीकंठश्च पिप्पलाख्यो रुरुश्च ।
ये स्त्रीसंज्ञा दक्षिणाः स्युः प्रशस्ताः प्रोक्ताः पूर्वैः सूरिभिस्ते प्रयाणे ॥२७२॥

यात्रा में रीछ, गीध या मुर्गा, छींक, बन्दर, नील कण्ठ, पीपल, रुरु मृग और जो स्त्री संज्ञक हों दाहिनी ओर होने पर पूर्वाचार्यों ने शुभ बताया है ॥ २७२ ॥

शुभ दर्शन

क्षेमंकुरा नीलकंठाश्चोलूकाखरजंबुकाः ।
प्रस्थाने वामतः श्रेष्ठाः प्रवेशे दक्षिणाः शुभाः ॥ २७३ ॥

नीलकण्ठ, उल्लू, गदहा, गीदड़, यात्रा में बायें और प्रवेश करने में दायें शुभता करने वाले होते हैं ॥ २७३ ॥

यात्रा में पक्षि दर्शन से शुभाशुभ

[3]भारद्वाजो नाकुलश्चाषसंज्ञा छागो वर्ही दृष्टमात्रः शुभः स्यात् ।
गोधा सर्पः शशको जाहकश्च याने दृष्टः कृकलासोपि नेष्टः ॥२७४॥

यात्रा में चातक, नकुल, नीलकण्ठ, भेड़ा, मोर का दर्शन शुभ और गोह, सर्प, खरगोश, जाहक और केकटा, गिरगिट का दर्शन अशुभ होता है ॥ २७४ ॥

यात्रा में शुभाशुभ शकुन

मत्स्यः –

[4]औषध्यानि नियुक्तो यो धान्यं कृष्णं तु यद्भवेत् ।
कार्पासश्च तृणं शुष्कं शुष्कं गोमयमेव च ॥ २७५ ॥
इंधनं च तथांगारं गुडं च सर्षपाः शुभम् ।
अभ्यक्तो मलिनो मन्दस्तथा नग्नश्च मानवः ॥ २७६ ॥

---

१. मु० चि० ११ प्र० १०२ श्लो० पी० टी० ।
२. ज्यो० नि० २१३ पृ० ४८ श्लो० । ३. ज्यो० नि० २१३ पृ० ४९ श्लो० ।
४. ज्यो० सा० १९८ पृ० १-९ श्लो० =७५ = ८२½ श्लो० ।

मुक्तकेशो रुजार्तश्च काषायांबरधारिणः ।
उन्मत्तः कथितः सत्वो दीनो वाथ नपुंसकः ।। १७७ ।।
अपःकंपस्तथा चर्मकेशबंधनमेव च ।
तथैवोद्‌धृतसाराणि पिण्याकादि तथैव च ।। २७८ ।।
चाण्डालस्य शवं चैव राजबंधनपालकाः ।
वधकाः पापकर्माणो गर्भिणी स्त्री नपुंसकाः ।। २७९ ।।
क्व यासि तिष्ठ आगच्छ किंते तत्र गतस्य तु ।
अन्यशब्दाश्च येऽनिष्टास्ते विपत्तिकरा अपि ।। २८० ।।

मत्स्यपुराण में कहा है कि वैद्य, काला धान, कपास, सूखा तिनका व गोबर, इंधन, अंगार, गुड, सरसों यात्रा में शुभ व उबटन किया हुआ, दूषित, मन्द, नग्न (नंगा पुरुष), खुले बाल वाला, रोग से दुःखी, कषाय वस्त्रधारी उन्मत्त, बली दीन व नपुंसक, जल कंपन, चमड़ा, बालों का बांधना, उद्‌धृत सार, खलीआदि, चाण्डाल का मुर्दा, जेल के स्वामी, वधिक, पापी, गर्भवती स्त्री, नपुंसक, कहाँ जाते हो, रुको, आओ, वहाँ जाने का मतलब क्या है तथा अन्य अनिष्ट शब्द भी विपत्ति देने वाले होते हैं ।। २७५–२८० ।।

यात्रा में अशुभ शकुन

ध्वजादौ वायसस्थानमग्निदाहादिगर्हितम् ।
सबलावाहनानां च वस्त्रसंगस्तथैव च ।। २८१ ।।
दुष्टे निमित्ते प्रथमे अमंगल्यविनाशनम् ।
केशवं पूजयेद्विद्वान्स्तवेन मधुसूदनम् ।। २८२ ।।
द्वितीये च ततो दृष्टे प्रतीपे प्रविशेद्‌गृहे ।
[1]अथेष्टानि प्रवक्ष्यामि मंगलानि तथानघ ।। २८३ ।।

ग्रन्थान्तर में बताया है कि यात्रा में ध्वजा आदि में कौए का बैठना, बली वाहनों का जलना, वस्त्र संग निन्दित होता है । पहली बार ये दूषित कारण होने पर मांगलिकता का विनाश होने से केशव भगवान को मधु सूदन स्तोत्र से पूजा करनी चाहिये ।

और दूसरा दुर्निमित्त होने पर लौटकर घर में प्रवेश करना चाहिये । हे अनघ अब शुभ अभीष्ट शकुनों को कहता हूँ ।। २८१–२८३ ।।

अथ प्रशस्तशकुनाः—

प्रशस्तो वाद्यशब्दश्चाभिन्नभेरीरवस्तथा ।
पुरतः शब्दो याहीति शस्यते नतु पृष्ठतः ।। २८४ ।।

ग्रन्थान्तर में बताया है कि बाजे का व अभिन्न भेरी का शब्द तथा आगे से जाओ यह शब्द शुभ यात्रा में प्रशस्त शकुन होता है पीछे से जाओं शब्द प्रशस्त नहीं होता है ।। २८४ ।।

१. ज्यो० सा० १९५ पृ० १-१२ श्लो० = ८२½ = ९४ श्लो० ।

गच्छेति चैकपश्चाद्यः पुरस्ताद्भुवि गर्हितः ।
श्वेताः सुमनसः पृष्ठा पूर्णकुम्भस्तथैव च ॥ २८५ ॥
जलजाः पक्षिणश्चैव मांसं मत्स्यस्य पार्थिवाः ।
गावस्तुरङ्गमो नागो वृद्ध एकः पशुस्त्वजा ॥ २८६ ॥
त्रिदशाः सुहृदो विप्रा ज्वलितश्च हुताशनः ।
गणिका च महाभागा दूर्वा चार्द्राश्च गोमयम् ।
रुक्मं रूप्यं च ताम्रं च सर्वरत्नानि चाप्यथ ॥ २८७ ॥
औषधानि च सर्वज्ञा यवाः सिद्धार्थकास्तथा ।
खड्गं पात्रं पताका च मृत्तिकायुधपीठकम् ॥ २८८ ॥
राजलिंगानि सर्वाणि शवं रुदितवर्जितम् ।
घृतं दधि पयश्चैव फलानि विविधानि च ॥ २८९ ॥
स्वस्तिवृद्धिनिनादश्च नद्यावर्तः स कौस्तुभः ।
वादित्राणां शुभः शब्दो गंभीरः सुमनोहरः ॥ २९० ॥
गांधारषडजऋषभा ये गीताः सुस्वराः स्वराः ।
वायुः सशर्करोत्युष्णः सर्वविघ्नविनाशकृत् ॥ २९१ ॥
प्रतिलोमस्तथा नीचो विज्ञेयो भयकृद्द्विजः ।
अनुकूलो मृदुः स्निग्धः सुखस्पर्शः सुखावहः ॥ २९२ ॥
शस्तान्येतानि धर्मज्ञ यत्र स्यान्मनसः प्रियम् ।
मनसस्तुष्टिरेवात्र परमं जयलक्षणम् ॥ २९३ ॥
मनोत्सुकत्वं मनसः प्रहर्षः शुभस्य लाभो विजयप्रवादः ।
मांगल्यलब्धिः श्रवणं च राज्ञां ज्ञेयानि नित्यं विजयावहानि ॥ २९४ ॥

जाओ यह एक पद भूमि चलने पर आगे की भूमि में दूषित होता है । पीछे की ओर सफेद फूल तथा भरा हुआ घड़ा, जल से उत्पन्न पक्षी, मछली का मांस, राजा, गाय, घोड़ा, सर्प, अकेला बूढ़ा, बकरी, देवता, मित्र, ब्राह्मण, जली हुई अग्नि, वेश्या, बड़े भाग्यवान्, घास, गीला गोंबर, चाँदी, रुपया, ताँबा, समस्त रत्न औषधि, सर्वज्ञ; जौ, सिद्धार्थक, खड्ग पात्र, पताका, मिट्टी, शस्त्र स्थान, सकल राज चिह्न, रुदन से रहित मुर्दा, घी, दही, दूध, अनेक फल, स्वस्ति, वृद्धि, नदी में भ्रमर, कौस्तुभ, बाजों का सुन्दर गंभीर शब्द शुभ होता है ।

गांधार, षड्ज, ऋषभ ये स्वर के साथ गीत, धूलि कणों के साथ अधिक गर्म हवा समस्त विघ्नों को नष्ट करने वाली और इसके विपरीत नीच (अल्प) वायु भय देने वाली होती है । अनुकूल, सरल, चीकनी स्पर्श से सुखदात्री वायु सुख को देने वाली होती है ।

हे धर्मज्ञ ये सब शुभ शकुन बताये गये हैं, इनमें जिससे संतुष्टि हो, यात्रा में मानसिक प्रसन्नता ही परम विजय (जीत) को देने वाली होती है । मन की उत्सुकता

ही मन को प्रसन्न करने वाली, शुभलाभ दात्री, जीत कराने वाली, मांगल्य लब्धि देने वाली होती है और इनका सुनना राजाओं को विजयावह होता है ॥ २८५–२९४ ॥

शकुन की सत्ता

क्रोशादूर्ध्वं च शकुनं शुभं वा यदि वा शुभम् ।
मुनिभिर्निष्फलं प्रोक्तं शकुनानां विचेष्टितम् ॥ २९५ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि एक कोश चलने के पश्चात् शुभ या अशुभ शकुन दीखने पर फल की प्राप्ति नहीं होती है ऐसा ऋषियों ने कहा है ॥ २९५ ॥

मरने का कारण

स्वकीयां परकीयां वा स्त्रियं पुरुषमेव च ।
ताडयित्वा तु यो गच्छेत्तदन्तं तस्य जीवनम् ॥ २९६ ॥

यात्रा में अपनी या पराई स्त्री व पुरुष को पीट कर जाने में मरण होता है ॥२९६॥

राजा को निषेध

[1]श्रीपतिः—
न परविषयप्राप्तो राजा द्विजामरसज्जन-
द्रविणहरणे चित्तं कुर्यान्नवा कुलयोषिताम् ।
विगजतुरगानार्तान्न हन्यान्न भीतिनिरायुधान्-
प्रमुदितमनाः सैन्यैः शस्ते क्षणे स्वपुरं विशेत् ॥ २९७ ॥

आचार्य श्रीपति जी ने बताया है कि राजा को दूसरे का राज्य जीत लेने पर ब्राह्मण, देवता, सज्जन के धन चुराने में और कुलीन स्त्रियों में चित्त लगाना नहीं चाहिये। हाथी व घोड़ों से हीन दुःखी शस्त्र हीनों को नहीं मारना चाहिये और प्रसन्न चित्त से युक्त सेना सहित शुभक्षण में अपने नगर में प्रवेश करना चाहिये ॥ २९७ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते संग्रहे बृहद्वज्ररञ्जने
पञ्चाशीतितमं यात्राप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन जी द्वारा रचित बृहद्वज्ररञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का यात्रा नाम का पच्चासीवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ८५ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज मुरलीधर चतुर्वेदकृता बृहद्वज्ररञ्जनसङ्ग्रहग्रन्थस्य पञ्चाशीतितमप्रकरणस्य हिन्दी टीका पूर्तिमगात् ॥ ८५ ॥

---

१. मु. चि. ११ प्र. १०५ श्लो० पी० टी० ।

अथ षडशीतितमं गृहप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे छियासीवें प्रकरण में घर (मकान) क्यों बनाना चाहिए, इसकी उपयोगिता क्या होती है, इसके निर्माण का क्या महत्व है, किस प्रकार की भूमि में बनवाना चाहिए, कब निर्माण करना और इसके शुभाशुभ का विमर्श अनेक ग्रन्थों के वचन बल से बताते हैं ।

मकान निर्माण कारण

अथ गृहनिर्माणप्रयोजनम्—

भविष्यत्पुराणे –

[1]गृहस्थस्य क्रियाः सर्वाः न सिद्धयंति गृहं विना ।
यतस्तस्माद्गृहारम्भप्रवेशसमयं ब्रुवे ॥ १ ॥

भविष्यत्पुराण में बताया है कि आश्रमों में सबसे बड़ा गृहस्थाश्रम है और गृहस्थ के समस्त कार्य गृह के बिना नहीं होते हैं । इसलिए मैं गृहारम्भ और गृहप्रवेश का समय बता रहा हूँ ॥ १ ॥

विशेष—क्योंकि दूसरे के मकान में किये गये कार्यों का फल स्वयं को न मिलकर भूमि के मालिक को प्राप्त होता है । कहा है 'परगेहकृतास्सर्वाः श्रौतस्मार्तक्रियाः शुभाः । निष्फलाः स्युर्यतस्तासां भूमीशः फलमश्नुते' । ज्योतिनिर्बन्ध में यह पद्य मत्स्यपुराण के नाम से उद्धृत है और पीयूषधारा में भविष्यत्पुराण के नाम से है ॥ १ ॥

घर की आवश्यकता

[2]वास्तुराजवल्लभे —

स्त्रीपुत्रादिकभोगसौख्यजननं धर्मार्थकामप्रद
जन्तूनामयनं सुखास्पदमितं शीताम्बुधर्मापहम् ।
वापीदेव हादिपुण्यमखिलं गेहात्समुत्पद्यते गेहं
गेहं पूर्वमुशन्ति तेन विबुधाः श्रीविश्वकर्मादयः । २ ॥

वास्तुराजवल्लभ में बताया है कि यह स्त्री, पुत्रादि के भोग सुख का जनक, धर्म, अर्थ, काम को देने वाला, जीवों का निवास स्थान, सुख का स्थान, जाड़ा (ठंड), वर्षा और गर्मी धूप (लूं) से बचाने वाला होता है ।

घर निर्माण करने से वापी, देवमंदिर आदि निर्माण का समस्त फल मिलता है । इसलिये पूर्वाचार्य विश्व कर्मादिने प्रथम मकान बनाने का आदेश दिया है ॥ २ ॥

---

१. ज्यो० नि० १६५ पृ० १ श्लो० तथा मु. चि. गृ. प्र. पी. टी १. श्लो० से पूर्व ।
२. १ अ० ५ श्लो० ।

तृणादि से निर्माण का फल

[1]कोटिघ्नं तृणजे पुण्यं मृण्मये दशसंगुणम्।
इष्टके शतकोटिघ्नं शैलेऽनंतं फलं गृहे॥ ३॥

तृणों (तिनका) से घर बनाने पर करोड़ गुना फल, मिट्टी का बनाने पर १० करोड़ गुना, ईंट का बनाने से १०० करोड़ गुना और पत्थर का घर बनाने पर अनन्त (गणनातीत) फल होता है॥ ३॥

घर का स्वरूप

व्यक्ताव्यक्तं गृहं कुर्यादभिन्नाभिन्नमूर्तिकम्।
यथा स्वामिशरारं स्यात्प्रासादमपि तादृशम्॥ ४॥

अव्यक्त, व्यक्त, भिन्न, अभिन्न, स्वरूप जैसा स्वामी का स्वरूप हो वैसा ही घर बनाना चाहिये॥ ४॥

तद्रूपं तत्प्रमाणं स्यात्पूर्वसूत्रं न चालयेत्।
हीने तु जायते हानिरधिके स्वजनक्षयः॥ ५॥

स्वामी के अनुरूप प्रमाणों द्वारा सूत्र से नाप कर, न कि पूर्व निर्मित सूत्र से घर बनाना चाहिये। क्योंकि पूर्वसूत्र, स्वामी के नाप से अल्प होने पर नुकसान होता है और बड़ा होने पर जन क्षति होती है॥ ५॥

जीर्णोद्धार का महत्व

[2]वापःकूपतडागानि प्रासादभवनानि च।
जीर्णानुद्धरते यस्तु पुण्यमष्टगुणं लभेत्॥ ६॥

जो वापी, कुआ, तालाब, प्रासाद और घर का जीर्णोद्धार करता है वह आठ गुना फल प्राप्त करता है॥ ६॥

ग्रामादि अनुकूलत्व कथन

अथ ग्रामवासाद्यनुकूलदिशादिविचारः—

[3]ज्योतिःसारे—

ग्रामादेरनुकूलत्वं दिशो भूतग्रहस्य च।
मासधिष्ण्यादिकं शुद्धं वीक्ष्यायव्ययमंशकान्॥ ७॥

ज्योतिष सार में कहा है कि घर बनाने से पूर्व ग्राम वास, दिशा, भूतग्रह, मास, नक्षत्रादि, आय, व्यय, लग्न, अंशादि के अनुकूल (शुद्धि) होने पर घर बनाना शुभ होता है॥ ७॥

---

१. वृ० वा० १ पृ०।
२. वृ० वा० २ पृ० ६ श्लो०।
३. १५५ पृ०–१५६ पृ० १–५ श्लो० = ७–११ श्लो०।

ग्रहबल

गुरुशुक्रार्कचन्द्रेषु स्वोच्चादिबलशालिषु ।
गुर्वर्केन्दुबलं लब्ध्वा गृहारम्भः प्रशस्यते ॥ ८ ॥

ज्योतिषसार में बताया है कि गुरु, शुक्र, चन्द्र, सूर्य इनके स्वोच्चादिबल में रहने पर तथा गोचर से गुरु, सूर्य, चन्द्र शुद्धि देखकर घर बनाना चाहिये ॥ ८ ॥

घर निर्माण में त्याज्य

विवाहोक्तान्महादोषानृते यामित्रशुद्धितः ।
रिक्ताकुजार्कवारौ च चरलग्नं चरांशकम् ॥ ९ ॥
त्यक्त्वा कुजार्कयोश्चांशं पृष्ठे चाग्रे स्थितं विधुम् ।
बुधेज्यराशिगं चार्कं कुर्याद्गेहं शुभाप्तये ॥ १० ॥

ज्योतिषसार में कहा है कि विवाह में वर्णित महादोष, जामित्र दोष, रिक्तातिथि, मंगल, रविवार, चरलग्न, चर का नवांश, पृष्ठ भागस्थ रवि, मंगल का और आगे भाग में स्थित चन्द्र नवांश का त्याग करना चाहिये । और मिथुन, कन्या, धनु, मीन राशिस्थ सूर्य में शुभप्राप्ति के लिये घर बनाना चाहिये ॥ ९–१० ॥

आदि शुद्धि ज्ञान

द्वारशुद्धिं निरीक्ष्यादौ भशुद्धिं विषचक्रतः ।
निष्पंचके स्थिरे लग्ने द्व्यङ्गे चालयमारभेत् ॥ ११ ॥

प्रथम द्वार की शुद्धि का इसके पश्चात् विष चक्र से नक्षत्र की शुद्धि का सम्यक् अवलोकन करके पंचक रहित नक्षत्र, स्थिर या द्विस्वभाव लग्न में गृहारम्भ करना चाहिये ॥ ११ ॥

सफल पुरुषाकृति ग्राम वास चक्र

अथ ग्रामवासचक्रम्—

[1]वास्तुरत्नावल्याम् —
मस्तके पञ्च लाभाय मुखे त्रीणि धनक्षयः ।
कुक्षौ पञ्च धनं धान्यं षट्पादे स्त्रीदरिद्रता ॥ १२ ॥
पृष्ठे चैके पादहानिर्नाभौ चत्वारि संपदः ।
गुह्ये चैकं भयं पीडा हस्ते चैकं तु क्रन्दनम् ॥ १३ ॥
वामे चैककरे भेदो ग्रामचक्रं नराकृतिः ।
गणयेज्जन्मनक्षत्रं ग्रामनक्षत्रतः सदा ॥ १४ ॥

वास्तुरत्नावली में बताया है कि गाँव या नगर के नक्षत्र से पाँच नक्षत्र मस्तक पर न्यास करके इनमें दिन नक्षत्र होने पर लाभ, इससे आगे तीन मुख में होने पर धन हानि, पेट के ५ पाँच में धनधान्य, ६ नक्षत्र पैरों में होने पर घर में स्त्रियों का अभाव,

१. बृ० वा० २ पृ० १०–१२ श्लो० ।

पीठ में १ नक्षत्र में पैर पीड़ा, नाभि में ४ पाँच में धन सम्पत्ति, गुदा में १ में भय पीड़ा, दाहिने हाथ में १ नक्षत्र में युद्ध और बांये हाथ में १ में आरम्भ दिन का नक्षत्र होने पर भेद होता है ॥ १२–१४ ॥

स्पष्टार्थ पुरुषाकृति चक्र

ग्रा. न. से	५	३	५	६	१	४	१	१	१
अवयव	मस्तक	मुख	पेट	पैर	पीठ	नाभि	गुदा	दाँया हाथ	बाँया हाथ
फल	लाभ	धन हानि	धन धान्य	स्त्री अभाव	पैर पीड़ा	धन सम्पत्ति	भय पीड़ा	युद्ध	भेद

भिन्न प्रकार से पुरुषाकृति चक्र

अन्य:—

ग्रामो यत्र भवेदृक्षं तदाद्याः सप्त मस्तके ।
पृष्ठे सप्त हृदि सप्त पादे सप्त च तारकाः ॥ १५ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि ग्राम के नक्षत्र से ७ सात नक्षत्र माथे पर ७ सात पीठ पर, सात वक्षस्थल पर और सात नक्षत्र पैरों पर स्थापित करने चाहिये ॥ १५ ॥

चक्रवश फल

मस्तके च धनो मानी पृष्ठे हानिं च निर्धनम् ।
हृदये सुखसंपत्तिः पादे पर्यटनं सदा ॥ १६ ॥

मस्तक पर आरम्भ दिन का नक्षत्र होने पर धन, सम्मान, पीठ पर होने पर हानि व दरिद्रता, वक्षस्थल में सुख सम्पत्ति और पैरों में होने पर पर्यटन होता है ॥ १६ ॥

स्पष्टार्थ सारिणी

ग्रा० न० से	७	७	७	७
स्थान	मस्तक	पीठ	हृदय	पैर
फल	धन, सम्मान	हानि, दरिद्रता	सुख संपत्ति	पर्यटन

अथ ग्रामवासार्थं शिवाबलिर्निरूप्यते—

तत्रैव—

[1]रात्रौ भक्त मांसादि संयुक्तं पात्रं भूमौ निधाय ततः कियद्दूरे गत्वा तच्छब्दं चिन्तयेत् ।

गाँव में रहने के लिये शुभाशुभ फल ज्ञानार्थं शिवा बली का निरूपण रात्रि में निर्माणार्थ भूमि में भात व मांस को पात्र में रखकर कुछ दूर जाकर शब्द का विचार करके अर्थात् किस दिशा से शिवा का शब्द आ रहा है ऐसा अनुसंधान करना चाहिये ।

१, वृ० वा० ३ पृ० १३, १४, १६ श्लो० ।

नैर्ऋत्ये हि शिवा रौति तदा वासं न कारयेत् ।
ईशाने मरणं प्रोक्तं चोत्तरे कुरु सर्वतः ।
वासं वायव्यकोणेषु भयं किंचित्प्रजायते ।। १७ ।।
पश्चिमे वासकरणादानन्दः परिकीर्तितः ।
अष्टदिक्षु यदा रौति तदा वासं न कारयेत् ।। १८ ।।

यदि नैर्ऋत्य में शिवा रुदन हो तो उस गाँव में निवास नहीं करना, ईशान में हो तो मरण, उत्तर में हो तो सब जगह गाँव का निवास शुभ, वायव्य में होने से थोड़ा भय पश्चिम से शब्द होने पर निवास से आनन्द और आठों दिशा शब्द से परिपूरित हों तो कभी भी उस गाँव में रहना नहीं चाहिये ।। १७–१८ ।।

विशेष—यहाँ ३ दिशाओं का फल न होने से पाठकों की सुविधा हेतु लिखा जा रहा है 'दक्षिणे रौति कल्याणं वह्निकोणे भयं महत् । पूर्वेप्युच्चाटनं ज्ञेयं कलिर्वा रिपुभिस्सह' अर्थ दक्षिण में रुदन होने पर कल्याण, अग्नि कोण में होने पर बड़ा भय और पूर्वदिशा में शिवा का शब्द सुनाई देने पर उच्चाटन या शत्रुओं से लड़ाई होती है ।। १७–१८ ।।

स्पष्टार्थ चक्र

दिशा	पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	सर्वदिक्
फल	उच्चाटन	अधिक डर	कल्याण	निषिद्ध	आनन्द	अल्प भय	शुभ	मरण	त्याज्य

राशि भेद से ग्रामवास विचार

अथ राशिपरत्वेन ग्रामनिवासे निषिद्धस्थानान्याह—

[1]रामदैवज्ञः—

गोसिंहनक्रमिथुनं निवसेन्न मध्ये
ग्रामस्य पूर्वककुभोलिझषाङ्गनाश्च ।
कर्की धनुस्तुलभमेषघटाश्च तद्वद्
वर्गाः स्वपञ्चमपरा बलिनः स्युरैन्द्रयाः ।। १९ ।।

श्री रामदैवज्ञ ने अपने मुहूर्तचिंतामणि ग्रन्थ में कहा है कि वृष, सिंह, मकर, मिथुन राशिवालों को गाँव के बीच में, वृश्चिक राशि वाले को पूर्व में, मीन को अग्नि कोण में, कन्या को दक्षिण में, कर्क राशि को नैर्ऋत्य कोण में, धनु को पश्चिम में, तुला को वायव्य कोण में, मेष को उत्तर में और कुंभ राशि वाले को ग्राम के ईशान कोण में निवास नहीं करना चाहिये तथा अवर्ग पूर्व में, कवर्ग अग्निकोण में, चवर्ग दक्षिण में, टवर्ग नैर्ऋत्य कोण में, तवर्ग पश्चिम में पवर्ग वायव्य कोण में, यवर्ग उत्तर में और शवर्ग ईशान कोण में बली होता है । अपने वर्ग से पाँचवाँ शत्रुवर्ग त्याज्य होता है अतः उस दिशा में निवास नहीं करना चाहिये ।। १९ ।।

---

१. मु० चि० ११ प्र० २ श्लो० ।

स्पष्टार्थ चक्र

पूर्व

ईशा०				अग्नि
	कुंभ	वृश्चिक	मीन	
उ०	मेष	वृष मिथुन सिंह मकर	कन्या	द०
वाय०	तुला	धनु	कर्क	नैऋ०

प०

स्वराशि से ग्राम राशि का फल

[1]ज्योतिःसारे—

एकभे सप्तमे ग्रामे वैरं हानिस्त्रिषष्ठके ।
तुर्याष्टद्वादशे रोगः शेषे स्थाने शुभं भवेत् ॥ २० ॥

ज्योतिष सार में बताया है कि गाँव या नगर व निवास कर्ता की एक राशि होती है या सप्तम राशि होती है तो शत्रुता, तीसरी या छटी होने पर हानि, चौथी, आठवीं, बारहवीं होने पर रोग और शेष अर्थात् अन्य संख्यक होने पर शुभ होता है ॥ २० ॥

ग्राम अनुकूलता का ज्ञान

[2]ज्योतिःसारे—

स्वनामराशेर्यद्राशिर्द्विशराकेशदिङ्मितः ।
स ग्रामः शुभदः प्रोक्तस्त्वशुभः स्यात्ततोन्यथा ॥ २१ ॥

ज्योतिषसार में कहा है कि अपने नाम की राशि से २।५।९।११।१० संख्यक गाँव या नगर की राशि शुभ होती है और अवशिष्ट अशुभ होती है ॥ २१ ॥

दिग्दशा ज्ञान

अथ दशाज्ञानमावश्यकम्—

[3]वास्तुप्रदीपे—

गजशरर्तुयुगाश्वमहीगुणा द्विसहिता मघवादि दिशि क्रमात् ।
गृहपतेरभिधापुरदिङ्मिता वसुहृता भवनस्य दशा भवेत् ॥ २२ ॥

१. मु० चिं० १५० पृ० ७ श्लो० । २. मु० चिं० १५६ पृ० ६ श्लो० ।
३, वृ० वा० ५ पृ० २१, २३ श्लो० ।

सूर्येन्दुभौमास्त्वगुजीवमन्दा सौम्याश्च केतुर्भृगुजाः क्रमेण ।
षट्दिङ्नगधृत्यवनीस्वरांकचन्द्रर्षिभू सप्त नखास्तदब्दाः ॥ २३ ॥

वास्तुप्रदीप में बताया है कि पूर्वादि दिशा क्रम से ८।५।६।४।७।१।३ और २ अङ्क दिशा वर्गाङ्क होते हैं। जैसे—पूर्व में ८ आठ, अग्नि कोण में ५ पाँच, दक्षिण में ६ छै, नैऋत्य में ४ चार, पश्चिम में ७, वायुकोण में १ एक, उत्तर में ३ तीन और ईशान कोण में २ दो अंक होता है। घर स्वामी, ग्राम व दिशा के ३ को जोड़ कर ८ का भाग देने पर एकादि शेष में ० घर की सूर्यादि क्रम से ६।१० आदि वर्ष संख्यक दशा होती है। जैसे १ शेष में सूर्य की ६ वर्ष, २ में चन्द्रमा की १० वर्ष, तीन में मंगल की सात वर्ष, ४ में राहु की १८ वर्ष, ५ में गुरु की १६ वर्ष, ६ में शनि की १९ वर्ष ७ में बुध का १७ वर्ष, ८ में केतु की ७ सात वर्ष और शून्य में शुक्र की २० वर्ष की दशा होती है ॥ २२–२३ ॥

विशेष—यहाँ ग्रन्थान्तर ने इस पद्य को उलट-पलट के दिया है, क्योंकि 'वास्तुरत्नाकर' को देखने से ज्ञात होता है। जैसे—अथाष्टवर्गाः क्रमतोऽष्टवाण-तर्काब्धिसप्तेन्दुगुणाश्विनश्च। तद्ग्रामदिग्वर्गमिताङ्कयोगे सूर्यादिशेशा नवभिर्विशेषात् (विभक्तात्) ॥ सूर्येन्दु........नखास्तदब्दाः'। मेरी दृष्टि में भी यही उचित प्रतीत इसलिए होता है कि बिना ९ से भाग देने पर नवग्रहों की दशा कैसे आ सकती है? यह विशोत्तरी दशा जैसी है तथा 'गज शरर्तुं' इत्यादि से अष्टोत्तरी दशा का आनयन कथित है। इसके आगे 'सूर्येन्दु भौमा' के स्थान पर 'रविनिशाकरमङ्गलचन्द्रजाः शनिवृहस्पतिराहुकविग्रहाः' होने पर ठीक अर्थ होता है और वास्तुरत्नाकर में ऐसा ही है ॥ २२–२३ ॥

स्पष्टार्थ चक्र

वर्ग	अ०	क०	च०	ट०	त०	प०	य०	श०	
स्वरांक	३	५	६	४	७	१	३	२	
८ से भक्त शेष	१	२	३	४	५	६	७	८	
ग्रहदशा	सू०	चं०	मं०	बु०	श०	गु०	रा०	शु०	
वर्ष	६	१५	८	१७	१०	१९	१२	२१	
९ से भक्त शेष	१	२	३	४	५	६	७	८	९
ग्रहदशा	सू०	चं०	मं०	रा०	गु०	श०	बु०	के०	शु०
वर्ष	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२०

क्षुण्णं गतर्क्षं निजवर्षसंख्यया भक्तं भभोगेन गताः समादिकाः
(२३) विंशोत्तरीमतेनात्र दशा योज्या प्रयत्नतः ॥ २४ ॥

प्राप्त भयात को ग्रह वर्ष संख्या से गुणा करके भभोग से भाग देने पर गत वर्षादि अर्थात् भुक्त वर्षादि, इसे ग्रह वर्ष संख्या में घटाने पर भोग्यदशा होती है। विंशोत्तरी मत से यहाँ प्रयत्न पूर्वक दशा का आनयन करना चाहिये ॥ २४ ॥

दिग्दशा विचार

वास्तुसारे—

ग्रामात्तथा कूपस्वगेहपण्याद्रामात्तडागात्खलु दुर्गतो दशा ।
वियोजनीया स्वगृहस्य देहिनां यदग्रवर्ती स्थिरसंयुतश्च ॥ २५ ॥

वास्तुसार में कहा है कि गाँव, कुँआ, अपना घर, दुकान, बगीचा, तालाब, दुर्ग इनमें जो मकान से आगे व समीप में हो उसी से दिग्दशा देखनी चाहिये ॥ २५ ॥

काकिणी विचार

वास्तुरत्नावल्याम्—

[1]स्ववर्गं द्विगुणीकृत्य परवर्गेण योजयेत् ।
अष्टभिस्तु हरेद्भागं योधिकः स ऋणी भवेत् ॥ २६ ॥

वास्तुरत्नावली में कहा है कि अपने वर्ग की संख्या को दूना करके दूसरे की वर्ग संख्या को जोड़कर आठ का भाग देने पर जिसका अधिक शेष बचता है वह ऋणी होता है ॥ २६ ॥

वर्ग स्वामी ज्ञान

[2]भूपालवल्लभे—

वर्गेशस्तार्क्ष्यमार्जारसिंहश्वासर्पमूषकाः ।
इभेणौ पूर्वतस्तेषां स्ववर्गात्पञ्चमो रिपुः ॥ २७ ॥

भूपालवल्लभ में बताया है कि अ वर्ग का गरुड, क वर्ग का बिडाल, च वर्ग का सिंह, ट वर्ग का श्वान, त वर्ग का सर्प, प वर्ग का मूषक (चूहा), य वर्ग का मृग और शवर्ग का स्वामी शशक होता है। ये ही पूर्वादि क्रम से दिशाओं के स्वामी होते हैं। अपने वर्ग से पाँचवाँ वर्ग शत्रु होता है ॥ २७ ॥

स्पष्टार्थ चक्र

वर्ग	अ १	क २	च ३	ट ४	त ५	प ६	य ७	श ८
दिशा	पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैऋ.	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान
स्वामी	गरुड	बिडाल	सिंह	श्वान	सर्प	मूषक	मृग	शशक
शत्रु	त	प	य	श	अ	क	च	ट

१. ज्यो० नि० १७३ पृ० २ श्लो० ।
२. ज्यो० नि० १७३ पृ० ३ श्लो० ।

विप्रादि वर्ण भूमि लक्षण

अथ भूमिलक्षणम्—

वर्णपरत्वेन भुवोर्वर्णरसगंधादिविचाराच्छुभाशुभौ बोद्धव्यौ ।

[1]वास्तुप्रदीपे—

शुक्लमृत्स्ना च या भूमिर्ब्राह्मणी सा प्रकीर्तिता ।
क्षत्रिया रक्तमृत्स्ना च हरिद्वैश्या प्रकीर्तिता ॥ २८ ॥
कृष्णा भूमिर्भवेच्छूद्रा चतुर्धा परिकीर्तिता ॥ २९ ॥

वास्तु प्रदीप में कहा है कि सफेद मिट्टी की भूमि ब्राह्मणी, लालरंग की क्षत्रिया, हरेरंग की वैश्या और कालेरंग की मिट्टी शूद्रा होती है ॥ २८–२९ ॥

भिन्न रीति से

[2]ब्राह्मणी भूः कुशोपेता क्षत्रिया स्याच्छराकुला ।
कुशकाशाकुला वैश्या शूद्रा सर्वतृणाकुला ॥ ३० ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि कुश युक्त भूमि ब्राह्मणी, शर (मूंज) से युक्त क्षत्रिया, कुश काश युक्त वैश्या और समस्त तिनकाओं से व्याप्त शूद्राभूमि होती है ॥ ३० ॥

ब्राह्मणी आदि भूमि का फल

ब्राह्मणी सर्वसुखदा क्षत्रिया राज्यदा भवेत् ।
धनधान्यकरी वैश्या शूद्रा तु निन्दिता भवेत् ॥ ३१ ॥

ब्राह्मणी भूमि सब सुख देने वाली, क्षत्रिया राज्य (शासन) दात्री, वैश्या धन-धान्य से युक्त करने वाली और शूद्रा भूमि निन्दित होती है ॥ ३१ ॥

विप्रादि को शुभ भूमि

वसिष्ठः—

[3]श्वेता शस्ता द्विजेन्द्राणां रक्ता भूमिर्महीभुजाम् ।
विशां पीता च शूद्राणां कृष्णान्येषां विमिश्रिता ॥ ३२ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि ब्राह्मणों को श्वेत, क्षत्रियों को लाल, वैश्यों को पीली, शूद्रों को काली और अन्य वर्णों को मिली हुई भूमि शुभ फल देने वाली होती है ॥ ३२ ॥

ब्राह्मणादि भूमि के रस

[4]रसमाह नारदः—

मधुरं कटुकं तिक्तं कषायं च रसाः क्रमात् ॥ ३३ ॥

---

१. बृ० वा० ६ पृ० २७–२८ श्लो० । २. बृ० वा० ६ पृ० २९–३० श्लो० ।

३. बृ. वा. ७ पृ. ३३ श्लो. तथा ज्यो. नि. १६५ पृ. ४ श्लो. किन्तु वसिष्ठ संहिता में 'श्वेतस्थानं द्विजालीनामीषद्रक्तं महीभुजाम् । विशां पीतं चतुर्थानां कृष्णवर्णं शुभप्रदम्' पाठ है ।

४. ज्यो. नि. १६५ पृ. ५ श्लो. ।

ऋषि नारदजी ने बताया है कि ब्राह्मणी भूमि का मधुर रस होता है। क्षत्रिया का कड़ुवा, वैश्या का तीखा और शूद्रा भूमि का रस कसैला होता है ॥ ३३ ॥

विप्रादि भूमि में उपगन्ध

उपगन्धानाह गृहकारिकायाम्—

[1]घृतासृगन्नमद्यानां गन्धश्च क्रमशो भवेत् ॥ ३४ ॥

गृहकारिका में बताया है कि जिसमें घी की सुगन्ध आये वह ब्राह्मणी, खून की गन्ध वाली क्षत्रिया, अन्न की गन्ध देने वाली वैश्या और मद्य (शराबादि) की गन्ध देने वाली शूद्रा भूमि होती है ॥ ३४ ॥

स्पष्टार्थ चक्र

वर्ण	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र
वर्ण	सफेद	लाल	पीली	काली
युत	कुश	शरपत	कुश काश	सर्वतृण
फल	सर्व सुखदा	राज्यदा	धनधान्यदा	निंदिता
रस	मधुर	कटु	तिक्त	कषाय
गन्ध	घृत	रक्त	अन्न	मद्य

८ दिशा में भूमि के द्वार का फल

[2]अथ भूमेरष्टदिक्प्लवत्वफलमुक्तम् कारिकायाम्—

श्रियं दाहं तथा मृत्युं धनहानिं सुतक्षयम्।
प्रवासं धनलाभं च विद्यालाभं क्रमेण च ॥ ३५ ॥
विदधात्यचिरेणैव पूर्वादिप्लवतो मही।
मध्यप्लवा मही नेष्टा न शुभा प्लवतत्परा ॥ ३६ ॥

कारिका में बताया है कि पूर्व दिशा में भूमि का द्वार होने पर लक्ष्मी की प्राप्ति, अग्निकोण में दाह, दक्षिण में मृत्यु, नैर्ऋत्य में धन हानि, पश्चिम में पुत्र नाश, वायव्य में विदेश वास, उत्तर में धन लाभ और ईशान कोण में द्वार होने पर विद्या की प्राप्ति होती है। मध्य में द्वार होने पर शुभ नहीं होता है ॥ ३५–३६ ॥

अन्य आचार्यों ने भी ऐसा ही कहा है

[3]एवमन्यैरप्युक्तम्—

शम्भुकोणे प्लवा भूमिः कर्तुः श्रीसुखदायिनी।
पूर्वप्लवा वृद्धिकरी धनदा तूत्तरप्लवा ॥ ३७ ॥
मृत्युशोकप्रदा नित्यं सर्वथा दक्षिणप्लवा।
गृहक्षयकरी सा च भूमिर्या नैर्ऋतिप्लवा ॥ ३८ ॥
धनहानिकरी चैव कीर्तिदा वरुणप्लवा।
वायुप्लवा तथा भूमिर्नित्यमुद्वेगकारिणी ॥ ३९ ॥

१. बृ. वा. ७ पृ. ३४ श्लो.। २. बृ. वा. १६५ पृ. ३५-३६ श्लो.।
३. बृ. वा. ८ पृ. ३७-३९ श्लो.।

ग्रन्थान्तर में बताया है कि ईशान कोण में ढाल वाली भूमि गृहकर्ता को धन सुख देने वाली, पूर्व में होने पर वृद्धि, उत्तर में धन लाभ, अग्निकोण में मृत्यु व शोक, दक्षिण में घर को नाश करने वाली, नैर्ऋत्य में धन हानि, पश्चिम में कीर्तिनाश और वायुकोण में ढाल होने पर भूमि प्रतिदिन उद्वेग से युक्त करती है ।। ३७–३९ ।।

स्पष्टार्थ चक्र

दिशा प्लव	पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान
फल	श्री	दाह	मरण	धन हानि	पुत्रक्षय	प्रवास	धन	लाभ
अथवा फल	वृद्धिदा	मृत्यु-शोक	गृहक्षय	धन-हानि	कीर्तिनाश	उद्वेग	धनदा	श्रीसुख

दूषित भूमि लक्षण

अथ भूमिदोषाः —

[1]स्फुटिता च सशल्या च वल्मिका रोहिणी तथा ।
दूरतः परिवर्ज्येयं कर्तुरायुर्धनापहा ।। ४० ।।

फटी हुई भूमि, जिसके भीतर हड्डियाँ हों, दीमक से युक्त तथा ऊँची नीची भूमि को दूर से ही त्याग देना चाहिये क्योंकि यह कर्ता की आयु और धनहरण करनेवाली होती है ।। ४० ।।

दूषित भूमि फल

स्फुटिता मरणं कुर्यादूषरा धननाशिनी ।
सशल्या क्लेशदा नित्यं विषमा शत्रुवर्द्धिनी ।। ४१ ।।

फटी हुई भूमि में रहने पर मरण, ऊषर में धननाश, हड्डी युक्त में निःय कलह और विषम में निवास से शत्रु वृद्धि होती है ।। ४१ ।।

वास्तुप्रदीपे—

चैत्ये भयं गृहकृतं वल्मोके श्वभ्रसङ्कुले विपदः ।
गर्तायां तु विनाशः कूर्माकारे धनक्षयः ।। ४२ ।।

वास्तुप्रदीप में कहा है कि चैत्याकार भूमि में निवास से भय, टीलों वाली में अपने कुल में विपत्ति, गड्ढे वाली में नाश और कूर्माकार में रहने पर धन का नाश होता है ।। ४२ ।।

विभिन्न भूमियों के लक्षण

अथभूमेर्लक्षणानि—

भुजबलभीमे गजपृष्ठलक्षणम् ।

गजपृष्ठ भूमि का लक्षण

[2]दक्षिणे पश्चिमे चैव नैर्ऋते वायुकोणके ।
एभिरुच्चो भवेद्भूमौ गजपृष्ठो विधीयते ।। ४३ ।।

---

१. बृ. वा. १५ पृ. ७९–८१ श्लो. । २. बृ. वा. १५ पृ. ८२ श्लो. ।

भुजबलभीम नामक ग्रंथ में बताया है कि जो भूमि दक्षिण, पश्चिम, नैर्ऋत्य और वायुकोण में ऊँची होती है उसे गजपृष्ठ कहते हैं ॥ ४३ ॥

गजपृष्ठ में निवास का फल

[1]गजपृष्ठे भवेद्वासः सलक्ष्मीधनपूरितः।
आयुर्वृद्धिकरी नित्यं जायते नात्र संशयः ॥ ४४ ॥

गजपृष्ठ आकृति की भूमि में घर बनाकर रहने पर सदा लक्ष्मीजी घर में रहती है अर्थात् धन परिपूर्णता और आयु की वृद्धि होती है ॥ ४४ ॥

कूर्मपृष्ठ भूमि का लक्षण

[2]अथ कूर्मपृष्ठम्।
मध्ये तूच्चं भवेद्यत्र नीचं चैव चतुर्दिशम्।
कूर्मपृष्ठं भवेद्भूमौ तत्र वासो विधीयते ॥ ४५ ॥

जिस भूमि का मध्य भाग ऊँचा और चारों ओर से नीचा होता है उसे कूर्मपृष्ठ भूमि कहते हैं। इसमें निवास करना चाहिये ॥ ४५ ॥

कूर्मपृष्ठ भूमि में निवास का फल

कूर्मपृष्ठे भवेद्वासी नित्योत्साहसुखप्रदः।
धनं धान्यं भवेत्तस्य निश्चितं विपुल धनम् ॥ ४६ ॥

कूर्मपृष्ठ भूमि में घर बनाकर रहने पर प्रतिदिन उत्साह की वृद्धि, सुख एवं विशेष धन, धान्य की प्राप्ति होती है ॥ ४६ ॥

दैत्यपृष्ठ भूमि का लक्षण

[3]दैत्यपृष्ठो यथा—
पूर्वाग्निशम्भुकोणे तु उन्नतिश्च यदा भवेत्।
पश्चिमे च यदा नीचं दैत्यपृष्ठोऽभिधीयते ॥ ४७ ॥

जिस भूमि का पूर्व, अग्निकोण व ईशान कोण ऊँचा व पश्चिम भाग नीचा होता है उसे दैत्यपृष्ठ भूमि कहते हैं ॥ ४७ ॥

दैत्यपृष्ठ भूमि में निवास का फल

दैत्यपृष्ठे भवेद्वासो लक्ष्मीर्नायाति मन्दिरे।
धनपुत्रपशूनां च हानिरेव न संशयः ॥ ४८ ॥

दैत्यपृष्ठ भूमि में वास करने पर घर में लक्ष्मी नहीं आती और धन, पुत्र, पशु का निःसंदेह विनाश होता है ॥ ४८ ॥

---

१. वृ. वा. १६ पृ. ८३ श्लो.।
२. वृ. वा. १६ पृ. ८४-८५ श्लो.।
३. वृ. वा. १६ पृ. ८६-८७ श्लो.।

नागपृष्ठ भूमि का लक्षण

[1]नागपृष्ठो यथा—

पूर्वपश्चिमयोर्दीर्घो दक्षिणोत्तर उच्चता ।
नागपृष्ठं विजानीयात्कर्तुरुच्चाटनं भवेत् ॥ ४९ ॥

जिस भूमि का पूर्व पश्चिम भाग लम्बा और दक्षिण व उत्तर हिस्सा ऊँचा होता है वह नागपृष्ठ भूमि होती है ॥ ४९ ॥

नागपृष्ठ भूमि में निवास का फल

नागपृष्ठे यदा वासो मृत्युरेव न संशयः ।
पत्नीहानिः पुत्रहानिः शत्रुवृद्धिः पदे पदे ॥ ५० ॥

नागपृष्ठ भूमि में निवास होने पर अवश्य ही मरण, स्त्री हानि, पुत्र हानि और पद पद पर शत्रु की वृद्धि होती है ॥ ५० ॥

भूमि के अन्य लक्षण

[2]आयते सिद्धयः सर्वाश्चतुरस्रे धनागमः ।
वृत्ते तु बुद्धिवृद्धिः स्याद्भद्रं भद्रासने भवेत् ॥ ५१ ॥
चक्रे दरिद्रमित्याहुर्विषमे शोकलक्षणम् ।
राजभीतिस्त्रिकोणे स्याच्छकटे तु धनक्षयः ॥ ५२ ॥
दण्डे पशुक्षयं प्राहुः शूर्पे वासे गवां क्षयम् ।
कूर्मे तु बन्धनं पीडाः धनुःक्षेत्रे भयं महत् ॥ ५३ ॥
कुम्भाकारे कुष्ठरोगो भवत्येव न संशयः ।
पवने नश्यति नेत्रं धनं च बन्धुक्षयो मुरजे ॥ ५४ ॥

आयतक्षेत्राकृति में अर्थात् आमने सामने के भुज तुल्य व चारों कोण समवाली में निवास करने से, सर्वसिद्धि, चतुरस्र (लम्बाई, चौड़ाई बराबर) में धन की आमद, गोलाकृति में बुद्धि की वृद्धि, भद्रासन में कल्याण, चक्राकृति में दरिद्रता, बिषम भूमि में शोक, त्रिकोणाकार में राजकीय डर, गाड़ी के आकार वाली में धन का क्षय, दण्डाकार में पशु का क्षय, सूपाकार में गोधन का क्षय, कूर्माकार में बन्धन पीड़ा, धनुषाकार में बड़ा भय, कुम्भाकार में अवश्य कुष्ठ रोग, पवन में नेत्र, धन का नाश और मुरज में बान्धवों का क्षय होता है ॥ ५१–५४ ॥

विशेष—वृहद्वास्तुमाला में ५३ वें श्लोक का उत्तरार्ध 'गोव्याघ्रबन्धने-पीड़ा' है ॥ ५१–५४ ॥

---

१. वृ. वा १७ पृ. ८८-८९ श्लो. ।
२. वृ. वा. १७ पृ, ९०-९२ श्लो. ।

निवास योग्य भूमि

[1]वसिष्ठः—

मनसश्चक्षुषोर्यत्र सन्तोषो जायते भुवि।
तस्यां कार्यं गृहं सर्वैरिति गर्गादिसम्मतम् ॥ ५५ ॥

ऋषिवसिष्ठने बताया है कि जिस भूमि पर जाने से मन एवं नेत्र पूर्ण संतुष्ट हो जायें तो उस पर निवास करना गर्गादि ऋषि संमत होता है ॥ ५५ ॥

गाँव जीवितादि ज्ञान फल

अथ ग्रामजीवितादिज्ञानम्—

नामग्रामदिशा चैव स्वरयुक्ता त्रिभिर्भजेत्।
एके जीवं द्वये मृत्युः शून्ये शून्यं प्रकीर्तितम् ॥ ५६ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि नाम, गाँव, दिशा की अक्षर संख्या में ७ सात जोड़कर तीन का भाग देने पर एक शेष में जीवित, दो में मृत और शून्य शेष में शून्य गाँव होता है ॥ ५६ ॥

जीवितादि भूमि ज्ञान

[2]अथ जीवितादि भूमिज्ञानम्।

व्यामविस्तारयोरैक्यं ग्रामाक्षरसमन्वितम्।
चतुर्गुणं नामयुक्तं शिवनेत्रेण भाजितम् ॥ ५७ ॥

भूमि के दीर्घ (लम्बाई) व विस्तार (चौड़ाई) की संख्या को जोड़कर उसमें ग्रामाक्षर संख्या को मिलकार ४ चार से गुणा कर पुनः नामाक्षर को जोड़कर ३ तीन का भाग देना चाहिये ॥ ५७ ॥

शेष वश फल

एकेन भूमिजीवः स्याद्द्वाभ्यां च समता भवेत्।
शून्यशेषे तु शून्यं स्यादित्युक्तं रुद्रयामले ॥ ५८ ॥

एक शेष में भूमि जीवित, २ शेष में समता और शून्य शेष में शून्यता होती है यह रुद्रयामल में कहा है ॥ ५८ ॥

प्रश्न जीवितादि भूमि ज्ञान

[3]अन्यः—

भूम्यक्षरं चतुर्गुण्यं तिथिवारं च मिश्रितम्।
त्रिभिर्भागः प्रदातव्यः शेषेण फलमादिशेत् ॥ ५९ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि प्रश्नाक्षर को चार से गुणा करके उसमें तिथि बार संख्या को जोड़कर ३ तीन का भाग देकर शेष वश फल का आदेश देना चाहिये ॥५९॥

---

१. ज्यो. नि. १६५ पृ. ८ श्लो. 'वास्तुशास्त्र' के नाम से उद्धृत है।
२. बृ. वा. १८ पृ. ९७-९८ श्लो.। ३. बृ. वा. १९ पृ. ९९-१०० श्लो.।

शेष वश फल

एकेन जीवता भूमिः द्विशेषें भूः समावती ।
त्रिशेषे मृतभूमिः स्यादित्युक्तं चादियामले ।। ६० ।।

तीन का भाग देने पर १ एक शेष प्राप्त हो तो जीवित भूमि, २ दो में समानता और ० शून्य शेष में मृत भूमि जाननी चाहिये, ऐसा आदियामल में कहा है ।। ६० ।।

शकुन से शुभ भूमि

[1]यत्र वृक्षाः प्ररोहन्ति सस्यं हृर्षात्प्रवर्द्धते ।
सा भूमिर्जीविता वाच्या मृता चातोन्यथा भवेत् ।। ६१ ।।

जिस भूमि पर वृक्ष होवें, घास हर्ष पूर्वक बढ़े वह जीवित भूमि होती है इसके अन्यथा अर्थात् वृक्ष लगाने पर सूख जाँय और घास की वृद्धि न हो वह पृथ्वी मृत होती है ।। ६१ ।।

राजाओं के घर का प्रमाण

[2]अथ राजगृहम् । वाराहीये—
उत्तममष्टाभ्यधिकं हस्तशतं नृपगतं पृथुत्वेन ।
अष्टाष्टोनान्येवं पञ्च सपादानि दैर्घ्येण ।। ६२ ।।

वृहत्संहिता में बताया है कि राजगृह में १०८ हाथ विस्तार उत्तम और चार घर में आठ-आठ हाथ कम करके विस्तार होना चाहिये, तथा सपाद दैर्घ्य होना उत्तम होता है । जैसे राजा का प्रधान घर १०८ हाथ चौड़ा व १३५ हाथ लम्बा और अन्य सहायक चार मकान क्रम से १०० चौड़ा, १२५ लंबा एक, दूसरा ९२ हाथ विस्तार व ११५ लम्बा, तीसरा ८४ चौड़ा व १०५ लम्बा और चौथा ७६ हाथ चौड़ा और ९५ हाथ लम्बा उत्तम होता है ।। ६२ ।।

स्पष्टार्थ चक्र

	प्रधान	सहा. १	सहा. २	सहा. ३	सहा. ४
प्रमाण	हस्त	हस्त	हस्त	हस्त	हस्त
विस्तार	१०८	१००	९२	८४	७६
दैर्घ्य	१३५	१२५	११५	१०५	९५

इस प्रकार राजाओं के पाँच घरों को बताकर सेनापति के घरों को वहीं से अर्थात् वृहत्संहिता के वाक्य से बता रहे हैं ।

सेनापति के घर का प्रमाण

एवं पञ्च प्रकाराणि राजगृहाण्यभिधाय सेनापतिगृहमाह तत्रैव —
षड्भिः षड्भिर्हीना सेनापतिसद्मनां चतुःषष्टिः ।
पञ्चैवं विस्तारात्षड्भागसमन्विता दैर्घ्यम् ।। ६३ ।।

१. बृ. वा. १९ पृ. १०१ श्लो. । २. बृ. सं. ५३ अ. ४-१० श्लो. = ६२-६८ श्लो. ।

वृहत्संहिता में बताया है कि सेनापति के प्रथम घर की चौड़ाई ६४ हाथ और अन्य चार मकानों की छै-छै हाथ कम करके विस्तार रखना एवं चौड़ाई से लम्बाई षष्ठांश अधिक करके बनानी चाहिये। जैसे प्रथम घर का विस्तार ६४ हाथ व दैर्घ्य ७४ हाथ १६ अंगुल। दूसरे घर का विस्तार ५८ हाथ चौड़ा व ६७ हाथ १६ अंगुल लम्बा। तीसरे घर का विस्तार ५२ हाथ व दैर्घ्य ६० हाथ १६ अंगुल। चौथे मकान का विस्तार ४६ हाथ, दैर्घ्य ५३ हाथ १६ अंगुल और पाँचवें घर की चौड़ाई ४० हाथ एवं लम्बाई ४६ हाथ १६ अंगुल शुभ होती है ॥ ६३ ॥

स्पष्टार्थ चक्र

म० संख्या	१		२		३		४		५	
प्रमाण	हाथ	अं०	हाथ	अं०	हाथ	अं०	हाथ	अं०	हाथ	अं०
विस्तार	६४	०	५८	०	५२	०	४६	०	४०	०
दैर्घ्य	७४	१६	६७	१६	६०	१६	५३	१६	४६	१६

राजमहिषी व मन्त्री के घर का प्रमाण

अथ सचिवालयमाह।

षष्टिश्चतुर्विहीना वेश्मानि भवन्ति पञ्च सचिवस्य।
स्वाष्टांशयुतदैर्घ्यं तदर्धतो राजमहिषीणाम् ॥ ६४ ॥

मन्त्री (सचिव) के पहले घर की चौड़ाई ६० हाथ की होती है। अवशिष्ट चार मकानों की चौड़ाई चार-चार हाथ कम करके होती है और लम्बाई में अष्टम हिस्सा जोड़ने पर होती हैं। इसके आधे दैर्घ्य विस्तार में राजा की पत्नी का मकान बनाना उचित होता है। जैसे सचिव के प्रथम घर का विस्तार ६० हाथ, दैर्घ्य ६७ हाथ १२ अंगुल। दूसरे घर का विस्तार ५६ हाथ, दैर्घ्य ६३, हाथ। तीसरे का विस्तार ५२ हाथ दैर्घ्य ५८ हाथ १२ अंगुल। चौथे घर का विस्तार ४८ हाथ, दैर्घ्य ५४ हाथ और पाँचवें घर का विस्तार ४४ हाथ दैर्घ्य ४९ हाथ १२ अंगुल होता है॥

राजपत्नी के प्रथम घर का विस्तार ३० हाथ, दैर्घ्य ३२ हाथ १८ अंगुल। दूसरे का विस्तार २८ हाथ, दैर्घ्य ३१ हाथ १८ अंगुल। तीसरे का विस्तार २६ हाथ, दैर्घ्य २९ हाथ ६ अंगुल। चौथे मकान का विस्तार २४ हाथ, दैर्घ्य २७ हाथ और पाँचवें घर का विस्तार २२ हाथ, दैर्घ्य २४ हाथ १८ अंगुल होता है ॥ ६४ ॥

स्पष्टार्थ चक्र

	म० सं०	१		२		३		४		५	
सचिव	प्रमाण	हाथ	अं०	हाथ	अं०	हाथ	अं०	हाथ	अं०	हाथ	अं०
	विस्तार	६०	०	५६	०	५२	०	४८	०	४४	०
	दैर्घ्य	६७	१२	६३	०	५८	१२	५४	०	४९	१२
राज-	विस्तार	३०	०	२८	०	२६	०	२४	०	२२	०
पत्नी	दैर्घ्य	३०	१८	३१	१२	२९	६	२७	०	२४	१८

युवराज आदि के घर का प्रमाण

षड्भि षड्भिश्चैवं युवराजस्यापवर्जिताशीतिः ।
त्र्यंशान्विता च दैर्घ्यं पञ्च तदर्द्धस्तदनुजानाम् ॥ ६५ ॥
नृपसचिवान्तरतुल्यं सामन्तप्रवरराजपुरुषाणाम् ।
नृपयुवराजविशेषः कञ्चुकिवेश्या कलाज्ञानी ॥ ६६ ॥
अध्यक्षाधिकृतानां सर्वेषामेव कोशरतितुल्यम् ।
युवराजमन्त्रिविवरं कर्मताध्यक्षदूतानाम् ॥ ६७ ॥

युवराज का प्रथम घर का विस्तार ८० हाथ एवं चार अन्य घर ६-६ हाथ कम करके विस्तार से होते हैं। तथा विस्तार में विस्तार का तृतीयांश जोड़ने पर दैर्घ्य होता है। जैसे प्रथम घर का विस्तार ८० हाथ, दैर्घ्य १०६ हाथ १६ अंगुल। दूसरे का विस्तार ७४ हाथ, दैर्घ्य ९८ हाथ १६ अंगुल। तीसरे का विस्तार ६८ हाथ, दैर्घ्य ९० हाथ १८ अंगुल। चौथे का विस्तार ६२ हाथ, दैर्घ्य ८२ हाथ, १६ अंगुल और पाँचवें घर का विस्तार ५६ हाथ दैर्घ्य ७४ हाथ १८ अंगुल होता है।

इसी प्रकार युवराज के घर का आधा विस्तार, दैर्घ्य उसके अनुजों (छोटे भाई) का होता है। जैसे भाई के प्रथम घर का विस्तार ४० हाथ, दैर्घ्य ५३ हाथ ८ अंगुल। दूसरे का विस्तार ३७ हाथ, दैर्घ्य ४९ हाथ, ८ अंगुल। तीसरे का विस्तार ३४ हाथ, दैर्घ्य ४५ हाथ ८ अंगुल। चौथे का विस्तार ३१ हाथ, दैर्घ्य ४१ हाथ ८ अंगुल और पाँचवें मकान का विस्तार २८ हाथ, दैर्घ्य ३७ हाथ ८ अंगुल होता है।

राजा और मन्त्री के घर का जो अन्तर है उतना ही मन्त्री और सामन्त या प्रवर राजपुरुषों के घर का होना चाहिये। राजा और युवराज के घर के अन्तर के समान युवराज और कंचुकी, वेश्या तथा कलाविदों के घर का होना चाहिये। मन्त्री व युवराज के घर के अन्तर के समान युवराज व प्रत्येक विभाग के अध्यक्ष तथा दूतों के घर का अन्तर होना चाहिये ॥ ६५–६७ ॥

स्पष्टार्थ चक्र

	म० सं०	१		२		३		४		५	
	प्रमाण	हाथ	अं	हाथ	अं०	हाथ	अं०	हाथ	अ०	हाथ	अं०
युवराज	विस्तार	८०	०	७४	०	६८	०	६२	०	५६	०
	दैर्घ्य	१०६	१६	९८	१६	९०	१६	८२	१६	७४	१६
यु०	विस्तार	४०	०	३७	०	३४	०	३१	०	२८	०
अनुज	दैर्घ्यं	५३	८	४९	८	४५	८	४८	८	३७	८

राज ज्योतिषी आदि के घर का प्रमाण

चत्वारिंशद्धीना चतुश्चतुर्भिस्तु पञ्च यावदिति ।
षड्भागयुता दैर्घ्यं दैवज्ञपुरोधसोर्भिषजः ॥ ६८ ॥

दैवज्ञ, पुरोहित, वैद्य के प्रथम घर का प्रमाण, ४० हाथ और शेष चार घर चार, चार हाथ विस्तार कम करके एवं दैर्घ्य, विस्तार में उसी का छठा भाग जोड़ने पर होता है। यथा प्रथम घर का विस्तार ४० हाथ, दैर्घ्य ४६ हाथ १६ अंगुल। द्वितीय घर का विस्तार ३६ हाथ, दैर्घ्य ४२ हाथ। तीसरे घर का विस्तार ३२ हाथ, दैर्घ्य ३६ हाथ, ८ अंगुल। चौथे का विस्तार २८ हाथ, दैर्घ्य ३२ हाथ, १६ अंगुल और पाँचवें घर का विस्तार २४ हाथ, दैर्घ्य २८ हाथ का होता है ॥ ६८ ॥

स्पष्टार्थ चक्र

म० सं०	१		२		३		४		५	
प्रमाण	हाथ	अं०	हाथ	अं०	हाथ	अं०	हाथ	अं०	हाथ	अं०
विस्तार	४०	०	३६	०	३२	०	२८	०	२४	०
दैर्घ्य	४६	१६	४२	०	३६	८	३२	१६	२८	०

ब्राह्मणादि चार वर्णों के घर का दैर्घ्य विस्तार

[1]चातुर्वर्ण्यव्यासो द्वात्रिंशत्स्याच्चतुश्चतुर्हीनाः।
आषोडशादितिपरं न्यूनतरमतीव हीनानाम् ॥ ६९ ॥
सदशांशं विप्राणां क्षत्रस्याष्टांशसंयुतं दैर्घ्यम्।
षड्भागयुतं वैश्यस्य भवति शूद्रस्य पादयुतम् ॥ ७० ॥

विप्रादि चार वर्णों के मकान की चौड़ाई, लम्बाई क्रम से चार-चार हाथ कम करके १६ हाथ पर्यन्त बनानी चाहिये तथा क्रमानुसार विस्तार में दशमांश जोड़ना होता है। क्षत्रियों के विस्तार में अष्टमांश, वैश्यों के में छठा भाग और शूद्रों के विस्तार में चौथा अंश जोड़कर दैर्घ्य होता है।

जैसे ब्राह्मण के प्रथम घर का विस्तार ३२ हाथ, दैर्घ्य ३५ हाथ, ५ अंगुल। दूसरे मकान का विस्तार २८ हाथ, दैर्घ्य ३० हाथ, १९ अंगुल। तीसरे का विस्तार २४ हाथ, दैर्घ्य १६ हाथ, १० अंगुल। चौथे का विस्तार २० हाथ, दैर्घ्य २२ हाथ और पाँचवें घर का विस्तार १६ हाथ, दैर्घ्य १७ हाथ १४ अंगुल होता है।

क्षत्रिय के प्रथम घर का विस्तार २८ हाथ, दैर्घ्य ३१ हाथ १२ अंगुल। दूसरे घर का विस्तार २४ हाथ दैर्घ्य २७ हाथ। तीसरे का विस्तार २० हाथ दैर्घ्य २२ हाथ १२ अंगुल व चौथे का विस्तार १६ हाथ, दैर्घ्य १८ हाथ होता है। वैश्य के प्रथम घर का विस्तार २४ हाथ, दैर्घ्य २८ हाथ। दूसरे का विस्तार २० हाथ, दैर्घ्य २३ हाथ, ८ अंगुल और तीसरे घर का विस्तार १६ हाथ, दैर्घ्य १८ हाथ, १६ अंगुल होता है। शूद्र के प्रथम घर का विस्तार २० हाथ, दैर्घ्य २५ हाथ एवं दूसरे घर का विस्तार १६ हाथ और दैर्घ्य २० हाथ होता है ॥ ६९–७० ॥

१. वृ. सं. ५३ अ. १२-१६ श्लो. = ६९-७३ श्लो.।

स्पष्टार्थ चक्र

जाति	म० सं०	१		२		३		४		५	
	प्रमाण	हाथ	अं०	हाथ	अं०	हाथ	अं०	हाथ	अं०	हाथ	अं०
ब्राह्मण	विस्तार	३२	०	२८	०	२४	०	२०	०	१६	०
	दैर्घ्य	३५	५	३०	१९	२६	१०	२२	०	१७	१४
क्षत्रिय	विस्तार	२८	०	२४	०	२०	०	१६	०	×	×
	दैर्घ्य	३१	१२	२७	०	२२	१२	१८	०	×	×
वैश्य	विस्तार	२४	०	२०	०	१६	०	×	×	×	×
	दैर्घ्य	२८	०	२३	८	१८	१६	×	×	×	×
शूद्र	विस्तार	२०	०	१६	०	×	×	×	×	×	×
	दैर्घ्य	२५	०	२०	०	×	×	×	×	×	×

कोष व राजपुरुष के घर का प्रमाण

नृपसेनापतिगृहयोरन्तरमानेन कोशरतिभवने ।
सेनापतिचातुर्वर्ण्यविवरतो राजपुरुषाणाम् ॥ ७१ ॥

वृहत्संहिता में बताया है कि राजा और सेनापति के मकान के अन्तर तुल्य खजाना घर और रतिभवन तथा सेनापति और चारों वर्णों के घर के अन्तर के समान राजपुरुषों का घर होता है। जैसे सेनापति और ब्राह्मण के अन्तर तुल्य ब्राह्मण राजपुरुषों का सेनापति और क्षत्रिय के मकान के अन्तर तुल्य क्षत्रिय राजपुरुष का सेनापति एवं वैश्य के मकान के समान वैश्य राजपुरुष का तथा सेनापति और शूद्र के घर के अन्तर तुल्य शूद्र राजपुरुष का मकान होता है ॥ ७१ ॥

स्पष्टार्थ चक्र

	म० सं०	१		२		३		४		५	
	प्रमाण	हाथ	अं०	हाथ	अं०	हाथ	अं०	हाथ	अं०	हाथ	अं०
कोशरति	विस्तार	४४	०	४२	०	४०	०	३८	०	३६	०
घर	दैर्घ्य	६	८	५७	८	५४	८	५१	८	४८	८
राज-	विस्तार	३२	०	३०	०	२८	०	२६	०	१४	०
पुरुष	दैर्घ्य	३९	११	३६	२१	२४	६	३१	१६	२९	२

पारशव आदि के घर का प्रमाण

अथ पारशवादीनां स्वमानसंयोगदलसमं भवनम् ।
हीनाधिकं स्वमानादशुभकरं वास्तु सर्वेषाम् ॥ ७२ ॥

पारशव (ब्राह्मण के वीर्य और शूद्रा के रज से उत्पन्न) आदि (मूर्जकण्टक = ब्राह्मण के वीर्य और वैश्या के रज से उत्पन्न, मूर्धाविसिक्त = ब्राह्मण के वीर्य और क्षत्रिया के रज से उत्पन्न) को माता व पिता के पूर्वोक्त वर्णजनित मानों को जोड़कर आधा विस्तार दैर्घ्य ज्ञात कर घर बनाना चाहिये। कथित मान से अल्प या अधिक होने पर समस्तों को अशुभ होता है ।। ७२ ।।

पशु व संन्यासी के घर का प्रमाण

पश्वाश्रमिणाममितं धान्यायुधवह्निरतिगृहाणां च ।
नेच्छन्ति शास्त्रकारा हस्तशतादुच्छ्रितं परतः ।। ७३ ।।

पशु, आश्रमी (संन्यासी) का घर व धान्य, शस्त्र, अग्नि और क्रीडा घर को अमित (परिमाण रहित) बनाना चाहिये। अर्थात् जैसी इच्छा हो वैसा मकान निर्माण कराना चाहिये। सौ हाथ से ऊंचा घर बनाना वास्तु शास्त्रकार इच्छा नहीं करते हैं क्योंकि यह अशुभ होता है ।। ७३ ।।

घर की ऊँचाई और एकशाल मकान का दैर्घ्य

[1]वास्तुनि यो विस्तारः स एवोच्छ्रायनिश्चयः शुभदः ।
शालैकेषु गृहेष्वपि विस्तारद्विगुणितं दैर्घ्यम् ।। ७४ ।।

मकान की ऊँचाई विस्तार के समान होनी चाहिये तथा एक शाल वाले मकान की लम्बाई विस्तार से दूनी होती है ।। ७४ ।।

घर के पिण्ड (लम्बाई चौड़ाई) का ज्ञान

अथ पिण्डसाधनम् —

रामदैवज्ञः—

[2]एकोनितेष्टर्क्षहताद्वितिथ्योरुपोनितेष्टायहतेन्दुनागैः ।
युक्ताद्युतैश्चापि युता विभक्ता भूपाश्विभिः शेषमितो हि पिण्डः ।।७५।।
स्वेष्टाय नक्षत्रभवोथ दैर्घ्यहृत्स्याद्विस्तृतिर्विस्तृतिहृच्च दैर्घ्यता ।
आयाध्वजो धूम्रहरिश्वगोखरेभध्वांक्षका पिण्डमिहाष्टशेषिते ।।७६।।

श्रीरामदैवज्ञ ने कहा है कि जैसे विवाह में वर-वधू के मेलापक का विचार किया जाता है उसी प्रकार मकान व मकान मालिक के नक्षत्रों से गणना करके शुभाशुभ जानकर घर निर्माण कराना चाहिये। वास्तु निर्माण में नाडी एक होने पर ही शुभता होती है विवाह की भाँति भिन्न नाडी अभीष्ट नहीं होती है यह इसमें विशेषता होती है।

मकान के २७ नक्षत्र होते हैं जैसे प्रत्येक प्राणी के होते हैं। इसलिये जिस नक्षत्र से भूस्वामी की गणना उचित हो उस नक्षत्र को इष्ट नक्षत्र और आठ आयों में जो अभीष्ट विषम आय हो उसे अभीष्ट आय कल्पना करके इष्ट नक्षत्र एवं इष्ट आय वश

१. बृ. सं. ५३ अ. ११ श्लो.।   २. मु. चि. १२ प्र. ३-४ श्लो.।

'विलोम विधि से गृह पिण्ड बनाना चाहिये। जैसे इष्ट नक्षत्र संख्या में १ एक घटाकर शेष को १५२ से गुणा करके गुणन फल को अलग स्थापित करना चाहिये।

इसी प्रकार जो अभीष्ट आय हो उसमें १ घटाकर अवशिष्ट को ८१ से गुणा कर फल को पूर्व स्थापित में जोड़कर योग फल में १७ मिलाकर उसमें २१६ का भाग देने से शेष घर का पिण्ड अर्थात् घर की लम्बाई चौड़ाई का गुणन फल रूप क्षेत्र फल होता है। पिण्ड में अभीष्ट लम्बाई से भाग देने पर अभीष्ट चौड़ाई और अभीष्ट चौड़ाई से भाग देने पर लम्बाई होती है। जैसे नीलकण्ठ नामक व्यक्ति का अनुराधा नक्षत्र होता है। इसका रोहिणी से मेलापक शुभ होता है। इसलिये रोहिणी नक्षत्र इष्ट और विषम ३ तीसरा आय सिंह कल्पित है।

श्लोकानुसार–इष्ट नक्षत्र सं० ४ - १ = ३ × १५२ = ४५६। आ० ३ - १ = २ × ८१ = १६२।४५६ + १६२ = ६१८ + १७ = ६३५ ÷ २१६ = २०३ शेष यह घर का क्षेत्र फल (लम्बाई चौड़ाई) हुआ। इसमें कल्पित लम्बाई=२९ इससे भाग २०३ ÷ २९ = ल० ७=चौड़ाई और चौड़ाई का भाग देने पर लम्बाई २०३ ÷ ७=२९ होती है। तथा पिण्ड में ८ का भाग देने से शेष वश क्रम से ध्वज १, धूम्र २, सिंह ३, कुक्कुर ४, बैल ५, गधा ६, हाथी ७ और कौवा ८ वाँ आय होता है॥ ७५–७६॥

आयों का साधन

²टोडरानन्दे—

विस्तारेणाहृतं दैर्घ्यं विभजेदष्टभिस्ततः।
यच्छेषं स भवेदायो ध्वजाद्यास्ते स्युरष्टधा॥ ७७॥

टोडरानन्द ग्रन्थ में कहा है कि घर की लम्बाई, चौड़ाई का गुणा करके ८ आठ का भाग देने से शेष तुल्य ध्वजादि ८ आय होते हैं॥ ७७॥

आयों के नाम

ध्वजो धूम्रो हरिः श्वा गौः खरेभौ वायसोष्टमः।
पूर्वादिदिक्षु चाष्टानां ध्वजादीनामवस्थितिः॥ ७८॥

ध्वज १, धूम्र २, सिंह ३, कुक्कुर ४, बैल ५, गधा ६, हाथी, व ८ आठवीं आय कौवा संज्ञक होती है॥ ७८॥

आय वश फल

¹कीर्तिः शोको जयो वैरं धनं निर्धनता सुखम्।
रोगश्चेति गृहारम्भे ध्वजादीनां फलं क्रमात्॥ ७९॥

ध्वज आय में गृहारम्भ करने पर कीर्ति (यश), धूम्र में शोक, सिंह में जय, श्वान में वैर, गौ में धन, गदहे में निर्धनता, हाथी में सुख और कौवा आय में रोग होता है॥ ७९॥

---

१. मु. चि. १२ प्र. ४-५ श्लो. पी. टी. में विश्वकर्मा के नाम से उद्धृत है।
२. ज्यो. सा. १५९ पृ. १७ श्लो.।

भिन्न प्रकार से फल

[1]अन्योपि—

ध्वजे बहुधनं प्रोक्तं धूम्रे चैव भ्रमं भवेत् ।
सिंहे च विरला लक्ष्मीः श्वाने च कलहं भवेत् ॥ ८० ॥
धनं धान्यं वृषे चैव खरेषु स्त्रीविनाशनम् ।
गजाख्ये पुत्रलाभश्च ध्वांक्षे सर्वस्य शून्यता ॥ ८१ ॥

ध्वज आय में मकान का आरम्भ करने पर अधिक धन, धूम्र में भ्रम, सिंह में विशेष लक्ष्मी, श्वान में कलह, वृष में धनधान्य लाभ, खर (गधा) में स्त्री विनाश, हाथी में पुत्र लाभ और कौवा में शून्यता होती है ॥ ८०–८१ ॥

स्पष्टार्थ चक्र

१	२	३	४	५	६	७	८	संख्या
ध्वज	धूम्र	सिंह	श्वान	वृष	खर	गज	उष्ट्र	आय
कीर्ति	शोक	जय	शत्रुता	धन	दरिद्रता	सुख	रोग	फल
बहुधन	भ्रम	लक्ष्मी	कलह	धन-धान्य	स्त्रीनाश	पुत्र लाभ	शून्यता	वा फल

विशेष

स्वस्वस्थाने ध्वजः श्रेष्ठो गजः सिंहस्तथा वृषः ।
ध्वजः सर्वगतो देयो वृषं नान्यत्र दापयेत् ॥ ८२ ॥
[2]वृषः सिंहो गजश्चैव खेटे कर्कटकीटयोः ।
द्विपः पुनः प्रयोक्तव्यो वापीकूपसरेषु च ॥ ८३ ॥
मृगेन्द्रमासने दद्याच्छयनेषु पुनर्गजः ।
वृषं भोजनपात्रेषु च्छत्रादिषु पुनर्ध्वजम् ॥ ८४ ॥
अग्निवेश्मसु सर्वेषु गृहे वन्ह्युपजीविनाम् ।
धूम्रं नियोजयेत्केचिच्छ्वानं म्लेच्छादिजातिषु ॥ ८५ ॥
खरो वेश्यागृहे शस्तो ध्वांक्षश्चापि कुटीषु च ।
वृषसिंहौ गजश्चापि प्रासादपुरवेश्मसु ॥ ८६ ॥

अपने-अपने स्थान में सब उत्तम होते हुए भी ध्वज, गज, सिंह और वृष आय विशेष श्रेष्ठ होते हैं । ध्वज आय को सब जगह देना और वृष आयको अन्यत्र नहीं देना चाहिये तथापि वृष, गज, सिंह आय को पुराने, किला, छप्परादि में देना चाहिए । वापी, कूप, तालाब में गज, आसन में सिंह, शयन में गज, भोजनपात्र में वृष, छत्रादिकों में ध्वज, अग्नि सम्बन्धी घरों में तथा अग्नि से जीविका करने वालों के घर में धूम्र,

१. बृ. वा. ४५ पृ. ४–६ श्लो. = ८०–८२ श्लो. ।
२. मु. चि. १२ प्र. ५ श्लो. पी. टी. ८३–८६ श्लो. ।

म्लेच्छादि के घर में धूम्र, वेश्या घर में गधा, कुटी आदि में कौवा, प्रासाद, गाँव घर में वृष, सिंह और गज आय उत्तम होता है ॥ ८०–८६ ॥

वसिष्ठोक्त गजादि गृह निर्माण में आय

[1]वसिष्ठस्तु—

गजाये वा ध्वजाये वा गजानां सदनं शुभम् ।
अश्वालयं ध्वजाये च खराये वृषभेपि वा ॥ ८७ ॥
उष्ट्राणां मन्दिरं कार्यं गजाये वा वृषे ध्वजे ।
पशुसद्म वृषाये च ध्वजाये वा शुभप्रदम् ॥ ८८ ॥
शय्यासु वृषभः शस्तः पीठे सिंहः शुभप्रदः ।
अन्यत्र छत्रवस्त्राणां वृषाये वा ध्वजेपि वा ॥ ८९ ॥
पादुकोपानहौ कार्यौ सिंहाख्येप्यथवा ध्वजे ।
उक्तानामप्यनुक्तानां मन्दिराणां ध्वजः शुभः ॥ ९० ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि गज या ध्वज आय में हाथी के घर का निर्माण शुभ, ध्वज या खर या वृष आय में घोड़ों का, गज या वृष या ध्वज आय में ऊँटों का वृष या ध्वज में पशुओं का, शय्या में वृष, पीठ में सिंह, छत्र, वस्त्र में वृष या ध्वज, खडाऊँ या पादत्राण का निर्माण सिंह अथवा ध्वज में शुभ प्रद होता है। उक्त और अनुक्त घरों के लिए ध्वज आय शुभ प्रद होता है ॥ ८७–९० ॥

जाति वश आय

[2]च्यवनः—

महानसेग्निशालायां गृहेवाग्न्युपजीविनाम् ।
धूम्रं दद्यात्तथा श्वानं यवनान्त्यजयोर्गृहे ॥ ९१ ॥
खरो वेश्यागृहे योज्यो ध्वांक्षः पक्षिपतेर्गृहे ।
वृषं सिंहं गजं दद्यात्प्रासादे पुरमन्दिरे ॥ ९२ ॥
वस्त्रेषु धर्मशालायां कुम्भस्तम्भे ध्वजे ध्वजः ।
गोगजो भूगृहे देयो साधारणतृणोकसि ॥ ९३ ॥
मन्त्रे शस्त्रे रथे सिंहो भाण्डागारे शुभो गजः ।
धान्याम्वुस्थानगोश्वेभशालायां वृषभः शुभः ॥ ९४ ॥

ऋषि च्यवन जी ने बताया है कि रसोई घर, अग्निशाला एवं अग्नि से जीविका करने वाले हलवाई आदि को धूम्र, यवन अन्त्यजों को श्वान, वेश्या के घर बनाने में गधा (खर), वहेलिया को ध्वांक्ष, प्रासाद, पुर व मंदिर निर्माण में वृष, सिंह, हाथी

---

१. व. सं० ३९ अ. ८१–८४ श्लो. = ८०–८२ श्लो. ।
२. ज्यो. नि. १६८ पृ. ७–१० श्लो. ।

(गज), वस्त्र, धर्मशाला और स्तम्भीय कलशों के ध्वजारोपण में ध्वज, मिट्टी के तथा साधारण तिनका के घर में गौ. (वृष) गज (हाथी) यन्त्रशस्त्र, रथ में सिंह, भाण्डागार (भड़ेली) में गज, धान्य, जलस्थान में गौ, घुड़साल और हाथियों के घर निर्माण में वृष आय उत्तम होता है ॥ ९१–९४ ॥

भिन्न प्रकार से

अन्यः —
ब्राह्मणस्य ध्वजं दद्यात्सिहं दद्यात्तु क्षत्रिये ।
वैश्यस्य च वृषं दद्याद्गजं शूद्रें सदार्पयेत् ॥ ९५ ॥
चर्मकारगृहे धूम्रः श्वानोपि रजकस्य च ।
खरश्चैव तथा वेश्या ध्वांक्षे चान्यत्र जातिषु ॥ ९६ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि ब्राह्मण के लिये ध्वज, क्षत्रिय को सिंह, वैश्य को वृष, शूद्र को गज, चमार को धूम्र, धोबी को श्वान, वेश्या को खर और अन्य जगह ध्वांक्ष आय शुभ होता है ॥ ९५–९६ ॥

अथ केषु केषु आयादिकं न भाव्यमित्युक्तम् ।

अब किस-किस घर निर्माण में आयादि का विचार नहीं करना इसे बता रहे हैं ।

आयादि विचार का अभाव

[१]दैवज्ञवल्लभे—
अलिन्दनिर्व्यूहविनिर्गमाद्याश्चतुर्दिशं ये गृहभूषणाय ।
आयादिकं तेषु न चिन्तनीयं यतो न ते वास्तुपरिग्रहे स्युः ॥ ९७ ॥

दैवज्ञवल्लभ में बताया है कि बरामदा, छज्जा या बाहर निकलने के लिए जो छाया कारक घर की सजावट के लिए घरों का निर्माण होता है । उसमें आयादि का चिंतन नहीं करना, क्योंकि ये घर वास्तु ग्रहण में नहीं होते हैं ॥ १९७ ॥

[२]चिन्तामणौ—
यत्र दैर्घ्यं गृहादीनां द्वात्रिंशद्धस्ततोधिकम् ।
न तत्र चिन्तयेद्विद्वान् गुणानायव्ययादिकान् ॥ ९८ ॥

चिन्तामणि में बताया है कि जिस मकान की लम्बाई ३२ बत्तीस हाथ से अधिक होती है उसमें आयादि का विचार पंडितों को नहीं करना चाहिये ॥ ९८ ॥

वसिष्ठोपि—
[३]एकादशयवादूर्ध्वं द्वात्रिंशद्धस्तकावधि ।
तावदायादिकं चिन्त्यं तदूर्ध्वं नैव चिन्तयेत् ॥ ९९ ॥

---

१. मु. मा. ६ प्र. १९ श्लो. टी. ।
२. मु. मा. ६ प्र. १९ श्लो. टी. ।
३. मु. मा. ६ प्र. १९ श्लो. टी. ।

ऋषि वसिष्ठजी ने बताया है कि ११ ग्यारह यव से ३२ बत्तीस हाथ तक के मकान निर्माण में आयादि का विचार करना और इससे अधिक होने पर नहीं करना चाहिये ॥ ९९ ॥

मासादि शुद्धिरपि नेति राजमार्तण्डे—

मासादि शुद्धि का भी विचार नहीं करना, इसे भी बता रहे हैं।

आयव्ययौ भूमिशुद्धि चिन्तयेन्न महालये ॥ १०० ॥

राजमार्तण्ड में बताया है कि आय, व्यय और मास शुद्धि का विचार बड़े मकान के निर्माण में नहीं करना चाहिये ॥ १०० ॥

[1]च्यवनोपि—

आयव्ययौ भूमिशुद्धि तृणगेहे न चिन्तयेत् ।
शिलान्यासादि नो कुर्यात्तथागारे पुरातने ॥ १०१ ॥

ऋषि च्यवन जी ने भी कहा है कि आय, व्यय, भूमि शुद्धि का विचार तिनका के मकान में नहीं करना। और पुराने मकान में शिलान्यास नहीं करना चाहिये ॥ १०१ ॥

मार्तण्डेपि—

[2]द्वात्रिंशाधिकहस्तमब्धिवदनन्तार्णन्त्वलिंदादिकं
नैष्वायादिकमीरितं तृणगृहं सर्वेषु मास्सूदितम् ॥ १०२ ॥

मुहूर्त मार्तण्ड में भी कहा है कि ३२ बत्तीस हाथ से बड़े घर के निर्माण में, चारों ओर छज्जेवाले में, तिनका के घर में और पट्टिशाला के निर्माण में आयादि का विचार नहीं करना और तिनका का मकान सब मासों में बनाना शुभ होता है ॥ १०२ ॥

पिण्ड से आयादि आनयन

अथ गृहे वाराद्यानयनम् ।

[3]मुहूर्तचिन्तामणौ—

पिण्डे नवाङ्कागगजाग्निनागनागाब्धिनागैर्गुणिते क्रमेण ।
विभाजिते नागनगाङ्कसूर्यनागर्क्षतिथ्यर्क्षखभानुभिश्च ॥ १०३ ॥
[4]आयो वारांशको द्रव्यमृणमृक्षतिथिर्युतिः ।
आयुश्चाथ गृहेशर्क्षगृहमैक्यं मृतिप्रदम् ॥ १०४ ॥

श्रीरामदैवज्ञ ने कहा है कि पिण्ड संख्या को नव स्थानों में रखकर क्रम से ९।९।६।८।३।८।८।४।८ इन अङ्कों से गुणा करके पुनः गुणनफल में क्रमानुसार

१. वृ. वा. ४९५, ९ श्लो. ।
२. मु. मा. ६ प्र. १९ श्लो. टी. ।
३. मु. मा. ६ प्र. १९ श्लो. ।
४. १२ प्र. ११–१२ श्लो. ।

८।७।९।१२।८।२७।१५।२७।१२ से भाग देने पर शेष वश क्रम से आय, वार, अंश, द्रव्य, ऋण, नक्षत्र, तिथि, योग और आयु संज्ञक होता है। गृहेश एवं घर यदि एक ही नक्षत्र हो जाय तो मकान मालिक का मरण होता है ॥ १०३–१०४ ॥

उदाहरण—जैसे पिण्ड $= \frac{२०३ \times ९}{८} = \frac{१८२७}{८} =$ शे० $= ३ =$ आय

$\frac{२०३ \times ९}{७} = \frac{१८२७}{७} =$ शे० $= ७ =$ वार

$\frac{२०३ \times ६}{९} = \frac{१२१८}{९} =$ शे० $= ३ =$ अंशक

$\frac{२०३ \times ८}{१२} = \frac{१६२४}{१२} =$ शे० $= ४ =$ द्रव्य

$\frac{२०३ \times ३}{८} = \frac{६०९}{८} =$ शे० $= १ =$ ऋण

$\frac{२०३ \times ८}{२७} = \frac{१६२४}{२७} =$ शे० $= ४ =$ नक्षत्र

$\frac{२०३ \times ८}{१५} = \frac{१६२४}{१५} =$ शे० $= ४ =$ तिथि

$\frac{२०३ \times ४}{२७} = \frac{८१२}{२७} =$ शे० $= २ =$ योग

$\frac{२०३ \times ८}{१२०} = \frac{१६२४}{१२१} =$ शे० $= ६४ =$ आयु

वार का आनयन

अन्यत्रापि—

[1]गृहैर्विगुण्यं स्वगृहस्य पिण्डं विभाजितं पर्वतभिर्मुनीन्द्राः।
शेषं भवेच्चात्र रवीन्दुभौमा बुधो गुरुर्भार्गवसूर्यनन्दनाः ॥ १०५ ॥
वाराः सूर्यारशन्यंशाः सदा वह्निभयप्रदाः।

ग्रन्थान्तर में कहा है कि अपने घर की पिण्ड संख्या को नव से गुणा करके सात से भाग देने पर एकादि शेष में क्रम से सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि के वार होते हैं। सूर्य, मंगल शनिवार व अंश अग्नि से सदा भय दाता होता है ॥ १०५–१०५½ ॥

अंश स्वामी ज्ञान

गृहपिण्डरसैर्गुण्यं ग्रहैश्चापि विभाजितम् ॥ १०६ ॥
यच्छेषं स भवेदशस्तस्येशाश्चापि कीर्तिताः ॥ १०७ ॥

---

१. वृ. वा. ५० पृ. १२–१६ श्लो. = १०५–११० श्लो.।

अर्कश्चन्द्रः कुजो राहुर्जीवमन्दज्ञकेतवः ।
भृगुपुत्रक्रमेणैव अंशाधीशाः प्रकीर्तिताः ॥ १०८ ॥

घर की पिण्ड संख्या को ६ से गुणा कर नव का भाग देने पर एकादि शेष में क्रम से सूर्यादि ग्रह अंशेश होते हैं। जैसे १ शेष में सूर्य, २ में चन्द्रमा, ३ में मंगल, ४ में राहु, ५ में गुरु, ६ में शनि, ७ में बुध, ८ में केतु और ० में शुक्र अंश का स्वामी होता है ॥ १०५½–१०८ ॥

द्वादश द्रव्य आनयन

पिण्डाष्टगुणितं चात्र रविभिश्च विभाजितम् ।
अवशिष्टं भवेद्द्रव्यं तत्तन्नामाब्रवीदिदम् ॥ १०९ ॥

वस्त्राणि शस्त्राणि च पुस्तकानि
द्रव्याणि धान्यानि वसुन्धरा च ।
कटुम्बविद्यापशुवाटिकानि
भाण्डानि भूषाणि धनानि द्वादश ॥ ११० ॥

पिण्ड संख्या को आठ से गुणा करके १२ बारह से भाग देने पर एकादि शेष में क्रम से १२ द्रव्य होते हैं। जैसे १ शेष में वस्त्र, २ में शस्त्र, ३ में पुस्तक, ४ में द्रव्य, ५ में धान्य, ६ में वसुन्धरा, ७ में कुटुम्ब, ८ में विद्या, ९ में पशु, १० में वाटिका, ११ में पात्र, अलङ्कार और १२ बारह में धन जानना चाहिये ॥ १०९–११० ॥

ऋण का आनयन

[1]इहाग्निगुणितं पिण्डमष्टभिर्भाजितं च यत् ।
अवशिष्टमृणसंज्ञं स्यात्तस्येशाः कथिताः पुरा ॥ १११ ॥

पिण्ड को ३ तीन से गुणा करके आठ से भाग देने पर शेष तुल्य ऋण जानना एवं इसके स्वामी को पूर्वरीति से समझना चाहिये ॥ १११ ॥

नक्षत्र का आनयन

गृहपिण्डं गजैर्हत्वा सप्तविंशतिभिर्भजेत् ।
यच्छेषं तद्भवेदृक्षमश्विन्यादि बुधैः क्रमात् ॥ ११२ ॥

गृह पिण्ड को आठ से गुणा करके २७ का भाग देने पर अवशिष्ट संख्या से अश्विन्यादि नक्षत्र होता है ॥ ११२ ॥

नक्षत्रफलं तु ताराद्वारा ।

नक्षत्र का फल तारा द्वारा होता है ।

---

१. बृ. वा. ५१ पृ. १७–२० श्लो. = १११–११२ श्लो. ।

तारा फल

[1]उक्तं च—

विपत्प्रदा विपत्तारा प्रत्यरिः प्रतिकूलदा।
निधनाख्या तारका तु सर्वथा निधनप्रदा ॥ ११३ ॥

कहा है कि विपत्तारा से विपत्ति, प्रत्यरि से शत्रुता और निधन तारा से सर्वथा मरण होता है ॥ ११३ ॥

३, ५, ७ तारा का फल

कश्यपः—

[2]दत्ते दुःखं तृतीयर्क्षं पञ्चमर्क्षं यशःक्षयम्।
आयुःक्षयं सप्तमर्क्षं कर्तृभाद्गृहभावधि ॥ ११४ ॥

ऋषि कश्यप जी ने बताया है कि कर्ता (स्वामी) के नक्षत्र से घर का नक्षत्र (तारा) तीसरी तारा दुःख देने वाली, पाँचवीं यश को क्षय करने वाली और सातवीं तारा आयु का क्षय करने वाली होती है ॥ ११४ ॥

एक नक्षत्र में फल

वसिष्ठः—

[3]गृहस्य तत्पतेस्त्वेकधिष्ण्यं चेन्निधनप्रदम् ॥ ११५ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि घर व मकान के स्वामी का एक नक्षत्र होने पर मरण होता है ॥ ११५ ॥

भिन्न वाक्य से भी

अन्योपि—

गृहगृहेशयोर्भैक्यं मृतिः स्यान्नियमेन तु ॥ ११६ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि घर का नक्षत्र और घर के मालिक का एक नक्षत्र होने पर नियम से स्वामी की मृत्यु होती है ॥ ११६ ॥

गृह मेलापक में राशि ज्ञान

वास्तुसारे—

[4]अश्विन्यादि त्रयं मेषे सिंहे प्रोक्तं मघात्रयम्।
मूलादित्रितयं चापे शेषेषु नवराशयः ॥ ११७ ॥

वास्तुसार में कहा है कि अश्विनी से ३ नक्षत्र मेष राशि, मघा से ३ तीन नक्षत्र सिंह और मूल नक्षत्र से ३ तीन नक्षत्र धनु राशि होती है। अवशिष्ट राशियाँ दो-दो नक्षत्र की होती हैं ॥ ११७ ॥

---

१. व. सं. ३९ अ. ५२ श्लो.। २. ज्यो. नि. १६९ पृ. २४ श्लो.।
३. व सं.। ४. मु. चिं. १२ प्र. १२ श्लो. पी. टी.।

विशेष—यहाँ 'शेषेषु नवराशयः' पाठभ्रामक है ॥ ११७ ॥

अत्र विवाहवन्मेलापकं विचार्यं परन्त्वत्र नाडो अन्यथा ज्ञेया ।

घर निर्माण में विवाह की तरह मेलापक विचार करना और नाडी एक होने पर ग्रहण करना यह इसमें विशेषध्यान करने योग्य वात है ॥

एक नाडी की विशेषता

सर्वंतदुक्तम् विवाहवज्ज्ञेयं विपरीता तु नाडिका ।
एकनाडो यदा जातस्त्वन्यमेव न चिन्तयेत् ॥ ११८ ॥

कहा है कि घर मेलापक समस्त विवाह की तरह विचारना किन्तु नाडी एक होने पर ही ग्रहण करना चाहिये । यदि एक नाडी प्राप्त हो जाय तो अन्य का विचार नहीं करना चाहिये ॥ ११८ ॥

वृद्धगर्गः—
प्रभुः पण्याङ्गनामित्रं देशग्रामं परं गृहम् ।
एकनाडिस्थितं भव्यं विरुद्धं वेधवर्जितम् ॥ ११९ ॥

वृद्ध गर्ग जी ने कहा है कि स्वामी, पण्याङ्गना (वेश्या), मित्र, देश, गाँव, घर की एक नाडी होने पर शुभ और विरुद्ध, वेध रहित में अशुभ होता है ॥ ११९ ॥

[1]ज्योतिःसागरेपि—
सेव्यसेवकयोश्चैव गृहतत्स्वामिनोरपि ।
परस्परं मित्रयोश्च एकनाडी प्रशस्यते ॥ १२० ॥

ज्योतिः सागर में भी बताया है कि सेव्य-सेवक, घर-मालिक, और मित्र व स्वयं, की एक नाडी प्रशस्त (शुभ) होती है ॥ १२० ॥

तिथि का आनयन

[2]गृहपिण्डं गजैर्हत्वा तिथिभिर्भागमाहरेत् ।
शेषं चात्र तिथिर्ज्ञेया वास्तुशास्त्रविशारदैः ॥ १२१ ॥

घर के पिण्ड को ८ आठ से गुणा करके १५ पन्द्रह से भाग देने पर शेष वश शुक्लादि तिथि होना वास्तु शास्त्र जानने वाले विद्वानों ने बताया है ॥ १२१ ॥

भिन्न प्रकार से

अन्योपि—
[3]शक्राहतं क्षेत्रफलं त्रिंशद्भक्तावशेषकम् ।
प्रतिपदादितिथिर्ज्ञेयं दर्शं रिक्तां विवर्जयेत् ॥ १२२ ॥

---

१. मु. चि. १२ प्र. १२ श्लो. पी. टी. ।
२. वृ. वा. ५२ पृ. २१ श्लो. ।
३. मु. चि. १२ प्र. १२ श्लो. टी. ।

ग्रन्थान्तर में बताया है कि मकान की पिण्ड संख्या को १४ चौदह से गुणा करके ३० तीस का भाग देने पर शेष शुक्ल प्रतिपदादि तिथि होती है। इसमें रिक्ता व अमावास्या का त्याग करना चाहिये ॥ १२२ ॥

योग का आनयन

अथ योगानयनम्।

सङ्ग्रहकारः—

गृहपिण्डं युगैर्हत्वा भक्त्वा नक्षत्रसंख्यया।
विष्कम्भादि युतिर्ज्ञेया नामतुल्यफलं विदुः ॥ १२३ ॥

संग्रहकार ने बताया है कि गृह पिण्ड संख्या को ८ आठ से गुणा करके २७ से भाग देने से १ एकादि शेष वश विष्कुंभादि योग होता है। यह अपने नाम के समान फल दाता होता है ॥ १२३ ॥

अशुभ योग ज्ञान

अतिगण्डधृतिः शूलगण्डव्याघातवज्रकाः।
परिघश्च व्यतीपातः वैधृतिर्वर्जिता गृहे ॥ १२४ ॥

अतिगंड, धृति, शूल, गण्ड, व्याघात, वज्र, परिघ, व्यतीपात और वैधृति का घर निर्माण में त्याग करना चाहिये ॥ १२४ ॥

आयु आनयन

[1]गृहस्य पिण्डं गजभिर्विगुण्यं विभाजितं शून्यदिवाकरेण।
यच्छेषमायुःकथितं मुनीन्द्रैरायुष्यपूर्णे भवने शुभं स्यात् ॥ १२५ ॥

मकान के पिण्ड को ८ आठ से गुणा करके १२० से भाग देने पर शेष के समान मकान की आयु होती है। जब तक आयु की समाप्ति न हो तब तक घर शुभ या पूर्णायु युक्त मकान पूर्ण होता है ॥ १२५ ॥

अथ गृहस्यायुः पूर्णे सति कस्मिन्दोषेण गृहविनाशमिति ज्ञानम्।

घर की आयु पूरी होने पर किस दोष से घर का नाश होता है उसे बताते हैं।

मकान आयु व विनाश का कारण

[2]राजमार्तण्डे—

हस्तात्मकं क्षेत्रफलं गजाहतं संवत्सरैर्भाजितलब्धकं यत्।
तत्खेन्दुगुण्यं भवनस्य जीवनं यच्छेषितं भूतहृतं विलीयते ॥ १२६ ॥

राजमार्तण्ड में कहा है कि हस्तात्मक क्षेत्र फल को ८ आठ से गुणा करके ६० साठ का भाग देने पर जो लब्धि प्राप्त हो उसे १० दस से गुणा करके घर का जीवन समझना चाहिये और शेष में पाँच का भाग देने पर एकादि शेष में तत्तद् विकार से विनाश होता है ॥ १२६ ॥

१. वृ. वा. ५२ पृ. २३–२४ श्लो.। २. वा. रा. ३ अ. २४–२६ श्लो.।

शेष वश विकार ज्ञान

पृथिव्यापोनलो वायुराकाश इति पञ्चभिः ।
गृहस्यायुष्यसम्पूर्णे विनाशो जायते ध्रुवम् ॥ १२७ ॥

पाँच से भाग देने पर १ एक शेष में भूमि विकार से २ दो में जल के विकार से, ३ तीन शेष में अग्नि के विकार से, ४ में वायु के विकार से और ५ पाँच शेष में आकाश जन्य विकार से मकान का विनाश होता है। अर्थात् आयु पूर्ण होने पर उक्त तत्त्व द्वारा घर ध्वस्त होता है ॥ १२७ ॥

दानादि ९ मण्डल ज्ञान

अथ दानादि मंडलज्ञानम्—
[1]स्वामिहस्तप्रमाणेन दीर्घविस्तारसंयुतम् ।
नवभिस्तु हरेद्भागं शेषं मण्डलमुच्यते ॥ १२८ ॥

मकान मालिक के हाथ से घर की जो लम्बाई, चौड़ाई है, उसे परस्पर जोड़ करके नव का भाग देने पर शेष वश मण्डल होता है ॥ १२८ ॥

शेष वश मण्डल ज्ञान

दाता च भूपतिश्चैव क्लीवश्चौरो विचक्षणः ।
षष्ठो भोगी धनाढ्यश्च दरिद्रो धनदस्तथा ॥ १२९ ॥

१ एक शेष में दाता, २ में राजा, ३ में क्लीब, ४ चार में चोर, ५ में विद्वान्, ६ में भोगी, ७ में धनाढ्य, ८ में दरिद्र और ० शून्य शेष में कुवेर मण्डल होता है ॥ १२९ ॥

गृह भूमि प्रमाण

अथ क्षेत्रप्रमाणशुद्धिः—
[2]ग्रन्थान्तरे—
चरणात्कर्णपर्यंतं दण्डं सरलवंशजम् ।
पूर्वतः पश्चिमं यावदुत्तरां दक्षिणां तथा ॥ १३० ॥
तयोश्च दंडयोर्योगं कृत्वा भूमौ विलिख्य तम् ।
अष्टभिश्च हरेद्भागं शेषांकेन शुभाशुभम् ॥ १३१ ॥
प्रथमं रजकस्थानं चन्द्रवत्फलमादिशेत् ।
द्वितीयं चर्मकारस्य क्षुत्पिपासाकुलो गृही ॥ १३२ ॥
तृतीये ब्राह्मणस्थानं जनोद्वासकरं महत् ।
चतुर्थे शूद्रकस्थानं धनधान्यप्रदायकम् ॥ १३३ ॥

---

१. वृ. वा. ५३ पृ. २८–२९ श्लो. ।
२. वृ. वा. ५३ पृ. ३०–३५ श्लो. ।

पंचमे योगिनः स्थानं महदौदास्यकारकम् ।
षष्ठे तु गोपकस्थानं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ १३४ ॥
सप्तमे क्षत्रियस्थानं सदा युद्धकरं नृणाम् ।
अष्टमे चक्रिणःस्थानं मरणं रोगकारकम् ॥ १३५ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि मकान मालिक के पैर से कान पर्यन्त एक सीधा बांस का टुकड़ा लेकर उससे पूर्व, पश्चिम और दक्षिण उत्तर नाप कर दोनों की दंड संख्या को जोड़कर उसमें आठ का भाग देने पर शेष वश शुभाशुभ समझना चाहिये। जैसे १ शेष में रजक (धोबी) का स्थान होता है। इसका फल चन्द्रमा की तरह धन की वृद्धि व क्षय, २ शेष में चमार का स्थान, इसमें निवास करने वाले भूख प्यास से व्याकुल, ३ शेष में ब्राह्मण स्थान, इसमें महान् उद्वेग, ४ शेष में शूद्र का स्थान, इसमें धन, धान्य की प्राप्ति, ५ शेष में योगी स्थान, इसमें उदासीनता, ६ शेष में गोपस्थान, इसमें सर्वसिद्धि, ७ शेष में क्षत्रिय स्थान, इसमें लड़ाई और शून्य शेष में क्रिया स्थान इसमें मरण या रोग होता है ॥ १३०–१३५ ॥

अंश ज्ञान

[1]मुहूर्तचिन्तामणौ—

भं नागतष्टं व्यय ईरितोसौ ध्रुवादि नामाक्षरयुक् सपिण्डः ।
तष्टो गुणैरिंद्रकृतांतभूषा ह्यंशा भवेयुर्न शुभोंतकोत्र ॥ १३६ ॥

श्रीरामदैवज्ञ ने बताया है कि मकान के नक्षत्र की संख्या में ८ आठ का भाग देने पर शेष संख्या तुल्य व्यय होता है। उसमें ध्रुवादि की नामाक्षर संख्या जोड़कर पिण्ड संख्या को भी युक्त करके तीन ३ से भाग देने पर १ एक शेष में इन्द्र, २ में यमराज और ० शून्य शेष में राजा का अंश होता है। इसमें यमराज का अंश शुभ नहीं होता है ॥ १३६ ॥

पिशाच, राक्षस गृह ज्ञान

टोडरानन्दे—

[2]नक्षत्रे चाष्टभिर्भक्तैर्योऽङ्कः स स्याद्गृहे व्ययः ।
पैशाचस्तु समायः स्याद्राक्षसोप्यधिके व्यये ॥ १३७ ॥

टोडरानन्द में बताया है कि नक्षत्र संख्या में आठ का भाग देने से व्यय होता है। जिसमें आय व व्यय की समानता होती है उसका नाम पिशाच और अधिक व्यय होने पर राक्षस नाम का घर होता है ॥ १३७ ॥

भिन्न रीति से अंश ज्ञान

आयान्यूनतरः पक्षो व्ययस्यैषा विचारणा ।
मूलराशौ व्यये क्षिप्ते ग्रहनामाक्षरेषु च ॥ १३८ ॥

---

१. १२ प्र. ७ श्लो. । २. बृ. वा. ५५ पृ. ८ श्लो. ।

ततो हरेत्त्रिभिर्भागं यच्छेषं सोंशको भवेत् ।
इंद्रो यमश्च राजा स्यादंशकाश्च त्रयस्त्विमे ॥ १३९ ॥

आय से कम व्यय होने पर शुभ होता है व पिण्ड में व्यय व नामाक्षर संख्या जोड़कर तीन का भाग देने से शेषवश जैसे १ शेष में इन्द्र, २ में यम और ० शून्य शेष में राजा का अंश होता है । इसमें यम का अंश अशुभ होता है ।। १३८–१३९ ।।

ध्रुवादि मकान ज्ञान

अथ ध्रुवादिज्ञानमाह—
[1]वेदघ्नपिंडे नृपभाजिते च शेषं भवेन्नाम ध्रुवादिकं गृहम् ।
क्षुण्णं नगैर्वेदहृतं च वर्णव्ययो भवेन्नागहृते च ऋक्षम् ।। १४० ।।

पिण्ड संख्या को चार से गुणा करके १६ सोलह का भाग देने पर एकादि शेष में ध्रुवादि मकान होता है । पिण्ड को ७ सात से गुणा करके ४ चार से भाग देने पर वर्ण व्यय और ७ सात का भाग देने पर ऋक्ष होता है ।। १४० ।।

इन्द्रादि स्वामी ज्ञान

पिंडे ध्रुवादिकं युक्तं सव्यतंत्रिभिभाजितम् ।
शेषमिंद्रयमीशाः स्युस्तृतीयं भूपसंज्ञितम् ।। १४१ ।।

पिण्ड में ध्रुवादि जोड़कर ३ तीन से भाग देने पर १ शेष में इन्द्र, २ में यम और ० शून्य शेष में राजा संज्ञक होता है ।। १४१ ।।

मित्रादि ज्ञान

अंशवत्सूरिभिर्योज्यं मित्रशत्रुसमादिकम् ।
गृहेशाधिपतिर्मित्रं यदि स्याद्ध्वजनायकः ।। १४२ ।।
तदा स्वपदमाप्नोति विपरीते पदच्युतिः ।
वारेशो यदि मित्रं स्यात्तदा सौभाग्यदो भवेत् ।। १४३ ।।
शौर्यशून्यतरस्थानं समेन स्वल्पलाभदः ।
स्वर्णेशयोर्यदा मित्रं तदा स्वर्णशवृद्धिदम् ।। १४४ ।।
हानिः स्यादन्यथा सर्वं समे वृद्धिः क्षये क्षतिः ।
ऋक्षेशो यदि मित्रं स्याच्छ्रियं मोदमदः सदा ।। १४५ ।।
एवं क्रमेण ज्ञातव्यं सव्यासव्यफलं क्रमात् ।
तिथ्याधिपतिर्मित्रं चेत्सदेवो रक्षकः सदा ।। १४६ ।।
बाधा स्याद्यदि शौर्यत्वं तत्कृताविविधापदः ।
योगक्रमेण यन्नाम तदीशे यदि मित्रता ।। १४७ ।।

---

१. र. मा. १७ प्र. ६ श्लो. ।

तदुद्भवं फलं श्रेष्ठं विपरीतं पदच्युतिः।
गृहायुष्यपतिर्मित्रं पूर्णशीर्षे न किंचन॥ १४८॥
इदमेव फलं स्थूलं संचितं विस्तृतेर्भयात्।

अंश की तरह विद्वानों को मित्रादि समझना चाहिये अर्थात् १ शेष में मित्र, २ में सम एवं ० शून्य शेष में शत्रु होता है। घर व मकान स्वामी में मित्रता हो तो ध्वज नायक होकर अपने स्थान को पाने वाला और विपरीतता में स्थान से भ्रष्ट होने वाला, वारेश के मित्र होने पर भाग्य वृद्धि, सम में वीरता का अभाव व शत्रुता में अल्पलाभ होता है। धन-ऋण के पतियों से मित्रता में उनकी वृद्धि होती है। अन्यथा हानि, सम में वृद्धि और क्षय में क्षति होती है। ऋक्ष स्वामी के मित्र होने पर लक्ष्मी एवं सदा प्रसन्नता देने वाला होता है। इस क्रम से सव्यासव्य फल जानना चाहिये।

तिथि स्वामी मित्र होनेपर वह सदा रक्षा करने वाला देवता होता है। जब कि वीरत्व आता है तो बाधा व उसके द्वारा अनेक आपत्ति होती है। योग क्रम से जो नाम व उसके स्वामी में मित्रता होने पर उससे उत्पन्न श्रेष्ठ फल और विपरीत होने से स्थान से भ्रष्ट, गृह, आयु पति में मित्रता होने पर पूर्ण शौर्यता में कुछ कमी होती है। यही स्थूल फल विस्तार के भय कारण संक्षेप में कहा है॥ १४२-१४८॥

मकान के आरम्भ में मासों का फल

अथ मासशुद्धिः—

[1]वास्तुराजवल्लभे—
चैत्रे शोककरं गृहादिरचितं स्यान्माधवेर्थ प्रदं
ज्येष्ठे मृत्युकरं शुचौ पशुहरं तद्वृद्धिदं श्रावणे।
शून्यं भाद्रपदे त्विषे कलिकरं भृत्यक्षयं कार्तिके
धान्यं मार्गसहस्ययोर्दहनभीर्माघे भिपः फाल्गुने॥ १४९॥

वास्तुराजवल्लभ में कहा है कि चैत मास में घर बनाने पर शोक, वैशाख में धन लाभ, जेठ में मृत्यु, आषाढ़ में पशुनाश, सावन में पशुवृद्धि, भादों में फल की शून्यता, क्वार में लड़ाई झगड़ा, कातिक में नौकर नाश, मार्ग व पूस में अन्नलाभ माघ में अग्निभय और फागुन में घर बनाने पर धन की प्राप्ति होती है॥ १४९॥

भिन्न फल

वास्तुप्रदीपे—
चैत्रे व्याधिमवाप्नोति यो गृहं कारयेन्नरः।
वैशाखे धनरत्नानि ज्येष्ठे मृत्युं तथैव च॥ १५०॥

१. १ अ. ७. श्लो.।

आषाढे भृत्यरत्नं वै पशुवर्जमवाप्नुयात् ।
श्रावणे मित्रलाभं तु हानिं भाद्रपदे तथा ॥ १५१ ॥
भार्याहानिर्मिषे मासि कार्त्तिके धनधान्यकम् ।
मार्गशीर्षे तथा वित्तं पौषे तस्करतो भयम् ॥ १५२ ॥
लाभं तु बहुशो विद्यादग्निर्माघे विनिर्दिशेत् ।
कांचनं फाल्गुने विद्यादिति मासफलं बुधैः ॥ १५३ ॥

वास्तुप्रदीप में कहा है कि जो व्यक्ति चैत के महिने में घर बनवाता है वह रोगी, वैशाख में धन, रत्न, जेठ में मृत्यु, आषाढ़ में नौकर, रत्न, पशुहीनता, सावन में मित्र प्राप्ति, भादों में हानि, क्वार में स्त्री हानि, कातिक में धन धान्य, अगहन में धन, पूस में चोर भय, माघ में अनेक प्रकार के लाभ व अग्नि भय और फागुन में मकान बनवाने पर सुवर्ण प्राप्ति होती है। ऐसा पण्डितों ने मास फल बताया है ॥ १५०–१५३ ॥

घर निर्माण में १२ मासों के फल

श्रीपतिरपि—

[1]शोको धान्यं मृतिपशुहृती द्रव्यवृद्धिर्विनाशो
युद्धं भृत्यक्षतिरथ फलं श्रीश्च वह्नेर्भयं च ।
लक्ष्मीप्राप्तिर्भवति भवनारंभकर्तुः क्रमेण
चैत्राद्वर्षे मुनिरिति फलं वास्तुशास्त्रोपदिष्टम् ॥ १५४ ॥

आचार्य श्रीपतिजी ने भी बताया है कि चैत में घर बनाने पर शोक, वैशाख में धान्य, जेठ में मरण, आषाढ़ में पशु चोरी, सावन में धन वृद्धि, भादों में विनाश, क्वार में युद्ध, कातिक में नौकरों का क्षय, अगहन व पूस में लक्ष्मी, माघ में अग्नि-भय और फागुन में मकान निर्माण से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। यह फल वास्तुशास्त्र के उपदेश कर्ताओं ने चैतादि मास क्रम से वर्णित किया है ॥ १५४ ॥

घर बनाने में अच्छे मास

[2]नारदोपि—

सौम्यफाल्गुनवैशाखमाघश्रावणकार्त्तिकाः ।
मासाः स्युर्गृहनिर्माणे पुत्रारोग्यफलप्रदाः ॥ १५५ ॥

ऋषि नारदजी ने बताया है कि अगहन, फागुन, वैशाख, माघ, श्रावण कार्तिक में मकान का निर्माण कराने से पुत्र व आरोग्यता होती है ॥ १५५ ॥

[3]वसिष्ठः—

मासे तपस्ये तपसि माधवे नभसि त्विषि ।
ऊर्जे च गृहनिर्माणं पुत्रपौत्रधनप्रदम् ॥ १५६ ॥

---

१. मु. चि. १२ प्र. १५ श्लो. पी. टी. । २. ज्यो. नि. १७४ पृ. ७ श्लो. ।
३. व सं. ३९ अ. ४१ श्लो, ।

ऋषि वसिष्ठजी ने बताया है कि माघ, फागुन, वैशाख, सावन, क्वार व कार्तिक में घर बनाने पर पुत्र, पौत्र, धन की प्राप्ति होती है ॥ १५६ ॥

अन्यः—

वैशाखे श्रावणे मार्गे माघे फाल्गुनके तथा ।
कन्यायुग्मधनुर्मीने भिन्ने सूर्ये गृहं शुभम् ॥ १५७ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि वैशाख, सावन, अगहन, माघ, फागुन मास में कन्या, मिथुन, धनु, मीन राशिस्थ सूर्य को छोड़ कर घर निर्माण शुभ होता है ॥ १५७ ॥

१२ संक्रान्ति में घर निर्माण फल

संक्रांतिवशेन मासाः—

नारदः—

[1]गृहसंस्थापनं सूर्ये मेषस्थे शुभदं भवेत् ।
वृषस्थे धनवृद्धिः स्यान्मिथुने मरणं ध्रुवम् ॥ १५८ ॥
कर्कटे शुभदं प्रोक्तं सिंहे भृत्यविवर्द्धनम् ।
कन्या रोगं तुला सौख्यं वृश्चिके धनवर्द्धनम् ॥ १५९ ॥
कार्मुके च महाहानिर्मकरे स्याद्धनागमः ।
कुंभे तु रत्नलाभः स्यान्मीने सद्म भयावहम् ॥ १६० ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि मेष राशिस्थ सूर्य में घर निर्माण करने पर शुभ फल लब्धि, वृष के सूर्य में धन की वृद्धि, मिथुन के सूर्य में निश्चय मरण, कर्क के सूर्य में शुभाप्ति, सिंह के सूर्य में नौकरों की वृद्धि, कन्या के सूर्य में रोग, तुला के सूर्य में सुख, वृश्चिक के सूर्य में धन की वृद्धि, धनु के सूर्य बड़ा नुकसान, मकर के सूर्य में धनागम, कुम्भ के सूर्य में धनलाभ और मीन के सूर्य में घर बनाने पर भयावह होता है ॥ १५८–१६० ॥

श्रीपतिरपि—

[2]मीनचापमिथुनांगनागते कारयेन्न गृहमेव भास्करे ॥ १६१ ॥

आचार्य श्रीपतिजी ने भी बताया है कि मीन, धनु, मिथुन व कन्या राशिस्थ सूर्य में घर नहीं बनवाना चाहिये ॥ १६१ ॥

स्थिति वश विशेष मास

वास्तुमंडने—

जीर्णोद्धारे जलाग्न्यादिभयतः पतनं गृहम् ।
श्रावणोर्जे तथा माघे कारयेत्सुखदं गृहम् ॥ १६२ ॥

---

१. मु. चि. १२ प्र. २५ श्लो. पी. टी. ।
२. मु. चि. १२ प्र. २५ श्लो. पी. टी. ।

वास्तुमण्डन में बताया है कि जीर्णोद्धार में जल या अग्नि से नष्ट होने पर उसका सावन, कार्तिक व माघ मास में निर्माण कराना सुखद होता है ॥ १६२ ॥

तडागादि में शुभ मास

देवालयं तडागं च वाटिकोद्धरणं गृहम् ।
गृहमासोदितं शस्तं माघेपि मुनिसंमितम् ॥ १६३ ॥

देवालय, तालाब, वाटिका में घर का निर्माण गृहारम्भ के मास व माघ मास में भी कराना मुनि संमत शुभ होता है ॥ १६३ ॥

मास दोष का अभाव

तृणदारुगृहारंभे मासदोषो न विद्यते ।
पाषाणेष्टयादि गेहानि निद्यमासे न कारयेत् ॥ १६४ ॥

तिनका व लकड़ी से घर बनाने में मास दोष नहीं होता और पत्थर एवं ईंट से मकान दूषित मासों में नहीं बनाना चाहिये ॥ १६४ ॥

पशु आदि घर निर्माण मास

वास्तुशास्त्रे—

शस्तं पशुगृहं ज्येष्ठे आश्विने धान्यनोडकम् ।
पानीया शालिकागेहं चैत्रे धारा तथा गृहम् ॥ १६५ ॥

पशुओं का मकान बनाना जेठ में शुभ, आश्विन में अन्न घर और पानी की कोठरी या प्याऊ या धारा (फुहारा) का निर्माण चैत में कराना शुभ होता है ॥ १६५ ॥

पक्षशुद्धि ज्ञान

[1]व्यवहारोच्चये—

शुक्लपक्षे भवेत्सौख्यं कृष्णे तस्करतो भयम् ॥ १६६ ॥

व्यवहारोच्चय में कहा है कि शुक्ल पक्ष में घर बनाने पर सुख और कृष्ण पक्ष में निर्माण कराने पर चोरों का डर होता है ॥ १६६ ॥

[2]वसिष्ठः—

गीर्वाणपूर्वगीर्वाणमंत्रिणोर्हश्यमानयोः ।
शुक्लपक्षे दिवा कार्यं न निर्माणं च रात्रिषु ॥ १६७ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि गुरु, शुक्र के दृष्ट रहने पर शुक्ल पक्ष, दिन में घर का आरम्भ करना एवं रात में नहीं बनाना चाहिये ॥ १६७ ॥

---

१. मु. चि. १२ प्र. २७ श्लो. पी. टी. ।
२. व सं. ३९ अ. ४२ श्लो. ।

घर बनाने में अशुभ तिथि

तिथिमाह—

[1]दारिद्र्यं प्रतिपत्कुर्याच्चतुर्थी धनहारिणी ।
अष्टम्युच्चाटनं चैव नवमी शस्त्रघातिनी ॥ १६८ ॥
अमायां राजभीतिश्च चतुर्दश्यां स्त्रियः क्षयः ॥ १६९ ॥

प्रतिपदा में घर बनाने पर निर्धनता, चौथ में धन का हरण, अष्टमी में उच्चाटन, नवमी में शस्त्र से चोट, अमावस्या में राजभय और चौदस में घर बनाने पर स्त्री का क्षय होता है ॥ १६८–१६९ ॥

भृगुरपि—

रिक्ताष्टमी दर्शरवींदुभौमा विवर्जनीया विदुषा प्रयत्नतः ॥१७०॥

ऋषि भृगुजी ने भी बताया है कि रिक्ता, अष्टमी, अमा तिथि और सूर्य, चन्द्र, मंगलवार त्याग करके घर निर्माण शुभ होता है ॥ १७० ॥

घर बनाने में शुभ नक्षत्र

अथ नक्षत्राणि—

वास्तुप्रदीपे—

[2]चित्रानुराधामृगरेवतीषु स्वातौ च तिष्ये च तथोत्तरासु ।
ब्राह्मे धनिष्ठाशततारकासु गेहादिकारंभणमामनंति ॥ १७१ ॥

[3]ऋक्षोच्चये—

चित्रा शतभिषा स्वाती हस्तः पुष्यपुनर्वसू ।
रोहिणी रेवती मूला श्रवणोत्तरफाल्गुनी ॥ २७२ ॥
धनिष्ठा चोत्तराषाढा तथा भाद्रोत्तरान्विता ।
अश्विनी मृगशीर्षे च अनुराधा तथैव च ॥ १७३ ॥
वास्तुपूजनमेतेषु नक्षत्रेषु करोति यः ।
समाप्नोति नरो लक्ष्मीमिति प्राह पराशरः ॥ १७४ ॥

वास्तुप्रदीप में कहा है कि चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, स्वाती, पुष्य, तीनों उत्तरा, रोहिणी, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्र में गृहारम्भ शुभ होता है ॥ १७१ ॥

ऋक्षोच्चय में पराशर ऋषि ने कहा है कि चित्रा, शतभिषा, स्वाती, हस्त, पुष्य, पुनर्वसु, रोहिणी, रेवती, मूल, श्रवण, उत्तरा फाल्गुनी, धनिष्ठा, उत्तराषाढ, उत्तराभाद्रपद, अश्विनी, मृगशिरा और अनुराधा नक्षत्र में जो वास्तुपूजन करता है वह लक्ष्मी प्राप्त करने वाला होता है ॥ १७२–१७४ ॥

---

१. मु. चि. १२ प्र. १७ श्लो. पी. टी. ।

२. वृ. वा. ६२ पृ. ६५ श्लो. ।

३. वृ. वा. ६२ पृ. ६६–६८ श्लो. ।

गर्गः—

[1]त्र्युत्तरेऽपि च रोहिण्यां पुष्ये मैत्रे करद्वये।
धनिष्ठाद्वितये पौष्णे गृहारंभः प्रशस्यते॥ १७५॥

गर्गाचार्यजी ने कहा है कि तीनों उत्तरा, रोहिणी, पुष्य, अनुराधा, हस्त, चित्रा, धनिष्ठा, शतभिषा और रेवती नक्षत्र में घर बनाना शुभ होता है॥ १७५॥

गृहारम्भ व सूतिका घर निर्माण मुहूर्त

[2]वाराहीये—

हस्तादित्यशशांकपुष्यपवनप्राजेशमित्रोत्तरा
चित्राश्विश्रवणेषु वृश्चिकघटौ त्यक्त्वा विरिक्ते तिथौ।
शुक्राचार्यशनैश्चरज्ञशशिनो वारेनुकूले विधौ
सद्भिर्वेश्मनि सूतिकागृहविधिः क्षेमंकरः कीर्तितः॥१७६॥

वाराही संहिता में कहा है कि हस्त, पुनर्वसु, मृगशिरा, पुष्य, स्वाती, रोहिणी, अनुराधा, तीनों उत्तरा, चित्रा, अश्विनी व श्रवण नक्षत्र, वृश्चिक, कुम्भ लग्न में रिक्ता तिथियों को छोड़कर, शुक्र, गुरु, शनि, बुध, चन्द्रवार में चन्द्रमा के अनुकूल होने पर मकान या सूतिका के घर का निर्माण कराने पर घर शुभ करने वाला होता है॥ १७६॥

गृहारम्भ का भिन्न मुहूर्त

[3]वास्तोः कर्मणि धिष्णवारतिथयोऽश्विन्युत्तरा रेवती
हस्तादित्रयमैत्रतोयवसुभे पुष्यो मृगो रोहिणी।
निंद्यौ भूसुतभास्करौ च शुभदा पूर्णा च नन्दा-
तिथिर्नेष्टा वैधृतिगंडशूलपरिघव्याघातवज्रादपि॥ १७७॥

[4]विष्कंभव्यतिपातकौ च न शुभौ योगाः परे शोभनाः
शस्तं नागववाख्यतैतिलगरं युग्मां तिथिं वर्जयेत्।
मौहूर्तं त्वथ विश्वमष्टनवमं पंचत्रिरागाद्रिकं
श्रेष्ठं च द्वितियं तुला वृषघटौ युग्मं धनुः कन्यके॥ १७८॥

[5]द्व्यंगे वा स्थिरभे च सौम्यसहिते लग्ने शुभैर्वीक्षिते
सौम्यैर्वीर्यसमन्वितैश्च दशमे निर्माणमाहुर्बुधाः॥ १७९॥

---

१. ज्यो. सा. १६२ पृ.।
२. वृ. वा. २२ पृ. ६९ श्लो.।
३. वा० व० ११ अ० १५ श्लो०।
४. वा० व० ११ अ० १६ श्लो०।
५. वा० व० ११ अ० १६ श्लो०।

वास्तुराजवल्लभ में कहा है कि गृहारम्भ में अश्विनी, ३ तीनों उत्तरा, रेवती, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, शतभिषा, धनिष्ठा, पुष्य, मृगशिरा, रोहिणी नक्षत्र में, मंगल. सूर्यवार को छोड़ कर अन्यवारों में, पूर्णा, नन्दा तिथि में, वैधृति, गण्ड, शूल, परिघ, व्याघात, वज्र, विष्कम्भ, व्यतिपात योग का त्याग करके अन्य योगों में, नाग, बव, तैतिल, गर करण में, युग्म (१।२।४।६।८।१०।१२।१४।३०) तिथियों को छोड़कर (१३।८।६।५।३।६।७) व दूसरे मुहूर्त में तुला, वृष, कुम्भ, मिथुन, धनु लग्न में या द्विस्वभाव या स्थिर लग्न में शुभग्रह की सत्ता में या शुभग्रह से दृष्ट लग्न में और बलशाली दशम में शुभग्रह होने पर मकान का निर्माण शुभ होता है ॥ १७७-१७९ ॥

त्याज्य योग

[1]मत्स्यपुराणे—

वज्रव्याघातशूलेषु व्यतीपातातिगंडयोः ।
विष्कंभगंडपरिघे चाष्टयोगे न कारयेत् ॥ १८० ॥

मत्स्यपुराण में कहा है कि १ वज्र, २ व्याघात, ३ शूल, ४ व्यतीपात, ५ अतिगण्ड, ६ विष्कम्भ, ७ गण्ड और ८ परिघ इन ८ आठ योगों का त्याग मकान बनाने में करना चाहिये ॥ १८० ॥

घर बनाने में शुभ मुहूर्त

श्वेते मैत्रेथ माहेंद्रे गांधर्वभगरोहिणी ।
तथा वैरोचसावित्रिमुहूर्ते गृहमारभेत् ॥ १८१ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि श्वेत, मैत्र, माहेन्द्र, गान्धर्व, भग, रोहिणी, वैरोचन, और सावित्र मुहूर्त में घर का आरम्भ करना चाहिये ॥ १८१ ॥

विशेष—बृहद्वास्तुमाला में 'स्वाती मैत्रेऽथ माहेन्द्रे गान्धर्वे भगरोहिणे। स्तम्भोच्छ्रायादि कर्तव्यमन्यत्र परिवर्जयेत्' यह पाठ मिलता है। इसका अर्थ स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, पूर्वाफाल्गुनी एवं रोहिणी नक्षत्र में खम्भों की ऊँचाई का काम करना चाहिये। और अन्य कार्य नहीं करना चाहिये ॥ १८१ ॥

गृहारम्भ में लग्न शुद्धि

[2]श्रीपतिः—

द्व्यंगे स्थिरे वा भवने विलग्ने सौम्यग्रहैर्युक्तनिरीक्षिते च ।
कर्मस्थितैर्वीर्ययुतैश्च सौम्यैर्निर्माणमाहुर्भवनस्य संतः ॥ १८२ ॥

१. बृ० वा० ६३-६४ पृ० ।
२. मु० चि० १२ प्र० १८ श्लो० पी० टी० ।

आचार्य श्रीपति जी ने बताया है कि द्विस्वभाव या स्थिर लग्न में लग्नस्थ शुभ ग्रह होने पर या शुभ दृष्ट लग्न में, दशमस्थ बली शुभ ग्रह की सत्ता में घर बनाना पंडितों की सम्मति में होता है ॥ १८२ ॥

[1]पापैस्त्रिषष्ठायगतैस्त्रिकोणकेंद्राश्रितैः साधुभिरालयस्य ।
वदति निर्माणमिहाऽष्टमस्थः क्रूरस्तु कर्तुर्मरणं करोति ॥ १८३ ॥

अथवा ३।६।११ में पापग्रह और १।४।७।१०।५।६ में शुभ ग्रह होने पर मकान का निर्माण शुभ होता है। तथा लग्न से आठवें में पापग्रह होने पर घर के निर्माणकर्ता का मरण होता है ॥ १८३ ॥

मकान निर्माण का मुहूर्त

[2]रामः—

भौमार्करिक्तामाद्यूने चरोनांगे विपंचके ।
व्यष्टांत्यस्थैः शुभैर्गेहारंभस्त्र्यायारिगैः खलैः ॥ १८४ ॥

श्रीरामदैवज्ञ ने बताया है कि मंगल, रविवार, रिक्ता, अमावास्या तिथि, चर लग्न, काण पंचक को छोड़कर, आठवें, बारहवें स्थान से भिन्न भावों में शुभग्रह और ३।६।११ में पापग्रह होने पर घर का आरम्भ शुभ होता है ॥ १८४ ॥

वास्तुप्रदीपे—

नष्टेंदुरिक्ताकुजसूर्यवर्ज्ये चरो न भे सिंहविहीनलग्ने ।
पापैस्त्रिषष्ठायगतैः शुभैश्च व्यष्टांत्यगैर्गेहविधिः शुभः स्यात् ॥१८५॥

वास्तु प्रदीप में कहा है कि नष्ट चन्द्र, रिक्ता तिथि, मंगलवार, सोमवार, चर लग्न व सिंह राशि लग्न का त्याग करके ३।६।११ में पापग्रह के रहने पर तथा ८।१२ में शुभ ग्रह न होने पर गृहारम्भ शुभ होता है ॥ १८५ ॥

घर बनाने का विशेष शुभ मुहूर्त

गृहारंभस्य प्राशस्त्यमुक्तं वास्तुप्रदीपे —
शनौ स्वाती सिंहलग्ने शुक्लपक्षश्च सप्तमी ।
शुभयोगः श्रावणश्च सकाराः सप्त कीर्तिताः ॥ १८६ ॥
सप्तानां यो गतो वास्तुः पुत्रवित्तप्रदः सदा ।
गजश्च धनधान्यानि पुरे तिष्ठंति सर्वतः ॥ १८७ ॥

वास्तु प्रदीप में कहा है कि १ शनिवार, २ स्वाती नक्षत्र, ३ सिंह लग्न, ४ शुक्ल पक्ष, ५ सप्तमी, ६ शुभयोग और, सावन मास ये सात सकार होते हैं। इन सात सकारों

---

१. मु० चि० १२ प्र० १८ श्लो० पी० टी० ।
२. मु० चि० १२ प्र० १८ श्लो० । ८ वृ० वा० ७३ पृ० ।

में जो घर बनवाता है तो पुत्र, धन सदा मिलते हैं तथा हाथी, धन धान्य भी हमेशा वर्तमान रहता है ॥ १८६–१८७ ॥

भूमि शयन लक्षण

अथ भूमिसुप्तिलक्षणम्—

ग्रन्थान्तरे—

प्रद्योतनात्पंचनगांकसूर्यनवेंदुषड्विंशमितानि भानि।
शेते मही नैव गृहं विधेयं तडागवापीखननं न शस्तम् ॥ १८८ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि सूर्य के नक्षत्र से पाँचवें, सातवें, नवें, बारहवें, उन्नीसवें और छब्बीसवें नक्षत्र में भूमि शयन करती है। इसमें तालाब व वापी का खनन एवं गृहारम्भ नहीं करना चाहिये ॥ १८८ ॥

तिथियों में शयन

वास्तुभूषणे—

स्यान्नाडी शयने शशीमित १ तिथौ तुर्ये ४ तथार्के १२ मिता।
ऋक्षे २७ भूपतिभि १६ र्नगैः ७ परिमिते शेषे भवेज्जाग्रतिः ॥१८९॥

वास्तुभूषण में बताया है कि १।४।१२।२७।१६, और सातवीं तिथि में भूमि शयन करती है तथा शेषों में जागती रहती है ॥ १८९ ॥

मास वश शयन

[1]नारदीये—

नभस्यादिषु मासेषु त्रिषु त्रिषु यथा क्रमम्।
पूर्वादिदिग्शिरो वास्तु कुर्यात्तद्दिङ्मुखं गृहम् ॥ १९० ॥

नारदीय में कहा है कि भाद्रपदादि तीन-तीन मासों में पूर्वादि दिशा में शिरावश वाम रीति से भूमि शयन होता है ॥ १९० ॥

वास्तु चक्र ज्ञान

[2]वास्तुसारे-वृषवास्तुचक्रम्—

सूर्यभाद्गणयेद्वास्तु चक्रं च दिनभावधिम्।
अश्व ७ रुद्र ११ दशर्क्षं च १० अशुभं शुभदं क्रमात् ॥ १९१ ॥

वास्तुसार में बताया है कि सूर्य के नक्षत्र से गृहारम्भ नक्षत्र तक गिनने पर सात तक होने पर अशुभ पुनः ११ तक में शुभ फिर दस तक नक्षत्र होने पर अशुभ होता है ॥ १९१ ॥

---

१. ज्यो० नि० १७२ पृ० १ श्लो०।
२. बृ० वा० ७३ पृ० ११६–१२२ श्लो०।

स्पष्टार्थ चक्र

सू० न० से	७	११	१०	नक्षत्र
चं० न० का	अशुभ	शुभ	अशुभ	फल

वैल आकृति वास्तु चक्र

राजमार्तंडे –

वृषचक्रं वृषाकारं सर्वावयवसंयुतम् ।
यस्मिन्नृक्षे स्थितो भानुस्तत्रादौ त्रीणि मस्तके ॥ १९२ ॥
अग्रपादे च चत्वारः पुनश्चत्वारि पश्चिमे ।
पृष्ठे त्रीणि च धिष्ण्यानि कुक्षौ चत्वारि दक्षिणे ॥ १९३ ॥
पुच्छे त्रीणि च धिष्ण्यानि कुक्षौ चत्वारि वामके ।
मुखे त्रीणि च धिष्ण्यानि अष्टाविंशतितारकाः ॥ १९४ ॥

राजमार्तण्ड में बताया है कि समस्त अवयवों से युक्त वैल की सी आकृति एक चक्र बनाकर जिस नक्षत्र में सूर्य हो उससे ३ तीन नक्षत्र प्रथम मस्तक पर, पुनः ४ चार नक्षत्र पीछे के पैरों में, इसके बाद ३ तीन पीठ में, फिर ४ चार नक्षत्र दाहिने ओर उदर में, पुनः ३ तीन पूँछ में फिर ४ चार वायें तरफ पेट में और इसके पश्चात् ३ तीन नक्षत्र मुख में स्थापित करने चाहिये ॥ १९२–१९४ ॥

वास्तु चक्र का फल

शिरसो वज्रपातः स्यादुद्वेगश्चाग्रपादयोः ।
स्थिरत्वं पश्चिमे पादे पृष्ठे चैव धनागमः ॥ १९५ ॥
दक्षकुक्षौ जयो लाभः पुच्छे स्वामिविनाशनम् ।
वामकुक्षौ च दारिद्र्यं मुखे पीडा निरंतरम् ॥ १९६ ॥

मस्तक पर आरम्भ नक्षत्र होने पर वज्रपात, आगे के पैरों में उद्वेग, पीछे के पैरों में स्थिरता, पीठ में धनागम, दक्षिण कुक्षि में जय, लाभ, पूंछ में मकान मालिक का विनाश, वायीं कुक्षि में दरिद्रता और मुख में मकान बनाने का नक्षत्र होने पर पीड़ा होती है ॥ १९५–१९६ ॥

स्पष्टार्थ चक्र

स्थान	मस्तक	अग्रपाद	पृष्ठपाद	पीठ	दक्षकुक्षि	वामकुक्षि	पुच्छ	मुख
नक्षत्र	३	४	४	३	४	४	३	३
फल	वज्रपात	उद्वेग	स्थिरता	धनागम	जय लाभ	निर्धनता	स्वामी नाश	पीड़ा

गृहारम्भ के शुभाशुभ नक्षत्र

सूर्यभात्तु त्यजेत्सप्त ततश्चैकादशे धनम् ।
ततोन्यभेषु दुष्टं स्यादिति वास्तुनि कीर्तितम् ॥ १९७ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि सूर्य के नक्षत्र से सात नक्षत्र तक मकान का नक्षत्र होने पर त्याग फिर ग्यारह तक में धन और अवशिष्टों में दूषित फल होता है ।।१९७।।

निर्णय

अथ वास्तुपुरुषस्य कुत्र स्थले स्थितिरिति निर्णयमाह—
सवेदास्तिथयो द्विधा नामाक्षरसमन्वितम् ।
त्रिभिश्चैव हरेद्भागं शेषं पुरुष उच्यते ।। १९८ ।।
एके च वसते स्वर्गे द्वाभ्यां पातालमेव च ।
शून्ये तु मृत्युलोके स्यादिति पाराशरोऽब्रवीत् ।। १९९ ।।

तिथि संख्या में चार जोड़कर २ दो से गुणा करके वास्तु पुरुष की स्थिति किस स्थान में है इसका नामाक्षर संख्या मिलाकर ३ तीन का भाग देने पर १ एक शेष में वास्तु पुरुष की स्थिति स्वर्ग लोक में २ में पाताल में और शून्य शेष में वास्तु पुरुष का निवास मर्त्य लोक में होता है ऐसा पाराशर ऋषि ने कहा है ।। १९८-१९९ ।।

स्थिति वश फल

स्वर्गे वासं भवेल्लाभं पातालेषु श्रियः सदा ।
मृत्युलोके भवेन्मृत्युरिति चिन्त्य गृहारभेत् ।। २०० ।।

वास्तु पुरुष का स्वर्गलोक में निवास होने पर लाभ, पाताल में लक्ष्मी का स्वामी अर्थात् वड़ा धन पति और मृत्युलोक में निवास होने पर मृत्यु होती है । इसलिये इसका विचार करके घर बनाना चाहिये ।। २०० ।।

शुभखात

[1]शिल्पशास्त्रे—
वास्तोः शिरसि पुच्छे च याम्यकुक्षौ च पृष्ठतः ।
आयुः कामं खनेन्नैव वामकुक्षौ खनिः शुभः ।। २०१ ।।

शिल्पशास्त्र में कहा है कि वास्तु पुरुष की पूंछ, दाहिनी कूंख, और पीठ में आयु की कामना वाले को गढ्ढा नहीं खोदना चाहिये तथा वाँयीं कूंख में खात करना चाहिये ।। २०१ ।।

[2]लल्लः—
त्यजेद्दशशिरो भागे बाह्ये सप्त दशांशकान् ।
मध्ये नाभि विजानीयात्तत्र शंकुं प्रतिष्ठयेत् ।। २०२ ।।

आचार्य लल्ल ने कहा है कि वास्तुपुरुष के अंग में २८ भाग करके १० भाग मस्तक की ओर व १७ सत्रह भाग पुच्छ की तरफ छोड़कर मध्य में नाभि जानकर शंकु की स्थापना करनी चाहिये ।। २०२ ।।

विशेष—वृहद् वास्तुमाला में 'ह्यग्रे' 'निवेशयेत्' यह पाठ है ।। २०२ ।।

१. वृ० वा० ७४ पृ० १२३-१२५ श्लो० । २. ज्यो० नि० २६७ पृ० ६ श्लो० ।

कूर्म चक्र ज्ञान

कूर्मचक्रम्—

[1]ज्योतिःसारे—

तिथिस्तु पञ्चगुणिता कृत्तिकाद्यृक्षसंयुता ।
तथा द्वादशमिश्रा च नव भागेन भाजिता ॥ २०३ ॥
जलेवेदमुनिश्चन्द्रस्थले पञ्चद्वयं वसुः ।
त्रिषट्कनव चाकाशे त्रिविधं कूर्मलक्षणम् ॥ २०४ ॥

ज्योतिःसागर में कहा है कि तिथि संख्या को ५ पाँच से गुणा करके कृत्तिकादि नक्षत्र संख्या व १२ बारह जोड़कर नव का भाग देने पर ४।७।१ शेष में जल में, ५।२।८ शेष में स्थल में और ३।६।० शेष में आकाश में कूर्म का वास होता है । ये तीन लक्षणों से कूर्म होता है ॥ २०३–२०४ ॥

स्थितिवश फल

जले लाभस्तथा प्रोक्तः स्थले हानिस्तथैव च ।
आकाशे मरणं प्रोक्तमिदं कूर्मस्य चक्रकम् ॥ २०५ ॥

कूर्म का जल में निवास होने पर लाभ, स्थल में हानि और आकाश में कूर्म निवास होने पर मृत्यु होती है ॥ २०५ ॥

ब्राह्मणादि को शंकु अंगुल मान

[2]स्याच्चतुर्विंशविंशाष्टद्वादशांगुलकैः क्रमात् ।
विप्रादीनां शंकुमानं स्वर्णवस्त्राद्यलंकृतम् ॥ २०६ ॥
खदिरार्जुनशालोत्थं पूगपत्रतरूद्भवम् ।
रक्तचन्दनपालाशरक्तशालविशालजम् ॥ २०७ ॥
निंबकारंजकुटजं वैणवं विल्ववृक्षजम् ।
शंकुं त्रिधा विभज्याद्यं चतुरस्रं ततः परम् ॥ २०८ ॥
अष्टास्रं च तृतीयांशमनस्रमृजुमव्रणम् ।
एवं लक्षणसंयुक्तं परिकल्प्यं शुभे दिने ॥ २०९ ॥

विप्रादि वर्णों के लिये क्रम से २४।२०।१६। और १२ बारह अंगुल का अर्थात् ब्राह्मण को २४ अंगुल का, क्षत्रिय को २० अंगुल का, वैश्य को १६ अंगुल का और शूद्र को १२ बारह अंगुल बनाकर उसे सुवर्ण वस्त्रादि से भूषित करना चाहिये तथा शंकु भी खैर, अर्जुन, साल, नीम, करंज (कंजा) कोरैया और बेल के वृक्ष का बनाना

---

१. ज्यो० सा० १६४ पृ० ४०४२ श्लो० ।

२. ज्यो० नि० १६७ पृ० ९ श्लो० में ९–१२ श्लो० ।

चतुर्विंशत्त्रयोविंशत्षोडशद्वादशाङ्गुलैः पाठ है ।

चाहिये। शंकु के तीन भाग करके चार कोण या आठ कोण या गोल या तृतीयांश इन लक्षणों से युक्त शुभ दिन में ठोस, सीधा, घावों से रहित निर्माण कराना चाहिये॥ २०६–२०९॥

भूमि शोधनार्थ गर्त के लिये सफल राहु विचार

अथ देवालयादौ राहुमुखन्यासः—

[१]मुहूर्तचिन्तामणौ—

देवालये गेहविधौ जलाशये राहोर्मुखं शम्भुदिशोर्विलोमतः।
मीनार्कसिंहार्कमृगार्कतस्त्रिभे खाते मुखात्पृष्ठविदिक् शुभा भवेत्॥२१०॥

मुहूर्त चिन्तामणि में बताया है कि देवमन्दिर, मनुष्य का मकान और जलाशय (वापीतालाब आदि) के निर्माण के लिये क्रम से मीन, सिंह, मकर से तीन तीन राशि के सूर्य में ईशान कोण में राहु का मुख होता है तथा इसके विपरीत में पुच्छ होता है। पुच्छ की दिशा में भूमिशोधनार्थ पहिला गड्ढा शुभ होता है। अर्थात् देवालय में मीन-मेष-वृष के सूर्य में राहु का मुख ईशान में, मिथुन, कर्क, सिंह राशि के सूर्य में वायव्य, कन्या, तुला, वृश्चिक के सूर्य में नैर्ऋत्य कोण में और धनु-मकर-कुंभ के सूर्य में अग्निकोण में राहु का मुख होता है।

मकान बनाने में सिंह, कन्या-तुला राशिस्थ सूर्य में ईशान कोण में, वृश्चिक-धनु-मकर के सूर्य में वायव्य में, कुम्भ-मीन-मेष के सूर्य में नैर्ऋत्यकोण में और वृष-मिथुन-कर्क के सूर्य में राहु का मुख अग्निकोण में होता है।

जलाशय निर्माण में मकर-कुंभ-मीन राशिस्थ सूर्य में ईशान में, मेष-वृष-मिथुन के सूर्य में वायव्य में, कर्क-सिंह-कन्या के सूर्य में नैऋत्य में और तुला-वृश्चिक-धनु राशि के सूर्य में अग्निकोण में राहु का मुख होता है। मुख से पीठ शुभ होती है॥ २१०॥

स्पष्टार्थ चक्र

	ईशान	वायव्य	नैर्ऋत्य	अग्नि
देवालय आरम्भ	मी० मे० वृ० सू०	मि० क० सिं० सू०	क० तु० वृ० सू०	ध० म० कु० सू०
गृहारम्भ	सिं० क० तु० सू०	वृ० ध० म० सू०	कुं० मी० मे० सू०	वृ० मि० क० सू०
जलाशयारम्भ	म० कु० मी० सू०	मे० वृ० मि० सू०	क० सिं० क० सू०	तु० वृ० ध० सू०

गर्गः—

[२]वृषभादित्रये वेद्यां सिंहादि गणयेद्गृहे।
देवालये च मीनादि तडागे मकरादिकम्॥ २११॥

१. १२ प्र० १९ श्लो०। २. मु० चि० १२ प्र० १९ श्लो० पी० टी०।

श्रीगर्गाचार्य जी ने बताया है कि वेदी निर्माण में वृषस्थ सूर्य से ३ तीन राशि, मकान में सिंहार्क से ३ तीन राशि, देवालयारम्भ में मीनार्क से ३ तीन राशि में और तालाब में मकरस्थ सूर्य से तीन तीन राशियों में राहु का मुख होता है ॥ २११ ॥

अन्यस्तु—

[1]कन्यासिंहेतुलायां भुजगपतिमुखं शंभुकोणेग्निखातं
वायव्यं स्यात्तदास्यं अलिधनुमकरे ईशखातं वदंति ।
कुंभे मीने च मेषे निर्ऋति दिशिमुखं खातवायव्यकोणे
चाग्नेःकोणे मुखं वै वृष मिथुनगते कर्कटे रक्षखातम् ॥ २१२ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि सिंह, कन्या, तुला राशि के सूर्य में ईशानकोण में राहु का मुख होने से अग्निकोण में खात (गर्त), वृश्चिक, धनु, मकरस्थ सूर्य में वायव्य कोण में मुख होने से ईशान में, कुम्भ, मीन, मेष राशिस्थ सूर्य में नैऋत्य दिशा में मुख होने से वायव्य कोण में खात और वृष, मिथुन, कर्क राशिस्थ सूर्य में अग्निकोण में राहु का मुख होता है इसलिये नैर्ऋत्यकोण में प्रथम भूमिशोधनार्थ खात (गड्ढा) कराना शुभ होता है ॥ २१२ ॥

अन्यः—

सिंहत्रयेर्के चाग्नेय्यां ईशाने वृश्चिकत्रयम् ।
कुम्भत्रये तु वायव्यां नैर्ऋत्यां वृषभत्रये । २१३ ॥

अन्य ग्रन्थ में भी कहा है कि सिंह, कन्या, तुला के सूर्य में राहु का मुख अग्निकोण में, वृश्चिक, धनु, मकर राशिस्थ सूर्य में ईशानकोण में, कुंभ, मीन, मेष राशिस्थ सूर्य में वायव्यकोण में और वृष, मिथुन, कर्क राशि के सूर्य में राहु का मुख नैर्ऋत्य कोण में होता है ॥ २१३ ॥

अथ दिक्शोधनम् —

अब आगे दिशा साधन को बताते हैं।

दिशा साधन का प्रयोजन

बृहन्नारदीये

[2]प्रासादे सदनेऽलिन्दे द्वारे कुण्डे विशेषतः ।
दिङ्मूढे कुलनाशः स्यात्तस्मात्संशोधयेद्दिशम् ॥ २१४ ॥

बृहन्नारदीय में कहा है कि प्रासाद, मकान, अलिन्द, दरवाजा और विशेष कर कुण्ड निर्माण में दिशा का साधन करना चाहिये, क्योंकि दिशा की मूर्खता में कुल का नाश होता है ॥ २१४ ॥

---

१. ज्यो० सा० २० पृ० ।
२. ज्यो० नि० १६६ पृ० २ श्लो० ।

दिशा का साधन

[1]सिद्धांतशिरोमणौ—

वृत्तेम्भः सुसमीकृतक्षितिगते केंद्रस्थशंकोः क्रमाद्
भागं यत्र विशत्यपैति च यतस्तत्रापरेघ्नौ दिशौ।
तत्कालोपमजीवयोस्तु विवराद्भाकर्णमित्याहृता-
ल्लम्बज्यात्ममितांगुलैरयनदिश्यैंद्रीस्फुटौ चालिता: ॥ २१५ ॥
तन्मत्स्यादय याम्यसौम्यककुभौ सौम्याध्रुवे वा भवे-
देकस्मादपि भाग्नतो भुजमितां कोटीमितां शंकुतः।
न्यस्येद्यष्टिमृजुं तथा ? षष्ठ्यग्रयोः संयुतिः
कोटिः प्राच्यपरा भवोदिति कृते वाहुश्च याम्योत्तरे ॥ २१६ ॥

सिद्धान्त शिरोमणि में बताया है कि जल से समतल (बराबर) भूमि पर वृत्त का निर्माण करके उसके केन्द्र में बारह अंगुल का शंकु स्थापित करके पूर्वाह्न में वृत्त के भीतर जिस स्थान पर छाया प्रवेश करे अर्थात् शंकु की छाया स्पर्श हो वह पश्चिम दिशा और अपराह्न में जिस परिधि के हिस्से को स्पर्श करे वही पूर्व दिशा होगी। इस रीति से पश्चिम विन्दु का ज्ञान तो शुद्ध है किन्तु क्रान्ति गतिवश पूर्व विन्दु का ज्ञान स्थूल हुआ। इसलिये सूक्ष्मार्थ प्रवेश, निर्गम कालीन क्रान्तिज्याओं का अन्तर करके छायाकर्ण से गुणा करके लम्वज्या का भाग देने से जो लब्धि प्राप्त हो तत्तुल्य अंगुलादि को अयन की दिशा में पूर्व विन्दु को चलाकर वास्तव पूर्व बिन्दु जानना चाहिये। पुनः पूर्व-पश्चिम बिन्दु से मत्स्य उत्पादन अर्थात् पूर्वा पर विन्दु से मिलाई हुई रेखा के आधे पर रेखागणित की युक्ति से लम्व करने से वास्तव दक्षिणोत्तर रेखा होती है।

अथवा उत्तर ध्रुव को वेध कर (देखकर) उत्तर दिशा जाननी चाहिये। या वृत्त-मध्यस्थ शंकु का एक समय का ही छायाग्र जानकर उसी का इष्टकाल का भुज और कोटि समझकर भुज एवं कोटि के तुल्य शलाका लेकर शंकु से यथादिक् कोटि और छायाग्र से व्यस्तदिक् भुज शलाका इस प्रकार विन्यास करना जैसे षष्ठ्यग्र (शलाकाओं) का योग हो जाय ऐसा करने से कोटि पूर्वापर और भुज दक्षिणोत्तर होता है ॥२१५–२१६॥

छाया साधन का ग्रहलाघव में सुगम उपाय

सुगमोपायस्तु ग्रहलाघवे—

[2]वृत्ते समभूगतेतुकेंद्रस्थितशंकोः क्रमशो विशत्यपैति।
छायाग्रमिहापरां च पूर्वां ताभ्यां सिद्ध्यति मेरुदिक् च याम्या ॥२१७॥

ग्रहलाघव में बताया है कि समतल भूमि में वृत्त बनाकर उसके केन्द्र में बारह अंगुल का शंकु स्थापित करके उसकी छाया परिधिस्थ बिन्दु में जहाँ प्रवेश करे वह

1. त्रि० अ० ८–९ श्लो०। 2. त्रि० अ० २१ श्लो०।

पश्चिम दिशा और मध्याह्नोत्तर काल में जिस परिधिस्थ बिन्दु से निकले वह पूर्वदिशा समझना अर्थात् प्रवेश निर्गम कालीन स्पर्श बिन्दुओं से मिली हुई रेखा होती है। तथा दोनों बिन्दुओं से दो वृत्त के द्वारा मत्स्य बनाकर उसके मुख पुच्छगत रेखा दक्षिण, उत्तर होती है ॥ २१७ ॥

नक्षत्र के वेध से दिशाज्ञान

[1]अथ नक्षत्रवेधवशेन दिक्ज्ञानमुक्तं मुहूर्तमार्तण्डे —

प्राक्साध्योज्जयनीस्थलाद्यमदिशि त्वाष्ट्रानिलाभ्यन्तरात्
सौम्योतोग्न्युदयादुदग्ध्रुवमुखाद्दिङ्मूढके स्यान्मृतिः ॥ २१८ ॥

मुहूर्तमार्तण्ड में बताया है कि उज्जयिनी स्थान से दक्षिण दिशा में चित्रा-स्वाती के अन्तर के बीच में पूर्व दिशा जानना तथा उसी जगह से उत्तर भाग में कृत्तिका के उदय से पूर्व दिशा का ज्ञान करना एवं ध्रुव मुख से उत्तर दिशा का ज्ञान करना चाहिये। दिशाज्ञान में मूर्खता होने पर मरण होता है ॥ २१८ ॥

ध्रुवमत्स्य ताराद्वय दर्शन से दिशा ज्ञान

अथ ध्रुवमत्स्यताराद्वयदर्शनद्वारा दिक्ज्ञानमुक्तम्—

[2]वास्तुराजवल्लभे—

तारे मार्कटिके ध्रुवस्य समतां नीतेवलम्बे नते
दीपाग्रेण तदैक्यतश्च कथिता सूत्रेण सौम्या दिशः।
शंकौ नेत्रगुणे तु मण्डलवरे छाया तयोर्मत्स्ययो-
र्जाता यत्र युतिस्तु शंकुतलतो याम्योत्तरे स्तः स्फुटे ॥ २१९ ॥

वास्तुराजवल्लभ में बताया है कि सप्तर्षि के तारों में जो पहिले की दो तारा हैं उनको मार्कटिका कहते हैं। ये दोनों और ध्रुव तारा जब एक सूत्र में हो जांय अर्थात् एक शंकु स्थापन करने से जब शंकु के ही सीध में तीनों तारा हो जांय तो शंकु से दक्षिण की तरफ एक दीपक रखना चाहिये। दीपक की शिखा, शंकु का अग्रभाग व ध्रुव ये तीनों जब एक सीध में दीख पड़ें तो शंकु से दीपक को दक्षिण जानना तथा सूत्र वश उत्तर दिशा होती है।

अथवा ३० अंगुल के वृत्त के बीच में १२ बारह अंगुल का शंकु स्थापित करके देखना चाहिये कि इसकी छाया जहाँ वृत्त में प्रवेश करे वहाँ पश्चिम और जिस जगह से निकले वह पूर्व दिशा एवं दोनों बिन्दुओं से मत्स्य बनाने से उनके योग में की हुई रेखा दक्षिणोत्तरा होती है ॥ २१९ ॥

विशेष —दिशा साधन के ये दोनों प्रकार स्थूल हैं। क्योंकि अयनांश के कारण ठीक उत्तर दिशा में ध्रुव की तारा इस समय नहीं है परन्तु व्यवहार के लिये

---

१. ६ प्र. ५ श्लो।   २. १ अ. ११ श्लो।

यह रीति प्रायः सुन्दर है। दूसरा प्रकार भी सूर्य की क्रान्ति के चञ्चल होने से स्थूल है ॥ २१९ ॥

सूत्रमोटन व स्थल साधन

नारायणस्तु [1]मार्तण्डे—
द्विघ्नायामभितं द्विपाशमजरत्सूत्रं विधायांकपे
त्र्यायामांघ्रिमिते च विस्तृतिदले तौ कर्षकोणाभिधौ।
पाशौ क्षेत्रविरामशंकुनिहतौ कृत्वाद्यमाकर्षयेत्
कोणेशंकुरितीतरौ विनिमयाद्रज्ज्वन्तयोश्चापरौ ॥ २२० ॥

मुहूर्तमार्तण्ड में नारायणजी ने बताया है कि घर की दूनी लम्बाई के समान एक नवीन मजबूत सूत्र बनाना जिसके दोनों छोरों (कोनों) में पाश हो अर्थात् एक प्रकार की गाँठ होती है तथा मध्य में छिद्र होता है। तथा इस पाश में ¾ पर एक चिह्न बनाना और विस्तार के आधे भाग तुल्य स्थान पर दूसरा चिह्न बनाना चाहिये प्रथम चिह्न का कर्ष व दूसरे का कोण नाम होता है। दिशा साधन प्रकार से साधित क्षेत्र मध्य में जो दिक्सूत्र है उस पर इस पाश सूत्र को फ़ैला कर दोनों भाग में शंकु स्थापित करके इनमें पाश लगाना चाहिये। इसके बाद प्रथम चिह्न कर्ष को खींचना तथा जहाँ पर कोण चिह्न हो वहाँ शंकु स्थापित करके इसी को उलट देने से दूसरा शंकु होता है। इन दो शंकुओं से शेष दो शंकु जान लेने से ठीक चतुष्कोण होता है ॥ १२० ॥

भूमि शोधनार्थ सूत्र निर्णय

अथ गृहभूमिसाधनाय सूत्रनियममाह —

विश्वकर्मप्रकाशे—
विप्रस्य दर्भजं सूत्रं मौंजं तु क्षत्रियस्य च।
कार्पासं च भवेद्वैश्यं शूद्रस्य स्वर्णकल्पितम् ॥ २२१ ॥

विश्वकर्म प्रकाश में बताया है कि ब्राह्मण के लिये कुशा का सूत्र, क्षत्रिय के लिये मूंज का, वैश्य के लिये कपास (रुई) का और शूद्र के लिये सोने का सूत्र करना चाहिये ॥ १२१ ॥

सूत्र से भूमि नापने में शकुन से हड्डी का ज्ञान

[2]वसिष्ठः—
षड्वर्गशुद्धसूत्रेण सूत्रिते धरणीतले।
सूत्रिते समय तस्मिन् सूत्रं केनापि लंघितम् ॥ २२२ ॥
तदास्थि तत्र जानीयात्पुरुषस्य प्रमाणतः।
अभ्यक्तो दृश्यते यस्यां दिशि शल्यं समादिशेत् ॥ ५२३ ॥

---

१. ६ प्र. १४ श्लो.।

२. व. सं. ३९ अ. ७३–७६ श्लो.।

तस्यामेव तदस्थीनि सप्तत्यंगुलमानतः।
सूत्रिते समये यत्र श्वा सद्मोपरि संस्थितः।। २२४ ॥

तदस्थि तत्र जानीयात्षष्ठ्यंगुलमितक्षितौ।
उन्मादे चागते तस्मिन्समये यत्र संस्थिते ॥ २२५ ॥

तदस्थि तत्र जानीयाद्धस्तद्वयमिते क्षितौ।
[1]चाण्डाले जटिले वापि तदा तस्यां दिशि स्थिते ॥ २२६ ॥

तदस्थि तत्र जानीयादशीत्यंगुलमानतः।
नृगजाश्वपशूनां हि त्वेकस्मिन् यत्र संस्थितम् ॥ २२७ ॥

तदस्थि तत्र जानीयात्षष्ठ्यंगुलमितक्षितौ।
तस्मिन्नवसरे यत्र गृहदाहो भवेद्यदि।
मेषास्थि तत्र जानीयात्पुरुषाष्टप्रमाणतः ॥ २२८ ॥

मूत्रे विसूत्रिते तस्मिन् भिन्ने कुंभेथवा यदि।
आदिशेन्निधनं तत्र दम्पत्योः क्रमशस्तदा ॥ २२९ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि षडवर्ग शुद्धि सूत्र से भूमि का नाप करना और नापने के समय यदि इसका कोई भी लंघन कर दे तो वहाँ पर एक पुरुष प्रमाण नीचे हड्डी समझना तथा नापते समय जिस दिशा में उबटना दीखे तो उस दिशा में सत्तर अंगुल प्रमाण से हड्डी समझना। अथवा उस समय सूत्र के ऊपर यदि कुत्ता (श्वान) आ जाय तो वहाँ पर ६० अंगुल पर हड्डी जानना, यदि कोई उस समय पागल मनुष्य आ जाय तो २ दो हाथ नीचे उस स्थान पर हड्डी, या चाण्डाल या जटिल आ जाय तो उस स्थान पर ८० अस्सी अंगुल नीचे हड्डी, या मनुष्य-हाथी-पशु एकत्रित जिस स्थान पर हों वहाँ ६० अंगुल पर हड्डी, यदि नापते समय घर का जलना जहाँ दीखे तो वहाँ पर ८ आठ पुरुष नीचे बकरे की हड्डी होती है। यदि नाप के समय सूत्र टूट जाय या घड़ा फूट जाय तो क्रम से दम्पती का मरण होगा, ऐसा आदेश देना चाहिये ।। २२२–२२९ ॥

सूत्र का शुभाशुभ

अन्यस्तु—
चतुष्कोणोद्धृतं सूत्रं पश्चात्फलं निरीक्षयेत्।
समे शुभं फलं प्रोक्तमधिके अशुभप्रदम् ॥ २३० ॥

चारों कोणों में सूत्र बाँधकर फल का निर्णय करना चाहिये। जैसे चारों कोणों में समान होने पर शुभ फल और अधिक होने पर अशुभ फल होता है ॥ २३० ॥

---

१. व. सं. ३९ अ. ७८–८१ श्लो.।

अग्न्याधिक्ये भवेद्रोगं नैर्ऋते भयदायकम् ।
वायव्ये क्षयहेतुश्च ईशाने निर्जनं भवेत् ॥ २३१ ॥

यदि अग्नि कोण में अधिक हो तो रोग, नैऋत्य में भय, वायव्य में क्षय और ईशान कोण में अधिक हो तो तो मकान में मनुष्यों का अभाव होता है ॥ २३१ ॥

भूमि शुद्धि के लिये हड्डी का ज्ञान

अथ भूमिशोधनार्थं शल्योद्धारः—

ज्योतिर्निबन्धे—

[1]स्मृत्वेष्टदेवतां प्रश्नवचनस्याद्यमक्षरम् ।
गृहीत्वा तु ततः शल्याशल्यं सम्यग्विचार्यते ॥ २३२ ॥

ज्योतिर्निवन्ध में कहा है कि अपने इष्ट देवता का स्मरण करके प्रश्न के आदि अक्षर को जानकर शल्य (हड्डी) है या नहीं इसका विचार करना चाहिये ॥ २३२ ॥

अकचटतपयशषयावर्णाः पूर्वादिवर्णान्ताः ।
शल्यकरा इह नान्ये शल्यगृहे विवसतां नाशः ॥ २३३ ॥

प्रश्नकर्ता के मुख से अ, क, च, ट, त आदि वर्ग का जो अक्षर प्रथम उच्चरित हो वही पूर्व दिशा से प्रारम्भ करके मध्यपर्यन्त शल्य करने वाले होते हैं ॥ २३३ ॥

पृच्छायां यदि अः प्राच्यां नरशल्यं तदा भवेत् ।
सार्द्धहस्तप्रमाणेन तच्च मानुष्यमृत्युकृत् ॥ २३४ ॥

जैसे प्रश्नकर्ता प्रथम अवर्गादि का अक्षर कहे तो पूर्व दिशा में मनुष्य की हड्डी डेढ़ हाथ नीचे समझना, इससे मनुष्य की मृत्यु होती है ॥ २३४ ॥

आग्नेय्यां यदि कः प्रश्ने शशशल्यं करद्वये ।
राजदण्डो भवेत्तत्र भयं नैव निवर्तते ॥ २३५ ॥

यदि क वर्ग का अक्षर प्रथम मुख से निकले तो अग्निकोण में दो हाथ नीचे शश (स्यार) या पाठान्तर से खर (गधा) की हड्डी समझना इसमें राजकीय दण्ड होता है और भय का दूरी करण नहीं होता है ॥ २३५ ॥

प्रश्नाक्षर च वर्ग का फल

याम्यायां दिशि च प्रश्ने कुर्यादाकटि संस्थितम् ।
नरशल्यं गृहेशस्य मरणं चिररोगता ॥ २३६ ॥

यदि प्रथम अक्षर च वर्ग का हो तो दक्षिण दिशा में मनुष्य की हड्डी कमर तुल्य नीचे होती है। इसमें घर के मालिक का मरण या अधिक समय तक रोग होता है ॥ २३६ ॥

प्रश्नाक्षर ट वर्ग का फल

नैर्ऋत्यां दिशि टः प्रश्ने सार्द्धहस्तादधस्तले ।
शुनोऽस्थि जायते तच्च बालानां जनयेन्मृतिम् ॥ २३७ ॥

---

१. १६६ पृ. १५–२५ श्लो. ।

जब ट वर्ग का प्रथम प्रश्नाक्षर होता है तो नैऋत्य दिशा में डेढ़ हाथ नीचे कुत्ते की हड्डी होती है। इसमें रहने पर बालकों की मृत्यु होती है ॥ २३७ ॥

तवर्ग प्रश्नाक्षर का फल

तः प्रश्ने पश्चिमायां तु शिशोः शल्यं प्रजायते ।
सार्द्धहस्तमिते तत्र स्वामिनं नेच्छति ध्रुवम् ॥ २३८ ॥

जब पहिला प्रश्न का अक्षर तवर्ग का होता है तो पश्चिम दिशा में डेढ़ हाथ नीचे बालक की हड्डी होती है। इसमें मालिक का रहना निश्चय ही अच्छा नहीं होता है ॥ २३८ ॥

पवर्ग प्रश्नाक्षर का फल

वायव्यां दिशि पः प्रश्ने तुषांगाराश्चतुः करे ।
कुर्वन्ति मित्रनाशं च दुःस्वप्नदर्शनम् तथा ॥ २३९ ॥

जब प्रश्न काल में पवर्ग का प्रथम अक्षर होता है तो वायव्य दिशा में चार हाथ नीचे भूसा, अंगार कोयला होता है। इसमें मित्र नाश व दूषित स्वप्नों का दर्शन होता है ॥ २३९ ॥

यवर्ग प्रश्नाक्षर का फल

उदीच्यां दिशि यः प्रश्ने विप्र शल्यं कटेरधः ।
तद्गृहं निर्धनायत्वं कुबेरसदृशो यदि ॥ २४० ॥

जब प्रश्न काल में यवर्ग का आदि अक्षर होता है तो उत्तर दिशा में कमर से नीचे तक गर्त में ब्राह्मण को हड्डी होती है इसमें कुवेर के समान धनी होने पर भी निर्धनता होती है ॥ २४० ॥

विशेष—प्रकाशित ज्योतिर्निर्बन्ध में 'तच्छीघ्र' निर्धनत्वाय कुबेर सदृशस्य हि' पाठ है ॥ २४० ॥

शवर्ग प्रश्नाक्षर का फल

ऐशान्यां दिशि शः प्रश्ने गोशल्यं सार्द्धहस्ततः ।
तद्गोधनानां नाशाय जायते गृहमेधिनाम् ॥ २४१ ॥

जब प्रश्न काल में शवर्ग का प्रथम अक्षर होता है तो डेढ़ हाथ नीचे गाय की हड्डी ईशान कोण में होती है। इसमें मकान मालिक के गोधन (पशु) का विनाश होता है ॥ २४१ ॥

हषया मध्यमे कोष्ठे वक्षोमात्रे भवेदधः ।
नृकपालमथो भस्म लोहं तत्कुलनाशकृत् ॥ २४२ ॥

और ह ष य मध्यम कोष्ठ में होने पर छाती पर्यन्त नीचे मनुष्य खोपड़ी, राख, लोहा होता है। इसमें स्वामी के कुल का विनाश होता है ॥ २४२ ॥

भिन्न रीति से शल्यज्ञान

ग्रन्थान्तरे—

गृहस्य पिण्डिका चैव कृत्वा च नवखण्डकान् ।
तेषु तेषु च भागेषु पूर्वादिक्रमतो बुधैः ॥ २४३ ॥

[1]व क च त ण ह स य ज एतान्यक्षराणि पूर्वादि नव कोष्ठेषु लिखेत् ।
ब्राह्मणःपुष्पं क्षत्रियो नदी वैश्यो देवं शूद्रो फलम् ।
यत्र पुष्पाक्षरं भवति तत्र शल्यं ज्ञेयम् अन्याक्षरे शल्यं नास्ति ।

ग्रन्थान्तर में बताया है कि घर के पिण्ड के ९ नव भाग करके पूर्वादि दिशा क्रम से उन भागों में व, क, च, त, ण, ह, स, य, ज अक्षरों को लिखकर प्रश्न कर्ता से ब्राह्मणादि वर्ण से अर्थात् ब्राह्मण प्रश्न कर्ता हो तो किसी पुष्प का, क्षत्रिय से नदी का, वैश्य से देवता और शूद्र से फल का नाम कहलवाकर देखना जहाँ यह पुष्पादि अक्षर हो वहीं हड्डी और अन्य अक्षर में हड्डी नहीं होती है। उसमें आद्यक्षर व क चादि हों तो पूर्वादि दिशाओं में क्रम से इन अक्षरों से वक्ष्यमाण प्रकार से शल्य का ज्ञान करना चाहिये।

'ॐ धरणी विदारिणी भूत्यै स्वाहा' इति रक्षामन्त्रं वारत्रयं पठित्वा हस्तं पृथिव्यां धृत्वा व प्रश्ने पूर्वस्यां दिशि मनुजशल्यं सार्द्धहस्तमात्रे मनुजमरणं कथयति। क प्रश्ने आग्नेय्यां खरशल्यं कटिमात्रे नृपदण्डं वा गोमरणं कथयति। च प्रश्ने दक्षिणस्यां वानरशल्य कटिमात्रें गृहनाथस्य मृत्युं कथयति। त प्रश्ने नैर्ऋत्याम् अश्वशल्यं सार्द्धहस्तमात्रे वित्तराज्यमृत्युभयम्। ण प्रश्ने वायव्यां पुरुषशल्यं दुःख स्वप्न प्रदर्शनं कथयति। स प्रश्ने कौबेर्यां द्विजशल्यं कटिमात्रे निर्धनं कथयति। प प्रश्ने ईशान्यां ऋक्षशल्यं सार्द्धहस्तमात्रे गोधननाशं कथयति। य प्रश्ने नरकपालं भस्मशल्यं हृदिमात्रे कुलनाशनं कथयति। गृहे शल्यं नास्ति तदा शुभं स्यात्।

'ॐ धरणी विदारिणी' इत्यादि रक्षामंत्र का तीन बार पाठ करके गृह कर्ता से भूमि स्पर्श कराकर प्रश्न करना चाहिये।

जब 'व' आदि का प्रश्नाक्षर होता है तो पूर्व दिशा में डेढ़ हाथ नीचे मनुष्य की हड्डी होती है इसमें निवास से मानव क्षति होती है॥

जब 'क' आदि का प्रश्नाक्षर होता है तो अग्नि कोण में कमर से नीचे गधा की हड्डी होती है। इसमें राजकीय दंड या गाय का मरण होता है।

जब 'च' आदि का प्रश्नाक्षर होता है तो दक्षिण दिशा में कमर से नीचे बन्दर की हड्डी होती है। इसमें मकान मालिक का मरण होता है।

---

१. बृ. वा. ३२ पृ.।

जब 'त' आदि का प्रश्नाक्षर होता है तो नैऋत्य दिशा में डेढ़ हाथ नीचे घोड़े की हड्डी होती है। इसमें धन का, राज्य का, या मरण का भय होता है।

जब 'ण' आदि का प्रश्नाक्षर होता है तो वायव्य में मनुष्य की हड्डी दुःख देने वाली होती है।

जब 'स' आदि का प्रश्नाक्षर होता है तो उत्तर दिशा में कमर से नीचे ब्राह्मण की हड्डी निर्धनता देने वाली, 'य' में ईशान कोण में ऋक्ष (बानर) की हड्डी डेढ़ हाथ नीचे में गोधन नाश और 'य' आदि का प्रश्नाक्षर होने पर वक्षस्थल से नीचे मनुष्य की खोपड़ी, भस्म, हड्डी होती है। इसमें कुल का नाश होता है। घर पिण्ड में जब हड्डी का अभाव होता है तो शुभ होता है॥

अहिचक्र की आवश्यकता

[1]स्वरोदये -

अहिचक्रं प्रवक्ष्यामि यथा सर्वज्ञभाषितम्।
द्रव्यं शल्यं तथा शून्यं येन जानंति साधकाः॥ २४४॥

स्वरोदय में कहा है कि साधक समुदाय जिस चक्र से भूमि में गड़ा हुआ धन, हड्डी तथा शून्य जगह समझ लेते हैं, उस सर्वज्ञ श्रीमहादेव जी के कहे हुए अहिचक्र को मैं कह रहा हूँ॥ २४४॥

अहिचक्र स्थापित करने की रीति

निधिर्निवर्त्तनैकस्थः सम्भ्रान्तो यत्र भूतले।
तत्र चक्रमिदं स्थाप्यं स्थानद्वारमुखस्थितम्॥ २४५॥

जिस भूमि में एक निवर्तन के भीतर निधि (गड़ा हुआ धन) सम्भ्रान्त (भूल) हो गया हो उस स्थान के द्वार पर अहि (सर्प) चक्र के मुख को रखकर स्थापित करना चाहिये॥ २४५॥

विशेष—निवर्तन यह भूमि का माप है अर्थात् इस मान के भीतर ही खोज उचित होती है। स्वरोदय में कहा है 'वितस्तिद्वितयं हस्तो राजहस्तश्च तद्द्वयम्। दशहस्तैश्च दण्डःस्यात् त्रिंशद्दण्डैर्निवर्तनम्' अर्थ—दो वित्ते का १ एक हाथ और दो हाथ का एक राजहस्त अर्थात् गज तथा १० दस गज का १ एक दण्ड होता है, तथा ३० तीस दण्ड का १ निवर्तन (३० दण्ड लम्बी, ३० दण्ड चौड़ी भूमि) होता है॥ २४५॥

विशेष—लीलावती में 'तथा कराणां दशकेन वंशः। निवर्त्तनं विंशतिवंशसंख्यैः' कहा है॥ २४५॥

चक्र निर्माण प्रकार

ऊर्ध्वरेखाष्टकं लेख्यं तिर्यग्रेखा च पञ्चकम्।
अहिचक्रं भवत्येवमष्टाविंशतिकोष्टकम्॥ २४६॥
अष्टाविंशति भान्यत्र कृत्तिकादिक्रमेण च।

---

१. न. ज. १९३ पृ.—२०१ पृ. तक।

आठ खड़ी रेखा और पाँच तिरछी रेखा उनके ऊपर न्यास करने से २८ कोष्ठकों का अहिचक्र होता है । यहाँ कृत्तिकादि क्रम से अट्ठाईस नक्षत्र होते हैं ॥ २४६ ॥

यह उक्ति ग्रन्थकार की सर्प स्थिति वश समझनी चाहिये । अर्थात् चक्र से स्पष्ट है ।

चक्र की पहिली पंक्ति में नक्षत्र स्थापन

तत्र पौष्णाश्वियाम्यर्क्षं कृत्तिका मघ्यभाग्यमम् ।
उत्तराफाल्गुनी लेख्यं पूर्वपंक्त्यां भसप्तकम् ॥ २४७ ॥

प्रथम सात अर्थात् ऊपर के कोष्ठों में क्रम से १ रेवती, २ अश्विनी ३ भरणी, ४ कृत्तिका, ५ मघा, ६ पूर्वा फाल्गुनी, ७ उत्तरा फाल्गुनी को लिखना चाहिये ॥२४७॥

दूसरी पंक्ति में नक्षत्र

अहिर्बुध्न्याजपादर्क्षं शतभं ब्राह्मसार्पभम् ।
पुष्यं हस्तं समालेख्यं द्वितीयं पंक्तिमास्थितम् ॥ २४८ ॥

दूसरी पंक्ति के सात कोष्ठकों में क्रम से १ उत्तरा भाद्रपद, २ पूर्वा भाद्रपद, ३ शतभिषा, ४ रोहिणी, ५ श्लेषा, ६ पुष्य और ७ हस्त की स्थापना करनी चाहिये ॥ २४८ ॥

तीसरी पंक्ति में नक्षत्र

विधिर्विष्णुर्धनिष्ठाख्यं सौम्यं रुद्रं पुनर्वसुम् ।
चित्राभं च तृतीयायां पंक्तौ धिष्ण्यस्य सप्तकम् ॥ २४९ ॥

तीसरी पंक्ति के सात कोष्ठों में क्रम से १ अभिजित, २ श्रवण, ३ धनिष्ठा, ४ मृगशिरा, ५ आर्द्रा, ६ पुनर्वसु, व ७ चित्रा का न्यास करना चाहिये ॥ २४९ ॥

चौथी पंक्ति में नक्षत्र स्थापन

विश्वर्क्षतोयभं मूलं ज्येष्ठामैत्रविशाखिके ।
स्वाती पंक्त्यां चतुर्थ्यां तु कृत्वा चक्रं विलोकयेत् ॥ २५० ॥

चौथी पंक्ति के सात कोष्ठों में क्रम से १ उत्तराषाढ, २ पूर्वाषाढ, ३ मूल, ४ ज्येष्ठा, ५ अनुराधा, ६ विशाखा, ७ स्वाती नक्षत्र स्थापित करना चाहिये ॥२५०॥



एवं प्रजायते चक्रे प्रस्तारः पन्नगाकृतिः।
द्वारशाखे मघायाम्ये द्वारस्था कृत्तिका मता ।। २५१ ।।

इस प्रकार नक्षत्रों को लिखने पर द्वार में कृत्तिका और द्वार की शाखाओं में मघा और भरणी होने से सर्पाकृति चक्र बनता है ।। २५१ ।।

उक्त सर्प स्वरूप में चित्रा का और मस्तक के बगल में स्थित मघा, भरणी का विशेष विचार करना चाहिये।

याते त्वाष्ट्रे चित्रदेशे विचिंत्ये मैत्रे पित्रे भालवद्याप्रसिद्धम्।
पौष्णं त्याज्यं वैष्णवे चोत्तरास्यूर्जायात्सर्वं सर्वदेशे निषिद्धा ।।२५२।।

यह पद्य न तो नरपति जयचर्या में उपलब्ध होता है। तथा न प्रकाशित 'अहिवल चक्र' में ही प्राप्त होता है ।। २५२ ।।

चन्द्र तथा सूर्य के नक्षत्र

अश्वीशपूर्वषाढादि त्रिकपंचचतुष्टयम्।
रेवते पूर्वभाद्रेंदोर्भानि शेषानि भास्वतः ।। २५३ ।।

अश्विनी नक्षत्र से तीन (१ अश्विनी, २ भरणी, ३ कृत्तिका), आर्द्रा नक्षत्र से पाँच (१ आर्द्रा, २ पुनर्वसु, ३ पुष्य, ४ श्लेषा, ५ मघा) और पूर्वाषाढ नक्षत्र से चार (१ पूर्वाषाढ, २ उत्तराषाढ, ३ अभिजित्, ४ श्रवण) नक्षत्र एवं रेवती व पूर्वाभाद्रपद ये १४ चौदह नक्षत्र चन्द्रमा के होते हैं। शेष चौदह १ रोहिणी, २ मृगशिरा, ३ पूर्वाफाल्गुनी, ४ उत्तराफाल्गुनी, ५ हस्त, ६ चित्रा, ७ स्वाती, ८ विशाखा, ९ अनुराधा, १० ज्येष्ठा, ११ मूल, १२ धनिष्ठा, १३ शतभिषा व १४ उत्तरा भाद्रपदा ये सूर्य के नक्षत्र होते हैं ।। २५३ ।।

तात्कालिक चन्द्रमा का साधन

उदयादिगता नाड्यो भग्ना षष्ट्याप्तशेषके।
दिनेंदुर्भुक्तियुक्तोसौ भवेत्तत्कालचन्द्रमाः ।। २५४ ।।

प्रश्न कालिक नक्षत्र की उदय से जितनी घड़ी व्यतीत हो गई हों अर्थात् भयात घटिकाओं को २७ सत्ताईस से गुणा करके ६० से अर्थात् भभोग से भाग देने पर लब्धि नक्षत्र, घटीपल मिलें उसमें गत नक्षत्र संख्या जोड़ने पर नक्षत्रादि तात्कालिक स्पष्ट चन्द्रमा होता है ।। २५४ ।।

विशेष—यहाँ ग्रन्थकार ने ६० की कल्पना भभोग के स्थान पर की है, किन्तु भभोग से ही भाग देना उचित होता है ।। २५४ ।।

सूर्य का साधन

अस्योदाहरणमग्रे लिखितम्—
चन्द्रवत्साधयेत्सूर्यमृक्षस्थं चेष्टकालिकम्।
पश्चाद्विलोकयेत्तौ चेत्स्वर्क्षे वा चान्यभे स्थितौ ।। २५५ ।।

जिस प्रकार चन्द्र नक्षत्र के भयात भभोग से स्पष्ट चन्द्रमा का साधन पहिले कहा गया है उसी प्रकार इष्ट समय में नक्षत्र स्थित सूर्य का साधन

करना चाहिये। अर्थात् जिस नक्षत्र में सूर्य हो उस नक्षत्र में सूर्य के प्रवेश काल से इष्टकाल तक गत दिनादि को सूर्य सम्बन्धी भयात मानना और आगे के नक्षत्र में सूर्य के प्रवेश दिन से पूर्व तक भभोग दिन समझकर क्रिया करनी चाहिये। पीछे देखना चाहिये कि ये दोनों अपने-अपने नक्षत्र में हैं या भिन्न-भिन्न में हैं ॥ २५५ ॥

द्वार स्थान ज्ञान

षष्टिघ्नं तन्निशानाथं शरवेदाप्तकं पुनः।
युगैः शेषं भवत्येवं प्रागादिककुभं क्रमात् ॥ २५६ ॥

'नाड्यः उदयादिगता' इत्यादि से साधित चन्द्रमा को ६० से गुणा करके ४५ पैंतालीस का भाग देकर पुनः ४ चार का भाग देने से एकादि शेष में पूर्वादि दिशा क्रम से द्वार स्थान चक्र स्थापन का होता है ॥ २५६ ॥

विशेष · पं० सीताराम झा जी ने 'वास्तुरत्नाकर' में तथा अपनी प्रकाशित (अहिबल चक्र नामक) पुस्तक में इस पद्य को प्रामादिक बताकर लिखा है कि 'षष्टिघ्नंतं·········। त्रिभिर्भक्त्वा युगैः शेषं प्रागहिचक्रवक्त्रगम्' यह युक्ति संगत है ॥ २५६ ॥

द्रव्यादिज्ञान

चन्द्रऋक्षे यदार्केंदू तदास्ति निश्चितं निधिः।
भानुक्षेत्रे स्थितौ तौ चेत्तदा शल्यं च नान्यथा ॥ २५७ ॥

पूर्वरीति से साधित चन्द्रमा व सूर्य दोनों चन्द्रमा के नक्षत्र में हों तो निश्चय निधि (धन) है तथा सूर्य चन्द्रमा दोनों चन्द्रमा के नक्षत्र में होने पर हड्डी है ऐसा समझना चाहिये। इसके विपरीत में कुछ भी नहीं है कहना चाहिये ॥ २५७ ॥

शशांके चन्द्रभे द्रव्यं शल्यं भवति भानुभे
स्वस्वभे द्वितये ज्ञेयं नास्ति किंचिद्विपर्यये।
स्थितं न लभ्यते द्रव्यं चन्द्रे क्रूरग्रहान्विते ॥ २५८ ॥

यदि सूर्य व चन्द्रमा अपने-अपने नक्षत्र में हों तो धन व हड्डी दोनों कहना चाहिये। यदि विपरीत नक्षत्र में हों अर्थात् सूर्य चन्द्र के नक्षत्र में और चन्द्रमा सूर्य के नक्षत्र में हो तो कुछ भी नहीं होता है। जब चन्द्रमा पापग्रह से युक्त होता है तो स्थित धन की प्राप्ति नहीं होती है ॥ २५८ ॥

ग्रहदृष्टिवशात् सोपि विज्ञेयो नवधा बुधैः।

ग्रहों की दृष्टि से वह नव प्रकार की निधि (धन) होती है ॥ २५८½ ॥

ग्रह दृष्टि से फल

हेमं रौप्यं च ताम्रार रत्नं कांस्यायसं त्रप ॥ २५९ ॥
नागचन्द्रं विजानीयाद्भास्करादि ग्रहेक्षिते।
मिश्रैर्मिश्रे भवेद्द्रव्यं शून्यं दृष्टिविवर्जितम् ॥ २६० ॥

जब चन्द्रमा पर सूर्य की दृष्टि होती है तो सुवर्ण, दैनिक चन्द्र की दृष्टि से मोती, भौम की दृष्टि से तांबा, बुध की दृष्टि से पीतल, गुरु की दृष्टि से रत्न, शुक्र की दृष्टि से काँसा, शनि की दृष्टि से लोहा, राहु की दृष्टि से रांगा और केतु की दृष्टि होनेपर शीशा होता है। मिश्रित ग्रहों की दृष्टि से मिश्रित और दृष्टि के अभाव में धन का अभाव होता है ॥ २५८½–२६० ॥

महानिधि ज्ञान

सर्वग्रहेक्षिते चन्द्रे निर्दिष्टोसौ महानिधिः।
पुष्टे चन्द्रे भवेत्पुष्टं क्षीणे चन्द्रेल्पको निधिः ॥ २६१ ॥

चन्द्रमा जब समस्त ग्रहों से दृष्ट होता है तो महानिधि (खजाना), पुष्ट चन्द्र हो तो पुष्ट और क्षीण चन्द्र होने पर अल्प धन होता है ॥ २६१ ॥

ग्रहदृष्टिवशात्सोपि विज्ञेयो नवधा बुधैः ॥ २६२ ॥

ग्रह की दृष्टि से उस महानिधि को भी नव प्रकार से समझना चाहिये ॥ २६२ ॥

धन का बर्तन ज्ञान

हेमं तारं च ताम्रं च पाषाणं मृण्मयायसम्।
सूर्यादिगृहगे चन्द्रे द्रव्यभांडं प्रजायते ॥ २६३ ॥

चन्द्रमा जब सूर्य की राशि में होता है तो सोने के बर्तन में, अपनी राशि में होने पर रूपे के पात्र में, मंगल की राशि होने पर ताँबे के में, बुध की राशि में पीतल के भाण्ड में, गुरु की राशि में होने पर पत्थर के में, शुक्र की राशि में मिट्टी के में और शनि की राशि में चन्द्रमा होने पर लोहे के पात्र में धन होता है ॥ २६३ ॥

शुभ या पाप घर में चन्द्र का फल

शुभक्षेत्रगते चन्द्रे द्रव्यलाभो न संशयः।
पापक्षेत्रे न लाभः स्याज्ज्ञातव्यं ज्योतिषां वरैः ॥ २६४ ॥

शुभग्रह की राशि में चन्द्रमा होने पर निःसंदेह द्रव्य का लाभ और पापग्रह की राशि में अलाभ होता है। ऐसा श्रेष्ठ ज्योतिषियों को जानना चाहिये ॥ २६४ ॥

धन कितने हाथ नीचे भूमि मे है ?

भुक्तराश्यंशमानेन भूमानं कामिको करैः।
नीचे द्विघ्नं परे नीचे जलस्योसौ महानिधिः ॥ २६५ ॥

चन्द्र राशि के जितने अंश व्यतीत हो गये हों उतने मकान मालिक के हाथ से नीचे धन या गत नवांश तुल्य हाथ नीचे द्रव्य होता है। यदि चन्द्रमा वृश्चिक राशि में हो तो उससे दुगुने हाथ नीचे और परम नीच राशिस्थ होने पर जल में धन होता है ॥२६५॥

स्वोच्चस्थेत्यूर्ध्वगं द्रव्यं नवमांशं क्रमेण च।
परमोच्चे परे तुंगे भित्तिस्थमृक्षसंक्रमे ॥ २६६ ॥

चन्द्रमा के उच्चराशि में होने से नवांश क्रम से जहाँ धन गड़ा है उससे ऊपर समझना और परमोच्च में या नक्षत्र सन्धि में होने पर जमीन से भी ऊपर उतने हाथ भीत में द्रव्य होता है ॥ २६६ ॥

द्रव्य संख्या ज्ञान

चन्द्रांशभुक्तमानेन द्रव्यसंख्या विधीयते।
तस्माद्दशगुणा वृद्धिः षड्वर्गेन्दुबलक्रमात् ॥ २६७ ॥

चन्द्रमा जितने अंश भोग कर चुका हो उतनी ही धन की संख्या होती है। तथा चन्द्रमा के षड्वर्ग बल के क्रम से संख्या की दस गुना वृद्धि होती है। अर्थात् एक वर्ग में १० दस गुना, दो में १०० गुना, तीन में १००० गुना, इत्यादि आगे भी जानना चाहिये ॥ २६७ ॥

धन के अधिष्ठातृ देवता

अधिष्ठितं भवेद्द्रव्यं यत्र चंद्रो ग्रहान्वितः।
तदाधिष्ठायको ज्ञेयो भास्करादिग्रहैः क्रमात् ॥ २६८ ॥

जिस स्थान में (अहि चक्र के कोष्ठक में) चन्द्रमा ग्रह से युक्त होकर स्थित होता है उस स्थान में अधिष्ठित द्रव्य समझना चाहिये। और सूर्यादि ग्रह से चन्द्र होने पर आगे बताये हुए क्रम से अधिष्ठायक देवता होता है ॥ २६८ ॥

ग्रहं मुग्धग्रहं चैव क्षेत्रपालं च मातृकम्।
द्वीपेशं भीषणं रुद्रं यक्षं नागं विदुः क्रमात् ॥ २६९ ॥

चन्द्रमा सूर्य से युत होने पर जैसे ग्रह, केवल दैनिक चन्द्र होने से मुग्ध ग्रह, भौम से क्षेत्रपाल, बुध से मातृका, गुरु से द्वीपेश, शुक्र से भीषण, शनि से रुद्र, राहु से यक्ष और केतु से चन्द्र युक्त होने पर द्रव्य का देवता सर्प होता है ॥ २६९ ॥

अधिष्ठायक देव की पूजा

ग्रहे होमः प्रकर्तव्यो मुग्धे नारायणी बलिः।
क्षेत्रपाले सुरामांसं मातृकायां महाबलिः ॥ २७० ॥
द्वीपेशे द्वीपिकापूजा भीषणे भीषणार्चनम्।
रुद्रे च रुद्रजो जाप्यो यक्षे यक्षादिशांतिकम् ॥ २७१ ॥
नागे नागगणाः पूज्या गणनायेन संयुताः।
लक्ष्मीधरादि तत्त्वानि सर्वकर्माणि पूजयेत् ॥ २७२ ॥

जब धन के अधिष्ठायक देवता नवग्रह होते हैं तो उनका हवन, मुग्ध में नारायणी बली देना, क्षेत्रपाल होने पर शराब व मांस, मातृका होने पर महाबलि, द्वीपेश में द्वीप पूजा, भीषण में भीषण की पूजा, रुद्र में रुद्र जप (रुद्री) पाठ, यक्ष में यक्ष की और नाग अधिष्ठाता देवता होने पर गणेश पूजा के साथ सर्पगण की पूजा करनी चाहिये। तथा सब कार्यों में लक्ष्मी जी की और भूमि आदि पाँच (भूमि, जल-वायु-अग्नि आकाश चक्र स्थापना) तत्त्वों की पूजा करनी चाहिये ॥ २७०–२७२ ॥

निवर्तनैकमध्ये च संभ्रांतं यत्र भूतले।
तत्र चक्रं लिखेद्धीमान् द्रव्यशल्यस्य निर्णयः ॥ २७३ ॥

एक निवर्तन भूमि में जहाँ भ्रम हो वहाँ पर धन व हड्डी ज्ञान के लिये बुद्धिमान् को चक्र स्थापना करनी चाहिये ॥ ४७३ ॥

एवं कृते विधानेन निधिः साध्योपि सिद्धयति।
निधिप्राप्ता नरा लोके वंदनीया न संशयः ॥ २७४ ॥

विधि विधान से अधिष्ठाता देव की पूजा करने पर दुःसाध्य निधि की प्राप्ति होती है। इसके जानने वालों की संसार में निश्चय ही अर्चना होती है ॥ २७४ ॥

वास्तुकुण्डली का फल

ॐपद्मासने चन्द्रचन्द्रतपसे नमः। ऐं ह्रीं क्लीं ह्रूं वदवद वाग्वादिनी स्वाहा। अस्तभांतस्थाने भूत्वा त्रिसंध्यां जपेत्। घृतमधुहविष्यं होमयेत्। अष्टोत्तरशतं जाप्यं जपेत्तदा निधेरुत्पाटनयोग्यो भवेत्। चन्द्रार्कौ तत्कालानयनस्योदाहरणं यथा मार्गशिर शुक्ल ३ सोमे इष्टं २१। २५ वृषलग्ने कश्चित्प्रश्नः कृतः अहो मम गृहे निधिर्वर्तते नवेति संदेहः तस्मिन्दिने तत्समये उत्तराषाढस्य भयातः १२।५ इदमुदयादिगता नाड्यः भघ्ना ३२५। ४२ षष्ट्या ६० ते लब्धं ५ शेषं २५। ४२ दिनेंदु भुक्तर्क्षं २० युतं जातं २५ पूर्वाभाद्रपदगत उत्तराभाद्रपदस्य गतदंडादिकं चन्द्रं २५। ४२ अथ तात्कालिकसूर्यानयनं मार्गशिरकृष्ण १२ ॥ भौमे ज्येष्ठायामर्कः ४२। ३२ षष्टि ६० हीने १०। २८ इदं भोग्यं पुनः मार्गशिरशुक्ल १० सोमे मूलेष्वर्कः ५३। ५५ इदं भक्तं अनयोर्योगः १। ४। २३ तयोर्भुक्तभोग्ययोर्मध्यदिवसै १२ युते १३। ४। २४ जातं सूर्यस्य एकर्क्षं भोगमानं दिनात्मकं भवति। अस्मिन्षष्टि हृते लब्धं ०। १३। ४। २३ घट्यात्मकं स्यात्। इदं सूर्यस्य एकघटीमानम् अत्रेष्टघटी २१। २५ ज्येष्ठाभोग्यघट्यो १०। २८ योगः ३१। ५३ ज्येष्ठार्कात् प्रश्नदिवसैर्मध्यदिवसं ५ युतं जातं ज्येष्ठाभुक्तदिनादिकं ५। ३१। ५३ सवर्णितं ११९४७८० अस्मिन् सूर्यस्यैकघटीप्रमाणेन १३। ४। २३ सवर्णितेन ४७०६३ भक्ते लब्धं २५। २३ ज्येष्ठानक्षत्रेषु रवेर्भुक्तघटी स्यात्। इयं २५। २३ रवेरुदयादिगता नाड्यः भ २७ घ्ना ६८५। २१ षष्ट्याप्ते लब्धं ११ शेषं २५। २२ अश्विन्यादि रवेर्भुक्तर्क्षं १७ युतं २८ सप्तविंशतिभिस्तष्टे शेषम्। १ अतः अश्विनी गतभरणी नक्षत्रस्य तात्कालिकोर्कगतघटी २५ पलं २१ स्यात्।

ॐ पद्मासन से रात में बैठ कर 'ऐं ह्रीं' इत्यादि मन्त्र को अस्तभान्त स्थान में होकर तीनों सन्ध्या में जप तथा घी, शहद, हविष्य से होम करना चाहिये। १०८ जपने पर द्रव्य निकालने की योग्यता होती है।

तात्कालिक सूर्य चन्द्रमा का उदाहरण जैसे—मार्गशिर शुक्ल ३ सोमवार इष्ट २१।२५ वृष लग्न में किसी ने प्रश्न किया कि पंडित जी मेरे घर में खजाना है कि नहीं है यह सन्देह है तो उस दिन उस काल में उत्तराषाढ का भयात १२।५ यह उदयादिगत घडी है। अतः १२।५ को २७ से गुणा करने पर ३२५।४२ हुआ इसे

६० से भाग देने पर लब्धि ५ शेष २५।४२ दिनेन्दु भुक्त नक्षत्र संख्या २० जोड़ने पर २५ पूर्वाषाढ गत नक्षत्र व उत्तराषाढ की गत घटी २५।४२ हुआ।

तात्कालिक सूर्य का आनयन—मार्गशीर्ष कृष्ण १२ भौमवार ज्येष्ठा में सूर्य ४९।३२ इसे ६० में घटाने से ६०।०—४९।३२ = १०।२८ यह भोग्य हुआ।

मार्गशीर्ष शुक्ल १० दशमी सोमवार मूल में सूर्य ५३।५५ इसमें भाग दिया दोनों का योग १।४।२३ इसमें भुक्त भोग्य के बीच की दिन १२ जोड़ने पर १३।४।२४ हुआ यह सूर्य का एकर्क्षभोगमान दिनात्मक हुआ। इसमें ६० का भाग दिया तो ०।१३।४।२२ यह सूर्य की एक घटी का मान हुआ। यहाँ इष्टघटी २१।२५ और ज्येष्ठा की भोग्य घटी का योग करने पर २१।२५ + १०।२८ = ३१।५३ हुआ इसमें ज्येष्ठा में सूर्य के प्रवेश से प्रश्न दिन पर्यन्त तक की ५ दिन संख्या जोड़ने पर ५।३१।५३ को सवर्णित करने पर ११९४।७८० इसमें सूर्य की एक घटी प्रमाण १३।४।२३ को सवर्णित करके ४७०६३ इससे भाग देने पर लब्धि २५।२३ ज्येष्ठा नक्षत्र में सूर्य की भुक्त घटी हुई। इसे २७ से गुणा करके ६८५।२१ साठ से भाग दिया तो लब्धि = ११ शेष = २५।२२ लब्धि में सूर्य की भुक्त नक्षत्र संख्या १७ जोड़ने पर २८ हुआ इसमें २७ का भाग दिया तो शेष = १ इसलिये अश्विनी गत नक्षत्र व भरणी नक्षत्र की तात्कालिक सूर्य की गतघटी २५।२१ पल हुआ।

अन्यत्रापि—

नाडीष्टाभ २७ हतं खतर्क ६० भजितं लब्धं दिनर्क्षे युतं
तं तत्कालशशो रवेर्भयुतं भानुश्च तत्कालसो।
यत्रस्थौ शशिभास्करौ च गुणयेद्वाह्निस्थपक्तिद्वये
एकीकृत्य विभज्य त्वाष्ट्रनयनं शेषं धनस्थान्विदुः।

अन्य जगह भी कहा है कि उदय से इष्ट घटियों को २७ से गुणा करके ६० का भाग देने पर लब्ध नक्षत्र घटी पल में गत नक्षत्र संख्या जोडने पर नक्षत्रादि तात्कालिक चन्द्रमा और सूर्य नक्षत्र से तात्कालिक सूर्य का साधन करके जिस नाग की पक्तियों में दोनों हों उनका गुणाकर तथा जोड़कर नक्षत्र का ज्ञान कर धन बताना चाहिये।

लग्नस्थ ग्रहों का फल

अथ वास्तुकुंडलोफलम्—

वास्तुरत्नप्रदोपे—

लग्नेर्के बज्रपातः स्यात् कोशहानिश्च शीतगौ।
मृत्युर्विश्वंभरापुत्रे दारिद्र्यं रविनंदने ॥ २७५ ॥
जोवे धर्मादिकामाः स्युः सुतोत्पत्तिश्च भार्गवे।
चन्द्रजे कुशला शक्तिर्जनस्यायुः प्रवर्द्धते ॥ २७६ ॥

वास्तुरत्नप्रदीप में बताया है कि लग्न में सूर्य होने पर वज्रपात, चन्द्रमा से धन हानि, मंगल से मृत्यु, शनि से दरिद्रता, गुरु से धर्मादिकार्य, शुक्र से पुत्र की

उत्पत्ति और वास्तुकुण्डली लग्न में बुध होने पर कुशल शक्ति एवं आयुष्य वृद्धि होती है ॥ २७५–२७६ ॥

द्वितीयस्थ ग्रहों का फल

द्वितीयस्थे रवौ हानिश्चंद्रे शत्रुक्षयो भवेत् ।
भूसुते बंधनं प्रोक्तं नानाविघ्नाश्च भानुजे ॥ २७७ ॥
बुधे द्रविणसंपत्तिर्गुरौ धर्मसमागमः ।
यथा कामविनोदेन भृगौ कालं व्रजेदिह ॥ २७८ ॥

दूसरे भाव में सूर्य के होने पर हानि, चन्द्र से शत्रु का क्षय, मंगल से बन्धन, शनि से अनेक विघ्न, बुध से धन सम्पत्ति, गुरु से धर्म समागम और शुक्र दूसरे भाव में होने से काम (विषय वासना) विनोद से समय व्यतीत होता है ॥ २७७–२७८ ॥

तीसरे भाव में ग्रहों का फल

सौम्यग्रहास्तृतीयस्थाः पापा अपि विशेषतः ।
सिद्धिः स्यादचिरादेव यथाभिलषितं प्रति ॥ २७९ ॥

तीसरे भाव में शुभ ग्रह व विशेषकर पापग्रह होने पर शीघ्र ही मनोभिलषित सिद्धि होती है ॥ २७९ ॥

चौथे भाव में ग्रहों का फल

चतुर्थस्थानगे जीवे पूजा संपद्यते नृपात् ।
चन्द्रजे च सदा लाभो भूमिलाभस्तु भार्गवे ॥ २८० ॥
वियोगः सुहृदा भानौ मित्रभेदो धरासुते ।
बुद्धिनाशो निशानाथे महालाभोर्कनंदने ॥ २८१ ॥

चौथे भाव में गुरु के होने पर राजा से पूजा, बुध से सदा लाभ, शुक्र से भूमिलाभ, सूर्य से मित्र वियोग, मंगल से मित्र शत्रुता, चन्द्रमा से बुद्धि नाश और शनि चौथे में होने पर बड़ा लाभ होता है ॥ २८०–२८१ ॥

पाचवें भाव में ग्रहों का फल

पंचमस्थे सुराचार्ये मित्रवस्तुधनागमः ।
शुक्रे पुत्रधनप्राप्तिर्हेमाभरणमिदुजे ॥ २८२ ॥
सुतदुःखं सदा सूर्ये शशांके कलहागमः ।
भौमे कामविरोधः स्याच्छनौ कामविमर्दनम् ॥ २८३ ॥

पाचवें भाव में गुरु होने पर मित्र, वस्तु व धन का आगम, शुक्र से पुत्र धनप्राप्ति, बुध से सोने के आभूषण, सूर्य से पुत्र सम्बन्धी दुःख, चन्द्रमा से कलह का आगमन, मंगल से काम विरोध और शनि से काम का विनाश होता है ॥ २८२–२८३ ॥

छठे भाव में ग्रहों का फल

षष्ठस्थानगते सूर्ये पूजा संपद्यते नृपात् ।
चन्द्रे पुष्टिः कुजे प्राप्तिः सौरे शत्रुबलक्षयः ॥ २८४ ॥

गुरौ चार्थोदयः प्रोक्तो भृगौ विद्यागमो भवेत् ।
मानज्ञानस्य कौशल्यं नक्षत्रपतिनन्दने ॥ २८५ ॥

छठे स्थान में सूर्य के होने पर राजा से पूजा, चन्द्रमा से पुष्टि, भौम से प्राप्ति, शनि से शत्रु के बल का क्षय, गुरु से धन का उदय, शुक्र से विद्या का आगम, और छठे भाव में बुध के होने पर सम्मान ज्ञान की कुशलता होती है ॥ २८४–२८५ ॥

सातवें भाव में ग्रहों का फल

लग्नात्सप्तमगे जीवे बुधे दैत्यपुरोहिते ।
गजवाजिधरित्रीणां क्रमाद्भोगं विनिर्दिशेत् ॥ १८६ ॥
भास्करे कीर्तिभंगः स्यात्कुजे विग्रहमादिशेत् ।
चन्द्रे मन्दे युते मांद्यं हीनांगत्वं भयं तथा ॥ २८७ ॥

लग्न से सातवें भाव में गुरु, बुध, शुक्र होने पर हाथी, घोड़ा, भूमि का क्रम से भोग अर्थात् गुरु से हाथी का भोग, बुध से घोड़ा का, शुक्र से भूमि का उपभोग, सूर्य से यश का नाश, भौम से लड़ाई, चन्द्रमा व शनि से मन्दता व हीनाङ्गत्व होता है ॥ २८६–२८७ ॥

आठवें भाव में ग्रहों का फल

निधनस्थे सहस्रांशौ शत्रुतो विपदः सदा ।
हानिः शीतमयूखे च मंगले रविजे भयम् ॥ २८८ ॥
बुधे मानधनप्राप्तिः सुरेज्ये विजयो महान् ।
शुक्रे स्वजनतो दद्यात्सुखं पुंसां विशेषतः ॥ २८९ ॥

आठवें भाव में सूर्य के होने पर शत्रु से सदा विपत्ति, मंगल व चन्द्रमा से हानि, शनि से भय, बुध से मान-धन की प्राप्ति, गुरु से अधिक विजय और शुक्र से विशेष कर पुरुषों को सुख होता है ॥ २८८–२८९ ॥

नवें भाव में ग्रहों का फल

नवमस्थानगे जीवे बुद्धिभाग्याभिवर्द्धनम् ।
बुधे विविधभोगाप्तिः शुक्रे मन्दोदयो भवेत् ॥ २९० ॥
चन्द्रे धातुक्षयः प्रोक्तो धर्महानिश्च भास्करे ।
कुजे सामर्थ्यहानिः स्याद्रविजे कामदूषणम् ॥ २९१ ॥

नवें भाव में गुरु के होने पर बुद्धि, भाग्य की वृद्धि, बुध से अनेक भोगों की लब्धि, शुक्र से मन्दता का उदय, चन्द्रमा से धातु क्षय, सूर्य से धर्म की हानि, भौम से समर्थता का ह्रास और शनि से काम का दोष होता ॥ २९०–२९१ ॥

दशम भाव में ग्रहों का फल

दशमस्थानगे शुक्रे शयनासनसिद्धयः ।
सुराचार्ये महत्सौख्यं विजयश्च तथा बुधे ॥ २९२ ॥

मार्तण्डे धनवृद्धिश्च चन्द्रे कोशविवर्द्धनम् ।
भौमे बलं सदा पुंसां शनौ कीर्तिविलोपनम् ।। २९३ ।।

दसवें भाव में शुक्र के होने पर शयन, आसन, सिद्धि, गुरु से बड़ा सुख, बुध से विजय, सूर्य से धन की वृद्धि, चन्द्रमा से कोश की वृद्धि, भौम से सदा बल और दसवें में शनि होनेपर कीर्ति (यश) का नाश होता है ।। २९२–२९३ ।।

ग्यारह व बारहवें में ग्रहों का फल

लाभस्थानगताः सर्वे प्रयच्छंति शुभं फलम् ।
व्यये सर्वे सदौदास्यं प्रदिशन्ति विशेषतः ।। २९४ ।।

गृहारम्भ की लग्न से ग्यारहवें में समस्त ग्रह शुभ फल देने वाले और बारहवें में समस्त ग्रह (शुभ-पाप) विशेष कर सर्वदा उदासीनता देनेवाले होते हैं ।। २९४ ।।

अथ विशेषफलं योगजमाह—

आगे योग से उत्पन्न विशेष को बताते हैं ।

फल ज्ञान सारणी

ग्रहा.	सूर्य	चन्द्रमा	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
तनु १	वज्रपात	कोश हानि	मृत्यु	सामर्थ्य	त्रिवर्ग	पुत्रोत्पत्ति	दारिद्रय
धन २	हानि	शत्रु क्षय	बन्धन	धन संपत्	धर्मलाभ	विनोद	नानाविधः
तृतीय ३	विशेष लाभ	शुभ	अतिशुभ	शुभ	शुभ	शुभ	अतिशुभ
चतुर्थ ४	महा लाभ	बुद्धि नाश	मित्र भेद	लाभ	नृपमान्य	भूमिलाभ	मित्रविरह.
पंचम ५	पुत्र पीड़ा	कलह	कार्य हानि	स्वर्ण लाभ	मित्रार्थ लाभ	पुत्रार्थप्राप्ति	कामनाश
छठा ६	राजपूजा	पुष्टि	मानादि लाभ	धनलाभ	विद्या लाभ	विद्यालाभ	शत्रुहानि
सप्तम ७	कीर्ति भंग	रोग	विग्रह	हयभोग	राजभोग	भूमियोग	नानाभय
अष्टम ८	शत्रु से दुःख	हानि	भय	मानादिलाभ	विजय	स्वजन सुख	भय
नवम ९	धर्महानि	धातुक्षय	सामर्थ्य हानि	नानाभोग लाभ	बुद्धि भाग्य वृद्धि	मन्दोदय	काम दूषण
दशम १०	धन वृद्धि	कोशवृद्धि	बलवृद्धि	विजय	बड़ा सुख	शय्यादि सुख	कीर्तिलोप
एकाद. ११	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ
द्वादश १२	हानि	हानि	हानि	हानि	हानि	हानि	हानि

घर की आयु का ज्ञान

[1]रामदैवज्ञः—

जीवार्कविच्छुक्रशनैश्चरेषु लग्नारियामित्रसुखत्रिगेषु ।
स्थितिः शतं स्याच्छरदां सितार्कारिज्ये तनुत्र्यंगसुते शतं द्वे ।। २९५ ।।

रामदैवज्ञ ने बताया है कि गृहारम्भ कालीन लग्न से लग्न में गुरु, छठे में सूर्य, सातवें बुध, चौथे में शुक्र और तीसरे भाव में शनि होने पर मकान की पूर्ण आयु १०० वर्ष की होती है। यह एक योग, तथा लग्न में शुक्र, तीसरे में सूर्य, छठे में मंगल और पाँचवें में गुरु होने पर मकान की आयु २०० वर्ष की होती है यह दूसरा योग होता है ।। २९५ ।।

आयु सम्बन्धी अन्य योग

लग्नाम्बरायेषु भृगुज्ञभानुभिः केन्द्रे गुरौ वर्षशतायुरालयम् ।
बंधौ गुरुर्व्योम्नि शशी कुजार्कजौ लाभे तदाशीति समायुरालयम् ।।२९६।।

मुहूर्तचिन्तामणि में बताया है कि गृहारम्भ कालीन लग्न से लग्नस्थ शुक्र, दसवें में बुध, ग्यारहवें सूर्य और लग्न रहित (४।७।१०) में गुरु होने पर मकान की आयु १०० वर्ष की होती है।

तथा गुरु चौथे में, चन्द्रमा दसवें में, मंगल शनि एकादश भाव में होने पर घर की आयु ८० वर्ष की होती है ।। २९६ ।।

लक्ष्मी युक्त के ३ तीन योग

स्वोच्चे शुक्रे लग्नगे वा गुरौ वेश्मगतेथवा ।
शनौ स्वोच्चे लाभगे वा लक्ष्म्या युक्तं चिरं गृहम् ।। २९७ ।।

अपनी उच्च राशि मीन लग्न में शुक्र होने पर (१) या चौथे में कर्क का गुरु होनेपर (२) या ग्यारहवें भाव में तुला का शनि होने पर लग्न से गृहारम्भ किया जाय तो अधिक काल तक घर में लक्ष्मी निवास करती है ।। २९७ ।।

१ वर्ष के भीतर दूसरे के हाथ में घर जाने का योग

द्यूनाम्बरे यदैकोऽपि परांशस्थो ग्रहो गृहम् ।
अब्दान्तः परहस्तस्थं कुर्याच्चेद्वर्णपोऽबलः ।। २९८ ।।

मुहूर्त चिन्तामणि में बताया है कि गृहारम्भ कालीन लग्न से अधिक शुभ फल दाता एक भी ग्रह शत्रु के नवांश स्थित होकर सातवें भाव या चौथे भाव में हो तथा ब्राह्मणादि वर्ण ग्रह स्वामी ग्रह भी बलहीन हो तो १ एक वर्ष के भीतर दूसरे के हाथ में घर चला जाता है ।। २९८ ।।

---

१. मु. चि. १२ प्र. २२-२६ श्लो. ।

गृहारम्भ नक्षत्र वश विशेष फल

पुष्यध्रुवेन्दुहरिसर्पजलैः सजीवैः तद्वासरेण च कृतं सुतराज्यदं स्यात् ।
द्वीशाश्वितक्षि वसुपाशिशिवैः सशुक्रैर्वरिसितस्य च गृहं धनधान्यदं स्यात् ॥२९९॥

मुहूर्त चिन्तामणि में बताया है कि पुष्य, ध्रुव संज्ञक, मृगशिरा, श्रवण, आश्लेषा, पूर्वाषाढा नक्षत्रों में गुरु के रहने पर या गुरु भुक्त नक्षत्र, गुरुवार में प्रारम्भ किया गया घर पुत्र एवं राज्यप्रद होता है ।

तथा विशाखा, अश्विनी, चित्रा, धनिष्ठा, शतभिषा और आर्द्रा नक्षत्र में से किसी में शुक्र होने पर, शुक्र युक्त नक्षत्र व शुक्रवार में प्रारम्भ किया गया घर धनधान्य से परिपूर्ण होता है ॥ २९९ ॥

गृहारम्भ वश राजयोग ज्ञान

नारदः—

[1]श्रवणाषाढयोश्चैव रोहिण्यां चोत्तरात्रयम् ।
गुरुवारे कृतं वेश्म राजयोगः सहोच्यते ।
तद्गृहे जातपुत्रस्य राज्यं भवति निश्चितम् ॥ ३०० ॥

ऋषि नारदजी ने बताया है कि श्रवण, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, रोहिणी, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तराभाद्रपद नक्षत्र और गुरुवार में मकान बनाने का आरम्भ करने पर राजयोग और उस घर में पुत्र उत्पन्न होने से उसे निश्चय ही राज्य प्राप्त होता है ॥ ३०० ॥

लक्ष्मी युक्त घर का योग

[2]वशिष्ठः—

इज्योत्तरात्रयाहींदुविष्णुधातृजलोडुषु ।
गुरुणा सहिते धिष्ण्ये कृतं गेहं श्रियान्वितम् ॥ ३०१ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने कहा है कि पुष्य, तीनों उत्तरा, श्लेषा, मृगशिरा, श्रवण, रोहिणी, शततारका नक्षत्र और गुरुवार में गृहारम्भ करने पर मकान लक्ष्मी से युक्त होता है ॥ ३०१ ॥

कुबेर समान घर का लक्षण

[3]अश्विनीशततारासु विशाखाभाद्रचित्रकैः ।
धनिष्ठा दितिभे शुक्रे संयुक्ते शुक्रवासरे ॥ ३०२ ॥
तद्वेश्मनि प्रजातस्तु कुबेरसदृशो भवेत् ॥ ३०३ ॥

१. मु. चि. २६ श्लो पी. टी. ।
२. व. सं. ३९ अ. ३२ श्लो. ।
३. मु. चि. १३ प्र. २६ श्लो. पी. टी. ।

जबकि अश्विनी, शतभिषा, विशाखा, दोनों भाद्रपदा, चित्रा, धनिष्ठा, पुनर्वसु में से किसी नक्षत्र में शुक्र के रहने पर शुक्रवार में गृहारम्भ किया जाता है तो उस घर में पैदा होने वाला कुवेर के समान होता है ॥ ३०२–३०३ ॥

अशुभ घर के नक्षत्र

अन्यत्रापि—

[1]मूलं च रेवती चैव कृत्तिकाषाढमेव च।
पूर्वाफाल्गुनीहस्तश्च मघा चैव तु सप्तके ॥ ३०४ ॥
एत्र भौमेन युक्तेषु वारे तस्यैव निर्मिते।
अग्निना दह्यते कृत्स्नं पुत्रनाशश्च जायते । ३०५ ॥

ग्रन्थान्तर में भी बताया है कि मूल, रेवती, कृत्तिका, आषाढद्वय, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, मघा नक्षत्र इन सात में से किसी १ में भौम के रहने पर भौमवार में जब घर का निर्माण किया जाता है तो पूर्ण मकान अग्नि से जलता है और पुत्र का नाश होता है ॥ ३०४–३०५ ॥

धन पुत्र सुखप्रद मकान

हस्तार्कमैत्रत्वाष्ट्रदस्र चतुरस्रोडुभेषु च।
सबुधे बुधवारे च धनपुत्रसुखप्रदम् ॥ ३०६ ॥

हस्त, पुनर्वसु, अनुराधा, चित्रा, अश्विनी नक्षत्र इन चारों में से किसी एक में बुध के रहने पर बुधवार में गृहारम्भ करने पर धन, पुत्र, सुख की प्राप्ति होती है ॥ ३०६ ॥

विशेष—यहाँ चतुरस्र के स्थान पर 'चतुरास्यो.....' ऐसा पाठ उचित प्रतीत होने से रोहिणी नक्षत्र का ग्रहण मेरी दृष्टि में ठीक है ॥ ३०६ ॥

यक्ष राक्षस युक्त घर

अजपाद्वितये याम्यमित्रेन्द्रानिलभेपि च।
समन्दे मन्दवारे च गृह्यते यक्षराक्षसैः।
पुत्रे जातेऽथवा तस्मिन् गृह्यते यक्षराक्षसैः ॥ ३०७ ॥

पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, भरणी, अनुराधा या मित्र संज्ञक, ज्येष्ठा, कृत्तिका नक्षत्र में से किसी एक में शनि के रहने पर शनिवार में गृहारम्भ करने पर मकान का यक्ष, राक्षसों द्वारा ग्रहण होता है तथा उसमें पुत्र होने पर उसका भी यक्ष राक्षस ग्रहण करते हैं ॥ ३०७ ॥

---

१. मु. चि. १२ प्र. २७ श्लो, पी. टी।

सुतार्तिद व पुत्र सुख प्रद घर

रामदेवज्ञोऽपि—

[1]सारे: करेज्यान्त्यमघांबुमूलै: कौजेह्निवेश्माग्निसुतार्तिदं स्यात् ।
संज्ञै: कदास्त्रार्यमतक्षहस्तै: ज्ञस्यैव वारे सुखपुत्रदं स्यात् ॥ ३०८ ॥

श्रीरामदैवज्ञ ने मुहूर्तचिन्तामणि में बताया है कि हस्त, पुष्य, रेवती, मघा, पूर्वाषाढ, मूल नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र में भौम के होने पर मंगलवार में गृहारम्भ करने पर मकान अग्नि से नष्ट होता है और पुत्र पीड़ा होती है । तथा रोहिणी, अश्विनी, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, हस्त नक्षत्र में से किसी एक में बुध के रहने पर बुधवार में गृहारम्भ करने पर सुख व पुत्र की प्राप्ति होती है ॥ ३०८ ॥

राक्षस व भूत युत घर

अजैकपादहिर्बुध्न्यशक्रमित्रानिलांतकै: ।
समन्दैर्मन्दवारे स्याद्रक्षोभूतयुतं गृहम् ॥ ३०९ ॥

पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, ज्येष्ठा, अनुराधा, स्वाती, भरणी नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र में शनि के होने पर, शनिवार में घर का आरम्भ करने पर मकान राक्षस व भूतों से युक्त होता है ॥ ३०९ ॥

अशुभ घर योग

[2]गृहेशतस्त्रीसुखवित्तनाशोर्केंद्वीज्यशुक्रे विबलेस्तनीचे ।
कर्तुः स्थितिर्नो विधुवास्तुनोर्मे पुरस्थिते पृष्ठगते खनिः स्यात् ॥ ३१० ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि सूर्य, चन्द्रमा, गुरु और शुक्र इन चारों में से कोई भी ग्रह यदि बलहीन या अस्त अथवा नीच राशि में होने पर क्रम से गृह स्वामी, स्वामी की पत्नी, सुख और धन का विनाश होता है । चन्द्रमा एवं घर का नक्षत्र ये दोनों यदि आगे हों तो घर बनाने वाले की स्थिति (निवास) घर में नहीं होती है । उपर्युक्त दोनों नक्षत्र यदि पीछे हों तो चोरी का भय होता है ॥ ३१० ॥

पुनः भिन्न योग

[3]यदुक्तं शंभुना—

गृहायलब्धऋक्षं च यत्र ऋक्षे च चन्द्रमाः ।
शलाका सप्तके देयं कृत्तिकादि क्रमेण च ॥ ३११ ॥
वामदक्षिणभागे तत्प्रशस्तं शान्तिकारकम् ।
अग्रे पृष्ठे न दातव्यं यदीच्छेच्छ्रियमात्मनः ॥ ३१२ ॥

---

१. मु. चि. १२ प्र. २७–२८ श्लो. ।
२. मु. चि. १२ प्र. ६ श्लो. ।
३. मु. चि. १२ प्र. ६ श्लो. पी. टी. ।

घर के पिण्ड द्वारा जो नक्षत्र हो तथा चन्द्रमा का जो नक्षत्र हो ये दोनों अर्थात् कृत्तिकादि से ७ सात सात नक्षत्र पूर्वादि दिशाओं में क्रम से सप्तशलाका चक्र की तरह स्थापित करने से यदि वाम दक्षिण भाग में हों तो शुभ और शान्ति कारक होता है। तथा आगे पीछे होने पर अपनी लक्ष्मी की वृद्धि के लिये अच्छा नहीं होता अर्थात् अशुभ होता है ॥ ३११–३१२ ॥

ग्रन्थान्तर से अशुभता ज्ञान

भृगु:—

चक्रे सप्तशलाकाख्ये कृत्तिकादीनि विन्यसेत्।
ऋक्षं चन्द्रस्य वास्तोश्च पुरः पृष्ठे च नो शुभम् ॥ ३१३ ॥

ऋषि भृगुजी ने बताया है कि जैसे सप्तशलाका चक्र में पूर्वादि दिशा क्रम से कृत्तिकादि नक्षत्रों की स्थापना होती है उसी प्रकार यहाँ पर भी स्थापना करनी चाहिये। तथा वास्तु चन्द्रमा का नक्षत्र आगे या पीछे होने पर शुभ नहीं होता है ॥ ३१३ ॥

भूमि खुदवाने का अधिकारी

अथाधिकारिणः—

स्वामिहस्तप्रमाणेन ज्येष्ठपत्नीकरेण वा।
गर्भमात्रं भवेद्गेहं नृणां प्रोक्तं पुरातनैः ॥ ३१४ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि गृहस्वामी के हाथ से या ज्येष्ठ पत्नी के हाथ से एक हाथ पर्यन्त भूमि को खोदकर परीक्षा करनी चाहिये। यह प्राचीनाचार्यों ने कहा है ॥ ३१४ ॥

विशेष—'हस्तमात्रं खनेद् भूमिं' यह ग्रन्थान्तर में उचित पाठ है ॥ ३१४ ॥

हाथ का प्रमाण

अथ हस्तमानम्

[1]ज्योतिर्विदाभरणे —

षडक्षतैराजमिहांगुलं भवेत्सप्ताक्षतैर्वैष्णवमैशमंगुलम्।
यवोदरैरष्टभिरत्रतत्करो जिनांगुलैस्तैश्च धनुश्चतुष्कम् ॥ ३१५ ॥

ज्योतिर्विदाभरण में कहा है कि ६ अक्षतों के बराबर ब्रह्मा का अंगुल, ७ अक्षतों का विष्णु का और आठ जौ के तुल्य शंकर का अंगुल का मान होता है। और उनके २४, २४ अंगुल का हाथ होता है। ४ हाथ का १ धनुष होता है ॥ ३१५ ॥

ब्रह्मादि किस अंगुल का कहाँ उपयोग करना

प्रसादकुण्डादिकपीठवेदिकाद्विजालयेषु स्मृतमाजमंगुलम्।
जलाशयारामविधौ नृपालये निधौ हितं वैष्णवमन्यदन्यगम् ॥३१६॥

---

१. १५ प्र. २५ श्लो.।

प्रासाद (महल), कुण्डादि, पीठ, वेदिका व ब्राह्मणों के घर में ब्रह्मा अंगुल का, जलाशय (सरोवरादि) बगीचा व निधि (कोशागार) में वैष्णव अंगुल का और अन्य कार्यों में शम्भु के अंगुल का उपयोग करना चाहिए ॥ ३१६ ॥

विप्रादि हेतु गृहारम्भ में प्रथम स्पर्श

भृगुः –

विप्रः शीर्षं नृपो वक्षो वैश्यश्चोरू परः पदौ ।
स्पृष्ट्वा रेखां गृहारम्भे कुर्यादग्नेः प्रदक्षिणम् ॥ ३१७ ॥

ऋषि भृगुजी ने बताया है कि ब्राह्मण को मस्तक, क्षत्रिय को छाती, वैश्य को घुटना और शूद्रों को पैरों का स्पर्श करके गृहारम्भ में रेखा तथा अग्नि की प्रदक्षिणा करनी चाहिये ॥ ३१७ ॥

भूमि परीक्षण के बाद

[1]वास्तुराजवल्लभे—

परीक्षितायां भुवि विघ्नराजं समर्चयेच्चण्डिकया समेतम् ।
क्षेत्राधिपं चाष्टदिगीशदेवान्सुपुष्पधूपैर्बलिभिः सुखाय ॥ ३१८ ॥

वास्तुराजवल्लभ में बताया है कि भूमि की परीक्षा होने के पश्चात् सुख के लिये गणेशजी व चण्डिका की पूजा करके क्षेत्रपाल तथा आठों दिशाओं के रक्षकों की पुष्प, धूप और बलिदानादि से पूजा करनी चाहिये ॥ ३१८ ॥

भूमि की परीक्षा

खातं भूमिपरीक्षणे करमितं तत्पूरयेत्तन्मृदा
हीने हीनफलं समे समफलं लाभो रजो वर्द्धते ।
तत्कृत्वा जलपूर्णमाशतपदं गत्वा परीक्ष्यं पुनः
पादोनार्द्धविहीनकेथ निभृते मध्याधमेष्टांबुभिः ॥ ३१९ ॥

वास्तुराजवल्लभ में बताया है कि भूमि परीक्षार्थ एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा और एक हाथ गहरा गढ्ढा खोदकर उसे उसकी ही मिट्टी से भर कर देखना चाहिए। यदि भरने में माटी कम हो जाय तो अशुभ, बराबर हो तो मध्यम और अधिक होने पर भूमि उत्तम होती है ।

अथवा उस गर्त को पानी से पूर्ण करके १०० पैर जाकर लौटना, लौटने पर यदि सूख जाय तो अशुभ, कुछ पानी कम हो जाय तो मध्यम अर्थात् चौथाई पानी सूखने पर मध्यम, आधे से कम रहने अधम भूमि समझनी चाहिये ॥ ३१९ ॥

भिन्न रीति से परीक्षा

[2]वास्तुरत्नप्रदीपे—

कर्तुश्च हस्तप्रमितं खनित्वा खातं पयोभिः परिपूरितं चेत् ।
वसेत्सुखार्थी परिपूरितं स्याच्छुष्कं भवेत्तत्क्षणमेव नाशः ॥ ३२० ॥

१. १ अ, १५–१६ श्लो. । २. बृ. वा. २१ पृ. १०८–१०९ श्लो. ।

स्थिरे जले वै स्थिरता ग्रहस्य स्याद्दक्षिणावर्तजलेन सौख्यम् ।
क्षिप्रं जलं शोषयतीह खातो मृत्युर्हि वामेन जलेन कर्तुः ।। ३२१ ।।

वास्तुरत्नप्रदीप में बताया है कि घर के मालिक के हाथ के तुल्य लम्बा, चौड़ा, गहरा गर्त करके उसे जल से भर कर देखना कि यदि जल भरा रहे तो शुभ और उसी समय सूख जाय तो अनिष्ट होता है। जल भरते समय में जल की स्थिरता से घर स्थिर और दक्षिणावर्त घूमने पर सौख्य एवं वामावर्त जल घूमने पर मकान मालिक की मृत्यु होती है ।। ३२०–३२१ ।।

खोदते समय पत्थर आदि निकलने का फल

अथ खननकाले पाषाणादि दर्शनफलम्—

[1]तत्रैव—

खाते यदि श्मा लभते हिरण्यं तथेष्टिकायां च समृद्धिरत्र ।
द्रव्यं च रम्याणि सुखानि धत्ते ताम्रादिधातुर्यदि तत्र वृद्धिः ।। ३२२ ।।

यदि खोदते समय पत्थर प्राप्त हो तो सुवर्ण का लाभ, इंट मिले तो समृद्धि होती है, द्रव्य मिले तो उत्तम सुख मिलता है और तामा आदि धातु मिलने पर वृद्धि होती है ।।

पिपीलिका षोडशपक्षनिद्रा भवन्ति चेत्तत्र वसेन्न कर्ता ।
तुषास्थिचीराणि तथैव भस्मान्यण्डानि सर्पा मरणप्रदाः स्युः ।। ३२३ ।।
वराटिका दुःखकलिप्रदात्री कार्पास एवातिददाति दुःखम् ।
काष्ठं प्रदग्धं यतिरोगभीतिर्भवेत्कलिः खर्परदर्शनेन ।। ३२४ ।।
लौहेन कर्तुर्मरणं निगद्यं विचार्य वास्तुं प्रदिशन्ति धीराः ।। ३२५ ।।

चींटी, दीमक, अजगर वगैरह मिलने पर उसमें गृह कर्ता को निवास नहीं करना चाहिये। तथा भूसा, भस्म, अण्डा, सर्प आदि निकलने पर मृत्यु, कौड़ी मिलने पर दुःख व कलह की प्राप्ति, कार्पास से विशेष दुःख, जले हुए काठ से अधिक रोग, खप्पर से कलह और लोहे से मकान स्वामी का मरण होता है। इसलिये इनका विचार करके बुद्धिमान् को गृहारम्भ कराना चाहिये ।। ३२२–३२५ ।।

शिलाभेद ज्ञान

बृहस्पतिः—

कृष्णाष्टम्यां च सप्तम्यां रौद्रभे यस्य कस्य चित् ।
राशौ लग्ने कुजांशे च शिलाभेदः प्रचोदितः ।। ३२६ ।।

आचार्य बृहस्पतिजी ने बताया है कि कृष्णपक्ष की सप्तमी या अष्टमी तिथि, आर्द्रा नक्षत्र, भौम की राशि लग्न व मंगल के नवांश में शिलाभेद (पत्थर काटना) करना चाहिये ।। ३२६ ।।

---

१. बृ. वा. २२ पृ. ११३–११५ श्लो. ।

गृह निर्माणार्थ ईंटों के नाम

अथ इष्टिकादाने तन्नामानि—

[1]विजया मंगला चैव निर्मला सुखदेति च ।
चतुर्द्धा चेष्टिका प्रोक्ता गृहे च वरुणालये ।। ३२७ ।।

ग्रन्थान्तर में बताया है कि १ विजया, २ मंगला, ३ निर्मला, ४ सुखदा ये चार प्रकार की ईंट मकान और जलाशय के लिये शुभ होती हैं ।। ३२७ ।।

उक्त ईंटों का प्रमाण

तिथ्यंगुलानि विजया मंगला सप्तचन्द्रकैः ।
पक्षेन्दुर्भिनिर्मला स्यात्सुखदारामपक्षभिः ।। ३२८ ।।
प्रमाणमिष्टिकायाश्च गर्गाद्यैर्मुनिभिः स्मृतम् ।। ३२९ ।।

१५ अंगुल की ईंट विजया, १७ अंगुल की मंगला, १२ अंगुल की निर्मला एवं २३ अंगुल की सुखदा नामक गर्गादि ऋषियों ने बताई है ।। ३२८–३२९ ।।

ईंटों का चक्र ज्ञान

अथ तस्याश्चक्रम्—

[2]पञ्चत्रीणि त्रिकं पञ्च सप्तपञ्चावनीयभात् ।
सौख्यमृत्युक्रमेणैव इष्टिकारम्भकर्मसु ।। ३३० ।।

ग्रन्थान्तर में कहा है कि मकान बनवाने के लिये भौम जिस नक्षत्र में हो उससे ५ नक्षत्र तक सुख, इसके बाद ३ नक्षत्र तक में मृत्यु, पुनः ३ तीन में सुख, तत्पश्चात् ५ नक्षत्र में मृत्यु, ततः ७ नक्षत्र तक सुख और इसके बाद के ५ पांच नक्षत्रों में निर्माण कराने पर मरण होता है ।। ३३० ।।

स्पष्टार्थ चक्र

भौम नक्षत्र से सं०	५	३	३	५	७	५
फल	सुख	मृत्यु	सुख	मृत्यु	सुख	मृत्यु

खात में स्थापित करने की वस्तु

तद्दाह चक्रम्—

सप्तपञ्चमुनिर्वेदपञ्चभिः शोकलाभरुजभीतिभिः सुखम् ।
भौमभाच्च गणयेत्सुधीः सदा इष्टिकोपरि सुवह्निदीपनम् ।। ३३१ ।।

ग्रन्थान्तर में बताया है कि भौम के नक्षत्र से ७ सात नक्षत्रों तक ईंटों को पकाने पर शोक, तत्पश्चात् ५ नक्षत्रों में लाभ, इसके बाद ७ सात नक्षत्रों में रोगभय, पुनः ४ चार में भय और इसके बाद के ५ पांच नक्षत्रों में मिट्टी की ईंटों को अग्नि से प्रज्वलित करने पर सुख होता है ।। ३३१ ।।

---

१. बृ. वा. २३ पृ. १२० श्लो. । २. बृ. वा. २४ पृ. १२१–१२२ श्लो. ।

स्पष्टार्थ चक्र

भौम नक्षत्र से संख्या	७	५	७	४	५
फल	शोक	लाभ	रोगभय	भय	सुख

ईंटों को अग्नि से जलाने का मुहूर्त

अन्यः—

मृत्येष्टिकां स्वर्णरत्नधान्यशैवालसंयुताम् ।
ताम्रपात्रस्थितं सर्वं खातमध्ये नियोजयेत् ।। ३३२ ।।

ग्रन्थान्तर में बताया है कि मिट्टी की ईंट को सुवर्ण, रत्न, धान्य, सिवार (जलीय पेड़) इन सब को तांवे के पात्र में रखकर खात में स्थापित करना चाहिये ।। ३३२ ।।

स्तम्भ (खम्भा) को उठाना

अथ शिलान्यासः—

[1]वराहः—

छत्रस्रगम्बरयुतः कृतधूपविलेपनस्तंभः ।
स्थाप्यस्तथैव कार्यो द्वारोच्छ्रायः प्रयत्नेन ।। ३३३ ।।

आचार्य वराहजी ने बताया है कि जिस दिशा में शिलान्यास किया जाता है उसी क्रम से छत्र, माला, वस्त्र, धूप और चन्दन से विभूषित करके स्तम्भ को खड़ा करना तथा दरवाजे को भी इसी तरह उत्थापित करना चाहिये ।। ३३३ ।।

शिलान्यास का क्रम

[2]दक्षिणपूर्वे कोणे कृत्वा पूजां शिलां न्यसेत्प्रथमाम् ।
शेषाः प्रदक्षिणेन स्तंभाश्चैवं प्रतिस्थाप्याः ।। ३३४ ।।

बृहत्संहिता में कहा है कि पूर्व व दक्षिण दिशा के मध्य में अर्थात् अग्निकोण में पूजा करके प्रथम शिला स्थापित करके प्रदक्षिणा के क्रम से अर्थात् अग्नि के बाद दक्षिण, इसके बाद नैर्ऋत्य ततः पश्चिमादि दिशाओं में स्थापित करना चाहिये, एवं खम्भ को भी इसी रीति से बनवाना चाहिये ।। ३३४ ।।

विशेष—उत्पलाचार्य जी ने किसी के मत में उत्तर पूर्व अर्थात् ईशानकोण में शिलान्यास करना बताया है । तथा प्रकाशित हिन्दी टीका के मूल में भी किसी पुस्तक में 'उत्तर पूर्वे कोणे' यह पाठ भी उपलब्ध होता है ।। ३३४ ।।

---

१. बृ. सं. ५३ अ. ११३ श्लो. ।
२. बृ. सं. ५३ अ. ११८ श्लो. ।

[1]शारंगधरः—

प्रासादेषु च हर्म्येषु गृहेष्वन्येषु सर्वदः।
आग्नेय्यां प्रथमं स्तंभं स्थापयेत्तद्विधानतः॥ ३३५॥

ऋषि शारङ्गधर ने बताया है कि प्रासाद, हर्म्य तथा अन्य घर में भी सर्वदा अग्नि कोण में ही शिलान्यास खम्भों के लिये भी करना चाहिये॥ ३३५॥

[2]ब्रह्मशंभु—

सूत्रभित्तिशिलान्यासं स्तंभस्यारोपणं तथा।
पूर्वदक्षिणयोर्मध्ये कुर्यादित्याह कश्यपः॥ ३३६॥

ब्रह्मशम्भुजी ने बताया है कि सूत्र भित्ति, शिलान्यास, खम्भे की स्थापना प्रथम पूर्व दक्षिण के कोण में अर्थात् अग्निकोण में करनी चाहिये। यह कश्यप जी ने बताया है॥ ३३६॥

स्तम्भों के नाम

अथ स्तंभनामानि—

[3]टोडरानन्दे—

समचतुरस्रो रुचको वज्रोष्ठास्त्रिर्द्विवज्रको द्विगुणः।
द्वात्रिंशता तु मध्ये प्रलीनको वृत्त इति वृत्तः॥ ३३७॥

टोडरानन्द में कहा है कि खम्भे के चार भाग समान अर्थात् चौकोर होने पर 'रुचक', आठ कोर होने पर वज्र, १६ सोलह होने पर द्विवज्र और ३२ बत्तीस कोर (कोण) वाला होने से प्रलीनक और गोलाकार होने पर वृत्त संज्ञा होती है॥३३७॥

विशेष—यह श्लोक वृहत्संहिता की बावनवें अध्याय में प्राप्त है॥ ३३७॥

घर की ऊँचाई का प्रमाण

अथ गृहोच्चमानम्—

[4]वाराहीये—

विस्तारषोडशांशः स चतुर्हस्तो भवेद्ग्रहोच्छ्रायः।
द्वादशभागेनोनो भूमौ भूमौ समस्तानाम्॥ ३३८॥

वृहत्संहिता में बताया है कि भवन के व्यास मान के सोलहवें हिस्से में चार हाथ जोड़कर जो हो तत्तुल्य प्रथम मकान की ऊँचाई तथा उसके ऊपर वाले की उससे द्वादशांश तुल्य कम इसी प्रकार से तीन-चार-पाँच मंजिल वाले की उन्नति जाननी चाहिये॥ ३३८॥

---

१. ज्यो. नि. १६८ पृ. १ श्लो.।
२. ज्यो. नि. १६८ पृ. १ श्लो.।
३. वृ. सं. ५३ अ. २८ श्लो.।
४. वृ. सं. ५३ अ. २२ श्लो.।

पक्की ईंट व लकड़ी के घर में भीत का प्रमाण

[1]भासात्षोडशभागः सर्वेषां सद्मनां भवति भित्तिः।
पक्वेष्टकाकृतानां दारुकृतानां तु न विकल्पः॥ ३३९॥

वाराही संहिता में कहा है कि पक्की ईंटों के घर में मकान के सोलहवें भाग में भीत बनवानी चाहिये। किन्तु लकड़ी के घर बनाने में व्यास का यह नियम नहीं होता है। अर्थात् अपनी इच्छानुसार निर्माण कराना चाहिये॥ ३३९॥

प्रधान द्वार की ऊँचाई और व्यास

[2]एकादशभागयुतः स सप्ततिर्नृपबलेशयोर्व्यासः।
उच्छ्रायोंगुलतुल्यो द्वारस्यार्द्धेन विष्कंभः॥ ३४०॥

वृहत्संहिता में बताया है कि राजा और सेनापति के घर के विस्तार में उसी का ग्यारहवाँ भाग एवं ७० जोड़कर जो हो तत्तुल्य अंगुल प्रधान दरवाजे की ऊँचाई होती है। तथा दरवाजे की ऊँचाई के आधे के समान व्यास होता है॥ ३४०॥

शाखा, उदुम्बर के पृथुत्व एवं खम्भे के अग्र मूल का प्रमाण

[3]उच्छ्रायात्सप्तगुण्यादशीतिभागः पृथुत्वमेतेषाम्।
नवगुणितेऽशीत्यंशः स्तंभस्य दशांशहीनोग्रे॥ ३४१॥

राजा के दरवाजे की ऊँचाई को ७ सात से गुना करके ८० अस्सी से भाग देने पर लब्धि के समान शाखा (चौखट) की मोटाई होती है।

तथा खम्भे की ऊँचाई को ९ से गुणा कर ८० का भाग देने पर लब्धि तुल्य स्तम्भ के मूल भाग की मोटाई और स्वकीय दशमांश से हीन मोटाई के बराबर खम्भे के आगे के भाग की मोटाई होती है॥ ३४१॥

विशेष—इसका उदाहरण भट्टोत्पली में उपलब्ध है। जैसे—राजा के द्वार की ऊँचाई १८८ अंगुल है इसलिये $१८८ \times ७ = १३१६$ इसमें ८० का भाग देने पर $१३१६ \div ८० = $ लब्धि $= १६\frac{९}{८०}$ तुल्य शाखा व उदुम्बर (देहली) का विस्तार हुआ।

तथा राजा के प्रथम महल की ऊँचाई तुल्य स्तम्भ की ऊँचाई १० हाथ १८ अंगुल है। इसको अंगुलात्मक करने पर $१० \times २४ + १८ = २५८$ अंगुल हुआ। इसे ९ से गुणा कर ८० का भाग देने पर $= \frac{२५८ \times ९}{८०} = \frac{१२९ \times ९}{४०} = \frac{११६१}{४०} = २९\frac{१}{४०}$ के तुल्य खम्भे के मूल की मोटाई हुई। इसमें इसके दशमांश को घटाने पर $= \frac{११६१}{४०} - \frac{११६१}{४००} = \frac{११६१० - ११६१}{४००} = \frac{१०४४९}{४००} = २६\frac{४९}{४००}$ यह स्तम्भ के अग्रभाग की मोटाई हुई॥ ३४१॥

---

१. वृ. सं. ५३ अ. २३ श्लो.। २. वृ. सं. ५३ अ. २४ श्लो.।
३. वृ. सं. ५३ अ. २७ श्लो.।

सुतार्तिद व पुत्र सुख प्रद घर

रामदैवज्ञोऽपि—

[1]सारैः करेज्यान्त्यमघांबुमूलैः कौजेह्निवेश्माग्निसुतार्तिदं स्यात् ।
संज्ञैः कदास्रार्यमतक्षहस्तैः ज्ञस्यैव वारे सुखपुत्रदं स्यात् ॥ ३०८ ॥

श्रीरामदैवज्ञ ने मुहूर्तचिन्तामणि में बताया है कि हस्त, पुष्य, रेवती, मघा, पूर्वाषाढ, मूल नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र में भौम के होने पर मंगलवार में गृहारम्भ करने पर मकान अग्नि से नष्ट होता है और पुत्र पीड़ा होती है । तथा रोहिणी, अश्विनी, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, हस्त नक्षत्र में से किसी एक में बुध के रहने पर बुधवार में गृहारम्भ करने पर सुख व पुत्र की प्राप्ति होती है ॥ ३०८ ॥

राक्षस व भूत युत घर

अजैकपादहिर्बुध्न्यशक्रमित्रानिलांतकैः ।
समन्दैर्मन्दवारे स्याद्रक्षोभूतयुतं गृहम् ॥ ३०९ ॥

पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, ज्येष्ठा, अनुराधा, स्वाती, भरणी नक्षत्र में से किसी एक नक्षत्र में शनि के होने पर, शनिवार में घर का आरम्भ करने पर मकान राक्षस व भूतों से युक्त होता है ॥ ३०९ ॥

अशुभ घर योग

[2]गृहेशतस्त्रीसुखवित्तनाशोऽर्केन्द्वीज्यशुक्रे विबलेऽस्तनीचे ।
कर्तुः स्थितिर्नो विधुवास्तुनोर्मे पुरस्थिते पृष्ठगते खनिः स्यात् ॥ ३१० ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि सूर्य, चन्द्रमा, गुरु और शुक्र इन चारों में से कोई भी ग्रह यदि बलहीन या अस्त अथवा नीच राशि में होने पर क्रम से गृह स्वामी, स्वामी की पत्नी, सुख और धन का विनाश होता है। चन्द्रमा एवं घर का नक्षत्र ये दोनों यदि आगे हों तो घर बनाने वाले की स्थिति (निवास) घर में नहीं होती है । उपर्युक्त दोनों नक्षत्र यदि पीछे हों तो चोरी का भय होता है ॥ ३१० ॥

पुनः भिन्न योग

[3]यदुक्तं शंभुना—

गृहायलब्धऋक्षं च यत्र ऋक्षे च चन्द्रमाः ।
शलाका सप्तके देयं कृत्तिकादि क्रमेण च ॥ ३११ ॥
वामदक्षिणभागे तत्प्रशस्तं शान्तिकारकम् ।
अग्रे पृष्ठे न दातव्यं यदोच्छेच्छ्रियमात्मनः ॥ ३१२ ॥

---

१. मु. चि. १२ प्र. २७–२८ श्लो. ।
२. मु. चि. १२ प्र. ६ श्लो. ।
३. मु. चि. १२ प्र. ६ श्लो. पी. टी. ।

भिन्न प्रकार से

तथा च वसिष्ठः—

[1]ऐन्द्रयां दिशि स्नानगृहमाग्नेय्यां पचनालयम् ।
याम्यायां शयनं वेश्म नैऋत्यां शस्त्रमंदिरम् ॥ ३४६ ॥
पश्चिमायां भोजनगृहं वायव्यां धान्यमंदिरम् ।
उदीच्यां हाटकं सद्म ऐशान्यां देवमंदिरम् ॥ ३४७ ॥

और भी वसिष्ठ ऋषि ने कहा है कि पूर्व दिशा में नहाने का कमरा, अग्निकोण में रसोई बनाने का, दक्षिण में शयन करने का, नैऋत्य कोण में शस्त्र रखने का, पश्चिम में भोजन करने का, वायव्य में अन्न का, उत्तर में हाटक (भण्डार) का और ईशान कोण में देवता का गृह बनवाना चाहिये ॥ ३४६–३४७ ॥

स्पष्टार्थ चक्र

वायव्य — उत्तर — ईशान

पश्चिम (बाईं ओर) — पूर्व (दाईं ओर)

कोषधान्य	रतिभोग	भण्डार घर	औषधि	देवता
रोदन				सर्ववस्तु
भोजन कक्ष				स्नानघर
विद्याभ्यास				दधिमन्थन
शस्त्रागर	शौचालय	शयनकक्ष	घी	रसोई

नैऋत्य — दक्षिण — ईशान

[2]नारदस्तु—

भाण्डागारं तूत्तरस्यां वायव्यां पशुमंदिरम् ॥ ३४८ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि उत्तर में भाण्ड घर और वायव्य में पशुओं का घर बनाना चाहिये ॥ ३४८ ॥

[3]तथा च वसिष्ठः—

इंद्राग्न्योर्मंथनं मध्ये याम्याग्न्योर्घृतमंदिरम् ।
यमराक्षसयोर्मध्ये पुरीषत्यागमंदिरम् ॥ ३४९ ॥
राक्षसजलयोर्मध्ये विद्याभ्यासस्य मंदिरम् ।
तोयेशानिलयोर्मध्ये रोदनस्य च मंदिरम् ॥ ३५० ॥

१. व. सं. ३९ अ. १६४-१६५ श्लो. । २. मु. चि. १२ प्र. २१ श्लो. पी. टी. ।
३. व. सं. ३९ अ. १६७–१७१ श्लो. ।

कामोपभोगशमनं वायव्योत्तरयोर्गृहम् ।
कौबेरेशानयोर्मध्ये चिकित्सामंदिरं सदा ॥ ३५१ ॥
गृहं शरीरयोर्मध्ये सर्ववस्तुषु संग्रहम् ।
सदनं कारयेदेवं क्रमादुक्तानि षोडश ॥ ३५२ ॥
[1]ऐंद्रे तु विक्रमस्थानमाग्नेय्यां पचनालयम् ।
वारुण्यां भोजनगृहं नैर्ऋत्यां सूतिकागृहम् ॥ ३५३ ॥

ऋषिवसिष्ठ ने बताया है कि पूर्वदिशा व अग्नि कोण के बीच में मथन (दधि मंथन) का, दक्षिण और अग्नि के बीच में घी का घर, दक्षिण नैऋत्य के मध्य शौचालय, नैऋत्य पश्चिम के बीच में अध्ययन कक्ष, पश्चिम व्यायव्य के मध्य में रुदन घर, वायव्य और उत्तर दिशा के बीच विषय भोग शान्ति का घर, उत्तर व ईशान कोण के मध्य में चिकित्सा घर और घर व शरीर के बीच समस्त पदार्थ संग्रह करने का घर बनाने पर क्रम से सोलह घर होते हैं। पूर्व में पराक्रम का घर, अग्निकोण में रसोई का, पश्चिम में भोजन करने का और नैऋत्य कोण में सूतिका घर बनवाना चाहिये ॥ ३४९–३५३ ॥

दरवाजे का निर्णय

अथ द्वारनिर्णयः—

[2]ज्योतिःसारे—

पूर्वे ब्राह्मणराशीनां वैश्यानां दक्षिणे शुभम् ।
शूद्राणां पश्चिमे द्वारं नृपाणामुत्तरे मतम् ॥ ३५४ ॥

ज्योतिषसार में कहा है कि ब्राह्मण राशियों का पूर्व में, वैश्यों का दक्षिण में, शूद्रों का पश्चिम में और राजाओं का उत्तर दिशा में द्वार शुभ होता है ॥ २५४ ॥

[3]अथायवशेन रामदेवज्ञः—

ध्वजादिकाः सर्वदिशि ध्वजे मुखं कार्यं हरौ पूर्वयमोत्तरे तथा ।
प्राच्यां वृषे प्राग्यमयोर्गजे तथा पश्चादुदक्पूर्वयमे द्विजादितः ॥३५५॥

रामदैवज्ञ ने बताया है कि ध्वज आय होने पर समस्त दिशाओं में, सिंह आय में पूर्व, दक्षिण व उत्तर में, वृष आय में पूर्व में, गज में पूर्व व दक्षिण में दरवाजा बनाना चाहिये। या ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को क्रमशः पश्चिम, उत्तर, पूर्व और दक्षिण दिशा में दरवाजा बनाना शुभ होता है ॥ २५५ ॥

---

१. मु. चि. १२ प्र. १५ श्लो. पी. टी. ।
२. बृ. वा. ७७ पृ. १४५ श्लो. ।
३. मु. चि. १२ प्र. ५ श्लो. ।

सौरमास में दरवाजे का निर्णय

[1]श्रीपतिः—

कर्कनक्रहरिकुम्भगतेर्के पूर्वपश्चिममुखानि गृहाणि ।
तौलिमेषवृश्चिकयाते दक्षिणोत्तरमुखानि च कुर्यात् ॥ ३५६ ॥
अन्यथा यदि करोति दुर्मतिर्व्याधिशोकधननाशमाप्नुयात् ॥ ३५७ ॥

आचार्य श्रीपतिजी ने बताया है कि कर्क, मकर, सिंह, कुम्भ के सूर्य में पूर्व व पश्चिम दिशा में दरवाजे का मुख, तुला, मेष, वृष, वृश्चिक राशि के सूर्य में दक्षिण, उत्तर दिशा में दरवाजे का मुख रखना चाहिये। इसके विपरीत राशियों के सूर्य में मीन-धनु-मिथुन-कन्या में जो मकान बनवाता है वह बुद्धिहीन रोग व शोक से युक्त होता है ॥ ३५६–३५७ ॥

दिशाओं में दरवाजे का प्रमाण

[2]वास्तुप्रदीपे मांडव्यः —

नवभागं गृहं कृत्वा पंचभागं तु दक्षिणे ।
त्रिभागमुत्तरे कार्यं शेषं द्वारं प्रकीर्तितम् ॥ ३५८ ॥

वास्तुप्रदीप में माण्डव्य ऋषि जी ने कहा है कि घर के जिस भाग में दरवाजा बनाना हो उस भाग में नव ९ का भाग देकर पाँच भाग दक्षिण और ३ तीन भाग उत्तर में छोड़कर अवशिष्ट भाग में द्वार रखना चाहिये ॥ ३५८ ॥

विशेष—यहाँ वाम, दक्षिण भाग मकान से निकलते समय का लेना चाहिये। कहा है 'दक्षिणाङ्गः सर्वै प्रोक्तो मन्दिरान्निःसृते सति। यो भूयाद्दक्षिणे भागे वामे भूयात्स वामग इति' ॥ ३५८ ॥

पूर्व दिशा के ८ दरवाजों का नाम व फल

अथ पूर्वादि चतुर्दिक्षु द्वारनिवेशनफलान्याह ।

[3]वराहमिहिरः—

अनिलभयं स्त्रीजन्म प्रभूतधनता नरेंद्रतो लब्धिः ।
क्रोधाधिकत्वमनृतं क्रौर्यं चौर्यं क्रमात्पूर्वे ॥ ३५९ ॥

वृहत्संहिता में बताया है कि पूर्व दिशा के १ प्रथम दरवाजे का नाम शिखि होता है, इसमें दरवाजा रखने पर वायु का भय होता है। २ दूसरे का पर्जन्य, इसमें बनाने पर कन्या का जन्म होता है। ३ तीसरे का नाम जयन्त होता है इसमें दरवाजा रखने पर धन की अधिकता होती है। ४ चौथे का नाम इन्द्र है, इसमें रखने पर राजप्रियता

---

१. मु० चि० १२ प्र० १५ श्लो० पी० टी० ।
२. ज्यो० नि० १७२ पृ० १० श्लो० ।
३. वृ० सं० ५३ अ० ७२ ७५ श्लो० ।

होती है। ५ पांचवें का नाम सूर्य होता है इसमें बनाने पर क्रोध की अधिकता होती है। ६ छठे का नाम सत्य होता है इसमें असत्यता, ७ सातवें का नाम भृश होता है, इसमें क्रूरता और ८ आठवें का नाम अन्तरिक्ष होता है उसमें दरवाजा बनाने पर चोरी होती है ॥ ३५९ ॥

दक्षिण दिशा के ८ आठ दरवाजों का फल

अल्पसुतत्वं प्रेष्यं नीचत्वं भक्षपानसुतलब्धिः।
रौद्रकृतघ्नमधनं सुतवीर्यघ्नं च याम्येन ॥ ३६० ॥

वाराही संहिता में बताया है कि दक्षिण दिशा के पहिले मकान का नाम अनिल होता है, इसमें दरवाजे का न्यास करने पर पुत्र अल्प होते हैं। दूसरे हिस्से का नाम पौष्ण होता है, इसमें दरवाजा बनाने पर दास (नौकर) वृत्ति होती है। ३ तीसरे भाग की वितथ संज्ञा होती है, इसमें बनाने पर नीचता, चौथे का नाम बृहत्क्षत, इसमें भक्ष्य, पान और पुत्रवृद्धि, पाँचवें का नाम भाम्या, इसमें अशुभ ६ छठे का नाम गन्धर्व, इसमें कृतघ्नता, सातवें का नाम भृङ्गराज, इसमें निर्धनता और आठवें भाग का नाम मृग होता है, इसमें मकान का दरवाजा बनाने पर पुत्र एवं बल का नाश होता है ॥ ३६० ॥

पश्चिम के ८ भागों में बनाने का फल

सुतपीडा १ रिपुवृद्धि २ धनपुत्राप्ति ३ स्समार्थगुणसंपत् ।
धनलाभो नृपतिभयं धनक्षयो रोग इत्यपरे ॥ ३६१ ॥

बृहत्संहिता में कहा है कि पश्चिम दिशा के प्रथम भाग का नाम पितृ होता है, इसमें दरवाजा बनाने पर पुत्र व्यथा, दूसरे का नाम दौवारिक, इसमें शत्रु वृद्धि, तीसरे का नाम सुग्रीव, इसमें पुत्र धन की लब्धि, चौथे का नाम कुसुमदन्त, इसमें पुत्र, धन, फल की सम्पत्ति, पाँचवें का नाम वरुण, इसमें धन सम्पत्ति, छठे का नाम असुर, इसमें राजकीय डर, सातवें का नाम शोष, इसमें धन का नाश और आठवें भाग का नाम पापयक्ष्मा, इसमें दरवाजा रखने पर रोग का भय होता है ॥ ३६१ ॥

उत्तर के ८ भागों बनाने का फल

वधबंधो रिपुवृद्धिर्धनसुतलाभः समस्तगुणसंपत् ।
पुत्रधनाप्तिर्वैर सुतकृतदोषः स्त्रियो नैःस्वम् ॥ ३६२ ॥

बृहत्संहिता में बताया है कि उत्तर दिशा के प्रथम भाग का नाम रोग होता है। इसमें द्वार रखने पर वध, बन्धन, दूसरे का नाम सार्प, इसमें शत्रुवृद्धि, तीसरे भाग का नाम मुख्य, इसमें पुत्र, धन का लाभ, चौथे भाग का नाम भल्लाट, इसमें समस्त गुण एवं सम्पत्ति का लाभ, पाँचवें भाग का नाम सौम्य, इसमें पुत्र, धन का लाभ, छठे भाग का नाम भौजङ्ग, इसमें पुत्र के साथ वैर, सातवें भाग का नाम आदित्य, इसमें स्त्रीजन्य दोष और आठवें भाग का नाम दिति होता है इसमें दरवाजा बनाने पर निर्धनता होती है ॥ ३६२ ॥

दिशाओं में हिस्से का प्रथम भाग

पूर्वाण्यैशान्यांयाम्याग्नेय्यांदक्षिणानि जानीयात् ।
द्वाराणि नैऋंत्यादीनि पश्चिमान्युत्तराणि वायोश्च ।। ३६३ ।।

पूर्व के आठ भागों को ईशान से, दक्षिण के ८ भागों को अग्निकोण से, पश्चिम के भाग की नैर्ऋत्य दिशा से और उत्तर के प्रथम भाग का प्रारम्भ वायव्य कोण से करना चाहिये ।। ३६३ ।।

अथेशानादि चतुष्कोणानां द्वारफलं तत्रैव--

अब आगे ईशानादि ४ कोणों से प्रारम्भ होने वाले भागों के फल को बताते हैं ।

पूर्वदिशा के ८ भागों का फल

[1]दुःखशोकौ धनप्राप्तिर्नृपपूजा महद्धनम् ।
स्त्रीजन्मपुत्रता हानिः प्राच्यां दारफलानि च ।। ३६४ ।।

पूर्वदिशा के प्रथम भाग में दरवाजा बनाने पर दुःख व दूसरे में शोक, तीसरे में धन लाभ, चौथे में राजा से पूजा, पाँचवे में अधिक धन, छठे में कन्या जन्म, सातवें में पुत्रता और आठवें भाग में दरवाजा बनाने पर हानि होती है ।। ३६४ ।।

दक्षिण दिशा के ८ भागों का फल

निधनं बंधनं भीतिः पुत्राप्तिश्च धनागमः ।
यशोलब्धिश्चोरभयं व्याधिभीतिश्च दक्षिणे ।। ३६५ ।।

दक्षिण दिशा के पहिले भाग में दरवाजा बनाने पर मरण, दूसरे में बन्धन, तीसरे में भय, चौथे में पुत्र प्राप्ति, पाँचवें में धनागम, छठे में यश प्राप्ति, सातवें में चोर भय और आठवें भाग में दरवाजा निर्माण करने पर रोगभय होता है ।। ३६५ ।।

पश्चिम दिशा के ८ दरवाजों का फल

निःस्वं स्त्रीदुःखयोगश्च लक्ष्मीप्राप्तिर्धनागमः ।
सौभाग्यं धनलाभश्च दुःखं शोकश्च पश्चिमे ।। ३६६ ।।

पश्चिम दिशा के प्रथम भाग में दरवाजा बनाने पर निर्धनता, दूसरे में स्त्री दुःख, तीसरे में लक्ष्मी प्राप्ति, चौथे में धनागम, पाँचवें में सौभाग्य, छठे में धन लाभ, सातवें में दुःख और पश्चिम के आठवें भाग में द्वार रखने पर शोक होता है ।। ३६६ ।।

उत्तर दिशा के ८ दरवाजों का फल

शत्रुवृद्धिर्महद्दुःखं हानिः संपत्सुखागमः ।
प्राप्तदुःखं शोकबाधा चोत्तरस्यां दिशि क्रमात् ।। ३६७ ।।

उत्तर दिशा के पहिले भाग में दरवाजा बनाने पर शत्रुओं की वृद्धि, दूसरे में बड़ा दुःख, तीसरे में हानि, चौथे में सम्पत्ति, पाँचवें में सुखागम, छठे में दुःख की लब्धि, सातवें में शोक और आठवें भाग में बनाने पर बाधा होती है ।। ३६७ ।।

---

१. बृ० वा० ८२ पृ० ।

भीत में द्वार का ज्ञान

मुहूर्तमार्तंडे--

[1]पूर्वादौ त्रिषडायपंचमलवे द्वाः सव्यतोंकोद्धृते।
वेध्येद्वयंशसमुच्छ्रिताङ्घिलवका सर्वासु दिक्षूदिता ॥ ३६८ ॥

मुहूर्तमार्तण्ड में बताया है कि घर की लम्बाई को ९ नव से भाग देकर पूर्वादि दिशा की भीत में दरवाजा वाम भाग से ३।६।५।५ वें भाग में बनवाना चाहिये। अर्थात् पूर्व दिशा में तीसरे में, दक्षिण में छठे में पश्चिम और उत्तर दिशा के पाँचवें हिस्से में दरवाजा बनाना चाहिये। या सब दिशाओं में चौथे भाग में दो भाग तुल्य ऊँचा निर्माण कराना चाहिये ॥ ३६८ ॥

[2]वाराहस्तु--

दैर्घ्ये नवांशात्पदमत्र सव्याद्द्वारं शुभं प्राक् त्रिचतुर्थभागे।
चतुर्थषष्ठे दिशि दक्षिणस्यां पश्चाच्चतुः पंचमके तथोदक् ॥ ३६९ ॥

वराहमिहिर ने भी बताया है कि घर की लम्बाई के नवभाग करके बाईं ओर से पूर्व दिशा में पहिले के दो हिस्से छोड़कर तीसरे चौथे भाग में, दक्षिण में चौथे, छठे भाग में और पश्चिम उत्तर में चौथे पाँचवें भाग में दरवाजा बनाना चाहिये ॥३६९॥

कोनें में दरवाजे का निषेध

द्वारमायामतः कार्यं पुत्रपौत्रधनप्रदम्।
विस्तारकोणं द्वारं यः दुःखशोकभयप्रदम् ॥ ३७० ॥

आयाम (दैर्घ्य) से दरवाजा बनाने पर पुत्र, पौत्र व धन की प्राप्ति और चौड़ाई के कोण में दरवाजा निर्माण कराने पर दुःख, शोक, भय की प्राप्ति होती है ॥ ३७० ॥

[3]विश्वकर्माप्रकाशे--

गृहमध्ये कृतं द्वारं द्रव्यधान्यविनाशनम् ॥ ३७१ ॥

विश्वकर्मा प्रकाश में कहा है कि घर में मध्य भाग में दरवाजा रखने पर धन, अन्न का नाश होता है ॥ ३७१ ॥

[4]भारद्वाजः--

शिरा मर्माणि वंशाश्च नालमध्यं च सर्वशः।
विहाय वास्तुमध्यं च द्वाराणि विनिवेशयेत् ॥ ३७२ ॥

ऋषि भारद्वाज ने बताया है कि घर वास्तु में शिरा मर्म, वंश व नाल के बीच को छोड़कर द्वार बनाना चाहिये ॥ ३७२ ॥

---

१. ६ प्र० १७ श्लो०।
२. ज्यो० नि० १७२ पृ०।
३. मु० चिं० १२ प्र० १७ श्लो० पी० टी०।
४. मु० चिं० १२ प्र० १७ श्लो० पी० टी०।

बीच में द्वार रखने का ज्ञान

विश्वकर्माप्रकाशे--

[1]देवागारे विहारे च प्रजायां मंडपेषु च।
प्रतोल्यां च मखे चैव मध्ये द्वारं निवेशयेत् ॥ ३७३ ॥

विश्वकर्मा प्रकाश में कहा है कि देवमन्दिर, बिहार, सूति, मण्डप, प्रतोलि और यज्ञ में बीच में ही दरवाजे का निर्माण कराना चाहिये ॥ ३७३ ॥

द्वार चक्र ज्ञान

अथ द्वारचक्रम्--

[2]ज्योतिर्विदाभरणे –

दिनकरकिरणाक्रांतर्क्षतो द्वारचक्रे युगयुगयमवेदद्विद्विवेदद्विरामैः।
मितमुडुगणभागं विन्यसेदूर्ध्वतांतर्नियममखिलदिङ्नाप्यधः कोणभंसत् ॥ ३७४॥

ज्योतिर्विदाभरण में कहा है कि सूर्य जिस नक्षत्र में हो उससे दरवाजे के ऊपरी भाग से ४।४।२।४।२।२।४।२।३ नक्षत्रों का न्यास समस्त दिशाओं में दरवाजा बनाने पर करना चाहिये। इसमें कोणस्थ व देहली के नक्षत्र में दरवाजा बनाना अशुभ होता है ॥ ३७४ ॥

अन्य मत से द्वार चक्र

रामदैवज्ञः--

[3]सूर्यर्क्षायुगभैः शिरस्यथफलं लक्ष्मीः ततः कोणभै-
र्नागैरुद्वसनं ततो गजमितैः शाखासु सौख्यं भवेत्।
देहल्यां गुणभैर्मृतेर्गृहपतेर्मध्यस्थितेर्वेदभैः
सौख्यं चक्रमिदं विलोक्य सुधिया द्वारं विधेयं शुभम् ॥ ३७५ ॥

आचार्य रामदैवज्ञ ने बताया है कि घर के दरवाजे को जिस दिन रखना हो उस दिन सूर्य जिस नक्षत्र में हो उससे दिन नक्षत्र तक आगे बताई हुई रीति से उसे देखकर शुभ होने पर रखना चाहिये।

जैसे पहिले के चार ४ शिर पर न्यास करने पर, इनमें दिन नक्षत्र हो तो लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। इसके बाद के दो दो नक्षत्र कोणों में स्थापित करने पर इनमें दिन नक्षत्र हो तो उसमें मकान स्वामी का उद्वास होता है अर्थात् वह उसमें रहने में असमर्थ होता है। इसके बाद ८ नक्षत्र शाखा में अर्थात् चारों चौखट में होने पर सुख, इसके पश्चात् ३ नक्षत्र देहली में होने से मालिक का मरण, पुनः ४ चार नक्षत्र मध्य में स्थापित करने पर इनमें दिन नक्षत्र होने पर दरवाजा रखने पर स्वामी को सुख मिलता है ॥ ३७५ ॥

---

१. मु० चिं० १२ प्र० १७ श्लो० पी० टी०। २. १६ प्र० ५५ श्लो०।
३. मु० चिं० १२ प्र० २९ श्लो०।

स्पष्टार्थ चक्र

सूर्य नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक

कोण	१–४ मस्तक	कोण
११–१२	शाखा १३–१४	५–६
शाखा १९–२०	२४–२७	शाखा १५–१६
९–१०	१७–१८ शाखा	७–८
कोण	देहली २१–२३	कोण

फलार्थ चक्र

स्थान	शिर	कोण	शाखा	देहली	मध्य
२७ नक्षत्र	४	८	८	३	४
फल	लक्ष्मी प्राप्ति	उद्वास	सौख्य	मरण	सुख

देहली चक्र

अथ देहलीचक्रम्—

[1]मूले भौमे त्रिऋक्षं गृहपतिमरणं पंचगर्भे सुखं स्या-
न्मध्ये देयाष्टऋक्षं धनसुखसुखदं पुच्छदेशेष्टहानिः।
पश्चाद्देयाष्टऋक्षं गृहपतिसुखदं भाग्यपुत्रार्थदेयं
सूर्यार्क्षाच्चिन्द्रऋक्षं प्रतिदिन गणयेद्भौमचक्रं विलोक्य ॥ ३७६ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि देहली के मूल में भौम के नक्षत्र से ३ नक्षत्र स्थापित करने पर इन्हीं में दिन नक्षत्र हो तो मकान मालिक की मृत्यु, इसके बाद ५ पाँच नक्षत्र गर्भ के नक्षत्र में होने पर सुख, तत्पश्चात ४ चार नक्षत्र मध्य के में हो तो धन-पुत्र सुख की लब्धि, इसके बाद के ८ आठ नक्षत्र पुच्छ के में हानि और इसके पीछे के ८ आठ नक्षत्र पीठ के में दिन नक्षत्र हो तो भाग्य वृद्धि, पुत्र, धन की प्राप्ति होती है ॥ ३७६ ॥

१. ज्यो० १६५ पृ०।

स्पष्टार्थ चक्र

स्थान	मूल	गर्भ	मध्य	पुच्छ	पृष्ठ
२८ नक्षत्र	३	५	४	८	८
फल	स्वामी मरण	सुख सुत	धन सुत सुख	हानि	सौख्य

कपाट चक्र

अथ कपाटचक्रम् —

मुहूर्तकल्पद्रुमे—

[1]सूर्यर्क्षाद्युगनागाष्टगुणवेदैः शुभाशुभम् ।
शिरः कोणद्वारशाखा देहलीमध्यगैः क्रमात् ॥ ३७७ ॥

मुहूर्तकल्पद्रुम में कहा है कि ४।८।८।३।४ नक्षत्र तक कपाटचक्र में सूर्य के नक्षत्र से मस्तक, कोण, दरवाजों की चौखट, देहरी और मध्य में क्रम से स्थापित करके शुभ अशुभ समझकर आदेश देना चाहिये ॥ ३७७ ॥

स्पष्टार्थ चक्र

सू० न० से स्थान	शिर	कोण	शाखा	देहली	मध्य
२७ नक्षत्र	४	८	८	३	४
फल	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ

द्वार स्थापन मुहूर्त

अश्विन्यामुत्तराहस्तपुष्यश्रुतिमृगेषु च ।
रोहिण्यां स्वातिभंत्ये च द्वारशाखां प्ररोपयेत् ॥ ३७८ ॥

अश्विनी, तीनों उत्तरा, हस्त, पुष्य, श्रवण, मृगशिरा, रोहिणी, स्वाती और रेवती नक्षत्र में द्वारशाखा (चौखट) लगानी चाहिये ॥ ३७८ ॥

तिथ्यादि के साथ ग्रन्थान्तर से मुहूर्त

[2]मुहूर्तमुक्तावल्याम्—

भवेत्पूषणी मैत्रपुष्ये च शाक्रे करे दस्रचित्रानिले चादितौ च ।
गुरुश्चन्द्रशुक्रार्कसौम्ये च वारे तिथौ नंदपूर्णा जया द्वारशाखा ॥ ३७९ ॥

मुहूर्त मुक्तावली में कहा है कि रेवती, अनुराधा, पुष्य, ज्येष्ठा, हस्त, अश्विनी, चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु नक्षत्र, गुरु, चन्द्र, शुक्र, सूर्य, बुधवार और नन्दा (१।६।११) पूर्णा (५।१०।१५) और जया (३।८।१३) तिथि में चौखट लगाना उत्तम होता है ॥ ३७९ ॥

---

१. बृ० वा० ८३ पृ० १६३ श्लो० टी० ।
२. बृ० वा० ८५ पृ० १६८ श्लो० ।

[1]गुरुः—

ध्रुवभे शुभवारे च स्थिरलग्ने शुभे तिथौ।
द्वारं स्थाप्यं मृगंचित्रं वर्गसंपद्विवर्द्धनः ॥ ३८० ॥

बृहस्पतिजी ने भी बताया है कि ध्रुव संज्ञक (३ उत्तरा, रोहिणी) स्थिर राशि लग्न शुभ तिथि में द्वारस्थापन शुभ होता है। तथा मृगशिरा चित्रा में कुल व सम्पत्ति की वृद्धि करने वाला होता है ॥ ३८० ॥

चरस्थिरे च नक्षत्रे बुधशुक्रदिने तिथौ।
शुभे कपाटयोगः स्याद्द्विस्वभावोदये गृहम् ॥ ३८१ ॥

या चर स्थिर संज्ञक नक्षत्र, बुध, शुक्रवार, शुभतिथि एवं द्विस्वभाव लग्न में चौखट लगाना शुभ होता है ॥ ३८१ ॥

सूत्र शंकु आदि स्थापन मुहूर्त

[2]वास्तुसौख्ये मांडव्यः—

सूत्रशंकुशिलाद्वारतुलाच्छादनपूर्वकम् ।
कार्यं स्तंभप्रतिष्ठोक्ते घिष्ण्ये वारे तिथौ तथा ॥ ३८२ ॥

वास्तु सौख्य में माण्डव्य ऋषि ने बताया है कि, सूत्र, शंकु, शिलान्यास, द्वार स्थापन, गृहाच्छादन, तुलाच्छादनादि कार्य खम्भे लगाने वाले नक्षत्र, वार, तिथि में लगाना शुभ होता है ॥ ३८२ ॥

ज्योतिःप्रकाशे—

अस्तदोषोत्र न ग्राह्यः प्रति दैवसिको बुधैः।
नास्तदोषः सदा भानोर्न मैत्रेंद्रस्य नीचता ॥ ३८३ ॥

ज्योतिः प्रकाश में बताया है कि विद्वान् जनों को दरवाजा लगाने में प्रतिदिनीय अस्त दोष नहीं ग्रहण करना, और सूर्य का भी अस्त दोष नहीं होता है। एवं मित्र व नीचत्व दोष भी नहीं होता है ॥ ३८३ ॥

सपरिहार द्वारवेध ज्ञान

अथ द्वारवेधं तत्परिहारं चाह—

[3]श्रीवराहः—

मार्गतरुकोणस्तंभभ्रमविद्धमशुभदं द्वारम् ।
उच्छ्रायाद द्विगुणमितां त्यक्त्वा भूमिं न दोषाय ॥ ३८४ ॥

बृहत्संहिता में कहा हैं की मार्ग (रास्ता) पेड़, कोण, कूप (कुआ) स्तम्भ (खम्भा) भ्रम (कोल्हू, मशीन आदि यन्त्र) दरवाजे के सामने होने पर शुभ नहीं

१. बृ० वा० ८५ पृ० १६९-१७० श्लो०।
२. बृ० वा० ८५ पृ० १७१ श्लो०।
३. बृ० सं० ५३ अ० ७६ श्लो०।

होते हैं। किन्तु द्विगुणित ऊँचाई से अधिक दूर होने पर दोष देने वाले नहीं होते हैं ॥ ३८४ ॥

[1]नारायणोपि—

कोणाध्वभ्रमकूपकर्दमतरूद्वारस्तंभदेवेक्षितं
सद्मोच्चं द्विगुणाधिकांतरभवे वेधे न दोषः किल ॥ ३८५ ॥

आचार्य नारायण ने भी बताया है कि मार्ग, भ्रम (कुलाल चक्रादि), कुआ, कीचड़, वृक्ष द्वारान्तर, खम्भा, देवमन्दिर से विद्ध घर का मुख नहीं बनाना चाहिये और घर की ऊँचाई से दूनी दूरी होने पर ये दोष दाता नहीं होते हैं ॥ ३८५ ॥

वेध से अलग २ फल

[2]पुनर्वराहः—

रथ्याविद्धं द्वारं नाशाय कुमारदोषदं तरुजम्।
पंकद्वारे शोको व्ययोंबुनि श्राविणी प्रोक्तः ॥ ३८६ ॥
कूपेनापस्मारो भवति विनाशश्च देवताविद्धे।
स्तंभेन स्त्रीदोषाः कुलनाशो ब्राह्मणोभिमुखे ॥ ३८७ ॥

बृहत्संहिता में बताया है कि रास्ते के सामने घर होने पर मकान मालिक का विनाश होता है। वृक्ष के सामने मुख्य दरवाजा होने पर बालक दूषित होते हैं। दरवाजे के सामने सदा कीचड़ रहने पर शोक होता है। जिसके सामने सर्वदा पानी बहता रहता है वह धन की फिजूल खर्ची कराने वाला होता है। सामने कुआ होने पर मिर्गी रोग, देव मन्दिर होने पर विनाश, खम्भा होने पर स्त्रियाँ दूषित और ब्राह्मण का घर होने पर विनाश होता है ॥ ३८६–३८७ ॥

किवाडा आदि स्वयं खुलने का दोष

उन्मादः स्वयमुद्घटिते पिहिते च स्वयं कुलविनाशः।
मानाधिके नृपभयदं दस्युभयं व्यसनदं नीचम् ॥ ३८८ ॥
द्वारं द्वारस्योपरि यत्तन्न शिवाय संकटं यच्च।
आध्मातं क्षुद्भयदं कुब्जं कुलनाशनं भवति ॥ ३८९ ॥
पीडाकरमतिपीडितमंतरविनतं भवेदभावाय।
बाह्यावनते प्रवासो दिग्भ्रांते दस्युभिः पीडा ॥ ३९० ॥

बृहत्संहिता में बताया है कि दरवाजे के किवाड़ बिना खोले यदि खुल जाँय तो पागलपन, स्वयं बन्द हो जाय तो कुल का नाश, प्रमाण से अधिक होने पर राजकीय भय, प्रमाण से कम होने पर चोर भय व दुःख होता है।

१. मु० मा० ६ प्र० १० श्लो०।
२. बृ० सं० ५३ अ० ७७-८१ श्लो०।

दरवाजे के ऊपर दरवाजा बनाने पर अशुभ होता है। किवाड़ मोटाई में पतला या ज्यादा मोटा होने पर भूख से भय और टेढ़ा होने पर कुल का विनाश होता है। जब किवाड़ में जोड़ लगा होता है तो मालिक को दुःख, भीतर से उभरा हुआ रहने पर स्वामी का मरण और बाहर झुका रहने पर विदेश में वास होता है। जब दिशा का ठीक २ ज्ञान नहीं होता है तो चोरों से भय और पीड़ा होती है ।।३८८–३९०।।

वेध का अभाव

अन्य:—

पृष्ठतः पार्श्वयोर्वापि न वेधं चिन्तयेद्बुधः।
प्रासादे वा गृहे वापि वेधमग्रे विनिर्दिशेत् ।। ३९१ ।।

प्रासाद (राजभवन) अथवा साधारण मकान के पीछे या बगल में उक्त वस्तु पर वेध नहीं होता है। केवल सामने ही वेध होता है ।। ३९१ ।।

वृक्ष छायाजन्य दोष

प्रथमांतयामवर्ज्यं द्वित्रिप्रहरसंभवा।
छायावृक्षगृहादीनां सदा दुःखप्रदायिनी ।। ३९२ ।।

ग्रन्थान्तर में बताया है कि जिस मकान में दो आदि वृक्षों की छाया प्रथम और अन्त्य प्रहर का त्याग करके यदि दूसरे, तीसरे में आती है तो दुःखदायी होती है ।। ३९२ ।।

शाला ध्रुवाङ्क साधन

अथ शालाध्रुवाद्यानयनम्—

[1]चिन्तामणौ—

दिक्षु पूर्वादितः शाला ध्रुवा भूद्वौं कृता गजाः।
शालाध्रुवांकसंयोगः सैको वेश्मध्रुवादिकम् ।। ३९३ ।।

मुहूर्तचिन्तामणि में बताया है कि पूर्वादि प्रदक्षिण क्रम से १।२।४।८ दिशाओं की ध्रुवा होती हैं। दिशावश जितने दरवाजे बनाना अभीष्ट होने पर उन दिशाओं के ध्रुवाङ्कों का योग करके उसमें १ जोड़ने पर ध्रुवादि नाम के घर होते हैं ।। ३९३ ।।

सोलह मकानों के नाम

[2]ध्रुवं धान्यं जयं नंदं खरं कान्तं मनोरमम्।
सुमुखं दुर्मुखोग्रं रिपुदं वित्तदं नाशं चाक्रंदं विपुलं विजयास्यं स्यात् ।।३९४।।

१ ध्रुव, २ धान्य, ३ जय, ४ नन्द, ५ खर, ६ कान्त, ७ मनोरम, ८ सुमुख, ९ दुर्मुख, १० क्रूर, ११ रिपुद, १२ धनद, १३ क्षय, १४ आक्रन्द, १५ विपुल और १६ सोलहवाँ विजय नाम का घर होता है ।। ३९४ ।।

---

१. १२ प्र० ८ श्लो०।
२. ज्यो० नि० १६९ पृ० ३०-३१ श्लो०।

पिण्ड वश आनयन

तच्च रत्नमालायाम्—

गृहपिंडं युगैर्हत्वा षट्चन्द्रैर्भागमाहरेत् ।
शेषांके तु स्मृतं नामध्रुवादि क्रमतो बुधैः ॥ ३९५ ॥

ध्रुवं च धान्यं च जयं च नंदं खरं च कांतं च मनोरमं च ।
सुवक्रसंज्ञं खलु दुर्मुखोग्रं क्रूरं विपक्षं धनदं क्षयं च ॥ ३९६ ॥
आक्रंदसंज्ञं विपुलाह्वयं च स्यात्षोडशं तद्विजयाभिधानाः ॥ ३९७ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि घर के पिण्ड को ४ चार से गुणा करके १६ सोलह का भाग देने पर एकादि शेष में ध्रुवादि नाम के क्रम से घर के नाम होते हैं। जैसे १ शेष में ध्रुव, २ में धान्य, ३ में जय, ४ में नन्द, ५ में खर, ६ में कान्त, ७ में मनोरम, ८ में सुमुख, ९ में दुर्मुख, १० में क्रूर, ११ में विपक्ष, १२ में धनद, १३ में क्षय, १४ में आक्रन्द, १५ में विपुल और १६ शेष में विजय नामवाला घर होता है ॥ ३९५–३९७ ॥

ग्रंथान्तर से ध्रुवाङ्क

नारायणस्तु—

[1]एकादि द्विगुणोत्तराध्रुवमुखा दिक्ष्वंकका: स्युः क्रमा-
च्छालाशांकयुतिः कुयुग्ध्रुवमुखान्योकांसि संति स्फुटम् ।

घर के सम्मुख की दिशा से प्रदक्षिण क्रम वश ध्रुवाङ्क अर्थात् सामने की दिशा का ध्रुवाङ्क होता है। अभीष्ट दिशा के ध्रुवाङ्कों को जोड़कर पुनः उसमें १ एक मिलाकर ध्रुवादि संज्ञक घर का नाम होता है ॥

घर की नामाक्षर संख्या

आषष्टाद्दशमं त्रयोदशमिमे द्व्यर्णापरे त्र्यक्षरा
षष्ठांत्यं चतुरक्षरं खलु गृहं स्युः षोडशैवं गृहाः ॥ ३९८ ॥

सोलह घरों में १।२।३।४।५।६।१०।१३ संज्ञक घर २ अक्षर नाम वाले, ७ सातवाँ ४ अक्षर और बचे हुए ८।९।११।१२।१४।१५।१६ संख्यक ३ अक्षर नाम वाले होते हैं ॥ ३९८ ॥

हिरण्य आदि त्रिशालों का लक्षण एवं फल

[2]वाराहीये—

उत्तरशालाहीनं हिरण्यनामं त्रिशालकं धन्यम् ।
प्राक्शालया वियुक्तं सुक्षेत्रं वृद्धिदं वास्तु ॥ ३९९ ॥

---

१. मु० मा० ६ प्र० ११ श्लो० ।
२. बृ० सं० ५३ अ० ३९-४१ श्लो० ।

वाराहीसंहिता में बताया है कि जिस मकान में उत्तर की तरफ दीवाल नहीं होती है तथा पूर्व, दक्षिण, पश्चिम की तरफ होती है उसे हिरण्य नामक त्रिशाल वास्तु कहते हैं यह शुभ होता है। जिसके पूर्व की भीत का अभाव और शेष दिशाओं में दीवाल होती है। उसको सुक्षेत्र नामक त्रिशाल वास्तु कहा जाता है। इस प्रकार के मकान में निवास में धन, पुत्र आदि की वृद्धि होती है ॥ ३९९ ॥

चुल्ली आदि ज्ञान

यास्याहीनं चुल्ली त्रिशालकं वित्तनाशकरमेतत्।
पक्षघ्नमपरया वर्जितं सुतध्वंसवैरकरम् ।' ४०० ॥

जिस मकान के दक्षिण की ओर भीत नहीं होती है एवं अन्य तीन दिशाओं में होने पर उसकी 'चुल्ली' नामक त्रिशाल वास्तु संज्ञा होती है। इस प्रकार के मकान में रहने पर धन का विनाश होता है।

जिस मकान के पश्चिम तरफ भीत का अभाव और अवशिष्टों में दीवाल होने पर उसकी 'यक्षघ्न' नामक त्रिशाल वास्तु संज्ञा होती है। इसमें निवास से पुत्र नाश और शत्रुता होती है ॥ ४०० ॥

सिद्धार्थादि द्विशाल वस्तुओं के लक्षण

सिद्धार्थमपरयाम्ये यमशूर्पं पश्चिमोत्तरे शाले।
दण्डाख्यमुदक्पूर्वे वाताख्यं प्राग्युता याम्ये ॥ ४०१ ॥

वृहत्संहिता में कहा है कि जिस घर को पश्चिम व दक्षिण दिशा में हीं शाला (घर) होती है उसकी 'सिद्धार्थ संज्ञा, जिसके पश्चिम व उत्तर में होती है उसको 'यम शूर्प, जिसके उत्तर व पूर्व दिशा में होती है उसको 'दण्ड' और जिसके पूर्व व दक्षिग दिशा में शाला होती है उसकी 'वात' संज्ञा होती है ॥ ४०१ ॥

पूर्वापरे तु शाले गृहचुल्ली दक्षिणोत्तरे काचम्।

जिसके पूर्व व पश्चिम दिशा में शाला होती है उसकी 'ग्रह चुल्ली' एवं जिसके दक्षिग तथा उत्तर में शाला होती है उसकी 'काच' संज्ञा होती है॥ ४०१½ ॥

उक्त मकानों का फल

सिद्धार्थेऽर्थावाप्तिर्यमशूर्पे गृहपतेर्मृत्युः ॥ ४०२ ॥
दण्डवधो दण्डाख्ये कलहोद्वेगः सदैव वाताख्ये।
वित्तविनाशश्चुल्ल्यां ज्ञातिविरोधः स्मृतः काचे ॥ ४०३ ॥

सिद्धार्थ वास्तु में निवास करने पर धन की प्राप्ति, यमसूर्प में मकान मालिक की मृत्यु, दण्ड में दण्ड से मरण, वात में सदा कलह, गृह चुल्ली में धन का नाश और काच संज्ञक वास्तु में निवास करने पर बन्धुओं से विरोध होता है ॥४०१½–४०३ ॥

घर के खम्भे

नारदः—

गृहादीनां गृहस्तंभा समाःशस्ताश्च नासमाः ॥ ४०४ ॥

ऋषि नारद जी ने बताया है कि घर की चौड़ाई के चतुर्थांश तुल्य घर के खम्भे बनाने चाहिये, असमान नहीं बनाने चाहिये ॥ ४०४ ॥

गृहस्राव के ८ भेद

अथ गृहस्रावमाह—

नारदः—

गृहादीनां गृहस्रावं क्रमशोष्टविधं स्मृतम् ।
पांचालमानं वैदेहं कौरवं च कुजन्यजम् ।
मागधं शूरसेनं च गांधारावंतिकं स्मृतम् ॥ ४०५ ॥

उक्त वर्णित मकानों का स्राव आठ ८ रीति से बताया गया है १ पांचाल, २ वैदेह, ३ कौरव, ४ कुजन्यज, ५ मागध, ६ शूरसेन, ७ गांधार और ८ वां आवन्तिक संज्ञा का होता है ॥ ४०५ ॥

तच्चतुर्भागविस्तारसोत्सेधं यत्तदुच्यते ।
पांचालमानं सर्वेषां साधारणमतः परम् ॥ ४०६ ॥
आवंतिमानं विप्राणां गांधारं क्षात्रयस्य च ।
कौजन्यमानं वैश्यानां विप्रादीनां यथोत्तरम् ॥ ४०७ ॥
यथोदितजलस्रावं द्वित्रिभूमकवेश्मनः ॥ ४०८ ॥

वह चौड़ाई के चतुर्थांश तुल्य ऊँचा होता है उसे कहते हैं । पांचाल मान समस्तों को, वैश्यों को आवन्ति मान, क्षत्रिय को गान्धार, वैश्यों को कौजन्य और विप्रादिको यथोत्तर मान एवं यथोदित जल का स्राव दो, तीन भूमि के घर में होता है ॥ ३०६-३०८ ॥

अन्य प्रकार से भी

अन्योपि—

पूर्वे वहति शुभं किंचिदग्निकोणे धनक्षयम् ॥ ४०९ ॥
दक्षिणे प्राणसंदेहो नैर्ऋत्ये प्राणघातकः ।
पश्चिमे पुत्रनाशाय वायव्ये सुखमेव च ॥ ४१० ॥
उत्तरे राजसंमानं ईशाने सुखसंपदः ॥ ४११ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि घर से पूर्व दिशा नाली का बहना शुभ, अग्निकोण में जल का बहाव होने पर अल्पधनक्षय, दक्षिण में प्राणसंदेह, नैर्ऋत्य में प्राणघातक, पश्चिम में पुत्र नाश, वायव्य में सुख, उत्तर में राज सन्मान और ईशान कोण में घर से पानी का बहाव हो तो सुख व संपत्ति का लाभ होता है ॥ ४०९-४११ ॥

सफल निषिद्ध व ग्राह्य काठ

व्यासः—

[1]अन्यवेश्म स्थितं दारु नैवान्यस्मिन्प्रयोजयेत्
न तत्र वसते कर्ता वसन्नपि न जीवति ॥ ४१२ ॥

ऋषि व्यासजी ने कहा है दूसरे मकान के पुराने काठादि पदार्थ को नवीन मकान में (भिन्न में) नहीं लगाना चाहिये। यदि मकान मालिक उसे लगाकर निवास करता है तो उसका मरण होता है ॥ ४१२ ॥

[2]शारंगधरः—

नूतने नूतनं काष्ठं जीर्णे जीर्णं प्रशस्यते।
जीर्णे च नूतनं काष्ठं न जीर्णे नूतनं शुभम् ॥ ४१३ ॥

ऋषि शार्ङ्गधरजी ने बताया है कि नवीन घर में नया काठ और पुराने में पुराना शुभ होता है। पुराने में नया एवं नवीन मकान में पुराना काठ लगवाना शुभ नहीं होता है ॥ ४१३ ॥

[3]समरांगणे—

इष्टकालोष्टपाषाणमृत्तिकाजीर्णप्रायसम् ।
तृणं पर्णं बुधैः प्रोक्तं दारु नूनं विहाय वै ॥ ४१४ ॥

समराङ्गण में बताया है कि नये घर में पुरानी ईंट, लोहा, पत्थर, मिट्टी, टूटा लोहा, तिनका, पत्ता पुरानी लकड़ी छोड़कर बुद्धिमान् को लगाना चाहिये ॥ ४१४ ॥

गृहनिर्माणार्थं वृक्ष काटने का शुभ मुहूर्त

गुरुः—

[4]कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां रेवती रोहिणीयुता।
यदा तदा गुरौ लग्ने गृहार्थं तु हरेद्द्रुमान् ॥ ४१५ ॥

गुरुजी ने बताया है कि कृष्णपक्ष की चौदस तिथि, रेवती, रोहिणी नक्षत्र में जब कभी गुरु लग्न में हो तो घर के लिये वृक्षों को कटाना शुभ होता है ॥ ४१५ ॥

घर के ढकने का शुभ मुहूर्त

शुक्रे लग्ने गुरौ केन्द्रेष्वगे राशौ गृहोपरि।
तृणादिभिः समाच्छाद्यो न चैवाग्निगृहे भयम् ॥ ४१६ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि लग्नस्थ शुक्र व केन्द्रस्थ स्थिर राशि में गुरु के रहने पर तृणादि से (शुभकालीन आगत) घर के ऊपर आच्छादन करना शुभ होता है ॥ ४१६ ॥

---

१. ज्यो० नि० १७१ पृ० १ श्लो०। २. ज्यो० नि० १७१ पृ० ३ श्लो०।
३. ज्यो० नि० १७१ पृ० २ श्लो०।
४. बृ० वा० २७ पृ० १३९-१४० श्लो०।

किवाड़ लगाने का मुहूर्त

[1]चरस्थिरे च नक्षत्रे बुधशुक्रदिने तिथौ।
शुभे कपाटयोगः स्याद् द्विस्वभावोदये गृहम् ॥ ४१७ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि चर, स्थिर संज्ञक नक्षत्र, बुध, शुक्रवार, शुभ तिथि में किवाड़ लगाना और द्विस्वभाव में घर लगाना शुभ होता है ॥ ४१७ ॥

घर में न लगाने के चित्र

कालिदासः—

गृहे न रामायणभारताहवं चित्रं कृपाणाहवमिन्द्रजालवत्।
शिलोच्चयारण्यमयं सदासुरं भीष्मं कृताक्रंद नरं त्वनं वरम् ॥ ४१८ ॥

घर में रामायण, महाभारत इत्यादि युद्धों के चित्र, तलवार का युद्ध चित्र, इन्द्र जालिक चित्र और पत्थर व काठ की बनी हुई राक्षसों की भयङ्कर मूर्ति, रोते हुए मनुष्य का चित्र इत्यादि लगाना शुभ नहीं होता है ॥ ४१८ ॥

घर में न रखने योग्य पशु, पक्षी

वाराहशार्दूलशिवापृदाकवो गृध्राभिधोलूककपोतवायसाः।
सशेनगोधादिवकारिपत्रिणो विचित्रिता नो शरणे शुभावहाः ॥ ४१९ ॥

वाराह (शूकर), सिंह, सियारी, विच्छू, व्याघ्र, साँप, गिद्ध, उल्लू, कबूतर, कौवा, सेन (बाज), गोह, बगुला का तथा विचित्र पक्षी का अपनी देख-रेख में रखना शुभावह नहीं होता है ॥ ४१९ ॥

घर के दक्षिण में शुभ

[2]उलूखलं पिष्टयंत्रमग्निस्थानं जलाश्रयम्।
वेश्मनोर्दक्षिणे पार्श्वे पितॄणां पादशौचनम् ॥ ४२० ॥

ऊखल (सामान कूटने वाला), पिसाई का यन्त्र, अग्नि स्थान, जलाश्रय (तालाब, आदि) घर के दक्षिण हिस्से में बनाने पर पितरों के चरणों की शुद्ध कारक होते हैं ॥ ४२० ॥

अथ गोशालायां भूमिशोधनादिकं पूर्ववत् कृत्वा आयादिकं संशोध्य तत्रायं [3]विशेषः—

गोध गाय घर में पहिले की रीति से भूमि शोधनादि करके आयादि का संशोधन करके इस विशेष बात का विचार करना चाहिये।

चर्राण का विचार

स्वनामाक्षराणां युतं दैर्घ्यव्योमप्रमाणैः स्वहस्ताद्गजैर्भक्तशेषः।
रसोग्निर्गजैर्लभदाः स्युः पशूनां शशी युग्मवेदेषु सप्ताशुभं स्यात् ॥४२१॥

---

१. वा० र० ९६ पृ० ७२ श्लो०। २. मु० मा० ६ प्र० श्लो० टी०।
३. वा० र० १३० पृ०।

मकान स्वामी के हाथ से भूमि की लम्बाई–चौड़ाई की संख्या को जोड़कर उसमें पुनः मालिक के नामाक्षर की संख्या मिलाकर ८ आठ का भाग देने पर ६।३।८ शेष मिलने पर शुभ और १।२।४।५।७ शेष प्राप्त होने पर अशुभ होता है ॥ ४२१ ॥

सफल ग्रन्थान्तर से चरणि ज्ञान

[1]अन्यत्रापि—

स्वामिहस्तप्रमाणेन दीर्घविस्तारसंयुतम् ।
अष्टभिश्च हरेद्भागं शेषं चरणि उच्यते ॥ ४२२ ॥
पशुहानिः पशुरोगः पशुर्लाभः पशुक्षयः ।
पशुनाशः पशुवृद्धिःपशुभेदो वहुः पशुः ॥ ४२३ ॥

ग्रन्थान्तर में भी कहा है कि मकान मालिक के हाथ से भूमि की लम्बाई चौड़ाई संख्या को जोड़कर आठ से भाग देने पर शेष १ मिले तो पशु हानि, २ में पशु रोग, ३ में पशु लाभ, ४ में पशु क्षय, ५ में पशुनाश, ६ में पशु वृद्धि, ७ में पशुभेद और ० शून्य शेष मिलने पर पशुओं की वृद्धि होती है ॥ ४२२–४२३ ॥

स्पष्टार्थ चक्र

शेष	१	२	३	४	५	६	७	८
फल	पशु हानि	पशु रोग	पशु लाभ	पशु क्षय	पशु नाश	पशु वृद्धि	पशु भेद	पशु वृद्धि

अश्व (घोड़ा) गृह (घर) प्रमाण

अथाश्वशालानिर्माणप्रकारः—

[2]वास्तुराजवल्लभे—

तुरंगमानां गृहवामभागे शाला चतुष्षष्टिकरा विधेया ।
शतार्द्धतो मध्यमिका च दैर्घ्ये कनीयसी तद्दशभिर्विहीना ॥ ४२४ ॥

वास्तुराजवल्लभ में कहा है कि घर के बायीं तरफ ६४ हाथ लम्बी, १५ हाथ चौड़ी अश्वशाला बनाना उत्तम होता है । तथा उसी दिशा में ५० हाथ लम्बी और तेरह हाथ चौड़ी अश्वशाला मध्यम कोटि की होती है । एवं ४० हाथ लम्बी व ११ हाथ चौड़ी अश्वशाला अधम होती है । उक्त शालाओं की बाहर की भीत की ऊँचाई क्रम से ५½, ५ और ४ हाथ ऊँची बनानी चाहिये ॥ ४२४ ॥

व्यासे च ज्येष्ठा तिथिहस्तमाना त्रयोदशैकादशकैः क्रमेण ।
तदाद्यभित्तिश्च करप्रमाणं पंचार्द्धपंचाब्धिकरोदरा स्यात् ॥४२५॥

---

१. वृ० वा० ९५ पृ० ।
२. ९ अ० २४-२५ श्लो० ।

स्वगृहस्य वामभागे चतुःषष्टिकरात्मिका । तुरंगमानां शाला श्रेष्ठा भवतीति । शतार्द्धकरात्मिका पञ्चाशद्धस्तमिता वाजिशाला मध्या स्यात् । चत्वारिंशत्करात्मिका कनीयसी कनिष्ठा इत्यर्थः । पूर्वक्रमेण विस्तारप्रमाणमाह व्यासे चेति । व्यासे विस्तारेति विहस्ततुल्या पञ्चदशकरात्मिका श्रेष्ठा त्रयोदशकरात्मिका मध्या एकादशहस्तात्मिका कनिष्ठा स्यात् । तद्वाह्यक्षितिः क्रमात्पञ्चार्द्धं सार्द्धपञ्चमितं उत्तमं पञ्चकरा मध्यमा । अग्निकरा त्रिहस्ता कनिष्ठा इत्यर्थः ।

अपने घर से बायीं ओर ६४ चौंसठ हाथ लम्बी घोड़ाओं की शाला श्रेष्ठ होती ५० हाथ की मध्यम और ४० हाथ लम्बी कनीयसी शाला होती है । चौड़ाई में क्रम से १५ की श्रेष्ठ, १३ हाथ की मध्यम और ११ हाथ लम्बी अधम होती है । और शालाओं के बाहर की भीत क्रम से ५½, ५, ४ ऊँची श्रेष्ठ, मध्यम व अधम होती है ।

शाला में घोड़ा बांधने का फल

[1]तेजोहानिमयी हया विदधते पूर्वापरस्यां नृणां
ते याम्योत्तरतो सुखाहि सततं कीर्तिर्यशोद्धान्यकम् ॥ ४२६ ॥

शाला में घोड़ों को पूर्व या पश्चिम की ओर मुख करके बांधने पर तेज की हानि, उत्तर या दक्षिण की ओर मुख करके बांधने पर निरन्तर कीर्ति, यश अन्न की वृद्धि होती है । घोड़ों को खाने की जगह को हिषण कहते हैं । इसके ऊपर कलश बनाना चाहिये । इनके बांधने की जगह को स्थान कहते है । इनके आगे की ओर दो हाथ ऊँचा स्थान बनाना और उसमें सात ७ हाथ तोरण बनाना शुभदायक होता है ॥ ४२६ ॥

सिंह द्वार निर्माण

अथ गजशालानिर्माणम् —

[2]वास्तुराजवल्लभे—

सिंहद्वारं पूर्वमानेन कार्यं त्रिद्व्येका वा मालिकास्तंभशीर्षे ।
स्यातां मध्ये तोडकौ रक्षणार्थं तुल्यौ भागे नाधिकौ वापि सार्द्धौ ॥४२७॥

वास्तु राजवल्लभ में कहा है कि राजाओं के सिंह द्वार (सदर फाटक) पर खम्भे के मस्तक पर ३ या २ या १ मंजिल मकान बनाना चाहिये । उसके बीच में दो तोटक (अर्गल काष्ठ की) लगाना चाहिये । ये दोनों मोटाई और चौड़ाई में समान हों या सवाई या ड्योढ़े हों या सब तरह के बनाने चाहिये ॥ ४२७ ॥

---

१. वा. व. ९ अ. २६ श्लो. ।
२. ९ अ. २८ श्लो. ।

सलक्षण गज शाला

[1]भागे दक्षिणवामके च करिणां शाला हरेद्वारतः
कर्तव्या सुदृढोन्नता च कलशैर्घंटादिभिर्भूषिता ।
संकीर्णो रसतो नगैर्निगदितो मंदो मृगश्चाष्टमः
सर्वेषूत्तमभद्रजातिरुदितो नन्दैः करैरुच्छ्रितः ॥ ४२८ ॥

वास्तुराजवल्लभ में बताया है कि सिंह द्वार से दाहिनी या बायीं या दोनों तरफ अत्यन्त मजबूत ऊँची और कलश घण्टा से सुशोभित गजशाला बनवानी चाहिये ।

६ हाथ ऊँचा हाथी संकीर्ण जाति का, ७ हाथ ऊँचा मन्द जाति का, ८ हाथ ऊँचा मृग जाति का और सबसे उत्तम हाथी ९ हाथ ऊँचा भद्रजाति का होता है ॥ ४२८ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने षडशीतितमं गृहप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रहग्रन्थ का गृह प्रकरण नामवाला छियासीवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ८६ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज-
मुरलीधरचतुर्वेदकृता बृहद्दैवज्ञरञ्जनसङ्ग्रहग्रन्थस्य
षडशीतिप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दीटीका
पूर्तिमगात् ॥ ८६ ॥

अथ सप्ताशीतितमं वास्तुप्रकरणं प्रारभ्यते

अब आगे सत्तासीवें वास्तु प्रकरण में कोणों के निवास फल व घर के चारों ओर वृक्ष लगाने के फल को बताते हैं ।

कोणों में निवास का फल

[2]वराहः—

पुरभवनग्रामाणां ये कोणास्तेषु निवसतां दोषाः ।
श्वपचादयोऽन्त्यजास्ते तेष्वेव विवृद्धिमायांति ।। १ ॥

बृहत्संहिता में कहा है कि नगर, भवन और गांव के कोने में निवास करने पर दोष होता है । किन्तु चाण्डाल (डोम) चमार आदि नीच जातियाँ यदि कोने में बसती हैं तो उनकी उन्नति होती है ॥ १ ॥

१. वा. व. ९ अ. २९ श्लो. ।
२. बृ. सं० ५२ अ. ८४ श्लो ।

मकान की चारों दिशा में वृक्षों का फल

अथ सद्मनश्चतुर्दिक्षु वृक्षफलम्—

[1]वास्तुराजवल्लभे—

वृक्षा दुग्धसकंटकाश्च फलिनस्त्याज्या गृहाद्दूरतः
शस्ते चम्पकपाटले च कदलो जाती तथा केतकी ।
यामादूर्ध्वमशेषवृक्ष सुरजा छाया न शस्ता गृहे
पार्श्वैकस्य हरेरवीशपुरतो जैनानुचण्याः क्वचित् ॥ २ ॥

वास्तुराजवल्लभ में कहा है कि दुग्धवाले वृक्ष, काँटेवाले वृक्ष और फलवाले वृक्ष मकान के समीप अच्छे नहीं होते हैं। चम्पा, गुलाव, केला, जाती और केतकी के वृक्ष शुभ होते हैं।

एक प्रहर दिन के वाद किसी वृक्ष की छाया घर में शुभ नहीं होती है। ब्रह्मा के मन्दिर के वगल में, विष्णु, सूर्य, शिव मंदिर के सामने, जैन मन्दिर के पीछे और देवी मन्दिर के किसी भाग में घर वनाना शुभ नहीं होता है ॥ २ ॥

उक्त वृक्षों का फल

[2]सदुग्धवृक्षा द्रविणस्य नाशं कुर्वन्ति ते कंटकिनोरिभीतिम् ।
प्रजाविनाशं फलिनः समीपे गृहस्थवर्ज्याः कलधौतपुष्पाः ॥ ३ ॥

वास्तु राजवल्लभ में कहा है कि दुग्धवाले वृक्ष धन नाश करने वाले, काँटे वाले वृक्ष शत्रुभय और फल वाले वृक्ष सन्तान नाशक होते हैं। मकान के समीप पीले पुष्प का वृक्ष शुभ नहीं होता है ॥ ३ ॥

वृक्ष विशेष छेदन निषेध व शुभ वृक्ष

[3]दुष्टा भूतसमाश्रिता विटपिनः छिद्याद्यथाशक्तितः
तं वाशं च शमीमशोकवकुली पुन्नागसच्चम्पकौ ।
द्राक्षापुष्पकमण्डपं च तिलकान्कृष्णां वपेद्दाडिमीं
सौम्यादेः शुभदो कपित्थकवटावौदुम्बराश्वत्थकौ ॥ ४ ॥

वास्तुराजवल्लभ में वताया है कि जो वृक्ष दुष्ट हो और जिसमें भूतों का निवास होता है उसे भी काटना नहीं चाहिये। तथा वेल, छोंकरा, अशोक, मौलसरी, पुन्नाग और चम्पा को भी काटना शुभ नहीं होता है।

अंगूर, पुष्प का मंडप, चन्दन वृक्ष, पीपली और अनार वृक्ष लगाना शुभ होता है। मकान से उत्तर की तरफ, कैथ, पूर्व में वरगद, दक्षिण में गूलर और पश्चिम में पीपल का वृक्ष शुभद होता है ॥ ४ ॥

विशेष—वास्तुराजवल्लभ में 'दुष्टो भूतनिषेवितोऽपि विटपी नोच्छिद्यते शक्तितः । तद्वद्बिल्वशमीत्वशो·····' पाठ प्राप्त है ॥ ४ ॥

---

१. १ अ. २८ श्लो. ।   २. वा. व. १ अ. २९ श्लो. ।

३. वा. व. १ अ. ३० श्लो. ।

ग्रन्थान्तर से शुभाशुभ वृक्ष

[1]वास्तुप्रदीपे—

क्षीरवृक्षवटाश्वत्थरक्तपुष्पद्रुमास्तथा ।
सकंटकं शाल्मली च प्लक्षोदुम्बरसंज्ञकौ ॥ ५ ॥
अग्निकोणे सदा दुष्टा मृत्युपीडाप्रदायकाः ।
पुन्नागफलिनीनिंबदाडिमीशोकजातिकाः ॥ ६ ॥
नागकेशरसंपुष्पं जपाकुसुमकेशरे ।
जयन्ती चन्दनं प्रोक्तं वचा चैवापराजिता ॥ ७ ॥
मधुविल्वाम्रभृंगाश्च नागरं ककुपादिकाः ।
यत्र तत्र स्थिताश्चैते नारिकेरादयः शुभाः ॥ ८ ॥

वास्तु प्रदीप में कहा है कि दुग्ध वृक्ष, वरगद, पीपर, लाल फूल, काँटे वाला, सेमर, पकरिया, गूलर का वृक्ष अग्निकोण में होने पर सदा दूषित फल देनेवाला तथा मृत्यु व पीड़ा को देने वाला होता है ।

पुन्नाग, फलवाला, नीम, अनार, केशर, जयन्ती, चन्दन, वचा, अपराजिता, मधु, वेल, आम, दालचीनी, नागर, ककुपादि और नारियल वृक्ष ये समस्त दिशाओं में लगाने पर शुभ फलदाता होते हैं ॥ ५–८ ॥

अश्वत्थं च कदंबं च कदलीबीजपूरकम् ।
गृहे यस्य प्ररोहन्ति स गृही न प्ररोहति ॥ ९ ॥
सर्वत्र पनसः शस्ते दक्षिणे सकलाः खलाः ॥ १० ॥

पीपल, कदम्ब, केला, बीजू नीबू ये जिसके मकान में होते हैं उस घर में निवास करने वाले की वंश वृद्धि नहीं होती है । कटहर का वृक्ष सब जगह शुभ होता है किन्तु दक्षिण दिशा में सभी वृक्ष अशुभ होते हैं ॥ ९–१० ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने
सप्ताशीतितमं वास्तुप्रकरणं समाप्तम्

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जनसंग्रहग्रन्थ का वास्तुप्रकरण नामक सत्तासीवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ८७ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर चतुर्वेदकृता बृहद्दैवज्ञरञ्जनसंग्रहग्रन्थस्य सप्ताशीतिप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका समाप्ता ॥ ८७ ॥

---

१. बृ. वा. मा. १०० पृ. ७–२० श्लो. ।

अथाष्टाशीतितमं गृहप्रवेशप्रकरणं प्रारभ्यते

तत्प्रवेशं त्रिविधमुक्तं वसिष्ठेन ।

अब आगे अट्ठासीवें प्रकरण में प्रवेश कितने प्रकार का होता है तथा कब, किस-मास, लग्न नक्षत्रादि में नये मकान में प्रवेश करना इसे अनेक ग्रन्थों के वचनों से बताते हैं । ऋषि वसिष्ठ ने तीन प्रकार के प्रवेश को बताया है ।

त्रिविध प्रवेश लक्षण

तदाह—

[1]अपूर्वसंज्ञः प्रथमः प्रवेशः यात्रावसाने च सपूर्वसंज्ञः ।
द्वन्द्वाह्वयश्चाग्निभयादिजातस्त्वेवं प्रवेशस्त्रिविधः प्रदिष्टः ॥ १ ॥

ऋषि वसिष्ट ने बताया है कि नूतन मकान में प्रथम प्रवेश करने को अपूर्व प्रवेश, यात्रा से लौटने पर घर में प्रवेश करने को सपूर्व प्रवेश और अग्नि, जल (बाढ़) वायु विजली इत्यादि से गिरे हुए मकान का पुनः उद्धार करके उसमें प्रवेश करने को द्वन्द्व प्रवेश कहते हैं ॥ १ ॥

प्रवेश में शुभ, मध्यम मास

प्रवेशमाह [2]नारदः—

प्रवेशो मध्यमो ज्ञेयो सौम्यकार्तिकमासयोः ।
माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासेषु शोभनः ॥ २ ॥

ऋषि नारद जी ने कहा है कि अगहन व कार्तिक महीने में घर में प्रवेश करना मध्यम फल दायक होता है और माघ, फागुन, वैशाख व जेठ मास में प्रवेश करना शुभ होता है ॥ २ ॥

प्रत्येक मास में प्रवेश का फल

[3]वसिष्ठसंहितायाम्—

माघेर्थलाभः प्रथमप्रवेशे पुत्रार्थलाभः खलु फाल्गुने च ।
चैत्रेर्थहानिर्धनधान्यलाभो वैशाखमासे पशुपुत्रलाभः ॥ ३ ॥
ज्येष्ठे च मासेषु परेषु नूनं हानिप्रदं पुत्रभयप्रदं च ।
शुक्ले च पक्षे सुतरां विवृद्धयै कृष्णे च यावद्दशमीं च तावत् ॥ ४ ॥

वसिष्ठ संहिता में बताया है कि माघ मास में प्रथम घर में प्रवेश करने पर धन का लाभ, फागुन में पुत्र व धन का लाभ, चैत में धन की हानि, वैशाख में धनधान्य

१. व. सं. ३८ अ. ३ श्लो. ।

२. मु. चि. १३ प्र. १ श्लो. पी. टी. तथा ज्यो. नि. १७६ पृ. ।

३. ३८ अ. ८-९ श्लो. ।

का लाभ, जेठ में प्रवेश करने से पशु व पुत्र का लाभ और अवशिष्ट मासों (आषाढ़-सावन, भादों, आश्विन, पौष) में हानि और शत्रु का भय होता है। शुक्ल पक्ष में निरन्तर वृद्धि और कृष्ण पक्ष में दशमी तक घर का प्रवेश लाभप्रद होता है ॥ ३–४ ॥

अपूर्व घर में व तिनका के घर में प्रवेश का मुहूर्त

[1]ज्योतिःप्रकाशे—

गृहारम्भोदितैर्मासैर्धिष्ण्ये वारे विशेद्गृहम्।
विशेत्सौम्यायने हर्म्यं तृणागारं तु सर्वदा ॥ ५ ॥

ज्योतिः प्रकाश में कहा है कि नवीन घर में गेहारम्भोदित मास-नक्षत्र वारों में और तिनके के घर में सर्वदा (सब मासों में) प्रवेश करना चाहिये ॥ ५ ॥

प्रवेश में शुभ मास

[2]वास्तुप्रदीपे—

वैशाखमासेपि च फाल्गुनेपि ज्येष्ठे प्रवेशः शुभदो गृहस्य।
यात्रानिवृत्तावथवा नवस्य भूमीभुजां द्विर्भवनस्थिरेषु ॥ ६ ॥

वास्तु प्रदीप में कहा है कि वैशाख, फाल्गुन, जेठ मास में भी यात्रा से लौटने पर या नवीन घर में प्रवेश राजाओं को द्विस्वभाव व स्थिर राशि लग्न में करना चाहिये ॥ ६ ॥

पुराने मकान में प्रवेश के विशेष मास

अथ जीर्णगृहप्रवेशे विशेषमाह—

[3]जीर्णे गृहेग्न्यादिभयान्नवेपि मार्गोर्जयोः श्रावणकेपि सत्स्यात्।
वेशोम्बुपेज्यानिलवासवेषु नावश्यमस्तादिविचारणात्र ॥ ७ ॥

मुहूर्तचिन्तामणि में कहा है कि पुराने मकान में या जल, अग्नि, वायु, बिजली के द्वारा गिरे हुए मकान का जीर्णोद्धार कराकर उसमें अगहन, कार्तिक, सावन मास, शतभिषा, पुष्य, स्वाती और धनिष्ठा नक्षत्र में गृहप्रवेश करना श्रेयस्कर होता है। इस जीर्णोद्धार किये हुए मकान के प्रवेश में अस्तादि का विचार करना आवश्यक नहीं होता है ॥ ७ ॥

सामान्यतस्त्रिविधस्यापि प्रवेशस्य विधानादुत्तरायणीयमासास्त्रिविध-गृहप्रवेशे शुभाः। दक्षिणायनीयमासाः श्रावणादयस्तु जीर्णगृहप्रवेशे शुभाः। अतएव नारदो मार्गकार्तिकयोर्नूतनप्रवेशे मध्यमतामाह। अर्थादेव जीर्णगृह-प्रवेशः शुभः। अत्रैव जीर्णे गृहेग्न्यादिभयान्नवेपि आवश्यकादिविचारे शुक्रास्त-

१. मु. चि. १३ प्र. १ श्लो. पी. टी. तथा ज्यो. नि. १७७ पृ. १२ श्लो.।
२. बृ. वा. ९५ पृ. २३ श्लो.।
३. मु. चि. १३ प्र. २ श्लो.।

गुर्वस्तबाल्यवार्द्धकसिंहस्थगुर्वादित्यदोषाणां विचारो नास्ति। अस्तादयः कालदोषाः तथा गृहप्रवेशः कार्यः। सोपि पञ्चाङ्गमात्रमङ्गीकृत्य विहितनक्षत्रेष्वेव कार्यः।

सामान्य रीति से तीनों प्रकार के प्रवेश का विधान उत्तरायण मास में शुभ होता है। दक्षिणायन के सावनादि मास पुराने मकान के प्रवेश में उपयुक्त होते हैं। इसीलिये ही नारदजी ने अगहन, कार्तिक मास में नवीन घर के प्रवेश को मध्यम कहा है। अर्थात् पुराने मकान में प्रवेश शुभ होता है। यहाँ पर अग्नि आदि से जीर्ण होने पर भी आवश्यकता वश गुरु, शुक्र का अस्त, वाल्य, वार्द्धक्य सिंहस्थ गुर्वादित्य दोष का विचार नहीं होता है। अस्तादि समय दोष होने पर भी घर का प्रवेश कराना चाहिये। वह भी प्रवेश पंचाङ्ग शुद्धि देखकर विहित नक्षत्रों में ही करना चाहिये।

अस्त दोष का अभाव

तथा च ज्योतिःप्रकाशे—

[1]नित्ययाने गृहे जीर्णे प्राशने परिधानके।
वधूप्रवेशे माङ्गल्ये न मौढ्यं गुरुशुक्रयोः॥ ८॥

ज्योतिःप्रकाश नामक ग्रन्थ में बताया है कि प्रतिदिन की यात्रा में, पुराने घर के प्रवेश में, अन्नप्राशन, वस्त्रपरिधान, वधू प्रवेश और सामान्य माङ्गलिक कार्य में गुरु व शुक्र का अस्त दोष नहीं होता है॥ ८॥

काल शुद्धि अभाव

[2]वसिष्ठः —

नव प्रवेशे ह्यथ कालशुद्धिर्नद्वन्द्वसोपूर्वकयोः कदाचित्।
प्रवेशपञ्चांगदिने सुलग्ने वास्त्वर्चनं पूर्ववदेव कार्यम्॥ ९॥

ऋषि वसिष्ठजी ने बताया है कि नवीन मकान के प्रवेश में ही समय शुद्धि का विचार करना चाहिये। तथा द्वन्द्व व सपूर्व प्रवेश में काल शुद्धि देखना आवश्यक नहीं होता, इनमें केवल पञ्चाङ्ग शुद्धि देखकर वास्तु पूजा और प्रवेश पूर्ववत् करना चाहिये॥ ९॥

त्रिविध प्रवेश में त्याज्य

[3]क्रूरग्रहाधिष्ठितविद्धभं च विवर्जनीयं त्रिविधप्रवेशे।
[4]शुक्ले च पक्षे सुतरां प्रवृद्धयै कृष्णे च यावद्दशमी च तावत्॥ १०॥

---

१. मु. चि. १३ प्र. २ श्लो. पी. टी.।
२. व. सं. ३८ अ. २ श्लो.।
३. व. सं. ३८ अ. ७ श्लो.।
४. व. सं. ३८ अ. ९ श्लो.।

वसिष्ठ संहिता में बताया है कि पापग्रह जिस नक्षत्र में हो और जो पाप से विद्ध नक्षत्र हो उसमें तीनों प्रकार का प्रवेश नहीं करना।

शुक्लपक्ष में प्रवेश करने पर निरन्तर वृद्धि होती है किन्तु कृष्णपक्ष की दशमी तक ही प्रवेश करना चाहिये ॥ १० ॥

त्रिविध प्रवेश में शुभ नक्षत्र

[1]चित्रोत्तरा धातृशशाङ्कमित्रवस्वन्त्यवारीश्वरभेषु नूनम् ।
आयुर्धनारोग्यसुपुत्रपौत्रसुकीर्तिदः स्यात्त्रिविधप्रवेशे ॥ ११ ॥

चित्रा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, अनुराधा, धनिष्ठा, रेवती और शतभिषा नक्षत्र में त्रिविध प्रवेश करने से आयु, धन, आरोग्य, पुत्र, पौत्र एवं यश की वृद्धि होती है ॥ ११ ॥

[2]वृहद्योगयात्रायां वराहः—
पौष्णे धनिष्ठास्वथ वारुणेषु स्वायम्भुवर्क्षेषु त्रिषूत्तरासु ।
अक्षीणचन्द्रे शुभवासरे च तिथावरिक्ते च गृहप्रवेशः ॥ १२ ॥

योगयात्रा में वराह ने बताया है कि रेवती, धनिष्ठा, शतभिषा, रोहिणी, तीनों उत्तरा नक्षत्र में, अक्षीण चन्द्रमा, शुभवार, रिक्ता रहित तिथि में घर का प्रवेश करना शुभ होता है ॥ १२ ॥

शार्ङ्गधरः —
[3]शुभप्रवेशो देवेज्यशुक्रयोर्दृश्यमानयोः ।
वस्वीज्यवारुणस्वातीहस्तमैत्रस्थिरोडुषु ॥ १३ ॥
व्यर्कारवारे तिथिषु रिक्तामावर्जितेषु च ।
दिवा वा यदि वा रात्रौ प्रवेशो मङ्गलप्रदः ॥ १४ ॥

ऋषि शार्ङ्गधर ने बताया है कि शुक्र, गुरु के उदित रहने पर, सूर्य, भौमवार एवं रिक्ता, अमावास्या तिथि का परित्याग करके धनिष्ठा, पुष्य, रेवती, मृगशिरा, शतभिषा, चित्रा, अनुराधा स्थिर संज्ञक (३ उत्तरा, रोहिणी) नक्षत्र में दिन या रात में घर में प्रवेश शुभदायी होता है ॥ १३–१४ ॥

[4]वृत्तशते—
पुष्ये मैत्रे मृगे स्वान्त्या ध्रुवे त्वाष्ट्रे च पूषभे ।
वासरे वारुणे शस्ते नवालयनिवेशने ॥ १५ ॥

---

१. व. सं. ३८ अ. १० श्लो. ।
२. ज्यो. नि. १७७ पृ. १७ श्लो. में 'पौष्णे' के स्थान पर पुष्य है तथा रत्नकोश के नाम से उद्धृत है ।
३. ज्यो. नि. १७६ पृ. ४ श्लो. ।
४. ज्यो. नि. १७६ पृ. १० श्लो. ।

वृत्तशत में बताया है कि पुष्य, अनुराधा, मृगशिरा, स्वाती, ३ उत्तरा, रोहिणी, चित्रा, रेवती, नक्षत्र में, सोमवार में नवीन मकान में प्रवेश करना शुभ होता है ।।१५।।

[1]वैद्यनाथः—

त्र्युत्तरे रोहिणीयुग्मे रेवत्यां वासवद्वये ।
पुष्ये त्वाष्ट्रद्वयोर्मैत्रे प्रवेशोभिहितः करे ।। १६ ।।

आचार्य वैद्यनाथजी ने कहा है कि ३ तीन उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, धनिष्ठा, शतभिषा, पुष्य, रेवती, अश्विनी, अनुराधा व हस्त नक्षत्र में प्रवेश शुभ होता है ।। १६ ।।

[2]रत्नमालायाम् -

पुष्ये धनिष्ठा मृदुवायुमूलस्थिराश्विनी विष्णुजलेशहस्ते ।
एषु प्रवेशो बहुपुत्रपौत्रैः चिरंवसेद्भूरिसमागमैश्च ।। १७ ।।

रत्नमाला में कहा है कि पुष्य, धनिष्ठा, मृदु संज्ञक, स्वाती, मूल, ३ उत्तरा, रोहिणी, अश्विनी, श्रवण, शतभिषा और हस्त, इन नक्षत्रों में मकान में प्रवेश करने से अधिक पुत्र, पौत्रादि के साथ बहुत काल पर्यन्त निवास होता है ।। १७ ।।

लग्न शुद्धि व प्रवेश प्रकार

अथ लग्नशुद्ध्यादिकम्—

[3]रामदैवज्ञः—

त्रिकोणकेन्द्रायधनत्रिगैः शुभैर्लग्ने त्रिषष्ठायगतैश्च पापकैः ।
शुद्धाम्बुरन्ध्रे विजनुर्भमृत्यौ व्यर्कारिरिक्ता चरदर्श चैत्रे ।। १८ ।।
अग्रेसुपूर्णं कलशं द्विजांश्च कृत्वा विशेद्वेश्मभकूटशुद्धम् ।। १९ ।।

श्रीरामदैवज्ञ ने मुहूर्तचिन्तामणि में बताया है कि प्रवेश लग्न से त्रिकोण (५।९) केन्द्र (१।४।७।१०) एकादश (११) द्वितीय (२) और तृतीय भाव में शुभग्रहों के रहने पर तथा १।३।६।११ में पापग्रह की सत्ता में, ४।८ भाव रिक्त रहने पर एवं जन्म लग्न से अष्टम राशि लग्न व जन्म राशि और रविवार, भौमवार, रिक्ता तिथि, चर लग्न (१।४।७।१०) व चैत के महीने का परित्याग करके अन्य तिथि लग्नादि में भरा हुआ कलश मस्तक पर रखकर ब्राह्मण मण्डली व सौभाग्यवती स्त्रियों को आगे करके भकूट शुद्धि होने पर नवीन मकान में प्रवेश करना चाहिये ।। १८–१९ ।।

प्रवेश में विशेष

[4]वसिष्ठः—

कृत्वा शुक्रं पृष्ठतो वामतोर्कं विप्रान्पूज्यानग्रतः पूर्णकुम्भम् ।
रम्यं हर्म्यं तोरणं स्रग्वितानैः सम्यक् स्त्रीभिर्गीतवाद्यैः विशेत्तत् ।।२०।।

---

१. ज्यो. नि. १७७ पृ. १८ श्लो. । २. ज्यो. नि. १७७ पृ. १७ श्लो. ।
३. मु. चिं. १३ प्र. ३–४ श्लो. । ४. व. सं. ३८ अ. २४ श्लो. ।

ऋषि वसिष्ठजी ने बताया है कि शुक्र को पीछे और रवि को वायीं ओर करके ब्राह्मणों का पूजन कर पूर्ण कलश (जल से भरा घड़ा) को आगे करके तोरण. माला, वितान से सुशोभित मकान में स्त्री समुदाय के गीतों से युक्त वाद्यों (वाजों) के साथ प्रवेश करना उत्तम होता है ॥ २० ॥

श्रीपतिः—

[1]कृत्वा विप्रान्सजलकलशं चाग्रतो वामतोर्कं
स्नातः स्रग्वी विमलवसनो मङ्गलैर्वेद घोषैः ।
व्यस्तैर्यात्रा कथितशकुनैर्द्वारमार्गेण राजा
हर्म्यं पुष्पप्रकररुचिरं तोरणाढ्यं विशेच्च ॥ २१ ॥

आचार्य श्रीपति जी ने कहा है कि ब्राह्मणों की पूजा करके उन्हें व पूर्ण कलश आगे व सूर्य को बाँयीं ओर करके सुन्दर रीति से स्नान कर अच्छे कपड़े व माला को मांगलिक वेद घोष के साथ और यात्रा में कहे हुए शकुनों के विपरीत शकुन में राजा को फूलों व तोरणादि से पहिन कर सुशोभित मकान में प्रवेश करना चाहिये ॥ २१ ॥

[2]वसिष्ठः—

राशिकूटादिकं सर्वं दम्पत्योरिव चिन्तयेत् ॥ २२ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि जैसे विवाह में कन्या-वर का राशि कूटादि का विचार होता है उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिये ॥ २२ ॥

वामगतार्कज्ञाने पूर्वादिमुखे गृहप्रवेशम् ।

वामार्क का ज्ञान होने पर ही घर में प्रवेश करना चाहिये ।

वाम रवि ज्ञान

[3]रामदैवज्ञः—

वामो रविर्मृत्युसुतार्थलाभतोर्के पंचसु प्राग्वदनादि मन्दिरे ।
पूर्णातिथौ प्राग्वदने गृहे शुभो नन्दादिके याम्यजलोत्तरानने ॥ २३ ॥

मुहूर्त चिन्तामणि में बताया है कि प्रवेश लग्न से अष्टम राशि से आगे पाँच (८।९।१०।११।१२) स्थान में सूर्य के रहने पर पूर्वाभिमुख मकान में प्रवेश करने वाले के लिये वायाँ सूर्य होता है ।

तथा प्रवेश लग्न से पञ्चमभाव राशि से आगे पाँच (५।६।७।८।९) राशि में सूर्य की सत्ता होने पर दक्षिण दिशा मुख वाले मकान में प्रवेश के लिये वाम रवि होता है ।

एवं गृहप्रवेश लग्न से दूसरे भाव से आगे पाँच (२।३।४।५।६) स्थानों में सूर्य की स्थितिवश पश्चिम की ओर मुख वाले मकान मे प्रवेश के लिये बाँया सूर्य होता है ।

---

१. मु. चि. १३ प्र. ३–४ श्लो. पी. टी. । २. व. सं. ३९ अ. ५४ श्लो. ।
३. मु. चि. १३ प्र ५ श्लो. ।

और प्रवेश लग्न से ग्यारहवें भाव से आगे पाँच (११।१२।१।२।३) भावों में सूर्य के रहने पर उत्तर दिशा मुख वाले मकान में प्रवेश के लिये वाम रवि होता है। पूर्व दिशा में दरवाजा होने पर पूर्णातिथि (५।१०।१५) में, दक्षिण द्वार में नन्दा (१।६।११) में, पश्चिम द्वार में भद्रा (२।७।१२) में और उत्तर दिशा में मकान का दरवाजा होने पर जया (३।८।१३) तिथि में घर का प्रवेश शुभ होता है ।।२३।।

स्पष्टार्थ चक्र

	पूर्व मुख	दक्षिण मुख	पश्चिम मुख	उत्तर मुख
प्र० ल० से स्थान	सू० ८	सू० ५	सू० २	सू० ११
स्थान	सू० ९	सू० ६	सू० ३	सू० १२
स्थान	सू० १०	सू० ७	सू० ४	सू० १
स्थान	सू० ११	सू० ८	सू० ५	सू० २
स्थान	सू० १२	सू० ९	सू० ६	सू० ३

[1]उक्तं च—

रन्ध्रात्पुत्राद्धनादायात्पञ्चस्वर्के स्थिते क्रमात् ।
पूर्वाशादिमुखं गेहं विशेद्वामो भवेद्यतः ।। २४ ।।

ग्रन्थान्तर में बताया है कि प्रवेश लग्न की आठवीं राशि, पंचम राशि, दूसरी राशि और ग्यारहवीं राशि से आगे पांच राशि तक सूर्य के होने पर पूर्वादि दिशा में घर के मुख होने पर प्रवेश कर्ता के लिये क्रम से वाम रवि होता है ।। २४ ।।

सफल कुम्भ चक्र ज्ञान

अथ प्रवेशे कलशवास्तुचक्रमाह—

[2]रामः—

चक्रेभूरविभात्प्रवेशसमये कुम्भेग्निदाहः कृतः
प्राच्यामुद्वसनं कृतायमगताः लाभः कृतः पश्चिमे ।
श्रीर्वेदा कलिरुत्तरे युगमिता गर्भे विनाशो गुदे
रामास्थैर्यमतः स्थिरत्वमनलः कण्ठे भवेत्सर्वदा ।। २५ ।।

मुहूर्तचिन्तामणि में कहा है कि सूर्य जिस नक्षत्र में हो उससे १ नक्षत्र कलश के मुख में स्थापित करने पर वही प्रवेश नक्षत्र हो तो अग्नि दाह, फिर आगे के चार पूर्व के नक्षत्रों में उद्वास, पुनः ४ दक्षिण के में लाभ, फिर ४ नक्षत्र पश्चिम के में लक्ष्मी प्राप्ति, पुनः ४ नक्षत्र उत्तर के में कलह, ४ गर्भ के में विनाश, ३ नक्षत्र गुदा के में स्थिरता, पुनः ३ तीन कण्ठ में स्थापित करके इनमें प्रवेश नक्षत्र होने पर स्थिरता होती है ।।२५।।

१. मु. चि. १३ प्र. ५ श्लो. पी. टी. ।
२. मु. चि. १३ प्र. ६ श्लो. ।

स्पष्टार्थ चक्र

मुख	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	गर्भ	गुदा	कण्ठ	स्थान
१	४	४	४	४	४	३	३	२७ नक्षत्र
अग्निदाह	उद्वास	लाभ	श्री	कलह	विनाश	स्थिरता	स्थिरता	फल

[1]ज्योतिःप्रकाशे—

भूर्वेदपञ्चकत्रिस्त्रिः प्रवेशे कलशेर्कभात् ।
मृतिर्गतिर्धनं श्रीः स्याद्वैरं रुक् स्थिरता सुखम् ॥ २६ ॥

ज्योतिःप्रकाश नामक ग्रन्थ में बताया है कि १।४।४।४।४।४।३।३ नक्षत्रों को सूर्य के नक्षत्र से कलश में स्थापित करने पर मरण, गमन, धन, लक्ष्मी, शत्रुता, रोग, स्थिरता और सुख क्रम से प्रवेश नक्षत्र इन में होने पर फल होता है ॥ २६ ॥

स्पष्टार्थ चक्र

१	४	४	४	४	४	३	३	२७ नक्षत्र
मरण	मन	धन	श्री	शत्रु	रोग	स्थिरता	सुख	फल
मुख	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	गर्भ	गुदा	कण्ठ	स्थान

भिन्न प्रकार से सफल चक्र

[2]अन्यत्रापि—

प्रवेशे कलशेर्कर्क्षात्पञ्चनागाष्ट षट् क्रमात् ।
अशुभं च शुभं ज्ञेयमशुभं च शुभं तथा ॥ २७ ॥

ग्रन्थान्तर में भी कहा है कि प्रवेश काल में सूर्य जिस नक्षत्र में हो उससे ५।८।८।६ नक्षत्र में प्रवेश नक्षत्र होने पर अशुभ, शुभ, अशुभ, शुभ फल होता है ॥ २७ ॥

स्पष्टार्थ चक्र

५	८	८	६	२७ नक्षत्र
अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	फल

राहु विचार

चक्रावलोकनात् ।

यद्राशिगोर्कः खलु तद्विशिष्याद्राहुः सदा गच्छति मासि मासि ।
द्विरागमे वापि गृहप्रवेशे राहुः प्रशस्तः किल दक्षपृष्ठे ।।२८।।

ग्रन्थान्तर में कहा है कि जिस राशि दिशा में सूर्य स्थित हो उस राशि से उलटी दिशा क्रम से मास, मास में राहु उस दिशा में भ्रमण करता है । इस राहु का तीसरी वार पति के घर स्त्री के जाने में और घर के प्रवेश में विचार करना चाहिये । इस राहु की स्थिति दाहिने और पीछे शुभ होती है ॥ २८ ॥

अथ कलशचक्रे शुभस्थानत्वं याते सत्वे विहितनक्षत्राणां परिग्रहो युक्तः । तत्रापि यद्दिङ्मुखे प्रवेशविधिस्यिते दिङ्नक्षत्रापरिग्रहः । यथा पूर्वस्यां

१. मु. चि. २३ प्र. ६ श्लो. पी. टी. । २. ज्यो. नि. १६७ पृ. ।

प्रवेशविधिस्थिते रोहिणी मृगो वा ग्राह्यः। दक्षिणमुखगृहप्रवेशे उत्तराफाल्गुनी चित्रे एवं पश्चिमाभिमुखे अनुराधोत्तराषाढे उत्तराभिमुखे उत्तराभाद्रपदरेवत्यौ ग्राह्ये। इति निर्गलितोर्थः।

कलश चक्र में विहित नक्षत्रों का शुभ स्थान में रहने पर यात्रा में ग्रहण करना युक्त संगत होता है। उसमें भी जिस दिशा के मुख में प्रवेश करना अभीष्ट हो तो उसी दिशा के नक्षत्र का ग्रहण करना चाहिये।

जैसे—पूर्वदिक् मुख वाले घर में प्रवेश करना हो तो रोहिणी, मृगशिरा का ग्रहण करना, दक्षिण मुख वाले मकान में प्रवेश करना हो तो उत्तरा-फाल्गुनी, चित्रा नक्षत्र में एवं पश्चिमाभिमुख घर में अनुराधा, उत्तराषाढ और उत्तर मुख के घर में प्रवेशार्थ उत्तराभाद्रपद और रेवती नक्षत्र का ग्रहण करना चाहिये। यह सारांश की बात है।

प्रवेश में कर्तव्यता

अथ प्रवेशे कर्तव्यतामाह—

[1]एवंसुलग्ने स्वगृहं प्रविश्य वितानपुष्पश्रुतिघोषयुक्तम्।
शिल्पज्ञदैवज्ञविधिज्ञपौरान्राजार्चयेद् भूमिहिरण्यवस्त्रैः॥ २९॥

इस प्रकार पूर्व विधि के अनुसार शुभ लग्न में वितान (छत या चाँदनी) फूल और वेद ध्वनि से युक्त अपने घर में प्रवेश करके चित्रकार, ज्योतिषी कर्मकाण्ड कराने वाला और नगर वासियों की भूमि, सुवर्ण, वस्त्र से राजा को पूजा करनी चाहिये॥ २९॥

प्रवेश में त्याज्य मकान

[2]नारदः—

अकपाटमनाच्छन्नमदत्तबलिभोजनम्।
गृहं न प्रविशेदेव विपदामाकरं हि तत्॥ ३०॥

ऋषि नारद जी ने बताया है कि जिस मकान में किवाड़ों का अभाव हो व ढका हुआ न हो, जिसमें बलिदान और ब्राह्मण भोजन न हुआ हो ऐसे मकान में प्रवेश नहीं करना चाहिये। क्योंकि इस प्रकार का घर विपत्तियों का खजाना होता है॥ ३०॥

यान से लौटने पर प्रवेश का मुहूर्त

अथ यानविर्वातितनरस्य प्रवेशमुहूर्तमाह—

सवासवक्षिप्रमृदुध्रुवेष्वथ स्थिरोदये शुद्धलयान्त्यकण्टके।
न द्वादशी पक्षति दर्शसप्तमी रिक्तातिरिक्ताजदितेष्वतन्त्रकृत्॥३१॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि धनिष्ठा क्षिप्र-मृदु-ध्रुव संज्ञक नक्षत्र, स्थिर लग्न में, खाली अष्टम व द्वादश भाव व कंटक रहने पर द्वादशी पक्षति अमा, सप्तमी रिक्ता तिथियों का त्याग करके अरिक्ता तिथियों में अज दिन में प्रवेश अतन्त्रकृत् होता है॥ ३१॥

---

१. मु. चि. १३ प्र. ७ श्लो.।

२. मु. चि. १३ प्र. ७ श्लो. पी. टी. तथा ज्यो. नि. १७९ पृ.।

गुरूशनोज्ञेन्दुदिनेषु वारुणानिलश्रविष्ठेज्यमृदुस्थिरोडुभिः ।
याताविरिक्तान्यकुयोगविष्टयभैर्नृभाजिलग्ने गमनस्थलं विशेत् ॥३२॥

गुरु, शुक्र, बुध, सोमवार, शतभिषा, श्रवण, पुष्य, मृदु, ध्रुव संज्ञक नक्षत्र में रिक्ता रहित, कुत्सित योग व भद्रा का त्याग करके नृभाजि लग्न में गमनस्थल में प्रवेश करना चाहिये ॥ ३२ ॥

वृत्तशते—

[1]भूपानां मृदुभिर्ध्रुवैः प्रविशनं यात्रानिवृत्ती शुभं
स्याद्भूयो गमनं चरर्क्षलघुभैरुग्रैर्मृतिर्भूपतेः ।
तीक्ष्णैर्भूपकुमारकस्य नृपतेः पत्न्या विशाखाह्वये
धिष्ण्ये हव्यभुजो गृहं प्रविशतां सन्दह्यते वह्निना ॥ ३३ ॥

वृत्त शत में कहा है कि राजा को यात्रा से लौटने पर मृदु-ध्रुव संज्ञक नक्षत्रों में प्रवेश करना शुभ और चर-लघु में करने पर पुनः यात्रा और उग्र संज्ञक में राजा का तीक्ष्ण में राजकुमार का और विशाखा नक्षत्र में प्रवेश करने पर राजपत्नी का मरण होता है तथा कृत्तिका में प्रवेश करने पर मकान अग्नि से जलता है ॥ ३३ ॥

[2]वास्तुप्रदीपे—

वैशाखमासेपि च फाल्गुनेपि ज्येष्ठे प्रवेशः शुभदो गृहस्य ।
यात्रानिवृत्तावथवा नवस्य भूमीभुजां द्विर्भवनस्थिरेषु ॥ ३४ ॥

वास्तुप्रदीप में कहा है कि राजाओं का वैशाख में भी जेठ और फागुन में भी नवीन घर में या यात्रा से लौटने पर द्विस्वभाव व स्थिर संज्ञक राशि लग्नों में प्रवेश शुभ होता है ॥ ३४ ॥

जन्मर्क्षलग्नोपचयोदयेषु मृदुध्रुवर्क्षैः शुभदः प्रवेशः ।
उग्रैर्नृपो दारुणभैः कुमारो राज्ञी विशाखासु विनाशमेति ॥ ३५ ॥

जन्म राशि लग्न से उपचय (३।६।१०।११) राशि लग्न में मृदु, ध्रुवसंज्ञक नक्षत्र में प्रवेश शुभ होता है । और उग्र नक्षत्रों में प्रवेश करने पर राजा की, दारुण में राजकुमार की और विशाखा नक्षत्र में प्रवेश करने पर रानी की मृत्यु होती है ॥३५॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने
अष्टाशीतितमं गृहप्रवेशप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन संग्रह ग्रन्थ का गृह प्रवेश नाम का अठ्ठासिवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ८८ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज-
मुरलीधर चतुर्वेदकृता बृहद्दैवज्ञरञ्जनसङ्ग्रहग्रन्थस्याष्टाशीति
प्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दीटीका समाप्ता ॥ ८८ ॥

---

१. ज्यो. नि. १७७ पृ. १६ श्लो. । २. बृ. वा. ९५ प्र. २३ श्लो. ।

अथ स्ववंशवर्णनं प्रारभ्यते

ग्रन्थकार का वंश वर्णन

आसीद्धरदाशपुर्यामपिहरपुरादुत्तरे योजनाना-
मन्तर्वाणाख्यसंख्ये गणकवरमतिः श्रद्धया रामशर्मा।
वंशे पाण्डेयख्याते सकलगुणनिधिः शास्त्रविद्वेदपाठी
तत्पुत्रो ज्योतिर्वेत्ता प्रभवति सततं श्रीगयादत्तशर्मा ॥ १ ॥
जिल्ले आजमसंज्ञके परगने वेलादउत्सावदे
ग्रामस्याद्धरदाशनामकपुरं श्रीकाशिराजाश्रितः।
वेदेष्वंककु १९५४ संमिते नृपशके श्रीरामदीनः सुधी-
र्ज्योतिःशास्त्रविचारसारग्रथितः ज्योतिर्विदां प्रीतये ॥ २ ॥

वाराणसी से उत्तर की ओर ५ पाँच योजन तुल्य दूरी पर हरदाशपुर में पाण्डेय वंश में ज्योतिषियों में श्रेष्ठ, बुद्धिमान, श्रद्धा से युक्त, समस्त गुणों के खजाना, शास्त्रों के जानकार वेदपाठी श्रीराम शर्मा का जन्म हुआ था। उनके पुत्र ज्योतिषशास्त्रवेत्ता श्रीगयादत्तजी हुए। इनका जन्म आजमगढ जिले में, वेलाद उत्सावद परगने में हरदाशपुर नामक गाँव में हुआ। इन गयादत्तजी के पुत्र पं० रामदीनजी ने श्री काशिराज महाराजाधिराज का आश्रय पाकर १९५४ नृपशक में अनेक ज्योतिष के ग्रन्थों का सार लेकर ज्योतिर्वेत्ताओं की प्रसन्नता के लिये इस ग्रन्थ का निर्माण किया है ॥ १–२ ॥

तुष्यन्ति सुजना बुध्वा विशेषान्मदुदीरितान्।
अबोधेन हसन्तो मां तोषमेष्यन्ति दुर्जनाः ॥ ३ ॥

मदुक्त विशेषता को जानकर अच्छे मनुष्य तो संतोष प्राप्त करेंगे और अज्ञान वश मूर्खजन हँसकर संतुष्ट होंगे ॥ ३ ॥

नहि तोषं विना हास्यमुत्पद्यते इति भावः।

विना संतोष के हँसना उत्पन्न नहीं होता है।

श्रीभगवतीप्रसादस्य संमत्यत्रापि संग्रहे।
जम्ववारिग्रामवासी सो जौनपूर्याख्यमण्डले ॥ ४ ॥

इस ग्रन्थ पर जौनपुर जिले के जम्ववारि गाँव निवासी श्रीभगवती प्रसादजी की सम्मति है ॥ ४ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मज रामदीनकृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने
स्ववंशानुवर्णनं समाप्तम्।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन संग्रह ग्रन्थ में अपने वंश वर्णन समाप्त हुआ। यह ग्रन्थ समाप्त हुआ।

टीकाकार का परिचय

वाराहेण कृते युगे भगवता श्रीरामचन्द्रेण यत्
त्रेतायां स्वयमच्युतेन तु पुनः कंसारिणा द्वापरे।
सश्रद्धं शिरसाऽर्चितं मधुपुरीमध्ये तदद्याऽप्यहो
भव्यं भाति कुलं धराऽमृतभुजां श्रीमच्चतुर्वेदिनाम् ॥ १ ॥

भारद्वाजो महात्माऽऽङ्गिरस इति पुनः ख्यातवृत्तो यशस्वी,
वार्हस्पत्योऽथ भूयो भुवि वत प्रवराः सन्ति यस्य त्रयोऽमी।
तत्रास्ते सप्तगोत्रेष्वपि विमलतमं तद् भरद्वाजगोत्रम्,
टूंटूंरामो द्विजोऽभूदतुलबलयुतश्चर्चिकाधिष्ठितेऽस्मिन् ॥ २ ॥

बभूव तत्पुण्यफलस्वरूपश्चरित्रतोऽप्यच्छकुलप्रदीपः।
पाण्डेयप्रख्योऽतुलधैर्यधाम प्रधीः सुतः केशवदेवनामा ॥ ३ ॥

प्रसूय मासे दशमे प्रसूर्हा दुर्दैवयोगाच्छिशुमेव हित्वा।
दिवं प्रयातेयमहो अतोऽस्य बाल्यं गतं मातुलमञ्जुगेहे ॥ ४ ॥

पश्चाच्छ्रीमुरलीधरस्य सुगुरोः सेवां विधायादरा-
न्नव्ये व्याकरणे कृतः करतले शास्त्रीत्युपाधिर्महान्।
भूयः श्रीवनमालिशर्मकृपया सश्रद्धमाराध्य तं
श्रीमद्भागवतोदधेः परमहो पारं गतोऽयं सुधीः ॥ ५ ॥

कीर्त्तिः श्रीबैजनाथस्याद्यावधि भ्राजते तु या।
श्रीमाथुरचतुर्वेदनामा विद्यालयो महान् ॥ ६ ॥

तत्र दीक्षागुरुश्रीमद्विष्णुदत्तकृपाफलम्।
लब्धवानादरेणायमध्यापकपदं ततः ॥ ७ ॥

अध्यापितास्तत्र वरेण्यशिष्या जानाति कोऽनेन तदा कियन्तः।
विस्तारयन्त्यच्छयशो यदीयं येऽद्याऽप्यहो दिक्षु विदिक्षु नित्यम् ॥ ८ ॥

भार्याऽऽसीदस्य या तस्यां नाम्नाकान्तिर्मनस्विनी।
जातास्तस्य त्रयः पुत्राः कन्या चैका यशस्विनी ॥ ९ ॥

ज्येष्ठस्तेषु सुतो दीपो न दीपाद् भिद्यते तथा।
नाम्ना हरिहरो जातः पुराणज्ञो यथा पिता ॥ १० ॥

श्रीमद्भागवतेसाक्षाच्छुकस्यास्य महीतले।
एक एव सुतः श्रीमानरविन्दो विराजते ॥ ११ ॥

कनिष्ठः श्रीधरो योऽपि प्रसिद्धो गुणकर्मभिः।
आंग्लभाषाचणो रक्षाशासकस्य पदे स्थितः ॥ १२ ॥
अल्पेनैवायुषा वाचा मनसा कर्मणा तथा।
दायित्वं निर्वहन्नच्छं यशः स्वीयं तनोत्यसौ ॥ १३ ॥
तत्सुता भास्करश्चाथ प्रभाकरदिवाकरौ।
कमनीयकिशोरास्ते भान्ति पितृसमाः समे ॥ १४ ॥

श्रेष्ठो ज्येष्ठसमो न नापि च गुणी यो वा कनिष्ठो यथा
यत्पुत्रावनिलोऽवधेश इति च ख्यातौ सुता साधना।
भार्या चेन्दुमती तु यस्य सुभगा विद्यावयःकर्मभि-
र्जातोऽयं मुरलीधरः पुनरहो तस्यात्मजो मध्यमः ॥ १५ ॥

ज्योतिःशास्त्रविचक्षणेन सुधियाऽनेनैव गूढं धिया,
तत्त्वं हन्त विचिन्त्य पूर्णकृपया श्रीविश्वनाथप्रभोः।
छात्राणामुपकारिणी प्रतिपदं विद्वन्मनोहारिणी,
टीकैषा विहिता हिता मतिमतां शंकासमुत्सारिणी ॥ १६ ॥

हद्दैवज्ञरञ्जनम्

डॉ० मुरलीधर चतुर्वेदी

प्रस्तुत कृति श्रीरामदीन दैवज्ञ कृत बृहद्दैवज्ञ-रञ्जन का द्वितीय भाग है। इस भाग में प्रकरण ५२ से ८८ (अंत तक) का प्रकाशन हुआ है। इसके प्रथम भाग में ५१ प्रकरण आ चुके हैं। पाठकों की सुविधा के लिए इसे दो भागों में विभाजित किया गया है। ज्योतिषाचार्य डॉ० मुरलीधर चतुर्वेदी ने इस पर 'श्रीधरी' नामक सरल हिन्दी व्याख्या लिखी है।

यह एक संग्रह ग्रन्थ है। संग्रहकर्त्ता श्रीरामदीन दैवज्ञ काशीनरेश के सभा पण्डित थे। ज्योतिष-शास्त्र के महत्त्वपूर्ण विषयों पर इन्होंने ग्रन्थान्तरों से उद्धरण देकर इस ग्रन्थ को सँवारा है तथा उद्धृत प्रमाणों के स्रोतों को टिप्पणियों में देकर इस ग्रन्थ की शोभा में अभिवृद्धि की है।

प्रस्तुत द्वितीय भाग में सूतिका-गृह-प्रवेश, जातकर्म, नामकरण, खट्वारोहण, कर्णवेध, दोला-रोहण, दुग्धपानविधि, दन्तोत्पत्ति, ताम्बूल–भक्षण, निष्क्रमण, उपवेशन, अन्नप्राशन, अब्दपूर्ति, चूड़ाकर्म, दन्तधावन, व्रतबन्ध, विद्यारम्भ, समावर्तन, छुरिका-बन्धन, विवाहसंस्कार, वधू-प्रवेश, द्विरागमन, द्वचंगयात्रा, स्वामी-दर्शन, वाटिकानिर्माण, कृषि-कर्म, रोगविचार, दीक्षा–ग्रहण, अग्न्याधान, अग्न्या-हुति, राज्याभिषेक, देवप्रतिष्ठा, जलप्रतिष्ठा, यात्रा-मुहूर्त, गृहनिर्माण, वास्तुप्रकरण एवं गृहप्रवेश प्रकरण हैं। इनके मुहूर्त व फलाफल का वर्णन, ग्रह, नक्षत्र, लग्न, वार, पक्ष, माह, आदि के आधार पर किया गया है। वर्ण्योद्धरणों की पुष्टि ग्रन्थ-ग्रन्थान्तरों के प्रमाण से की गई है। यह ज्योतिर्विदों के लिए परमोपयोगी ग्रन्थ है।

ूल्य : रु० १५० (सजिल्द)
१२० (अजिल्द)